श्रीयोगवाशिष्ठ भाषा

प्रथम भाग

[वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति और उपशम प्रकरण]

श्रीमत्पटियाला नगर-नरेश की परम जिज्ञासु
भक्ता दोनों बहनों के इस अपार संसार
से उद्धरणहेतु कथा श्रवण प्रसंग से
साधु रामप्रसादजी महाराज
निरंजनीजी-कृत

प्रकाशक

नवलकिशोर प्रेस

लखनऊ

[सातवीं बार   सन् १९२८ ई०   सर्वाधिकार सुरक्षित]

Printed by K. D. Seth, at the N. K. Press, Lucknow.

योगवाशिष्ठ की अनुक्रमणिका।

प्रथम भाग।

योगवाशिष्ठ की अनुक्रमणिका।

चतुर्थ स्थितिप्रकरण।

प्रथम भाग समाप्त।

योगवाशिष्ठ के प्रथमखण्ड का शुद्धाशुद्ध पत्र।

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
८१२	चतुरशीतितमस्सर्गः ॥ ८४ ॥	पञ्चाशीतितमस्सर्गः ॥ ८५ ॥
८१४	पञ्चाशीतितमस्सर्गः ॥ ८५ ॥	षडशीतितमस्सर्गः ॥ ८६ ॥
८२२	षडशीतितमस्सर्गः ॥ ८६ ॥	सप्ताशीतितमस्सर्गः ॥ ८७ ॥
८३२	नवतितमस्सर्गः ॥ ९० ॥	एकोननवतितमस्सर्गः॥ ८९ ॥



श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीयोगवाशिष्ठ

प्रथम भाग

वैराग्यप्रकरण प्रारम्भः ।

उस सत्चित्-आनन्दरूप आत्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थित होते हैं एवम् जिससे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन, दृश्य; और कर्त्ता, कारण, क्रिया सिद्ध होते हैं; जिस आनन्दके समुद्रके कण से सम्पूर्ण विश्व आनन्दवान् है और जिस आनन्द से सब जीव जीते हैं । अगस्त्यजी के शिष्य सुतीक्ष्ण के मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ तब वह उसके निवृत्त करने के अर्थ अगस्त्य मुनि के आश्रम को जाकर विधिसंयुक्त प्रणाम करके स्थित हुआ और नम्रतापूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आप सर्वतत्त्वज्ञ और सर्वशास्त्रों के ज्ञाता हो एक संशय मुझको है सो कृपा करके निवृत्त करो । मोक्षका कारण कर्म है या ज्ञान ? वा दोनों ? इतना सुन अगस्त्यजी बोले कि हे ब्रह्मण्य ! केवल कर्म मोक्ष का कारण नहीं और केवल ज्ञान से भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता; मोक्ष की प्राप्ति दोनों से होती है । कर्मकरके अन्तःकरण शुद्ध होता है मोक्ष नहीं होता और अन्तःकरणकी शुद्धि बिना केवल ज्ञानसेभी मुक्ति नहीं होती; इससे दोनों से मोक्ष की सिद्धि होती है । कर्म करके प्रथम अन्तःकरण शुद्ध होता है, फिर ज्ञान उपजताहै और तब मोक्ष सिद्ध होता है । जैसे दोनों पङ्खों से पक्षी आकाशमार्ग में सुख से उड़ता है तैसेही कर्म और ज्ञान दोनों से मोक्ष की सिद्धता होती है । हे ब्रह्मण्य ! इसी आशय के अनुसार एक पुरातन इतिहास है वह तुम सुनो । अग्निवेष का पुत्र कारणनाम ब्राह्मण गुरु के निकट जा षट्अङ्गों सहित चारों वेद अध्ययन करके गृहमें आया और कर्म से रहित होकर तूष्णीं हो स्थितरहा अर्थात् संशययुक्त हो कर्मों से रहित हुआ जब उसके पिताने देखा कि यह कर्मों बोले

से रहित होकर स्थितभया है तो उससे कहा कि हे पुत्र! कर्म की पालना क्यों नहीं करते? तुम कर्म के न करने से सिद्धता को कैसे प्राप्त होगे? जिस कारण तुम कर्म से रहितहुये हो वह कारण कहो? कारण बोला हे पितः! मुझको एक संशय उत्पन्न हुआ है उससे मैं कर्म से तूष्णीं हुआहूं कि वेदमें एकठौर तो कहाहै कि, जबतक जीतारहै तबतक कर्म अर्थात् अग्निहोत्रादिक करताहीरहे और एकठौर कहाहै कि न धनसे मोक्ष होता, न कर्म से मोक्ष होताहै, न पुत्रादिक से मोक्ष होताहै और न केवल त्यागसेही मोक्ष होताहै। इनदोनों में क्या कर्त्तव्य है मुझको यही संशयहै सो आप कृपाकर के निवृत्त करो और बतलाओ कि, क्या कर्त्तव्य है। अगस्त्यजी बोले हे सुतीक्ष्ण! ऐसे जब कारणने पितासे कहा तब अग्निवेष बोले कि हे पुत्र! एककथा जो पहिले हुई है उसको सुनकर हृदयमें धारण कर फिर जो तेरी इच्छा होगी सो करना। एककाल में सुरुचिनामक अप्सरा, जो सम्पूर्ण अप्सराओं में उत्तम थी, हिमालय पर्वत के सुन्दरशिखर पर जहां कि देवता और किन्नरगण, जिनके हृदय कामनासे तृप्त थे, अप्सराओं के साथ क्रीड़ाकरते थे और जहां गङ्गाजी के पवित्र जलका प्रवाह लहर लेरहाथा, बैठीथी। उसने इन्द्रका एकदूत अन्तरिक्ष से चलाआता देखा और जब निकट आया तो उससे पूछा; अहो सौभाग्य, देवदूत! तुम देवगणों में श्रेष्ठहो; कहांसे आये और अब कहां जाओगे सो कृपाकरके कहो? देवदूत बोले, हे सुभद्रे! अरिष्टनेमिनामक एक धर्मात्मा राजर्षिने अपने पुत्रको राज्य देकर वैराग्य लिया और सम्पूर्ण विषयोंकी अभिलाषा त्याग करके गन्धमादन पर्वतमें जा तप करनेलगा है उसीके साथ मेरा एक कार्यथा और उस कार्य के लिये मैं उसके पास गयाथा अब इन्द्रके पास जिसका मैं दूतहूं सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करनेको जाताहूं। अप्सरा ने पूछा हे भगवन्! वह वृत्तान्त कौनसा है मुझसे कहो? मुझको तुम अतिप्रिय हो यह जानकर पूछती हूं और महापुरुषों से जो कोई प्रश्न करता है तो उद्वेगरहित होकर वे उत्तर देते हैं। देवदूत बोले हे भद्रे! वह वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक तुमसे कहताहूं मनलगाकर सुनो, जब उ

राजाने गन्धमादन पर्वत में बड़ा तप किया तब देवताओं के राजा इन्द्रने मुझको बुलाकर आज्ञादी कि हे दूत! तुम गन्धमादन पर्वत में, जो नानाप्रकारकी लतावृक्षों से पूर्ण है, विमान, अप्सरा और नानाप्रकारकी सामग्री एवम् गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदङ्गादि वादित्र संगले जाकर राजा को विमान पर बैठाके यहां लेआओ। तब मैं विमान और सामग्रीसहित जहां राजा था आया और राजा से कहा; हे राजन्! तुम्हारे कारण विमान ले आया हूं; इसपर आरूढ़ होकर तुम स्वर्ग को चलो और देवताओं के भोग भोगो? इतनासुन राजाने कहा कि हे देव-दूत! प्रथम तुम स्वर्ग का वृत्तान्त मुझे सुनाओ कि तुम्हारे स्वर्ग में क्या २ दोष और गुणहैं तो उनको सुनके मैं हृदय में विचारूं पीछे जो मेरी इच्छा होगी तो चलूंगा मैंने कहा कि हे राजन्! स्वर्ग में बड़े २ दिव्य भोग हैं। वह स्वर्ग जीव बड़े पुण्य से पाताहै। जो बड़े पुण्यवाले होते हैं वे स्वर्ग के उत्तम सुखको पाते हैं; जो मध्यम पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के मध्यमसुखको पाते हैं और जो कनिष्ठ पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के कनिष्ठ सुख को पाते हैं। ये तो गुण स्वर्ग में हैं वे तो तुमसे कहे—और अब स्वर्ग के जो दोषहैं वे भी सुनो। हे राजन्! जो आपसे ऊंचे बैठे दृष्टआते हैं और उत्तम सुख भोगते हैं उनको देखके तापकी उत्पत्ति होती है क्योंकि उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं उनको देखके क्रोध उपजताहै कि ये मेरे समान क्यों बैठे हैं और जो आपसे नीचे बैठे हैं उनको देखके अभिमान उपजता है कि मैं इनसे श्रेष्ठहूं। एक और भी दोष है कि जब पुण्य क्षीण होते हैं तब जीवको उसीकाल में मृत्यु-लोक में गिरादेते हैं एक क्षणभी नहीं रहनेदेते। यही स्वर्ग के गुणों का दोषहै। हे भद्रे! जब इसप्रकार मैंने राजासे कहा तो राजा बोला कि हे देव-दूत! इस स्वर्गके योग्य हम नहीं और हमको उसकी इच्छाभी नहीं। जैसे सर्प अपनी त्वचाको पुरातन जानके त्याग करता है तैसेही हम उग्रतप करके यह देह त्याग कर देंगे। हे देवदूत! तुम अपने विमानको जहां से आये हो वहीं लेजाओ, हमारा नमस्कारहै। हे देवि! जब इसप्रकार राजाने

क
ग
कैस
बोदस

मुझसे कहा तब विमान अप्सरा आदिक सबको लेके मैं स्वर्ग में गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र से कहा। इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और सुन्दर वाणी से मुझसे बोला कि हे दूत ! तुम फिर जहां राजाहै वहां जाओ। वह संसार से उपरान्त हुआ है। उसको अब आत्मपदकी इच्छा हुई है इसलिये तुम उसको अपने साथ वाल्मीकिजी के पास, जिसने आत्मतत्त्वको आत्माकर जाना है, लेजाकर मेरा यह सन्देशा देना कि हे महाऋषे ! इस राजा को तत्त्वबोध का उपदेश करना क्योंकि यह बोधका अधिकारी है। इसको स्वर्ग तथा और पदार्थोंकीभी इच्छा नहीं इससे तुम इसको तत्त्वबोध का उपदेश करो कि तत्त्वबोधको पाके संसारदुःख से मुक्तहो। हे सुभद्रे ! जब इसप्रकार देवराज ने मुझसे कहा तब मैं वहां से चलकर राजा के निकट आया और उससे कहा कि हे राजन् ! तुम संसारसमुद्र से मोक्ष होने के निमित्त वाल्मीकिजी के पास चलो; वे तुमको उपदेश करेंगे। उसको साथलेकर मैं वाल्मीकिजी के स्थानपर आया और उस स्थानमें राजाको बैठा और प्रणामकर इन्द्र का सन्देशा दिया। तब वाल्मीकिजीने कहा हे राजन् ! कुशलताहै ? राजा बोले; हे भगवन् ! आप परमतत्त्वज्ञ, और वेदान्त जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं मैं आपके दर्शन करके कृतार्थ हुआ और अब मुझको कुशल प्राप्त हुई है। मैं आपसे पूछता हूं कृपाकरके उत्तरदीजिये कि संसारबन्धन से कैसे मुक्तहो ? इतना सुन वाल्मीकिजी बोले; हे राजन् ! महारामायण औषध तुमसे कहता हूं उसको सुनके उसका तात्पर्य हृदय में धारनेका यत्न करना। जब तात्पर्य हृदय में धरोगे तब जीवन्मुक्त होकर बिचरोगे। हे राजन् ! वह वशिष्ठजी और रामचन्द्रजीका संवादहै और उसमें मोक्षका उपाय कहाहै। उसको सुन के जैसे रामचन्द्रजी अपने स्वभाव में स्थितहुये और जीवन्मुक्त होके बिचरे हैं तैसेही तुमभी बिचरोगे। राजा बोले, हे भगवन् ! रामचन्द्रजी कौन थे, कैसे थे और कैसे होकर बिचरे सो कृपाकरके कहो ? वाल्मीकिजी बोले, हे राजन् ! शापके वश से सच्चिदानन्द विष्णुजीने, जो अद्वैत ज्ञानसे सम्पन्नहैं, अज्ञानको अङ्गीकार करके मनुष्य का शरीर धारण

किया । इतना सुन राजाने पूछा, हे भगवन् ! चिदानन्द हरि को शाप किस कारण हुआ और किसने दिया सो कहो ? वाल्मीकिजी बोले, हे तना कहेंव ! एक कालमें सनत्कुमार, जो निष्काम हैं ब्रह्मपुरी में बैठे थे औ होजावे तैसेन्त्रि पति विष्णुभगवान् भी वैकुण्ठ से उतर के ब्रह्मपुरी में आये । तब ब्रह्मासहित सर्वसभा उठके खड़ी हुई और श्रीभगवान् का पूजन किया पर सनत्कुमार ने पूजन नहीं किया । इस बात को देखकर विष्णुभगवान् बोले कि हे सनत्कुमार ! तुमको निष्कामता का अभिमान है इससे तुम काम से आतुर होगे और स्वामिकार्त्तिक तुम्हारा नाम होगा ! सनत्कुमार बोले हे विष्णो ! सर्वज्ञता का अभिमान तुमकोभी है इसलिये कुछकाल के लिये तुम्हारी सर्वज्ञता निवृत्त होकर अज्ञानता प्राप्त होगी । हे राजन् ! एकतो यह शाप हुआ और एक शाप और भी है, सुनो । एककाल में भृगुकी स्त्री जातीरही थी । उसके वियोग से वह ऋषि क्रोधित हुआथा । उसको देखके विष्णु जी हँसे तब भृगुब्राह्मण ने शाप दिया कि हे विष्णो ! मेरी तुमने हँसी की है सो मेरी नाईं तुमभी स्त्री के वियोग से आतुर होगे और एक दिवस देवशर्मा ब्राह्मण ने नरसिंह भगवान् को शाप दिया था सो भी सुनिये । एक दिन नरसिंह भगवान् गंगाके तीर पर गये और वहां देवशर्मा ब्राह्मणकी स्त्री को देखके नरसिंहजी भयानकरूप दिखा के हँसे । निदान उनको देखके ऋषिकी स्त्री ने भयपाय प्राण छोड़ दिया । तब देवशर्मा ने शाप दिया कि तुमने,मेरी स्त्री का वियोग किया इससे तुमभी स्त्री का वियोग पावोगे । हे राजन् ! सनत्कुमार, भृगु और देवशर्मा के शाप से विष्णु भगवान् ने मनुष्य का शरीर धारण किया और राजा दशरथ के घर में प्रकटे । हे राजन्! यहजो शरीर धारण किया और आगे जो वृत्तान्त हुआ सो सावधान होकर । सुनो अनुभवात्मक मेरा आत्मा जो त्रिलोकी अर्थात् देव स्वर्ग और पाताल लोकों का प्रकाशकर्त्ता और भीतर बाहर आत्मतत्त्व से पूर्ण है ऐसे सर्वात्माको नमस्कार है । हे राजन् ! यह शास्त्र जो आरम्भ किया सोइसका विषय, और प्रयोजन और सम्बन्ध क्या है और अधिकरी

कौन है सो सुनो। यह शास्त्र सत्-चित्-आनन्दरूप और अचिन्त्य-चिन्मात्र आत्माको जताता है यह तो विषय है, परमानन्द आत्मा की प्राप्ति और अनात्म अभिमान दुःख की निवृत्ति प्रयोजन है हे संसार ब्रह्मविद्या और मोक्ष उपाय से आत्मपद प्रतिपादन सम्बन्ध है इसलिये तुम यह निश्चय है कि मैं अद्वैत-ब्रह्म अनात्मदेह से बांधा हुआ हूं सो किसी प्रकार छूटूं, वह न अति ज्ञानवान् है न मूर्ख है, ऐसा विकृति आत्मा यहां अधिकारी है। इस शास्त्र का मोक्ष, उपाय परमानन्दकी प्राप्ति करनेवाला है। जो पुरुष इसको विचारेगा वह ज्ञानवान् होकर फिर जन्म मृत्यु-रूप संसार में न आवेगा। हे राजन्! यह महारामायण पावन है। श्रवणमात्र से ही सब पाप का नाशकर्त्ता है जिसमें रामकथा है। यह मैंने प्रथम अपने शिष्य भारद्वाज को सुनाई थी एक समय भारद्वाज चित्तको एकाग्र करके मेरेपास आया और मैंने उसको उपदेश किया था। वह उसको सुनके वचनरूपी समुद्रसे साररूपी रत्न निकाल और हृदयमें धरके एक समय सुमेरुपर्वत पर गया। वहां ब्रह्माजी बैठेथे, उसने उनको प्रणाम किया और उनके पास बैठकर यह कथा सुनाई। तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उससे कहा हे पुत्र! कुछ वर मांग; मैं तुझपर प्रसन्न हुआहूं! भारद्वाजने, जिसका उदार आशय था, उनसे कहा; हे भूत; भविष्य के ईश्वर! जो तुम प्रसन्न हुये हो, तो यह वर दो कि सम्पूर्ण जीव संसार दुःखसे मुक्तहों और परमपदपावें और उसीका उपाय भी कहो! ब्रह्माजी ने कहा हे पुत्र! तुम अपने गुरु वाल्मीकिजी के पास जाओ! उसने आत्मबोध महारामायण शास्त्रका जो परमपावन और संसारसमुद्र के तरनेका पुल है आरम्भ किया है। उसको सुनकर जीव महामोह संसारसमुद्र से तरेंगे। निदान परमेष्ठी ब्रह्मा जिनकी सर्वभूतोंके हित में प्रीति है आपही भारद्वाजको साथ लेकर मेरे आश्रम में आये और मैंने भले प्रकार से उनका पूजन किया। उन्होंने मुझसे कहा, हे मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकि! यह जो तुमने राम के स्व-भाव के कथन का आरम्भ किया है इस उद्यमका त्याग न करना; इस

आदिसे अन्तपर्यन्त समाप्ति करना; क्योंकि यह मोक्षउपाय संसाररूपी समुद्रके पार करने को जहाज है और इससे सब जीव कृतार्थ होंगे ! इतना कहकर ब्रह्माजी, जैसे समुद्रसे चक्र एक मुहूर्त्त पर्यन्त उठके फिर लीन होजावे तैसेही अन्तर्द्धान होगये। तब मैंने भारद्वाज से कहा, हे पुत्र ! ब्रह्माजीने क्या कहा ? भारद्वाज बोले हे भगवन् ! ब्रह्माजीने तुमसे यह कहा कि, हे मुनियोंमें श्रेष्ठ ! यह जो तुमने रामके स्वभावके कथनका उद्यम किया है उसका त्याग न करना; इसे अन्तपर्यन्त समाप्ति करना क्योंकि; संसारसमुद्रके पार करनेको यह कथा जहाजहै और इससे अनेक जीव कृतार्थ होकर संसार संकटसे मुक्त होंगे। इतना कहकर फिर वाल्मीकिजी बोले, हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझसे कहा तब उनकी आज्ञानुसार मैंने ग्रन्थ बनाकर भारद्वाज को सुनाया । हे पुत्र ! वशिष्ठजी के उपदेशको पाकर जिसप्रकार रामजी निश्शंक हो बिचरे हैं तैसेही तुमभी बिचरो। तब उसने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! जिसप्रकार रामचन्द्रजी जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं वह आदिसे क्रम करके मुझसे कहिये ? वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौशल्या, सुमित्रा और दशरथ ये आठ तौ जीवन्मुक्त हुये हैं और आठ मन्त्री, अष्टगुण, और वशिष्ठ वामदेव से आदि अष्टविंशाति जीवन्मुक्त हो बिचरे हैं उनके नाम सुनो। रामजी से लेकर दशरथपर्यन्त आठ तो ये कृतार्थ होकर अविरोध परम बोधवान् हुये हैं और १ कुन्तभासी, २ शतवर्धन, ३ सुखधाम, ४ विभीषण, ५ इन्द्रजित्, ६ हनुमान्, ७ वशिष्ठ और ८ वामदेव ये अष्टमन्त्री निश्शङ्क हो चेष्टा करते भये और सदा अद्वैतनिष्ठ हुये हैं। इनको कदाचित् स्वरूप से द्वैतभाव नहीं फुरा है ॥ ये अनामय पद की स्थिति में तृप्त रहकर केवल चिन्मात्र शुद्धपद परमपावनता को प्राप्त हुये हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यकथारम्भवर्णनो नाम प्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

भारद्वाजने पूछा हे भगवन् ! जीवन्मुक्त की स्थिति कैसी है और रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुये हैं वह आदि से अन्त पर्यन्त सब कहो ? वाल्मीकिजी बोले, हे पुत्र ! यह जगत् जो भासता है सो वास्तविक कुछ नहीं

उत्पन्न हुआ; अविचार करके भासता है और विचार किये से निवृत्त होजाता है। जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रमसे ही है यदि विचार करके देखिये तो नीलताकी प्रतीति दूर होजाती है तैसे हरि अविचार से जगत् भासता है और विचार से लीन होजाता है। हे शिष्य! जबतक सृष्टिका अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। जब दृश्य का अत्यन्त अभाव होजावे तब शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी। कोई इस दृश्यको महाप्रलय में कदाचित् अभाव कहते हैं परन्तु मैं तुमको तीनों कालका अभाव कहता हूं। जब इस शास्त्र को श्रद्धासंयुक्त आदि से अन्ततक सुनकर धारण करे तब भ्रान्ति निवृत्ति होजावे और अव्याकृत पदकी प्राप्ति हो। हे शिष्य! संसार भ्रममात्र सिद्ध है। इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना यही मुक्ति है। इसके बन्धनका कारण वासना है और वासना से ही भटकता फिरता है। जब वासनाका क्षय होजाय तब परमपदकी प्राप्ति हो। वासना का एक पुतला है उसका नाम मन है। जैसे जल शरदीकी दृढ़जड़ता पाके बरफ होजाता है और फिर सूर्य के ताप से पिघलकर जल होता है तो केवल शुद्ध जलही रहता है तैसे ही आत्मारूपी जल है, उस में संसारकी सत्यतारूपी जड़ता शीतलता है और उससे मनरूपी बरफका पुतला हुआ है। जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा तब संसारकी सत्यतारूपी जड़ता और शीतलता निवृत्त होजावेगी। जब संसारकी सत्यता और वासना निवृत्त हुई तब मन नष्ट होजावेगा और जब मन नष्ट हुआ तो परम कल्याण हुआ। इससे इसके बन्धनका कारण वासनाही है और वासनाके क्षय होने से मुक्ति है। वह वासना दो प्रकारकी है—एक शुद्ध और दूसरी अशुद्ध। अशुद्ध वासना से अपने वास्तविक स्वरूप के अज्ञान से अनात्मा जो देहादिक हैं उनमें अहंकार करता है और जब अनात्म में आत्म अभिमान हुआ, तब नानाप्रकारकी वासना उपजती हैं जिससे घटीयंत्र की नाईं भ्रमता रहता है। हे साधो! यह जो पञ्चभूत का शरीर तुम देखतेहो सो सब वासनारूप है और वासना से ही खड़ा है। जैसे माला के दाने धागेके आश्रय

से गुँधे होते हैं और जब धागा टूटजाता है तब न्यारे २ होजाते हैं और नहीं ठहरते तैसेही वासना के क्षय हुये पञ्चभूतका शरीर नहीं रहता। इससे सब अनर्थों का कारण वासना ही है शुद्ध वासना में जगत् का अत्यन्त अभाव निश्चय होता है। हे शिष्य! अज्ञानीका वासना से फिर निश्चय जन्मका कारण होजाता है और ज्ञानीकी वासना फिर जन्मके कारणसे नहीं होती है॥ जैसे कच्चा बीज फिर उगता है और जो दग्ध हुआ है सो फिर नहीं उगता तैसेही अज्ञानी की वासना रससहित है इससे जन्म का कारण है और ज्ञानीकी वासना रसरहित है जो जन्म का कारण नहीं। ज्ञानी की चेष्टा स्वाभाविकगुण से होती है। वह किसी गुणसे मिलके अपने में चेष्टा नहीं देखता। वह खाता, पीता, लेता, देता, बोलता, चलता एवम् और २ व्यवहार करता है पर अन्तः-करण में सदा अद्वैत निश्चय को धरता है कदाचित् द्वैतभावना उस को नहीं फुरती। वह अपने स्वभाव में स्थित है इससे निर्गुण और अरूप की चेष्टा भी उसे जन्म का कारण नहीं है। जैसे कुम्हारके चक्र को जबतक घुमावे तबतक फिरता है और जब घुमाना छोड़दिया तब स्थीयमान गति से उतरते २ स्थिर रह जाता है तैसेही जबतक अहङ्कार सहित वासना होती है तबतक जन्म पाता है और जब अहङ्कार से रहित हुआ तब फिर जन्म नहीं पाता। हे साधो! इस अज्ञानरूपी वासना के नाश करने को एक ब्रह्मविद्या ही श्रेष्ठ उपाय है जो मोक्षउपायक शास्त्र है। यदि इसे छांड़ और शास्त्ररूपी गर्त्त में गिरेगा तो कल्पपर्यन्त भी अकृत्रिम पदको न पावेगा और जो ब्रह्मविद्या का आश्रय करेगा वह सुखसे आत्मपद को प्राप्त होगा। हे भारद्वाज! यह मोक्षउपाय रामजी और वशिष्ठजी का संवाद है, यह विचारने योग्य है और बोधका परम कारण है। इसे आदि से अन्तपर्यन्त सुनो और जैसे रामजी जीवन्-मुक्त हो बिचरे हैं सोभी सुनो। एक दिन रामजी अध्ययनशाला से विद्या पढ़के अपने गृह में आये और सम्पूर्ण दिन विचारसहित व्यतीत किया। फिर मन में तीर्थ ठाकुरद्वारे का संकल्प धरकर अपने

पिता दशरथके पास, जो अति प्रजापालक थे, आये और जैसे हंस सुंदर कमलको ग्रहण करे तैसेही उन्होंने उनका चरण पकड़ा । जैसे कमलके फूलके नीचे कोमल तरैयां होती हैं और उन तरैयों सहित कमल को हंस पकड़ता है तैसेही दशरथजी की अंगुलियों को उन्होंने ग्रहण किया और बोले हे पितः ! मेरा चित्त तीर्थ और ठाकुरद्वारा के दर्शन को चाहता है । आप आज्ञा कीजिये तो मैं दर्शन कर आऊं । मैं तुम्हारा पुत्र हूं, मुझे तुम्हारी सेवा करनी योग्य है पर आगे मैंने कभी नहीं कहा यह प्रार्थना अब की है इससे यह वचन मेरा न फेरना क्योंकि, ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं है कि, जिसका मनोरथ इस घरसे सिद्ध न हुआ, इससे मुझको भी कृपाकर आज्ञा दीजिये । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! जिस समय इस प्रकार रामजी ने कहा तब वशिष्ठजी पास बैठे थे उन्होंने भी दशरथसे कहा, हे राजन् ! इनका चित्त उठा है रामजी को आज्ञा दो कि, तीर्थ कर आवें और इनके साथ सेना, धन, मन्त्री और ब्राह्मण भी दीजे कि, विधिपूर्वक दर्शन करें तब महाराज दशरथ ने शुभ मुहूर्त्त देखकर रामजी को आज्ञा दी ॥ जब वे चलने लगे तो पिता और माता के चरणों पड़े और सबको कण्ठ लगाकर रुदन करने लगे । इस प्रकार सबसे मिलकर लक्ष्मण आदि भाई, मन्त्री और वशिष्ठ आदि ब्राह्मण जो विधिजाननेवाले थे और बहुत सा धन और सेना साथ ली और दान पुण्य करते हुये गृह के बाहर निकले । उस समय वहां के लोगों और स्त्रियोंने रामजी के ऊपर फूलों और कलियों की माला की, जैसे बरफ बरसती है, तैसीही वर्षा की और रामजी की मूर्ति हृदय में धर ली । इसी प्रकार रामजी वहां से ब्राह्मणों और निर्धनों को दान देते गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि तीर्थों में विधिपूर्वक स्नान कर पृथ्वी के चारों ओर पर्यटन करते रहे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में दान किया और चारों ओर समुद्र के स्नान किये । सुमेरु और हिमालय पर्वत पर भी गये और शालग्राम, बद्री, केदार आदि में स्नान और दर्शन किये । ऐसेही सब तीर्थस्नान, दान, तप, ध्यान,

और विधिसंयुक्त यात्रा करते २ एक वर्ष में अपने नगर में आये॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यतीर्थयात्रावर्णनं नाम द्वितीयस्सर्गः॥२॥

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यापुरी में आये तो नगरवासी पुरुष और स्त्रियोंने फूल और कली की वर्षा की, जयजय शब्द मुख से उच्चारने लगे और बड़े उत्साह को प्राप्त भये जैसे इन्द्र का पुत्र अपने स्वर्ग में आता है तैसेही रामचन्द्रजी अपने घर में आये। रामजी ने पहिले राजा दशरथ और फिर वशिष्ठजी को प्रणाम किया और सब सभाके लोगों से यथायोग्य मिल के अन्तःपुर में आ कौशल्या आदि माताओं को यथायोग्य नमस्कार किया और भाई, बान्धव कुटुम्ब से मिले। हे भारद्वाज! इस प्रकार रामजी के आने का उत्साह सात दिन पर्यन्त होता रहा। उस अन्तर में कोई मिलने आवे उससे मिलते और जो कोई कुछ लेने आवे उनको दान पुण्य करते थे अनेक बाजे बजते थे और भाट आदि बन्दीजन स्तुति करते थे, तदनन्तर रामजी का यह आचरण हुआ कि, प्रातः-काल उठके स्नान सन्ध्यादिक सत्कर्म कर भोजन करते और फिर भाई बन्धुओं को मिल अपने तीर्थ की कथा और देवद्वार के दर्शन की वार्त्ता करते थे निदान इसी प्रकार उत्साह से दिन रात बिताते थे एक दिन रामजी प्रातःकाल उठके अपने पिता राजा दशरथ के निकट कि जिनका तेज चन्द्रमा के समान था, गये। उस समय वशिष्ठादिक की सभा बैठी थी वहां वशिष्ठजी के साथ कथा वार्त्ता की और राजा दशरथ ने उनसे कहा कि, हे रामजी! तुम शिकार खेलने जाया करो। उस समय रामजी की अवस्था सोलह वर्ष से कई महीने कम थी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भाई साथ थे पर भरतजी नहाने को गये थे। निदान उन्हीं के साथ नित चर्चा हुलास कर और स्नान, सन्ध्यादिक नित्य कर्म करके भोजन और शिकार खेलने जाते थे। वहां जो जीवों को दुःख देने वाले जानवर देखते उनको मारते और और लोगों को प्रसन्न करते थे। दिनको शिकार खेलने जाते

और रात्रि को बाजे निशान सहित अपने घरमें आते थे इसीप्रकार बहुत दिन बीते एक दिन रामजी बाहर से अपने अन्तःपुर में आके शोकसहित स्थित भये। हे भारद्वाज! राजकुमार अपनी सब चेष्टा और रससंयुक्त इन्द्रियों के विषयोंको त्याग बैठे और उनका शरीर दुर्बल होकर मुखकी कान्ति घट गई। जैसे कमल सूखके पीत वर्ण हो जाता है तैसेही रामजीका मुख पीला होगया और जैसे सूखे कमल पर भँवरे बैठते हैं तैसेही सूखे मुखकमल पर नेत्ररूपी भँवरे भासने लगे। जैसे शरत्काल में ताल निर्मल होता है तैसेही इच्छारूपी मलसे रहित उनका चित्तरूपी ताल निर्मल होगया और दिन पर दिन शरीर निर्बल होता गया वह जहां बैठें तहांही चिन्तासंयुक्त बैठेरहजावें और हाथ पर चिबुक धरके बैठें। जब टहलुवे मन्त्री बहुत कहैं कि, हे प्रभो! यह स्नान सन्ध्या का समय हुआ है अब उठो तब उठकर स्नानादिक करैं अर्थात् जो कुछ खाने, पीने, बोलने, चलने और पहिरने की क्रिया थी सो सब उन्हें विरस होगई। तब लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी रामजी को संशय युक्त देखके उसी प्रकार हो बैठे और राजा दशरथ यह वार्त्ता सुनके रामजी के पास आये तो क्या देखा कि रामजी महाकृश होगये हैं। राजाने इस चिन्ता से आतुर हो कि, हाय २ इनकी यह क्या दशा हुई रामजी को गोद में बैठाया और कोमल सुन्दर शब्द से पूछने लगे कि, हे पुत्र! तुमको क्या दुःख प्राप्त हुआ है जिससे तुम शोकवान् हुये हो? रामजी ने कहा कि, हे पितः! हमको तो कोई दुःख नहीं है! और ऐसे कहके चुप हो रहे। जब इसी प्रकार कुछ दिन बीते तो राजा और सब स्त्रियां बड़ी शोकवान् हुईं। राजा राजमन्त्रियों से मिलके विचार करने लगे कि, पुत्र का किसी ठौर विवाह करना चाहिये और यह भी विचार किया कि, क्या कारण है जो, मेरे पुत्र शोकवान् रहते हैं। तब उन्होंने वशिष्ठजी से पूछा कि, हे मुनीश्वर! मेरे पुत्र शोक में क्यों रहते हैं? वशिष्ठजीने कहा हे राजन्! जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश महाभूत अल्पकार्य में विकारवान् नहीं होते जब जगत् उत्पन्न और

प्रलय होता है तब विकारवान् होते हैं तैसेही महापुरुष भी अल्पकार्य में विकारवान् नहीं होते। हे राजन्! तुम शोक मत करो। रामजी किसी अर्थ के निमित्त शोकवान् हुये होंगे; पीछे से इनको सुख मिलेगा। इतना कह वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसेही वशिष्ठजी और राजा दशरथ विचार करते थे कि, उसी काल में विश्वामित्र ने अपने यज्ञके अर्थ राजा दशरथ के गृह पर आकर द्वारपाल से कहा कि, राजा दशरथ से कहो कि, "गाधि के पुत्र विश्वामित्र बाहर खड़े हैं"। द्वारपाल ने आकर राजा से कहा कि, हे स्वामिन्! एक बड़े तपस्वी द्वार पर खड़े हैं और उन्हों ने कहा है कि, राजा दशरथ के पास जाके कहो कि, विश्वामित्र आये हैं। हे भारद्वाज! जब इस प्रकार द्वारपाल ने आकर कहा तब राजा, जो मण्डलेश्वरों सहित बैठा था और बड़ा तेजवान् था सुवर्ण के सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और पैदल चला। राजाकी एक ओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी और सुभट की नाईं मण्डलेश्वर स्तुति करते चले और जहां से विश्वामित्र दृष्टि आये वहां से ही प्रणाम करने लगे। पृथ्वी पर जहां राजा का शीश लगता था वहां पृथ्वी हीरे और मोती की सुन्दर होजाती थी। इसी प्रकार शीश नवाते राजा चले। विश्वामित्रजी कांधे पर बड़ी २ जटा धारण किये और अग्नि के समान प्रकाशमान परम शान्तस्वरूप हाथ में बांस की तन्द्री लिये हुये थे। उनके चरणकमलों पर राजा इस भांति गिरा जैसे सूर्यपदा शिवजी के चरणारविन्द में गिरे। और कहा हे प्रभो! मेरे बड़े भाग्य हैं जो आपका दर्शन हुआ आज मुझे ऐसा आनन्द हुआ जो आदि अन्त और मध्य से रहित अविनाशी है। हे भगवन्! आज मेरे भाग्य उदय हुये कि, मैं भी धर्मात्माओं में गिना जाऊंगा क्योंकि आप मेरे कुशल निमित्त आये हैं हे भगवन्! आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिया। आप सबसे उत्कृष्ट दृष्टि आते हैं क्योंकि; आप में दो गुण हैं—एक तो यह कि, आप क्षत्रिय हैं पर ब्राह्मण का स्वभाव आप में है और दूसरे यह कि शुभ गुणों से परिपूर्ण हो। हे मुनीश्वर! ऐसी

किसी की सामर्थ्य नहीं कि, क्षत्रिय से ब्राह्मण हो। आपके दर्शन से मुझे अति लाभ हुआ। फिर वशिष्ठजी विश्वामित्रजी के कण्ठ लग के मिले और मण्डलेश्वरों ने बहुत प्रणाम किये। तदनन्तर राजा दशरथ विश्वामित्रजी को भीतर लेगये और सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्वक पूजा की और अर्घ्यपादार्चन करके प्रदक्षिणा की। फिर वशिष्ठजी ने भी विश्वामित्रजी का पूजन किया और विश्वामित्रजी ने उन का पूजन किया इसी प्रकार अन्योन्य पूजन कर यथायोग्य अपने २ स्थानों पर बैठे तब राजा दशरथ बोले हे भगवन्! हमारे बड़े भाग्य हुये जो आपका दर्शन हुआ। जैसे किसी को अमृत प्राप्त हो वा किसी का मरा हुआ बान्धव विमान पर चढ़ के आकाश से आवे और उसको मिलने का आनन्द हो वैसा आनन्द मुझे हुआ। हे मुनीश्वर! जिस अर्थ के लिये आप आये हैं वह कृपा करके कहिये और अपना वह अर्थ पूर्ण हुआ जानिये। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मुझको देना कठिन है, मेरे यहां सब कुछ विद्यमान है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रा-
गमनवर्णनं नाम तृतीयस्सर्ग्गः॥ ३॥

वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब इस प्रकार राजा ने कहा तो मुनियों में शार्दूल विश्वामित्रजी ऐसे प्रसन्न हुये जैसे चन्द्रमा को देखकर क्षीरसागर प्रसन्न होता है। उनके रोम खड़े हो आये और कहने लगे हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो! ऐसे तुम क्यों न कहो। तुम्हारे में दो गुण हैं–एक तो यह कि, तुम रघुवंशी हो और दूसरे यह कि वशिष्ठजी ऐसे तुम्हारे गुरु हैं जिनकी आज्ञा में चलते हो। अब जो कुछ मेरा प्रयोजन है वह प्रकट करता हूं। मैंने दशगात्र यज्ञ का आरम्भ किया है; जब यज्ञ करने लगता हूं तब खर और दूषण निशाचर आकर ध्वंस कर जाते हैं और मांस, हाड़ और रुधिर डालजाते हैं जिससे वह स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता और जब मैं और जगह जाता हूं तो वहां भी वे उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं इसलिये उनके नाश करने के लिये मैं तुम्हारे पास

आया हूं। कदाचित् यह कहिये कि, तुम भी तो समर्थ हो, तो हे राजन्! मैंने जिस यज्ञका आरम्भ किया है उसका अङ्ग क्षमा है। जो मैं उनको शापदूं तो वह भस्म हो जावें पर शाप क्रोध बिन नहीं होता। जो मैं क्रोध करूं तो यज्ञ निष्फल होता है और जो चुपकर रहूं तो राक्षस अपवित्र वस्तु डाल जाते हैं। इससे अब मैं आपकी शरण आया हूं। हे राजन्! अपने पुत्र रामजी को मेरे साथ दो कि, वह राक्षसों को भी मारें और यज्ञ भी सुफल हो। यह चिन्ता तुम न करना कि, मेरा पुत्र अभी बालक है। यह तो महाइन्द्र के समान शूरवीर है। जैसे सिंह के सन्मुख मृगका बच्चा नहीं ठहरसक्ता तैसे ही इसके सन्मुख राक्षस न ठहर सकेंगे। इसको मेरे साथ देने से तुम्हारा यश और धर्म दोनों रहेंगे और मेरा कार्य होगा इसमें सन्देह नहीं। हे राजन्! ऐसा कार्य त्रिलोकी में कोई नहीं जो रामजी न करसकें इसीलिये मैं तुम्हारे पुत्र को लिये जाता हूं यह मेरे हाथ से रक्षित रहेगा और कोई विघ्न न होने दूंगा। जैसे तुम्हारे पुत्र हैं मैं और वशिष्ठजी जानते हैं किन्तु और ज्ञानवान् भी जो त्रिकालदर्शी हों जानेंगे पर किसी की सामर्थ्य नहीं जो इनको जानें। हे राजन्! जो समय पर कार्य होता है वह थोड़े ही परिश्रम से सिद्ध होता है और समय विना बहुत परिश्रम किये से भी नहीं होता। खर और दूषण बड़े दैत्य हैं और मेरे यज्ञ को खण्डित करते हैं। जब रामजी जावेंगे तब वह भाग जावेंगे इनके आगे खड़े न रहसकेंगे जैसे सूर्य के तेज से तारागण का प्रकाश क्षीण होजाता है तैसे ही रामजी के दर्शन से वे स्थित न रहेंगे। इतना कह कर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रजी ने ऐसे कहा तब राजा दशरथ चुप होकर गिर पड़े और एक मुहूर्त्तपर्यन्त पड़े रहे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथविषादो नाम
चतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! एक मुहूर्त्त उपरान्त राजा उठे और अधैर्य होकर बोले हे मुनीश्वर! आपने क्या कहा? रामजी तो अभी

कुमार हैं। अभी तो उन्होंने शस्त्र और अस्त्रविद्या नहीं सीखी बल्कि फूलों की शय्यापर शयन करनेवाले; अन्तःपुर में स्त्रियों के पास बैठने वाले और बालकों के साथ खेलनेवाले हैं। उन्होंने कभी भी रणभूमि नहीं देखी और न भृकुटी चढ़ाके कभी युद्ध ही किया वह दैत्यों से क्या युद्ध करेंगे? कभी पत्थर और कमल का भी युद्ध हुआ है? हे मुनीश्वर! मैं तो बहुत वर्ष का हुआ हूं। इस वृद्धावस्था में मेरे घर में चार पुत्र हुये हैं; उन चारों में रामजी अभी सोलह वर्ष के हुये हैं और मेरे प्राण हैं। उन विना मैं एक क्षण भी नहीं रहसक्ता, जो तुम उनको लेजावोगे तो मेरे प्राण निकल जावेंगे। हे मुनीश्वर! केवल मुझे ही उनका इतना स्नेह नहीं किन्तु लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत और माताओं के भी प्राण हैं। जो तुम उनको लेजावोगे तो सबही मर जावेंगे। जो तुम हमको रामजी के वियोग से मारने आये हो तो लेजावो। हे मुनीश्वर! मेरे चित्त में तो रामजी पूर्ण हो रहे हैं उनको मैं आपके साथ कैसे दूं? मैं तो उनको देख देख प्रसन्न होता हूं रामजी के वियोग से मेरे प्राण कैसे बचेंगे? हे मुनीश्वर! ऐसी प्रीति मुझे स्त्री, धन तथा और पदार्थों की भी नहीं जैसी रामजी की है। मैं आपके वचन सुनकर अति शोकवान् हुआ हूं। मेरे बड़े अभाग्य उदय हुये जो आप इस निमित्त आये! मैं रामजी को कदापि नहीं देसक्ता। जो आप कहिये तो मैं एक अक्षौहिणी सेना, जो अति शूरवीर और शस्त्र अस्त्रविद्या से सम्पन्न हैं साथ ले कर चलूं और उनको मारूं पर जो कुबेर का भाई और विश्रवा का पुत्र रावण हो तो उससे मैं युद्ध नहीं करसक्ता। पहिले मैं बड़ा पराक्रमी था; ऐसा कोई त्रिलोकी में न था जो मेरे सामने आता पर अब वृद्धावस्था प्राप्त होकर देह जर्जर होगई है। हे मुनीश्वर! मेरे बड़े अभाग्य हैं जो आप आये। मैं तो रावण से कांपता हूं और केवल मैं ही नहीं वरन इन्द्रआदि देवता भी उससे कांपते और भय पाते हैं और किसी की सामर्थ्य है जो उससे युद्ध करे। इस काल में वह बड़ा शूरवीर है। जो मेरी ही उसके साथ युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं तो राजकुमार रामजी की क्या सामर्थ्य है? जिन रामजी

को तुम लेने आये हो वह तो रोगी पड़े हैं। उनको ऐसी चिन्ता लगी है जिससे महाकृश होगये हैं और अन्तःपुर में एकान्त बैठे रहते हैं। खाना पीना इत्यादि जो राजकुमारों की चेष्टा हैं वह भी सब उनको बिसर गई हैं और मैं नहीं जानता कि, उनको क्या दुःख हुआ। जैसे पीतवर्ण कमल होता है तैसे ही उनका मुख होगया है। उनको युद्ध की सामर्थ्य कहां है ? उन्होंने तो अपने स्थान से बाहर की पृथ्वी भी नहीं देखी है। हमारे प्राण वही हैं उनके वियोग से हम नहीं जीसक्के॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथोक्तिवर्ण-
नन्नाम पञ्चमस्सर्ग्गः॥ ५ ॥

वाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार दशरथजी ने महादीन और अधैर्य होकर कहा तो विश्वामित्रजी क्रोध करके कहने लगे कि, हे राजन्! तुम अपने धर्म को स्मरण करो। तुमने कहा था कि, तुम्हारा अर्थ सिद्ध करूंगा पर अब तुम अपने धर्म को त्यागते हो। जो तुम सिंहों के समान होकर मृगों की नाईं भागते हो तो भागो पर आगे रघुवंशी कुल में ऐसा कोई नहीं हुआ कि, जिसने वचन फेरा हो। जो तुम करते हो सो करो हम चले जावेंगे परन्तु यह तुमको योग्य न था क्योंकि; शून्य गृह से शून्य ही होकर जाता है। तुम बसते रहो और राज्य करते रहो जैसा कुछ होगा हम समझ लेंगे। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार विश्वामित्रजी को क्रोध उत्पन्न हुआ तो पचास कोटि योजन पृथ्वी कांपने लगी और इन्द्रादिक देवता भयवान् हुये कि, यह क्या हुआ ? तब वशिष्ठजी बोले हे राजन्! इक्ष्वाकुकुल में सब परमार्थी हुये हैं और तुम अपना धर्म क्यों त्यागते हो ? मेरे सामने तुमने विश्वामित्रजी से कहा है कि, तुम्हारा अर्थ पूरा करूंगा पर अब क्यों भागते हो। रामजी को तुम इनके साथ कर दो; यह तुम्हारे पुत्र की रक्षा करेंगे। इस पुरुष के सामने किसी का बल नहीं चलता यह साक्षात् ही काल की मूर्ति हैं जो तपस्वी कहिये तो भी इन के समान दूसरा नहीं है और शस्त्र और अस्त्रविद्या भी इनके सदृश

कोई नहीं जानता क्योंकि; दक्षप्रजापति ने अपनी दो पुत्रियां जिनका नाम जय और सुभगा था विश्वामित्रजी को दी थीं जिन्होंने पांच २ सौ पुत्र दैत्यों के मारने के लिये प्रकट किये। वे दोनों इनके सन्मुख मूर्ति धार के स्थित होती हैं इससे इनको कौन जीत सक्ता है? जिसके साथी विश्वामित्रजी हों उसको किसी का भय नहीं। आप इन के साथ अपना पुत्र निस्संशय होकर दो किसी की सामर्थ्य नहीं कि, इनके होते तुम्हारे पुत्रको कुछ कहसके। जैसे सूर्य्य के उदय से अन्धकार का अभाव हो जाता है तैसेही इनकी दृष्टि के देखने से दुःखका अभाव हो जाता है। हे राजन्! इनके साथ तुम्हारे पुत्रको कोई खेद न होगा। तुम इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न हुये हो और दशरथ तुम्हारा नाम है; जो तुम ऐसे जब अपने धर्म में स्थित न रहे तो और जीवों से धर्म की पालना कैसे होगी? जो कुछ श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करते हैं उनके अनुसार और जीव भी करते हैं। जो तुम अपने ऐसे वचनों की पालना न करोगे तो और किसी से क्या होगा? तुम्हारे कुल में अपने वचन से कोई नहीं फिरा इससे अपने धर्म का त्यागना योग्य नहीं। जो तुम दैत्यों के भय से शोकवान् हो तो भी न मत करना। कदाचित् मूर्तिधारी काल आकर स्थित हो तो भी विश्वामित्र के होते तुम्हारे पुत्रको कुछ न होगा। तुम शोक मत करो और अपने पुत्रको इनके साथ कर दो। जो तुम अपने पुत्र न दोगे तो तुम्हारा दो प्रकार का धन नष्ट होगा–एक धन यह कि, कूप, बावली और ताल जो बन रहे हैं उनका पुण्य नष्ट हो जावेगा और दूसरे यह कि तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नानादिक क्रिया का फल भी नष्ट होकर तुम्हारा गृह निरर्थ हो जावेगा। इससे मोह और शोक को छोड़ और धर्म को स्मरण करके रामजी को इनके साथ कर दो तो तुम्हारे सब कार्य्य सुफल होंगे। हे राजन्! इस प्रकार जो तुम्हें करना था तो प्रथम ही विचार कर कहते क्योंकि; विचार विना काम करने का परिणाम दुःख होता है। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तो राजा दशरथ धैर्य्यवान्

हुये और भृत्यों में जो श्रेष्ठ भृत्य था उसको बुलाकर कहा हे महाबाहो! रामजी को ले आवो। उनके साथ जो चाकर बाहर आने जानेवाला और छल से रहित था राजा की आज्ञा लेकर रामजी के निकट गया और एक मुहूर्त्त पीछे आकर कहने लगा हे देव! रामजी तो बड़ी चिन्ता में बैठे हैं। जब मैंने रामजी से वारंवार कहा कि चलिये तब वे कहने लगे कि, चलते हैं। ऐसेही कह २ चुप हो रहते हैं। दूतका यह वचन सुन राजाने कहा कि, रामजी के मन्त्री और सब नौकरों को बुलावो और जब वे सब निकट आये तो राजाने आदर और युक्तिपूर्वक कोमल और सुन्दर वचन मन्त्री से इस भांति कहा कि हे रामजी के प्यारे! रामजी की क्या दशा है और ऐसी दशा क्योंकर हुई है सो सब क्रम से कहो? मन्त्री बोला हे देव! हम क्या कहें? हम अतिचिन्ता से केवल आकार और प्राणमात्र दीखते हैं किन्तु मृतक समान हैं क्योंकि; हमारे स्वामी रामजी बड़ी चिन्ता में हैं। हे राजन्! जिस दिन से रघुनाथजी तीर्थ करके आये हैं उस दिन से चिन्ता को प्राप्त भये हैं। जब हम उत्तम भोजन और पान करने और पहिरने और देखने के पदार्थ ले जाते हैं तो उनको देखके वे किसी प्रकार प्रसन्न नहीं होते। वे तो ऐसी चिन्ता में लीन हैं कि, देखते भी नहीं और जो देखते हैं तो क्रोध करके सुख-दायी पदार्थों का निरादर करते हैं। अन्तःपुर में उनकी माता नाना प्रकार के हीरे और मणि के भूषण देती हैं तो उनको भी डाल देते हैं अथवा किसी निर्द्धन को देदेते हैं; प्रसन्न किसी पदार्थ में नहीं होते। सुन्दर स्त्रियां नानाप्रकार के भूषणों सहित महामोह करनेवाली निकट आकर उनकी प्रसन्नता के निमित्त लीला और कटाक्ष करती हैं वे उन को भी विषवत् जानते हैं बरन् जैसे पपीहा और जलको देखते भी नहीं ऐसेही वे भी जब अन्तःपुर में जाते हैं तब उनको देखकर क्रोधवान् होते हैं। हे राजन्! उनको कुछ भला नहीं लगता वे तो किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं। तृप्तवत होकर भोजन नहीं करते क्षुधावन्त रहते हैं उन्हें न कुछ पहिरने और खाने पीने की इच्छा है, न राज्य की इच्छा

है और न किसी इन्द्रियों के सुखकी इच्छा है वे तो महाउन्मत्त की नाईं बैठे रहते हैं और जब हम कोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक लेजाते हैं तब क्रोध करते हैं। हम नहीं जानते कि, क्या चिन्ता उनको हुई है जो एक कोठरी में पद्मासन लगाय हाथ पर मुख धरे बैठे रहते हैं। जो कोई बड़ा मन्त्री आके पूछता है तो उससे कहते हैं कि, "तुम जिसको सम्पदा मानते हो वह आपदा है और जिसको आपदा जानते हो वह आपदा नहीं है। संसार के नानाप्रकार के पदार्थ जो रमणीय जानते हो वे सब झूंठे हैं पर इसी में सब डूबे हैं। ये सब मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इनको सत्य जान मूर्ख हिरण दौड़ते और दुःख पाते हैं"। हे राजन्! वे कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं और कुछ उनको सुखदायी नहीं भासता। जो हम हँसी की वार्त्ता करते हैं तो वे हँसते भी नहीं। जिस पदार्थ को प्रीतिसंयुक्त लेते थे उस पदार्थ को अब डाल देते हैं और दिन पर दिन दुर्बल होते जाते हैं। जैसे मेघ की बुन्द से पर्वत चलायमान नहीं होते तैसे ही वे भी चलायमान नहीं होते हैं और जो बोलते हैं तो ऐसे कहते हैं कि, न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है, न यह जगत् सत्य है, न भ्राता सत्य हैं और न मित्र सत्य हैं। मिथ्या पदार्थों के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं। जिनको सब सत्य और सुखदायक जानते हैं वे बन्धन के कारण हैं। जो कोई राजा अथवा पण्डित इनके पास जाता है तो उनको देखकर कहते हैं कि, ये "पशु हैं-आशारूपी फांसी से बँधे हुये हैं"। हे राजन्! जो कुछ भोग्य पदार्थ हैं उनको देखकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता बल्कि देखके क्रोधवान् होते हैं। जैसे पपीहा मारवाड़ में भी जावे तो मेघों की बुन्दों को नहीं देखता और खेदवान् होता है तैसेही रामजी विषयों से खेदवान् होते हैं। इससे हम जानते हैं कि, उनको परमपद पाने की इच्छा है परन्तु कदाचित् उनके मुखसे नहीं सुना। त्याग का भी अभिमान उन्हें कदाचित् नहीं है क्योंकि कभी गाते हैं और बोलते हैं तो कहते हैं "हाय! हाय! मैं अनाथ मारा गया! अरे मूर्खो! तुम संसारसमुद्र में क्यों डूबते हो?

यह संसार परम अनर्थ का कारण है। इसमें सुख कदापि नहीं है इससे छूटने का उपाय करो"। वह किसी के साथ बोलते नहीं और न हँसते हैं; किसी परम चिन्ता में मग्न हैं। वह किसी पदार्थ से आश्चर्यवान् भी नहीं होते। जो कोई कहे कि, आकाश में बाग लगा है और उसमें फूल फूले हैं। उनको मैं ले आया; तो उसको सुनकर भी आश्चर्यवान् नहीं होते सब भ्रममात्र समझते हैं। उनको न किसी पदार्थ से हर्ष होता न किसी से शोक होता है; किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं पर उस चिन्ता के निवारण करने की किसीमें सामर्थ्य नहीं देखते। हे राजन्! हमको यह चिन्ता लग रही है कि, रामजी को खाने, पहिरने, बोलने और देखने की इच्छा नहीं रही है और न किसी कर्म की उन को इच्छा है ऐसा न हो कि, कहीं मृतक होजावें? जो कोई कहता है कि, तुम चक्रवर्ती राजा हो; तुम्हारी बड़ी आयुर्बल हो और बड़ा सुख पावो तो उसके वचन सुनकर कठोर बोलते हैं। हे राजन्! केवल रामजी को ही ऐसी चिन्ता नहीं वरन लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी ऐसी ही चिन्ता लग रही है। उनको देख कर जो कोई उनकी चिन्ता दूर करनेवाला हो तो करे, नहीं तो बड़ी चिन्ता में डूबे रहेंगे। हे राजन्! अब क्या कहते हो? तुम्हारे पुत्र सबसे विरक्त हो एक वस्त्र ओढ़े बैठे हैं। इससे अब तुम वही उपाय करो जिससे उनकी चिन्ता निवृत्त हो। इतना सुन विश्वामित्रजी बोले हे साधो! जो रामजी ऐसे हैं तो हमारे पास लावो, हम उनका दुःख निवृत्त करेंगे। हे राजन्, दशरथ! तुम धन्य हो; जिनका पुत्र विवेक और वैराग्य को प्राप्त हुआ है। हम तुम्हारे पुत्रको परम पदवी प्राप्त करेंगे और अभी उनके सब दुःख मिट जावेंगे। हम और वशिष्ठादि एक युक्ति से उपदेश करेंगे उससे उनको आत्मपद की बप्राप्ति होगी। तब वह दशा तुम्हारे पुत्र की होगी कि, वह लोष्ट, पत्थर तैसेर सुवर्ण को समान जानेंगे। जो कुछ तुम्हारी क्षत्रियों की प्रकृति होत आचार है सो वह करैंगे और हृदय में प्रेम से उदासी होंगे और इस खोत्य मैंने मान्न कृतकृत्य रहेगा। तुम रामजी को शीघ्र बुलावो! इतना

कहकर वाल्मीकि जी बोले हे भारद्वाज! ऐसे मुनीन्द्र के वचन सुन के राजा दशरथ ने मन्त्री और नौकरों से कहा कि, राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को साथ ले आवो! जब मन्त्री और भृत्यों ने रामजी के पास जाके कहा तो रामजी आये और राजा दशरथ, वशिष्ठजी और विश्वामित्र को देखा कि, तीनों पर चमर होरहे हैं और बड़े बड़े मण्डलेश्वर बैठे हैं। सबने रामजी को देखा कि, उनका शरीर कृश हो रहा है। जैसे महादेवजी स्वामिकार्त्तिक को आते देखें तैसे ही राजा दशरथ ने रामजी को आते देखा। रामजी ने वहां आकर राजा दशरथजी के चरण पर मस्तक लगा नमस्कार किया और तैसे ही वशिष्ठजी, विश्वामित्र और सभा में जो बड़े बड़े ब्राह्मण बैठे थे उनको भी नमस्कार किया। जो बड़े बड़े मण्डलेश्वर बैठे थे उन्होंने उठकर रामजी को प्रणाम किया। राजा दशरथ ने रामजी को गोद में बैठा कर मस्तक चूमा और बहुत प्रेमसे पुलकित हो रामजी से कहा हे पुत्र! केवल विरक्तता से परमपद की प्राप्ति नहीं होती। गुरु वशिष्ठजी के उपदेश की युक्ति से परमपद की प्राप्ति होगी। वशिष्ठजी बोले हे रामजी! तुम धन्य हो और बड़े शूर हो कि विषयरूपी शत्रु तुमने जीते हैं। विश्वामित्रजी बोले हे कमलनयन राम! अपने अन्तःकरण की चपलता को त्याग के जो कुछ तुम्हारा आशय हो प्रकट कर कहो कि, तुम को मोह कैसे हुआ, किस कारण हुआ है और कितना है? एवं अब जो कुछ तुमको वाञ्छित हो सो भी कहो हम तुमको उसी पद में प्राप्त करेंगे जिसमें कदाचित् दुःख न हो। जैसे आकाश को चूहा नहीं काट सक्ता तैसे ही तुमको कदाचित् पीड़ा न होगी। हे रामजी! हम तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख नाश कर देंगे। तुम संशय मत करो जो कुछ तुम्हारा वृत्तान्त हो सो हमसे कहो। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जैसे मेघ [illegible] देखके मोर प्रसन्न होता है तैसे ही विश्वामित्र के वचन सुनकर राम[illegible] प्रसन्न हुये और अपने हृदय में निश्चय किया कि, अब मुझको अभी [illegible] पद की प्राप्ति होगी॥ इति श्रीयो॰वै॰ रामसमाजव॰[illegible]

क्यों डूबते हो

श्रीरामजी बोले हे भगवन्! जो वृत्तान्त है सो तुम्हारे सन्मुख क्रम से कहता हूं। मैं राजा दशरथ के घर में उत्पन्न होकर क्रम से बड़ा हुआ और चारो वेद पढ़कर ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण किये; तदनन्तर घर में आया तो मेरे हृदय में विचार हुआ कि तीर्थाटन करूं और देवद्वारों में जाके देवों के दर्शन करूं। निदान मैं पिता की आज्ञा लेकर तीर्थों में गया और गङ्गा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान और शालग्राम और केदार आदि ठाकुरों के विधिसंयुक्त दर्शन करके यहां आया। फिर उत्साह हुआ तब यह विचार आया कि, प्रातःकाल उठके स्नान सन्ध्यादिक कर्म करके भोजन करता। जब इस प्रकार से कुछ दिन व्यतीत हुये तब मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ जो मेरे हृदय को खैंच लेगया। जैसे नदी के तटपर तृण बल्ली होती है उसको नदी का प्रवाह खींच लेजाता है तैसेही मेरे हृदय में जो कुछ जगत्की आस्थारूपी बल्लीथी उसको विचाररूपी प्रवाह खींच लेगया। तब मैंने जाना कि; राज्य करके क्या है, भोग से क्या है और जगत् क्या है—सब भ्रममात्र हैं—इसकी वासना मूर्ख रखते हैं; यह स्थावर जङ्गम जगत् सब मिथ्या है। हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ हैं वह सब मनसे उत्पन्नहैं। सो मन भी भ्रममात्र है अनहोता मन दुःखदायी हुआहै। मन जो पदार्थोंको सत्य-जानकर दौड़ता है और सुखदायक जानता है सो मृगतृष्णा के जलवत् है जैसे मृगतृष्णा के जल को देखकर मृग दौड़ते हैं और दौड़ते २ थक के गिरपड़ते हैं तो भी उनको जल प्राप्त नहीं होता तैसेही मूर्ख जीव पदार्थों को सुखदायी जानकर भोगनेका यत्न करते हैं और शान्ति नहीं पाते। हे मुनीश्वर! इन्द्रियों के भोग सर्पवत् हैं जिनका माराहुआ जन्म मरण और जन्मसे जन्मान्तर पाता है। भोग और जगत् सब भ्रममात्र बल्लनमें जो आस्था करते हैं वह महामूर्ख हैं मैं विचार करके ऐसा जान-तैसे कि सब आगमापायी हैं अर्थात् आते भी हैं और जाते भी हैं। होजे जिस पदार्थका नाश न हो वही पदार्थ पाने योग्य है और इसी-खोतण मैंने भोगों कात्याग किया है। हे मुनीश्वर! जितने सम्पदारूप

पदार्थ भासते हैं वह सब आपदा हैं; इनमें रञ्चक भी सुख नहीं। जब इनका वियोग होता है तब कण्टककी नाईं मनमें चुभते हैं। जब इन्द्रियों को भोग प्राप्त होते हैं तब जीव राग द्वेष से जलता है और जब नहीं प्राप्त होते तब तृष्णा से जलता है–इससे भोग दुःखरूपही है जैसे पत्थरकी शिला में छिद्र नहीं होता तैसे भोगरूपी दुःख की शिला में रञ्चक भी सुखरूपी छिद्र नहीं होता। हे मुनीश्वर! मैं विषयकी तृष्णा में बहुतकालसे जलता हूं जैसे हरे वृक्षके छिद्रमें रञ्चक अग्नि धरीहो तो धुवां हो थोड़ा २ जलता रहता है। तैसेही भोगरूपी अग्नि से मन जलता रहता है। विषय में कुछभी सुख नहीं है और दुःख बहुत है इससे इनकी इच्छा करनी मूर्खता है। जैसे खाईंके ऊपर तृण और पान होते हैं और उससे खाईं आच्छादित होजाती है उसको देख हरिण कूदके दुःख पाता है तैसेही मूर्ख भोगको सुखरूप जानके भोगनेकी इच्छा करता है और जब भोगता है तब जन्म से जन्मान्तररूपी खाईं में जा पड़ता है और दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर अज्ञानरूपी रात्रि में आत्मारूपी धन लूट ले जाता है पर उसके वियोग से जीव महादीन रहता है। जिसभोग के निमित्त यह यत्न करता है वह दुःखरूप है उनसे शान्ति प्राप्त नहीं होती और जिस शरीर का अभिमान करके यह यत्न करता है वह शरीर क्षणभङ्ग और असार है। जिस पुरुष को सदा भोगकी इच्छा रहती है वह मूर्ख और जड़ है। उसका बोलना और चलना भी ऐसा है जैसे सूखे बांसके छिद्र में पवन जाता है और उसके वेग से शब्द होता है जैसे थकाहुआ मनुष्य मारवाड़ के मार्ग की इच्छा नहीं करता तैसे ही दुःख जानकर मैं भोग की इच्छा नहीं करता। लक्ष्मी भी परम अनर्थकारी है जब तक इसकी प्राप्ति नहीं होती तबतक उसके पाने का यत्न होता है और यह अनर्थ करके प्राप्त होती है। जब लक्ष्मी प्राप्तहुई तब सब सद्गुण अर्थ शीलता, सन्तोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार दयादिक नाश करदेती है। जब ऐसे गुणों का नाश हुआ तब सुख कहांसे हो तो परमआपदाही प्राप्त होती है। इसको परमदुःखका कारण जान

मैंने त्याग किया है। हे मुनीश्वर! इस जीव में गुण तबतक हैं जबतक लक्ष्मी नहीं प्राप्त हुई। जब लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई तब सब गुण नाश होजाते हैं। जैसे वसन्त ऋतुकी मञ्जरी तबतक हरी रहती है जबतक ज्येष्ठ आषाढ़ नहीं आता और जब जेष्ठ आषाढ़ आया तब मञ्जरी जलजाती है तैसे ही जब लक्ष्मी की प्राप्ति हुई तब शुभगुण जलजाते हैं। मधुरवचन तभीतक बोलता है जबतक लक्ष्मीकी प्राप्ति नहीं है और जब लक्ष्मीकी प्राप्तिहुई तब कोमलता का अभावही कठोर होजाता है। जैसे जल पतला तबतक रहता है जबतक शीतलता का संयोग नहीं हुआ और जब शीतलता का संयोग होताहै तब बरफ़ होकर कठोर दुःखदायक होजाता है; तैसे यह जीव लक्ष्मी से जड़ होजाताहै। हे मुनीश्वर! जो कुछ संपदा है वह आपदा का मूल है क्योंकि; जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तब बड़े २ सुख भोगता है और जब उसका अभाव होता है तब तृष्णासे जलता है और जन्म से जन्मान्तर पाताहै। लक्ष्मीकी इच्छाही मूर्खता है। यह तो क्षणभंग है, इससे भोग उपजते और नाश होते हैं। जैसे जलसे तरंग उपजते और मिटजाते हैं और जैसे बिजली स्थिर नहीं होती तैसे ही भोग भी स्थिर नहीं रहते पुरुष में शुभगुण तबतक हैं जब तक तृष्णा का स्पर्श नहीं और जब तृष्णा हुई तब शुभ गुणोंका अभाव होजाता है। जैसे दूध में मधुरता तबतक है जबतक उसे सर्प ने स्पर्श नहीं किया और जब सर्प ने स्पर्शकिया तब वही दूध विषरूप होजाताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेरामेणवैराग्यवर्णनन्नाम सप्तमस्सर्गः॥ ७॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखनेमात्रही सुन्दर है। जब इसकी प्राप्ति होती है तब सद्गुणों का नाश करदेती है। जैसे विषकी बल्ली देखनेमात्रही सुन्दर होती है और स्पर्श किये से मारडालती है तैसेही लक्ष्मी की प्राप्ति हुये से जीव आत्मपद से मृतक हो महादीन होजाता है। जैसे किसी के घरमें चिन्तामणि दबीहो तो उसको जबतक खोद कर यह नहीं लेता तबतक दरिद्री रहता है तैसेही अज्ञानसे ज्ञान

विना महादीन होरहता है और आत्मानन्द को नहीं पासक्ता। आत्मानन्द पाने की नाशकरनेवाली लक्ष्मी है। इसकी प्राप्ति से जीव महाअन्ध होजाता है। हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलित होता है तब उसका बड़ा प्रकाश दृष्टि आता है और जब बुझ जाता है तब प्रकाश का अभाव होजाता है पर काजलकी समक्षता रहजाती है; तैसेही जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तब बड़े भोग भुगाती है और तृष्णारूपी काजल उससे उपजता रहता है और जब लक्ष्मी का अभाव होता है तब तृष्णा की वासना समक्षता छोड़ जाती है। उस वासना तृष्णा से अनेक जन्म और मरण पाता है कदाचित् शान्ति नहीं पाता। हे मुनीश्वर! जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तब शान्ति के उपजानेवाले गुणों का नाश करती है। जैसे जबतक पवन नहीं चलता तबतक मेघ रहता है और जब पवन चलता है तो मेघ का अभाव हो जाता है तैसे ही लक्ष्मीजी की प्राप्ति हुये गुणों का अभाव होता है और गर्व की उत्पत्ति होती है। हे मुनीश्वर! जो शूर होके अपने मुखसे अपनी बड़ाई न करे सो दुर्लभ है और सामर्थ्य भर किसी की अवज्ञा न करे सबमें समबुद्धि राखे सो भी दुर्लभ है तैसे ही लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण संयुक्त होय सो भी दुर्लभ है। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी सर्प के विष के बढ़ाने को लक्ष्मीरूपी दूध है उसे पीते पवनरूपी भोग के आहार करते कभी नहीं अघाता और महा मोहरूपी उन्मत्त हस्ती है उस के फिरने का स्थान पर्वत की अटवीरूपी लक्ष्मी है और गुणरूपी सूर्यमुखी कमल की लक्ष्मीरूपी रात्रि है और भोगरूपी चन्द्रमुखी कमलों का लक्ष्मीरूपी चन्द्रमा है और वैराग्यरूप कमलिनी का नाश करनेवाला लक्ष्मीरूपी बरफ़ है। और ज्ञानरूपी चन्द्रमा का आच्छादन करनेवाली लक्ष्मीरूपी राहु है और मोहरूपी उलूक की लक्ष्मीरूपी रात्रि है। दुःखरूपी बिजली को लक्ष्मी आकाश है और तृणरूपी बल्लीको बढ़ानेवाली लक्ष्मी मेघ है। तृष्णारूपी तरङ्ग को लक्ष्मी समुद्र है, तृष्णारूपी भँवर को लक्ष्मी कमलिनी है और जन्म के दुःखरूपी जल का यह लक्ष्मी

खड्ढा है। हे मुनीश्वर ! देखने मात्र यह सुन्दर लगती है यह दुःख का कारण है। जैसे खड्ग की धार देखने मात्र सुन्दर होती है और स्पर्श किये से नाश करती है तैसे ही यह लक्ष्मी विचाररूपी मेघ का नाश करने में वायुसी है। हे मुनीश्वर ! यह मैंने विचार देखा है कि, इसमें कुछ भी सुख नहीं सन्तोष रूपी मेघ का नाश करनेवाली लक्ष्मी शरत्काल है। इस मनुष्य में गुण तबतक दृष्टि आते हैं जबतक लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती जब लक्ष्मी की प्राप्ति भई तब शुभ गुण नाश होजाते हैं। हे मुनीश्वर ! लक्ष्मी को ऐसी दुःखदायक जानकर इस की इच्छा मैंने त्यागदी है। यह भोग मिथ्यारूपी है जैसे बिजली प्रकट होके छिप जाती है तैसे ही लक्ष्मी भी प्रकट होके छिप जाती है। जैसे जल है सो हिम है तैसे ही लक्ष्मी की ज्योति है सो मूर्ख जड़ के आश्रय से है। इसको छलरूप जान कर मैंने त्याग किया है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मी नैराश्य
वर्णनन्नामाष्टमस्सर्गः॥ ८॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर ! जैसे पत्रके ऊपर जल के बुन्द नहीं रहते तैसे ही लक्ष्मी भी क्षणभङ्ग है जैसे जल के तरङ्ग होके नाश होते हैं तैसे ही लक्ष्मी होके नाश होती है। हे मुनीश्वर ! पवन को रोंकना कठिन है पर वह भी कोई रोंकता है और आकाश का चूर्ण करना अति कठिन है वह भी कोई चूर्ण कर डारता है और बिजली का रोंकना अति कठिन है सो भी कोई रोंकता है परन्तु लक्ष्मी को कोई स्थिर नहीं रख सक्ता जैसे शश की सींगों से कोई मार नहीं सक्ता और आरसी के ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता है जैसे तरङ्ग की गांठ नहीं पड़ती तैसे ही लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती है लक्ष्मी बिजली की चमक सी है सो होती है और मिट भी जाती है और जो लक्ष्मी पाके अमर हुआ चहा उसे महा मूर्ख जानना और लक्ष्मी पाकर जो भोग की वाञ्छा करता है वह महा आपदा का पात्र है उसका जीने से मरना श्रेष्ठ है जीने की आशा मूर्ख करते हैं जैसे स्त्री गर्भ की इच्छा अपने

नाशनिमित्त करती है तैसे ही जीने की आशा पुरुष अपने नाशनिमित्त करते हैं और ज्ञानवान् पुरुष जिनकी परमपद में स्थिति है और उससे तृप्त हुये हैं उनका जीना सुख के निमित्त है उनके जीने से और के कार्य भी सिद्ध होते हैं और उनका जीना चिन्तामणि की नाईं श्रेष्ठ है और जिनको सदा भोग की इच्छा रहती है और आत्मपद से विमुख हैं उनका जीना किसी सुख के निमित्त नहीं है वह मनुष्य नहीं गर्दभ हैं जैसे वृक्ष पक्षी पशु का जीना है तैसे उनका भी जीना है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढ़ता है और उसने अपने योग्य पद नहीं पाया तो शास्त्र उसको भाररूप है। जैसे और भार होता है तैसे ही पढ़ने का भी भार है और जो पढ़के विचार-चर्चा करते हैं और तिसके सार को नहीं ग्रहण करते तो यह विचार-चर्चा भी भार है। हे मुनीश्वर! यह मन आकाशरूप है। जो मनमें शान्ति न आई तो मन भी उसको भार है और जो मनुष्य शरीर को पाकर उसका अभिमान नहीं त्यागता तो यह शरीर भी उसको भार ही है। इस शरीर का जीना तभी श्रेष्ठ है जब आत्मपद को पावे अन्यथा जीना व्यर्थ है। आत्मपद की प्राप्ति अभ्यास से होती है। जैसे जल पृथ्वी खोदने से निकलता है तैसे ही आत्मपद की प्राप्ति भी अभ्यास से होती है। जो आत्मपद से विमुख हो आशा की फांसी में फँसे हैं वे संसार में भटकते रहते हैं। हे मुनीश्वर! जैसे संसार के तरङ्ग अनेक काल से उत्पन्न होके नष्ट हो जाते हैं तैसे ही यह लक्ष्मी भी क्षणभङ्ग है। इसको पाके जो अभिमान करता है सो मूर्ख है। जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ने के लिये पड़ी रहती है तैसे ही लक्ष्मी उनको नरक में डालने के लिये घर में पड़ी रहती है। जैसे अञ्जली में जल नहीं ठहरता तैसे ही लक्ष्मी भी नहीं ठहरती। ऐसी क्षणभङ्ग लक्ष्मी और शरीर को पाके जो भोग की तृष्णा करताहै वह महामूर्ख है। वह मृत्युके मुखमें पड़ाहुआ जीने की आशा करताहै। जैसे सर्प के मुख में मूर्ख मेढक पड़के मच्छर खाने की इच्छा करता है तैसे ही जो जीव मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ भोग की वाञ्छा करता

है वह महामूर्ख है। जब युवा अवस्था नदी के प्रवाह की नाईं चली जाती है तब वृद्धावस्था आती है। उसमें महादुःख प्रकट होते हैं और शरीर जर्जर होजाता है और मरता है। निदान एक क्षण भी मृत्यु इसको नहीं बिसारती। जैसे महाकामी पुरुष को सुन्दर स्त्री मिलती है तो उसके देखने का त्याग नहीं करता तैसे ही मृत्यु मनुष्य को देखे बिना नहीं रहती। हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुष का जीना दुःख के निमित्त है। जैसे वृद्ध मनुष्य का जीना दुःख का कारण है तैसे ही ज्ञानी का जीना दुःख का कारण है। उसके बहुत जीने से मरना श्रेष्ठ है। जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाके आत्मपद पाने का यत्न नहीं किया उसने अपना आप नाश किया और वह आत्म-हत्यारा है। हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुन्दर भासती है पर अन्त में नाश होजाती है। जैसे काष्ठ को भीतर से घुन खा जाता है और बाहर से बहुत सुन्दर दिखाता है तैसे ही यह जीव बाहर से सुन्दर दृष्टि आता है और भीतर से उसको तृष्णा खा जाती है। जो मनुष्य पदार्थ को सत्य और सुखरूप जानकर सुख के निमित्त आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता है। जैसे कोई नदी में सर्प को पकड़ के पार उतरा चाहे तो पार नहीं उतरसकता मूर्खता से डूबे ही गा तैसे ही जो संसार के पदार्थों को सुखरूप जानकर आश्रय करता है सो सुख नहीं पाता संसारसमुद्र में डूब जाता है। हे मुनीश्वर! यह संसार इन्द्रधनुष की नाईं है। जैसे इन्द्रधनुष बहुत रङ्ग का दृष्टि में आताहै पर उससे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता तैसे ही यह संसार भ्रममात्र है इसमें सुखकी इच्छा रखनी व्यर्थ है इस प्रकार जगत् को मैंने असत्रूप जानकर निर्वासना होने की इच्छा की है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेध वर्णनन्नामनवमस्सर्गः॥ ९॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! अहङ्कार अज्ञान से उदय हुआ है। यह महा दुष्ट है और यही परम शत्रु है इसने मुझको दबा डाला है पर मिथ्या है और सब दुःखों की खानि है। जब तक अहङ्कार है तब तक

पीड़ा की उत्पत्ति का अभाव कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! जो कुछ मैंने अहङ्कार से भजन और पुण्य किया, जो कुछ लिया दिया और जो कुछ किया वह सब व्यर्थ है। इससे परमार्थ की कुछ सिद्धि नहीं है जैसे राख में आहुति धरी व्यर्थ होजाती है तैसे ही मैं इसे जानता हूं। जितने दुःख हैं उनका बीज अहङ्कारहै। जब इसका नाश हो तब कल्याण हो। इससे आप इसके निवृत्ति का उपाय कहिये। हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य है उसके त्याग करने में दुःख होता है और जो वस्तु नाशवान् है और भ्रम से दिखती है उसके त्याग करने में आनन्द है। शान्तिरूप चन्द्रमाके आच्छादन करनेको अहङ्काररूपी राहु है जब राहु चन्द्रमा को ग्रहण करता है तब उसकी शीतलता और प्रकाश ढप जाता है। तैसे ही जब अहङ्कार ढप जाता है तब समता ढप जाती है। जब अहङ्काररूपी मेघ गरज के वर्षता है तब तृष्णारूपी कण्टकमञ्जरी बढ़ जाती है और कदाचित् नहीं घटती। जब अहङ्कार का नाश हो तब तृष्णा का अभाव हो। जैसे जबतक मेघ है तबतक बिजली है; जब विवेकरूपी पवन चले तब अहङ्काररूपी मेघ का अभाव होके तृष्णारूपी बिजली नाश होजाती है और जैसे जबतक तेल और बाती है तबतक दीपक का प्रकाश है जब तेल बाती का नाश होता तब दीपक का प्रकाश भी नाश होजाता है तैसे ही जब अहङ्कार का नाश हो तब तृष्णा का भी नाश होता है। हे मुनीश्वर! परम दुःख का कारण अहङ्कार है। जब अहङ्कार का नाश हो तब दुःख का भी नाश होजाय। हे मुनीश्वर! यह जो मैं राम हूं सो नहीं और इच्छा भी कुछ नहीं क्योंकि; मैं नहीं तो इच्छा किसको हो? और इच्छा हो तो यही हो कि, अहङ्कार के रहित पदकी प्राप्ति हो। जैसे जनेन्द्र को अहङ्कार का उत्थान नहीं हुआ तैसा मैं होऊं ऐसी मुझको इच्छा है। हे मुनीश्वर! जैसे कमल को बरफ़ नाश करता है तैसे ही अहङ्कार ज्ञान का नाश करता है। जैसे व्याधा जालसे पक्षीको फँसाताहै और उससे पक्षी दीन होजाते हैं तैसेही अहङ्काररूपी व्याधाने तृष्णारूपी जाल डालके जीवको

फँसाया है उससे वह महादीन होगये हैं जैसे पक्षी अन्न के दाने सुखरूप जानकर चुगने आता है फिर चुगते २ जाल में फँस बन्धन से दीन हो जाता है तैसेही यह जीव विषय भोग की इच्छा किये से तृष्णारूपी जाल में फँसकर महादीन हो जाता। इससे हे मुनीश्वर! मुझसे वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाश हो जब अहङ्कार का नाश होगा तब मैं परमसुखी हूंगा। जैसे विन्ध्याचल पर्वत के आश्रय से उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं तैसेही अहङ्काररूपी विन्ध्याचल पर्वत के आश्रय से मनरूपी उन्मत्त हस्ती नानाप्रकार के सङ्कल्प विकल्परूपी शब्द करता है इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाश हो जो अकल्याण का मल है। जैसे मेघका नाश करनेवाला शरत्काल है तैसेही वैराग्य का नाश करनेवाला अहङ्कार है। मोहादिक विकाररूप सर्पों के रहने का अहङ्काररूपी बिल है और वह कामी पुरुषों की नाईं है। जैसे कामी पुरुष काम को भोगता है और फूल की माला गले में डाल के प्रसन्न होता है तैसेही तृष्णारूपी तागा है और मनरूपी फूल हैं सो तृष्णारूपी तागे के साथ गुहे हैं सो अहङ्काररूपी कामी पुरुष उनको गले में डालता है और प्रसन्न होता है। हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य है उसका आवरण करनेवाला मेघरूपी अहङ्कार है। जब ज्ञानरूपी शरत्काल आता है तब अहङ्काररूपी मेघ का नाश हो जाता है और तृष्णारूपी तुषार का भी नाश होता है। हे मुनीश्वर! यह निश्चय कर मैंने देखा है कि जहां अहङ्कार है वहां सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसे समुद्र में सब नदी आके प्राप्त होती हैं तैसेही अहङ्कार में सब आपदा की प्राप्ति है। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्कार का नाश हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अहङ्कारदुराशावर्णनन्नाम दशमस्सर्गः॥ १०॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख से जर्जरीभूत होगया है और महापुरुषों के गुण जो वैराग्य, विचार, धैर्य्य और सन्तोष हैं उनकी ओर नहीं जाता-

सर्वदा विषय की गरद में उड़ता है। जैसे मोर का पंख पवन के लगे नहीं ठहरता तैसेही यह चित्त सर्वदा भटकता फिरता है पर कुछ लाभ नहीं प्राप्त होता। जैसे श्वान द्वार द्वार पर भटकता फिरता है तैसेही यह चित्त पदार्थों के पाने के निमित्त भटकता फिरता है पर प्राप्त कुछ नहीं होता और जो कुछ प्राप्त होता है उससे तृप्त नहीं होता बल्कि अन्तः-करण में तृष्णा बनी रहती है। जैसे पिटारे में जल भरिये तो वह पूर्ण नहीं होता क्योंकि; छिद्र से जल निकल जाता है और पिटारा शून्य का शून्य रहता है तैसेही चित्त भोग और पदार्थों से संतुष्ट नहीं होता सदा तृष्णाही रहती है। हे मुनीश्वर! यह चित्तरूपी महामोहका समुद्र है; उसमें तृष्णारूपी तरङ्ग उठती ही रहती हैं और कदाचित् स्थिर नहीं होतीं। जैसे समुद्र में तीक्ष्ण तरङ्ग से तट के वृक्ष बहजाते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्र में विषय बहजाता है। वासनारूपी तरङ्ग के वेग से मेरा अचल स्वभाव चलायमान होगया है; इसलिये इस चित्त से मैं महा दीन हुआ हूँ। जैसे जल में पड़ा हुआ पक्षी दीन हो जाता है तैसेही चित्त धींवर के वासनारूपी जाल में बँधा हुआ मैं दीन हो गया हूँ। जैसे मृग के समूह से भूली मृगी अकेली खेदवान् होती है तैसेही मैं आत्मपद से भूला हुआ चित्त में खेदवान् हुआ हूँ। हे मुनीश्वर! यह चित्त सदा क्षोभवान् रहता है कदाचित् स्थिर नहीं होता। जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल से क्षोभवान् हुआ था तैसेही यह चित्त सङ्कल्प विकल्प से खेद पाता है। जैसे पिंजरे में आया सिंह पिंजरे ही में फिरता है तैसे वासना में आया चित्त स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! जैसे भारी पवन से सूखा तृण दूर से दूर जा पड़ता है तैसेही इस चित्तरूपी पवन ने मुझ को आत्मानन्द से दूर फेंका है। जैसे सूखे तृण को अग्नि जलाती है तैसेही मुझको चित्त जलाता है। जैसे अग्नि से धूम निकलता है तैसेही चित्तरूपी अग्नि से तृष्णारूपी धूम निकलता है उससे मैं परम दुःख पाता हूँ। यह चित्त हंस नहीं बनता। जैसे राजहंस मिले दूध और जल को भिन्न भिन्न करता है उसकी नाईं मैं अनात्मा से अज्ञान के

कारण एकसा होगया हूं उसको भिन्न नहीं कर सक्ता और जब आत्मपद पाने का यत्न करता हूं तब अज्ञान उसे प्राप्त नहीं करने देता। जैसे नदी का प्रवाह समुद्र में जाता है उसको पहाड़ सूधे नहीं चलने देता और समुद्र की ओर नहीं जाने देता तैसेही मुझको चित्त आत्मा की ओर से रोकता है—वह परम शत्रु है। हे मुनीश्वर! वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी शत्रु का नाश हो। जैसे मृतक शरीर को श्वान और श्वाननी भोजन करते हैं तैसेही तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है। आत्मा के ज्ञान विना मैं मृतक समान हूं। जैसे बालक अपनी परछाहीं को वैताल मानकर भय पाता है और जब विचार करके समर्थ होता है तब वैताल का भय नहीं होता तैसेही चित्तरूपी वैताल ने मेरा स्पर्श किया है उससे मैं भय पाता हूं। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी वैताल नष्ट हो जावे। हे मुनीश्वर! अज्ञान से मिथ्या वैताल चित्त में दृढ़ हो रहा है उसके नाश करने को मैं समर्थ नहीं हो सक्ता हूं। अग्नि में बैठना बड़े पर्वत के ऊपर जाना और बड़े वज्र का चूर्ण करना मैं सुगम मानता हूं परन्तु चित्त का जीतना महाकठिन है। चित्त सदाही चलायमान स्वभाववाला है। जैसे थम्भ में बांधा हुआ वानर कदाचित् स्थिर हो नहीं बैठता तैसेही चित्त वासना के मारे कदाचित् स्थिर नहीं होता। हे मुनीश्वर! बड़े समुद्र का पान कर जाना, अग्नि का भक्षण करना और सुमेरु का उल्लङ्घन करना सुगम है परन्तु चित्त का जीतना महाकठिन है जो सदा चलरूप है। जैसे समुद्र अपना द्रवी स्वभाव कदाचित् नहीं त्याग करता, महाद्रवीभूत रहता है और उससे नानाप्रकार के तरङ्ग उठते हैं तैसेही चित्त भी चञ्चल स्वभाव कभी नहीं त्यागता और नानाप्रकार की वासना उपजती रहती हैं। चित्त बालक की नाईं चञ्चल है, सदा विषय की ओर धावता है; कहीं २ पदार्थ की प्राप्ति होती है परन्तु भीतर सदा चञ्चल रहता है। जैसे सूर्य के उदय हुये दिन होता है और अस्त हुये से दिन नाश होता है, तैसेही चित्त के उदय हुये त्रिलोकी की उत्पत्ति है और चित्त के लीन

हुये से जगत् भी लीन हो जाता है। हे मुनीश्वर! चित्तरूपी समुद्र है और वासनारूपी जल है, उसमें छलरूपी सर्प है, जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है और तृष्णारूपी विष स्पर्श करता है उससे मरता है। हे मुनीश्वर! भोग को सुखरूप जानकर चित्त दौड़ता है पर वह भोग दुःखरूप है। जैसे तृण से आच्छादित खाईं को देखकर मूर्ख मृग खाने दौड़ता है तो खाईं में गिरकर दुःख पाता है तैसेही चित्तरूपी मृग भोग को सुख जान कर भोगने लगता है तब तृणरूपी खाईं में गिर पड़ता है और जन्म जन्मान्तर दुःख भोगता रहता है। हे मुनीश्वर! यह चित्त कभी २ बड़ा गम्भीर भी हो बैठता है। जैसे चील पक्षी आकाश में ऊँचे फिरता है पर जब पृथ्वीपर मांस देखता है तो वहां से पृथ्वीपर आके मांस लेता है तैसेही यह चित्त तबतक उदार है जबतक भोग नहीं देखता और जब विषय देखता है तब आसक्त हो विषय में गिर जाता है। यह चित्त वासनारूपी शय्या में सोया रहता है और आत्मपद की ओर नहीं जागता इस चित्त के जाल में मैं पड़ गया हूं। वह कैसा जाल है कि उसमें वासनारूपी सूत है, संसार की सत्यतारूपी गांठ है और भोगरूपी चून है जिसको देख के मैं फँसा हूं और कभी पाताल में और कभी आकाश में वासनारूपी रस्सी से बँधा घटीयन्त्र की नाईं फिरता हूं इससे हे मुनीश्वर! तुम वही उपाय कहो जिससे चित्तरूपी शत्रु को जीतूं। अब मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं और जगत् की लक्ष्मी मुझको विरस भासती है। जैसे चन्द्रमा बादल की इच्छा नहीं करता पर चतुरमास में आच्छादित हो जाता है तैसेही मैं भोग की इच्छा नहीं करता और जगत् की लक्ष्मी भी नहीं चाहता पर मेरा चित्तही मेरा परमशत्रु है। महापुरुष जब इसके जीतनेका यत्न करते हैं तब परमपद पाते हैं, इससे मुझे वही उपाय कहो जिससे मनको जीतूं। जैसे पर्वत पर के वन पर्वत के आश्रय से रहते हैं तैसेही सब दुःख इसके आश्रय से रहते हैं॥

इति श्रीयो० वै० चित्तदौरात्म्यवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

श्रीरामजी बोले कि, हे ब्राह्मण ! चेतनरूपी आकाश में तृष्णारूपी रात्रि आईहै और उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक उल्लू विचरते हैं। जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो तब तृष्णारूपी रात्रि का अभाव होजावे और जब रात्रि नष्ट हो तब मोहादिक उलूक भी नष्ट हों जैसे जब सूर्य का उदय होताहै तब बरफ उष्णहो पिघल जाताहै तैसेही सन्तोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता पिघलाजाती है। आत्मपद से शून्य चित्त भयानक वनहै, उसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी मोहादिक परिवारको अपने साथलिये फिरती रहती है और प्रसन्न होती है हे मुनीश्वर ! चित्तरूपी पर्वत है उस के आश्रय से तृष्णारूपी नदी का प्रवाह चलता है और नानाप्रकार के सङ्कल्परूपी तरङ्ग को फैलाता है। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है तैसे ही तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघ को देखकर प्रसन्न होता है इससे परमदुःख का मूल तृष्णा है। जब मैं किसी सन्तोषादि गुणका आश्रय करता हूं तब तृष्णा उसको नाश करदेती है। जैसे सुन्दर सारङ्गी को चूहा काट डालता है तैसे ही सन्तोषादि गुण को तृष्णा नाश करती है। हे मुनीश्वर ! सबसे उत्कृष्ट पदमें विराजने का मैं यत्न करताहूं पर तृष्णा मुझे विराजने नहीं देती। जैसे जालमें फँसाहुआ पक्षी आकाश में उड़नेका यत्न करता है परन्तु उड़ नहीं सक्ता तैसेही अनात्म पदसे आत्मपद को प्राप्त नहीं हो सक्ता। स्त्री, पुरुष, पुत्र और कुटुम्ब का उसने जाल बिछाया है उसमें फँसा हूं निकल नहीं सक्ता। और आशारूपी फांसी में बँधाहुआ कभी ऊर्ध्व को जाता हूं और कभी अधःपात होता हूं, घटीयन्त्र की नाईं मेरी गति है। जैसे इन्द्र का धनुष मलिन मेघ में बड़ा और बहुत रङ्गों से भरा होता है परन्तु मध्य में शून्य है तैसे ही तृष्णा मलिन अन्तःकरण होती है सो बड़ी है और गुणरूपी धागे से रहित है। यह ऊपर से ही देखनेमात्र सुन्दरहै परन्तु इससे कुछ कार्य नहीं सिद्ध होता। हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी मेघ है उससे दुःखरूपी बूंदें निकलते हैं और तृष्णारूपी काली नागिन है उसका स्पर्श तो कोमल है परन्तु विष से पूर्ण है उसके डसे से मृतक होजाता है तृष्णारूपी बादल है सो आत्मरूपी सूर्य के आगे आवरण

करता है। जब ज्ञानरूपी पवन चले तब तृष्णारूपी बादल का नाश होकर आत्मपद का साक्षात्कार हो। ज्ञानरूपी कमल को सङ्कोच करनेवाली तृष्णारूपी निशा है। उस तृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रि में बड़े धीरवान्‌भी भयभीत होते हैं और नयनवालों को भी अन्धा कर डालती है। जब यह आती है तब वैराग्य और अभ्यासरूपी नेत्र को अन्धा करडालती है। अर्थात् सत्य असत्य विचारने नहीं देती। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी डाकिनी है वह सन्तोषादिक पुत्रों को मारडालती है। तृष्णारूपी कन्दरा है उसमें मोहरूपी उन्मत्त हाथी गर्जते हैं। तृष्णारूपी समुद्र है उसमें आपदारूपी नदी आय प्रवेश करती है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे तृष्णारूपी दुःख से छूटूं। हे मुनीश्वर! अग्नि और खड्ग के प्रहार और इन्द्र के वज्र से भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख तृष्णा से होता है सो तृष्णाके प्रहार से घायल हुआ मैं बड़े दुःख को पाता हूं और तृष्णारूपी दीपक जलता है उसमें सन्तोषादिक पतङ्ग जल जाते हैं जैसे जल में मछली रहती है सो जल में कंकड़ रेत आदि को देख मांस जानकर मुख में लेती है उससे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता तैसे तृष्णा भी जो कुछ पदार्थ देखती है उसके पास उड़तीहै और तृप्ति किसी से नहीं होती तृष्णारूपी एक पक्षिणी है सो इधर उधर उड़जाती है और स्थिर कभी नहीं होती तृष्णारूपी वानर है वह कभी किसी वृक्ष पर और कभी किसी के ऊपर जाताहै स्थिर कभी नहीं होताहै। जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता उसके निमित्त यत्न करताहै और भोग से तृप्त कदाचित् नहीं होता जैसे घृत की आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होती तैसेही जो पदार्थ प्राप्तयोग्य नहीं है उसकी ओर भी तृष्णा दौड़ती है शान्ति नहीं पाती। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है वह बहेहुये पुरुष को कहां से कहां लेजाती है कभी तो पहाड़ के बाजू में लेजाती और कभी दिशा में लेजाती है और तृष्णारूपी नदी है उसमें वासनारूपी अनेक तरङ्ग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं तृष्णारूपी नटिनी है और जगत्‌रूपी अखाड़ा उसने लगाया है उसको शिर ऊंचा कर देखती है और मूर्ख बड़े

प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिलके ऊँचा होता है तैसे ही मूर्ख भी तृष्णाको देख कर प्रसन्न होता है तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है जो पुरुष इसका त्याग करता है तो उसके पीछे लगी फिरती ही है कभी उसका त्याग नहीं करती तृष्णारूपी डोर है उसके साथ जीवरूपी पशु बँधेहुये भ्रमते फिरते हैं। तृष्णा दुष्टिनी है जब शुभगुण देखती है तब उसको मारडालती है उसके संयोग से मैं दीन होता हूं जैसे पपीहा मेघ को देखकर प्रसन्न होता है और बूंद ग्रहण करने लगता है और मेघको जब पवन लेजाता है तब पपीहा दीन होजाता है तैसे ही तृष्णा जब शुभगुणों का नाश करती है तब मैं दीन होजाताहूं हे मुनीश्वर! जैसे सूखे तृण को पवन उड़ाकर दूर से दूर डालता है तैसेही तृष्णारूपी पवन ने मुझको दूर से दूर डालदिया है और आत्मपद से दूर पड़ा हूं हे मुनीश्वर! जैसे भवँरा कमल के ऊपर और कभी नीचे बैठता है और कभी आसपास फिरता है स्थिर नहीं होता तैसेही तृष्णारूपी भवँरा संसाररूपी कमलके नीचे ऊपर फिरता है कदाचित् नहीं ठहरता। जैसे मोतीके बांससे अनेक मोती निकलते हैं तैसेही तृष्णारूपी बांससे जगत्-रूपी अनेक मोती निकलते हैं उससे लोभी का मन पूर्ण नहीं होता। तृष्णारूपी डब्बे में अनेक दुःखरूपी रत्न भरे हैं इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णा निवृत्त हो। हे मुनीश्वर! यह विराग से निवृत्त होती है और किसी उपायसे नहीं निवृत्त होती। जैसे अन्धकार का प्रकाश से नाशहोताहै और किसी उपाय से नहीं होता तैसेही तृष्णा का नाश और उपाय से नहीं होता। तृष्णारूपी हल गुणरूपी पृथ्वी को खोदडा-लता है और तृष्णारूपी बेलि गुणरूपी रसको पीती है। तृष्णारूपी धूर है वह अन्तःकरणरूपी जल में उछलके मलीन करती है। हे मुनीश्वर! जैसे वर्षाकाल में नदी बढ़ती है और फिर घट जाती है तैसेही जब इष्ट भोगरूपी जल प्राप्त होता है तब हर्ष से बढ़ती है और जब वह जल घट जाता है तब सूखके क्षीण होजाती है। हे मुनीश्वर! इस तृष्णा ने मुझ को दीन किया है। जैसे सूखे तृणको पवन उड़ा लेजाता है तैसेही मुझ

को भी तृष्णा उड़ाती है इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णा का नाश होकर आत्मपद की प्राप्ति हो और दुःखों का नाश होकर आनन्द हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुडीवर्णनन्नाम द्वादशस्सर्गः॥ १२॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! यह अमङ्गलरूप शरीर, जो जगत् में उत्पन्न हुआ है, बड़ा अभाग्यरूप है और सदा विकारवान् मांस मज्जा से पूर्ण और अपवित्र है। इससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता इसलिये इस विकाररूप शरीर की मैं इच्छा नहीं रखता। यह शरीर न अज्ञ है और न तज्ञ है–अर्थात् न जड़है और न चैतन्यहै। जैसे अग्नि के संयोगसे लोहा अग्निवत् होताहै सो जलताभी है परन्तु आप नहीं जलता; तैसे ही यह देह न जड़ है न चैतन्य है। जड़ इसकारण नहीं है कि, इससे कार्य भी होता है और चैतन्य इसकारण नहीं कि, इसको आपसे कुछ ज्ञान नहीं होता। इसलिये मध्यमभाव में है क्योंकि; चैतन्य आत्मा इस में व्यापरहा है पर आप तो अपवित्ररूप अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठा से पूर्ण और विकारवान् है। ऐसी देह दुःखका स्थान है। इष्ट के पायेसे हर्षवान् और अनिष्ट के पाये से शोकवान् होती है इससे ऐसे शरीर की मुझको इच्छा नहीं। यह अज्ञानसे उपजती है। हे मुनीश्वर! ऐसे अमङ्गलरूपी शरीर में जो अहंपन फुरता है सो दुःखका कारण है। यह संसारमें स्थित होकर नानाप्रकार के शब्द करता है। जैसे कोठरी में बैठा हुआ बिलाव नानाप्रकार के शब्द करता है तैसेही अहंकाररूपी बिलाव देह में बैठाहुआ अहं अहं करता है चुप कदाचित् नहीं रहता। हे मुनीश्वर! जो किसी के निमित्त शब्द हो सोही सुन्दर है अन्यथा सब शब्द व्यर्थ हैं। जैसे जयके निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर होता है तैसेही अहंकार से रहित जो पद है सोही शोभनीक है और सब व्यर्थ हैं। शरीररूपी नौका भोगरूपी रेत में पड़ी है इसलिये इसका पार होना कठिन है। जब वैराग्यरूपी जल बढ़े और प्रवाह हो और अभ्यासरूपी

पतवार का बललगे तब संसार के पाररूपी किनारे पर पहुंचे। शरीररूपी बेड़ा है जो संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जल में पड़ा है जिस का बड़ा प्रवाह है और भोगरूपी उसमें मगर हैं सो शरीररूपी बेड़े को पार नहीं लगनेदेते; जब शरीररूपी बेड़ेको वैराग्यरूपी वायु और अभ्यासरूपी पतवारका बल लगे तब शरीररूपी बेड़ापारहो। हे मुनीश्वर! जिस पुरुषने उपाय करके ऐसे बेड़ेको संसारसमुद्र से पार किया है वही सुखी हुआहै और जिसने नहीं किया वह परम आपदाको प्राप्तहोता है—वह उस बेड़ेसे उलटा डूबेगा क्योंकि उस शरीररूपी बेड़े का तृष्णारूपी छिद्र है उससे संसार-समुद्र में डूब जाता है और भोगरूपी मगर इसको खालेता है। यही आश्चर्य है कि, बेड़ा अपने निकट नहीं भासता और मनुष्य मूर्खता करके आपको बेड़ा मानताहै और तृष्णारूपी छिद्रकरके दुःख पाताहै। शरीर-रूपी वृक्ष है उसमें भुजारूपी शाखा, उँगली पत्र, जङ्घास्तम्भ, मांसरूपी अन्दर का भोगवासना उसकी जड़ और सुख दुःख इसके फूलहैं। तृष्णा-रूपी घुन उस शरीररूपी वृक्षको खातारहता है। जब उसमें श्वेत फूल लगे तो नाशका समय आता है अर्थात् मृत्युके निकटवर्ती होताहै, शरीररूपी वृक्षकी भुजारूपी शाखा हैं और हाथ पांव पत्र हैं। पखने इसके गुच्छे और दांत फूलहैं; जंघा स्तम्भ है और कर्मजल से बढ़जाताहै। जैसे वृक्षसे जल चिकटा निकलता है तैसेही जल शरीर के द्वार निकलता रहता है। इसमें तृष्णारूपी विषसे पूर्ण सर्पिणी रहती है जो कामना के लिये इस वृक्ष का आश्रय लेता है तो तृष्णारूपी सर्पिणी उसको डसती है और उस विष से वह मरजाता है। हे मुनीश्वर! ऐसे अमङ्गलरूपी शरीर वृक्षकी इच्छा मुझको नहीं है। यह परम दुःख का कारण है। जब यह पुरुष अपने परिवार अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और इनमें जो अहंभाव है इसका त्यागकरे तब मुक्ति हो अन्यथा मुक्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे पवित्र स्थान में ही रहते हैं अपवित्र में नहीं रहते। वह अपवित्र स्थान यह देह है और इसमें रहने-वाला भी अपवित्र है। अस्थिरूपी इस घर में ईंटें हैं, रुधिर, मूत्र और

विष्ठा का गारा लगा है और मांस की कहगिल की है। अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहता है, तृष्णारूपी श्वपचिनी उस की स्त्री और काम, क्रोध, मोह और लोभ इसके पुत्र हैं और आँतों और विष्ठादि से भराहुआ है। ऐसे अपवित्र स्थान अमङ्गलरूपी शरीर को मैं अङ्गीकार नहीं करता यह शरीर रहे चाहे न रहे इसके साथ अब मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। हे मुनीश्वर! शरीररूपी बड़ा गृह है और उसमें इन्द्रियरूपी पशु हैं। जब कोई उस गृह में पैठताहै तब बड़ी आपदाको प्राप्त होताहै—तात्पर्य यह कि जो इसमें अहंभाव करताहै तो इन्द्रियरूपी पशु विषयरूपी सींगों से मारते हैं और तृष्णारूपी धूलि उसको मलीन करती है हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को मैं अङ्गीकार नहीं करता जिसमें सदा कलह पड़ी रहती है और ज्ञानरूपी सम्पदा प्रवेश नहीं होती। शरीररूपी गृह में तृष्णारूपी चण्डी स्त्री रहती है; वह इन्द्रियरूपी द्वारसे देखती रहती और सदा कल्पना करती रहती है। उससे शम दमादिरूप सम्पदा का प्रवेश नहीं होता। उस घरमें एक सुषुप्तिरूप शय्या है जब उसके ऊपर वह विश्राम करता है तब वह कुछ सुख पाता है परन्तु तृष्णाका परिवार अर्थात् काम, क्रोधादिक विश्राम नहीं करने देते हे मुनीश्वर! ऐसे दुःख के मूल शरीररूपी गृह की इच्छा मैंने त्यागदी है। यह परम दुःख देनेवाला है, इसकी इच्छा मुझको नहीं। हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष है उसमें तृष्णारूपी काकिनी आस्थित हुई है। जैसे काकिनी नीच पदार्थ के पास उड़ती है तैसेही तृष्णा भोग आदिक मलिन पदार्थों के पास उड़ती है। तृष्णा बन्दरी की नाईं शरीररूपी वृक्षको हिलाती है नहीं स्थिर होने देती और जैसे उन्मत्त हाथी कीच में फँसजाता है तब निकल नहीं सक्ता और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानरूपी मद से उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीचमें फँसाहै सो निकल नहीं सक्ता है पड़ाहुआ दुःख पाताहै। ऐसा दुःख पानेवाला शरीर है उसको मैं अङ्गीकार नहीं करता। हे मुनीश्वर! यह शरीर अस्थि, मांस, रुधिर से पूर्ण अपवित्र है। जैसे हाथी के कान सदा हिलते हैं तैसेही मृत्यु इसको हिलाताहै। कुछ कालका

विलम्ब है मृत्यु उसका ग्रासकरलेवेगा; इससे मैं इस शरीरको अङ्गीकार नहीं करता हूं। यह शरीर कृतघ्नहै। भोग भुगतता है और बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करता है परन्तु मृत्यु इसमें सखापन नहीं करता। जीव इसको अकेला छोड़कर परलोक जाताहै। जीव इसके सुखके निमित्त अनेकयत्न करता है परन्तु संगमें सदा नहीं रहता। ऐसे कृतघ्न शरीर को मैंने मनसे त्याग दिया है। हे मुनीश्वर! और आश्चर्य देखिये कि, यह उसीका भोग करता है पर उसके साथ नहीं चलता। जैसे धूलिसे मार्ग नहीं भासता तैसे ही यह जीव जब चलने लगताहै तब शरीर से क्षोभवान् होता और वासनारूपी धूलिसंयुक्त चलताहै परन्तु दीखता नहीं कि कहां गया। जब परलोक जाताहै तब बड़ाकष्ट होता है क्योंकि; शरीरके साथ इसने स्पर्शकियाहै। हे मुनीश्वर! जैसे जलकी बूंद पत्रके ऊपर क्षणमात्र रहती है तैसेही शरीर भी क्षणभंगहै। ऐसे शरीर में आस्थाकरनी मूर्खताहै और ऐसे शरीरके ऊपर उपकारकरना भी दुःखके निमित्तहै सुख कुछ नहीं। धनाढ्य इस शरीरसे बड़े भोग भोगते हैं और निर्द्धन थोड़े भोग भोगते हैं परन्तु जराअवस्था और मृत्यु दोनों को होती हैं इसमें विशेषता कुछ नहीं शरीरका उपकार करना और भोग भुगतना तृष्णाके कारण उलटा दुःखका कारण है। जैसे कोई नागिनि को घर में रखके दूध पिलावे तो अन्तमें वह उसे काटके मारेगी तैसेही जिस जीवने तृष्णारूपी नागिनी के साथ मित्रता की है वह मरेगा क्योंकि नाशवन्त है। इसके निमित्त भोग भुगतने का यत्नकरना मूर्खता है। जैसे पवन का वेग आता और जाता है तैसेही यह शरीर भी आता और जाता है इससे प्रीति करनी दुःखका कारण है। जैसे कोई विरलामृग मरुस्थल की आस्था त्यागता है और सब पड़े भ्रमते हैं तैसेही सब जीव इसकी आस्था में बाँधेहुये हैं इसका त्याग कोई विरलेही ने कियाहै। हे मुनीश्वर! बिजली और दीपकका प्रकाश भी आताजाता दीखता है परन्तु इस शरीरका आदि अन्त नहीं दीखता कि कहांसे आता है और कहांजाता है। जैसे समुद्र में बुद्बुदे उपजते और मिटजाते हैं उसकी आस्था करने से कुछ लाभ नहीं तैसेही

यह शरीर है इसकी आस्थाकरनी योग्य नहीं। यह अत्यन्त नाशरूप है स्थिर कदाचित् नहीं होता है। जैसे बिजली स्थिर नहीं होती तैसेही शरीरभी स्थिर नहीं रहता इसलिये इसकी मैं आस्था नहीं करता इसका अभिमान मैंने त्याग दिया है जैसे कोई सूखे तृण को त्यागदेता है तैसे मैंने अहंममता त्यागी है। हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को पुष्ट करना दुःख का निमित्त है। यह शरीर किसी अर्थ नहीं आता जलाने योग्यहै। जैसे लकड़ी जलाने के सिवाय और काम में नहीं आती तैसेही यह शरीर भी जड़ और गूंगा जलाने के अर्थ है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने काष्ठ-रूपी शरीर को ज्ञानाग्नि से जलाया है उसका परमअर्थ सिद्ध हुआ है और जिसने नहीं जलाया उसने परमदुःख पाया है। हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हूं, न मेरा शरीर है; न इसका मैं हूं, न यह मेरा है; अब मुझको कामना कोई नहीं मैं निराशी पुरुषहूं और शरीरसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे मैं परमपद पाऊं। हे मुनीश्वर! जिसपुरुषने शरीरका अभिमानत्यागाहै वह परमानन्दरूपहै और जिसको देहका अभिमान है वह परम दुखी है। जितने दुःख हैं वे शरीर के संयोग से होते हैं। मान—अपमान, जरा—मृत्यु; दम्भ—भ्रान्ति; मोह—शोक आदि सर्व विकार देह के संयोग से होते हैं जिनको देहमें अभिमान है उनको धिक्कार है और सब आपदा भी उन्हीं को प्राप्तहोती हैं। जैसे समुद्र में नदी प्रवेश करती है तैसेही देहाभिमान में सर्व आपदा प्रवेशकरती हैं। जिसको देहका अभिमान नहीं है वह मनुष्यों में उत्तम और वन्दना करनेके योग्यहै ऐसेको मेराभी नमस्कारहै और सर्वसम्पदा भी उसीको प्राप्तहोती हैं। जैसे मानसरोवर में सब हंस आय रहते हैं तैसेही जहां देहाभिमान नहीं रहा वहां सर्व सम्पदा आ रहती हैं। हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छाया में बालक वैताल कल्पताहै और उससे भयपाताहै पर जब उसको विचारकी प्राप्तिहोती है तब वैतालका अभाव होजाताहै तैसेही अज्ञान से मुझको अहङ्काररूपी पिशाच ने शरीर में दृढ़आस्था बताई है। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे अहङ्काररूपी पिशाच का

नाशहो और आस्थारूपी फाँसी टूटे। हे मुनीश्वर! प्रथम मुझको अज्ञान से अहङ्काररूपी पिशाच का संयोग था; उसके अनन्तर शरीर में आस्था उपजी। जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है—फिर अंकुर से वृक्ष होता है तैसे ही अहङ्कार से शरीर की आस्था होती है। हे मुनीश्वर! जैसे बालक छाया में वैताल देखकर दीनता को प्राप्त होता है तैसे ही अहङ्कारूपी पिशाच ने मुझको दीन किया है। वह अहङ्काररूपी पिशाच अविचार से सिद्ध है। जैसे प्रकाश से अन्धकार नाश होजाता है तैसेही विचार किये से अहङ्कार नाश होजाता है। हे मुनीश्वर! जिस शरीर में आस्था रक्खी है वह जल के प्रवाह की नाईं है स्थिर नहीं होता जैसे बिजली का चमकना स्थिर नहीं और गन्धर्व नगरी की आस्था व्यर्थ है तैसे ही शरीर की आस्था करनी व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! जो शरीर की आस्था करके अहङ्कार करते हैं और जगत् के पदार्थों के निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं। जैसे स्वप्न मिथ्या है तैसे ही यह जगत् मिथ्या है। जो उसको सत्य जानताहै वह अपने बन्धन के निमित्त यत्न करता है। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी अपने बन्धन के निमित्त गुफा बनाती है और पतंग अपने नाश के निमित्त दीपक की इच्छा करता है तैसे ही अज्ञानी को अपने देहका अभिमान और भोग की इच्छा अपने ही नाश के निमित्त है। हे मुनीश्वर! मैं तो इस शरीर को अङ्गीकार नहीं करता। इस शरीरका अभिमान परम दुःख देनेवाला है। जिसको देह का अभिमान नहीं रहा उसको भोग की इच्छा भी न रहैगी। इससे मैं निराश हूं और मुझे परमपद की इच्छा है जिसके पाये से फिर संसार समुद्र की प्राप्ति न हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्य वर्णनन्नामत्रयोदशस्सर्गः ॥ १३ ॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! इस जीव को संसार समुद्र में जन्म पाकर प्रथम बालअवस्था प्राप्त होती है वह भी परम दुःख का मूल है। उससे वह परमदीन हो जाता है और इतने अवगुण इसमें आ प्रवेश करते हैं

अर्थात् अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता, दुःख, संताप इतने विकार इसको प्राप्त होते हैं। यह बाल्यावस्था महाविकारवान् है। बालक पदार्थ की ओर धाता है और एक वस्तु का ग्रहणकर दूसरी को चाहता है स्थिर नहीं रहता फिर और में लगजाता है। जैसे वानर स्थिर नहीं बैठता और जो किसीपर क्रोध करता है तो भीतर से जलताहै। वह बड़ी बड़ी इच्छा करता है पर उसकी प्राप्ति नहीं होती सदा तृष्णा में रहता है और क्षण में भयभीत होजाता है शान्ति प्राप्त नहीं होती और जैसे कदलीवन का हाथी जंजीर से बँधा हुआ दीन हो जाता है तैसे ही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से दीन होजाता है वह जो कुछ, इच्छा करता है सो विचार बिना है उससे दुःख पाता है। यह मूढ़ गूंगी अवस्था है उससे कुछ सिद्धि नहीं होती और जो किसी पदार्थ की प्राप्ति होती है तो उसमें क्षणमात्र सुखी रहता है फिर तपने लगता है। जैसे तपती पृथ्वीपर जल डालिये तो एकक्षण शीतल होती है फिर उसी प्रकार से तपती है तैसे ही वह भी तपता रहता है। जैसे रात्रि के अन्त में सूर्य उदय होता है उससे उलूकादि कष्टवान् होते हैं तैसे ही इस जीव को स्वरूप के अज्ञान से बाल्यावस्था में कष्ट होता है। हे मुनीश्वर! जो बालक अवस्था की संगति करता है वह भी मूर्ख है क्योंकि; यह विवेक रहित अवस्था है और सदा अपवित्र है और सदा पदार्थ की ओर धावती है। ऐसी मूढ़ और दीन अवस्था की मुझको इच्छा नहीं इसमें जिस पदार्थ को देखता है उसकी ओर धाता है। जैसे कुत्ता क्षणक्षण में द्वार की ओर जाता है और अपमान पाता है तैसे ही बालक अपमान पाता है। बालक को माता, पिता, बान्धव और आपसे बड़े बालक पशु पक्षी का भी भय रहताहै। हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखरूप अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं। जैसे स्त्री के नयन और नदीका प्रवाह चञ्चलहै उससे भी मन और बालक चञ्चलहैं और सब चञ्चलता बालकसे कनिष्ठहैं। हे मुनीश्वर! जैसे वेश्या का चित्त एक पुरुष में नहीं ठहरता तैसेही बालक का चित्त एक पदार्थ में नहीं ठहरता और उसको यह विचार भी नहीं

होता कि, इस पदार्थसे मेरा नाश होगा वा कल्याण होगा बालक ऐसेही व्यर्थ चेष्टा करताहै, सदा दीन रहता है और सुख दुःख की इच्छासे तपायमान रहताहै। जैसे ज्येष्ठ अषाढ़में पृथ्वी तपायमान होतीहै तैसेही बालक तपता रहताहै शान्ति कदाचित् नहीं पाता। वह जब विद्यापढ़ने लगताहै तब गुरुसे ऐसे भयभीत होताहै जैसे कोई यमको देखके भयपावै और जैसे गरुड़को देख के सर्पडरे। जब शरीर में कोई कष्ट प्राप्तहोताहै तबभी वह बड़े दुःख को प्राप्त होता है और उस दुःख को निवारण नहीं करसक्ता और सहनेकी भी सामर्थ्य नहीं होती; भीतरही भीतर जलताहै और मुखसे कुछ बोल नहीं सक्ता। जैसे वृक्ष कुछ नहीं बोलसक्ता और जैसे तिर्यक् योनि दुःखपाती हैं, न कुछ कहसक्ती हैं न दुःखका निवारण करसक्ती हैं और न संहारही करसक्तीं भीतरही भीतर जलती हैं तैसेही बालक भी गूंगा और मूढ़ हुआ दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! ऐसी बालक अवस्था की स्तुति करनेवाला मूर्ख है। यह तो परम दुःखरूप अवस्थाहै। इसमें विवेक और विचारभी कुछ नहीं होता। बालक खानेको पाता है और रुदनकरता है। ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती। जैसे बिजली और जलके बुद्बुदे स्थिर नहीं रहते तैसेही बालक भी कदाचित् स्थिर नहीं रहता। हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है। इसमें कभी कहता है कि हे पितः! मुझको बरफका टुकड़ा भूनदे और कभी कहता है कि मुझको चन्द्रमा उतारदे। ये सब मूर्खता के वचन हैं इससे ऐसी मूर्खावस्था को मैं अङ्गीकार नहीं करता। जैसे दुःखका अनुभव बालक को होता है वह हमारे स्वप्ने में भी नहीं आया। यह बाल्यावस्था अवगुण का भूषण है और अवगुण से शोभित है। ऐसी नीच अवस्था को मैं अङ्गीकार नहीं करता। इसमें गुण कोई भी नहीं है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यबाल्यावस्था वर्णनन्नाम चतुर्दशस्सर्गः॥१४॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! दुःखरूप बाल्यावस्था के अनन्तर युवावस्था आती है सो नीचे से ऊंचे चढ़ती है वह भी उत्तम नहीं अधिक दुःखदायक है जब युवावस्था आती है तब कामरूपी पिशाच आ लगता

है। वह कामरूपी पिशाच युवावस्थारूपी गढ़े में आ स्थित होता है, चित्तको फिराता है और इच्छा पसारता है। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल खिल आता है और पंखुरियों को पसारता है तैसेही युवावस्थारूपी सूर्य उदयहोकर चित्तरूपी कमल और इच्छारूपी पंखुरी को पसारता है। फिर जैसे किसी को अग्नि के कुण्ड में डाल दिया हो और वह दुःख पावे तैसेही काम के वश हुआ दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! जो कुछ विकार हैं सो सब युवावस्था में प्राप्त होते हैं। जैसे धनवान् को देखके सब निर्द्धन धनकी आशा करते हैं तैसेही युवावस्था देखकर सब दोष इकट्ठे होते हैं। जो भोग को सुखरूप जानकर भोग की इच्छा करता है वह परम दुःख का कारण है। जैसे मद्यका घट भराहुआ देखनेमात्र सुन्दर लगता है परन्तु जब उसको पानकरै तब उन्मत्त होकर दीन होजाता है और निरादर पाता है तैसेही भोग देखने मात्र सुन्दर भासते हैं परन्तु जब इनको भोगता है तब तृष्णा से उन्मत्त और पराधीन होजाता है। हे मुनीश्वर यह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार आदि सब चोर युवारूपी रात्रि को देखकर लूटने लगते हैं और आत्मज्ञानरूपी धन को लेजाते हैं उससे जीव दीन होता है। आत्मानन्द के वियोग सेहीं जब दीन हुआ है। हे मुनीश्वर! ऐसी दुःख देनेवाली युवावस्था का मैं अङ्गीकार नहीं करता। शान्ति चित्त के स्थिर करने के लिये है पर युवावस्था में चित विषय की ओर धावता है। जैसे वारा लक्षकी ओर जाता है तब उसको विषयका संयोग होता है और वही विषयकी तृष्णा निवृत्त नहीं होती और तृष्णा के मारे जन्मसे जन्मान्तररूप दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखदायक युवावस्था की मुझको इच्छा नहीं है। हे मुनीश्वर! जैसे प्रलयकाल में सब दुःख आन स्थित होते हैं तैसेही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार, चपलता इत्यादिक सब दुःख युवावस्था में स्थिर होते हैं जो सब बिजली की चमकसे हैं होके मिट जाते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग होकर मिट जाते हैं तैसेही यह क्षण भङ्ग है और तैसेही युवावस्था होके

मिट जाती है। जैसे स्वप्न में कोई स्त्री विकार से छल जाती है तैसेही अज्ञान से युवावस्था छल जाती है। हे मुनीश्वर! युवावस्था जीवकी परमशत्रु है। जे पुरुष इस शत्रु के शस्त्र से बचे हैं वही धन्य हैं। इसके शस्त्र काम और क्रोध हैं जो इनसे छुटा वह वज्रके प्रहार से भी न छेदा जावेगा और जो इनसे बँधा हुआ है वह पशु है। हे मुनीश्वर! युवावस्था देखने में तो सुन्दर है परन्तु भीतरसे तृष्णासे जर्जरीभूत है। जैसे वृक्ष देखने में तो सुन्दर हो पर भीतर से घुन लगा हुआ हो तैसेही युवावस्था है जो भोगों के निमित्त यत्न करती है वे भोग आपातरमणीय हैं कारण यह कि, जबतक इन्द्रियां और विषय का संयोग है तबतक अविचार से भला लगता है और जब वियोग होता है तब दुःख होता है। इसलिये भोग करके मूर्ख प्रसन्न और उन्मत्त होते हैं उनको शान्ति नहीं होती भीतर सदा तृष्णा रहती है और स्त्री में चित्त की आसक्ति रहतीहै जब इष्ट वनिताका वियोगहोता है तबउसको स्मरण करके जलता है जैसे वनका वृक्ष अग्निसे जलता है तैसेही युवावस्थामें इष्टवियोग से जीव जलता है। जैसे उन्मत्त हस्ती जँजीर से बँधता तो स्थिर होता है कहीं जा नहीं सक्ता तैसेही कामरूपी हस्ती को जंजीररूपी युवावस्था बन्धन करती है। युवावस्थारूपी नदी है उसमें इच्छारूपी तरङ्ग उठते हैं वे कदाचित् शान्ति नहीं पाते। हे मुनीश्वर! यह युवावस्था बड़ी दुष्ट है। बड़े बुद्धिमान्, निर्मल और प्रसन्न पुरुषकी बुद्धिको भी मलिन कर डालती है। जैसे निर्मल जलकी बड़ी नदी वर्षाकाल में मलिन हो जाती है तैसेही युवावस्था में बुद्धि मलिन होजाती है। हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्षहै उसमें युवावस्थारूपी बल्ली प्रकट होती है सो पुष्ट होती जाती है तब चित्तरूपी भँवरा आ बैठता है और तृष्णारूपी उसकी सुगन्ध से उन्मत्त होता है और सब विचार भूल जाता है। जैसे जब प्रबल पवन चलता है तब सूखे पत्रों को उड़ा लेजाता है तैसेही युवावस्था वैराग्य, सन्तोषादिक गुणों का अभाव करती है दुःखरूपी कमलका युवावस्थारूपी सूर्य है उसके उदय से सब दुःख प्रफुल्लित हो आते हैं।

इससे सब दुःखों का मूल युवावस्था है। जैसे सूर्य के उदय से सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं तैसेही चित्तरूपी कमल संसाररूपी पँखुरी और सत्यतारूपी सुगन्धसे खिलआता है और तृष्णारूपी भँवरा उसपर आ बैठता और विषय की सुगन्धलेता है। हे मुनीश्वर! संसाररूपी रात्रि है उसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशते हैं अर्थात् शरीर युवावस्था से सुशोभित होता है। जैसे धान के छोटे वृक्ष हरे तब तक रहते हैं जब तक उसमें फल नहीं आया। जब फूल आता है तब वृक्ष सूखने लगते हैं और अन्न के कण परिपक्क होते हैं वृक्ष की हरियाली नहीं रह सक्ती तैसे ही जबतक जवानी नहीं आई तबतक शरीर सुन्दर कोमल रहता है जब जवानी आई तब शरीर क्रूर होजाता है और फिर परिपक्क होकर क्षीण और वृद्ध होता है। इससे हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखकी मूलरूप युवावस्थाकी मुझको इच्छा नहीं। जैसे समुद्र बड़े जल से तरङ्गों को पसारता और उछालता है तो भी मर्यादा नहीं त्याग करता क्योंकि; ईश्वर की आज्ञा मर्यादा में रहने की है और युवावस्था तो ऐसी है कि शास्त्र और लोक की मर्यादा मेटके चलती है और उसको अपना विचार नहीं रहता। जैसे अन्धकारमें पदार्थ का ज्ञान नहीं होता तैसेही युवावस्थामें शुभाशुभ का त्याग नहीं होता। जिसको विचार नहीं रहा उसको शान्ति कहां से हो; वह सदा व्याधि ताप में जलता रहता है। जैसे जल विना मच्छ को शान्ति नहीं होती तैसेही विचार विना पुरुष सदा जलता रहता है। जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आके गर्जता है और यही सङ्कल्प उठते हैं कि, कोई कामी पुरुष आवे तो उसके साथ मैं यही चर्चा करूं कि हे मित्र! यह स्त्री कैसी सुन्दर है और उसके कैसे कटाक्ष हैं। वह किसप्रकार मुझको प्राप्त हो? हे मुनीश्वर! इस इच्छासे वह सदा जलताही रहता है। जैसे मरुस्थल की नदी को देख मृग दौड़ता है और जल की अप्राप्ति से जलता है तैसेही कामीपुरुष विषयकी वासना से जलता है और शान्ति नहीं पाता। हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तम है परन्तु जिनके अभाग्य हैं उनको विषय से आत्मपद की प्राप्ति

नहीं होती। जैसे किसी को चिन्तामणि प्राप्तहो और वह उसका निरादर करे उसका गुन न जानकर डालदे तैसेही जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया वह बड़ा अभागी है और मूर्खता से अपने जन्म को व्यर्थ खोडालता है वह युवावस्थामें परमदुःख का क्षेत्र अपने निमित्त बोता है और मान, मोह, मद इत्यादि विकारों से पुरुषार्थ का नाश करता है। हे मुनीश्वर! युवावस्था ऐसे बड़े विकारोंको प्राप्त करती है। जैसे नदी वायु से अनेक तरङ्ग पसारती है तैसेही युवावस्था चित्त के अनेक कामों को उठाती है। जैसे पक्षी पंख से बहुत उड़ता है और जैसे सिंह भुजा के बलसे पशु को मारने दौड़ता है तैसेही चित्त युवावस्था से विक्षेपकी ओर धावता है। हे मुनीश्वर! समुद्र का तरना कठिन है क्योंकि; उसमें जल अथाह है, उसका विस्तार भी बड़ा है और उसमें कच्छ मच्छ मगर भी बड़े देहधारी जीव रहते हैं पर मैं उसका तरना भी सुगम मानता हूं परन्तु युवावस्था का तरना महाकठिन है अर्थात् युवावस्था में निर्दोष रहना कठिन है। ऐसी सङ्कटवाली युवावस्था में जो चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य हैं और बन्दना करने योग्य हैं। हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्त को मलीन कर डालती है। जैसे जल की बावली के निकट राख और कांटे हों और पवन चलनेसे सब आ बावली में गिरें तैसेही पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूर और कांटों को चित्तरूपी बावली में डालके मलीन करदेती है। ऐसे अवगुणों से पूर्ण युवावस्थाकी इच्छा मुझको नहीं है। युवावस्था मुझपर यही कृपाकर कि तेरा दर्शन न हो। तेरा आना मैं दुःख का कारण मानता हूं। जैसे पुत्र के मरण का सङ्कट पिता नहीं सहसक्ता और सुख का निमित्त नहीं देखता तैसेही तेरा आना मैं सुखका निमित्त नहीं देखता। इससे मुझपर दयाकर कि, अपना दर्शन न दे। हे मुनीश्वर! युवावस्था का तरना महाकठिन है। यौवनवान् नम्रता संयुक्त नहीं होते और शास्त्र के गुण वैराग्य, विचार, संतोष और शान्ति इनसे भी सम्पन्न नहीं हैं। जैसे आकाश में वन होना आश्चर्य है तैसेही युवावस्था में वैराग्य, विचार,

शान्ति और संतोष होना भी बड़ा आश्चर्य है। इससे आप मुझसे वही उपाय कहिये जिससे युवावस्था के दुःख की मुक्ति होकर आत्मपद की प्राप्ति हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुड़ीवर्णनन्नाम पञ्चदशस्सर्गः॥ १५॥

रामजी बोले हे मुनीश्वर! जिस कामविलास के निमित्त पुरुष स्त्री की वाञ्छा करता है वह स्त्री अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र और विष्ठासे पूर्ण है और इन्हीं की पुतली बनीहुई है। जैसे यन्त्री की बनी पुतली तागे के द्वारा अनेक चेष्टा करती है वैसे ही यह अस्थि, मांसादिक की पुतलीमें कुछ और नहीं है। जो विचार से नहीं देखता उसको रमणीक दिखती है। जैसे पर्वतके शिखर दूर से सुन्दर और गङ्गमाला सहित भासते हैं और निकटसे असार हैं – पत्थरही पत्थर दिखते हैं तैसेही स्त्री वस्त्र और भूषण से सुन्दर भासती है और जो अङ्ग को भिन्न भिन्न विचार कर देखो तो सार कुछ नहीं। जैसे नागिनिके अङ्ग बहुत कोमल होते हैं परन्तु उसका स्पर्श करे तो काटके मारडालती है तैसेही जो कोई स्त्रीको स्पर्श करते हैं उनको वह नाश करडालती है। जैसे विषकी बेल देखनेमात्र सुन्दर लगती है परन्तु स्पर्श किये से मारडालती है और जैसे हाथी को जंजीर से बांधे तो जिस द्वारपै रहता है वहांही स्थिर रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्तरूपी हाथी कामरूपी जंजीरसे बँधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थान में स्थिर रहता है वहां से कहीं जा नहीं सक्ता। जब हाथी को महावत अंकुश का प्रहार करता है तब भी वह बन्धन को तोड़के निकलजाता है तैसेही इस चित्तरूपी मूर्ख हाथीको जब महावतरूपी गुरु उपदेशरूपी अंकुशका वारंवार प्रहार करता है तब निर्बन्ध होजाता है। हे मुनीश्वर! कामी पुरुष स्त्रीकी वाञ्छा अपने नाशके निमित्त करता है। जैसे कदलीवन का हाथी कागद की हथिनी देखकर और छल पाके बन्धन में आता है और उससे परम दुःख पाता है तैसेही परमदुःखका मूल स्त्रीका सङ्ग है। हे मुनीश्वर! जैसे वनके दाह की अग्नि वनको जलाती है

तैसेही स्त्रीरूपी अग्नि उससे भी अधिक है क्योंकि; उस अग्निके स्पर्श किये से तप्त होती है और स्त्रीरूपी अग्नि तो स्मरणमात्रसेही जलाती है। जो सुख रमणीय दिखताहै वह आपातरमणीय है; जब स्त्री सुखका वियोग होता है तब मुरदेकी नाईं होजाताहै—हे मुनीश्वर! यह तो अस्थि, मांस और रुधिर का पिंजराहै सो अग्निमें भस्म होजायगा अथवा पशु पक्षीके खाने का आहार होगा और प्राण आकाशमें लीन होजावेंगे—इससे इस स्त्री की इच्छा करनी मूर्खताहै। जैसे अग्निकी ज्वालाके ऊपर श्यामता होती है तैसेही स्त्रीके शीशके ऊपर श्याम केशहैं और जैसे अग्निके स्पर्श किये से जलताहै तैसेही स्त्रीके स्पर्श करनेसे पुरुष जलताहै इससे जलना दोनों में तुल्यहै। हे मुनीश्वर! युवावस्था को नाश करनेवाली स्त्रीरूपी अग्नि है। जो स्त्री की इच्छा करते हैं वह महामूर्ख और अज्ञानी हैं। वह स्त्री की इच्छा अपने नाश के निमित्त करते हैं। जैसे पतङ्ग अपने नाश के निमित्त दीपककी इच्छा करता है तैसेही कामी पुरुष अपने नाश के निमित्त स्त्री की इच्छा करता है। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी विष की वल्ली है, हाथ पांव के अग्रभाग उसके पत्र हैं, भुजा डाली हैं, अस्थिरूप गुच्छे हैं और नेत्र आदिक इन्द्रियां फूल हैं उसपर कामी पुरुषरूपी भँवरे आ बैठते हैं। कामरूपी धीवर ने स्त्रीरूपी जाल पसारा है उसपर कामी पुरुषरूपी पक्षी आफँसते हैं। कामरूपी धीवर उनको फँसाकर परमकष्ट देता है। ऐसे दुःख को देनेवाली स्त्री की जो वाञ्छा करते हैं वह महा-मूर्ख हैं। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी सर्पिणी है जब उसका फूत्कार निकलता है तब वैराग्यरूपी कमल जल जाते हैं और जब सर्पिणी डसती है तब विष चढ़ता है। स्त्रीरूपी सर्पिणी का चिन्तन करतेही भीतर से आपही विष चढ़जाता है। हे मुनीश्वर! जैसे व्याधा छलकर मछली को फँ-साता है तैसेही कामीपुरुष छली के सदृश सुन्दर स्त्रीरूपी जाल देख के फँसता है और स्नेहरूपी तागे से बन्धन पा खैंचा चला जाता है, तब तृष्णारूपी छुरी से काम उसे मारडालता है। हे मुनीश्वर! ऐसे दुःख के देनेवाली स्त्री की मुझको इच्छा नहीं। कामरूपी व्याध रागरूपी इन्द्रियों

से जाल बिछा कामीपुरुषरूपी मृगों को आसक्त करडाला है। स्त्री की स्नेहरूपी डोरी है उससे कामीपुरुषरूप बैल बँधा है और स्त्री का मुखरूपी चन्द्रमा देखकर कामीपुरुषरूपी कमलिनी खिल आती हैं। जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होते हैं और सूर्यमुखी नहीं होते तैसेही कामीपुरुष भोग से प्रसन्न होते हैं और ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते। जैसे नेवला सर्प को बिल से निकाल के मारता है तैसेही कामीपुरुष को स्त्री आत्मानन्द में से निकाल के मारडालती है। पुरुष जब स्त्री के निकट जाता है तब वह उसको भस्म करडालती है। जैसे सूखे तृण और घृतको अग्नि भस्म करडालती है तैसेही कामी पुरुषको स्त्रीरूपी नागिनि भस्म कर डालती है। हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी रात्रि का स्नेहरूपी अन्धकार है और काम, क्रोधादिक उसमें उलूक और पिशाच हैं। हे मुनीश्वर! जो स्त्रीरूपी खड्ग के प्रहार से युवारूपी संग्राम में बचा है वह पुरुष धन्य है; उसको मेरा नमस्कार है। स्त्री का संयोग परमदुःख का कारण है इससे मुझको इसकी इच्छा नहीं। हे मुनीश्वर! जो रोग होता है उसीके अनुसार जो औषध करता है तो रोग निवृत्त होता है और कुपथ्य से उसका प्रलय होता है और रोग बढ़जाता है इससे मेरे रोगके अनुसार औषध करो। मेरा रोग सुनिये कि, जरा और मृत्यु मुझको बड़ा रोग है। उसके नाशकी औषध मुझको दीजिये स्त्री आदिक सब भोग तो रोग के वृद्धिकर्त्ता हैं। जैसे अग्नि में घृत डालिये तो बढ़जाती है तैसेही भोगसे जरा मृत्यु आदि रोग बढ़ते हैं। इससे इस रोग के निवृत्ति की औषध करो नहीं तो सबका त्याग कर मैं वन में जा रहूंगा। हे मुनीश्वर! जिसके स्त्री है उसको भोगकी इच्छा भी होती है और जिसके स्त्री नहीं होती उसको स्त्री की इच्छा भी नहीं। जिसने स्त्रीका त्याग किया है उसने संसार का भी त्याग किया है और वही सुखी है। संसार का बीज स्त्री है इससे मुझको स्त्री की इच्छा नहीं। मुझको वही औषध दीजिये जिससे जरा मृत्यु आदि रोग की निवृत्ति हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेवैराग्यप्रकरणेस्त्रीदुराशावर्णननामषोडशस्सर्गः॥१६॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! बालक अवस्था तो महाजड़ और अशक्त है। जब युवावस्था आती है तब बाल्यावस्था का ग्रहण करलेती है और उसके अनन्तर जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत होजाता है और बुद्धि क्षीण होजाती है फिर मृत्यु पाता है। हे मुनीश्वर! इसप्रकार अज्ञानी का जीना व्यर्थ है कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं। जैसे नदी के तटपर के वृक्ष जल के प्रवाहसे जर्जरीभूत होजाते हैं तैसेही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभूत होजाता है जैसे पवन से पत्र उड़जाते हैं तैसेही वृद्धावस्था में शरीर नाश पाता है। जितने कुछ रोग हैं वह सब वृद्धावस्था में आ प्राप्त होते हैं और शरीर कृश होजाता है उस समय स्त्री, पुत्रादिक भी सब वृद्धका त्याग करदेते हैं। जैसे पके फलको वृक्ष त्याग देता है तैसेही वृद्धको कुटुम्ब त्याग देताहै और जैसे बावले को देख के सब हँसके बोलते हैं कि, इसकी बुद्धि जातीरही तैसेही इसको भी देखके हँसते हैं जैसे कमल का फूल बरफ पड़ने से जर्जरीभूत होजाता है तैसेही जरावस्था में पुरुष जर्जरीभाव को प्राप्त होता है, शरीर कुबड़ा होजाता है; केश श्वेत होजाते हैं और शक्ति क्षीण होजाती है। जैसे चिरकाल के बड़े वृक्ष में घुन लगता है तैसेही इसमें कुछ शक्ति नहीं रहती। हे मुनीश्वर! और भी सब कृत्य क्षीण होजातीहै परन्तु एक आसक्तिमात्र रहती है। जैसे बड़े वृक्षपर उलूक आ रहते हैं तैसेही इसमें क्रोधशक्ति आरहती है और सब शक्तियाँ क्षीण होजाती हैं। हे मुनीश्वर! जरावस्था दुःख का घरहै। जब जरावस्था आती है तबसब दुःखइकट्ठे होतेहैं उनसे पुरुष महादीन होजाते हैं। युवावस्था का जो काम का बल रहता है सो भी जरा में क्षीण होजाता है, इन्द्रियोंकी आसक्ति घटजाती है और उनकी चपलता का अभाव होजाता है। जैसे पिता के निर्द्धन हुये पुत्र दीन होजाता है तैसेही शरीर के निर्बलहुये इन्द्रियां भी निर्बल होजाती हैं केवल एक तृष्णा उन्मत्त हो बढ़जाती है। हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रि आती है तब खांसीरूपी स्यार आ शब्द करते हैं और आधिव्याधिरूपी उलूक आनिवास करते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसी नीच वृद्धावस्थाकी मुझको इच्छा

नहीं जैसे फलसे वृक्ष झुकजाताहै तैसेही बुढ़ापे से देह कुबड़ी हो जाती है युवावस्था में स्त्री पुत्रादिक उसकी टहल करते थे पर वही सब उसको वृद्धावस्था में जैसे वृद्ध बैलको बैलवाला त्याग देता है तैसेही त्याग देते हैं, देखके हँसते हैं और अपमान करते हैं। उनको वह तब ऊंटकी नाईं भासता है। हे मुनीश्वर! ऐसी नीच अवस्था की मुझको इच्छा नहीं। अब जो कुछ कर्त्तव्य हो मुझसे कहिये मैं करूं? इस शरीरकी तीनों अवस्था में कोई सुखदायी नहीं क्योंकि; बाल्यावस्था महामूढ़ है, युवावस्था महाविकारवान् है और जरावस्था महादुःख का पात्र है। बाल्यावस्था को युवावस्था ग्रास करलेती है; युवावस्था को जरावस्था ग्रास कर लेती है और जरावस्था को मृत्यु ग्रास करलेती है। यह अवस्था सब अल्पकालकी हैं इनके आश्रयसे मुझको क्या सुख होगा? इससे आप मुझे वही उपाय बताइये जिससे इस दुःख से मुक्त होजाऊं। हे मुनीश्वर! जब जरावस्था आती है तब मरना भी निकट आता है। जैसे सन्ध्याके आये रात्रि तत्काल आजाती है और जो सन्ध्याके आये दिनकी इच्छा करते हैं वह मूर्ख हैं तैसेही जराके आये जीनेकी आशा रखनी महामूर्खता है। हे मुनीश्वर! जैसे बिल्ली चिन्तन करती है कि, चूहा आवे तो पकड़ लूं तैसेही मृत्यु भी चितवती है कि, जरावस्था आवै तो मैं इसका ग्रहण करलूं। हे मुनीश्वर! यह परम नीच अवस्था है। यह जब आती है तब शरीर को जर्जरीभूत करदेती है; कँपाने लगती है और शरीर को निर्बल और क्रूर करदेतीहै। जैसे कमल पर बरफ की वर्षा हो और वह जर्जरीभूत होजाय तैसेही यह शरीर को जर्जरीभूत कर डालती है। जैसे वन में बाघ आके शब्द करते हैं और मृग का नाश करते हैं तैसेही खांसीरूपी बाघ आ मृगरूपी बल का नाश करते हैं। हे मुनीश्वर! जब जरा आती है तब जैसे चन्द्रमा के उदय से कमलिनी खिल आती है तैसेही मृत्यु प्रसन्न होती है। यह जरावस्था बड़ी दुष्टा है; इसने बड़े बड़े योधों को भी दीन करदिया है। यद्यपि बड़े २ शूर संग्राम में शत्रुओं को जीतते हैं पर उनको भी जरा ने जीतलिया है। जो बड़े बड़े पर्वतों को चूर्णकर डालते हैं उनको भी जरा पिशाचिनी ने महादीन कर

दिया है। इस जरारूपी राक्षसी ने सबको दीन करदिया है। यह सबको जीतनेवाली है । हे मुनीश्वर! जैसे वृक्ष में अग्नि लगती और उसमें से धूम निकलता है। तैसेही शरीररूपी वृक्ष में से जरारूपी अग्नि लगके तृष्णारूपी धुवां निकलता है। जैसे डिब्बे में बड़े रत्न रहते हैं। तैसेही जरारूपी डिब्बे में दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं। जरारूपी वसन्तऋतु है; उससे शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रस से होता है। जैसे हाथी जंजीर से बँधा हुआ दीन होजाता है तैसेही जरारूपी जंजीर से बँधा पुरुष दीन होजाता है, उसके अङ्ग सब शिथिल होजाते हैं, बल क्षीण होजाता; इन्द्रियां भी निर्बल होजाती हैं और शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है परन्तु तृष्णा नहीं घटती वह तो नित्य बढ़तीही चली जाती है जैसे रात्रि आती है तब सूर्यवंशी कमल सब मुँदजाते हैं और पिशाचिनी आ विचरने लगती है और प्रसन्न होती है तैसेही जरारूपी रात्रि के आये से सब शक्तिरूप कमल मुँदजाते हैं और तृष्णारूपी पिशाचिनी प्रसन्न होती है। हे मुनीश्वर! जैसे गङ्गातट के वृक्ष गङ्गाजल के वेग से जर्जरीभूत होजाते हैं तैसेही जो यह आयुरूपी प्रवाह चलता है उसके वेग से शरीर जर्जरीभूत होजाता है। जैसे मांसके टुकड़े को देख आकाश से उड़ती चील नीचे आ लेजाती है तैसेही जरावस्था में शरीररूपी मांस को काल लेजाता है। हे मुनीश्वर! यह तो काल का ग्रास बना हुआ है। जैसे वृक्ष को हाथी खाजाता है तैसे जरावाले शरीर को काल देखके खाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्थानिरूपणं नामसप्त दशस्सर्गः॥ १७॥

रामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढ़ा है उसमें अज्ञानी गिरा है पर संसाररूपी गढ़ा तो अल्प है और अज्ञानी बड़ा होगया है। संकल्प, विकल्प की आधिक्यता से बढ़ा है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह संसार को मिथ्या जानता है और संसाररूपी जाल में नहीं फँसता और जो अज्ञानी पुरुष है वह संसार को सत्य जान कर उसकी आस्थारूपी जाल में फँसता है और भोग की वाञ्छा करता है वह भौंरा ऐसे हैं जैसे

दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर बालक पकड़ने की इच्छा करता है तैसे अज्ञानी संसार को सत्य जानकर जगत् के पदार्थ की वाञ्छा करता है कि, यह मुझे प्राप्त हो और यह न हो। यह सब सुख नाशात्मक हैं अभिप्राय यह कि, आते हैं और जाते हैं स्थिर नहीं रहते; इनको काल ग्रास करता है जैसे पके अनार को चूहा खाजाता है तैसेही सब पदार्थों को काल खाता है। हे मुनीश्वर ! यह सब पदार्थ कालग्रसित हैं जैसे नेवला सर्प को भक्षण करजाता है तैसेही बड़े बड़े बली सुमेरु ऐसे गम्भीर पुरुषों को कालने ग्रसित किया है। जगत्रूपी एक गूलर का फल है; उसमें मज्जा ब्रह्मादिक हैं और उसका वन ब्रह्मरूप है। उस ब्रह्मरूप वन में जितने वन हैं सो सब इसका आहार हैं। यह काल सबको भक्षण कर जाता है। हे मुनीश्वर ! यह काल बड़ा बलिष्ठ है; जो कुछ देखने में आता है सो सब इसने ग्रास करलिया है तो और का क्या कहना है और हमारे जो बड़े ब्रह्मादिक हैं उनका भी काल ग्रास करजाता है। जैसे मृगका ग्रास सिंह कर लेता है काल किसी से जाना नहीं जाता क्षण, घरी, प्रहर, दिन, मास और वर्षादिक से जानिये सोई काल है और काल की मूर्ति प्रकट नहीं है। यह किसी को स्थित नहीं होने देता। एक बेलि काल ने पसारी है उसकी त्वचा रात्रि है और फूल दिन है और जीवरूपी भौंरे उस पर आ बैठते हैं। हे मुनीश्वर ! जगत्रूपी गूलर का फूल है उसमें जीवरूपी बहुत मच्छर रहते हैं। जैसे तोता अनार का भक्षण करता है तैसेही काल उस फूल का भक्षण करता है। जगत्रूपी वृक्षहै; जीवरूपी उसके पत्र हैं और कालरूपी हस्ती उसका भक्षण करजाता है। शुभ अशुभरूपी भैंसे को कालरूपी सिंह छेद छेदके खाता है। हे मुनीश्वर ! यह काल महाक्रूर है; किसीपर दया नहीं करता; सबका भोजन करजाता है। जैसे मृग सब कमलों को खाय जाता है उससे कोई नहीं बचता तैसेही काल भी सबको खाता है परन्तु एक कमल बचा है। उस कमल के शान्ति और मैत्री अंकुर हैं और चेतनामात्र प्रकाश है इसकारण वह बचा है कालरूपी मृग इस तक नहीं पहुँच सक्ता

बल्कि इसमें प्राप्त हुआ काल भी लीन होजाता है। जो कुछ प्रपञ्च हैं सो सब काल के मुख में हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर आदि सब मूर्ति काल की धरीहुई हैं। यह उनको भी अन्तर्द्धान करदेता है। हे मुनी-श्वर! उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब काल से होते हैं। अनेक बेर इसने महाकल्प का भी ग्रास किया है और अनेक बेर करेगा। कालको भोजन किये से तृप्ति कदाचित् नहीं होती और कदाचित् होनेवाली भी नहीं। जैसे अग्नि घृत की आहुति से तृप्त नहीं होता तैसेही जगत् और सब ब्रह्माण्ड का भोजन करके भी काल तृप्त नहीं होता। इसका ऐसा स्व-भाव है कि, इन्द्र को दरिद्री करदेता है और दरिद्री को इन्द्र करदेता है; सुमेरु को राई बनाता है और राई को सुमेरु करता है, सबसे बड़े ऐश्व-र्य्यवान् को नीच कर डालता है और सबसे नीच को ऊंच करडालता और बूंदको समुद्र करडालताहै और समुद्रको बूंद करताहै। ऐसीशक्ति काल में है। यह जीवरूपी मच्छरों को शुभाशुभ कर्मरूपी छुरे से छेदता रहता है। कालकूप का चक्र जीवरूपी हँड़िया को शुभ अशुभ कर्मरूपी रस्सी से बांधकर फिराता है और जीवरूपी वृक्षको रात्रि और दिनरूपी कुल्हाड़े से छेदता है। हे मुनीश्वर! जितना कुछ जगत् विलास भासता है काल सबका ग्रहण करलेगा। जीवरूपी रत्न का काल डब्बा है सो सबको अपने उदर में डालता जाता है। काल यों खेल करता है कि चन्द्र, सूर्यरूपी गेंदों को कभी ऊर्ध्व को उछालता है और कभी नीचे डालता है। जो महापुरुष है वह उत्पत्ति और प्रलय के पदार्थों में से किसी के साथ स्नेह नहीं करता और उसका काल भी नाश नहीं करसक्ता। जैसे मुण्ड की माला महादेवजी गले में धारे हैं तैसेही यह भी जीवों की माला गले में डालता है। हे मुनीश्वर! जो बड़े बड़े बलिष्ठ हैं उनका भी काल ग्रहण करलेता है। जैसे समुद्र बड़ा है उसको बड़वानल पान करलेता है और जैसे पवन भोजपत्र को उड़ाता है वैसाही काल का भी बल है, किसी की सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थित रहै। हे मुनीश्वर! शान्तिगुण प्रधान देवता, रजोगुण प्रधान बड़े राजा और तमोगुण प्रधान दैत्य और

राक्षस हैं उनमें किसी को सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थितहों। जैसे तौली में अन्न और जल भरके अग्नि पर चढ़ा देने से अन्न उछलता है और वह अन्न के दाने करछी से कभी ऊपर और कभी नीचे फिरजाते हैं तैसेही जीवरूपी अन्न के दाने जगत्‌रूपी तौली में पड़ेहुये रागद्वेषरूपी अग्नि पर चढ़े हैं और कर्मरूपी करछी से कभी ऊपर जाते हैं और कभी नीचे आते हैं। हे मुनीश्वर ! यह काल किसी को स्थिर नहीं होने देता यह महाकठोर है दया किसी पर नहीं करता। इसका भय मुझ को रहता है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे मैं काल से निर्भय होजाऊं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालनिरूपणन्नामाष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर ! यह काल बड़ा बलिष्ठ है। जैसे राजा के पुत्र शिकार खेलने जाते हैं तो वन में बड़े पशु पक्षी उनसे खेद पाते हैं तैसेही यह संसाररूपी वन है उसमें प्राणीमात्र पशु पक्षी हैं। जब कालरूपी राजपुत्र उसमें शिकार खेलने आता है तब सब जीव भय पाते हैं और जर्जरीभूत होते हैं और वह उनको मारता है। हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है सबका ग्रास करलेता है। प्रलय में सबका प्रलय कर-डालता है और इसकी जो चण्डिका शक्ति है उसका बड़ा उदर है। वह कालिका सबका ग्रास करके पीछे नृत्य करती है। जैसे वनके मृग को सिंह और सिंहनी भोजन करके नृत्य करते हैं तैसेही जगत्‌रूपी वन में जीवरूपी मृग को भोजन करके काल और कालिका नृत्य करते हैं। फिर इन्हींसे जगत् का प्रादुर्भाव होता है। नानाप्रकार के पदार्थों को रचते हैं और पृथ्वी, बगीचे, बावली आदि सब पदार्थ इनहीं से उत्पन्न होते हैं। सुन्दर जीवों की उत्पत्ति भी इनसे होती है और एक समय में उनका नाश भी करदेती है। सुन्दर समुद्र रचके फिर उनमें अग्नि लगा देती है और सुन्दर कमल को बनाके फिर उसके ऊपर बरफ की वर्षा करती है। जहां बड़े बड़े स्थान बसते हैं उनको उजाड़ डालती है और फिर उजाड़ में बस्ती करती है और नाश भी करती है; स्थिर रहने किसी को नहीं देती। जैसे बाग में वानर आके वृक्षको ठहरने नहीं

देता तैसेही कालरूपी वानर किसी पदार्थ को स्थिर रहने नहीं देता। हे मुनीश्वर ! इसप्रकार से सब पदार्थ काल से जर्जरीभूत होते हैं। उनका आश्रय मैं किस रीति से करूं ? मुझको तो यह सब नाशरूप भासता है इससे अब मुझ को किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः ॥ १९ ॥

रामजी बोले कि, हे मुनीश्वर ! इस काल का महापराक्रम है। इसके तेज के सन्मुखकोई नहीं रहसक्ता यह क्षण में ऊंचकोनीच औरनीचको ऊंच करडालता है। उसका निवारण कोई नहीं करसक्ता सब उसी के भय से काँपते हैं। यह महाभैरव है सब विश्व का ग्रास करलेता है। इसकी चण्डिकारूप शक्ति है वह अति बलवान् है और नदीरूप है उसका उल्लंघन कोई नहीं करसक्ता। महाकालरूप काली है उसका बड़ा भयानक आकार है। कालरूप जो रुद्र है उससे अभिन्नरूपी कालिका है वह सबका पान करके पीछे भैरव और भैरवी नृत्य करते हैं। उसकाल और कालिका का बड़ा आकार है। उसका आकाश शीश, पाताल में चरण हैं और दशों दिशा भुजा हैं। सप्त समुद्र उसके हाथ में कङ्कण हैं; सम्पूर्ण पृथ्वीरूप उसके हाथ में पात्र है; और उसपर जो जीव हैं वह भोजन योग्य हैं। हिमालय और सुमेरु पर्वत दोनों कानों में कुण्डल हैं; चन्द्रमा और सूर्य उसके दोनों लोचन हैं और सब तारागण उसके मस्तक में बिन्दु हैं। काल के हाथ में त्रिशूल और मूसल आदि शस्त्र हैं और कालिका के हाथ में तन्द्रारूपी फांसी है उससे जीवों को मारती है। ऐसी कालिका देवी सब जीवों का ग्रास करके महाभैरव के आगे नृत्य करती है, अट्टाट्टशब्द करती है और जीवों को भोजन करके उनकी मुण्डमाला गले में धारण करती है। भैरव जिनके सन्मुख रहने की किसी में शक्ति नहीं जहां उजाड़ है वहां क्षण में बस्ती करडालता है और जहां बस्ती है वहां क्षण में उजाड़ करता है। इसीसे उसका नाम देव कहते हैं। वह बड़े बड़े पदार्थों का उत्पन्न और नाश करता है स्थिर किसी को

रहने नहीं देता इससे इसका नाम कृतान्त है और नित्यरूप भी यही है क्योंकि; परिणाम जिसका अनित्यरूप है इसीसे इसका नाम कर्म है। जब अभावरूपी धनुष हाथ में धरता है तो उससे राग द्वेषरूपी बाण चलाता है और उस बाण से जर्जरीभूत करके नाश करता है। जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाता है और उठाकर नाश भी करदेता है तैसेही कालको उपजाने और नाश करने में कुछ यत्न नहीं करनापड़ता। हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर है और उसने क्रियारूपी जाल पसारा है। उसमें जीवरूपी पक्षी फँसते हैं सो फँसेहुये शान्ति नहीं पाते। हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करूं कि जिसमें सुख हो। यह तो स्थावर जङ्गम जगत् सब काल के मुख में है यह सब नाश-रूप मुझको दृष्टि आवैं हैं इससे जो निर्भय पद होय सो मुझ को कहिये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालजुगुप्सावर्णन-
न्नामविंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूपहैं तोमैं किसकी इच्छाकरूं और किसका आश्रयकरूं? इनकी इच्छा करनी मूर्खता है। जितनी चेष्टा अज्ञानी करता है वह सब दुःखके निमित्त है और जीने में अर्थ की सिद्धि कुछ नहीं है क्योंकि; बालक अवस्था में मूढ़ता रहतीहै, कुछ विचार नहीं रहता। जब युवावस्था आती है तब मूर्खता से विषय को सेवताहै और मान मोहादि विकारोंसे मोहाजाता है उसमें भी कुछ विचार नहीं होता और स्थिर भी नहीं रहता दीनका दीन रह के विषय की तृष्णा करताहै शान्ति नहीं पाता। हे मुनीश्वर ! आयुष्य महाचञ्चलहै और मृत्यु तो निकटहै उसमें अन्यथा भाव नहीं होता। हे मुनीश्वर ! जितने भोगहैं वे रोगहैं, जिसको सम्पदा जानतेहैं वह आपदा है, जिसको सत्य कहते हैं वह असत्यरूपहै, जिन स्त्री, पुत्रादिकों को मित्र जानतेहैं वह सब बन्धन के कर्त्ता हैं और इन्द्रियां महाशत्रुरूपहैं। वह सब मृगतृष्णा के जलवत्हैं, यह देह विकाररूपहै, मन महाचञ्चल और सदा अशान्तरूप है और अहङ्कार महानीच है इसनेही दीनता को

प्राप्त कियाहै। इससे जितने पदार्थ इसको सुखदायक भासतेहैं वह सब दुःखके देनेवालेहैं इससे कदाचित् शान्ति नहीं होती। इससे मुझको इन की इच्छा नहीं। यद्यपि यह देखनेमात्र सुन्दर भासतेहैं पर इनमें सुख कुछ नहीं और स्थिर न रहेंगे। जैसे समुद्र में नानाप्रकार के तरङ्ग भासते हैं पर वह सब वड़वाग्नि से नाश होतेहैं तैसेही यह पदार्थ भी नाश होजातेहैं। मैं अपनी आयु में कैसे आस्था करूं? हे मुनीश्वर! बड़े समुद्र, सुमेरु, राक्षस, दैत्य, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, अग्नि, पवन, यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, ध्रुव, चन्द्रमा और बड़े ईश्वर जगत् के कर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और काल जो सबको भक्षणकरताहै, कालकी स्त्री, सब का आधार आकाश और जितना जगत् है यह सब नष्ट होजावेंगे तो हमारी कौन गिनतीहै। हम किसकी आस्थाकरें और किसका आश्रय करें? यह सब जगत् भ्रममात्रहै; अज्ञानी की इसमें आस्था होतीहै और हमारी नहीं कि, जगत् भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ है। मैं इतना जानता हूं कि, संसार में जीव को इतना दुःखी अहङ्कार ने कियाहै। हे मुनीश्वर! यह जीव अपने परमशत्रु अहङ्कारसे भटकता फिरताहै। जैसे रस्सीसे बँधेहुये पतङ्ग कभी ऊर्ध्व और कभीनीचे जातेहैं स्थिर कभी नहींरहते—तैसेही जीव अहङ्कार से कभी ऊर्ध्व और कभी अधो जाताहै स्थिर कभी नहीं होता। जैसे अश्व से आरूढ़ रथ के ऊपर बैठके सूर्य आकाशमार्ग में भ्रमते हैं तैसेही यह जीव भ्रमताहै स्थिर कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूप से भूला हुआ भटकताहै, अज्ञान से संसार में आस्था करताहै और भोगको सुखरूप जानकर उसमें तृष्णा करताहै। पर जिसको सुखरूप जानताहै वह रोगसमानहै और विषसे पूर्णसर्प जीव का नाश करनेवालाहै जिसको सत्य जानताहै वह असत्यहै सबकाल के मुख में ग्रसे हुये हैं। हे मुनीश्वर! विचार विना जीव अपना नाश आप ही करताहै क्योंकि; इसका कल्याण करनेवाला बोधहै। जब सत्य विचार बोध के शरण जाय तो कल्याण हो। जितने पदार्थहैं वह स्थिर नहीं रहते। इनको सत्य जानना दुःख के निमित्तहै। हे मुनीश्वर! जब तृष्णा

आतीहै तब आनन्द और धैर्य्य को नाश करदेती है जैसे वायु मेघ का नाश कर डालताहै तैसे ही तृष्णा ज्ञान का नाशकर डालती है। इससे मुझे वही उपाय कहिये जिससे जगत् का भ्रम मिटजावे और अविनाशी पद की प्राप्ति हो। इस भ्रमरूप जगत् की आस्था मैं नहीं देखता इससे जैसी इच्छा हो वैसा करे परन्तु जो सुख दुःख इसको होने हैं वह अवश्य होंगे कभी न मिटेंगे। चाहे पहाड़की कन्दरा में बैठे चाहे कोटमें परन्तु जो होने को है वह अवश्य होगा। इस निमित्त यत्न करना मूर्खता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णन-
न्नामैकविंशतितमस्सर्गः॥ २१ ॥

रामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! यह जो नानाप्रकार के सुन्दर पदार्थ भासतेहैं वह सब नाशरूप हैं इनकी आस्था मूर्ख करते हैं। यह तो मन की कल्पना से रचे हुये हैं उनमें से मैं किसकी आस्था करूं? हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीवका जीना व्यर्थहै क्योंकि; जीने से उनका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जब कुमार अवस्था होती है तब बुद्धि मूढ़ होती है उसमें कुछ विचार नहीं होता। जब युवावस्था आती है तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं ये सदा ढांपे रहते हैं। जैसे जाल में पक्षी बँधजाता है और आकाशमार्ग को देख भी नहीं सक्ता तैसे ही काम क्रोधादिक से ढँपाहुआ जीव विचारमार्ग को नहीं देखसकता। जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत और महादीन होजाता है और शरीर को भी त्याग देता है। जैसे कमल के ऊपर बरफ़ पड़ता है तब उसको भँवरा त्याग करता है तैसेही जब शरीररूपी कमल को जरा का स्पर्श होता है तब जीवरूपी भँवरा त्याग करदेता है। हे मुनीश्वर! यह शरीर तबतक सुन्दर है जबतक वृद्धावस्था नहीं प्राप्तहोती। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश जबतक राहु दैत्य ने आवरण नहीं किया तबतक रहता है; जब राहु दैत्य आवरण करता है तब प्रकाश नहीं रहता; तैसेही जरावस्था के आये युवावस्था की सुन्दरता जाती रहती है। हे मुनीश्वर! जरा के आने से शरीर कृशहोजाताहै जैसे वर्षाकालमें नदी बढ़जाती है तैसेही जरावस्था

में तृष्णा बढ़जाती है और जिस पदार्थ की तृष्णा करता है वह पदार्थ भी दुःखरूप है इसलिये तृष्णा करके आपही दुःख पाता है। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी समुद्र में चित्तरूपी बेड़ा पड़ा है और रागद्वेषरूपी मच्छों से कभी ऊर्ध्व को जाता है और कभी नीचे आता है स्थिर कदाचित् नहीं रहता। हे मुनीश्वर! कामरूपी वृक्ष में तृष्णारूप लता और विषयरूपी फूलहैं; जब जीवरूपी भँवरा उसके ऊपर बैठता है तब विषयरूपी बेल से मृतक होजाताहै। हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी एक बड़ी नदी है उसमें राग द्वेषादिक बड़े २ मच्छ रहते हैं। उस नदी में पड़े हुये जीव दुःख पाते हैं और जो संसार की इच्छा करता है वह नाशरूप है हे मुनीश्वर! उन्मत्त हाथी और तरङ्गों के समूह के रणरूपी समुद्र को तरजानेवाले को भी मैं शूर नहीं मानता परन्तु जो इन्द्रियरूपी समुद्र में मनोवृत्तिरूपी तरङ्ग उठते हैं उस समुद्र के तरजानेवाले को मैं शूर मानताहूं ऐसी क्रिया अज्ञानी जीव आरम्भ करते हैं कि, जिसके परिणाम में दुःख हो। जिसके परिणाम में सुख है उसका आरम्भ वे नहीं करते और काम के अर्थकी धारणा करते हैं। ऐसे आरम्भ किये से शरीर की शान्ति के पीछे भी सुख की प्राप्ति नहीं होती। वे कामना करके सदा जलते रहते हैं। जो अनात्मपदार्थ की तृष्णा करतेहैं उनको शान्ति कैसे प्राप्तहो? हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी नदी में बड़ा प्रवाह है; उस के किनारे पर वैराग्य और सन्तोष दो वृक्ष खड़ेहैं सो तृष्णा नदी के प्रवाहसे दोनों का नाश होता है। हे मुनीश्वर! तृष्णा बड़ी चंचल है किसी को स्थिर नहीं होने देती। मोहरूपी एक वृक्ष है उसके चारों ओर स्त्रीरूपी वल्ली है सो विषसे पूर्ण है;। उसपर चित्तरूपी भँवरा आ बैठता है तब स्पर्शमात्र से नाशहोता है। जैसे मोर का पुच्छ हिलता रहता है तैसेही अज्ञानी का चित्त चंचल रहता है इसलिये वह मनुष्य पशु के समान है। जैसे पशु दिन को जंगल में जा आहार करते और चलते फिरते हैं और रात्रि को घर में आय खूँटे से बाँधेजाते हैं तैसेही मूर्ख मनुष्य भी दिन को घर छोड़ के व्यवहार में फिरते हैं और रात्रि को आ अपने घर में स्थिर होते हैं पर

इस से परमार्थ की कुछ सिद्धि नहीं होती वे अपना जीवन वृथा गँवाते हैं बाल्यावस्था में तो शून्य रहता है और युवावस्था में काम से उन्मत्त होता है उस काम से चित्तरूपी उन्मत्त हस्ती स्त्रीरूपी कन्दरा में जा स्थित होता है पर वहभी क्षणभंगुर है। फिर वृद्धावस्था आती है उस से शरीर कृश होजाता है। जैसे बरफ से कमल जर्जरीभाव को प्राप्त होता है तैसेही जरासे शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता और सब अङ्ग क्षीण होजाते हैं पर एक तृष्णा बढ़ जाती है। हे मुनीश्वर! यह जीव मनुष्यरूपी पर्वत पर आ आकाश के फूलरूपी जगत् के पदार्थों की इच्छा करता है सो नीचे गिर राग द्वेषरूपी कण्टक के वृक्ष में जापड़ेगा। हे मुनीश्वर! जितने जगत् के पदार्थ हैं वह सब आकाश के फूल की नाईं नाशवान् हैं। इन में आस्था करनी मूर्खता है यह तो शब्दमात्र हैं। इनसे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको विषय भोग की इच्छा नहीं रहती क्योंकि; आत्मा के प्रकाश से वे इनको मिथ्या जानते हैं। हे मुनीश्वर! ऐसे ज्ञानवान् दुर्विज्ञेय पुरुष हमको तो स्वप्न में भी नहीं भासते। ऐसे विरक्तात्मा दुर्लभ हैं कि, जिनको भोग की इच्छा नहीं और सर्वदा ब्रह्मकी स्थिति में भासते हैं। ऐसे पुरुषों को संसार की कुछ इच्छा नहीं रहती क्योंकि; यह पदार्थ नाशरूप हैं। हे मुनीश्वर! जैसे पर्वत को जिस ओर देखिये पत्थरों से; पृथ्वी मृत्तिका से; वृक्ष काष्ठ से और समुद्र जल से पूर्ण दृष्टि आते हैं तैसेही शरीर अस्थि मांस से पूर्ण भासताहै। ये सब पदार्थ पञ्चतत्त्व से पूर्ण और नाशरूप हैं। ऐसा जानके ज्ञानी किसी की इच्छा नहीं करता। हे मुनीश्वर! यह जगत् सब नाशरूप है; देखतेही देखते नाश होजाता है उस में मैं किस का आश्रय करके सुख पाऊं? जब युगोंकी सहस्र चौकड़ी व्यतीत होती हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। उस दिन के क्षय हुये से सब जगत् का प्रलय होता है और ब्रह्माभी काल पाकर नाश होजाता है। ब्रह्माभी जितने होगये हैं उनकी संख्या नहीं होसक्ती; असंख्य ब्रह्मा नाश होगये हैं तो हम सारिखोंकी क्या वार्त्ता है। हम किसी भोग की वासना नहीं करते

क्योंकि; सब चलरूप हैं; स्थिर रहने के नहीं, सब नाशरूप हैं इसलिये इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, इनके साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जैसे मरुथल को देख मृग जलपान करने को दौड़ता और शान्ति नहीं पाता तैसेही मूर्खजीव जगत् के पदार्थों को सत्य मानकर तृष्णाकरता है परन्तु शान्ति नहीं पाता क्योंकि; सब असाररूप हैं। स्त्री, पुत्र और कलत्र जब तक शरीर नष्ट नहीं होता तभीतक भासते हैं; जब शरीर नष्ट हो जायगा तो जाना न जावेगा कि कहां गये और कहांसे आये थे। जैसे तेल और बत्ती से दीपक बड़ा प्रकाशवान् दृष्टि आता है; जब बुझ जाताहै तब जाना नहीं जाता कि, कहांगया तैसेही बत्तीरूप बान्धव हैं और उसमें स्नेहरूपी तेल है उससे जो शरीर भासता है सो प्रकाश है। जब शरीररूपी दीप का प्रकाश बुझजाता है तब जाना नहीं जाता कि कहां गया। हे मुनीश्वर! बन्धु का मिलाप ऐसा है जैसे कोई तीर्थयात्रा को सङ्ग चलाजाता हो सो सब एक क्षण वृक्ष की छाया के नीचे बैठते हैं फिर न्यारे न्यारे होजाते हैं। जैसे उस यात्रा में स्नेह करना मूर्खता है तैसेही इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है। हे मुनीश्वर! अहं ममता की रस्सी के साथ बांधे हुये घटीयन्त्र की नाईं सब जीव भ्रमते फिरते हैं उनको शान्ति कदाचित् नहीं होती यह देखनेमात्र तो चेतन दृष्टि आता है परन्तु पशु और बन्दर इनसे श्रेष्ठ हैं जिनकी सम्मति देह और इन्द्रियोंके साथही बँधीहुई है और आगमापायी हैं उनको आत्मपद की प्राप्तिहोनी कठिन है। जैसे पवन से वृक्ष के पात टूट के उड़जाते हैं फिर उनको वृक्ष के साथ लगना कठिन है तैसेही जो देहादिक से बाँधेहुये हैं उनको आत्मपद का पाना कठिनहै। हे मुनीश्वर! जब आत्मपद से विमुख होता है तब जगत् के भ्रम देखता है और जब आत्मपद की ओर आताहै तब संसार इसको बड़ा विरस लगताहै। ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो स्थिर रहै, जो कुछ पदार्थ हैं सो नाशको प्राप्त होते हैं। इससे मैं किसकी आस्था करूं और किसका आश्रयकरूं सब तो नाशवन्त भासते हैं? वह पदार्थ मुझसे कहिये जिसका नाश न हो॥

इति श्रीयो०वै० सर्वपदार्थाभाववर्णनन्नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२ ॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! जितना स्थावर जङ्गम जगत् दिखाता है वह सब नाशरूप है कुछ भी स्थिर न रहेगा। जो खाईं थी वह जल से पूर्ण होगई है और जो बड़े जल से भरेहुये समुद्र दिखते थे वे खाईंरूप होगये; जो सुन्दर बड़े बागीचे थे वे आकाश की नाईं शून्य होगये और जो शून्यस्थान थे वे सुन्दर वृक्ष हुये वन में दृष्टि आते हैं जहां बस्ती थी वहां उजाड़ होगई और जहां उजाड़ थी वहां बस्ती होगई; जहां गढ़े थे वहां पर्वत होगये और जहां बड़े पर्वत थे वहां समान पृथ्वी होगई। हे मुनीश्वर! इसप्रकार पदार्थ देखते देखते विपर्यय होजाते हैं स्थिर नहीं रहते तो फिर मैं किसका आश्रय करूं और किसके पाने का यत्न करूं? ये पदार्थ तो सब नाशरूप हैं। जो बड़ेबड़े ऐश्वर्य्य से सम्पन्न और बड़े कर्त्तव्य करते और बड़े वीर्यवान् तेजवान् हुये हैं वे भी मरणमात्र होगये हैं तो हम सारिखोंकी क्या वार्त्ता है? सब नाश होते हैं तो हमें भी घड़ी पल में चलाजाना है। हे मुनीश्वर! ये पदार्थ बड़े चञ्चलरूप हैं; एकरस कदाचित् नहीं रहते। एकक्षण में कुछ होजाते और दूसरे क्षण में कुछ होजाते हैं; एकक्षण में दरिद्री होजाते और दूसरे क्षण में सम्पदावान् होजाते हैं; एकक्षण में जीते दृष्टि आते हैं और दूसरे क्षण में मरजाते हैं; और एकक्षण में फिर वेभी जी उठते हैं। इस संसार की स्थिरता कभी नहीं होती। ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते एकक्षण में समुद्र के प्रवाह के ठिकाने मरुथल होजाते और मरुथल में जल के प्रवाह हो जाते हैं। हे मुनीश्वर! इस जगत् का आभास स्थिर नहीं रहता—जैसे बालक का चित्त स्थिर नहीं रहता तैसेही जगत् का पदार्थ एकभी स्थिर नहीं रहता। जैसे नट नानाप्रकार के स्वांग धरता है तैसेही जगत् के पदार्थ और लक्ष्मी एकरस नहीं रहती। कभी पुरुष स्त्री होजाता और कभी स्त्री पुरुष होजाती है; कभी मनुष्य पशु होजाता और कभी पशु मनुष्य होजाता है, स्थावर का जङ्गम होजाता है और जङ्गम का स्थावर होजाता है, मनुष्य का देवता होजाता और देवता का मनुष्य होजाता है। इसीप्रकार घटीयन्त्रकी नाईं जगत् की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती कभी

ऊर्ध्व को जाती है और कभी अध को जाती है स्थिर कभी नहीं रहती—सदा भटकती रहती है। हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ दृष्टि आते हैं वे सब नष्ट होजावेंगे; किसी भांति स्थिर न रहेंगे। ये सब नदियां बड़वाग्नि में लय होजावेंगी और जितने पदार्थ हैं वे सब अभावरूपी बड़वाग्नि को प्राप्तहोंगे। बड़े २ बलिष्ठ भी मेरे देखते ही देखते लीन होगये हैं। जो बड़े २ सुन्दर स्थान थे वे शून्य होगये और सुन्दर ताल और बगीचे जो मनुष्यों से परिपूर्ण थे शून्य होगये। मरुथल की भूमि सुन्दर होगई और घट के पट होगये हैं। वर के शाप होजाते हैं। और शाप के वर होजाते हैं। इसीप्रकार हे विप्र! जो जगत् दृष्टि आता है वह कभी सम्पत्तिमान् और कभी आपत्तिमान् दृष्टि में आता है और महाचपल है। हे मुनीश्वर! ऐसे सब अस्थिररूप पदार्थों का विचार विना मैं कैसे आश्रय करूं और किसकी इच्छा करूं सबतो नाशरूप हैं? ये जो सूर्य प्रकाश युक्त दृष्टि आते हैं वे भी अन्धकाररूप होजावेंगे, अमृत से पूर्ण चन्द्रमाभी शून्य होजायगा और सुमेरु आदिक पर्वत, सबलोक, मनुष्य, देवता, यक्ष और राक्षस सब नाश होंगे। इससे हे मुनीश्वर! और किसी का क्या कहना है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जगत् के ईश्वर भी शून्य होजायँगे। जो कुछ जगत् दृष्टि आता है और स्त्री, पुत्र, बान्धव, ऐश्वर्य, वीर्य्य और तेज से युक्त नानाप्रकार के जो जीव भासते हैं वे सब नाशरूप हैं फिर मैं किसपदार्थका आश्रयकरूं और किसकी इच्छाकरूं? हे मुनीश्वर! जो पुरुष दीर्घदर्शी है उसको तो सब पदार्थ विरस होगये; वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता क्योंकि; उसे तो सबपदार्थ नाशरूप भासते हैं और वह अपनी आयुष्यको बिजली के चमत्कारवत् देखता है। जिसको अपनी आयुष्य की प्रतीति होतीहै सो किसीकी इच्छा नहीं करता जैसे किसी को बलिदान के अर्थ पालते हैं तो वह खाने पीने और भोगने की इच्छा नहीं करता तैसेही जिसको अपना मरना सन्मुख भासता है उसको भी किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रहती। ये सब पदार्थ आपही नाशरूप हैं तो हम किसका आश्रय करके सुखीहों। जैसे कोई पुरुष समुद्र में मच्छ का आश्रय करके कहै कि,

में इसपर बैठके समुद्र के पार जाऊंगा और सुखी होऊंगा तो वह मूर्खता से डूबही मरेगा; तैसेही जिस पुरुष ने इन पदार्थोंका आश्रय लिया है और उन्हें अपने सुखके निमित्त जानताहै वह नाश होगा। हे मुनीश्वर! जो पुरुष जगत्को विचारता रहताहै उसको यह जगत् रमणीय भासताहै और जो रमणीय जान के नानाप्रकारके कर्म करताहै और नानाप्रकारके सङ्कल्प करके जगत् में भटकता है। उसीको यह भटकाता है। जैसे पवनसे धूर कभी ऊंचे और कभी नीचे आती है स्थिर नहीं रहती तैसेही यह जीव भटकता फिरता है स्थिर कभी नहीं रहता और जिस पदार्थ की इच्छा करताहै वह सब काल का ग्रास रूप है। इन्धनरूपी जगत् वनमें कालरूपी अग्नि लगी है उसने सबको ग्रासलिया है। जो इन पदार्थोंकी इच्छा करते हैं वे महामूर्ख हैं। जिनको आत्मविचार की प्राप्ति है उनको यह जगत् भ्रमरूप भासता है और जिसको आत्मविचार की प्राप्ति नहीं है उसको यह जगत् रमणीय भासताहै। जगत् तो देखतेही देखते नाश होजाता है इस स्वप्न पुरी की नाईं संसार की मैं कैसे इच्छा करूं; यह तो दुःख का निमित्त है? जैसे विष मिली मिठाई के भोजन करनेवाले मृत्यु पाते हैं तैसेही विषय भोगनेवाले नाश होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णनन्नामत्रयोविंशतितमस्सर्गः॥ २३॥

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! इस संसार में भोगरूपी अग्नि लगी है उससे सब जलतेहैं। जैसे तालमें हाथी के पांव से कमल का चूर्ण होजाताहै तैसेही भोगसे मनुष्य दीन होजाते हैं। जैसे वायुसे मेघ नष्ट होजाता है तैसेही काम, क्रोध और दुराचार से शुभगुण नष्टहोजाते हैं। जैसे भटकटैया के पत्त और फल में कांटे होजाते हैं तैसेही विषय की वासनारूपी कण्टक आलगते हैं। हे मुनीश्वर! यह सब जगत् नाशरूप है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं। वासनारूपी जल और इन्द्रियरूपी गांठ है उस में पुरुष काल से फँसाहै वह बड़े दुःख पावेगा। हे मुनीश्वर! वासना रूपी सूत में जीवरूपी मोती पिरोये हुये हैं और मनरूपी नट आय पिरोय कर

चैतन्यरूपी आत्मा के गले में डालता है जब वासनारूपी तागा टूटपड़ता है तब यह सब भ्रम भी निवृत्त होजाता है । हे मुनीश्वर ! इस जीवको भोग की इच्छा ही बन्धन का कारण है उसी से यह भटकता है और शान्ति नहीं पाता । इससे मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं; न राज्य की ही इच्छाहै और न घर की न वन की इच्छा है; न मरने का दुःख ही मानताहूं और न जीने का सुख मानताहूं। मुझे किसी पदार्थ का सुख नहीं; सुख तो आत्मज्ञान से होता है अन्यथा किसी पदार्थ से नहीं होता । जैसे सूर्य के उदयहुये विना अन्धकार का नाश नहीं होता तैसेही आत्मज्ञान विना संसारके दुःख का नाश नहीं होता । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मोह का नाशहो और मैं सुखी होऊं हे मुनीश्वर ! भोगके भोगनेवाले अहङ्कारको मैंने त्यागदिया फिर भोग की इच्छा कैसे हो ? हे मुनीश्वर ! विषयरूप सर्प ने जिसका स्पर्श किया उसका नाश होजाता है । सर्प जिसको काटताहै वह एकही बेर उसको मारडालता है पर विषयरूपी सर्प जिसको काटताहै वह अनेक जन्मपर्यन्त मारताही चलाजाताहै । इससे परमदुःख का कारण विषयभोगही है और परमविषहै । हेमुनीश्वर! आरेसे अङ्गका कटाना और वज्रसे शरीर का चूर्ण होना मैं सहूंगा परन्तु विषय का भोगना मुझसे किसी प्रकार सहा नहीं जाता । यह तो मुझको दुःखदायक ही दृष्टि आताहै। इससे वही मुझसे कहिये जिससे मेरे हृदय से अज्ञानरूपी अन्धकारका नाशहो और जो न कहोगे तो मैं अपनी छातीपर धैर्य्यरूपी शिला धरके बैठारहूंगा परन्तु भोगकी इच्छा न करूंगा । हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ हैं वे सब नाशरूप हैं । जैसे बिजली का चमत्कार होके छिपजाताहै और अञ्जलि में जल नहीं ठहरता तैसेही विषयभोग और आयुष्य नाश होजाते हैं–ठहरते नहीं । जैसे कराठीसे मछली दुःख पाती है तैसेही भोगकी तृष्णासे जीव दुःख पातेहैं।इससे मुझे किसीपदार्थकी इच्छा नहीं। जैसे कोई मरीचिकाके जलको सत्यजान जलपान की इच्छाकरे और दौड़े पर जल नहीं पाताहै । इससे मैं किसीपदार्थ की इच्छा नहीं करताहूं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वै०सर्वान्तप्रतिपादनन्नाम चतुर्विंशतितमस्सर्गः ॥२४॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर! संसाररूपी गढ़े और मोहरूपी कीच में मूर्ख का मन गिरजाता है उससे वह दुःखही पाता है शान्तिवान् कभी नहीं होता। जब जरावस्था आती है तब जैसे पुरातन वृक्षके पत्र पवनसे हिलते हैं तैसेही अङ्ग हिलते हैं और तृष्णा बढ़ जाती है। जैसे नीम का वृक्ष ज्यों २ वृद्ध होता है त्यों २ कटुता बढ़ती है तैसेही तृष्णा बढ़ती है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने देह इन्द्रियादिकों का आश्रय अपने सुख निमित्त लिया है वह मूर्ख संसाररूपी अन्धकूप में गिरताहै और निकल नहीं सक्ता। अज्ञानी का चित्त भोगका त्याग कदाचित् नहीं करता हे मुनीश्वर! जगत् के पदार्थों से मेरी बुद्धि मलीन होगई है। जैसे वर्षाकाल में नदी मलीन होती है। और जैसे मार्गशीर्ष मासमें मञ्जरी सूखजाती है तैसेही जगत्की शोभा देखते२ मेरी बुद्धि विरस होजातीहै॥ जैसे जगत्का पदार्थ मूर्ख को रमणीय भासताहै और जैसे पानी का गढ़ा तृण से आच्छादित होता है और मृग का बालक उस तृणको रमणीय जानकर खाने जाता तो गिरजाता है तैसेही यह मूर्खजीव भोगको रमणीय जान भोग के गिरपड़ता हैं फिर महादुःख पाता है। हे मुनीश्वर! जगत् के पदार्थों से मेरी बुद्धि चञ्चल होगई है इससे वही उपाय कहिये जिससे मेरी बुद्धि पर्वत की नाईं निश्चल हो और परमानन्द जो निर्भय निराकार है और जिसके पाये से किसी पद की इच्छा नहीं रहती पाऊं। हे मुनीश्वर! ऐसे पद से मेरी बुद्धि शून्य है इससे मैं शान्तिमान् नहीं होता। यह संसार और संसार के कर्म मोहरूप हैं इसमें पड़ेहुये शान्ति नहीं पाते। जनकादिक और शान्तिमान् संसार में रहेहुये कमल की नाईं निर्लेप रहते हैं। उनकी क्या समझ है कृपा करके कहिये और आप ऐसे सन्त जन विषय भोगते दृष्टि आते और जगत् की सब चेष्टा करते हैं पर निर्लेप कैसे रहते हैं वह युक्ति कहिये। यह बुद्धि जैसे ताल में हाथी प्रवेश करता है और पानी मलीन होजाता है तैसेही मोह से मलीन होजाती है। इससे वही उपाय कहिये जिससे बुद्धि निर्मल हो। यह सन्तोष बुद्धि स्थिर कभी नहीं रहती। जैसे कुल्हाड़े का कटा वृक्ष मूलसे

स्थिर नहीं होता तैसे ही वासना से कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती। हे मुनीश्वर ! संसाररूपी विसूचिका मुझको लगी है इससे वही उपाय कहिये जिससे दृश्य का नाश हो—इसने मुझ को बड़ा दुःख दिया। आत्मज्ञान कब प्रकाश होगा जिसके उदय हुये मोहरूपी अन्धकार का नाश हो ? हे मुनीश्वर ! जैसे बादल से चन्द्रमा आच्छादित होजाता है तैसेही बुद्धि की मलीनता से मैं आच्छादित हुआ हूं। इससे वही उपाय कहिये जिससे आवरण दूरहो और आत्मानन्द जो नित्य है प्राप्त हो। इसके पाये से फिर कुछ पाने की आवश्यकता नहीं रहती और इससे सम्पूर्ण दुःख नाश होजाते हैं और अन्तःकरण शीतल हो· जाता है। ऐसे पद की प्राप्तिका उपाय मुझसे कहिये। हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञानरूपी चन्द्रमा की मुझको इच्छा है; जिसके प्रकाश से बुद्धि-रूपी कमलिनी खिल आती है और जिसकी अमृतरूपी किरणों से तृप्त-वृत्ति होती है। हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृह में रहने की इच्छा नहीं और वन में जाने की भी इच्छा नहीं। मुझको तो उसी पद की इच्छा है जिसके पाये से अन्तःकरण शान्त होजाय॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजन-
वर्णनन्नाम पञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २५॥

श्रीरामजी बोले कि, हे मुनीश्वर ! जो जीनेकी आस्था करते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे पत्रपर जल की बूंद नहीं ठहरती तैसेही आयुष्य भी क्षण-भंगुर है। जैसे वर्षाकाल में दादुर बोलते हैं और उनका कट चञ्चल सदा फड़कता रहता है तैसेही आयुर्दा क्षण २ में चञ्चल होजाती है। जैसे शिवजी के कपाल में चन्द्रमा की रेखा छोटी सी है तैसेही यह शरीर है हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्था है वह महामूर्ख है—यह तो काल का ग्रास है। जैसे बिल्ली चूहे को पकड़लेती है तैसेही सबको काल पकड़ लेता है। जैसे बिल्ली चूहे को सँभलने नहीं देती तैसेही काल सबको अचानक ग्रहण कर लेता है और किसीको नहीं भासता। हे मुनीश्वर ! जब अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होके नृत्य

करता है। जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है तब दुःखरूपी मञ्जरी बढ़ने लगती है, लोभरूपी बिजली क्षण २ में हो हो नष्ट होजाती है और तृष्णारूपी जाल में फँसे हुये जीवरूपी पक्षी पड़े दुःख पाते हैं-शान्ति की प्राप्ति नहीं होती। हे मुनीश्वर! यह जगत्‌रूपी बड़ा रोग लगा है उसके निवारण करने का कौन सा पदार्थ है? जो पानेयोग्य है और जिससे भ्रमरूपी रोग निवृत्त हो वही उपाय कहिये। यह जगत् मूर्ख को रमणीय दिखता है। ऐसे पदार्थ पृथ्वी, आकाश, देवलोक और पाताल में भी नहीं जो ज्ञानवान् को रमणीय दीखें। ज्ञानवान् को सब भ्रमरूप भासता है और अज्ञानी जगत् में आस्था करता है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा में जो कलङ्क है उससे शोभा सुन्दर नहीं लगती। जब कलङ्क दूर होजाय तब सुन्दर लगे तैसेही मेरे चित्तरूपी चन्द्रमा में कामरूपी कलङ्क लगा है इससे वह उज्ज्वल नहीं भासता। आप वही उपाय कहिये जिससे कलङ्क दूरहो। हे मुनीश्वर! यह चित्त बहुत चञ्चल है स्थिर कदाचित् नहीं होता। जैसे अग्नि में डालदिया पारा उड़ जाता है तैसेही चित्त भी स्थिर नहीं होता विषय की ओर सदा धावता है। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्त स्थिर हो। संसाररूपी वन में भोगरूपी सर्प रहते हैं और जीव को काटते हैं उनसे बचने का उपाय कहिये। जितनी क्रिया हैं वे राग द्वेष के साथ मिली हुई हैं; इससे वही उपाय कहिये जिससे राग द्वेष का प्रवेश न हो और संसारसमुद्र में पड़के तृष्णारूपी जल का स्पर्श न हो। और ऐसा उपाय भी कहिये जिससे राग द्वेष का स्पर्श न हो। मन में जो मननरूपी सत्ता है वह युक्ति से दूर होती है-अन्यथा दूर नहीं होती। उसकी निवृत्ति के अर्थ आप मुझसे युक्ति कहिये और आगे जिसको जिसप्रकार निवृत्ति हुई है और जिसप्रकार आपके अन्तःकरण में शीतलता हुई है वह कहिये। हे मुनीश्वर! जैसे आप जानते हैं सो कहिये और जो आपनेही वह युक्ति नहीं पाई तब मैं तो कुछ नहीं जानता। मैं सब त्यागकर निरहंकार होरहूँगा और जबतक वह युक्ति मुझको न प्राप्त होगी तबतक मैं

भोजन, जलपान और स्नानादिक क्रिया और किसी सम्पदा और आपदा का कार्य न करूँगा—निरहङ्कार होऊंगा। यह न मेरी देह है, न मैं देह हूं; सब त्याग करके बैठा रहूँगा। जैसे काग़ज़ के ऊपर मूर्त्ति चित्रित होती है तैसेही होरहूंगा। श्वास आते जाते आपही क्षीण हो जायँगे। जैसे तेल विना दीपक बुझजाता है तैसेही अनर्थवान् देह निर्वाण हो जायगा तब महाशान्ति पाऊँगा। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसे कहकर रामजी चुप होरहे। जैसे बड़े मेघ को देखके मोर शब्द करके चुप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनन्नाम षड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; हे पुत्र! जब इसप्रकार रघुवंशरूपी आकाश के रामचन्द्ररूपी चन्द्रमा बोले तब सब मौन होगये और सबके रोम खड़े होगये—मानो रोमभी खड़े होकर रामजी के वचन सुनते हैं और सभा में जितने बैठे थे वे सब निर्वासनारूपी अमृतके समुद्र में मग्न होगये। वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और दृष्टि आदिक मन्त्री, राजा दशरथ और मण्डलेश्वर, चाकर, नौकर और माता कौशल्याआदिक सब मौन होगये—अर्थात् अचल होगये। पिंजड़े में जो तोते और बगीचे में पशु आदि थे; जो पक्षी आलय में बैठे थे वे भी सुनकर मौन होगये आकाश के पक्षी जो निकट थे वे भी स्थिर होगये और आकाश में देव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर भी आके सुनने और फूलोंकी वर्षा करने तथा सब धन्य धन्य शब्द करने लगे। उस समय फूलोंकी ऐसी वर्षा भई मानो बरफ़ की वर्षा होती है और क्षीरसमुद्रके तरङ्ग उछलते आते थे मानो मोती के माला की वृष्टि होनेलगी। जैसे माखनके पिंड उड़तेहों इसप्रकार आधी घड़ी पर्यन्त फूलोंकी वर्षा हुई और बड़ी सुगन्ध फैली। फूलोंपर भँवरे फिरनेलगे और बड़ा विलास उस काल में हुआ। सब "नमोनमः" शब्द करने लगे और देव बोले हे कमलनयन, रघुवंशी! आकाश में चन्द्रमारूप तुम

धन्य हो। तुमने बड़े श्रेष्ठ स्थान देखे हैं और बहुत प्रकार के वचन सुने हैं। जैसे तुमने वचन कहे हैं वैसे हमने कभी नहीं सुने। यह वचन सुनके हमारा जो देवतोंका अभिमान था सो सब निवृत्त होगया और अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण होगई है। हे रामजी ! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे बृहस्पति भी नहीं कहसके। तुम्हारे वचन परमानन्दके करनेवाले हैं इससे तुम धन्य हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सिद्धसमाजवर्णनन्नाम सप्तविंशतितमस्सर्गः॥ २७॥

वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज ! सिद्ध ऐसे वचन कहके विचारनेलगे कि, रघुवंश का कुल पूजने योग्य है जिसमें रामजी ने बड़े उदार वचन मुनीश्वर के सन्मुख कहे हैं। अब जो मुनीश्वर उत्तर देंगे वह भी सुना चाहिये। जैसे फूल के ऊपर भँवरा स्थिर होता है तैसेही व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य आदि सब साधु सभामें स्थित हुये तब वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठ खड़े हुए और उनकी पूजा करनेलगे। पहिले राजा दशरथ ने पूजा की और फिर नाना प्रकार से सबने उनकी पूजा की और यथायोग्य आसन के ऊपर बैठे। उनमें नारदजी हाथ में बहुत सुन्दर वीणा लिये और श्याममूर्त्ति व्यासजी नानाप्रकार के रंगसे रञ्जित वस्त्र पहिनेहुये मानो तारागणों में महाश्यामघटा आई है विराजमान थे। ऐसेही दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, बृहस्पति के पिता अङ्गिरा, भृगु और मैं भी वहांथा और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आके उस सभा में स्थित हुये। किसी की बड़ी जटा, कोई मुकुट पहिरे, कोई रुद्राक्ष की माला और कोई मोती की माला पहिने थे, किसी के कण्ठ में रत्न की माला और हाथ में कमण्डलु और मृगछाला, किसी के महासुन्दर वस्त्र किसी की कटिपै कोपीन और किसीकी कटिपै सुवर्ण की ज़ंजीर थीं ऐसे बड़ेबड़े तपस्वी जो वहां आके बैठे थे उनमें कोई राजसी और कोई सत्त्विकी स्वभावके थे और सब विद्वान् वेद पढ़नेवाले प्राप्त हुये। कोई सूर्यवत्; कोई चन्द्रमावत्; कोई तारावत्; कोई रत्नवत्

प्रकाशमान और पुरुषार्थपर यत्न करनेवाले यथायोग्य आसनपर स्थित हुये। मोहनीमूर्त्ति और दीनस्वभाववाले रामजी भी हाथ जोड़के सभा में बैठे और उनकी सब पूजाकर कहनेलगे कि, हे रामजी! तुम धन्य हो। नारद सबके सन्मुख कहनेलगे कि, हे रामजी! तुमने बड़े विवेक और वैराग्य के वचन कहे जो सबको प्यारे लगे और सबके कल्याण करनेवाले और परम बोध के कारण हैं। हे रामजी! तुम बड़े बुद्धिमान् और उदारात्मा दृष्टि आते हो और महावाक्य का अर्थ तुमसे प्रकट होता है। ऐसे उज्ज्वलपात्र साधु और अनन्त तपस्वियोंमें कोई बिरला होता है। जितने मनुष्य हैं वे सब पशू से दृष्टि आते हैं क्योंकि; जिसको संसारसमुद्र के पार होने की इच्छा है और जो पुरुषार्थपर यत्न करता है वही मनुष्य है। हे साधो! वृक्ष तो बहुत होते हैं परन्तु चन्दन का वृक्ष कोई होता है; तैसेही शरीरधारी बहुत हैं परन्तु ऐसा कोई होता है और सब अस्थि मांस रुधिर के पुतले से मिले हुये भटकते फिरते हैं। वे जैसे यन्त्र की पुतली होती हैं तैसेही अज्ञानी जीव हैं। हाथी तो बहुत हैं परन्तु बिरले के मस्तक से मोती निकलता है तैसेही मनुष्य तो बहुत हैं परन्तु पुरुषार्थपर यत्न करनेवाला कोई विरलाही होता है। जैसे वृक्ष बहुतेरे हैं परन्तु लवङ्ग का वृक्ष कोई बिरलाही होता है तैसेही मनुष्य बहुत हैं परन्तु ऐसा कोई बिरलाही होता है ऐसे पात्र से थोड़ा अर्थ कहाभी बहुत होजाता है। जैसे तेलकी बुंद थोड़ीही जल में डालिये तो फैल जाती है तैसेही थोड़े वचन तुम्हारे हिये में बहुत होते हैं। तुम्हारी बुद्धि बहुत विशेष है और दीपक सी प्रकाशवाली और बोध का परम पात्र है। कहनेमात्र से ही तुमको शीघ्र ज्ञान होवेगा और जो हमारे सामने तुमको ज्ञान न हो तो जानना कि हम सब मूर्ख बैठे हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

समाप्तमिदं वैराग्यप्रकरणम्॥

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

द्वितीयमुमुक्षुप्रकरणप्रारम्भः ॥

वाल्मीकिजी बोले हे साधो ! ये वचन परमानन्दरूप हैं और कल्याण के कर्ता हैं। इनमें सुनने की प्रीति तब उपजती है जब अनेक जन्म के बड़े पुण्य इकट्ठे होते हैं। जैसे कल्पवृक्ष के फल को बड़े पुण्य से पाते हैं तैसेही जिसके बड़े पुण्यकर्म इकट्ठे होते हैं उसकी प्रीति इन वचनों के सुनने में होती है-अन्यथा नहीं होती। ये वचन परमबोध के कारण हैं। वैराग्यप्रकरण के एकसहस्र पांचसौ श्लोक हैं। हे भारद्वाज ! इसप्रकार जब नारदजी ने कहा तब विश्वामित्र बोले कि, हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ, रामजी ! जितना कुछ जानने योग्य था सो तुममें है इससे अब तुम्हें जानना और नहीं रहा पर उसमें विश्राम पाने के लिये कुछ मार्जन करना है। जैसे अशुद्ध आदर्श की मलिनता दूर करने से मुख स्पष्ट भासता है तैसेही कुछ उपदेश की तुम को अपेक्षा है। हे रामजी ! आपही के सदृश भगवान् व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी भी हुये हैं। वह भी बड़े बुद्धिमान् थे; उन्होंने जो जानने योग्य था सो जाना था पर विश्राम के निमित्त उनको भी अपेक्षा थी सो विश्राम को पाकर शान्तिमान् भये। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! शुकजी कैसे बुद्धिमान् और ज्ञानवान् थे और कैसी विश्राम की अपेक्षा उनको थी और फिर कैसे उन्होंने विश्राम पाया सो कृपा करके कहो ? विश्वामित्रजी बोले; हे रामजी ! अञ्जन के पर्वत के समान और सूर्य के सदृश प्रकाशवान् भगवान् व्यासजी स्वर्ण के सिंहासन पर राजा दशरथ के यहां बैठे थे। उनके पुत्र शुकजी सब शास्त्रों के वेत्ता थे। और सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानते थे। उन्होंने शान्ति और परमानन्दरूप आत्मा में विश्राम न पाया तब उनको विकल्प उठा कि, जिसको

मैंने जाना है सो न होगा क्योंकि; मुझको आनन्द नहीं भासता। यह संशय करके एककाल में व्यासजी जो सुमेरु पर्वत की कन्दरा में बैठे थे तिनके निकट आकर कहने लगे; हे भगवन्! यह संसार सब भ्रमात्मक कहां से भया है; इसकी निवृत्ति कैसे होगी और आगे कभी इसकी निवृत्ति भई है सो कहो? हे रामजी! जब इसप्रकार शुकजी ने कहा तब विद्वद्वेदशिरोमणि वेदव्यासजी ने तत्काल उपदेश किया। शुकजी ने कहा; हे भगवन्! जो कुछ तुम कहते हो वह तो मैं आगेसेही जानता हूं; इससे मुझको शान्ति नहीं होती। हे रामजी! तब सर्वज्ञ वेदव्यासजी विचार करने लगे कि, इसको मेरे वचन से शान्ति प्राप्त न होगी क्योंकि; पिता पुत्र का सम्बन्ध है। ऐसा विचार करके व्यासजी कहने लगे, हे पुत्र! मैं सर्वतत्त्वज्ञ नहीं तुम राजा जनक के निकट जाओ; वे सर्वतत्त्वज्ञ और शान्तात्मा हैं उनसे तुम्हारा मोह निवृत्त होगा। तब शुकदेवजी वहां से चलकर मिथिला नगरी में आये और राजा जनक के द्वारपर स्थित भये। द्वारपाल ने जाकर जनकजी से कहा कि, व्यासजी के पुत्र शुकजी खड़े हैं। राजा ने जाना कि, इनको जिज्ञासा है। इसलिये कहा खड़े रहने दो इसीप्रकार द्वारप ने जा कहा और सातदिन उन्हें खड़ेही बीतगये। तब राजा ने फिर पूछा कि, शुकजी खड़े हैं कि, चलेगये हैं द्वारपाल ने कहा, खड़े हैं। राजा ने कहा आगे लेआओ। तब वे उनको आगे ले आये। उस दरवाज़े पर भी वे सातदिन खड़ेरहे। फिर राजा ने पूछा कि, शुकजी हैं? द्वारप ने कहा कि, हां खड़े हैं। राजा ने कहा कि, अन्तःपुर में लेआओ और नाना प्रकार के भोग भुगताओ। तब वे उन्हें अन्तःपुरमें लेगये। वहां स्त्रियों के पास भी वे सातदिनतक खड़ेरहे। फिर राजा ने द्वारप से पूछा कि, उसकी अब कैसी दशा है और आगे कैसी दशा थी? द्वारप ने कहा कि, आगे वे निरादर से न शोकवान् हुये थे और न अब भोग से प्रसन्न हुये; वे तो इष्ट अनिष्ट में समान हैं। जैसे मन्दपवन से मेरु चलायमान नहीं होता तैसेही यह बड़े भोग के निरादर से चलायमान नहीं हुये। जैसे

पपीहे को मेघके जल विना नदी और तालआदिके जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही उसको भी किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है तब राजा ने कहा उन्हें यहां लेआओ और जब शुकजी आये तब राजा जनक ने उठके खड़े हो प्रणाम किया । फिर जब दोनों बैठगये तब राजाने कहा कि, हे मुनीश्वर ! तुम किस निमित्त आये हो; तुमको क्या वाञ्छा है सो कहो कि उसकी प्राप्ति मैं करदेऊं ? श्रीशुकजी बोले हे गुरो ! यह संसार का आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे शान्त होगा सो तुम कहो ? इतना कह विश्वामित्रजी बोले हे रामजी ! जब इसप्रकार शुकदेवजी ने कहा तब जनक ने यथाशास्त्र उपदेश जो कुछ व्यास ने कहा था सोई कहा । यह सुन शुकजीने कहा कि, भगवन् ! जो कुछ तुम कहते हो सोई मेरे पिता भी कहते थे; सोई शास्त्र भी कहता है और विचार से मैं भी ऐसा ही जानता हूं कि, यह संसार अपने चित्तमें उत्पन्न होता है और चित्तके निर्वेद हुये भ्रमकी निवृत्ति होती है पर मुझको विश्राम नहीं प्राप्त होता है ? जनकजी बोले; हे मुनीश्वर ! जो कुछ मैंने कहा और जो तुम जानते हो इससे पृथक् उपाय न जानना और न कहनाही है। यह संसार चित्त के संवेदन से हुआ है; जब चित्त फुरने से रहित होता है तब भ्रम निवृत्त होजाता है । आत्मतत्त्व नित्य शुद्ध, परमानन्दस्वरूप केवल चैतन्य है; जब उसका अभ्यास करोगे तब तुम विश्राम पावोगे । तुम मुक्तिस्वरूप हो क्योंकि; तुम्हारा यत्न आत्मा की ओर है; दृश्य की ओर नहीं; इससे तुम बड़े उदारात्मा हो । हे मुनीश्वर ! तुम मुझको व्यासजी से अधिक जान मेरे पास आये हो पर तुम मुझसे भी अधिक हो क्योंकि; हमारी चेष्टा तो बाहर से दृष्टि आती है और तुम्हारी चेष्टा बाहर से कुछ भी नहीं पर भीतर से हमारी भी इच्छा नहीं है । इतना कह विश्वामित्रजी बोले; हे रामजी ! जब इस प्रकार राजा जनक ने कहा तब शुकजी ने निःसङ्ग निष्प्रयत्न और निर्भय होकर सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जाय दशसहस्र वर्ष तक निर्विकल्पक समाधि की । जैसे तेल विना दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही वेभी निर्वाण होगये । जैसे समुद्र में बुन्द लीन होजाती

है और जैसे सूर्यका प्रकाश सन्ध्याकाल में सूर्य के पास लीन होजाता है तैसेही कलनारूप कलङ्क को त्याग कर वे ब्रह्मपद को प्राप्त हुये ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे मुनिशुकनिर्वाण-
वर्णनन्नाम प्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

विश्वामित्रजी बोले; हे राजन्, दशरथ! जैसे शुकजी शुद्धबुद्धिवाले थे तैसेही रामजी भी हैं। जैसे शान्ति के निमित्त उनको कुछ मार्जन कर्त्तव्य था तैसेही रामजी को भी विश्राम के निमित्त कुछ मार्जन चाहिये क्योंकि; आवरण करनेवाले जो भोग हैं उनसे इनकी इच्छा निवृत्त भई है और जो कुछ जानने योग्य था सो जाना है। अब हम कोई ऐसी युक्ति करेंगे जिससे इनको विश्राम होगा जैसे शुकजी को थोड़े से मार्जन से शान्ति की प्राप्ति हुई थी तैसेही इनको भी होवेगी। हे राजन्! जैसे ज्ञानवान् को आध्यात्मिक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते तैसेही रामजी को भी भोग की इच्छा नहीं स्पर्श करती। भोग की इच्छा सबको दीन करती है इसका ही नाम बन्धन है और भोग की वासना का क्षय करना इसका ही नाम मोक्ष है। ज्यों ज्यों भोग की इच्छा करता है त्यों त्यों लघु होताजाता है और ज्यों ज्यों भोग की वासना क्षय होती है त्यों त्यों गरिष्ठ होता है। जबतक आत्मानन्द प्रकाश नहीं होता तबतक विषय की वासना दूर नहीं होती और जब आत्मानन्द प्राप्त होता है तब विषयवासना कोई नहीं रहती। जैसे मरुथल में बल्ली नहीं उत्पन्न होती तैसेही ज्ञानवान् को विषयवासना की उत्पत्ति नहीं होती। हे साधो! ज्ञानवान् किसी फलकी इच्छा से विषयभोग का त्याग नहीं करता स्वभाव सेही उसकी विषयवासना चली जाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार का अभाव होजाता है तैसेही रामजी को अब किसी भोग पदार्थ की इच्छा नहीं रही। अब तो वे विदितवेद हुये हैं आपही विश्राम की इच्छा रखते हैं इससे जो कहो वही करूं जिससे वे विश्रामवान् हों। हे राजन्! भगवान् वशिष्ठजी की युक्तिसे ये शान्त होंगे और आगे से वही रघुवंशकुल के गुरु हैं। इनके उपदेश द्वारा

आगे भी रघुवंशी ज्ञानवान् भये हैं। ये सर्वज्ञ और साक्षिरूप हैं और त्रिकाल और ज्ञान के सूर्य हैं। इनके उपदेश से रामजी आत्मपद को प्राप्त होंगे। हे वशिष्ठजी! जब हमारा तुम्हारा विरोध हुआ था और ब्रह्माजी ने मन्दराचल पर्वत पर, जो ऋषीश्वरों और अनेक वृक्षों से पूर्ण था, संसारवासना के नाश, हमारे तुम्हारे विरोध की शान्ति और और जीवों के कल्याणनिमित्त जो उपदेश किया था वह तुमको स्मरण है? अब वही उपदेश तुम रामजी को करो क्योंकि, ये भी निर्मल ज्ञान-पात्र हैं। ज्ञान विज्ञान और निर्मलयुक्ति वही है जो शुद्धपात्र में अर्पण हो और पात्र बिना उपदेश नहीं सोहता। जिसमें शिष्यभाव और विरक्तता न हो ऐसे अपात्र मूर्ख को उपदेश करना व्यर्थ है। कदाचित विरक्त हो और शिष्यभावना नहीं तौ भी उपदेश न करना चाहिये। दोनों से सम्पन्न को ही उपदेश करना चाहिये। पात्र बिना उपदेश व्यर्थ है अर्थात् अपवित्र होजाता है। जैसे गऊ का दूध महापवित्र है पर श्वान की त्वचा में डारिये तो अपवित्र होजाता है तैसेही अपात्र को उपदेश करना व्यर्थ है। हे मुनीश्वर! जो शिष्य वैराग्य से सम्पन्न और उदारआत्मा है वह तुम्हारे उपदेश के योग्य है और तुम वीतराग और भय क्रोध से रहित परमशान्तरूप हो, इसलिये तुम्हारे उपदेश के पात्र रामजी हैं। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले; कि, जब इस प्रकार विश्वामित्रजी ने कहा तब नारद और व्यासादिक ने साधु साधु कहा अर्थात् भला भला कहा कि ऐसेही यथार्थ है उस समय राजा दशरथ के पास बहुत प्रकार के साधु बैठे हुये थे। ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठजी ने कहा कि, हे मुनीश्वर! जो कुछ तुमने आज्ञा की है वह हमने मानी। ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं कि, सन्त की आज्ञा निवारण करे। हे साधो! राजा दशरथ के जितने पुत्र हैं उन सबके हृदय में जो अज्ञानरूपी तम है वह मैं ज्ञानरूपी सूर्य से ऐसे निवारण करूंगा जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर होता है। हे मुनीश्वर! जो कुछ ब्रह्माजी ने उपदेश किया था वह मुझको अखण्ड स्मरण है मैं वही उपदेश करूंगा जिससे रामजी

निःसंशयपन को प्राप्त होंगे। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले; कि, इस प्रकार वशिष्ठजी विश्वामित्र से कह रामजी से मोक्ष का उपाय कहनेलगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुनिविश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयस्सर्ग्गः ॥ २ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब्रह्माजी ने मुझको जीवों के कल्याण के निमित्त उपदेश किया था वह मुझे भले प्रकार स्मरण है और वही अब मैं तुम से कहता हूं। इतना सुन श्रीरामजी ने पूछा; हे भगवन्! कुछ प्रश्न करने का अवसर आया है। एक संशय मुझको है सो दूर करो। मोक्ष उपाय जो संहिता कहते हो सो तो तुम सब कहोगे परन्तु यह जो तुमने कहा कि, शुकदेवजी विदेहमुक्त होगये तो भगवान् व्यासजी जो सर्वज्ञ थे सो विदेहमुक्त क्यों न हुये! वशिष्ठजी बोले कि, हे रामजी! जैसे सूर्य के किरण के साथ त्रसरेणु उड़ती देख पड़ती हैं और उनकी संख्या कुछ नहीं होती तैसेही परमसूर्य के संवेदनरूपी किरण में त्रिलोकीरूपी असंख्य त्रसरेणु हैं अनन्त होकर मिटजाते हैं और अनन्त होते हैं। अनन्त त्रिलोकी ब्रह्म समुद्र में हैं उनकी संख्या कुछ नहीं। श्रीरामजी ने पूछा, हे भगवन्! पीछे जो व्यतीत होगये हैं और आगे जो होवेंगे उनकी कितनी संख्या है? वर्त्तमान को तो मैं जानता हूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अनन्त कोटि त्रिलोकी के गण उपजे हैं और मिटगये हैं। कितनेई होते हैं और कितनेई होवेंगे इनकी कुछ संख्या नहीं है क्योंकि; जीव असंख्य हैं और जीवप्रति अपनी २ सृष्टि है। जब ये जीव मृतक होजाते हैं तब उसी स्थान में अपने अन्तवाहक संकल्परूपी पुर में इनका बन्ध भासता है और उसी स्थान में परलोक भास आता है। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश पञ्चभूत भासता है और नानाप्रकार की वासना के अनुसार अपनी २ सृष्टि भासआती है। फिर जब वहां से मृतक होता है तब भी वही सृष्टि भास आती है। नाम रूप संयुक्त वही जाग्रत् सत्य होकर भास आती है। फिर जब वहां से मरता है तब इस पञ्चभूत सृष्टि का अभाव होजाता है। और २ भासती है और वहां के जो जीव होते हैं उनको

भी इसीप्रकार अनुभव होता है। इसीप्रकार एक २ जीवकी सृष्टि होती है और मिटजाती है उसकी संख्या कुछ नहीं। तब ब्रह्मा की सृष्टि की संख्या कैसे हो? जैसे मनुष्य घूमता है और उसको सर्व पदार्थ भ्रम से दृष्टि आते हैं; जैसे नौका में बैठेहुये नदी के वृक्ष चलते दृष्टि आते हैं; जैसे नेत्र के दोष से आकाश में मोती की माला दृष्टि आती है और जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है तैसेही जीव को भ्रम से यह लोक परलोक भासता है; वास्तव में जगत कुछ उपजा ही नहीं, एक अद्वैत परमात्मतत्त्व अपने आप में स्थित है तिसमें द्वैतभ्रम अविद्या से भासता है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है और भय पाता है तैसे ही अज्ञानी को अपनी कल्पना जगत्‌रूप होकर भासती है। हे रामजी! व्यासजी को बत्तीस आकार से मैंने देखा है। उनमें दश एक आकार और क्रिया और निश्चयरूप हैं; दश सम समान हुये हैं और बारह आकार क्रिया और चेष्टा में विलक्षण हुये हैं। जैसे समुद्र में तरङ्गें होती हैं तो उनमें कई सम और कई विलक्षण उपजती हैं तैसेही व्यास हुये हैं। सम जो दश हुये हैं उनमें दश व्यास यही हैं और आगे भी आठ बेर यही होंगे और महाभारत कहेंगे। नवीं बेर ब्रह्मा होकर विदेह मुक्त होंगे। हम और वाल्मीकि, भृगु और बृहस्पति का पिता अङ्गिरा इत्यादि भी मुक्त होवेंगे। हे रामजी! एक सम होते हैं और एक विलक्षण होते हैं। मनुष्य, देवता, तिर्य्यगादिक जीव कई बेर समान होते और कितने बेर विलक्षण होते हैं। कितने जीव समान आकार आगे से कुल क्रिया सहित होते हैं और कितने संकल्प से उड़ते फिरते हैं। आना, जाना, जीना, मरना स्वप्नभ्रम की भांति दीखता है पर वास्तव में न कोई आता है, न जाता है, न जन्मता है, न मरता है। यह भ्रम अज्ञान से भासता है विचार किये से कुछ नहीं भासता। जैसे कदली का खंभ बड़ा पुष्ट दीखता है पर यदि खोदके देखो तो कुछ सार नहीं निकलता तैसे ही जगत् भ्रम अविचार से सिद्ध है; विचार किये से कुछ नहीं भासता। हे रामजी! जो पुरुष आत्मसत्ता में जगा है उसको द्वैतभ्रम नहीं भासता।

वह आत्मदर्शी, सदा शान्त आत्मा परमानन्दस्वरूप और इच्छा से रहितहै । जैसे जीवन्मुक्त को कोई चला नहीं सक्ता तैसेही व्यासदेव जीको सदेहमुक्ति और विदेहमुक्ति की कुछ इच्छा नहीं वे तो सदा अद्वैतरूप हैं । हे रामजी! जीवन्मुक्त को सर्वत्र सर्वात्मा पूर्ण भासता है और स्वस्वरूप है। वह तो स्वरूप, सार, शान्तिरूप अमृत से पूर्ण और निर्वाण में स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे असंख्यसृष्टि-
प्रतिपादनन्नाम तृतीयस्सर्गः ॥ ३ ॥

इतना कह कर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेह-मुक्ति में कुछ भेद नहीं है। जैसे जल स्थिर है तौ भी जल है और तरङ्गहै तौ भी जल है तैसेही जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं है। हे रामजी! जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का अनुभव तुमको प्रत्यक्ष नहीं भासता क्योंकि; स्वसंवेद है और उनमें जो भेद भासता है सो असम्यक् दर्शी को भासता है ज्ञानवान् को कुछ भेद नहीं भासता है। हे मनन-कारियों में श्रेष्ठ रामजी! जैसे वायु स्पन्दरूप होती है तौ भी वायु है और निस्स्पन्दरूप होती है तौ भी वायुहै निश्चय करके कुछ भेद नहीं पर और जीव को स्पन्द होती है तो भासती और निस्स्पन्द होती है तो नहीं भासती; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष को जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति में कुछ भेद नहीं—वह सदा अद्वैत और इच्छा से रहित है। जब जीव को उसका शरीर भासता है तब जीवन्मुक्ति कहते हैं और जब शरीर अदृश्य होता है तब विदेहमुक्ति कहते हैं पर उसको दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! अब प्रकृत प्रसंग को जो श्रवण का भूषण है सुनिये । जो कुछ सिद्ध होता है। सो अपने पुरुषार्थ से सिद्ध होता है। पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता । लोग जो कहते हैं कि, दैव करेगा सो होगा यह मूर्खता है। चन्द्रमा जो हृदय को शीतल और उल्लासकर्त्ता भासता है इसमें यह शीतलता पुरुषार्थ से हुई है। हे रामजी! जिस अर्थ की प्रार्थना और यत्न करे और उससे फिरे नहीं तो अविस्मयकर जरूर पाता है । पुरुषप्रयत्न किसका नाम है सो सुनिये । सन्तजन और सत्यशास्त्र के उपदेशरूप

उपाय से उसके अनुसार चित्त का विचरना पुरुषार्थप्रयत्न है और उससे इतर जो चेष्टा है। उसका नाम उन्मत्त चेष्टा है। जिस निमित्त यत्न करता है सोई पाता है। एक जीव पुरुषार्थप्रयत्न करके इन्द्र की पदवी पाकर त्रिलोकी का पति हो सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। हे रामचन्द्र ! आत्मतत्त्व में जो चैतन्य सम्पत्ति है सो सम्पद्रूप होकर फुरती है और सोई अपने पुरुषार्थ से ब्रह्माके पद को प्राप्तभई है। तिसे देख जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई है सो अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। केवल चैतन्य आत्मतत्त्व है उसमें चित्तसंवेदन स्पन्दरूप है यह चैतन्य संवेदन अपने पुरुषार्थ से गरुड़ पर आरूढ़ होकर विष्णुरूप होता है और पुरुषोत्तम कहाता है और यही चैतन्यसंवेदन अपने पुरुषार्थ से रुद्ररूप हो अर्द्धाङ्गमें पार्वती, मस्तक में चन्द्रमा और नीलकण्ठ परमशान्तिरूप को धारण करता है इससे जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ से ही होता है। हे रामजी ! पुरुषार्थ से सुमेरु का चूर्ण किया चाहे तो वह भी करसक्ता है। यदि पूर्व दिन में दुष्कृत किया हो और अगले दिन में सुकृत करे तो दुष्कृत दूर होजाता है। जो अपने हाथ से चरणामृत भी ले नहीं सक्ता वह यदि पुरुषार्थ करे तो वही पृथ्वी को खण्ड खण्ड करने को समर्थ होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थोपक्रमोनाम चतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चित्त जो कुछ वाञ्छा करता है और शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ नहीं करता सो सुख न पावेगा क्योंकि उस की उन्मत्त चेष्टा है। पुरुषार्थ भी दो प्रकार के हैं—एक शास्त्र के अनुसार और दूसरा शास्त्रविरुद्ध है। जो शास्त्र को त्याग करके अपनी इच्छा के अनुसार विचरता है सो सिद्धता न पावेगा और जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करेगा वह सिद्धता को प्राप्त होगा कदाचित् दुःख न पावेगा। अनुभव से स्मरण होता है और स्मरणसे अनुभव होता है यह दोनों इसही से होते हैं। दैव तो कुछ न हुआ। हे रामजी ! और दैव कोई नहीं; इसका कियाही इसीको प्राप्त होता है परन्तु जो बलिष्ठ होता है उसीके अनुसार विचरता है। जिसके पूर्वके संस्कार बली होतेहैं उसीकी जय होती है और

जो विद्यमान पुरुषार्थ बली होता है तब उसको जीत लेते हैं। जैसे एक पुरुष के दो पुत्र हैं तो वह उन दोनों को लड़ाता है पर दोनों में से जो बली होता है उसीकी जय होती है परन्तु दोनों उसीके हैं तैसेही दोनों कर्म इसके हैं जिसका पूर्व का संस्कार बली होता है उसीकी जय होती है। हे रामजी! यह जीव जो सत्संग करता है और सत्शास्त्र को भी विचारता है पर फिर भी पक्षी के समान जो संसार वृक्ष की ओर उड़ता है तो पूर्वका संस्कार बली है उससे स्थिर नहीं होसक्ता। ऐसा जानकर पुरुष प्रयत्न का त्याग न करै। पूर्वके संस्कार से अन्यथा नहीं होता परन्तु पूर्व का संस्कार बली भी हो। और सत्संग करे और सत्शास्त्र का भी दृढ़ अभ्यास हो तो पूर्व के संस्कार को पुरुष प्रयत्न से जीतलेता है। जैसे पूर्व के संस्कार में दुष्कृत किया है और आगे सुकृत करे तो अगले का अभाव होजाता है सो पुरुष प्रयत्न सेही होता है। पुरुषार्थ क्या है और उससे क्या सिद्ध होता है सो श्रवण करिये। ज्ञानवान् जो सन्त हैं और सत्शास्त्र जो ब्रह्मविद्या है उसके अनुसार प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है और पुरुषार्थ से पानेयोग्य आत्मा है जिससे संसारसमुद्र से पार होता है। हे रामजी! जो कुछ सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है—दूसरा कोई दैव नहीं। जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ को त्यागकर कहता है कि, जो कुछ करेगा सो दैव करेगा वह मनुष्यों में गर्दभ है उसका संग करना दुःख का कारण है। मनुष्य को प्रथम तो यह करना चाहिये कि, अपने वर्णाश्रम के शुभआचारों को ग्रहण करे और अशुभ का त्याग करे। फिर सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचारना और उनको विचारकर अपने गुण दोष को भी विचार करना चाहिये कि, दिन और रात्रि में क्या शुभ अशुभ किया है। आगे फिर गुण और दोषों का भी साक्षीभूत होकर जो सन्तोष, धैर्य, विराग, विचार और अभ्यास आदि गुण हैं उनको बढ़ावे और जो दोष विपरीत हैं उनका त्याग करे। जब ऐसे पुरुषार्थ को अङ्गीकार करेगा तब परमानन्दरूप आत्मतत्त्वको पावैगा। इससे हे रामजी! जैसे वन का घायल

हुआ मृग घास, तृण और पत्तों को रसीला जानके खाता है तैसेही स्त्री, पुत्र, बान्धव, धनादि में मग्न न होना चाहिये। इनसे विरक्त होना और दांतों से दांतों को चबाकर संसारसमुद्र के पार होने का यत्न करना चाहिये। जैसे केशरी सिंह बल करके पिंजरेमें से निकलजाता है तैसेही निकलजाना इसी का नाम पुरुषार्थ है। हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता की प्राप्ति हुई है उसे पुरुषार्थ सेही हुई है, पुरुषार्थ विना नहीं होती। जैसे प्रकाश विना किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है और दैवके आश्रय हो यह समझता है कि, हमारा दैव कल्याण करेगा वह कभी सिद्ध न होगा। जैसे पत्थर से तेल निकाला चाहे तो नहीं निकलता तैसेही उसका कल्याण दैव से न होगा। इस लिये हे रामजी! तुम दैव का आश्रय त्याग कर अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो। जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागा है उसको सुन्दर कान्ति और लक्ष्मी त्यागजाती है। जैसे वसन्त ऋतु की मञ्जरी वसन्त ऋतु के गये से विरस होजाती है तैसेही उनकी कान्ति लघु होजाती है। जिस पुरुष ने ऐसा निश्चय किया है कि, हमारा पालनेवाला दैव है वह पुरुष ऐसा है जैसे कोई अपनी भुजा को सर्प जान भय खाके दौड़ता है और भय पाता है और पुरुषार्थ यह है कि, सन्त का संग और सत्शास्त्रों का विचार करके उनके अनुसार विचरे। जो उनको त्यागके अपनी इच्छा के अनुसार विचरते हैं सो सुख और सिद्धता न पावैंगे और जो शास्त्र के अनुसार विचरते हैं वह इस लोक और परलोक में सुख और सिद्धता पावेंगे। इससे संसाररूपी जाल में न गिरना चाहिये पुरुषार्थ वही है कि, सन्त जनोंका संग करना और बोधरूपी कलम और विचाररूपी स्याही से सत्शास्त्रों के अर्थ हृदयरूपी पत्र पै लिखना जब ऐसे पुरुषार्थ करके लिखोगे तब संसाररूपी जाल में न गिरोगे। हे रामजी! जैसे यह पहले नियत हुआ है कि, जो पट है सो पट है; जो घट है सो घटही है; जो घट है सो पट नहीं और जो पट है सो घट नहीं तैसेही यह भी नियत हुआ है कि, अपने पुरुषार्थ विना परमपदकी प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी!

जो सन्तों की संगति करता है और सत्शास्त्र भी विचारता है पर उनके अर्थ में पुरुषार्थ नहीं करता उसको सिद्धता नहीं प्राप्त होती। जैसे कोई अमृत के निकट बैठा हो तो पान किये विना अमर नहीं होता तैसेही अभ्यास किये विना अमर नहीं होता और सिद्धता भी प्राप्त नहीं होती। हे रामजी! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोते हैं। जब बालक होते तब मूढ़ अवस्था में लीन रहते; युवावस्था में विकार को सेवते हैं और जरा में जर्जरीभूत होते हैं। इसी प्रकार जीना व्यर्थ खोते हैं। और जो अपना पुरुषार्थ त्याग करके दैव का आश्रय लेते हैं सो अपने हन्ता होते हैं वह सुख न पावेंगे। हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार और परमार्थ में आलसी होके और परमार्थ को त्यागके मूढ़ हो रहे हैं सो दीन होकर पशुओं के सदृश दुःख को प्राप्त हुये हैं। यह मैंने विचार करके देखा है। इससे तुम पुरुषार्थ का आश्रय करो और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी आदर्श के द्वारा अपने गुण कर और दोष को देखके दोष का त्याग करो और शास्त्रों के सिद्धान्तों पर अभ्यास करो। जब दृढ़ अभ्यास करोगे तब शीघ्रही आनन्दवान् होगे। इतना कह कर बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजीने कहा तब सायंकाल का समय हुआ तो सब सभा स्नान के निमित्त उठ के खड़ीहुई और परस्पर नमस्कार करके अपने २ घर को गये और सूर्य की किरण के निकसते ही सब आ फिर स्थिरभये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे पुरुषार्थवर्णनन्नाम-
पञ्चमस्सर्गः॥ ५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसका जो पूर्व का किया पुरुषार्थ है उसीका नाम दैव है और दैव कोई नहीं। जब यह सत्संग और सत्शास्त्र का विचार पुरुषार्थ से करे तब पूर्व के संस्कार को जीतलेता है। जिस इष्ट पुरुष के पाने का यह शास्त्रद्वारा यत्न करेगा उसको अवश्यमेव अपने पुरुषार्थ से पावेगा अन्यथा कुछ नहीं होता, न हुआ है और न होगा। पूर्व जो कोई पाप किया होता है उसका जब फल दुःख पाता है

तो मूर्ख कहता है कि, हा दैव, हा दैव, हा कष्ट, हा कष्ट, हे रामजी! इसका जो पूर्व का पुरुषार्थ है उसी का नाम दैव है और दैव कोई नहीं। जो कोई दैव कल्पते हैं सो मूर्ख हैं। जो पूर्व के जन्म में सुकृत कर आया है वही सुकृत सुख होके दिखाईदेता है और जिसका पूर्व का सुकृत बली होता है उसही की जय होती है। जो पूर्वका दुष्कृत बली होता है और शुभ का पुरुषार्थ करता है और सत्संग और सत्शास्त्र को भी विचारता, सुनता और करता है तो पूर्व के संस्कार को जीतलेता है। जैसे पहिले दिन पाप किया हो और दूसरे दिन बड़ा पुण्य करे तो पूर्वका पाप निवृत्त होजाता है तैसेही जब यहां दृढ़ पुरुषार्थ करे तो पूर्व के संस्कार को जीतलेता है। इससे जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है। एकत्रभाव से प्रयत्न करने का नाम पुरुषार्थ है। जो एकत्रभाव से यत्न करेगा उसको अवश्यमेव प्राप्त होगा और जो पुरुष और दैव को जानके अपना पुरुषार्थ त्याग बैठेगा सो दुःख पाकर शान्तिमान् कभी न होगा। हे रामजी! मिथ्या दैव के अर्थ को त्यागके तुम अपने पुरुषार्थ को अङ्गीकार करो। सन्तजनों और सत्शास्त्रों के वचनों और युक्तिसहित यत्न और अभ्यास करके आत्मपद को प्राप्त होना इसीका नाम पुरुषार्थ है। जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञान होता है तैसेही पुरुषार्थ से आत्मपद की प्राप्ति होती है। जो पूर्वकर्मानुसार बड़ापापी होता है तो यहां दृढ़ पुरुषार्थ करने से उसको जीतलेता है। जैसे बड़े मेघ को पवन नाश करती है और जैसे वर्ष दिन के पके खेत को बरफ नाशकर देती है तैसेही पुरुष का पूर्वसंस्कार प्रयत्न से नाश होता है। हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि को तीक्ष्ण करके संसारसमुद्र तरने का पुरुषार्थ किया है। जिसने सत्संग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं की और पुरुषार्थ को त्यागबैठा है वह पुरुष नीच से नीचगति को पावेगा जे श्रेष्ठपुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थ से परमानन्द पद को पावेंगे; जिसके पाने से फिर दुःखी न होंगे। जो देखने में दीन होता है वह भी सत्संगति और सत्शास्त्र के अनुसार

पुरुषार्थ करता है तो उत्तमपदवी को प्राप्त होता दीखता है। हे रामजी! जिस पुरुष ने पुरुषप्रयत्न किया है उसको सब सम्पदा आ प्राप्त होती हैं और परमानन्द से पूर्णरहता है। जैसे समुद्र रत्न से पूर्ण है तैसेही वह भी परमानन्द से पूर्ण होता है। इससे जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार के बन्धन से निकलजाते हैं—जैसे केसरीसिंह अपने बलसे पिंजरेमें से निकल जाता है। हे रामजी! यह पुरुष और कुछ न करे तो यह तो अवश्य करे कि, अपने वर्णाश्रम के अनुसार विचरे और सार पुरुषार्थ करे। जब सन्त और सत्यशास्त्र के आश्रय होके उसके अनुसार पुरुषार्थ करेगा तब सब बन्धन से मुक्त होगा। जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और किसी और देवको मानके कहता कि, वह मेरा कल्याण करेगा सो जन्म मरण को प्राप्त होकर शान्तिमान् कभी न होगा हे रामजी! इस जीव को संसाररूपी विसूचिकारोग लगा है। उसको दूरकरने का उपाय मैं कहता हूँ। सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अर्थ में दृढ़ भावना करके जो कुछ सुना है उसका वारंवार अभ्यास करके और सब कल्पना त्यागके एकान्त होकर उसका चिन्तन करे तब परमपद की प्राप्तिहोगी और द्वैतभ्रम निवृत्त होकर अद्वैतरूप भासेगा इसी का नाम पुरुषार्थ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थ वर्णनन्नाम षष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पुरुषार्थ से इसको आध्यात्मिक आदि ताप आ प्राप्त होते हैं उससे शान्ति नहीं पाता। तुमभी रोगी न होना अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना और कोई देव मुक्ति नहीं करेगा; अपने पुरुषार्थ ही द्वारा संसारबन्धन से मुक्त होता है। जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और किसी और देवको मानकर उसमें परायण हुआ है उसका धर्म, अर्थ और काम सभी नष्ट होजाता है और नीच से नीचगति को प्राप्त होता है। हे रामजी! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आप और वास्तवरूप है उसके आश्रय जो

आदि चित्त संवेदन स्फूर्ति है सो अहं ममत्व संवेदन होके फुरने लगती है। इन्द्रियां भी अहं स्फूर्ति हैं जब यह स्फुरना सन्तों और शास्त्रों के अनुसार हो तब पुरुष परम शुद्धता को प्राप्त होता है और जो शास्त्र के अनुसार नहो तो वासना के अनुसार भाव अभावरूप भ्रमजाल में पड़ा घटीयन्त्र की नाईं भटककर शान्तिमान् कभी नहीं होता। हे रामजी! जिस किसी को सिद्धता प्राप्तहुई है अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। विना पुरुषार्थ सिद्धता को प्राप्त न होगा। जब किसी पदार्थ को ग्रहण करना होता है तो भुजा पसारे से ही ग्रहण करना होता है और जो किसी देश को जानाचाहे तो चलने से ही पहुँचता है अन्यथा नहीं। इससे पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता। जो कहता है कि, जो दैव करेगा सो होगा वह मूर्ख है। हे रामजी! और दैव कोई नहीं है। इस पुरुषार्थ काही नाम दैव है। यह दैव शब्द मूर्खों का प्रचार किया हुआ है कि, जब किसी कष्टसे दुःख पातेहैं तो कहते हैं कि दैवका कियाहै। पर कोई दैव नहीं है। हे रामचन्द्रजी! जो अपना पुरुषार्थ त्यागके दैव के आश्रय होरहेगा वह कभी सिद्धता को न प्राप्त होगा क्योंकि; अपने पुरुषार्थ विना सिद्धता किसी को प्राप्त नहीं होती। जब बृहस्पति ने दृढ़ पुरुषार्थ किया तब सर्व-देवताओंके राजा इन्द्र के गुरु हुये और शुक्रजी अपने पुरुषार्थ द्वारा सब दैत्यों के गुरु हुये हैं एवम् और और जो समान जीव हैं उनमें जिस पुरुष ने प्रयत्न किया है सो पुरुष उत्तम हुआ है। जिसको जितनी सिद्धता प्राप्त हुई है अपने पुरुषार्थ से ही हुई है और जिस पुरुष ने सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया उसका बड़ा राज्य, प्रजा, धन और विभूति मेरे देखते ही देखते क्षीण होगई और नरक में जला। जिससे कुछ अर्थ सिद्ध हो उसका नाम पुरुषार्थ है और जिससे अनर्थ की प्राप्ति हो उसका नाम अपुरुषार्थ है। हे रामजी! मनुष्य को सत्शास्त्रों और सन्तसंग से शुभ गुणों को पुष्ट करके दया, धैर्य्य, सन्तोष और वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये। जैसे बड़े ताल से मेघ पुष्ट होता है और फिर वर्षा करके ताल को पुष्ट करता है तैसेही शुभगुणों से बुद्धि

पुष्ट होती है और पुष्टबुद्धि से शुभगुण पुष्ट होते हैं। हे रामजी! जो बालक अवस्था से अभ्यास किये होता है उसको शुद्धता प्राप्तहोती है अर्थात् दृढ़ अभ्यास विना शुद्धता प्राप्त नहीं होती। जो किसीदेश अथवा तीर्थ को जाना चाहे तो मार्ग में निरालस होके चला जावे तभी जा पहुँचेगा, जब भोजनकरेगा तभी क्षुधा निवृत्त होगी-अन्यथा न होगी और जब मुख में जिह्वा शुद्ध होगी तभी पाठ स्पष्ट होगा-गूंगे से पाठ नहीं होता। इसलिये जो कुछ कार्य सिद्ध होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है; चुप हो रहने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। यहां सब गुरु बैठे हैं इनसे पूछदेखो; आगे जो तुम्हारी इच्छा है सो करो और जो मुझसे पूछो तो मैं सब शास्त्रों का सिद्धान्त कहता हूं जिससे सिद्धता को प्राप्त होगे। हे रामजी! सन्तों अर्थात् ज्ञानवान् पुरुषों और सत्शास्त्रों अर्थात् ब्रह्मविद्या के अनुसार संवेदन, मन और इन्द्रियों का विचार रखना और जो इनसे विरुद्ध हों उनको न करना। इससे तुमको संसार का राग द्वेष स्पर्श न करेगा और सब से निर्लेप रहोगे-जैसे जलसे कमल निर्लेप रहता है तैसेही तुमभी निर्लेप रहोगे। हे रामजी! जिस पुरुष से शान्ति प्राप्ति हो उसकी भलीप्रकार सेवा करनी चाहिये क्योंकि; उसका बड़ा उपकार है कि, संसार समुद्र से निकाल लेता है। हे रामजी! सन्तजन और सत्शास्त्रभी वही हैं जिनके विचार और संगति से संसार से चित्त उसकी ओर हो और मोक्ष का उपाय वही है जिससे और सब कल्पना को त्यागके अपने पुरुषार्थ को अङ्गीकार करे जिससे जन्म-मरण का भय निवृत्त होजावे। हे रामजी! जिस वस्तु की जीव वाञ्छा करता है और उसके निमित्त दृढ़ पुरुषार्थ करता तो अवश्यमेव वह उसको पाता है। बड़े तेज और विभूति से सम्पन्न जो तुमको दृष्टि आता और सुना जाता है वह अपने पुरुषार्थ से ही भया है और जो महानष्ट सर्प, कीट आदिक तुमको दृष्टिआते हैं उन्होंने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है तभी ऐसे हुये हैं। हे रामजी! अपने पुरुषार्थ का आश्रयकरो नहीं तो सर्प, कीटादिक नीचयोनि को प्राप्त होगे। जिस पुरुष ने

अपना पुरुषार्थ त्यागा और किसी दैवका आश्रय लिया है वह महामूर्ख है क्योंकि; यह वार्ता व्यवहारमें भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम किये विना किसी पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तो परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो। इससे परमपद पाने के निमित्त दैव को त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार यत्न करो तब जे दुःख हैं ते मुक्तहोवेंगे। हे रामजी! जनार्दन विष्णुजी अवतार धारणकरके दैत्यों को मारते हैं और २ चेष्टा भी करते हैं परन्तु उनको पाप का स्पर्श नहीं होता क्योंकि; वे अपने पुरुषार्थ से ही अक्षयपद को प्राप्त हुए हैं। इससे तुमभी पुरुषार्थ का आश्रय करो और संसारसमुद्र को तरजावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठमुमुक्षुप्रकरणेपुरुषार्थोपमावर्णनन्नाम सप्तमस्सर्गः॥ ७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो शब्द है कि "दैव हमारी रक्षा करेगा" सो किसी मूर्ख की कल्पना है। हमको तो दैव का आकार कोई दृष्टि नहीं आता और न कोई दैव का काल ही जान पड़ता है और न दैव कुछ करताही है। मूर्खलोग दैव दैव कहते हैं पर दैव कोई नहीं है इसका पूर्वका कर्म ही दैव है। हे रामजी! जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और दैवपरायण हुआ है कि, वह हमारा कल्याण करेगा वह मूर्ख है क्योंकि; अग्नि में जापड़े और दैव निकाललै तब जानिये कि, कोई दैव भी है, पर सो तो नहीं होता और स्नान दान भोजन आदिक त्यागकरके चुपहो बैठे और आपही दैव करजावे सो भी किये विना नहीं होता इससे और दैव कोई नहीं; अपना पुरुषार्थ ही कल्याणकर्त्ता है। हे रामजी! जीव का किया कुछ नहीं होता और दैवही करनेवाला होता तो शास्त्र और गुरुका उपदेश भी न होता। इससे स्पष्ट है कि, सत्शास्त्र के उपदेश से अपने पुरुषार्थ द्वारा इसको वाञ्छितपदवी प्राप्त होती है। इससे और जो कोई दैव शब्द है सो व्यर्थ है। इस भ्रमको त्याग करके सन्तों और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करे तब दुःख से मुक्त होगा। हे रामजी! और दैव कोई नहीं है; इसका

पुरुषार्थ जो स्पन्द है सोई दैव है। हे रामजी! जो कोई और दैव करनेवाला होता तो जब जीव शरीर को त्यागता है और शरीर नाश होजाता है—कुछ क्रिया नहीं होती क्योंकि; चेष्टा करनेवाला त्याग जाता है तो सभी शरीर से चेष्टा कराता सो तो चेष्टा कुछ नहीं होती; इससे जाना जाता है कि, दैव शब्द व्यर्थ है। हे रामजी! पुरुषार्थ की वार्त्ता अज्ञानी जीव को भी प्रत्यक्ष है कि, अपने पुरुषार्थ विना कुछ नहीं होता। गोपाल भी जानता है कि, मैं गौओं को न चराऊं तो भूखीही रहेंगी! इससे वह और दैव के आश्रय नहीं बैठ रहता आपही चरा ले आता है। हे रामजी! दैव की कल्पना भ्रम से करते हैं। हमको तो दैव कोई दृष्टि नहीं आता और हाथ, पांव, शरीर भी दैव का कोई दृष्टि नहीं आता—अपने पुरुषार्थ से ही सिद्धता दृष्टि आती है और जो कोई आकार से रहित दैव कल्पिये तो भी नहीं बनता क्योंकि; निराकार और साकार का संयोग कैसे हो। हे रामजी! और दैव कोई नहीं है केवल अपना पुरुषार्थ ही दैवरूप है। जो राजा ऋद्धि—सिद्धिसंयुक्त भासता है सो भी अपने पुरुषार्थ से हुआ है। हे रामजी! ये जो विश्वामित्र हैं; इन्होंने दैवशब्द दूरही से त्याग दिया है। ये भी अपने पुरुषार्थ से ही क्षत्री से ब्राह्मण हुये हैं और और जो बड़े २ विभूतिमान् हुये हैं सो भी अपने पुरुषार्थ से ही दृष्टि आते हैं। हे रामजी! जो दैव पढ़े विना पण्डित करे तो जानिये कि, दैव ने किया; पर पढ़े विना तो पण्डित नहीं होता और जो अज्ञानी से ज्ञानवान् होते हैं सो भी अपने पुरुषार्थ से ही होते हैं। इससे और दैव कोई नहीं। मिथ्याभ्रम को त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार संसारसमुद्र तरने का प्रयत्न करो। तुम्हारे पुरुषार्थ विना और दैव कोई नहीं। जो और दैव होता तो बहुत बेर क्रिया बल भी अपनी क्रियाको त्यागके सो रहता कि, आप दैवही करेगा पर ऐसे तो कोई नहीं करता। इससे अपने पुरुषार्थ विना कुछ सिद्ध नहीं होता और जो कुछ इसका किया न होता तो पाप करनेवाले नरक न जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग न जाते; परन्तु पाप करनेवाले

नरक में जाते और पुण्य करनेवाले स्वर्ग में जाते हैं; इससे जो कुछ प्राप्त होता है सो अपने पुरुषार्थ से ही होता है। हे रामजी! जो कोई ऐसा कहे कि, और कोई दैव करता है तो उसका शिर काटिये जो वह दैव के आश्रय जीतारहे तो जानिये कि, कोई दैव है; पर सो तो जीता कोई भी नहीं। इस से दैवशब्द को मिथ्याभ्रम जानके सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार अपने पुरुषार्थ से आत्मपद में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे परमपुरुषार्थ-
वर्णनन्नामाष्टमस्सर्ग्गः ॥ ८ ॥

इतना सुनकर रामजी ने पूछा; हे भगवन्, सर्वधर्म के वेत्ता! आप कहते हैं कि, और दैव कोई नहीं परन्तु इस लोक में प्रसिद्ध है कि; ब्राह्मणभी दैव है और दैव का किया सब कुछ होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं तुमको इसलिये कहता हूं कि, तुम्हारा भ्रम निवृत्त होजावे। अपनेही किये हुये शुभ अथवा अशुभकर्म का फल अवश्यमेव भोगना होता है; उसे दैव कहो वा पुरुषार्थ कहो और दैव कोई नहीं। कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदिक में तो दैव कोई नहीं और न कोई दैव का स्थानही है और न रूपही है तो और दैव क्या कहिये। हे रामजी! मूर्खों के परचाने के निमित्त दैवशब्द कहा है। जैसे आकाश शून्य है तैसे दैव भी शून्य है। फिर रामजी बोले, हे भगवन्, सर्वधर्म के वेत्ता! तुम कहते हो कि, और दैव कोई नहीं और आकाश की नाईं शून्य है सो तुम्हारे कहने से भी दैव सिद्ध होता है। तुम कहते हो कि, इसके पुरुषार्थ का नाम दैव है और जगत्में भी दैवशब्द प्रसिद्ध है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैं इसलिये तुमको कहताहूं कि, जिससे दैवशब्द तुम्हारे हृदय से उठजावे। दैव नाम अपने पुरुषार्थ का है, पुरुषार्थ कर्म का नाम है और कर्म नाम वासना का है। वासना मन से होती है और मनरूपी पुरुष जिसकी वासना करता है सोई उस को प्राप्तहोता है। जो गांव के प्राप्तहोने की वासना करता है सो गांव को प्राप्तहोता है और जो पत्तन की वासना करता सो पत्तन को प्राप्तहोता है। इससे और दैव कोई नहीं।

पूर्व का जो शुभ अथवा अशुभ दृढ़ पुरुषार्थ किया है उसका परिणाम सुख दुःख अवश्य होता है और उसकाही नाम दैव है। हे रामजी! तुम विचार करके देखो कि, अपना पुरुषार्थ कर्म से भिन्न नहीं है तो सुख दुःख देनेवाला और लेनेवाला कोई दैव नहीं हुआ। जीव जो पाप की वासना और शास्त्रविरुद्ध कर्म करता है सो क्यों करता है? पूर्व के दृढ़-पुरुषार्थ कर्म से ही पाप करता है। जो पूर्व का पुण्यकर्म किया होता है तो शुभमार्ग में विचरता। फिर रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो पूर्व की दृढ़वासना के अनुसार यह विचरता है तो मैं क्या करूं? मुझको पूर्व की वासना ने दीन किया है अब मुझको क्या करना चाहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ पूर्व की वासना दृढ़ होरही है उसके अनुसार जीव विचारता है पर जो श्रेष्ठ मनुष्य है सो अपने पुरुषार्थ से पूर्व के मलिनसंस्कारों को शुद्ध करता है तो उसके मल दूर होजाते हैं। जब तुम सत्शास्त्रों और ज्ञानवानों के वचनों के अनुसार दृढ़पुरुषार्थ करोगे तब मलिनवासना दूर होजावेगी। हे रामजी! पूर्व के मलिन और शुभसंस्कारों को कैसे जानिये सो सुनो। जो चित्त विषय और शास्त्रविरुद्ध मार्ग की ओर जावे और शुभकी ओर न जावे तो जानिये कि; कोई पूर्व का कर्म मलीन है और जो सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार चेष्टाकरे और संसारमार्गसे विरक्त हो तो जानिये कि, पूर्वका शुभकर्म है। इससे हे रामजी! तुमको दोनों से सिद्धता है कि, पूर्व का संस्कार शुद्ध है इससे तुम्हारा चित्त सत्संग और सत्शास्त्रों के वचनोंको ग्रहणकरके शीघ्रही आत्मपदको प्राप्तहोगा और जो तुम्हारा चित्त शुभमार्ग में स्थिर नहीं होसक्ता तो दृढ़ पुरुषार्थ करके संसार समुद्र से पार हो। हे रामजी! तुम चैतन्य हो; जड़ तो नहीं हो; अपने पुरुषार्थ का आश्रयकरो और मेरा भी यही आशीर्वाद है कि तुम्हारा चित्त शीघ्रही शुद्धआचरण और ब्रह्म-विद्या के सिद्धान्तसार में स्थित हो। हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुषभी वही है जिसका पूर्वका संस्कार यद्यपि मलीनभी था परन्तु संतों और सत्शास्त्रों

के अनुसार दृढ़ पुरुषार्थ करके सिद्धता को प्राप्त हुआ है और मूर्ख जीव वह है जिसने अपना पुरुषार्थ त्यागदिया है जिससे संसार से मुक्त नहीं होता। पूर्व का जो कोई पापकर्म किया होता है उसकी मलिनता से पाप में धावता है और अपने पुरुषार्थ के त्यागने से अन्धा होजाता और विशेषकर और भी धावता है। जो श्रेष्ठ पुरुष है उसको यह करना चाहिये कि, प्रथम तो पांचों इन्द्रियों को वश करे; फिर शास्त्र के अनुसार उनको वर्त्तावे और शुभवासना दृढ़करे, अशुभ का त्यागकरे। यद्यपि त्यागनीय दोनों वासना हैं पर प्रथम शुभवासना को इकट्ठी करे फिर अशुभ का त्याग करे। जब शुद्धवासना करके कषाय परिपक्क होगा अर्थात् अन्तःकरण जब शुद्ध होगा तब सन्तों और सत्शास्त्रों के सिद्धान्त का विचार उत्पन्न होगा और उससे तुमको आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी। उस ज्ञानके द्वारा आत्म साक्षात्कार होगा फिर, क्रिया और ज्ञान का भी त्याग होजावेगा और केवल शुद्ध अद्वैतरूप अपना आप शेष भासेगा। इससे, हे रामजी! और सब कल्पना का त्यागकर सन्तजनों और सत्शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेपरमपुरुषार्थवर्णनंनाम
नवमस्सर्ग्गः॥ ९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मेरे वचन का ग्रहणकरो। यह वचन बान्धव के समान हैं अर्थात् तुम्हारे परममित्र होंगे और दुःखसे तुम्हारी रक्षाकरेंगे। हे रामजी! यह जो मोक्ष उपाय तुमसे कहता हूं उसके अनुसार तुम पुरुषार्थ करो तब तुम्हारा परम अर्थ सिद्ध होगा। यह चित्त जो संसार के भोग की ओर जाता है उस भोगरूपी खांड़ में चित्त को गिरने मत दो। भोग के विसरजाने के त्याग दो हैं। वह त्याग तुम्हारा परम मित्र होगा और त्याग भी ऐसा करो कि, फिर उसका ग्रहण न हो। हे रामजी! यह मोक्ष उपाय संहिता है इसको चित्त को एकाग्र करके सुनो; इससे परमानन्द की प्राप्ति होगी। प्रथम शम और दमको धारण करो सम्पूर्ण संसारकी वासना त्याग करके उदारता से तृप्त रहने का नाम शम

है और बाह्यइन्द्रियों के वशकरने को दम कहते हैं जब प्रथम इनको धारण करोगे तब परमतत्त्व का विचार आपही उत्पन्नहोगा और विचार से विवेकद्वारा परमपद की प्राप्ति होगी। जिस पदको पाकर फिर कदाचित् दुःख न होगा और अविनाशी सुख तुमको प्राप्त होगा। इसलिये इस मोक्षउपाय संहिता के अनुसार पुरुषार्थ करो तब आत्मपद को प्राप्तहोगे। पूर्व जो कुछ ब्रह्माजी ने हमको उपदेश किया है सो मैं तुमसे कहता हूं। इतना सुनकर रामजी बोले; हे मुनीश्वर! आपको जो ब्रह्माजी ने उपदेश किया था सो किसकारण किया था और कैसे तुमने धारण किया था सो कहो? वशिष्ठजी बोले हे रामचन्द्रजी! शुद्ध चिदाकाश एक है और अनन्त, अविनाशी, परमानन्दरूप, चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म है तिसमें संवेदन स्पन्दरूप होता है सोही विष्णु होकर स्थित भया है। वे विष्णुजी स्पन्द और निस्स्पन्द में एकरस हैं कदाचित् अन्यथाभाव को नहीं प्राप्त होते। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं तैसेही शुद्ध चिदाकाश से स्पन्द करके विष्णु उत्पन्नहुये हैं। उन विष्णुजी के स्वर्णवत् कीर्णनाभि कमल से ब्रह्माजी प्रकटभये; उन ब्रह्माजी ने ऋषि और मुनीश्वरों सहित स्थावर जंगम प्रजा उत्पन्न की और उस मनोराज से जगत् को उत्पन्न किया। उस जगत् के कोण में जो जम्बूद्वीप भरतखण्ड है उसमें मनुष्य को दुःखसे आतुर देख उनके करुणा उपजी जैसे पुत्रको दखकर पिता के करुणा उपजती है। तब उनके सुखके निमित्त तप उत्पन्न किया कि, वे सुखी हों और आज्ञा की कि, तप करो! तब वे तप करनेलगे और उस तप करनेसे स्वर्गादिक को प्राप्त होनेलगे। पर उन सुखों को भोगकर वे फिर गिरे और दुःखी हुये तब ब्रह्माजी ने ऐसे देखकर सत्यवाक् धर्मको प्रतिपादन किया और उनके सुखके निमित्त आज्ञाकी। उस धर्मके प्रतिपादन से भी लोगों को सुख प्राप्त होनेलगा और वहांभी कुछ काल सुख भोग कर फिर गिरे और दुःखी के दुःखी रहे। फिर ब्रह्माजी ने दान, तीर्थादिक पुण्यक्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञादी कि, इनके सेवनेसे

तुम सुखी रहोगे। जब वे जीव मनको सेवने लगे तब बड़े पुण्यलोक में प्राप्त होकर उनके सुख भोगने लगे और फिर कुछ काल अपने कर्म के अनुसार भोग भोगकर गिरे। तब उन्होंने तृष्णा की कि, बहुत सुख दुःखभये और दुःखकर आतुरहुये। उससमय ब्रह्माजी ने देखा कि, यह जीवन और मरण के दुःख से महादीन होते हैं इससे वह उपाय कीजिये जिससे उनका दुःख निवृत्त हो। हे रामचन्द्रजी! ब्रह्माजी ने विचारा कि, इनका दुःख आत्मज्ञान विना निवृत्त नहीं होगा इससे आत्मज्ञान को उत्पन्न कीजिये जिससे ये सुखी होवें। इस प्रकार विचार कर वे आत्मतत्त्व का ध्यान करनेलगे। उस ध्यान के करने से शुद्ध तत्त्वज्ञान की मूर्त्ति होकर मैं प्रकटहुआ। मैंभी ब्रह्माजी के समानहूं जैसे उनके हाथ में कमण्डलु है तैसे मेरे हाथ में भी है; जैसे उनके कण्ठ में रुद्राक्ष की माला है तैसे मेरे कण्ठ में भी है और जैसे उनके ऊपर मृगछाला है तैसेही मेरे ऊपर भी है। मेरा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। और मुझको जगत् कुछ नहीं भासता और भासता है तो सुषुप्ति की नाईं भासताहै। तब ब्रह्माजी ने विचार किया कि, इसको मैंने जीवों के कल्याण के निमित्त उत्पन्न किया है पर यह तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है और अज्ञान-मार्ग का उपदेश तब हो जब कुछ प्रश्नोत्तर हो और तभी मिथ्या का विचार होवे। हे रामजी! तब जीवों के कल्याण के निमित्त ब्रह्माजी ने मुझको गोद में बैठाया और शीशपर हाथ फेरा। तब तो जैसे चन्द्रमा की किरण से शीतलता होती है तैसेही मैं उससे शीतल होगया। फिर ब्रह्माजी ने मुझ को जैसे हंसको हंस कहे तैसे कहा; हे पुत्र! जीवों के कल्याण के निमित्त तुम एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त अज्ञान को अङ्गीकार करो। जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो औरों के निमित्त भी अङ्गीकार करते आये हैं। जैसे चन्द्रमा बहुत निर्मलहै परन्तु श्यामताको अङ्गीकार किये है तैसेही तुमभी एक मुहूर्त्त अज्ञान को अङ्गीकार करो। हे रामजी! इसप्रकार मुझको कहकर ब्रह्माजी ने शापदिया कि, तू अज्ञानी होगा। तब मैंने ब्रह्माजी की आज्ञा मानी और शाप को अङ्गीकार किया और मेरा जो

शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आप था सो अन्य की नाईं होगया। मेरी स्वभावसत्ता मुझको विस्मरण होगई और मेरा मन जाग आया। तब भाव अभावरूप जगत् मुझको भासने लगा और अपने को मैं वशिष्ठ और ब्रह्माजी का पुत्र जाननेलगा और नानाप्रकार के पदार्थ सहित जगत् जानकर उनकी ओर चञ्चल होनेलगा। फिर मैंने संसारजाल को दुःखरूप जानकर ब्रह्माजी से पूछा; हे भगवन्! यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? और कैसे लीन होता है? हे रामजी! जब मैंने इस प्रकार पिता ब्रह्माजी से प्रश्न किया तो उन्हों ने भलीप्रकार मुझको उपदेश किया तिससे मेरा अज्ञान नष्ट होगया। जैसे सूर्य के उदय होने से तम निवृत्त होजाता है और जैसे आदर्श को मार्जन करनेसे शुद्ध होजाता है तैसेही मैं भी शुद्ध हुआ। हे रामजी! उस उपदेश से मैं ब्रह्माजी से भी अधिक होगया। उससमय मुझको परमेष्ठी ब्रह्माजी ने आज्ञाकी कि, हे पुत्र! जम्बूद्वीप भरतखण्ड में तुमको अष्ट प्रजापति का अधिकार है वहां जाकर जीवों को उपदेश करो। जिसको संसार के सुख की इच्छा हो उसको कर्ममार्ग का उपदेश करना जिससे वे स्वर्गादिक सुख भोगें और जो संसार से विरक्त हो और आत्मपद की इच्छा रखता हो उसको ज्ञान उपदेश करना। हे रामजी! इसप्रकार मेरा उपदेश और और उत्पत्ति हुई और इसप्रकार मेरा आना हुआ॥

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे वशिष्ठोपदेशगमनन्नाम दशमस्सर्गः॥ १०॥

इतना सुनकर रामजी बोले, हे भगवन्! उस ज्ञान की उत्पत्ति से अनन्त जीवों की शुद्धि कैसे भई सो कृपाकर कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो शुद्ध आत्मतत्त्व है उसका स्वभावरूप संवेदन—स्फूर्त्ति है; वह ब्रह्मारूप होकर स्थित भई है। जैसे समुद्र अपनी द्रवतासे तरङ्ग रूप होता है तैसेही ब्रह्माजी हुये हैं। उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करके तीनों काल उत्पन्न किये। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो कलियुग आया उससे जीवों की बुद्धि मलीन होगई और पाप में विचर कर

शास्त्र वेद की आज्ञा उल्लङ्घन करने लगे। जब इसप्रकार धर्मकी मर्य्यादा छिप गई और पाप प्रकट भया तो जितनी कुछ राजधर्म की मर्य्यादा थी सोभी सब नष्ट होगई और अपनी इच्छा के अनुसार जीव विचर कर कष्ट पाने लगे। उनको देखकर ब्रह्माजी के करुणा उपजी और दया करके सुक्मे, सनत्कुमारसे और नारद से बोले कि, हे पुत्रो! तुम भूलोक में जाकर जीवों को शुद्ध उपदेशकर धर्मकी मर्य्यादा स्थापन करो। जिस जीव को भोग की इच्छा हो उसको कर्मकाण्ड और जप, तप, स्नान, संध्या, यज्ञादिक का उपदेश करना और जो संसार से विरक्त हुये हों और मुमुक्षु हों और जिन्हें परमपद पाने की इच्छा हो उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश करना। यह आज्ञा देकर हमको भूमिलोक में भेजा। तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारने लगे कि, जगत् की मर्य्यादा किस प्रकार हो और जीव शुभमार्ग में कैसे विचरैं? तब हमने यह विचार किया कि, प्रथम राज्य का स्थापन करो कि, उसकी आज्ञानुसार जीव विचरैं। निदान प्रथम दण्डकर्त्ता राज्य स्थापन किया। जिन राजों के बड़े वीर्य्यवान्, तेजवान् और उदार आत्मा थे उनको भी हमने अध्यात्मविद्या का उपदेश किया जिससे वे परमपद को प्राप्त भये और परमानन्दरूप अविनाशीपद ब्रह्मविद्या के उपदेश से उनको हुआ तब वे सुखी हुये। इस कारण ब्रह्मविद्या का नाम राजविद्या है। तब हमने वेद, शास्त्र, श्रुति और पुराणों से धर्मकी मर्य्यादा स्थापन कर जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदिक क्रिया प्रकट की और उपदेश किया कि, जीव इसके सेवन से सुखी होगा। तब सब फल को पाकर उसको सेवने लगे पर उन में कोई विरले निरहङ्कार हृदय की शुद्धता के निमित्त सेवन करते थे। हे रामजी! जो मूर्ख थे सो कामना के निमित्त मन में फल के कर्म करते थे और घटीयन्त्र की नाईं भटक कर कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे को जाते थे और जो निष्काम कर्म करते थे उनका हृदय शुद्ध होता था और ब्रह्मविद्या के अधिकारी होते थे। उस उपदेश द्वारा आत्मपद की प्राप्ति कर कितने तो जीवन्मुक्त हुये और कई राजा विदित वेद

सिद्धहुये सो राज्य की परम्परा चलाय हमारे उपदेश द्वारा ज्ञानी हुये। राजा दशरथ भी ज्ञानवान् हुये और तुम भी इसीदशा को प्राप्त हुये हो। जैसे तुम विरक्त हुयेहो वैसेही आगे भी स्वाभाविक विरक्त हुये हैं सो स्वभाव से ही देह शुद्ध है इसी कारण तुम श्रेष्ठहो। जो कोई अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है तिससे विरक्तता उपजती है सो तुमको नहीं हुई तुम्हें तो सब इन्द्रियों के विषय विद्यमान होने पर वैराग्य हुआ है; इससे तुम श्रेष्ठ हो। हे रामजी! मसान आदिक कष्ट के स्थानों को देखके तो सबको वैराग्य उपजता है कि, कुछ नहीं; मरजाना है पर उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है सो वैराग्य को दृढ़रखता है और मूर्ख है सो फिर विषय में आसक्त होता है। इससे जिनको अकारण वैराग्य उपजता है सो श्रेष्ठ हैं। हे रामजी! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने वैराग्य और अभ्यास के बलसे संसारबन्धन से मुक्त होजाते हैं-जैसे हस्ती बन्धन को तोड़के अपनेबलसे निकलजाता है और सुखी होता है तैसेही वैराग्य अभ्यास के बलसे बन्धन से ज्ञानी मुक्त होते हैं। हे रामजी! यह संसार बड़ा अनर्थरूप है। जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से इस बन्धन को नहीं तोड़ा उसको राग-द्वेषरूपी अग्नि जलाती है और जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से शास्त्र और गुरुके प्रमाण से ज्ञान साधन किया है वह उस पद को प्राप्त हुआ है। जैसे वर्षाकाल में बहुत वर्षा के होने से वनको दावानल नहीं जलासक्ता तैसेही ज्ञानी को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ताप कष्ट नहीं देसक्ते। हे रामजी! जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने संसार को विरस जानकर त्यागदिया है उनको संसार के पदार्थ गिरा नहीं सक्ते और जो मूर्ख हैं तिनको गिरादेते हैं। जैसे तीक्ष्ण पवन के वेगसे वृक्ष गिर जाते हैं परन्तु कल्पवृक्ष नहीं गिरता तैसेही हे रामजी! श्रेष्ठ पुरुष वही है जो संसार को विरस जानकर केवल आत्मतत्त्व की इच्छा करके परायण हो। उसको ही ब्रह्मविद्या का अधिकार है और वही उत्तमपुरुष है। हे रामजी! तुमभी वैसेही उज्ज्वल पात्र हो। जैसे कोमल पृथ्वीमें बीज बोते हैं तैसेही तुमको मैं उपदेश करताहूं। जिसको

भोग की इच्छा है और संसार की ओर यत्न करता है सो पशुवत् है। श्रेष्ठपुरुष वही है जिसको संसार तरने का पुरुषार्थ होता है। हे रामजी! प्रश्न उससे कीजिये जिससे जानिये कि, यह प्रश्न के उत्तर देने में समर्थ है और जिसको उत्तर देने की सामर्थ्य न हो उससे कदाचित् प्रश्न न करना। उत्तरदेने को समर्थ हो और उसके वचन में भावना न हो तब भी प्रश्न न करे क्योंकि; दम्भसे प्रश्नकरने में पाप होता है। गुरुभी उन्हीं को उपदेश करता है जो संसार से विरक्त हों और जिनको केवल आत्मपरायण होने की श्रद्धा और आस्तिकभाव हो। हे रामजी! जो गुरु और शिष्य दोनों उत्तम होते हैं तो वचन शोभते हैं। तुम उपदेश के शुद्धपात्र हो। जितने शिष्य के गुण शास्त्र में वर्णन किये हैं सो सब तुममें पाये जाते हैं और मैंभी उपदेश करने में समर्थ हूं इससेकार्य शीघ्रहोगा। हे रामजी! शुभगुणों से तुम्हारी बुद्धि निर्मल होरही है इसलिये मेरा सिद्धान्त का सार वचन तुम्हारे हृदय में प्रवेश करेगा। जैसे उज्ज्वल वस्त्र में केशर का रङ्ग शीघ्र चढ़जाता है तैसेही तुम्हारे निर्मल चित्त को उपदेशका रङ्ग लगेगा। जैसे सूर्य के उदय से सूर्यमुखी कमल खिलता है तैसेही तुम्हारी बुद्धि शुभगुण से खिल आई है। हे रामजी! जो कुछ शास्त्रका सिद्धान्त आत्मतत्त्व मैं तुमसे कहता हूं उसमें तुम्हारी बुद्धि शीघ्रही प्रवेश करेगी। जैसे निर्मल जलमें सूर्य की कान्ति प्रवेश करती है तैसेही तुम्हारी बुद्धि आत्मतत्त्व में शुद्धता से प्रवेशकरेगी। हे रामजी! मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़के प्रार्थनाकरता हूं कि, जो कुछ मैं तुमको उपदेश करता हूं उसमें ऐसी आस्तिकभावना कीजियेगा कि, इनवचनों से मेरा कल्याण होगा। जो तुमको धारणा न हो तो प्रश्न मतकरना। जिस शिष्य को गुरु के वचन में आस्तिक भावना होती है उसका शीघ्रही कल्याण होता है। अब जिससे तुमको आत्मपद प्राप्तहो सो मैं कहताहूं। प्रथम जो अज्ञानी जीव में असत्य बुद्धि है उसका संग त्यागकरो और मोक्षद्वार के चारों द्वारपालों से मित्रभावना करो। जब उनसे मित्रभाव होगा तब वह मोक्षद्वार में

पहुँचादेंगे और तभी तुमको आत्मदर्शन होवेगा । उन द्वारपालों के नाम सुनो—शम, सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग यह चारों द्वारपाल हैं जिस पुरुष ने इनको वश किया है उसको यह शीघ्रही मोक्षरूपी द्वार के अन्दर करदेते हैं। हे रामजी ! जो चारों वश न हों तो तीन कोही वश करो अथवा दो ही को वश करलो अथवा एकको वश करो । जो एकभी वश होगा तो चारों ही वश हो जायँगे । इन चारोंका परस्पर स्नेह है । जहां एक आताहै तहां चारों आकेरहते हैं । जिन पुरुषों ने इनसे स्नेह किया है सो सुखी हुये हैं और जिसने इसका त्याग किया है सो दुःखी हैं । हे रामजी ! यदि प्राण का त्याग हो तौभी एक साधनताबल से वश करना चाहिये एकके वश किये से चारोंही वशीभूत होंगे तुम्हारी बुद्धि में शुभगुणों ने आके निवास किया है जैसे सूर्यमें सब प्रकाश आजाते हैं तैसेही सन्तों और शास्त्रों ने जो निर्मल गुण कहे हैं सो सब तुम में पायेजाते हैं । हे रामजी ! तुम मेरे वचनों के तैसे अधिकारी हुए हो जैसे तन्द्री के सुनने को अंदोरा अधिकारी होता है । चन्द्रमा के उदय से जैसे चन्द्रवंशी कमल खिल आते हैं तैसेही शुभगुणों से तुम्हारी बुद्धि खिलआई है । हे रामजी ! सत्सङ्ग और सत्शास्त्र द्वारा बुद्धिको तीक्ष्ण करने से शीघ्रही आत्मतत्त्व में प्रवेश होता है । इससे श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने संसार को विरस जानके त्याग दिया है और सन्तों और सत्शास्त्रों के वचनों द्वारा आत्मपद पाने का यत्न करता है । वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है जो शुभमार्ग त्याग करके संसार की ओर लगा है वह महामूर्ख जड़ है जैसे शीतलतासे जल बर्फ होजाता है तैसेही अज्ञानी मूर्खता से दृढ़ आत्ममार्ग से जड़ होजाता है । हे रामजी ! अज्ञानी के हृदयरूपी बिलमें दुराशारूपी सर्प रहता है इससे वह कदाचित् शान्ति नहीं पाता और कभी आनन्द से प्रफुल्लित नहीं होता वह तैसेही आशा से सदा संकुचित रहता है जैसे अग्नि में मांस सकुचजाता है । हे रामजी ! आत्मपद के साक्षात्कार में विशेष आवरण आशाही है । जैसे सूर्य के आगे मेघ का आवरण होता है तैसेही आत्मतत्त्व के आगे

दुराशा आवरण है। जब आशारूपी आवरण दूर हो तब आत्मपद का साक्षात्कार होवे। हे रामजी! आशा तब दूर हो जब सन्तों की संगति और सत्शास्त्रों का विचार हो हे रामजी! संसाररूपी एक बड़ा वृक्ष है सो बोधरूपी खड्ग से छेदा जासक्ता है। जब सत्संग और सत्शास्त्र से बुद्धिरूपी स्वर्ग तीक्ष्ण हो तब संसाररूपी भ्रम का वृक्ष नष्ट होजाता है। जब शुभगुण होते हैं तब आत्मज्ञान आके विराजता है। जहां कमल होते हैं तहां भौंरे भी आके स्थित होते हैं। शुभगुणों में आत्मज्ञान रहता है। हे रामजी! शुभगुणरूप पवन से जब इच्छारूपी मेघ निवृत्त होता है तब आत्मारूपी चन्द्रमा का साक्षात्कार होता है। जैसे चन्द्रमा के उदय हुये आकाश शोभा देता है तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुये से तुम्हारी बुद्धि खिलेगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेवशिष्ठोपदेशोनामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब तुम मेरे वचन के अधिकारी हो मूर्ख मेरे वचन के अधिकारी नहीं क्योंकि; जप, तप, वैराग्य, विचार, सन्तोष आदि जिज्ञासु के शुभ गुण जो शास्त्रों और सन्तजनों ने कहे हैं उनसे तुम सम्पन्न हो और जितने गुरु के गुण शास्त्र में वर्णन किये हैं सो सब मुझमें हैं। जैसे रत्न से समुद्र सम्पन्न है तैसेही गुणों से मैं सम्पन्न हूं। इससे तुम मेरे वचनको रजो और तमो आदि गुणों को त्याग कर शुद्ध सात्त्विकवान् होकर सुनो। हे रामजी! जैसे चन्द्रमा के उदय होने से चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होता है और उसमें से अमृत निकलता है पर पत्थर की शिला में से नहीं निकलता तैसेही जो जिज्ञासु होता है उसीको परमार्थ वचन लगता है; अज्ञानी को नहीं लगता। जैसे निर्मल चन्द्रमुखी कमलिनी हो पर चन्द्रमा न हो तो वह प्रफुल्लित नहीं होती तैसेही जो शिष्य शुद्धपात्र हो और उपदेश करनेवाला ज्ञानवान् न हो तो उसको आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। इसलिये तुम मोक्ष के

पात्र हो और मैं भी परमगुरु हूं। मेरे उपदेश से तुम्हारा अज्ञान नष्ट हो-जावेगा। अब मैं मोक्ष का उपाय कहता हूं; यदि तुम उसको भले प्रकार विचारोगे तो जैसे महाप्रलय के सूर्य से मन्दराचल पर्वत जलजाता है तैसेही तुम्हारे मलीन मन की वृत्ति का अभाव होजावेगा। इससे हे रामजी! वैराग्य और अभ्यास के बल से इस मनको अपने में लीनकर शान्तात्मा हो। तुमने बाल्यावस्था से अभ्यास कर रक्खा है इससे मन उपशम पाके आत्मपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! जिन्होंने सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद पाया है सो सुखी भये हैं, फिर उनको दुःख नहीं लगा क्योंकि; दुःख देहाभिमान से होता है सो देहका अभि-मान तो तुमने त्यागही दिया है। जिसने देह का अभिमान त्याग दिया है और देह का आत्मता से फिर ग्रहण नहीं करता सो सुखी रहता है। हे रामजी! जिसने आत्मा का बल धरके विचार द्वारा आत्मपद प्राप्त किया है वह लोक अकृत्रिम आनन्द से सदा पूर्ण है और सब जगत् उसको आनन्दरूप भासता है। जो असम्यग्दर्शी हैं उनको जगत् अनर्थ-रूप भासता है। हे रामजी! यह संसाररूप सर्प अज्ञानियों के हृदय में दृढ़ होगया है वह योगरूपी गारुड़ मन्त्र करके नष्ट होजाता है, अन्यथा नहीं नष्ट होता। सर्प के विष से एक जन्म में मरता है और संसरणरूपी विष से अनेक जन्म पाकर मरता चला जाता है—कदाचित् शान्तिमान् नहीं होता। हे रामजी! जिस पुरुष ने सत्सङ्ग और सत्शास्त्र के वचन द्वारा आत्मपद को पाया है वह आनन्दित हुआ है उसको भीतर बाहर सब जगत् आनन्दरूप भासता है और सब क्रिया करने में उसे आनन्द विलास है। जिसने सत्सङ्ग और शत्शास्त्रों का विचार त्यागा है और संसार के सम्मुख है उसको संसार अनर्थरूप दुःख देता है। कोई सर्प के दंश से दुःखी होते हैं, कोई शस्त्र से घायल होते हैं, कितने अग्नि में पड़े की नाईं जलते हैं, कितने रस्सी के साथ बँधे होते हैं और कितने अन्धकूप में गिर के कष्ट पाते हैं। हे रामजी! जिन पुरुषोंने सत्सङ्ग और सत्शास्त्रों द्वारा आत्मपद को नहीं पाया उनको नरकरूप अग्नि में

जलना, चक्की में पीसाजाना; पाषाण की वर्षा से चूर्ण होना; कोल्हू में पेरा जाना और शस्त्र से काटाजाना इत्यादिक जो बड़े बड़े कष्ट हैं प्राप्त होते हैं। हे रामजी! ऐसा दुःख कोई नहीं जो इस जीव को प्राप्त नहीं होता; आत्मा के प्रमाद से सब दुःख होते हैं। जिन पदार्थों को यह रमणीक जानता है सो चक्रकी नाईं चञ्चल हैं; कभी स्थिर नहीं रहते। सत्मार्ग को त्यागकर जो इनकी इच्छा करते हैं सो महादुःख को प्राप्त होते हैं और उनका दुःख इसलिये नष्ट नहीं होता कि, वह ज्ञान के निमित्त पुरुषार्थ नहीं करते। जो पुरुष संसार को निरस जानकर पुरुषार्थ की ओर दृढ़ हुआ है उसको आत्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामजी! जिस पुरुष को आत्मपद की प्राप्ति भई है उसको फिर दुःख नहीं होता। अज्ञानी को संसार दुःखरूप है और ज्ञानी को सब जगत् आनन्दरूप है—उसको कुछ भ्रम नहीं रहता। हे रामजी! ज्ञानवान् में नानाप्रकार की चेष्टा भी दृष्टि आती हैं तौभी वह सदा शान्त और आनन्दरूप है। संसारका दुःख उसको स्पर्श नहीं करसक्ता क्योंकि; उसने ज्ञानरूपी कवच पहिना है। हेरामजी! ज्ञानवान् कोभी दुःख होता है बड़े बड़े ब्रह्मर्षि और राजर्षि बहुत ज्ञानवान् भये हैं। वेभी दुःख को प्राप्त होतेरहेहैं परन्तु वे दुःख से आतुर नहीं होतेथे वे सदा आनन्द-रूपहैं। जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि नानाप्रकार की चेष्टा करते जीव की दृष्टि आते हैं पर अन्तर से वे सदा शान्तरूप हैं; उनको कर्ता का कुछ अभिमान नहीं। हे रामजी! अज्ञानरूपी मेघसे उत्पन्न मोहरूपी कुहड़ों का वृक्ष ज्ञानरूपी शरत्काल से नष्ट होजाता है। इससे स्व-सत्ता को प्राप्त होता है और सदा आनन्द से पूर्ण रहता है। वह जो कुछ क्रिया करते हैं सो तिनको बिलासरूप है सब जगत् आनन्द-रूप है। शरीररूपी रथ और इन्द्रियरूपी अश्व हैं। मनरूपी रस्से से उन अश्वों को खींचते हैं। बुद्धिरूपी रथभी वही है जिस रथमें वह पुरुष बैठा है और इन्द्रियरूपी अश्व उसको खोटे मार्ग में डालते हैं। ज्ञानवान् के इन्द्रियरूपी अश्व ऐसेहैं कि, जहां जातेहैं वहां आनन्दरूप

हैं; किसी ठौर में खेद नहीं पाते सब क्रिया में उनको विलास है और सर्वदा आनन्द से तृप्त रहते हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठमुमुक्षुप्रकरणेतत्त्वज्ञमाहात्म्यं नामद्वादशस्सर्गः ॥ १२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसी दृष्टिका आश्रय करो कि, तुम्हारा हृदय पुष्ट हो फिर संसारके इष्ट अनिष्ट से चलायमान न होगा। जिस पुरुष को इसप्रकार आत्मपद की प्राप्तिहुई है सो आनन्दित हुआ है। वह न शोक करता है, न याच्आ करता है और हेयोपादेय सेभी रहित परम शान्तिरूप, अमृतसेपूर्णहो रहाहै। वह पुरुष नानाप्रकारकी चेष्टाकरते दृष्टिआताहै परन्तु वास्तव में कुछ नहीं करता। जहां उसके मनकी वृत्ति जातीहै वहां आत्मसत्ता भासती है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृतसे पूर्ण रहता है तैसेही ज्ञानवान् परमानन्द से पूर्णरहता है। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे अमृतरूपी वृत्ति कही है इसको तब जानोगे जब तुमको साक्षात्कार होगा। जैसे चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता तैसेही आत्मज्ञान की प्राप्ति होने से सब दुःख नष्ट होजाते हैं। अज्ञानी को कभी शान्ति नहीं होती; वह जो कुछ क्रिया करता है उसमें दुःखपाता है जैसे कक्कर के वृक्ष में कण्टककी ही उत्पत्ति होती है तैसेही अज्ञानीको दुःखकी ही उत्पत्ति होती। हे रामजी! इस जीवको मूर्खता और अज्ञानता से बड़े २ अद्भुत दुःख प्राप्त होते हैं जिनके समान और दुःख नहीं। यदि आत्मतत्त्व की जिज्ञासा में हाथ में ठीकराले चाण्डाल के घरकी भिक्षाग्रहण करे वहभी और ऐश्वर्यों से श्रेष्ठ है पर मूर्खता से जीना व्यर्थ है। उस मूर्खता के दूरकरने का म मोक्ष उपाय कहताहूं। यह मोक्ष उपाय परमबोधका कारण है। इसके लिये कुछ संस्कृत बुद्धि भी होनी चाहिये जिससे पद पदार्थ का बोध हो और मोक्षउपाय शास्त्र को विचारै तो उसकी मूर्खता नष्ट होकर आत्मपदकी प्राप्ति होगी। नानाप्रकार के दृष्टान्तों सहित जैसा आत्मबोध का कारण यह शास्त्र है वैसा कोई शास्त्र त्रिलोकी में नहीं। इसे जब विचारोगे तब परमानन्द को पावोगे ॥ यह शास्त्र अज्ञान

तिमिर के नाशकरने को ज्ञानरूपी शलाका है। जैसे अन्धकार को सूर्य नाशकरता है तैसेही अज्ञानको इस शास्त्रका विचार नाशकरता है। हे रामजी! जिसप्रकार इस जीवका कल्याण है सो सुनिये। जब ज्ञानवान् गुरु सत्शास्त्रों का उपदेश करे और शिष्य अपने अनुभव से ज्ञानपावे अर्थात् गुरु अनुभव और शास्त्र जब ये तीनों इकट्ठे मिलें तब कल्याण होता है। जब तक अकृत्रिम आनन्द न मिले तबतक दृढ़ अभ्यास करे। उस अकृत्रिम आनन्द को प्राप्त करनेवाला मैं गुरु हूं। जीवमात्र का मैं परममित्र हूं। हमारी संगति जीव को आनन्द प्राप्त करानेवाली है। इसलिये जो कुछ मैं कहता हूं सो तुम करो। संसार के क्षणमात्र के भोगों को त्यागकरो। क्योंकि, विषय के परिणाम में अनन्तदुःख हैं और हमसे ज्ञानवानों का संगकरो। हमारे वचनों के विचार से तुम्हारे सब दुःख नष्ट होजावेंगे। जिस पुरुष ने हमारे साथ प्रीति की है उसको हमने आनन्द की प्राप्ति, जिस से ब्रह्मादिक आनन्दितभये हैं; करादी है। ज्ञानवान् आनन्दित हुये हैं और निर्दुःख पद को प्राप्तहुये हैं। हे रामजी! आत्मा का प्रमाद जीव को दीन करताहै। जिसने सन्तों और शास्त्रों के विचार द्वारा दृश्य को अदृश्य जानाहै वह निर्भयहुआ है। अज्ञानी का हृदयकमल तबतक सकुचा रहताहै जबतक तृष्णारूपी रात्रि नष्ट नहीं होजाती है और हृदयकमल आनन्द से नहीं खिलआता। हे रामजी! जिसपुरुष ने परमार्थमार्ग त्यागदिया है और संसार के खान पान आदि भोग में मग्नहुआ है उस को तुम मेढक जानो, जो कीचमें पड़ा शब्दकरताहै। हे रामजी! यह संसार बड़ा आपदा का समुद्रहै। इसमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुषहै वह सत्संग और सत्शास्त्र के विचार से इस समुद्र को उलंघजाता है और परमानन्द निर्भयपद को जो आदि, अन्त और मध्य से रहित है प्राप्तहोता है और जो संसारसमुद्रके सम्मुख हुआ है वह दुःखसे दुःखरूपपदको प्राप्त होता है और कष्ट से कष्ट नरक को प्राप्त होता है; जैसे विष को विष जान उसका पान करता है और वह विष उसको नाशकरता है तैसेही जो पुरुष संसार को असत्य जानकर

फिर संसार की ओर यत्न करता है सो मृत्यु को प्राप्तहोता है। हे रामजी! जो पुरुष आत्मपद से विमुख है पर उसे कल्याणरूप जानता है और उसके अभ्यास का त्यागकर संसार की ओर धावता है वह वैसेही नाश होगा और जन्म मरण को पावेगा जैसे किसी के घर में अग्नि लगे और वह तृण के घर और तृणही की शय्या में शयनकरे तो वह नाश को पावे। जो संसार के पदार्थ देख कर राग द्वेषवान् हुये हैं वे सुख बिजुलीकी चमक से हैं जो होके मिट जाते हैं-स्थिर नहीं रहते। संसार का दुःख आगमापायी है। हे रामजी! यह संसार अविचार से भासता है और विचार किये से लीन होजाता है। यदि विचार किये से लीन न होता तो तुमको उपदेश करने का काम नहीं था। इसीकारण पुरुषार्थ चाहिये-जैसे हाथ में दीपक हो और अन्धा होकर कूप में गिरे सो मूर्खता है तैसेही संसार भ्रम के निवारणवाले गुरु शास्त्र विद्यमान हैं जो उनकी शरण न आवे वह मूर्ख है। हे रामजी! जिस पुरुष ने सन्त की संगति और सत्शास्त्र के विचारद्वारा आत्मपद को पाया है सो पुरुष केवल कैवल्यभाव को प्राप्त हुआ है अर्थात् शुद्ध चैतन्य को प्राप्त हुआ है और संसार भ्रम उनका निवृत्त होगया है। हे रामजी! यह संसार मन के संसरने से उपजा है जीव का कल्याण बान्धव, धन, प्रजा, तीर्थ, देव-द्वार और ऐश्वर्य से नहीं होता केवल एकमन के जीतने से कल्याण होता है। हे रामजी! जिसको ज्ञान परमपद रसायन कहते हैं; जिस के पाये से जीव का नाश न हो और जिसमें सर्वसुख की पूर्णता हो इसी का साधन समता और संतोष है। इनसे ज्ञान उत्पन्न होता है। आत्म-ज्ञानरूपी एक वृक्ष है उसका फूल शान्ति है और स्थिति फल है जिस पुरुष को यह ज्ञान प्राप्त हुआ है सो शान्तिमान् होकर निर्लेप रहता है। उसको संसार का भावाभावरूप स्पर्श नहीं है जैसे आकाश में सूर्य उदय होने से जगत् की क्रिया होती है और जब वह अदृश्य होता है तब जगत् की क्रिया भी लीन हो जाती है; और जैसे उस क्रिया के होने और न होने में आकाश ज्यों का त्यों है तैसेही ज्ञानवान् सदा

निर्लेप है उस आत्मज्ञान की उत्पत्ति का उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है। हे रामजी! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्र को श्रद्धासंयुक्त पढ़े अथवा सुनै तो उसी दिन से वह मोक्षका भागी हो। मोक्ष के चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमसे कहता हूं। जब इनमें से एक भी अपने वश हो तब मोक्ष-द्वार में शीघ्रही प्रवेश होगा उन चारों का नाम सुनिये; हे रामजी! शम जीव के परम विश्राम का कारण है। यह संसार जो दिखता है सो मरुस्थल नदीवत् है इसको देखकर मूर्ख अज्ञानी सुखरूप जल जान कर मृग के समान दौड़ता है और शान्ति को नहीं प्राप्त होता। जब शमरूपी मेघ की वर्षा हो तब सुखी हो। हे राम जी! शमही परम-आनन्द, परमपद और शिवपद है। जिस पुरुष ने शम पाया है सो संसारसमुद्र से पार हुआ है। उसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। हे रामजी! जैसे चन्द्र उदय होता है तब अमृत की कणा फूटती हैं और शीतलता होती है तैसेही जिसके हृदय में शमरूपी चन्द्रमा उदय होता है उसके सब ताप मिटजाते हैं और परम शान्तिमान् होता है। हे रामजी! शम देवता के अमृत समान कोई अमृत नहीं शम से परमशोभा की प्राप्ति होती है। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की कान्ति परम उज्ज्वल होती है तैसेही शम को पाके जीवकी उज्ज्वल कान्ति होती है। जैसे विष्णु के दो हृदय हैं – एक तो अपने शरीर में और दूसरा सन्तों में; तैसेही जीव के भी दो हृदय होते हैं एक अपने शरीर में और दूसरा शम में। जैसा आनन्द शमवान् को होता है तैसा अमृत के पिये से भी नहीं होता। हे रामजी! कोई प्राण से प्रिय अन्तर्द्धान होकर फिर प्राप्त हो तो जैसा आनन्द होता है उस आनन्द से भी अधिक आनन्द शमवान् को होताहै। उसके दर्शन से भी जैसा आनन्द होता है ऐसा आनन्द राजा, मन्त्री और सुन्दर स्त्री को भी नहीं। हे रामजी! जिस पुरुष को शमकी प्राप्ति हुईहै वह वन्दना करने और पूजने योग्य है। जिसको शमकी प्राप्ति हुई है तिसको उद्वेग नहीं आता और और लोगों से भी उद्वेग नहीं पाता। उस की क्रिया और वचन अमृत की नाईं मीठे और चन्द्रमा

की किरण समान शीतल और सबको हृदयाराम हैं । हे रामजी ! जैसे बालक माता को पाके आनन्दित होता है तैसेही जिसको शम की प्राप्ति भई है उसके संग से जीव अधिक आनन्दवान् होता है। जैसे किसीका बान्धव मुवा हुआ फिर आवे और उसको आनन्द प्राप्त हो उससे भी अधिक आनन्द शमसम्पन्न पुरुष को होता है। हे रामजी ! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती और त्रिलोकी के राज्य पाये से भी नहीं होता । जिसको शम की प्राप्ति हुई है उसके शत्रु भी मित्र होजाते हैं; उसको सर्प और सिंह का भय भी नहीं रहता बल्कि किसीका भी भय नहीं रहता वह सदा निर्भय शान्तरूप रहता है । हे रामजी ! जो कोई कष्ट प्राप्त हो और काल की अग्नि भी आलगे तोभी वह चलायमान नहीं होता—सदा शान्तरूप रहता । जैसे शीतल चांदनी चंद्रमा में स्थित है तैसेही जो कुछ शुभ गुण और संपदा है सब शमवान् के हृदय में आस्थित होती हैं । हे रामजी ! जो पुरुष आध्यात्मिकादि ताप से जलता है उसके हृदय में कदाचित् शम की प्राप्ति हो तो सब ताप मिट जाते हैं । जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा से शीतल होजाती है तैसे ही उसका हृदय शीतल होजाता है । जिसको शमकी प्राप्ति हुई है सो सब क्रिया में आनन्दरूप है—उसको कोई दुःख नहीं स्पर्श करता । जैसे वज्र और शिला को बाण नहीं वेध सक्ता तैसेही जिस पुरुष ने शमरूपी कवच पहिना है उसको आध्यात्मिकादि ताप वेध नहीं सक्ते—वह सर्वदा शीतलरूप रहता है । हे रामजी ! तपस्वी, पण्डित, याज्ञिक और धनाढ्य पूजा में मान करने योग्य हैं परन्तु जिसको शम की प्राप्ति हुई है सो सबसे उत्तम और सबके पूजने योग्य है । उसके मनकी वृत्ति आत्मतत्त्व को ग्रहण करती है और सब क्रिया में सोहती है । जिस पुरुष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध क्रिया के विषयों के इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष नहीं होता उसको शान्तात्मा कहते हैं । हे रामजी ! जो संसार के रमणीय पदार्थ में बध्यमान नहीं होता और आत्मानन्द से पूर्ण है उसको शान्तिमान् कहते हैं । उसको संसार के शुभ अशुभ का

मलिनपना नहीं लगता वह तो सदा निर्लेप रहता है। जैसे आकाश सब पदार्थों से निर्लेप है तैसेही शान्तिमान् सदा निर्लेप रहता है। हे रामजी! ऐसा पुरुष इष्ट विषय की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता और अनिष्ट की प्राप्ति में शोकवान् नहीं होता। वह अन्तःकरण से सदा शान्त रहता है और उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता; वह अपने आपमें सदा परमानन्दरूप रहता है। जैसे सूर्य के उदय होतेही अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही शान्ति के पाये सब दुःख नष्ट होकर सदा निर्विकार रहता है। हे रामजी! वह पुरुष सब चेष्टा करते दृष्टि आता है परन्तु सदा निर्गुणरूप है; कोई क्रिया उसको स्पर्श नहीं करती। जैसे जल में कमल निर्लेप रहता है तैसेही शान्तिमान् सदा निर्लेप रहता है। हे रामजी! जो पुरुष बड़ी राज्य—सम्पदा और बड़ी आपदा को पाकर ज्यों का त्यों अलग रहता है उसे शान्तिमान् कहिये। हे रामजी! जो पुरुष शान्ति से रहित है उसका चित्त क्षण क्षण राग द्वेष से तपता है और जिसको शान्ति की प्राप्ति भई है सो भीतर बाहर शीतल और सदा एकरस है। जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है तैसेही वह सदा शीतल रहता है। उसके मुखकी कान्ति बहुत सुन्दर होजाती है। जैसे निष्कलङ्क चन्द्रमा है तैसेही शान्तिमान् निष्कलङ्क रहता है। हे रामजी! जिसको शान्ति प्राप्ति भई है सो परम आनन्दित हुआ है और उसीको परमलाभ प्राप्त होताहै। ज्ञानी इसीको परमपद कहते हैं। जिसको पुरुषार्थ करना है उसको शान्ति की प्राप्ति करनी चाहिये। हे रामजी! जैसे मैंने कहाहै उस क्रमसे शान्ति का ग्रहण करो तब संसारसमुद्रकेपार पहुँचोगे। इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे शमनिरूपणंनाम त्रयोदशस्सर्गः॥१३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब विचार का निरूपण सुनिये। जब हृदय शुद्ध होता है तब विचार होता है और शास्त्रार्थ के विचार द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है। हे रामजी! अज्ञानवन में आपदारूपी बेलि की उत्पत्ति होती है उसको विचाररूपी खड्ग से जब काटोगे तब शान्त आत्मा होगे। मोहरूपी हस्ती जीव के हृदयकमल का खण्ड खण्ड करता

डालता है-अभिप्राय यह है कि, इष्ट अनिष्ट पदार्थ में राग द्वेष से छेदाजाता है। जब विचाररूपी सिंह प्रकटे तब मोहरूपी हस्ती का नाश कर शान्तात्मा हो। हे रामजी! जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई है उसे विचार और पुरुषार्थ से ही हुई है। जब प्रथम राजा विचारकर पुरषार्थ करता है तब उसीसे राज्य को प्राप्त होता है। प्रथम बल, दूसरे बुद्धि, तीसरे तेज, चतुर्थ पदार्थ का आगमन और पञ्चम पदार्थ की प्राप्ति इन पांचों की प्राप्ति विचार से होती है अर्थात् इन्द्रियों का जीतना, बुद्धि आत्माव्यापिनी और तेज पदार्थ का आगमन इनकी प्राप्ति विचार से होती है। हे रामजी! जिस पुरुष ने विचार का आश्रय लिया है वह विचार की दृढ़ता से जिसकी वाञ्छा करता है उसको पाता है। इससे विचार इसका परममित्र है विचारवान् पुरुष आपदा में नहीं मग्न होता जैसे तुम्बी जल में नहीं डूबती तैसेही वह आपदा में नहीं डूबता। हे रामजी! वह जो कुछ करता है विचारसंयुक्त करता है और विचारसंयुक्त ही देता लेता है। उसकी सब क्रिया सिद्धता का कारणरूप होती हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष विचार की दृढ़ता से ही सिद्ध होते हैं। विचार-रूपी कल्पवृक्ष में जिसका अभ्यास होता है सोई पदार्थों की सिद्धि को पाता है। हे रामजी! शुद्ध ब्रह्म का विचार ग्रहण करके आत्मज्ञान को प्राप्त होजाओ। जैसे दीपक से पदार्थ का ज्ञान होता है तैसेही पुरुष विचार से सत्य असत्यको जानता है। जो असत्य को त्यागकर सत्यकी ओर यत्न करता है उसेही विचारवान् कहते हैं। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में आपदा की तरङ्गें उठती हैं। विचारवान् पुरुष उनके भाव अभाव में कष्टवान् नहीं होता। जो कुछ क्रिया विचारसंयुक्त होती है उसका परिणाम सुख है और जो विचार विना चेष्टा होती है उससे दुःख प्राप्त होता है। हे रामजी! अविचाररूप कण्टक के वृक्ष से दुःखके बड़े कण्टक उत्पन्न होते हैं। अविचाररूपी रात्रि में तृष्णारूपी पिशाचिनी विचरती है और जब विचाररूपी सूर्य उदय होता है तब अविचाररूपी रात्रि और तृष्णारूपी पिशाचिनी नष्ट होजाती है। हे रामजी! हमारा यही आशी-

र्वाद है कि, तुम्हारे हृदयसे अविचाररूपी रात्रि नष्ट होजाय। विचाररू
सूर्य से अविचारित संसार दुःख का नाश होता है। जैसे बालक अवि
चार से अपनी परछाहीं को वैताल कल्प के भय पाता है और विचा
किये से भय नष्ट होजाता है तैसेही अविचारसे संसार दुःख देता
और सत्शास्त्र द्वारा युक्तिकर विचार कियेसे संसार का भय नष्ट हो
जाता है। हे रामजी ! जहां विचारहै तहां दुःख नहीं है। जैसे जहां प्रका
है तहां अन्धकार नहीं होता और जहां प्रकाश नहीं तहां अन्धका
रहता है; तैसेही जहां विचार है वहां संसारभय नहीं है और जहां विचा
नहीं तहां संसारभय रहता है। जहां आत्मविचार उत्पन्न होता है वह
सुख के देनेवाले शुभगुण स्थित होते हैं। जैसे मानसरोवर में कमलकी
उत्पत्ति होती है तैसेही विचार में शुभ गुणों की उत्पत्ति होती है। जहां
विचार नहीं है तहांही दुःख का आगमन होता है। हे रामजी ! जो कुछ
अविचार से क्रिया करते हैं सो दुःखका कारण होती है। जैसे चूहा बिल
को खोदके मृत्तिका निकालता है वह जहां इकट्ठी होती है वहां बिलकी
उत्पत्ति होती है तैसेही अविचारसे जीव मृत्तिकारूपी पापक्रिया को इकट्ठी
करता है और उससे आपदारूपी बिल उत्पन्न होती है। अविचाररूपी घुन
के खाये सूखे वृक्ष से सुखरूपी फल नहीं निकलते हैं। अविचार उसका
नाम है जिसमें शुभ और शास्त्रानुसार क्रिया न हो। हे रामजी ! विवेक
रूपी राजा है और विचाररूपी उसकी ध्वजा है जहां विवेकरूपी राजा
आता है वहां विचाररूपी ध्वजा भी उसके साथ फिरती है और जहां
विचाररूपी ध्वजा आती है वहां विवेकरूपी राजा भी आता है। जो पुरुष
विचार से सम्पन्न है सो पूजने योग्य है। जैसे द्वितीया के चन्द्रमाको सब
नमस्कार करते हैं तैसे ही विचारवान् को सब नमस्कार करते हैं। हे
रामजी ! हमारे देखते देखते अल्पबुद्धि भी विचार की दृढ़ता से मोक्षपद
को प्राप्त हुये हैं। इससे विचार सबका परम मित्र है। जैसे हिमालय पर्वत
भीतर बाहर से शीतल रहता है तैसे ही वह भी शीतल रहता है। देखो
विचार से जीव ऐसे पद को प्राप्त होता है जो नित्य, स्वच्छ, अनन्त और

परमानन्दरूप है। उसको पाकर फिर उसके त्याग की इच्छा नहीं होती और न और के ग्रहण की ही इच्छा होती है उसको इष्ट अनिष्ट सब समान हैं जैसे तरङ्ग के होने और लीन होने में समुद्र समान रहता है तैसेही विवेकी पुरुष को इष्ट अनिष्ट की समता रहती है और संसारभ्रम मिटजाता है। आधाराधेय से रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है। हे रामजी! यह जगत् अपने मनके मोह से उपजता है और अविचार से दुःखदायी दीखता है। जैसे अविचार से बालक को वैताल भासता है तैसे ही इसको जगत् भासता है। जब ब्रह्मविचार की प्राप्ति हो तब जगत् का भ्रम नष्ट होजावे। हे रामजी! जिसके हृदय में विचार होता है उसके समता की उत्पत्ति होती है। जैसे बीज से अंकुर निकल आता है तैसे ही विचार से समता हो आती है और विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है उस ओर आनन्द दृष्ट आता है; दुःख नहीं भासता। जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं दृष्टि आता तैसेही विचारवान् को दुःख नहीं दृष्ट आता। जहां अविचार है वहां दुःख है; जहां विचार है वहां सुख है। जैसे अन्धकार के अभाव हुए वैताल के भय का अभाव होजाता है तैसेही विचार किये से दुःख का अभाव होजाता है। हे रामजी! संसाररूपी दीर्घरोग के नाश करने को विचार बड़ी औषध है। जैसी पौर्णमासी के चन्द्रमा की उज्ज्वल कान्ति होती है तैसेही विचारवान् के मुख की उज्ज्वल कान्ति होती है। हे रामजी! विचार से ही परम पद की प्राप्ति होती है। जिससे अर्थ सिद्ध हो उसका नाम विचार है और जिससे अनर्थ सिद्ध हो उसका नाम अविचार है। जो अविचाररूपी मदिरा को पान करता है सो उनमत्त हो जाता है उससे शुभ विचार कोई नहीं होता और शास्त्र के अनुसार क्रिया भी उससे नहीं होती है। हे रामजी! इच्छारूपी रोग विचाररूपी औषध से निवृत्त होता है। जिस पुरुष ने विचार द्वारा परमार्थसत्ता का आश्रय लिया है सो परम शान्त हो जाता है और हेयोपादेयबुद्धि उसकी नहीं रहती वह सब दृश्य को साक्षीभूत होकर देखता है और संसार के भाव

अभाव में ज्यों का त्यों रहता है। वह उदय अस्त से रहित निस्संगरूप है। जैसे समुद्र जल से पूर्ण है तैसे ही विचारवान् आत्मतत्त्व से पूर्ण है। जैसे अन्धे कूप में पड़ा हुआ हाथ के बल से निकलता है तैसेही संसार-रूपी अन्धकूप में गिरा हुआ विचार के आश्रय होकर विचारवान् ही निकलने को समर्थ होता है। हे रामजी ! राजा को जो कोई कष्ट प्राप्त होता है तो वह विचार करके यत्न करता है तब कष्ट निवृत्त होजाता है; इससे तुम विचार कर देखो कि जो किसी को कष्ट प्राप्त होता है तो विचार से ही मिटता है। तुमभी विचार का आश्रय करके सिद्धि को प्राप्त हो। वह विचार इस प्रकार प्राप्त होता है कि, वेद और वेदान्त के सिद्धान्त को श्रवण कर पाठ करे और भले प्रकार विचारे तब विचार की दृढ़ता से आत्मतत्त्व को प्राप्त होगा। जैसे प्रकाश से पदार्थ का ज्ञान होता है तैसेही गुरु और शास्त्र के वचनों से तत्त्वज्ञान होता है जैसे प्रकाशमें अन्धे को पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती तैसे ही गुरु, शास्त्र और विचार से जो शून्य हो उसको आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! जो विचाररूपी नेत्र से सम्पन्न हैं सोई देखते हैं और जो विचार-रूपी नेत्र से रहित हैं वे अन्धे हैं। हे रामजी ! ऐसा विचार करे कि, "मैं कौन हूँ"? "यह जगत् क्या है?" "इसकी उत्पत्ति कैसे हुई है" और "लीन कैसे होता है"? इस प्रकार सन्तों और शास्त्रों के अनुसा[र] विचार करके सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जान जिसक[ो] असत्य जाने उसका त्याग करे और सत्य में स्थित हो। इसीका ना[म] विचार है। इस विचार से आत्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामजी[!] विचाररूपी दिव्यदृष्टि जिसको प्राप्त हुई है उसको सब पदार्थों [का] ज्ञान होता है और विचारसेही आत्मपद की प्राप्ति होती है, जिसके प[द] से परिपूर्ण होजाता है और फिर शुभ अशुभ संसार में चलायमान न[हीं] होता—ज्योंका त्यों रहता है। जबतक प्रारब्ध का वेग होता है तब[तक] शरीरकी चेष्टा होती है और जबतक अपनी इच्छा होती है तबतक श[रीर] की चेष्टा करता है फिर शरीर को त्यागकर केवल शुद्धरूप होजाता [है]

इससे; हे रामजी! ब्रह्मविचार का आश्रय करके संसारसमुद्र को तरजाओ। इतना रुदन रोगी और कष्टवान् पुरुष भी नहीं करता जितना विचाररहित पुरुष करता है। हे रामजी! जो पुरुष विचारसे शून्य है उसको सब आपदा आ प्राप्त होती हैं। जैसे सब नदी स्वभावसे ही समुद्र में प्रवेश करती हैं तैसेही अविचारसे सब आपदा प्रवेश करती हैं। हे रामजी! कीच का कीट, गर्त्त का कण्टक और अँधेरे बिलमें सर्प होना भला है परन्तु विचारसे रहित होना तुच्छ है। जो पुरुष विचारसेरहित होकर भोग में दौड़ता है वह श्वान है। हे रामजी! विचार से रहित पुरुष बड़ा कष्ट पाता है। इससे एकक्षण भी विचाररहित नहीं रहना। विचारसे दृढ़ होकर निर्भय रहना। "मैं कौन हूं" और दृश्य क्या है? ऐसा विचार करके और सत्यरूप आत्मा को जानकर दृश्य का त्याग करना। हे रामजी! जो पुरुष विचारवान् है सो संसार के भोगमें नहीं गिरता सत्य में ही स्थित होता है। जब विचार स्थित होताहै तब तत्त्वज्ञान होता है और जब तत्त्वज्ञानसे विश्राम होता है तब विश्रामसे चित्तका उपशम होकर दुःख नाश होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे विचारनिरूपणन्नाम चतुर्दशस्सर्गः॥१४॥

वशिष्ठजी बोले; हे अविचार शत्रुके नाशकर्त्तः, रामजी! जिस पुरुष को सन्तोष प्राप्त हुआ है वह परमानन्दित होकर त्रिलोकी के ऐश्वर्यको तृण की नाईं तुच्छ जानता है। हे रामजी! जो आनन्द अमृत के पान किये और त्रिलोक के राज्य से नहीं होता वह आनन्द सन्तोषवान् को होता है। हे रामजी! इच्छारूपी रात्रि हृदयरूपी कमल को सकुचा देती है; जब सन्तोषसूर्य उदय होता है तब इच्छारात्रिका अभाव होजाता है जैसे क्षीरसमुद्र उज्ज्वलता से शोभायमान है तैसेही संतोषवान् की कान्ति सुशोभित होती है। हे रामजी! त्रिलोकी के राजाकी भी इच्छा निवृत्त न भई तो वह दरिद्री है और जो निर्द्धन सन्तोषवान् है सो सब का ईश्वर है। सन्तोष उसका ही नाम है जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे और प्राप्तभी हो तो इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष न धरै। सन्तोषवान् सदा आनन्दपुरुष है और आत्मस्थिति से तृप्त हुआ है उसको और

इच्छा कुछ नहीं। संतुष्टता से उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होताहै तैसेही संतोषवान् प्रफुल्लित होजाता है जो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा नहीं करता और जो अनिच्छित प्राप्त हुई को यथाशास्त्र क्रमसे ग्रहण करता है उसका नाम संतोषवान् है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्ण होता है तैसेही संतोषवान् का हृदय संतुष्टता से पूर्ण होता है। जो सन्तोष से रहित है उसके हृदय-रूपी वन में सदा दुःख और चिन्तारूपी फूल फल उत्पन्न होते हैं। हे रामजी! जिसका चित्त सन्तोषसे रहित है उसको नानाप्रकार की इच्छा समुद्र की नानाप्रकार की तरंगों के समान उपजती हैं। सन्तुष्टात्मा परमआनन्दित है। उसको जगत् के पदार्थों में हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती। हे रामजी! जैसा आनन्द संतोषवान् को होता है वैसा आनन्द अष्टसिद्धि के ऐश्वर्य और अमृत के पान किये से भी नहीं होता। संतोषवान् सदा शान्तरूप और निर्मल रहता है। इच्छारूपी धूरि सर्वदा उड़तीरहती है सो सन्तोषरूपी वर्षा से शान्त होजाती है इस कारण संतोषवान् निर्मल है। हे रामजी! जैसे आंबका परिपक्व फल सुन्दर होता है और सबको प्यारा लगता है तैसेही संतोष-वान् पुरुष सबको प्यारा लगता है और स्तुति करने के योग्य है। जिस पुरुष को संतोष प्राप्त भया है उसको परमलाभ भया है। हे रामजी! जहां संतोष है वहां इच्छा नहीं रहती और सन्तोषवान् भोग में दीन होकर नहीं रहता। वह उदारात्मा सर्वदा आनन्द से तृप्त रहता है। जैसे मेघ पवन के आयेसे नष्ट होजाता है तैसेही सन्तोष के आये से इच्छा नष्ट होजाती है। जो संतोषवान् पुरुष है उसको देवता और ऋषीश्वर सब नमस्कार करते और धन्य धन्य कहते हैं। हे रामजी! जब इस सन्तोष को धरोगे तब परमशोभा पावोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेसन्तोषनिरूपणन्नामपञ्चदशस्सर्गः॥१५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितने दान और तीर्थादिक साधन हैं उनसे आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती; आत्मपद की प्राप्ति साधुसङ्ग सेही

होती है। साधुसङ्गरूपी एक वृक्ष है और उसका फूल आत्मज्ञान है। जिस पुरुष ने फूल की इच्छा की है सो अनुभवरूपी फल को पाता है जो पुरुष आत्मआनन्द से रहित है सो सत्सङ्ग करके आत्मानन्द से पूर्ण होता है, जो अज्ञान से मृत्यु पाता है सो सन्त के सङ्ग से ज्ञान पाकर अमर होता है और जो आपदा से दुःखी है सो सन्त के सङ्ग से सम्पदा पाता है। आपदारूपी कमल का नाश करनेवाली सत्सङ्गरूपी बरफ की वर्षा है। सत्सङ्गसेही आत्मबुद्धि प्राप्तहोती है जिससे मृत्यु नहीं होती और सब दुःखों से छूटकर परमानन्द को प्राप्तहोता है। हे रामजी। सन्त की संगति से हृदय में ज्ञानरूपी दीपक जलता है जिससे अज्ञान-रूपी तम नष्ट होजाता और बड़े २ ऐश्वर्य को प्राप्त होता है। फिर उसे किसी भोग्यपदार्थ की इच्छा नहीं रहती और बोधवान् हो के सबसे उत्तम पद में विराजता है जैसे कल्पवृक्ष के निकटगये से वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है तैसेही संसारसमुद्र के पार उतारनेवाले सन्तजन हैं। जैसे धीवर नौकासे पारलगाता है तैसेही सन्तजन युक्ति से संसारसमुद्र से पारकरते हैं। हे रामजी! मोहमेघ का नाश करनेवाला सन्त का सङ्ग पवन है। जिसको अनात्म देहादिक से स्नेह नष्ट भया है और शुद्ध आत्मा में जिसकी स्थिति है वह उससे तृप्तभया है। फिर संसार के इष्ट अनिष्ट में उसकी बुद्धि चलायमान नहीं होती; वह सदा समताभाव में स्थित रहता है। सन्तजन संसारसमुद्र के पार उतारने में पुलके समान हैं और आपदारूपी बेलि को जड़समेत नाश करनेवाले हैं। हे रामजी! सन्तजन प्रकाशरूप हैं; उनके सङ्गसे पदार्थों की प्राप्तिहोती है। जो अपने पुरुषार्थरूपी नेत्रसे हीन हुये हैं उनको पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती। जिसपुरुष ने सत्सङ्ग का त्याग किया है वह नरकरूपी अग्नि में लकड़ी की नाईं जरैगा और जिस पुरुष ने सत्सङ्ग किया है उसको नरक की अग्निका नाश करनेवाला सत्सङ्गरूपी मेघ है। हे रामजी! जिसने सत्सङ्गरूपी गङ्गा का स्नान किया है उसको फिर तप दान आदिक साधनों का प्रयोजन नहीं। वह सत्संगसेही परमगति को प्राप्तहोगा इससे और सब

उपायोंको त्यागकर सत्सङ्गको ही खोजना चाहिये जैसे निर्द्धन मनुष्य चिन्तामणि आदिक धनको खोजताहै तैसेही मुमुक्षु सत्सङ्गको खोजता है। जो अध्यात्मकादि तीनों तापसे जलता है उसको शीतल करनेवाला सत्सङ्ग ही है। जैसे तपीहुई पृथ्वी मेघसे शीतल होती है तैसेही हृदय सत्सङ्गसे शीतल होता है। हे रामजी! मोहरूपी वृक्षका नाश करनेवाला सत्सङ्गरूपी कुल्हाड़ा है। सत्सङ्गसेही मनुष्य अविनाशी पद को प्राप्त होताहै; जिसपदके पायेसे और कुछ पानेकी इच्छा नहीं रहती। इससे सब से उत्तम सत्सङ्ग ही है। जैसे सब अप्सराओंसे लक्ष्मी उत्तम हैं तैसेही सत्सङ्ग कर्त्ता सबसे उत्तम है। इससे अपने कल्याण के निमित्त सत्सङ्ग करनाही तुमको योग्य है। हे रामजी! ये जो चारों मोक्ष के द्वारपाल हैं उनका वृत्तान्त तुमसे कहा। जिसपुरुषने इनके साथ प्रीति की है वह शीघ्र आत्मा पद को प्राप्तहोगा और जो इनकी सेवा नहीं करने सो मोक्षको न प्राप्त होंगे। हे रामजी! इन चारोंमें से एकभी जहां आता है वहां तीनों और भी आजाते हैं। जैसे जहां समुद्र रहता है वहां सब नदी आजाती हैं तैसेही जहां शम आता है वहां सन्तोष, विचार और सत्सङ्ग ये तीनो भी आजाते हैं और जहां साधुसङ्गम होता है वहां सन्तोष, विचार और शम ये तीनों आजाते हैं। जहां कल्पवृक्ष रहता है वहां सब पदार्थ स्थित होते हैं। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में गुण कला सब इकट्ठी होजाती हैं तैसेही जहां सन्तोष आता है वहां और तीनोंभी आते हैं और जहां विचार आता है वहां सन्तोष, उपशम और सत्सङ्ग भी आरहते हैं। जैसे श्रेष्ठ मन्त्री से राज्यलक्ष्मी आ स्थित होती है तैसेही जहां विचार होता है वहां औरभी तीनों आते हैं। इससे हे रामजी! जहाँ ये चारों इकट्ठे होते हैं उसे परम श्रेष्ठ जानना। हे रामजी! यदि ये चारों न हों तो एकका तो अवश्य आश्रय करना। जब एक आवेगा तब चारों आ स्थित होंगे। मोक्षकी प्राप्ति होने के ये चार परम साधन हैं। और उपाय से मुक्ति न होगी। श्लोक "सन्तोषः परमो लाभः सत्सङ्गः परमं धनम् विचारः परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखम्॥" हे रामजी! ये परम कल्याण

कर्त्ता हैं। जो इन चारों से सम्पन्न है उसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं। इससे दन्तको दन्त लगा इनका आश्रय करके मनको वशीभूत करो। हे रामजी! मनरूपी हस्ती विचाररूपी अंकुश से वश होता है। मनरूपी वन में वासनारूपी नदी चलती है उसके शुभ अशुभ दो किनारे हैं। पुरुषार्थ करना यह है कि, अशुभकी ओर से मनको रोक के शुभकी ओर चलाना। जब अन्तर्मुख आत्मा के सम्मुख वृत्ति का प्रवाह होगा तब तुम परमपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है कि अविचाररूपी उँचाई को दूर करे। जब अविचाररूपी बेंट दूर होगा तब आपही प्रवाह चलेगा। हे रामजी! दृश्य की ओर जो प्रवाह चलता है सो बन्धन का कारण है। जब आत्मा की ओर अन्तर्मुख प्रवाह हो तब मोक्ष का कारण होजाय। आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे मुमुक्षुप्रकरणे साधुसङ्गनिरूपणं नाम षोडशस्सर्गः॥ १६॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! ये मेरे वचन परम पावन हैं। विचारवान् शुद्ध अधिकारी को ये परम बोध के कारण हैं। शुद्ध पात्र पुरुष इन वचनों को पाके सोहते हैं और वचन भी उनको पाके शोभा पाते हैं। जैसे शरद् काल में मेघ के अभाव से चन्द्रमा और आकाश शोभा देते हैं तैसेही शुद्धपात्र में ये वचन शोभते हैं और जिज्ञासु निर्मल वचनों की महिमा सुनके प्रसन्न होता है। हे रामजी! तुम परम पात्र हो और मेरे वचन अति उत्तम हैं। यह महारामायण मोक्षोपायक शास्त्र आत्मबोध का परम कारण है। इसमें परम पावन वाक्य की सिद्धता और युक्ति युक्तार्थवाक्य हैं और नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं। जिसके बहुत जन्म के पुण्य इकट्ठे होते हैं उसको कल्पवृक्ष मिलता है और फल से झुकपड़ता है तब उसको यह शास्त्र श्रवण होता है। नीच को इसका श्रवण प्राप्त नहीं होता और न उसकी वृत्ति इसके श्रवण में आती है। जैसे धर्मात्मा राजा की इच्छा न्यायशास्त्र के सुनने में होती है और

पापात्मा की नहीं होती तैसेही पुण्यवान् की इच्छा इसके सुनने में होती है और अधर्म की इच्छा नहीं होती। जो कोई इस मोक्षोपायक रामायण का आदि से अन्तपर्यन्त अध्ययन करेगा अथवा निष्कामसन्त के मुख से श्रद्धायुक्त सुनकर एकत्र भाव होकर विचारेगा उसका संसारभ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे रस्सी के जानने से सर्पका भ्रम दूरहोजाता है तैसेही अद्वैतात्मा तत्त्व के जानने से उसका संसारभ्रम नष्टहो जावेगा। इस मोक्षोपायक शास्त्र के बत्तीस सहस्र श्लोक और षट्प्रकरण हैं। पहिला वैराग्य प्रकरण वैराग्य का परमकारण है। हे रामजी! जैसे मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता और कदाचित् बड़ी वर्षाहो तो वहां भी वृक्ष होता है तैसेही अज्ञानीका हृदय मरुस्थल की नाईं है उसमें वैराग्यवृक्ष नहीं होता पर जो इस शास्त्र की बड़ी वर्षा हो तो वैराग्यवृक्ष उसमें उत्पन्न होता है। इस वैराग्य प्रकरण के एक सहस्र पांच सौ श्लोक हैं। उसके अनन्तर मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण है; उसके परम निर्मल वचन हैं। जैसे मलीनमणि मार्जन किये से उज्ज्वल होजाती है तैसेही इन वचनों से ज्ञानी का हृदय निर्मल होता है और विचार के बल से आत्मपद पाने को समर्थ होता है। इसके एक सहस्र श्लोक हैं। इसके अनन्तर उत्पत्ति प्रकरण के पांच सहस्र श्लोक हैं। उसमें बड़ी सुन्दर कथा दृष्टान्तों सहित कही है जिसके विचार से जगत् की उत्पत्ति का भाव मनसे चलायमान रहता है-अर्थात् इस जगत् का अत्यन्त अभाव जान पड़ता है। हे रामजी! इस जगत् में जो मनुष्य, देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि और स्वर्गलोक, पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश आदि स्थावर जङ्गम अज्ञान से भासते हैं इनकी उत्पत्ति कैसे हुई? जैसे रस्सी में सर्प; सीप में रूपा; सूर्य की किरणों में जल, आकाश में तारे और दूसरा चन्द्रमा; गन्धर्वनगर और मनोराज की सृष्टि भासती है और जैसे समुद्र में तरङ्ग; आकाश में नीलता और नौका में बैठने से किनारे के वृक्ष और पर्वत चलते दृष्टि आते हैं एवम् जैसे बादलके चलनेसे चन्द्रमा धावता दीखता है, स्तम्भ में पुतली भासती हैं और भविष्यत् नगर से आदि ले असत्य पदार्थ सत्य भासते हैं तैसे

ही सब जगत् है। अज्ञान से अर्थाकार भासता है और अज्ञान सेही इसकी उत्पत्ति दीखती है और ज्ञानसे लीन होजाता है। जैसे निद्रामें स्वप्नसृष्टि की उत्पत्ति होती है और जागेसे निवृत्त होजाती है तैसेही अविद्या से जगत् की उत्पत्ति होती है और सम्यक्ज्ञान से निवृत्त होजाती है वह अविद्या कुछ वस्तुही नहीं है। सर्वब्रह्म, जो चिदाकाशरूप शुद्ध, अनन्त और परमानन्दस्वरूप है उससे न जगत् उपजता है और न लीनहोता है—ज्योंका त्यों आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। उसमें जगत् ऐसा है जैसे भीत में चित्र होता है वा जैसे स्तम्भ में पुतलियां होती हैं जो हुये विना भासती हैं तैसेही यह सृष्टि मन में है वास्तव में कुछ बनी नहीं—सब आकाशरूप है जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप होता है तब नानाप्रकार का जगत् होके भासता है और जब निस्स्पन्द होता है तब मिट जाता है। इस प्रकार से जगत् की उत्पत्ति कही है। उसके अनन्तर स्थिति प्रकरण है; उसमें जगत् की स्थिति कही है। जैसे इन्द्र के धनुष में अविचार से रङ्ग है और जैसे सूर्य की किरणों में जल और रस्सी में सर्प भासता है और वह सब सम्यक् दृष्टि से निवृत्त होता है तैसेही अज्ञान से जगत् की प्रतीति होती है। केवल मनोराज से जगत् रच-लेता है—कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है। यह जगत् संकल्पमात्र है जैसे जब तक मनोराज है तबतक वह नगर होता है जब मनोराज का अभाव हुआ तब नगरका भी अभाव होजाता है तैसेही जबतक अज्ञान होता है तबतक जगत्की उत्पत्ति होती है जब संकल्प का लय होता है तब जगत् काभी अभाव होजाता है। जैसे ब्रह्माजी के दशपुत्रों की सृष्टि संकल्प से स्थित भई थी तैसेही यह जगत् भी है। कोई पदार्थ अर्थरूप नहीं। हे रामजी! इस प्रकार स्थितिप्रकरण कहा है। उसके तीन सहस्र श्लोक हैं; तिनके विचार से जगत् की सत्यता जाती रहती है। उसके अनन्तर उपशम प्रकरण है उसके पांच सहस्र श्लोक हैं। जैसे स्वप्न से जागे से वासना जाती रहती है तैसेही इसके विचार किये से अहं त्वमादिक वासना लीनहोजाती हैं क्योंकि; उसके निश्चय में जगत्

नहीं रहता। जैसे एक पुरुष सोया है उसको स्वप्न में जगत् भासता है और उसके निकट जो जाग्रत्पुरुष है उसके स्वप्न का जगत् आकाशरूप है तो जब आकाशरूप हुआ तब वासना कैसेरहै और जब वासना नष्टहुई तब मन का उपशम होजाता है। तब देखनेमात्र उसकी सब चेष्टाहोती है और मनमें अर्थरूप इच्छा नहीं होती। जैसे अग्नि की मूर्ति देखनेमात्र होती है-अर्थाकार नहीं होती-तैसेही उसकी चेष्टा होती है॥ हे रामजी! जैसे तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही इच्छा से रहित मन निर्वाण होता है। उसके अनन्तर निर्वाण प्रकरण है। उसमें परमनिर्वाण वचन कहे हैं। अज्ञान से चित्त और चित्त का सम्बन्ध है; विचार किये से निर्वाण होजाता है। जैसे शरद्काल में मेघ के अभाव से शुद्ध आकाश होता है तैसेही विचार से जीव निर्मल होता है। हे रामजी! अहंकार पिशाच विचार से नष्ट होता है और जितनी कुछ इच्छा फुरती है सो निर्वाण होजाती है। जैसे पत्थर की शिला फोरने से रहित होती है तैसेही ज्ञानवान् इच्छा से रहित होता है। तब जितनी कुछ उसकी जगत् की यात्रा है सो होचुकती है और जो कुछ करना है सो कर चुकता है। हे रामजी! शरीर होतेही वह पुरुष अशरीरी होजाता है। नानाप्रकार का जगत् उसको नहीं भासता: जगत् की नेति से वह रहित होता है और अहं त्वमादिक तमरूप जगत् उसको नहीं भासता। जैसे सूर्य को अन्धकार दृष्टि नहीं आता तैसेही उसको जगत् दृष्टि में नहीं आता और बड़े पद को प्राप्त होता है। जैसे सुमेरुपर्वत के किसी कोने में कमल होता है और उसपर भँवरे स्थित रहते हैं तैसेही ब्रह्म के किसी कोने में जगत् तुषाररूप है और जीवरूपी भँवरे उसपर स्थित हैं। वह पुरुष अचिन्त्य चिन्मात्र है; रूप, अवलोकन और मन उसका आकाशरूप होजाता है। वह उस पद को प्राप्त होता है जिसपद की उपमा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी नहीं कहसके॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेषट्प्रकरणविवरणन्नामसप्तदशस्सर्गः १७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ये परम उत्तम वाक्य हैं। इनको विचारनेवाला उत्तम पद को प्राप्तहोता है। जैसे उत्तम खेत में उत्तम बीज बोये से उत्तम फल की उत्पत्ति होती है तैसेही इनका विचारनेवाला उत्तम पद को प्राप्तहोता है। ये वाक्य युक्तिपूर्वक हैं; कदाचित् युक्ति से रहित वाक्यार्थ भी हों तो उनका त्याग करना चाहिये और युक्तिपूर्वक वाक्य अङ्गीकार करनाही चाहिये। हे रामजी ! जो ब्रह्माके भी वचन युक्तिसे रहित हों तो उनको भी सूखे तृण समान त्याग करना चाहिये और यदि बालक के वचन युक्तिपूर्वक हों तो उनको अङ्गीकार करना चाहिये। जैसे पिता के कूप का खारी जल हो तो उसे त्यागकर निकट के मिष्टकूप के जलको पान करते हैं तैसेही बड़े और छोटे का विचार न करके युक्तिपूर्वक वचन का अङ्गीकार करना चाहिये। हे रामजी ! मेरे वचन सब युक्तिपूर्वक और बोधके परमकारण हैं। जो पुरुष एकाग्र होके इसशास्त्र को आदि से अन्तपर्यन्त पढ़ेगा अथवा पण्डित से श्रवण करके विचारेगा तब उसकी बुद्धि संस्कारित होगी। जब पहिले वैराग्यप्रकरणको विचारोगे तब वैराग्य उपजेगा। जितने जगत् के रमणीय भोगपदार्थ हैं उनको बिरस जानकर किसी पदार्थ की वाञ्छा न करोगे। जब भोग में वैराग्य होता है तब शान्तिरूप आत्मतत्त्व में प्रतीत होती है और जब विचार से बुद्धि संस्कारित होगी तब शास्त्र का सिद्धान्त बुद्धि में स्थित होगा। जैसे शरद्काल में बादल के अभाव हुये से आकाश सब ओरसे स्वच्छ होजाता है तैसेही संसार के विकार छूटकर बुद्धि निर्मल होगी और फिर आधिव्याधि की पीड़ा न होगी। हे रामजी ! ज्यों २ विचार दृढ़ होगा त्यों त्यों शान्तात्मा होगा। इससे जितने संसार के यत्न हैं उनको त्याग इस शास्त्र के वारंवार विचार से चैतन्य सत्ता उदयहोगी और त्योंही त्यों लोभ, मोहादिक विकार की सत्ता नष्ट होगी। जैसे ज्यों २ सूर्य उदय होता है त्यों २ अन्धकार नष्ट होता है तैसेही विकार नष्ट होगा। तब उस पद की प्राप्ति होगी जिसके पाये से संसार के क्षोभ मिटजायँगे। जैसे शरद्काल में मेघ नष्ट

होजाता है तैसेही संसार के क्षोभ मिटजाते हैं। हे रामजी! जिस पुरुष ने कवच पहना हो उसको बाण नहीं बेध सके; तैसेही ज्ञानवान् पुरुष को संसार के राग द्वेष नहीं बेध सके। उसको भोग की भी इच्छा नहीं रहती और जब विषय भोग आते हैं तब उनको विषयभूत जानके बुद्धि ग्रहण नहीं करती। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर से बाहर नहीं निकलती तैसेही उसकी बुद्धि भीतर से बाहर नहीं निकलती। हे रामजी! बाहर से तो वह भी प्रकृति जन्म के समान दृष्टि आते हैं और जो कुछ अनिच्छित प्राप्त होते हैं उनको भुगतता हुआ दृष्टि में आता है पर अन्तर से उसको राग द्वेष नहीं फुरता। हे रामजी! जो कुछ जगत् की उत्पत्ति और प्रलयका क्षोभ है वह ज्ञानवान् को नष्ट नहीं करसक्ता। जैसे चित्र की बेलि को आंधी नहीं चला सक्ती तैसेही उसको जगत् का दुःख नहीं चला सक्ता। वह संसार की ओर से जड़ होजाता है और वृक्ष के समान गम्भीर पर्वत की नाईं स्थिर और चन्द्रमा के सदृश शीतल होजाता है। हे रामजी! वह आत्मज्ञान से ऐसे पद को प्राप्त होता है जिसके पाये से और कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। आत्मज्ञान का कारण यह मोक्षोपाय शास्त्र है। इसमें नाना प्रकार के दृष्टान्त कहे हैं। जो वस्तु अपरिच्छिन्न हो और देखने में न आवे और उसका न्याय देखने में हो तो उसको उपमा से विधिपूर्वक समझाने का नाम दृष्टान्त है। हे रामजी! यह जगत्कार्य कारण से रहित है तो आत्मा जगत् की एकता कैसे हो इससे मैं जो दृष्टान्त कहूंगा उसका एक अंश अङ्गीकार करना सब देश अङ्गीकार न करना। हे रामजी! कार्य कारण की कल्पना मूर्खों ने की है। उसके मिटने के लिये मैं स्वप्नदृष्टान्त कहता हूँ उसके समझने से तेरे मन का संशय नष्ट होजावेगा। दृग और दृश्य का भेद मूर्ख को भासता है। उसके दूर करने के अर्थ मैं स्वप्नदृष्टान्त कहूंगा जिसके विचारने से मिथ्याविभाग कल्पना का अभाव होता है। हे रामजी! ऐसी कल्पना का नाशकर्त्ता यह मेरा मोक्षउपाय शास्त्र है। जो पुरुष आदि से अन्त पर्यन्त इसे विचारेगा सो संस्कारी होगा। जो पद पदार्थ को जाननेवाला है

और दृश्य को वारंवार विचारे तो उसका दृश्यभ्रम नाशहोगा इस शास्त्र के विचार में किसी तीर्थ, तप, दान आदिक की अपेक्षा नहीं है। जहां स्थान हो वहां बैठे और जैसा भोजन गृह में हो वैसा करे और वारंवार इसका विचारकरे तो अज्ञान नष्ट होकर आत्मपद की प्राप्ति होवेगी। हे रामजी! यह शास्त्र प्रकाशरूप है। जैसे अन्धकार में पदार्थ नहीं दीखता और दीपक के प्रकाश से चक्षुसहित दीखता है तैसे शास्त्ररूपी दीपक विचाररूपी नेत्रसहित हो तो आत्मपद की प्राप्तिहो। हे रामजी! आत्मज्ञान विचार विना बर और शाप से प्राप्त नहीं होता। जब विचार करके दृढ़ अभ्यास कीजिये तब प्राप्त होता है। इससे इस मोक्षपावन शास्त्रके विचारसे जगद्भ्रम नष्ट होजावेगा और जगत् को देखते २ जगत् भाव मिट जावेगा। जैसे लिखीहुई सर्प की मूर्ति से विना विचार भ्रम होता है और जब विचारकर देखिये तब सर्पभ्रम मिटजाता है तैसेही यह जगद्भ्रम विचार किये से नष्ट होजाता और जन्म मरण का भय भी नहीं रहता। हे रामजी! जन्म मरण का भय भी बड़ा दुःखहै परन्तु इस शास्त्रके विचार से वहभी नष्ट होजाता है। जिन्होंने इसका विचार त्यागा है वह माता के गर्भ में कीट होकर भी कष्टसे न छूटेंगे और विचारवान् पुरुष आत्मपद को प्राप्त होंगे। जो श्रेष्ठ ज्ञानी है उसको अनन्त सृष्टि अपनाही रूप भासता है; कोई पदार्थ आत्मा से भिन्न नहीं भासता। जैसे जिसको जल का ज्ञान है उसको लहर और आवर्त्त सब जलरूप ही भासती है तैसेही ज्ञानवान् को सब आत्मरूपही भासता है और वह इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में इच्छा द्वेष नहीं करता-सदा एकरस मनके संकल्पते रहित शान्तरूप होता है जैसे मन्दराचल पर्वत के निकलनेसे क्षीरसमुद्र शान्त हुआ है तैसेही संकल्प विकल्प रहित मनुष्य शान्तिरूप होता है। हे रामजी! और तेज दाहक होता है परन्तु ज्ञान का तेज जिस घट में उदय होता है सो शीतल और शान्तिरूप होजाता है और फिर उसमें संसार का विकार कोई नहीं रहता। जैसे कलियुग में शिखावाला तारा उदय होता है और कलियुग के अभाव हुये नहीं

उदय होता तैसेही ज्ञानवान् के चित्तमें विकार उत्पन्न नहीं होता। हे रामजी! संसार भ्रम आत्मा के प्रमाद से उत्पन्न होता है पर आत्मज्ञान के प्राप्तहुये वह यत्न विनाही शान्त हो जाता है। फूल और पत्र के काटनेमें भी कुछ यत्न होता है परन्तु आत्मा के पाने में कुछ यत्न नहीं होता क्योंकि; बोधरूपी बोधही से जानता है। हे रामजी! जो जानने-मात्र ज्ञानस्वरूप है उसमें स्थित होने का क्या यत्न है। आत्माशुद्ध और अद्वैतरूप है और जगद्भ्रममात्र है। जिसकी सत्यता पूर्वापर विचार कियेसे न पाइये उसको भ्रममात्र जानिये और जिसका पूर्वापर विचार-किये से सत्य हो उसका सत्यरूप जानिये। सो इस जगत् की सत्यता आदि अन्त में नहीं है। इससे स्वप्नवत् है। जैसे स्वप्न आदि अन्त में कुछ नहीं होता तैसेही जाग्रत् भी आदि अन्त में नहीं है इससे जाग्रत् और स्वप्न दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! यह वार्त्ता बालक भी जानता है कि, जिसकी आदि अन्त में सत्यता न पाइये सो स्वप्नवत् है। जिसका आदि भी न हो और अन्तभी न रहे उसका मध्यभी असत्य जानिये। उसका दृष्टान्त यहहै कि, संकल्पपुरीवत्; ध्यान नगर की नाईं; स्वप्नपुरी की नाईं; वर और शाप से जो उपजता है उसकी नाईं और ओषधी से उपज की नाईं। इन पदार्थों की सत्यता न आदि में होती है और न अन्त में होती है और मध्य में जो भासता है सो भी भ्रममात्र है। तैसेही यह जगत् अकारणहै और कार्यकारण भाव सम्बन्धमें भासता है तो कार्य-कारण जगत् हुआ पर आत्मसत्ता अकारण है। जगत् साकार और आत्मा निराकार है। इस जगत् का दृष्टान्त जो आत्मा में देंगे उसका तुमको एक अंश ग्रहण करना चाहिये। जैसे स्वप्न की सृष्टि का पूर्व अपर भाव आत्मतत्त्वमें मिलता है क्योंकि; अकारण है और मध्यभाव का दृष्टान्त नहीं मिलता क्योंकि; उपमेय अकारण है तो उसका इसके समान दृष्टान्त क्योंकर हो। इससे अपने बोध के अर्थ दृष्टान्त का एक अंश ग्रहण करना। हे रामजी! जो विचारवान् पुरुष हैं सो गुरु और शास्त्र के वचन सुनके सुखबोध के अर्थ दृष्टान्त का एक २ अंश ग्रहण

करते हैं तो उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है क्योंकि; वे सारग्राहक होते हैं और जो अपने बोध के अर्थ दृष्टान्त का एक अंश ग्रहण नहीं करते और बाद करते हैं उनको आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। इस से दृष्टान्त का एक अंश सारभूत ग्रहण करके दृष्टान्त के सर्वभाव से न मिलना चाहिये और पृथक् को देखकर तर्क न करना चाहिये। जैसे अन्धकार में पदार्थ पड़ा हो तो दीपक के प्रकाश से देखलेते हैं क्योंकि; दीपक के साथ प्रयोजन है; ऐसे नहीं कहते कि दीपक किसका है और तेलबत्ती कैसी है और किस स्थान की है। तैसेही दृष्टान्त का एक अंश आत्मबोध के निमित्त अङ्गीकार करना। हे रामजी ! जिससे वाक् अर्थ सिद्ध हो और जो अनुभव को प्रकट करे वह वचन अङ्गीकार करना और जिससे वाक्यार्थ सिद्ध न हो उसका त्याग करना। जो पुरुष अपने बोध के निमित्त वचन को ग्रहण करता है वही श्रेष्ठ है और जो बाद के निमित्त ग्रहण करता है वह मूर्ख है। जो कोई अभिमान को लेकर ग्रहण करता है वह हस्ती के समान अपने शिर पर मट्टी डालता है—उसका अर्थ सिद्ध नहीं होता और जो अपने बोध के निमित्त वचन को ग्रहण करके विचारपूर्वक उसका अभ्यास करता है उसका आत्मा शान्त होताहै। हे रामजी! आत्मपद पानेके निमित्त अवश्यमेव अभ्यास चाहिये। जब शम, विचार, संतोष और सन्त समागम से बोध को प्राप्त हो तब परमपद को पाता है। हे रामजी ! जो कोई दृष्टान्त देताहै वह एकदेश लेकर कहता है; सर्वमुख कहने से अखण्डता का अभाव होजाता है। सर्वमुख दृष्टान्त मुख्य को जानिये वह सत्यरूप होता है। ऐसे तो नहीं होता कि, आत्मा तो सत्यरूप, कार्य कारण से रहित, शुद्ध और चैतन्य है उसके बताने के लिये कार्य कारण जगत् का दृष्टान्त कैसे दीजिये जो कोई जगत् का दृष्टान्त देता है वह केवल एक अंश लेके कहताहै और बुद्धिमान् भी दृष्टान्त के एक अंश को ग्रहण करते हैं। श्रेष्ठ पुरुष अपने बोध के निमित्त सार को ही ग्रहण करते हैं। जैसे क्षुधार्थी को चावलपाक प्राप्तहो तो भोजन करने का प्रयोजन है तैसेही

संतोष और शमादिकगुण और आत्मज्ञान परस्पर होतेह।शमादिक गुणों से ज्ञान उपजताहै और आत्मज्ञान करनेसे शमादिक गुण स्थित होतेहैं। जैसे बड़े ताल से मेघ और मेघ से ताल पुष्ट होता है तैसेही शमादिक गुणोंसे आत्मज्ञान होता और आत्मज्ञान से शमादि गुण पुष्ट होते हैं। ऐसे विचार करके शम सन्तोष दिक गुणों का अभ्यास करो तब शीघ्र ही आत्मतत्त्व को प्राप्त होगे। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष को शमादिक गुण स्वाभाविक प्राप्त होते और जिज्ञासु को अभ्यास करके प्राप्त होते हैं। जैसे धान्यकी पालना जब स्त्री करती है और ऊँचे शब्द से पक्षियों को उड़ाती है तब फल को पाती है और उससे पुष्ट होती है, तैसेही शम संतोषादिक के पालने से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। हे रामजी! इस मोक्ष उपाय शास्त्र को आदि से लेकर अन्त पर्यन्त विचारे तो भ्रान्ति निवृत्ति होके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व पुरुषार्थ से सिद्ध होते हैं। यह शास्त्र मोक्ष उपाय का परमकारण है। जो शुद्ध बुद्धिमान् पुरुष इसको विचारेगा उसको शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी। इससे इस मोक्ष उपाय शास्त्र का भलीप्रकार अभ्यास करो॥

इति श्री योगवाशिष्ठेमुमुक्षुप्रकरणेआत्मप्राप्तिवर्णनन्नामैकोन-
विंशातितमस्सर्गः॥ १९॥

समाप्तमिदं मुमुक्षुप्रकरणं द्वितीयम्॥

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

तृतीयउत्पत्तिप्रकरण प्रारम्भः ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! ब्रह्म और ब्रह्मवेत्ता में "तुम" "इदं" "सः" इत्यादिक सर्व शब्द आत्मसत्ता के आश्रय से स्फुरते हैं। जैसे स्वप्ने में सब अनुभव सत्ता में शब्द होते हैं तैसे ही यह भी जानो और जो उसमें यह विकल्प होते हैं कि, "जगत् क्या है" "कैसे उत्पन्न हुआ है" "और किसका है" इत्यादिक चोगचञ्चु हैं। हे रामजी ! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है यहां स्वप्न का दृष्टान्त विचारलेना चाहिये। इसके पहिले मुमुक्षुप्रकरण मैंने तुमसे कहाहै अब क्रमसे उत्पत्ति प्रकरण कहताहूं सो सुनिये—जो ज्ञान वस्तुस्वभाव है। हे रामजी ! जो पदार्थ उपजता है वही बढ़ता, घटता, बन्ध, मोक्ष और नीच-ऊँच होताहै और जो उपजता न हो उसका बढ़ना, घटना, बन्ध, मोक्ष और नीच, ऊँच होना भी नहीं होता। हे रामजी ! स्थावर-जंगम जो कुछ जगत् दीखता है सो सब आकाशरूप है। द्रष्टा का जो दृश्य के साथ संयोग है इसी का नाम बन्धन है। और उसी संयोग के निवृत्त होने का नाम मोक्ष है। उस निवृत्त का उपाय मैं कहता हूं। देहरूपी जगत् चिन्मात्र रूप है और कुछ उपजा नहीं और जो उपजा भासता है सो ऐसे है जैसे सुषुप्ति में स्वप्न। जैसे स्वप्ने में सुषुप्ति होती है तैसे ही जगत् का प्रलय होता है और जो प्रलय में शेष रहता है उसकी संज्ञा व्यवहार के निमित्त रखता है। नित्य, सत्य, ब्रह्म, आत्मा, सच्चिदानन्द इत्यादिक जिसके नाम रक्खे हैं वह उसका अपना आपरूप है। चेतनता से उसका नाम जीव हुआ है और शब्द अर्थों का ग्रहण करने लगा है। हे रामजी ! चेतन में जो स्पन्दता है सो संकल्प विकल्परूपी मन होकर स्थित हुआ है। उसके संसरने से

देश, काल, नदियां, पर्वत, स्थावर और जंगमरूप जगत् हुआ है। जैसे सुषुप्तिसे स्वप्नहो तैसे ही जगत् हुआहै। उसको कोई अविद्या; कोई जगत; कोई माया; कोई सङ्कल्प और कोई दृश्य कहते हैं; वास्तवमें सब ब्रह्मस्वरूप है-इतर कुछ नहीं। जैसे स्वर्ण से भूषण बनता है तो भूषण स्वर्णरूप है; स्वर्ण से इतरभूषण कुछ वस्तु नहीं है; तैसे ही जगत् और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है। भेद तो तब हो जब जगत् उपजा हो; जो उपजाही नहीं तो भेद कैसे भासै और जो भेद भासताहै सो मृगतृष्णा के जलवत् है-अर्थात् जैसे मृगतृष्णा की नदी के तरङ्ग भासते हैं पर वहां सूर्य की किरणें ही जल के समान भासती हैं; जल का नाम भी नहीं; तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है। चेतन के अणु अणु प्रति सृष्टि आभासरूप है कुछ उपजी नहीं। अद्वैतसत्ता सर्वदा अपने आपमें स्थित है फिर उसमें जन्म, मरण और बन्ध मुक्त कैसे हो? जितनी कल्पना बन्धमुक्त आदिक भासती हैं सो वास्तविक कुछ नहीं हैं आत्मा के अज्ञान से भासती हैं। हे रामजी! जगत् कोई नहीं उपजा; अपनी कल्पना ही जगत्रूप होकर भासती है और प्रमाद में सत हो रही है निवृत्त होना कठिन है। अनियत और नियत शब्द जो कहे हैं सो भाव्यर्थ हैं ऐसे वचनों से तो जगत् दूर नहीं होता। हे रामजी! अर्थयुक्त वचनों बिना दृश्यभ्रम नहीं निवृत्त होता। जो तर्कों करके और तप, तीर्थ, दान, स्नान, ध्यानादिक करके जगत् के भ्रम को निवृत्त किया चाहे वह मूर्ख है। इस प्रकार से तो और भी दृढ़ होता है। क्योंकि, जहां जावेगा वहां देश, काल और क्रिया सहित नित पञ्चभौतिक सृष्टिही दृष्टि आवेगी और कुछ दृष्टि न आवेगा इससे इसका नाश न होगा और जो जगत् से उपरान्त होकर समाधि लगा के बैठेगा तब भी चिरकाल में उतरेगा और फिर भी जगत् का शब्द और अर्थ भास आवेगा। जो फिर भी अनर्थरूप संसार भासा तो समाधि का क्या सुख हुआ? क्योंकि जब तक समाधि में रहेगा तभी तक वह सुख रहेगा। निदान इन उपायों से जगत् निवृत्त नहीं होता। जैसे कमल के डोड़े में

बीज होता है और जबतक उस बीज का नाश नहीं होता तबतक फिर उत्पन्न होता रहता है और जैसे वृक्ष के पात तोड़िये तो भी बीज का नाश नहीं होता तैसेही तप, दानादिकों से जगत् निवृत्त नहीं होता और तभी तक अज्ञानरूपी बीज भी नष्ट नहीं होता। जब अज्ञानरूपी बीज नष्ट होगा तब जगत्रूपी वृक्ष का अभाव होजावेगा। और उपाय करना मानो पत्तों का तोड़ना है। इन उपायों से अक्षयपद और अक्षय समाधि नहीं प्राप्त होती। हे रामजी ! ऐसी समाधि तो किसीको नहीं प्राप्त होती कि, शिला के समान होजावे। मैं सब स्थान देख रहा हूं कदाचित् ऐसे भी समाधी हों तो भी संसार सत्ता निवृत्त न होगी क्योंकि, अज्ञानरूपी बीज निवृत्त नहीं हुआ। समाधि ऐसी है जैसे जाग्रत् से स्वप्न होता है क्योंकि, अज्ञानरूपी वासना के कारण सुषुप्ति से फिर जाग्रत् आती है; तैसे ही अज्ञानरूपी वासना से समाधि में भी जाग आता है क्योंकि उसको वासना खैंच लेआती है। हे रामजी ! तप, समाधि आदिकों से संसारभ्रम निवृत्त नहीं होता। जैसे कांजी से क्षुधा किसी की निवृत्त नहीं होती तैसे ही तप और समाधि से चित्त की वृत्ति एकाग्र होती है परन्तु संसार निवृत्त नहीं होता। जबतक चित्त समाधि में लगा रहता है तबतक सुख होता है और जब उच्चाट होता है तब फिर नानाप्रकार की शब्द और अर्थीसंयुक्त संसार भासता है। हे रामजी ! अज्ञान से जगत् भासता है और विचार कियेसे निवृत्त होता है। जैसे बालक को अपनी अज्ञानता से परछाहीं में वैताल की कल्पना होती है और ज्ञानसे निवृत्त होती है तैसे ही यह जगत् अविचार से भासता है और विचार से निवृत्त होता है। हे रामजी ! वास्तव में जगत् उपजा नहीं—असत्रूप है। जो स्वरूप से उपजा होता तो निवृत्त न होता पर यह तो विचार से निवृत्त होता है इससे जाना जाता है कि, कुछ नहीं बना। जो वस्तु सत्य होती है उसकी निवृत्ति नहीं होती और जो असत् है सो थिर नहीं रहती। हे रामजी ! सत्स्वरूप आत्मा का अभाव कदाचित् नहीं होता और असत्रूप जगत् स्थिर नहीं होता। जगत्

आत्मा में आभासरूप है आरम्भ और परिणाम से कुछ उपजा नहीं। जहां चेतन नहीं होता है वहां सृष्टिभी नहीं होती क्योंकि; आभासरूप है आत्मारूप आदर्श है उसमें अनन्त सृष्टि प्रतिबिम्बित होती है। और आदर्श में प्रतिबिम्ब भी तब होता है जब दूसरा निकट होता है पर आत्मा के निकट दूसरा कोई नहीं और प्रतिबिम्ब होता है क्योंकि; आभासरूप है। एक ही आत्मसत्ता चैत्यता से द्वैत की नाईं होकर भासती है पर कुछ बना नहीं। जैसे फूल में सुगन्ध होती है तिलों में तेल होता है और अग्नि में उष्णता होती है और जैसे मनोराज की सृष्टि होती है; तैसे ही आत्मा में जगत् है। जैसे मनोराज से मनोराज की सृष्टि भिन्न नहीं होती तैसेही यह जगत् आत्मा से भिन्न नहीं बना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनन्नाम प्रथमस्सर्गः ॥१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! एक आकाशज आख्यान जो श्रवण का भूषण और बोध का कारण है उसको सुनिये। आकाशज नामक एक ब्राह्मण शुद्धचिदंश से उत्पन्न हुये। वह धर्मनिष्ठ सदा आत्मा में स्थित रहते थे, भले प्रकार प्रजा की पालना करते थे और चिरंजीवी थे। तब मृत्यु विचार करनेलगी कि, मैं अविनाशी हूं और जो जीव उपजते हैं उनको मारती हूं परन्तु इस ब्राह्मण को मैं नहीं भोजन करसक्री। जैसे खड्ग की धार पत्थरपर चलाये से कुण्ठित होजाती है तैसेही मेरी शक्ति इस ब्राह्मण पर कुण्ठित होगई है। हे रामजी ! ऐसे विचारके मृत्यु ब्राह्मण के भोजन करने के निमित्त उठी और जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने आचार कर्म को नहीं त्याग करते तैसेही मृत्यु भी अपने कर्मोंको विचार कर चली। जब ब्राह्मण के गृह में मृत्यु ने प्रवेश किया तो जैसे प्रलयकाल में महातेजसंयुक्त अग्नि सब पदार्थों को जलाने लगती है तैसेही अग्नि इसके जलानेको उड़ी और आगे दौड़ के जहां ब्राह्मण बैठा था अन्तःपुर में जाकर पकड़नेलगी पर जैसे बड़ा बलवान् पुरुष भी और के संकल्परूप पुरुष को नहीं पकड़ सक्ता तैसेही मृत्यु ब्राह्मण को न पकड़ सकी। तब उसने धर्मराज के गृह में जाकर कहा; हे भगवन् ! जो कोई

उपजा है उसको मैं अवश्य भोजन करतीहूं परन्तु एक ब्राह्मण जो आकाश से उपजा है उसको मैं वश नहीं करसकी। यह क्या कारण है? यम बोले; हे मृत्यो! तुम किसीको नहीं मारसक्की; जो कोई मरता है वह अपने कर्मों से मरता है। जो कोई कर्मों का कर्त्ता है उसके मारने को तुम भी समर्थ हो पर जिसका कोई कर्म नहीं उसके मारने को तुम समर्थ नहीं हो। इससे तुम जाकर उस ब्राह्मण के कर्म खोजो; जब कर्म पावोगी तब उसके मारने को समर्थ होगी—अन्यथा समर्थ न होगी। हे रामजी! जब इस प्रकार यमने कहा तब कर्म खोजने के निमित्त मृत्यु चली। कर्म वासना का नाम है। वहां जाके ब्राह्मण के कर्मों को ढूंढ़ने लगी और दशों दिशा में ताल, समुद्र, बगीचे और द्वीपसे द्वीपान्तर इत्यादिक सब स्थान देखते फिरी परन्तु ब्राह्मणके कर्मों की प्रतिमा कहीं न पाई। हे रामजी! मृत्यु बड़ी बलवन्त है परन्तु उस ब्राह्मण के कर्मों को उसने न पाया तब फिर धर्मराज के पास गई—जो सम्पूर्ण संशयों को नाश करनेवाले और ज्ञानस्वरूप हैं—और उनसे कहने लगी; हे संशयों के नाशकर्त्तः! इस ब्राह्मण के कर्म मुझको कहीं नहीं दृष्टि आते मैंने बहुत प्रकार से ढूंढ़ा। जो शरीरधारी हैं सो सब कर्म संयुक्त हैं पर इसका तो कर्म कोई भी नहीं है इसका क्या कारण है? यम बोले; हे मृत्यो! इस ब्राह्मण की उत्पत्ति शुद्ध चिदाकाश से हुई है जहां कोई कारण न था। जो कारण विना पदार्थ में भासता है सो ईश्वररूप है। हे मृत्यो! शुद्ध आकाश से जो इसका होना हुआ है तो यह भी वही रूप है। यह ब्राह्मण भी शुद्ध चिदाकाशरूप है और इसका चेतनही वपु है। इसका कर्म कोई नहीं और न कोई क्रिया है। अपने स्वरूप से आप ही इसका होना हुआ है इस कारण इसका नाम स्वयम्भू है और सदा अपने आप में स्थित है। इसको जगत् कुछ नहीं भासता—सदा अद्वैत रूप है। मृत्यु बोली; हे भगवन्! जो यह आकाश स्वरूप है तौ साकार रूप क्यों दृष्टि आता है? यमजी बोले; हे मृत्यो! यह सदा निराकार चैतन्य वपु है और इसके साथ आकार और अहंभाव भी नहीं है इससे

इसका नाश कैसेहो। यह तो अहं त्वं जानताही नहीं और जगत् का निश्चय भी इसको नहीं है। यह ब्राह्मण अचेत चिन्मात्र है जिसके मन में पदार्थों का सद्भाव होता है उसका नाश भी होता है और जिसको जगत भासताही नहीं उसका नाश कैसेहो? हे मृत्यो! जो बड़ा कोई बलिष्ठ भी हो और सैकड़ों जंजीरें भी हों तोभी आकाश को बांध न सकेगा तैसे ही ब्राह्मण आकाशरूप है इसका नाश कैसे हो? इससे इसके नाश करने का उद्यम त्याग कर देहधारियों को जाकर मारो—यह तुमसे न मरेगा। हे रामजी! यह सुनकर मृत्यु आश्चर्यवत् हो अपने गृह लौट आई। रामजी बोले; हे भगवन्! यह तो हमारे बड़े पितामह ब्रह्मा की वार्त्ता तुमने कही है। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह वार्त्ता तो मैंने ब्रह्माकी कही है परन्तु मृत्यु और यमके विवाद निमित्त यह कथा मैंने तुमको सुनाई है। इस प्रकार जब बहुतकाल व्यतीत होकर कल्पका अन्तपात हुआ तब मृत्यु सर्व भूतों को भोजनकर फिर ब्रह्माको भोजन करने गई। जैसे किसी का काम हो और यदि एकबार सिद्ध न भया तो यह उसे छोड़ नहीं देता फिर उद्यम करता है तैसेही मृत्यु भी ब्रह्माके सम्मुखगई। तब धर्मराज ने कहा: हे मृत्यो! यह ब्रह्मा है। यह आकाशरूप है और आकाशही इसका शरीर है। आकाश के पकड़ने को तुम कैसे समर्थ होगी? यह तो पञ्चभूत के शरीरसे रहित है। जैसे संकल्प पुरुष होता है तो उसका आकाश ही वपु होता है तैसेही यह आकाशरूप आदि, अन्त, मध्य और अहं त्वं के उल्लेख से रहित और अचेत चिन्मात्र है इसके मारने को तू कैसे समर्थ होगी? यह जो इसका वपु भासता है सो ऐसे है जैसे शिल्पी के मन में थम्भकी पुतली होती है पर वह कुछ हुई नहीं तैसेही स्वरूप से इतर इसका होना नहीं है यह तो ब्रह्मस्वरूप है हमारे तुम्हारे मनमें इसकी प्रतिमा हुई है यह तो निर्वपु है। जो पुरुष देहवन्त होता है उसको ग्रहण करना सुगम होता है और बन्ध्या के पुत्रके ग्रहण में श्रम होता है क्योंकि निर्वपु है तैसे यह भी निर्वपु है; इसके मारने की कल्पना को त्याग देहधारियों को जाकर मारो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रथमसृष्टिवर्णनन्नामद्वितियस्सर्गः॥२॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र सत्ता ऐसी सूक्ष्म है कि उसमें आकाश भी पर्वत के समान स्थूल है। उस चित्त में जो अहंअस्मि चैत्योन्मुखत्व हुआ है उससे अपने साथ देह को देखा। पर वह देह भी आकाशरूप है। हे रामजी ! शुद्ध चिन्मात्र में चैत्य का उल्लेख किसी कारण से नहीं हुआ स्वतः स्वाभाविकही ऐसे उल्लेख आयफुरा है उसी का नाम स्वयम्भू ब्रह्मा है। उस ब्रह्मा को सदा ब्रह्मही का निश्चय है। ब्रह्मा और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं है। जैसे समुद्र और तरङ्ग में; आकाश और शून्यता में और फूल और गंध में कुछ भेद नहीं होता तैसेही ब्रह्मा और ब्रह्म में भेद नहीं। जैसे जल द्रवता के कारण तरङ्गरूप होकर भासता है तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यता से ब्रह्मा होकर भासती है। ब्रह्मा दूसरी वस्तु कुछ नहीं है सदा चैतन्य आकाश है और पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है। हे रामजी ! न कोई इसका कारण है और न कोई कर्म है। रामजी बोले; हे भगवन् ! आपने कहा कि, ब्रह्माजी का वपु पृथ्वी आदि तत्त्वों से रहित है और सङ्कल्पमात्र है तो इसका कारण स्मृति का संस्कार क्यों न हुआ। जैसे हमको और २ जीवों की स्मृति है तैसेही ब्रह्मा को भी होनी चाहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! स्मृति संस्कार उसीका कारण होता है जो आगे भी देहवान् हो। जो पदार्थ आगे देखा होता है उसकी स्मृति संस्कार से होती है और जो देखा नहीं होता उसकी स्मृति संस्कार से भी नहीं होती। ब्रह्माजी अद्वैत, अज और आदि, मध्य, अन्त से रहित हैं; इनकी स्मृति कारण कैसे हो ? वह तो शुद्ध बोधरूप है और आत्मतत्त्व ब्रह्मारूप होकर स्थित हुये हैं। अपने आपसे जो इसका होना हुआ है इसीसे इसका नाम स्वयम्भू है। शुद्धबोध में चैत्य उल्लेख हुआ है—अर्थात् चित् चैतन्य स्वरूप का नाम है। अपना चित् संवित् ही कारण है और दूसरा कोई कारण नहीं— सदा निराकार और संकल्परूप इसका शरीर है और पृथ्वी आदिक भूतों से शुद्ध अन्तवाहक वपु है। रामजी बोले; हे मुनीश्वर ! जितने जीव हैं तिनके दो दो शरीर हैं—एक अन्तवाहक और दूसरा आधि-

भौतिक। ब्रह्मा का एकही अन्तवाहक शरीर कैसे है, यह वार्त्ता स्पष्ट कर कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जो सकारणरूप जीव हैं उनके दो दो शरीर हैं पर ब्रह्माजी अकारण हैं इस कारण उनका एक अन्तवाहकही शरीर है। हे रामजी ! सुनिये; जीवों का कारण ब्रह्मा हैं इस कारण यह जीव दोनों देहों को धरते हैं और ब्रह्माजी का कारण कोई नहीं यह अपने आपसे ही उपजे हैं-इनका नाम स्वयम्भू है। आदि जो इसका प्रादुर्भाव हुआ है सो अन्तवाहक शरीर है। इनको अपने स्वरूप का विस्मरण नहीं हुआ सदा अपने वास्तवस्वरूप में स्थित हैं इससे अन्तवाहक हैं और दृश्य को अपना संकल्पमात्र जानते हैं। जिनको दृश्य में दृढ़ प्रतीति हुई है उनको आधिभूत कहते हैं। जैसे जड़ता से जल की बरफ होती है तैसेही दृश्य की दृढ़ता से आधिभौतिक होते हैं। हे रामजी ! जितना जगत् तुमको दृष्टि आता है सो सब आकाशरूप है, किसी पृथ्वी आदिक भूतों से नहीं हुआ केवल भ्रम से आदिभौतिक भासते हैं। जैसे स्वप्ननगर आकाशरूप होता है किसी कारण से नहीं उपजता और न किसी पृथ्वी आदिक तत्त्वों से उपजता है केवल आकाशरूप है और निद्रादोष से आधिभौतिक होकर भासता है; तैसेही यह जाग्रत् जगत् भी अज्ञान से आधिभौतिक आकाश भासता है। जैसे अज्ञान से स्वप्न अर्थाकार भासता है तैसेही जगत् अज्ञान से अर्थाकार भासता है। हे रामजी ! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र है और कुछ बना नहीं। जैसे मनोराज के पर्वत आकाशरूप होते हैं; तैसेही जगत् भी आकाशरूप है। वास्तव में कुछ बना नहीं सब पुरुष के संकल्प हैं और मनसे उपजे हैं। जैसे बीज से देशकाल के संयोग से अंकुर निकलता है; तैसेही सब दृश्य मनसे उपजता है। वह मनरूपी ब्रह्मा है और ब्रह्मादि मनरूप हैं। उनके संकल्प में जो सम्पूर्ण जगत् स्थित है वह सब आकाशरूप है-आधिभौतिक कोई नहीं। हे रामजी ! आधिभौतिक जो आत्मा में भासता है सो भ्रान्तिमात्र है। जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है; तैसेही अज्ञानी को जो आधिभौतिक

भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र है—वास्तव कुछ नहीं है। हे रामजी! जितने जीव हैं वे सब अन्तवाहक हैं परन्तु अज्ञानी को अन्तवाहकता निवृत्त होकर आधिभौतिकता दृढ़ होगई है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं सो अन्तवाहकरूपही हैं। हे रामजी! जिन पुरुषों को प्रमाद नहीं हुआ वे सदा आत्मा में स्थित और अन्तवाहकरूप हैं और सब जगत् आकाशरूप है। जैसे संकल्प पुरुष, गन्धर्वनगर और स्वप्नपुर होते हैं तैसेही यह जगत् है जैसे शिल्पी कल्पता है कि, इस थम्भमें इतनी पुतलियां हैं सो पुतलियां उपजी नहीं थम्भा ज्यों का त्यों स्थित है पुतली का सद्भाव केवल शिल्पी के मन में होता है; तैसेही सब विश्व मनमें स्थित है उस का स्वरूप कुछ नहीं बना। जैसे तरङ्ग ही जलरूप और जल ही तरङ्गरूप है तैसेही दृश्य भी मनरूप है और मनही दृश्यरूप है। हे रामजी! जब तक मनका सद्भाव है तबतक दृश्य है—दृश्य का बीज मन है जैसे कमल के डोड़े का सद्भाव उसके बीज में होता है और उससे कमल के डोड़े की उत्पत्ति होती है तैसेही जगत् का बीज मन है—सब जगत् मनसे उत्पन्न होता है। हे रामजी! जब तुमको स्वप्न आता है तब तुम्हारा ही चित्त दृश्य को चेतता जाता है और तो कोई कारण नहीं होता तैसेही यह जगत् भी जानना। यह तुम्हारे अनुभव की वार्ता कही है क्योंकि यह तुमको नित अनुभव होता है। हे रामजी! मनहीं जगत् का कारण है और कोई नहीं। जब मन उपशम होगा तब दृश्यभ्रम मिट जावेगा। जबतक मन उपशम नहीं होता तबतक दृश्य भ्रम भी निवृत्त नहीं होता और जबतक दृश्य निवृत्त नहीं होता तबतक शुद्ध बोध नहीं होता एवम् जबतक शुद्ध बोध नहीं होता तबतक आत्मानन्द भी नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनन्नाम तृतीयस्सर्गः॥ ३॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार मुनि शार्दूल वशिष्ठ जी कहकर तूष्णी हुये और सर्व श्रोता वशिष्ठजी के वचनों को सुनके और उनके अर्थ में स्थित हो इन्द्रियों की चपलता को त्याग वृत्ति को स्थित करते भये तरङ्गों के वेग स्थिर होगये; पिंजरों में जो तोते थे सो

भी सुनकर तूष्णी होगये; ललना जो चपल थीं सो भी उस काल में अपनी चपलता को त्याग करती भईं और वन के पशु पक्षी जो निकट थे सो भी सुनकर तूष्णी हुये। निदान मध्याह्न का समय हुआ तब राजा के बड़े भृत्यों ने कहा; हे राजन्! अब स्नान सन्ध्या का समय हुआ उठ कर स्नान सन्ध्या कीजिये। तब वशिष्ठजी बोले; हे राजन्! अब जो कुछ कहना था सो हम कह चुके, कल फिर कुछ कहेंगे। राजाने कहा बहुत अच्छा और उठकर अर्ग्घ्य पाद्य नैवेद्य से वशिष्ठजी का पूजन किया और और जो ब्रह्मर्षि थे उनकी भी यथायोग्य पूजा की। तब वशिष्ठजी उठ खड़े हुये और परस्पर नमस्कार कर अपने २ स्थानों को चले। आकाशचारी आकाश को, पृथ्वी पर रहनेवाले ब्रह्मर्षि और राजर्षि पृथ्वी पर, पातालवासी पाताल को और सूर्य भगवान् दिन रात्रि की कल्पना को त्यागकर स्थिर हो रहे और मन्दमन्द पवन सुगन्ध सहित चलने लगी मानों पवन भी कृतार्थ होने आया है। इतने में सूर्य अस्त होकर और ठौर में प्रकाशने लगे क्योंकि; सन्त जन सब ठौर में प्रकाशते हैं। इतने में रात्रि हुई तो तारागण प्रकट होगये और अमृत की किरणों को धारण किये चन्द्रमा उदय हुआ। उस समय अन्धकार का अभाव होगया और राजा का द्वार भी चन्द्रमा की किरणों से शीतल होगया—मानों वशिष्ठजी के वचनों को सुनकर इनकी तप्तता मिट गई। निदान सब श्रोताओं ने विचारपूर्वक रात्रि को व्यतीत किया; जब सूर्य की किरण निकली तो अन्धकार नष्ट होगया—जैसे सन्तों के वचनों से अज्ञानी के हृदय का तम नष्ट होता है—और सब जगत् की क्रिया प्रकट हो आई तब खेचर, भूचर और पाताल के वासी सब श्रोता स्नान सन्ध्याकर अपने २ स्थानों में आये और परस्पर नमस्कार कर पूर्व के प्रसंग को उठाकर रामजी सहित बोले; हे भगवन्! ऐसे मन का रूप क्या है? जिससे कि, संसाररूपी दुःखों की मञ्जरी बढ़ती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस मनका रूप कुछ देखने में नहीं आता यह मन नाममात्र है। वास्तव में इसकारूप कुछ नहीं है और आकाश के

नाईं शून्य है । हे रामजी ! मन आत्मा में कुछ नहीं उपजा। जैसे सूर्य में तेज; वायु में स्पन्द; जल में तरङ्ग; सुवर्ण में भूषण; मरीचिका में जल है और आकाश में दूसरा चन्द्रमा है तैसेही मन भी आत्मा में कुछ वास्तव नहीं है । हे रामजी ! यह आश्चर्य है कि, वास्तव में कुछ उपजा नहीं पर आकाश की नाईं सब घटों में वर्त्तता है और सम्पूर्ण जगत् मन से भासता है । असत्‌रूपी जगत् जिससे भासता है उसी का नाम मन है । हे रामजी ! आत्मा शुद्ध और अद्वैत है; द्वैतरूप जगत् जिसमें भासता है उसका नाम मन है और संकल्प विकल्प जो फुरता है वह मन का रूप है । जहां २ संकल्प फुरता है वहां २ मन है जैसे जहां २ तरङ्ग फुरते हैं तहां २ जल है तैसेही जहां २ संकल्प फुरता है वहां २ मन है मन के और भी नाम हैं—स्मृति, अविद्या, मलीनता और तम ये सब इसी के नाम ज्ञानवान् पुरुष जानते हैं । हे रामजी ! जितना जगत्-जाल भासता है सो सब मन से उत्पन्न हुआ है और सब दृश्य मनरूप हैं क्योंकि; मन का रचा हुआ है वास्तव में कुछ नहीं है । हे रामजी ! मन रूपी देह का नाम अन्तवाहक शरीर है वह संकल्परूप सब जीवों का आदि वपु है । उस संकल्प में जो दृढ़ आभास हुआ है उससे आधिभौतिक भासने लगा है और आदि स्वरूप का प्रमाद हुआ है । हे रामजी ! यह जगत् सब संकल्परूप है और स्वरूप के प्रमाद से पिण्डाकार भासता है। जैसे स्वप्नदेह का आकार आकाशरूप है उसमें पृथ्वी आदि तत्त्वों का अभाव होता है परन्तु अज्ञान से आधिभौतिकता भासती है सो मनही का संसरना है तैसेही यह जगत् है; मनके फुरने से भासता है । हे राम-जी ! जहां मन है वहां दृश्य है और जहां दृश्य है वहां मन है । जब मन नष्ट हो तब दृश्य भी नष्ट हो । शुद्ध बोधमात्र में जो दृश्य भासता है सोई मन है । जब तक दृश्य भासता है तबतक मुक्त न होगा; जब दृश्य-भ्रम नष्ट होगा तब शुद्धबोध प्राप्त होगा । हे रामजी ! "द्रष्टा, दर्शन, दृश्य" यह त्रिपुटी मन से भासती है । जैसे स्वप्न में त्रिपुटी भासती है और जब जाग उठा तब त्रिपुटी का अभाव हो जाता है और आपही भासता है

तैसेही आत्मसत्ता में जागे हुये को अपना आप अद्वैतही भासता है। जबतक शुद्धबोध नहीं प्राप्त हुआ तबतक दृश्यभ्रम निवृत्त नहीं होता। वह बाह्य देखता है तो भी सृष्टिही दृष्टि आती है; अन्तर देखेगा तौ भी सृष्टिही दृष्टि आती है और उसको सत्य जानकर राग द्वेष कल्पना उठती है। जब मन आत्मपद को प्राप्त होता है तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे जब वायु की स्पन्दता मिटी तब वृक्ष के पत्रों का हलना भी मिट जाता है। इससे मनरूपी दृश्यही बन्धन का कारण है; रामजी बोले; हे भगवन्! यह दृश्यरूपी विसूचिका रोग है उसकी निवृत्ति कैसे हो सो कृपा करके कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! संसाररूपी वैताल जिसको लगा है उसकी निवृत्ति अकस्मात् होती है। प्रथम तो विचार करके जगत् का स्वरूप जानो; उसके अनन्तर जब आत्मपद में विश्रान्त होंगे तब तुम सर्व आत्मा होगे। हे रामजी! दृश्यभ्रम जो तुमको भासता है उसको मैं उत्तर ग्रन्थ से निवृत्त करूंगा; इसमें सन्देह नहीं। सुनिये, यह दृश्य मन से उपजा है और इसका सद्भाव मनमें ही हुआ है। जैसे कमल के डोड़े का उपजना कमल के डोड़े के बीज में है तैसेही संसार का उपजना स्मृति से होता है। वह स्मृति अनुभव आकाश में होती है। हे रामजी! स्मृति उस पदार्थ को होती है जिसका अनुभव सद्भावरूप ग्रहण होता है। जितना कुछ जगत् तुमको भासता है सो संकल्प रूप है—कोई पदार्थ सत्‌रूप नहीं। जो वस्तु असत्‌रूप है उसकी स्थिरता नहीं होती और जो वस्तु सत्‌रूप है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता। जितना कुछ प्रपञ्च भासता है सो असत्‌रूप है मनके चिन्तन से उत्पन्न हुआ है। जब मन फुरने से रहित हो तब जगत् भ्रम निवृत्त होता है हे रामजी! पृथ्वी, पर्वत आदिक जगत् असत्‌रूप न होते तो मुक्त भी कोई न होता। मुक्त तो दृश्यभ्रम से होता है; जो दृश्यभ्रम नष्ट न होता तो मुक्त भी कोई न होता; पर ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवता इत्यादिक बहुतेरे मुक्त हुये हैं इस कारण कहता हूँ कि, दृश्य असत्यरूप मनके संकल्प से स्थित है। हे रामजी! एक मनको स्थिरकर देखो फिर अहं त्वं आदिक

जगत् तुमको कुछ न भासेगा। चित्तरूपी आदर्श में संकल्परूपी दृश्य मलीनता है। जब मलीनता दूर होगी तब आत्मा का साक्षात्कार होगा। हे रामजी! यह दृश्यभ्रम मिथ्या उदय हुआ है। जैसे गन्धर्व नगर और स्वप्नपुर तैसेही यह जगत् भी है। जैसे शुद्ध आदर्श में पर्वत का प्रतिबिम्ब होता है तैसेही चित्तरूपी आदर्श में यह दृश्य प्रतिबिम्ब है। मुकुर में जो पर्वतका प्रतिबिम्ब होता है सो आकाशरूप है उसमें कुछ पर्वत का सद्भाव नहीं तैसेही आत्मा में जगत् का सद्भाव नहीं। जैसे बालक को भ्रम से परछाहीं में पिशाचबुद्धि होती है तैसेही अज्ञानी को जगत् भासता है—वास्तव में जगत् कुछ नहीं है। हे रामजी! न कुछ मन उपजा है और न कुछ जगत् उपजा है—दोनों असत्रूप हैं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। जैसे आकाश अपनी शून्यता और समुद्र जल से पूर्ण है तैसेही ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित और पूर्ण है और उसमें जगत् का अत्यन्त अभाव है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह तुम्हारे वचन ऐसे हैं जैसे कहिये कि, बन्ध्या के पुत्रने पर्वत चूर्ण किया; शशे के शृंग अतिसुन्दर हैं, रेत में तेल निकलता है और पत्थर की शिला नृत्य करती वा मूर्त्ति का मेघ गर्जता और पत्थर की पुतलियां गान करती हैं। तुम कहते हो कि, दृश्य कुछ उपजाही नहीं और हैही नहीं और मुझको ये जरा, मृत्यु आदिक विकारों सहित प्रत्यक्ष भासते हैं इससे मेरे मन में तुम्हारे वचनों का सद्भाव नहीं स्थित होता। कदाचित् तुम्हारे निश्चय में इसी प्रकार है तो अपना निश्चय मुझको भी बतलाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! हमारे वचन यथार्थ हैं। हमने असत् कदाचित् नहीं कहा! तुम विचार के देखो यह जगत् आडम्बर विना कारण है। जब महाप्रलय होता है तब शुद्धचैतन्य संवित रह जाता है और उसमें कार्य-कारण कोई कल्पना नहीं रहती है—उसमें फिर यह जगत् कारण विना फुरता है। जैसे सुषुप्ति में स्वप्नसृष्टि फुर आती है और जैसे स्वप्नसृष्टि अकारण है तैसेही यह सृष्टि भी अकारणहै।

हे रामजी! जिसका समवायकारण और निमित्त कारण न हो और प्रत्यक्ष भासे उसे जानिये कि, भ्रान्तिरूप है। जैसे तुमको नित्य स्वप्न का अनुभव होता है और उसमें नाना प्रकारके पदार्थ कार्य कारण सहित भासते हैं पर कारण विना हैं तैसेही यह जगत् भी कारण विना है। इससे आदि कारण विनाही जगत् उपजा है। जैसे गन्धर्वनगर, संकल्पपुर और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही यह जगत् भासता है—कोई पदार्थ सत् नहीं। जैसे स्वप्न में राजपति और नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो किसी कारण से तो नहीं उपजे केवल आकाशरूप मन के संसरने से सब भासते हैं; तैसेही यह जगत् चित्त के संसरने से भासता है। जैसे स्वप्न में और स्वप्ना भासता है और फिर उसमें और स्वप्ना भासता है तैसे यह जगत् भासताहै और तैसेही जाग्रत् जगत्जाल मनकी कल्पना से भासता है। हे रामजी! चलना, दौड़ना, देना, लेना, बोलना, सुनना, सूंघना इत्यादिक विषय और रागद्वेषादिक विकार सब मनके फुरने से होते हैं—आत्मा में कोई विकार नहीं जब मन उपशम होता है तब सब कल्पना निवृत्त होजाती हैं इससे संसार का कारण मनही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बोधहेतुवर्णनन्नाम चतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

रामजी बोले; हे भगवन्! मनका रूप क्या है? वह तो मायामय है इसका होना जिससे है सो कौन पद है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सब जगत् का अभाव होजाता है और पीछे जो शेष रहता है सो सत्‌रूप है। आदि सर्ग का भी सत्‌रूप होता है उसका नाश कदाचित् नहीं होता वह सदा प्रकाशरूप परमदेव, शुद्ध, परमात्मतत्त्व, अज, अविनाशी और अद्वैत है। उसको वाणी नहीं कह सक्ती। वह पद जीवन्मुक्त पाता है। हे रामजी! आत्म आदिक शब्द उद्देश में कल्पित हैं; स्वाभाविक कोई शब्द नहीं प्रवर्तता। शिष्य को बताने के लिये शास्त्रकारों ने देव के बहुत नाम कल्पे हैं मुख्य तो देव को "पुरुष" कहते हैं। वेदान्तवादी उसीको "ब्रह्म" कहते और विज्ञान-

वादी उसीको विज्ञान से "बोध" कहते। कोई कहते हैं कि "निर्मलरूप" है, शून्यवादी कहते हैं "शून्य" ही शेष रहता है; कोई कहते हैं "प्रकाश रूप" है जिसके प्रकाश से सूर्यादिक प्रकाशते हैं, एक उसको "वक्ता" कहते कि, आदिवेद का "वक्ता" वही है और स्मृतिकर्त्ता कहते कि, सब कुछ वह स्मृतिसे करनेवाला है और सब कुछ उसकी इच्छा से हुआ है इससे सबका कर्त्ता सर्व "आत्मा" है। हे रामजी! इसी तरह अनेक नाम शास्त्रकारों ने कहे हैं। इन सबका अधिष्ठान परमदेव है और अस्ति आदि षट्विकारों से रहित शुद्ध, चैतन्य और सूर्यवत् प्रकाशरूप है। वही देव सब जगत् में पूर्ण होरहा है। हे रामजी! आत्मारूपी सूर्य है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक उसकी किरणें हैं। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्-रूपी तरंग बुद्बुदे उत्पन्न होकर लीन होते हैं और सब पदार्थ उस आत्मा के प्रकाश से प्रकाशते हैं जैसे दीपक अपने आपसे प्रकाशता है और औरों को भी प्रकाश देता है तैसेही आत्मा अपने प्रकाश से प्रकाशता है और सबको सत्ता देनेवाला है। हे रामजी! वृक्ष आत्मसत्ता से उपजता है, आकाश में शून्यता उसीकी की है और अग्नि में उष्णता, जलमें द्रवता और पवन में स्पर्श उसीकी की है। निदान सब पदार्थों की सत्ता वही है। मोरों के पङ्खों में रङ्ग आत्मसत्ता से ही हुआ है; पत्थर में मूंगा और पत्थरों में जड़ता उसीकी की है। और स्थावर-जंगम जगत् का अधिष्ठानरूप वही ब्रह्म है। हे रामजी! आत्मरूपी चन्द्रमा की किरणोंसे ब्रह्माण्डरूपी त्रसरेणु उत्पन्न होती है। वह चन्द्रमा शीतलता और अमृत से पूर्ण है। ब्रह्मरूपी मेघ है उससे जीवरूपी बूँदियां टपकती हैं। जैसे बिजली का प्रकाश होता है और छिपजाता है तैसेही जगत् प्रकट होता है और छिपजाता है। सबका अधिष्ठान आत्मसत्ता और वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध और परमानन्दरूप है। सब सत्य असत्यरूप पदार्थ उसी आत्मसत्ता से होते हैं। हे रामजी! उस देवकी सत्ता से जड़पुर्यष्टक चैतन्य होकर चेष्टा करती है। जैसे चुम्बक पत्थरकी सत्ता से लोहा चेष्टा करता है तैसेही चैतन्यरूपी चुम्बक मणि से देह चेष्टा करती है। वह

आत्मा नित्य चैतन्य और सबका कर्त्ता है; उसका कर्त्ता और कोई नहीं वह सबसे अभेदरूप समानसत्ता है और उदय अस्त से रहित है। हे रामजी! जो पुरुष उस देवको साक्षात् करता है उसकी सब क्रिया नष्ट होजाती हैं और चिद्जड़ ग्रन्थि छिदजाती हैं और केवल बोधरूप होते हैं। जब स्वभावसत्ता में मन स्थित होताहै तब मृत्यु को सम्मुख देखकर भी विह्वल नहीं होता। इतना कहकर फिर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह देव किसी स्थान में नहीं रहता और कहीं दूर भी नहीं है वह तो अपने आप ही में स्थित है। हे रामजी! घटघट में वह देव है पर अज्ञानी को दूर भासता है। स्नान, दान, तप आदि से वह प्राप्त नहीं होता केवल ज्ञान से ही प्राप्त होता है—कर्त्तव्य से प्राप्त नहीं होता। जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है वह कर्त्तव्यता से निवृत्त नहीं होती केवल ज्ञातव्यसे ही निवृत्त होती है तैसेही जगत् की निवृत्ति आत्मज्ञानसे ही होती है। हे रामजी! कर्त्तव्य भी वही है। जो प्राप्तहोनेका ज्ञातव्यरूप है—अर्थात् यह कि जिस से ज्ञातव्यस्वरूप की प्राप्ति होती है। रामजी बोले; हे भगवन्! जिस देव के जानने से पुरुष फिर जन्म मरण को नहीं प्राप्त होता वह कहां रहता है और किस तप और क्लेश से उसकी प्राप्ति होतीहै? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! किसी तप से उस देवकी प्राप्ति नहीं होती केवल अपने पुरुष प्रयत्न से ही उसकी प्राप्ति होती है। जितना कुछ राग, द्वेष, काम, क्रोध, मत्सर और अभिमान सहित तप है वह निष्फलदम्भ है। इनसे आत्मपदकी प्राप्ति नहीं होती। हे रामजी! इसकी परम औषध सत्संग और सत्शास्त्रों का विचारहै जिससे दृश्यरूपी विसूचिका निवृत्त होती है। प्रथम इसका आचार भी शास्त्र और लौकिक अविरुद्ध हो अर्थात् शास्त्रों के अनुसार हो और भोगरूपी गढ़े में न गिरे। दूसरे संतोष संयुक्त यथालाभ संतुष्ट होकर अनिच्छित भोगों को प्राप्त हो और जो शास्त्र अविरुद्ध हो उसको ग्रहण करे और विरुद्ध हो उसका त्याग करे—इन दीन न हो। ऐसे उदारात्मा को शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होती है हे रामजी! आत्मपद पाने का कारण सत्संग और सत्शास्त्र है। सन्

वह है जिसको सब लोग भला साधु कहते हैं और सत्शास्त्र वही है जिस में ब्रह्म निरूपण हो। जब ऐसे सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचार हो तो शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होती है। जब मनुष्य श्रुति विचारद्वारा अपने परम स्वभाव में स्थित होता है तब ब्रह्मा विष्णु और रुद्र भी उसपर दया चाहते हैं और कहते हैं कि यह पुरुष परब्रह्म हुआ है। हे रामजी! सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचार निर्मल करता और दृश्यरूप मैलको नाश करता है। जैसे निर्मलीरेत से जल का मैल दूर होता है तैसेही यह पुरुष निर्मल और चैतन्य होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेप्रयत्नोपदेशोनामपञ्चमस्सर्गः॥ ५॥

इतना सुन, रामजीने पूछा; हे भगवन्! वह देव जो तुमने कहा कि, जिसके जानने से संसार बन्धनसे मुक्त होता है कहां स्थित है और किस प्रकार मनुष्य उसको पाता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह देव दूर नहीं शरीरमें ही स्थित है। नित्य, चिन्मात्र सबमें पूर्ण और सर्व विश्व से रहित है। चन्द्रमा को मस्तकमें धरनेवाले सदाशिव, ब्रह्माजी और विष्णु और इन्द्रादिक सब चिन्मात्ररूप हैं। बल्कि सब जगत् चिन्मात्ररूप है रामजी बोले; हे भगवन्! यह तो अज्ञान बालक भी कहते हैं कि, आत्मा चिन्मात्र है; तुम्हारे उपदेश से क्या सिद्ध हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस विश्व के चिन्मात्र जानने से तुम संसारसमुद्र को नहीं लंघ सके इस चैतन्य का नाम संसार है। यह चैतन्य जीव पशु है; संसार नामरूप है इससे जरामरणरूप तरङ्ग उत्पन्न होते हैं क्योंकि, हेय रूप दुःख पाता है। हे रामजी! चैतन्य होकर जो चैतन्यता है सो अनर्थ का कारण है और चैतन्य से रहित जो चैतन्य है वह परमात्मा है। उस परमात्मा को जानकर मुक्ति होती है तब चैतन्यता मिटजाती है। हे रामजी! परमात्मा के जानने से हृदय की चिद्जड़ ग्रन्थि टूट पड़ती है अर्थात् अहं मम नष्ट हो जाता है, सब संशय छेदेजाते हैं और सब कर्म क्षीण होजाते हैं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! चित्त चैतन्योन्मुख होताहै तब आगे दृश्य स्पष्ट भासता है; इसके होते चित्त के रोकने को क्योंकर

समर्थ होता है और दृश्य किस प्रकार निवृत्त होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्यसंयोगी चेतन जीव है, वह जन्मरूपी जंगल में भटकता भटकता थकजाता है। इस चेतनको जो चेतन अर्थात् चिदाभास जीव प्रकाशी कहते हैं सो पण्डित भी मूर्ख हैं। यह तो संसारी जीव है इसके जाने से कैसे मुक्ति हो। मुक्ति परमात्मा के जाननेसे होती है और सर्वदुःख नाश होतेहैं। जैसे विसूचिका रोग उत्तम औषध से ही निवृत्त होता है तैसेही परमात्मा के जानने से मुक्त होताहै। रामजीने यह पूछा, हे भगवन्! परमात्मा का क्या रूपहै कि, जिसके जानने से जीव मोह-रूपी समुद्र को तरताहै? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देश से देशान्तर को दूर जो संवित् निमेष में जाताहै उसके मध्य जो ज्ञानसंवित् है सो परमात्मा का रूप है और जहां संसार का अत्यन्त अभाव होता है उसके पीछे जो बोधमात्र शेष रहता वह परमात्मा का रूप है। हे राम जी! ऐसा आकाश जहां द्रष्टा दर्शन दृश्य का अभाव होता है वह भी परमात्मा का रूप है और जो अशून्य है और शून्य की नाईं स्थित हैं और जिसमें सृष्टि का समूह शून्य है ऐसी अद्वैत सत्ता परमात्मा का रूप है हे रामजी! महाचेतनरूप बड़े पर्वत की नाईं जो स्थित है और अजड़ है पर जड़ के समान स्थित है वह परमात्मा का रूप है और जो सबके भीतर बाहर स्थित है और सबको प्रकाशता है सो परमात्मा का रूप है। हे रामजी! जैसे सूर्य प्रकाशरूप और आकाश शून्यरूप है तैसेही यह जगत् आत्मरूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो सब परमात्माही है तो क्यों नहीं भासता और जो सब जगत् भासता है इसका निर्वाण कैसे हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् भ्रम से उत्पन्न हुआ है—वास्तव में कुछ नहीं है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। जब जगत् का अत्यन्त अभाव जानोगे तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा और किसी उपाय से न होगा। जब दृश्य का अत्यन्त अभाव करोगे तब दृश्य उसीप्रकार स्थित रहेगा पर तुमको परमार्थ सत्ताही भासेगी। हे रामजी! चित्तरूपी

आदर्श दृश्य के प्रतिबिम्ब विना कदाचित् नहीं रहता। जबतक दृश्य का अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक परमबोध का साक्षात्कार नहीं होता इतना सुनकर रामजी ने फिर पूछा कि, हे भगवन्! यह दृश्यजाल आडम्बर मन में कैसे स्थित हुआ है? जैसे सरसों के दानों में सुमेरु का आना आश्चर्य है तैसेही जगत् का मन में आना भी आश्चर्य है वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक दिन तुम वेदधर्म की प्रवृत्ति सहित सकाम यज्ञ योगादिक त्रिगुण से रहित होकर स्थित हो और सत्संगति और सत्शास्त्रपरायण हो तब मैं एकही क्षण में दृश्यरूपी मैल दूर करूंगा। जैसे सूर्य की किरणों के जाने से जल का अभाव हो जाता है तैसेही तुम्हारे भ्रम का अभाव हो जावेगा। जब दृश्य का अभाव हुआ तब द्रष्टा भी शान्त होवेगा और जब दोनों का अभाव हुआ तब पीछे शुद्ध आत्मसत्ताही भासेगी। हे रामजी! जबतक द्रष्टा है तबतक दृश्य है और जबतक दृश्य है तबतक द्रष्टा है जैसे एक की अपेक्षा से दो होते हैं-दो हैं तो एक है और एक है तब दो भी हैं-एक न हो तब दो कहां से हों-तैसेही एक के अभाव हुये दोनों का अभाव होता है। द्रष्टा की अपेक्षा से ही दृश्य की अपेक्षा करके द्रष्टा है। एक के अभाव से दोनों का अभाव हो जाता है। हे रामजी! अहन्ता से आदि लेकर जो दृश्य है सो सब दूर करूंगा। हे रामजी! अनात्मा से आदि लेके जो दृश्य है वही मैल है। इससे रहित होकर चित्तरूपी दर्पण निर्मल होगा। जो पदार्थ असत् है उसका कदाचित् सत् नहीं होता और जो पदार्थ सत् है सो असत् नहीं होगा। जो वास्तव सत् न हो उसका मार्जन करना क्या बात है; हे रामजी! यह जगत् आदि से उत्पन्न नहीं हुआ। जो कुछ दृश्य भासता है वह भ्रान्तिमात्र है। सर्व निर्मल ब्रह्म चैतन्य है। जैसे सुवर्ण से भूषण होता है तो वह सुवर्ण भूषणसे भिन्न नहीं तैसे ही जगत् और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! दृश्यरूपी मलके मार्जन के लिये मैं बहुत प्रकार की युक्ति तुमसे विस्तारपूर्वक कहूंगा उससे तुमको अद्वैत सत्ता का भास होगा। यह जगत् जो तुमको भासता

है वह किसीके द्वारा नहीं उपजा । जैसे मरुस्थल की नदी भासती है और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही यह जगत् विना कारण भासता है। जैसे मरुस्थल में जल नहीं; जैसे बन्ध्या का पुत्र नहीं और जैसे आकाश में वृक्ष नहीं तैसेही यह जगत् है। जो कुछ देखते हो वह निरामय ब्रह्म है। यह वाक्य तुमको केवल वाणीमात्र नहीं कहे किन्तु युक्तिपूर्वक कहे हैं। हे रामजी ! गुरु की कही युक्ति को जे मूर्खता से त्याग करते हैं उनको सिद्धान्त नहीं प्राप्त होता ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दृश्यअसत्यप्रतिपादनंनामषष्ठस्सर्गः६॥

इतना सुन रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर ! वह युक्ति कौन है और कैसे प्राप्त होती है जिसके धारण किये से पुरुष आत्मपद को प्राप्त होता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! मिथ्या ज्ञान से जो विसूचिकारूपी जगत् बहुत काल का दृढ़ हो रहा है वह विचाररूपी मन्त्र से शान्त होता है। हे रामजी ! बोध की सिद्धता के लिये मैं तुमसे एक आख्यान कहता हूं उसको सुनके तुम मुक्तात्मा होगे और जो अर्द्धप्रबुद्ध होकर तुम उठ जावोगे तब तिर्यगादिक धर्म को प्राप्त होगे । हे रामजी ! जिस अर्थ के पाने की जीव इच्छा करता है उसके पाने के अनुसार यत्न भी करे और थक कर फिरे नहीं तो अवश्य उसको पाता है इससे सत्संगति और सत्शास्त्रपरायण हो जब तुम इनके अर्थ में दृढ़ अभ्यास करोगे तब कुछ दिनों में परमपद पावोगे । फिर रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! आत्मबोध का कारण कौन शास्त्र है और शास्त्रों में श्रेष्ठ कौन है कि, उसके जानने से शोक न रहे ? वशिष्ठजी बोले; हे महामते, रामजी ! महाबोध का कारण शास्त्रों में परमशास्त्र महारामायण है। उसमें बड़े २ इतिहास हैं जिनसे परमबोध की प्राप्ति होती है। हे रामजी ! सर्व इतिहासों का सार मैं तुम से कहता हूँ जिसको समझकर जीवन्मुक्त हो तुम को जगत् न भासेगा; जैसे स्वप्न में जागे हुये को स्वप्न के पदार्थ भासते हैं। जो कुछ सिद्धान्त है उन सबका सिद्धान्त इसमें है और जो इसमें नहीं वह और में भी नहीं है इसको बुद्धिमान् सब शास्त्र विज्ञान भण्डार

जानते हैं। हे रामजी! जो पुरुष श्रद्धासंयुक्त इसको सुने और नित्य सुनके विचारेगा उसकी बुद्धि उदार होकर परमबोध को प्राप्त होगी—इसमें संशय नहीं। जिसको इस शास्त्र में रुचि नहीं है वह पापात्मा है। उसको चाहिये कि, प्रथम और शास्त्रों को विचारे उसके अनन्तर इसको विचारे तो जीवन्मुक्त होगा। जैसे उत्तम औषध से रोग शीघ्रही निवृत्त होता है तैसेही इस शास्त्र के सुनने और विचारने से शीघ्रही अज्ञान नष्ट होकर आत्मपद को प्राप्त होगा। हे रामजी! आत्मपद की प्राप्ति वर और शाप से नहीं होती जब विचार से अभ्यास करे तो आत्मज्ञान प्राप्त होता है। हे रामजी! दान देने, तपस्या करने और वेद के पढ़ने से भी आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती केवल आत्मविचार से ही होती है। संसारभ्रम भी अन्यथा नष्ट नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिर्णयोनामसप्तमस्सर्गः॥७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिस पुरुष के चित्त और प्राणों की चेष्टा और परस्पर बोध आत्मा का है और जो आत्मा को कहता भी है; आत्मा से तोषवान् भी है और आत्माही में रमता भी है ऐसा ज्ञान-निष्ठ जीवन्मुक्त होकर फिर विदेहमुक्त होता है। रामजी बोले; हे मुनी-श्वर! जीवन्मुक्त और विदेहमुक्त का क्या लक्षण है कि, उस दृष्टि को लेकर मैं भी वैसेही विचरूँ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष सब जगत् के व्यवहार करता है और जिसके हृदय में अद्वैतभ्रम शान्त हुआ है वह जीवन्मुक्त है; जो शुभ क्रिया करता है और हृदय से आकाश की नाईं निर्लेप रहता है वह जीवन्मुक्त है; जो पुरुष संसार की दशा से सुषुप्त होकर स्वरूप में जाग्रत हुआ है और जिसका जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! इष्ट की प्राप्ति में जिसके मुखकी कान्ति नहीं बढ़ती और अनिष्टकी प्राप्ति में न्यून नहीं होती वह पुरुष जीवन्मुक्त है और जो पुरुष सब व्यवहार करता है और हृदय से द्वेष रहित शीतल रहता है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जो पुरुष रागद्वेषा-दिक संयुक्त दृष्टि आता है; इष्ट में रागवान् दिखता है और अनिष्ट में

द्वेषवान् दृष्टि आता है पर हृदय से सदा शान्तरूप है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुष को अहं ममता का अभाव है और जिसकी बुद्धि किसीमें लेपायमान नहीं होती वह कर्म करे अथवा न करे परन्तु जीवन्मुक्त है। हे रामजी ! जिस पुरुष को मान, अपमान, भय और क्रोध में कोई विकार नहीं उपजता और आकाशकी नाईं शून्य होगया है वह जीवन्मुक्त है। जो पुरुष भोक्ता भी पर हृदय से अभोक्ता है और संचित दृष्टि आता है पर अचित है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषसे कोई दुःखी नहीं होता और लोगों से वह दुःखी नहीं और राग, द्वेष, भय और क्रोध से रहित है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी ! जो पुरुष चित्त के फुरने से जगत्की उत्पत्ति जानता है और चित्त के अफुर हुये जगत् का प्रलय जानता है और सबमें समबुद्धि है वह जीवन्मुक्त है। जो पुरुष भोगों से जीता दृष्टि आता है और मृतक की नाईं स्थित और चेष्टा करता दृष्टि आता है पर पर्वत के सदृश अचल है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी ! जो पुरुष व्यवहार करता दृष्टि आता है और जिसके चित्त में इष्ट अनिष्ट विकार कोई नहीं है वह जीवन्मुक्त है। जिस पुरुषको सब जगत् आकाशरूप दीखता है और जिसकी निर्वासनिक बुद्धि भई है वह जीवन्मुक्त है क्योंकि वह सदा आत्मस्वभाव में स्थित है और सब जगत् को ब्रह्मस्वरूप जानता है। इतना सुनकर रामजी बोले; हे भगवन् ! जीवन्मुक्त की तो तुमने कठिन गति कही। इष्ट अनिष्ट में सम और शीतल बुद्धि कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इष्ट अनिष्टरूपी जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञानी को सब आकाशरूप भासता है उसे राग द्वेष किसीमें नहीं होता। और की दृष्टि में वह चेष्टा करता दृष्टि आता है परन्तु जगत् की वार्त्ता से सुषुप्त है। हे रामजी ! जीवन्मुक्त कुछ काल रहकर जब शरीर को त्यागता है तब ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। जैसे पवन स्पन्द को त्यागकर निस्पन्द होता है तैसे ही वह जीवन्मुक्तपद को त्यागकर विदेहमुक्त होता है। तब वह सूर्य होकर तपता है; ब्रह्मा होकर सृष्टि उत्पन्न करता है; विष्णु होकर प्रतिपालन करता है; रुद्र होके संहार करता है; पृ-

होके सब भूतों को धरता और ओषधि अन्नादिकों को उत्पन्न करता है, पर्वत होके पृथ्वी को रखता है; जल होके द्रवता रस देता है, अग्नि होके उष्णता को धारता है, पवन होके पदार्थों को सुखाता है; चन्द्रमा होके ओषधियों को पुष्ट करता है, आकाश होके सब पदार्थों को ठौर देता है, मेघ होके वर्षा करता है और स्थावर जङ्गम जितना कुछ जगत् है सबमें आत्मा होके स्थित होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! विदेह-मुक्त शरीर के धारण से क्षोभवान् होकर जगत् में आता है तो त्रैलोकी का भ्रम क्यों नहीं मिटता ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जगत् आडम्बर अज्ञानी के हृदय में स्थित है और ज्ञानवान् को सब चिदाकाशरूप है। विदेहमुक्त वही रूप होता है जहां उदय अस्त की कल्पना कोई नहीं केवल शुद्ध बोधमात्र है। हे रामजी ! यह जगत् आदि से उपजा नहीं केवल अज्ञान से भासता है। मैं तुम और सब जगत् आकाशरूप हैं। जैसे आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासते हैं। और जैसे मरुस्थल में जल भासता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी ! जैसे स्वर्ण में भूषण कुछ उपजा नहीं और जैसे समुद्र में तरङ्ग होती है तैसेही आत्मा में जगत् उपजा नहीं । यह सब जगत्जाल मन के फुरने से भासता है स्वरूप से कुछ नहीं बना । ज्ञानी को सदा यही निश्चय रहता है फिर जगत् का क्षोभ उसको कैसे भासे ? हे रामजी ! यह भी मैंने तुम्हारे जाननेमात्र को कहा है; नहीं तो जगत् कहां है जगत् का तो अत्यन्त अभाव है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन् ! जगत् के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध की प्राप्ति नहीं होती। वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी ! दृश्य द्रष्टा का मिथ्याभ्रम उदय हुआ है। जब दोनों में से एक का अभाव हो तब दोनों का अभाव हो और जब दोनों का अभाव हो तब शुद्ध बोधमात्र शेष रहे । जिस प्रकार जगत् का अत्यन्त अभाव हो वह युक्ति मैं तुमसे कहता हूं। हे रामजी ! चिरकाल का जो जगत् दृढ़ होरहा है वह मिथ्याज्ञान विसूचिका है। वह विचाररूपी मन्त्र से निवृत्त होता है। जैसे पर्वत पर चढ़ना और उतरना शनैः २

होता है तैसेही अविद्धकभ्रम चिरकाल का दृढ़ होरहा है विचार करके अनुक्रम से उसकी निवृत्ति होती है। जगत् के अत्यन्त अभाव हुये विना आत्मबोध नहीं होता। उसके अत्यन्त अभाव के निमित्त मैं युक्ति कहता हूं उसके समझने से जगत्भ्रम नष्ट होगा और जीवन्मुक्त होकर तुम विचरोगे। हे रामजी! बन्धन से वही बँधता है जो उपजा हो और मुक्त भी वही होता है जो उपजा हो। यह जगत् जो तुमको भासता है वह उपजा नहीं। जैसे मरुस्थल में नदी भासती है वह भी उपजी नहीं है भ्रम से भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है पर उपजा नहीं। जैसे अर्द्ध मीलित नेत्र पुरुष को आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही भ्रम से जगत् भासता है। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब स्थावर, जङ्गम, देवता, किन्नर, दैत्य, मनुष्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक जगत् का अभाव होता है। इसके अनन्तर जो रहता है सो इन्द्रियग्राहक सत्ता नहीं और असत्यभी नहीं और न शून्य, न प्रकाश, न अन्धकार, न द्रष्टा, न दृश्य, न केवल, न अकेवल, न चेतन, न जड़, न ज्ञान, न अज्ञान, न साकार, न निराकार, न किञ्चन और न अकिञ्चन ही है। वह तो सर्वशब्दों से रहित है उसमें वाणी की गम नहीं और जो है तो चैतन्य से रहित चेतन आत्मतत्त्वमात्र है जिसमें अहं त्वं की कोई कल्पना नहीं। ऐसे शेष रहता है और पूर्ण, अपूर्ण, आदि, मध्य, अन्तसे रहित है। सोई सत्ता जगत्रूप होकर भासती है और कुछ जगत् बना नहीं। जैसे मरीचिकामें जल भासता तैसेही आत्मामें जगत् भासता है। हे रामजी! जब चित्तशक्ति स्पन्दरूप हो भासती है तब जगदाकार भासता है और जब निस्पन्द होती है तब जगत् का अभाव होता है पर आत्मसत्ता सदा एक रस रहती है। जैसे वायु स्पन्दरूप होता है तो भासता है। और निस्पन्दरूप नहीं भासता परन्तु वायु एकही है तैसेही जब चित्त संवेदनस्पन्दरूप होता है तब जगत्रूप होकर भासता है और जब निस्पन्दरूप होता है तब जगत् मिट जाता है। हे रामजी! चेतन तब जाना जाता है जब संवेदन स्पन्दरूप होता है। जैसे सुगन्ध का

ग्रहण आधारभूतसे होता है। और आधारभूत द्रव्य विना सुगन्ध का ग्रहण नहीं होता। जैसे वस्त्र श्वेत होता है तब रङ्गको ग्रहण करता है अन्यथा रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही आत्मा का जानना स्पन्द से होता है; स्पन्द विना जानने की कल्पना भी नहीं होती। जैसे आकाश में शून्यता और अग्नि में उष्णता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है—वह अनन्यरूप है। जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूप होके भासता है तैसेही अत्मसत्ता जगत्रूप होके भासती है। वह आकाशवत् शुद्ध है और श्रवण, चक्षु, नासिका, त्वचा, देह और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से रहित है और सब ओर से श्रवण करता, बोलता, सूंघता, स्पर्श करता और रस लेता भी आपही है। आत्मरूपी सूर्यकी किरणों में जलरूपी त्रिलोकी फुरती भासती है। जैसे जल में चक्र आवृत फुरते भासते सो जल से इतर कुछ नहीं, जलरूप ही हैं तैसेही जगत आत्मा से भिन्न नहीं आत्मरूप ही है। आत्म ही जगत्रूप होकर भासता है। रसना नहीं पर बोलता है; अभोक्ता है पर अभोक्ता होके भासता है; अफुर है पर फुरता भासता है; अद्वैत है पर द्वैतरूप होकर भासता है और निराकार है पर साकाररूप होके भासता है। हे रामजी! आत्मसत्ता सब शब्दों से अतीत है पर वही सब शब्दों को धारती है और अनद्रष्टा होके भासती है, इतर कुछ है नहीं। कई सृष्टि समान होती हैं और कई विलक्षण होती हैं परन्तु स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं सदा आत्मरूप हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण समान आकार भी होते और विलक्षण भी होते हैं और कङ्कण से आदि लेके जो भूषण हैं सो सुवर्ण से इतर नहीं होते—सुवर्णरूपी ही हैं तैसेही जगत् आत्मस्वरूप है और शुद्ध आकाश से भी निर्मल बोधमात्र है। हे रामजी! जब तुम उसमें स्थित होगे तब जगत्भ्रम मिट जावेगा। जगत् वास्तव में कुछ नहीं है सदा ज्यों का त्यों अपने आपमें स्थित है; और केवल मन के फुरने से ही जगत् भासता है मनके फुरनेसे रहित हुये सब कल्पना मिटजाती हैं और आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों भासती है। वह सत्ता ज्योंकी त्योंही है और

सबका अधिष्ठानरूप है। यह सब जगत् उसीसे हुआ है और वही रूप है। सबका कारण आत्मसत्ता है और उसका कारण कोई नहीं। अकारण, अद्वैत, अजर, अमर और सब कल्पनासे रहित शुद्ध चिन्मात्ररूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणेपरमकारणवर्णनन्नामाष्टमस्सर्गः॥ ८॥

इतना सुनकर रामजीने पूछा; हे भगवन्! जब महाप्रलय होता है और सब पदार्थ नष्ट होजाते हैं उसके पीछे जो रहता है उसे शून्य कहिये वा प्रकाश कहिये क्योंकि तम तो है नहीं; चेतन है अथवा जीव है; मन है वा बुद्धि है; सत्, असत्; किञ्चन, अकिञ्चन, इनमें कोई तो होवेगा आप कैसे कहते हैं कि, वाणी की गम नहीं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी यह तुमने बड़ा प्रश्न किया है। इस भ्रम को मैं विना यत्न नाश करूंगा जैसे सूर्यके उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसे ही तुम्हारे संशय का नाश होगा। हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब सम्पूर्ण दृश्य का अभाव होजाता है पीछे जो शेष रहता है सो शून्य नहीं क्योंकि दृश्याभास उसमें सदा रहता है और वास्तवमें कुछ हुआ नहीं। जैसे थम्भ में शिल्पी पुतलियां कल्पता है कि, इतनी पुतलियां इस थम्भसे निकलेंगी सो उस थम्भमें ही शिल्पी कल्पता है जो थम्भ न हो तो शिल्पी पुतलियां किसमें कल्पता? तैसेही आत्मरूपी थम्भे में मनरूपी शिल्पी जगतरूप पुतलियां कल्पता है; जो आत्मा न हो तो पुतलियां किसमें कल्पै। जैसे थम्भे में पुतलियां थम्भारूप हैं; तैसेही सब जगत ब्रह्मरूप है—ब्रह्मसे इतर जगत् का होना नहीं। जैसे पुतलियों का सद्भाव और असद्भाव थम्भ में है क्योंकि, अधिष्ठानरूप थम्भा है—थम्भे विना पुतलियां नहीं होतीं; तैसे ही जगत् आत्मा विना नहीं होता। हे रामजी! सद्भाव होजाता है वह सत् से होता है असत् से नहीं और असद्भाव सिद्ध होता है वह सतही में होता है असत् में नहीं होता। इससे सत् शून्य नहीं जो शून्य होता तो किसमें भासता जैसे सोम जल में तरङ्ग का सद्भाव और असद्भाव भी होता है। असद्भाव इस कारण होता है।

तरङ्ग भिन्न कुछ नहीं और सद्भाव इस कारण से होता है कि, जल ही में तरङ्ग होता है; तैसे ही जगत् का सद्भाव असद्भाव आत्मा में होता है शून्य में नहीं। जैसे सोम जल में कहनेमात्र को तरङ्ग हैं; नहीं तो जलही है; तैसे ही जगत् कहनेमात्र को है; हुआ कुछ नहीं—एक सत्ताही है। और शून्य और अशून्य भी नहीं क्योंकि; शून्य और अशून्य ये दोनों शब्द उसमें कल्पित हैं। शून्य उसको कहते जो सद्भाव से रहित अभावरूप हो और अशून्य उसको कहते हैं जो विद्यमान हो। पर सत्ता से इन दोनों से रहित है अशून्य भी शून्य का प्रतियोगी है; जो शून्य नहीं तो अशून्य कहां से हो। ये दोनों ही अभावमात्र हैं। हे रामजी! यह सूर्य, तारा, दीपक आदिक भौतिक प्रकाश भी वहां नहीं क्योंकि; प्रकाश अन्धकार का विरोधी है। जो यह प्रकाश होता तो अन्धकार सिद्ध न होता। इससे वहां प्रकाश भी नहीं है और तम भी नहीं है क्योंकि; सूर्यादिक जिससे प्रकाशते हैं वह तम कैसे हो? आत्मा के प्रकाश विना सूर्यादिक भी तमरूप हैं। इससे वह न शून्य है; न अशून्य है; न प्रकाश है; न तम है; केवल आत्मतत्त्वमात्र है। जैसे थम्भ में पुतलियां कुछ हैं नहीं तैसेही आत्मा में जगत् कुछ हुआ नहीं। जैसे बिल्ली और बिल्ली की मज्जा में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं और जैसे जल और तरङ्ग में और मृत्तिका और घट में कुछ भेद नहीं तैसे ही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं; नाममात्र भेद है। हे रामजी! जल और मृत्तिका का जो दृष्टान्त दिया है ऐसे भी आत्मा में नहीं। जैसे जल में तरङ्ग होता है और मृत्तिका में घट होता है सो भी परिणामरूप होता है। आत्मा में जगत् भान नहीं है और जो मानसिक है तो आकाशरूप है। इससे जगत् कुछ भिन्न नहीं है रूप, अवलोकन, मनसा, कार्यता जो कुछ भासता है वह सब आकाशरूप है। आत्मसत्ता ही चित्तके फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है—जगत् कुछ दूसरी वस्तु नहीं है जैसे सूर्य की किरणों में जलाभास होता है तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी! थम्भे में जो शिल्पाकार पुतलियां कल्पता है

सो भी नहीं होती और यहां कल्पनेवाला भी बीच की पुतली है वह भी होने विना भासती है। हे रामजी! जिस मे यह जगत् भासता है उसको शून्य कैसे कहिये और जो कहिये कि, चैतन्य है तौ भी नहीं क्योंकि; चैतन्य भी तब जानना होता है जब चित्कला फुरती है; जहां फुरना न हो वहां चेतनता कैसे रहे? जैसे जब कोई मिरच को खाताहै तब उसकी तिखाई भासती है खाने विना नहीं भासती; तैसे ही चैतन्य जानना भी स्पन्दकला में होता है आत्मा में जानना भी नहीं होता चैतन्यता से रहित चिन्मात्र अक्षय सुषुप्तिरूप है उसको जो तुरीय कहता है वह ज्ञेय ज्ञानवान् से गम्य है। हे रामजी! जो पुरुष उसमें स्थित हुआ है उसको संसाररूपी सर्प नहीं डससकता; वह अचैत्य चिन्मात्र होता है। और जिसकी आत्मा में स्थिति नहीं होती उस को दृश्यरूपी सर्प डसता है। आत्मसत्ता में तो कुछ द्वैत नहीं हुआ आत्म-सत्ता तो आकाश से भी स्वच्छ है। इनका द्रष्टा, दर्शन, दृश्य स्वतः अनुभवसत्ता आत्मा का रूप है और वह अभ्यास करने से प्राप्त होती है। हे रामजी! उसमें द्वैतकल्पना कुछ नहीं है। वह अद्वैतमात्र है वह न द्रष्टा है न जीव है न कोई विकार और न स्थूल, न सूक्ष्म है-एक शुद्ध अद्वैतरूप अपने आपमें स्थित है जो यह चैत्यका फुरनाही आदि में नहीं हुआ तो चेतनकला का जीव कैसे हो और जो जीवही नहीं तो बुद्धि कैसेहो? जो बुद्धिहीन हो तो मन और इन्द्रियां कैसे हों; जो इन्द्रियां नहीं तो देह कैसे हो और जो देह न हो तो जगत् कैसे हो हे रामजी! आत्मसत्ता में सब कल्पना मिटजाती हैं; उसमें कुछ कहना नहीं बनता वह तो पूर्ण, अपूर्ण, सत, असत् से न्यारा है भाव और अभाव का कभी उसमें कोई विचार नहीं; आदि, मध्य, अन्तकी कल्पना भी कोई नहीं वह तो अजर, अमर, आनन्द, अनन्त, चितुस्वरूप, अचैत्य चिन्मात्र और अवाक्यपद है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म आकाश से भी अधिक शून्य और स्थूल से भी स्थूल एक अद्वैत और अनन्त चिद्घन है। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह अचिन्त्य, चिन्मात्र

और परमार्थसत्ता जो आपने कही उसका रूप बोध के निमित्त मुझसे फिर कहो। वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होताहै तब सब जगत् नष्ट होजाता है पर ब्रह्मसत्ता शेष रहती है उसका रूप मैं कहता हूं। मनरूपी ब्रह्मा है मन की वृत्ति जो क्षीण होती है वह एक प्रमाण; दूसरी विपर्यय; तीसरी विकल्प; चौथी अभाव और पांचवीं स्मरण है। प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की हैं-एक प्रत्यक्ष; दूसरी अनुमान जैसे धुवांसे अग्नि जानना और तीसरी शब्दरूप ये तीनों प्रमाणवृत्ति आप्तकामिका हैं। द्वितीय विपर्यय वृत्ति है-हाव और भाव से तृतीय विकल्पवृत्ति है। जिससे शब्दज्ञान और अर्थ ज्ञान होता है। जैसे चेतन पुरुष कहा तो इससे यह ज्ञान हुआ कि, जो एक पुरुष हो और उसका द्वतीय चैतन्य स्वरूप हो तो यह चैतन्य पुरुष कहाजाता है। चेतन ईश्वररूप है और साक्षी पुरुषरूप है अर्थात् जैसे सीप पड़ी हो और उसमें संशय वृत्ति चांदी की होकर साक्षी सीपी भासे तो उसका नाम विकल्प है। चतुर्थ निद्रा-अभाव वृत्ति है और पञ्चम स्मरणवृत्ति है। यही पांचो वृत्ति हैं और इनका अभिमानी मन है जब तीनों शरीरों का अभिमानी अहंकार नाश हो तब पीछे जो रहता है सो निश्चल-सत्ता अनन्त आत्मा है। मैं असत् नहीं कहताहूं। हे रामजी! जाग्रत् के अभाव हुये पर जबतक सुषुप्ति नहीं आती वह रूप परमात्मा का है। अंगुष्ठ को जो शीत उष्ण का स्पर्श होताहै उसको अनुभव करने-वाला परमात्मसत्ता है जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य उपजता है और फिर लीन होताहै वह परमात्मा का रूप है। उस सत्ता में चैतन्यता भी नहीं है। हे रामजी! जिसमें चेतन अर्थात् जीव और जड़ अर्थात् देहादिक दोनों नहीं हैं वह अचेत चिन्मात्र परमात्मारूप है। जो सब व्यवहार होताहै और जिसके अन्तर आकाशरूप है-कोई क्षोभ नहीं ऐसी सत्ता परमात्मा का रूपहै। वह शून्यहै परन्तु शून्यतासे रहितहै। हे रामजी! जिसमें द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तीनों प्रतिबिम्बित हैं और आकार है-ऐसी सत्ता परमात्मा का रूपहै। जो स्थावर में स्थावरभाव और चेतन में चेतन

भाव से व्यापरहा है। और मन बुद्धि इन्द्रियां जिसको नहीं पासक्तीं ऐसी सत्ता परमात्मा का रूप है। हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का जहां अभाव होजाता है उसके पीछे जो शेष रहताहै और जिसमें कोई विकल्प नहीं ऐसी अचेत चिन्मात्रसत्ता परमात्मा का रूप है॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमात्मस्वरूपवर्णनन्नाम नवमस्सर्गः॥ ६॥

इतना सुन रामजी बोले; हे भगवन् ! यह दृश्य जो स्पष्ट भासता है सो महाप्रलय में कहाजाता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! बन्ध्या स्त्री का पुत्र कहां से आता है और कहां जाता है और आकाश का वन कहां से आता-और कहां जाता है ? जैसे आकाश का वन है तैसेही यह जगत् है। फिर रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर ! बन्ध्या का पुत्र और आकाश का वन तो तीनोंकालमें नहीं होता, शब्दमात्र है और उपजा कुछ नहीं पर यह जगत् तो स्पष्ट भासता है बन्ध्या के पुत्र के समान कैसे हो ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी। जैसे बन्ध्या का पुत्र और आकाश का वन उपजा नहीं तैसेही यह जगत् भी उपजा नहीं जैसे सङ्कल्पपुर होता है और जैसे स्वप्न नगर प्रत्यक्ष भासता है और आकाशरूप है; इनमें से कोई पदार्थ सत् नहीं तैसेही यह जगत् भी आकशरूप है और कुछ उपजा नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में; काजल और श्यामता में; अग्नि और उष्णता में; चन्द्रमा और शीतलता में वायु और स्पन्दमें और आकाश और शून्यता में भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं-सदा अपने स्वभाव में स्थित है। रामजी ! जगत् कुछ बना नहीं, आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है और उसमें अज्ञान से जगत् भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा, मरुस्थल में जल और आकाश में तरुवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में अज्ञान से जगत् भासताहै। इतना सुन फिर रामजी ने पूछा हे भगवन् ! दृश्यके अत्यन्त अभाव विना बोध की प्राप्ति नहीं होती और जगत् स्पष्टरूप भासता है। द्रष्टा और दृश्य जो मनसे उदय हुआ

हैं सो भ्रमसे हुये हैं। जो एकभी है तो दोनों बन्ध हुये हैं और जब दोनों में एक का अभाव हो तो दोनों मुक्त हों क्योंकि; जहां द्रष्टाहै वहां दृश्य भी है और जहां दृश्य है वहां द्रष्टा भी है। जैसे शुद्ध आदर्श विना प्रतिविम्ब नहीं होता तैसेही द्रष्टा भी दृश्य विना नहीं रहता और दृश्य द्रष्टा विना नहीं। हे मुनीश्वर! दोनों में एक नष्ट हो तो दोनों निर्वाण हों इससे वही युक्ति कहो जिससे दृश्य का अत्यन्त अभाव होकर आत्मबोध प्राप्त हो। कोई ऐसे भी कहते हैं कि, दृश्य आगे था अब नाश हुआ है तो उसको भी संसारभाव देखावेगा और जिसको विद्यमान नहीं भासता और उसका अन्त सद्भाव है तो फिर संसार देखेगा। जैसे सूक्ष्मबीज में वृक्ष का सद्भाव होताहै तैसेही स्मृति फिर संसार को देखावेगी और आप कहते हैं कि, जगत् का अत्यन्त अभाव होता है और जगत् का कारण कोई नहीं—आभासमात्रहै—और उपजा कुछ नहीं? हे मुनीश्वर! जिसका अत्यन्त अभाव होता है वह वस्तु वास्तव में नहीं होती और जो हैही नहीं तो बन्धन किसको हुआ तब तो सब मुक्तस्वरूप हुये पर जगत् तो प्रत्यक्ष भासताहै? इससे आप वही युक्ति कहो जिससे जगत् का अत्यन्त अभाव हो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दृश्य के अत्यन्त अभाव के निमित्त मैं एक कथा सुनाता हूं; जिसके अर्थ निश्चयकर समझने से दृश्य शान्त होकर फिर संसार कदाचित् न उपजेगा। जैसे समुद्र में धूर नहीं उड़ती तैसेही तुम्हारे हृदय में संसार न रहेगा। हे रामजी! यह जगत् जो तुमको भासता है सो अकारणरूप है; इसका कारण कोई नहीं। हे रामजी! जिसका कारण कोई न हो और भासे उसको जानिये कि, भ्रममात्र है—उपजा कुछ नहीं। जैसे स्वप्ने में सृष्टि भासती है वह किसी कारण से नहीं उपजी केवल संवित्रूप है तैसेही सर्ग आदि कारण से नहीं उपजा केवल आभासरूप है—परमात्मा का कुछ नहीं। हे रामजी! जो पदार्थ कारण विना भासे तो जिसमें वह भासता है वही वस्तु उसका अधिष्ठानरूप है। जैसे तुमको स्वप्ने में स्वप्न का नगर होकर भासता है पर वहां तो कोई पदार्थ नहीं

केवल आभासरूपहै और संवित् ज्ञान ही चैतन्यता से नगर होकर भासताहै, तैसेही विश्व अकारण आभास आत्मसत्ता से होके भासताहै। जैसे जलमें द्रवता; वायुमें स्पन्द; जलमें रस और तेजमें प्रकाश है तैसेही आत्मा में चित्तसंवेदन है। जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप होताहै तब जगत्रूप होकर भासता है—जगत् कोई वस्तु नहीं है। हे रामजी! जैसे और तत्त्वों के अणु और ठौर भी पायेजाते हैं और आकाश के अणु और ठौर नहीं पायेजाते क्योंकि; आकाश शून्यरूप है; तैसेही आत्मा से इतर इस जगत् का भाव कहीं नहीं पाते क्योंकि, यह आभासरूपहै और किसी कारण से नहीं उपजा कदाचित् कहो कि, पृथ्वी आदिक तत्त्वों से जगत् उपजा है तो ऐसे कहनाभी असम्भव है। जैसे छाया से धूप नहीं उपजती तैसेही तत्त्वों से जगत् नहीं उपजता क्योंकि; आदि आपही नहीं उपजे तो कारण किसका हो? इससे ब्रह्मसत्ता सर्वदा अपने आपमें स्थित है। हे रामजी! आत्मसत्ता जगत् का कारण नहीं क्योंकि; वह अभूत और अजड़रूप है सो भौतिक और जड़ का कारण कैसे हो? जैसे धूप परछाहीं का कारण नहीं तैसेही आत्मसत्ता जगत् का कारण नहीं। इससे जगत् कुछ हुआ नहीं वही सत्ता जगत्-रूप होकर भासती है। जैसे स्वर्ण भूषणरूप होता है और भूषण कुछ उपजा नहीं तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकर भासती है। जैसे अनुभव संवित् स्वप्न नगररूप हो भासता है तैसेही यह सृष्टि किञ्चनरूप है दूसरी वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है और जितना कुछ जगत् स्थावर जंगमरूप भासता है वह आकाशरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थरूपवर्णनंनाम दशमस्सर्गः॥ १०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आत्मसत्ता नित्य, शुद्ध, अजर, अमर और सदा अपने आपमें स्थित है। उसमें जिस प्रकार सृष्टि उदय हुई है वह सुनिये। उसके जाने से जगत् कल्पना मिट जावेगी। हे रामजी! भाव-अभाव; ग्रहण-त्याग; स्थूल-सूक्ष्म; जन्म-मरण आदि

पदार्थों से जीव छेदाजाता है उससे तुम मुक्तहोगे। जैसे चूहे सुमेरु पर्वत को चूर्ण नहीं कर सक्ते तैसेही तुमको संसार के भाव अभाव पदार्थ चूर्ण न कर सकेंगे। हे रामजी! आदि शुद्ध-देव अचेत चिन्मात्र है; उसमें चैत्यभाव सदा रहता है क्योंकि; वह चैतन्यरूपहै। जैसे वायु में स्पन्दशक्ति सदा रहती है तैसेही चिन्मात्र में चैत्य का फुरना रहकर "अहमस्मि" भाव को प्राप्त हुआ है। इसकारण उसका नाम चैतन्य है। हे रामजी! जबतक चैतन्य-संवित् अपने स्वरूप की ठौर नहीं आता तबतक इसका नाम जीव है और सङ्कल्प का नाम बीज चित्-संवित् है उसीसे सर्वभूतजाति उत्पन्न हुई है। इससे सबका जीव चित्-संवित् है। जब जीव संवित् चैत्य को चेतता है तब प्रथम शून्य होकर उसमें शब्दगुण होता है। उस आदि शब्दतन्मात्रा से पद, वाक्य और प्रमाण सहित वेद उत्पन्न हुये। जितना कुछ जगत्में शब्द है उसका बीज तन्मात्रा है जिससे सर्ववायु अरस्परस होता है। फिर रूपतन्मात्रा हुई; तिससे सूर्य, अग्नि आदिक प्रकाश हुये। फिर रसतन्मात्रा हुई जिससे जल हुआ और सब जलोंका बीज वही है। फिर गन्ध तन्मात्रा हुई जिससे पूर्ण पृथ्वी हुई और सब पृथ्वी का बीज वही है। हे रामजी! इसी प्रकार पांचो भूत हुये हैं फिर पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशसे जगत् हुआ है सो भूत पञ्चीकृत और अपञ्चीकृत है। यह भूत शुद्ध चिदाकाश-रूप नहीं क्योंकि; सङ्कल्प मैलयुक्त हुये हैं। इस प्रकार चिद्अणु में सृष्टि भासी है। जैसे वटबीज में से वट का विस्तार होता है तैसे ही चिद्अणु में सृष्टि है। कहीं क्षण में युग और कहीं युगमें क्षण भासता है। चिद्अणु में अनन्तसृष्टि फुरती हैं। जब चित् संवित् चैत्योन्मुख होता है तब अनेक सृष्टि होकर भासती हैं और जब चित् संवित् आत्मा की ठौर आता है तब आत्मा के साक्षात्कार होनेसे सब सृष्टि पिण्डाकार होकर जाती है अर्थात् सब आत्मरूप होती है इससे इस जगत् का बीज सूक्ष्मभूत है और इनका बीज चिद्अणु है। हे रामजी! जैसा बीज होता है तैसा ही वृक्ष होता है। इससे सब जगत् चिदाकाशरूप है।

संकल्प से यह जगत् आडम्बर होता है और संकल्पके मिटेसे सब चिदाकाश होता है। जैसे संकल्प आकाशरूप है तैसेही जगत् भी आकाशरूप है; जो सब आत्म अनुभव आकाशरूप है और जिससे क्षण में एकरूप होता है। जैसे संकल्पनगर और स्वप्नपुर होता तैसेही यह जगत् है। हे रामजी! इस जगत् का मूल पञ्चभूत है जिसका बीज संवित् और स्वरूप चिदाकाश है। इसीसे सब जगत् चिदाकाश है; द्वैत और कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगदुत्पत्तिवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! परब्रह्म सम, शान्त, स्वच्छ, अनन्त, चिन्मात्र और सर्वदाकाल अपने आप में स्थित है। उसमें सम–असमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। सम अर्थात् सजातीयरूप और असम अर्थात् भेदरूप कैसे हुये सो भी सुनिये। प्रथम तो उसमें चैत्य का फुरना हुआ है; उसका नाम जीव हुआ और उसने दृश्यको चेता उससे तन्मात्र, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध उपजे। उन्हींसे पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश पञ्चभूतरूपी वृक्ष हुआ और उस वृक्ष में ब्रह्माण्डरूपी फल लगा। इससे जगत् का कारण पञ्चतन्मात्राहुई हैं और तन्मात्राका बीज आदि संवित् आकाश है और इसीसे सर्व जगत् ब्रह्मरूप हुआ। हे रामजी! जैसा बीज होता है वैसा ही फल होता है। इसका बीज परब्रह्म है तो यह भी परब्रह्म हुआ। जो आदि अचेत चिन्मात्र स्वरूप परमाकाश है और जिस चैतन्य संवित में जगत् भासता है वह जीवाकाश है। वह भी शुद्ध निर्मल है क्योंकि वह पृथ्वी आदिक भूतों से रहित है। हे रामजी! यह जगत् जो तुमको भासता है सो सब चिदाकाशरूप है और वास्तव में द्वैत कुछ नहीं बना। यह मैंने तुमसे ब्रह्माकाश और जीवाकाश कहा। अब जिससे इसको शरीर ग्रहण हुआ सो सुनिये। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र है रामजी चिन्मुखत्व "अहं अस्मि" हुआ और उस अहंभाव से आप

जीव अणु जाननेलगा। आप वास्तव स्वरूप अन्य भावकी नाईं होकर जीव अणु में जो अहंभाव दृढ़ हुआ उसीका नाम अहंकार हुआ। उस अहंकार की दृढ़ता से निश्चयात्मक बुद्धि हुई और उससे सङ्कल्परूपी मन हुआ। जब मन इसकी ओर संसरनेलगा तब सुनने की इच्छा की इससे श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब रूप देखने की इच्छा की तब चक्षु इन्द्रिय प्रकट हुई; जब स्पर्श की इच्छा की तो त्वचा इन्द्रिय प्रकट हुई और जब रसलेने की इच्छा की तो जिह्वा इन्द्रिय प्रकटहुई। इसी प्रकार से देह इन्द्रिय चेतता से भासीं और उनमें यह जीव अहंप्रतीति करने लगा। हे रामजी! जैसे दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब होता है वह पर्वत से बाह्य है तैसेही देह और इन्द्रियां बाह्य दृश्य हैं पर अपने में भासी हैं इससे उनमें अहंप्रतीति होती है। जैसे कूप में मनुष्य आपको देखे तैसे ही देह में आपको देखता है जैसे डब्बे में रत्न होता है तैसेही देह में आपको देखता है। वही चिद्अणु देह के साथ मिलकर दृश्य को रचता है। उस अहं से रूप में क्रिया भासने लगी। जैसे स्वप्ने में दौड़े और जैसे स्थित में स्पन्द होती है तैसेही आत्मा में जो स्पन्दक्रिया हुई वह चित्त संवित से ही हुई है और उसीका नाम स्वयम्भू ब्रह्मा हुआ। जैसे संकल्प से दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही मनोमय जगत् भासता है। जैसे शशेके शृङ्ग होते हैं तैसाही यह जगत् है। कुछ उपजा नहीं केवल चित्त के स्पन्द में जगत् फुरता है। जैसे २ चित्त फुरता तैसे २ देश, काल, द्रव्य, स्थावर, जङ्गम, जगत् की मर्यादा हुई हैं। इससे सब जगत् संकल्परूप है; संकल्प से इतर जगत् का आकार कुछ नहीं। जब संकल्प फुरता है तब आगे जगत् दृश्य भासता है और जब संकल्प निस्पन्द होता है तब दृश्य का अभाव होताहै। हे रामजी! इस प्रकार से यह ब्रह्मा निर्वाण हो फिर और उपजते हैं इससे सब संकल्पमात्र ही हैं। जैसे नटवा नाना प्रकार के पटके स्वांग करके बाहर निकलआता है तैसे ही देखो यह सब मायामात्र है। हे रामजी! जब चित्त की ओर संसरता है तब दृश्य

का अन्त नहीं आता और जब अन्तर्मुख होता है तब सब जगत आत्मरूप होता है। चित्त के निस्पन्द होने से एक क्षण में जगत् निवृत्त होता है क्योंकि; संकल्परूप ही है इससे यह जगत् आकाशरूप है उपजा कुछ नहीं और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आप में स्थित है। जैसे स्वप्ने में पर्वत और नदियां भ्रम से दिखते हैं तैसेही यह जगत भी भ्रमसे भासता है। जैसे स्वप्ने में आपको मुआ देखता है सो भ्रममात्र है तैसेही यह जगत् भ्रममात्र है। हे रामजी! यह स्थावर, जङ्गम; जगत् सब चिदाकाश है। हमको तो सदा चिदाकाश ही भासता है। आदि विराट्रूप में ब्रह्मा भी वास्तव में कुछ उपजे नहीं तो जगत् कैसे उपजा। जैसे स्वप्ने में नानाप्रकार के देश काल और व्योहार दृष्टि आते हैं सो अकारणरूप हैं; उपजे कुछ नहीं और आभासमात्र हैं तैसेही यह जगत् आभासमात्र है। कार्य कारण भासते हैं तोभी अकारण है। हे रामजी! हमको जगत् ऐसा भासता है जैसे स्वप्नसे जागे मनुष्य को भासता है। जो वस्तु अकारण भासी है सो भ्रान्तिमात्र है। जो किसीकारण द्वारा जगत् नहीं उपजा तो स्वप्नवत् है। जैसे संकल्पपु और गन्धर्वनगर भासते हैं तैसेही यह जगत् भी जानो। आदि विरा आत्मा अन्तवाहकरूप है और वह पृथ्वी आदि तत्त्वों से रहित आकाशरूप है तो यह जगत् अधिभूत से कैसे हो। सब आकाशरूप है।

इति श्रीयो०उत्पत्ति०स्वयम्भूउत्पत्तिवर्णनन्नामद्वादशस्सर्गः ॥ १२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह दृश्य मिथ्या असत्रूप है। जो सो निरामय ब्रह्म है। वह ब्रह्म आकाशजीवकी नाईं हुआ है। जैसे समु द्रवतासे तरङ्गरूप होता है तैसेही ब्रह्म जीवरूप होता है आदिसंवि स्पन्दरूप ब्रह्मा हुआ है और उस ब्रह्मासे आगे जीव हुये हैं जैसे ए दीपक से बहुत दीपक होते और जैसे एक संकल्पके बहुत संकल्प होते तैसेही एक आदिजीवसे बहुत जीव हुये हैं। जैसे थम्भे में शिल्पी पु लियां कल्पता है पर वह पुतलियां शिल्पीके मनमें होती हैं, थम्भ ज्योंका त्योंही स्थित है; तैसेही सब पदार्थ आत्मा में मन कल्पै

वास्तव में आत्मा ज्योंका त्यों ब्रह्म है। उन पुतलियों में बड़ी पुतली ब्रह्मा है और छोटी पुतली जीव है। जैसे वास्तव में थम्भा है, पुतली कोई नहीं उपजी; तैसे ही वास्तव में आत्मसत्ता है जगत् कुछ उपजा नहीं; संकल्प से भासता है और संकल्प के मिटे से जगत्कल्पना मिट जाती है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! एक जीव से जो बहुत जीव हुये हैं तो क्या वे पर्वत में पाषाण की नाईं उपजते हैं वा कोई जीवों की खान है? कि, इस प्रकार इतने जीव उत्पन्न हो आते हैं; अथवा मेघ की बूंदों वा अग्नि से विस्फुलिङ्गों की नाईं उपजते हैं सो कृपाकर कहिये? और एक जीव कौन है जिससे सम्पूर्ण जीव उपजते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! न एकजीव है और न अनेक हैं। तेरे ये वचन ऐसे हैं जैसे कोई कहे कि, मैंने शशेके शृङ्ग उड़ते देखे हैं। एक जीव भी तो नहीं उपजा मैं अनेक कैसे कहूं? शुद्ध और अद्वैत आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। वह अनन्त आत्मा है; उसमें भेद की कोई कल्पना नहीं है। हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है सो सब आकाशरूप है कोई पदार्थ उपजा नहीं, केवल संकल्प के फुरने ही से जगत् भासता है। जीवशब्द और उसका अर्थ आत्मा में कोई नहीं उपजा यह कल्पना भ्रम से भासती है। आत्मसत्ताहीं जगत् की नाईं भासती है; उसमें न एक जीव है और न अनेक जीव हैं। हे रामजी! आदि विराट् आत्मा आकाशरूप है, तिससे और जगत् उपजा है। मैं तुमको क्या कहूं? जगत् विराट्रूप है, विराट् जीवरूप है और जीव आकाशरूप है, फिर और जगत् क्या रहा और जीव क्या हुआ? सब चिदाकाशरूप है। ये जितने जीव भासते हैं वे सब ब्रह्मस्वरूप हैं, द्वैत कुछ नहीं और न इनमें कुछ भेद है। रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! आप कहते हैं कि, आदिजीव कोई नहीं; तो इन जीवों का पालनेवाला कौन है? वह नियामक कौन है जिसकी आज्ञा में ये विचरते हैं? जो कोई हुआ ही नहीं तो ये सर्वज्ञ और अल्पज्ञ क्योंकर होते हैं और एक में कैसे हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी!

जिसको तुम आदि जीव कहते हो वह ब्रह्मरूप है। वह नित्य, शुद्ध और अनन्त शक्तिमान् अपने आपमें स्थित है और उसमें जगत् कल्पना कोई नहीं। हे रामजी! जो शुद्ध चिदाकाश अनन्तशक्ति में आदिचित्त किञ्चन हुआ है वही शुद्ध चिदाकाश ब्रह्मसत्ता जीव की नाईं भासने लगी है। स्पन्दद्वारा हुये की नाईं भासती है पर अपने स्वरूप से इतर कुछ हुआ नहीं चैतन्य संवित् आदि स्पन्द से विराट् आत्मा ब्रह्मारूप होकर स्थित हुआ है और उससे संकल्प करके जगत् रचा है। उसीमें शुभ अशुभ कर्म रचे हैं और उनसे नीति रची है– अर्थात् यह शुभ है और यह अशुभ है; वही आदि नीति महाप्रलय पर्यन्त ज्यों की त्यों चली जाती है। हे रामजी! वह अनन्त शक्तिमान् देव जिससे आदि फुरना हुआ है वैसेही स्थित है। जो आदि सर्व शक्ति फुरी है वह तैसेही है–जो अल्पज्ञ फुरा है सो अल्पज्ञही है। हे रामजी! संसार के पदार्थों में नीतिशक्ति प्रधान है; उसके लंघने को कोई भी समर्थ नहीं है। जैसे रची है तैसे ही महाप्रलय पर्यन्त रहती है। हे रामजी! आदि-नित्य-विराट्पुरुष अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है और यह जगत् भी अन्तवाहकरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से नहीं उपजा–सब संकल्परूप है। जैसे मनोराज का नगर शून्य होता है तैसे ही यह जगत् शून्य है। हे रामजी! इस सर्ग का निमित्त कारण और समवाय कारण कोई नहीं। जो पदार्थ निमित्त कारण और समवाय कारण विना दृष्टि आवे उसे भ्रममात्र जानिये; वह उपजा नहीं। जो पदार्थ उपजता है वह इन्हीं दोनों कारणों से उपजता है पर वह जगत् का कारण इनमें से कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता नित्य, शुद्ध और अद्वैत सत्ता है उसमें कार्य कारण की कल्पना कैसे हो? हे रामजी! यह जगत् अकारण है केवल भ्रान्ति से भासता है। जब तुमको आत्म विचार उपजेगा तब दृश्य भ्रम मिटजावेगा। जैसे दीपक हाथ में लेकर अन्धकार को देखिये तो कुछ दृष्टि आता तैसेही जो विचार करके देखोगे तो जगत्भ्रम मिटजावेगा। जगत्भ्रम मन के फुरने से ही उद

हुआ है; इससे संकल्पमात्र है। इसको अधिष्ठान ब्रह्म है, सब नामरूप उस ब्रह्मसत्ता में कल्पित है और षट्विकार भी उसी ब्रह्मसत्ता में फुरे हैं पर सबसे रहित और शुद्ध चिदाकाशरूप है और जगत् भी वही रूप है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरङ्ग, बुद्बुदे और फेन भासते हैं तैसे ही आत्मसत्ता में चित्त के फुरने से जगत् भासता है। जैसे आदि चित्त में पदार्थसत्ता दृढ़ हुई है, तैसेही स्थित है और आत्मा के साथ अभेद है, इतर कुछ नहीं; सब चिदाकाश है। इच्छा, देवता, समुद्र, पर्वत ये सब आकाशरूप हैं। हे रामजी! हमको सदा चिदाकाशरूप ही भासता है और आत्मसत्ताही मन, बुद्धि, पर्वत, कन्दरा, सब जगत् होकर भासता है। जब चैत्योन्मुखत्व होता है तब जगत् भासता है। जैसे वायु स्पन्दरूप होता है तो भासता है और निस्पन्दरूप होता है तो नहीं भासता, तैसेही जब चित्तसंवेदन स्पन्दरूप होता है तो जगत् भासता है और जब चित्तसंवेदन स्फुरणरूप होता है तो जगत् कल्पना मिटजाती है। हे रामजी! चिन्मात्र में जो चैत्यभाव हुआ है इसी का नाम जगत् है; जब चैत्य से रहित हुआ तो जगत् मिटजाता है। जब जगत्ही न रहा तो भेदकल्पना रही सो भेद कल्पना आत्मा में कैसे हो? इससे न कोई कार्य है, न कारण है और न जगत् है—सब भ्रममात्र कल्पना है। शुद्ध चिन्मात्र अपने आप में स्थित है। हे रामजी! शुद्ध चिन्मात्र में चित्त सदा किञ्चन रहता है। जैसे मिरचों के बीज में तीक्ष्णता सदा रहती है परन्तु जब कोई खाता है तब तीक्ष्णता भासती है, अन्यथा नहीं भासती; तैसेही जब चित्त संवेदन चैत्योन्मुखत्व होता है तब जीव को जगत् चैतन्य भासता है और संवेदन से रहित जीव को जगत्कल्पना नहीं भासती। हे रामजी! जब संवेदन के साथ परिच्छिन्न संकल्प मिलता है तब जीव होता है और जब इससे रहित होता है तो शुद्धचिदात्मा ब्रह्म होता है। जिस पुरुष की अशेष कल्पना मिटगई है और जिसको शुद्ध निर्विकार ब्रह्मसत्ता का साक्षात्कार हुआ है वह पुरुष संसारभ्रम से मुक्त हुआ है। हे रामजी! यह सब जगत्

आत्मा का आभासरूप है। वह आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, नित्य शुद्ध, सर्वगत स्थान की नाईं अचल अहंरूप है और सब जगत् चिदाकाशरूप है। हमको तो सदा ऐसे ही भासता है पर अज्ञानी वाद विवाद किया करते हैं। हमको वाद विवाद कोई नहीं क्योंकि, हमारा सब भ्रम नष्ट होगया है। हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है और द्वैत कुछ नहीं। जिसको यह निश्चय भया है उसके सब अङ्ग अपना स्वरूप ही है तो निराकार और निर्वपुसत्ता के अंग अपना स्वरूप क्यों न हो ये सब प्रपञ्च चिदाकाशरूप हैं परन्तु अज्ञानी को भिन्न २ और जन्म मरण आदि विकार भासते हैं और ज्ञानवान् को सब आत्मरूपही भासते हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश सब आत्मा के आश्रय फुरते हैं और चित्तशक्ति ही ऐसे होकर भासती है। जैसे वसन्तऋतु आती है तो रसाशक्ति से वृक्ष और बेलें सब प्रफुल्लित होकर भासती हैं तैसेही चित्तशक्ति-स्पन्दताही जगत्रूप होकर भासती है। हे रामजी! जैसे वायु स्पन्दता से भासता है तैसे ही जगत् फुरने में भासता है और तैसे ही चित्तसंवित् जगत्रूप होकर भासता है। इस फुरने से ही जगत् है और कोई वस्तु नहीं है; इसी से जगत् कुछ नहीं है। जैसे समुद्र तरङ्ग रूप हो भासता है, तैसेही आत्मा जगत्रूप हो भासता है। इस जगत् दृश्यभाव से भासता है पर संवित से कुछ नहीं। वायु जड़ है और आत्मा चैतन्य है और जल भी परिणाम से तरङ्गरूप होता है आत्माच्युत और निराकार है। हे रामजी! चैतन्यरूप रत्नहै और जगत् उसका चमत्कार है अथवा चैतन्यरूपी अग्निमें जगत्रूपी उष्णता है हे रामजी! यह चैतन्य प्रकाश ही भौतिक प्रकाशरूप होकर भासता है इससे जगत् है; और वस्तु से नहीं। चैतन्य सत्ता ही शून्य आकाशरूप होकर भासता है। इस भाव से जगत् है वास्तव नहीं हुआ। इस जगत् कुछ नहीं चेतनसत्ता ही पृथ्वीरूप होकर भासती है, दृश्य में आता है इससे जगत् है पर आत्मसत्ता से इतर कुछ नहीं हुआ। चैतन्य वि... घन अन्धकार में जगत्रूपी कृष्णता है; अथवा चैतन्यरूपी काजल

पहाड़ है और जगत्‌रूपी उसका प्रमाण भ्रम है और चैतन्यरूपी सूर्य में जगत्‌रूपी दिन है; आत्मरूपी समुद्र में जगत्‌रूपी तरङ्ग है; आत्मरूपी कुसुम में जगत्‌रूपी सुगन्ध है आत्मरूपी बरफ में शुक्लता और शीतलतारूपी जगत् है; आत्मरूपी बेलि में जगत्‌रूपी फूल है; आत्मरूपी स्वर्ण में जगत्‌रूपी भूषण है; आत्मरूपी पर्वत में जगत्‌रूपी जड़ सघनता है; आत्मरूपी अग्नि में जगत्‌रूपी प्रकाश है; आत्मरूपी आकाश में जगत्‌रूपी शून्यता है; आत्मरूपी ईख में जगत्‌रूपी मधुरता है; आत्मरूपी दूध में जगत्‌रूपी घृत है, आत्मरूपी मधु में जगत्‌रूपी मधुरता है अथवा आत्मरूपी सूर्य में जगत्‌रूपी जलाभास है और नहीं है हे रामजी ! इस प्रकार देखो कि जो सर्व, ब्रह्म, नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप है वह सर्वदा अपने आपमें स्थित है--भेद कल्पना कोई नहीं। जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूप होके भासता है; तैसे ही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होके भासती है। न कोई उपजता है और न कोई नष्ट होता है । हे रामजी ! आदि जो चित्तशक्ति स्पन्दरूप है वह विराट्‌रूप ब्रह्म है और चिदाकाशरूप है; आत्मसत्ता से इतरभाव को नहीं प्राप्त हुआ। जैसे पत्र के ऊपर लकीरें होती हैं सो पत्र से भिन्न वस्तु नहीं पत्ररूपही हैं तैसे ही ब्रह्म में जगत् है कुछ इतर नहीं है बल्कि; पत्र के ऊपर लकीरें तो आकार हैं पर ब्रह्म में जगत् कोई आकार नहीं ! सब आकाशरूप मन में फुरता है; जगत् कुछ हुआ नहीं । जैसे शिला में शिल्पी पुतलियां कल्पता है तैसेही आत्मा में मन ने जगत् कल्पना की है। वास्तव में कुछ हुआ नहीं शिला वज्र की नाईं पीन है और सब जगत् को धरि रही है और आकाश की नाईं विस्ताररूप होकर शान्तरूप है। निदान हुआ कुछ नहीं जो कुछ है सो परब्रह्मरूप है और जो ब्रह्म ही है तो कल्पना कैसे हो ? इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके अपने २ आश्रम को गई। फिर सूर्य की किरणों के निकलते ही सब अपने २ स्थानों पर आबैठे॥

इति श्रीयो०उत्पत्ति०सर्वब्रह्मप्रतिपादनन्नाम त्रयोदशस्सर्गः ॥ १३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! आत्मा में कुछ उपजा नहीं भ्रम से भा
रहा है। जैसे आकाश में भ्रम से तरवरे और मुक्तमाला भासती
तैसेही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासताहै। जैसे थम्भे की पुतलि
शिल्पी के मनमें भासती हैं कि, इतनी पुतलियां इस थम्भे में हैं स
पुतलियां कोई नहीं क्योंकि, किसी कारण से नहीं उपजीं; तैसे
चेतनरूपी थम्भेमें मनरूपी शिल्पी त्रिलोकीरूपी पुतलियां कल्पता
परंतु किसी कारण से नहीं उपजीं—ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्योंही स्थित है
जैसे सोमजल में त्रिकाल तरङ्गोंका सद्भाव होताहै। वास्तव में जगत्
होना कुछ नहीं चित्त के फुरने से ही जगत् भासता है। जैसे सूर्य
किरणें झरोखों में आती हैं और उसमें सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं उनसे
चिद्अणु सूक्ष्महैं जैसे त्रसरेणुसे सुमेरु पर्वतस्थूल है तैसेही चिद्अणु
त्रसरेणु स्थूल है। ऐसे सूक्ष्म चिद्अणु से यह जगत् फुरता है सो
आकाशरूप है; कुछ उपजा नहीं और फुरनेसे भासता। हे रामजी
आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक जो कुछ जगत् भासता है
कुछ उपजा नहीं तो और पदार्थ कहां उपजा हो ? निदान सब आका
रूप है वास्तव में कुछ उपजा नहीं और जो कुछ अनुभव में होताहै
भी असत् है। जैसे स्वप्नसृष्टि अनुभव से होती है वह उपजी नह
असत्रूप है ? तैसेही यह जगत् भी असत्रूप है। शुद्ध निर्विकार स
अपने आप में स्थित है; उससत्ताको त्याग करके जो अवयव अवय
के विकल्प उठाते हैं उनको धिकार है। यह सब आकाशरूप है अ
अधिभौतिक जगत जो भासता है सो गन्धर्वनगर और स्वप्नसृष्टिवत्
हे रामजी ! पर्वतों सहित जो यह जगत् भासताहै सो रत्तीमात्रभी न
जैसे स्वप्न के पर्वत जाग्रत्की रत्तीभरभी नहीं होते क्योंकि, कुछ
नहीं; तैसेही यह जगत् आत्मरूप है और भ्रान्ति करके भासता
जैसे संकल्प का मेघ सूक्ष्म होताहै तैसेही यह जगत् आत्मा में
है। जैसे शशे के शृङ्ग असत् होतेहैं तैसेही यह जगत् असत् है
जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् होती है तैसेही यह जगत् असत

असम्यक् ज्ञानसेही भासता है और विचार कियेसे शान्ति होजाती है। जब शुद्ध चैतन्यसत्ता में चित्तसंवेदन होता है तब वही संवेदन जगत्रूप होकर भासता है परन्तु जगत् हुआ कुछ नहीं। जैसे समुद्र अपनी द्रवता के स्वभाव से तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु तरङ्ग कुछ और वस्तु नहीं है जलरूप ही है तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्रूप होकर फुरती है। सो जगत् कोई भिन्न पदार्थ नहीं है ब्रह्मसत्ताही किञ्चन द्वारा ऐसे भासती है। जैसा बीज होता है तैसाही अंकुर निकलता है इसलिये; जैसी आत्मसत्ताहै तैसेही जगत्है दूसरी वस्तु कोई नहीं आत्मसत्ता अपने आपमेंही स्थित है पर चित्तसंवेदनके स्पन्द से जगत्रूप होता है। हे रामजी! इसीपर एक आख्यान तुमको सुनाताहूं, वह श्रवण का भूषण है और उसके समझने से सब संशय मिटजावेंगे और विश्राम प्राप्तहोगा। इतना सुन रामजी बोले, हे भगवन्! मेरे बोध की वृद्धि के निमित्त मण्डपाख्यान जिस विधि से हुआहै सो संक्षेप से कहो। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस पृथ्वी में एक महातेजवान् राजा पद्म हुआ था। वह लक्ष्मीवान्, सन्तानवान्, मर्यादाके धारनेवाला, अतिसतोगुणी और दोषों का नाशकर्त्ता एवं प्रजापालक, शत्रुनाशक और मित्रप्रिय था और सम्पूर्ण राजसी और सात्त्विकी गुणों से सम्पन्न मानो कुलका भूषण था। लीला नाम उसकी स्त्री बहुत सुन्दर और पतिव्रता थी। मानो लक्ष्मीने अवतार लिया था। उसके साथ राजा कभी बागों और तालों और कभी कदम्बवृक्षों और कल्पवृक्षों में जाया करता था, कभी सुन्दर २ स्थानों में जाके क्रीड़ा करता था; कभी बरफ का मन्दिर बनवाके उसमें रहता था और कभी रत्नमणि के जड़ेहुये स्थानों में शय्या बिछवाके विश्राम करता था। निदान इसी प्रकार दोनों दूर और निकट के ठाकुरद्वारों और तीर्थों में जाके क्रीड़ाकरते और राजसी और सात्त्विकी स्थानों में बिचरते थे वे दोनों परस्पर श्लोक भी बनाते थे एक पद कहे दूसरा उसको श्लोक करके उत्तर दे और श्लोक भी ऐसे पढ़ें कि पढ़ने में तो भाषा और अर्थ में संस्कृत हों। इसी प्रकार दोनों

का परस्पर अति स्नेह था। एक समय रानी ने विचार किया
राजा मुझको अपने प्राणोंकी नाईं प्यारे और बहुत सुन्दर हैं इसलि
कोई ऐसा यत्न, यज्ञ वा तप-दान करूं कि, किसी प्रकार इसकी स
युवावस्था रहे और अजर अमर हो इसका और मेरा कदाचित् विय
न हो। ऐसे विचार कर उसने ब्राह्मणों ऋषीश्वरों और मुनीश्वरों
पूछा कि, हे विप्रो! नर किस प्रकार अजर-अमर होता है? जिस प्रक
होताहो सो हमसे कहो? विप्र बोले, हे देवि! जप, तप आदिसे सिद्ध
प्राप्त होतीहै परन्तु अमर नहीं होता। सब जगत् नाशरूप है इस श
से कोई स्थिर नहीं रहता। हे रामजी! इस प्रकार ब्राह्मणोंसे सुन अ
भर्त्ता के वियोग से डरकर रानी विचार करनेलगी कि, भर्त्ता से मैं प्र
मरूं तो मेरे बड़े भाग हों और सुखवान् होऊं और जो यह प्र
मृतक हो तो वही उपाय करूं जिससे राजा का जीव मेरे अन्तःकर
में ही रहे-बाह्य न जावे-और मैं दर्शन करती रहूं। इससे मैं सरस्व
की सेवा करूं। हे रामजी! ऐसा विचार कर शास्त्रानुसार तपरूप सरस्व
का पूजन करने लगी। निदान त्रिरात्र और दिनपर्यन्त निराहार
चतुर्थदिन में व्रतपारण करे और देवतों, ब्राह्मणों, पण्डितों, गुरु अ
ज्ञानियों की पूजाकर, स्नान, दान, तप, ध्यान नित्यप्रति कीर्तन
पर जिस प्रकार आगे रहती थी उसी प्रकार रहि भर्त्ता को न दिखा
इसी प्रकार नेमसंयुक्त क्लेश से रहित तप करने लगी। जब तीन
दिन व्यतीत हुये तब प्रीतियुक्तहो सरस्वती की पूजा की और बागीश
ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा; हे पुत्रि! तूने भर्त्ता के निमि
निरन्तर तप किया है, इससे मैं प्रसन्न हुई; जो वर तुझे अभीष्टहो सो मां
लीला बोली, हे देवि! तेरी जय हो! मैं अनाथ तेरी शरण हूं,
रक्षा कर। इस जन्म को जरारूपी अग्नि जो बहुत प्रकार से जल
है उसके शान्त करने को तुम चन्द्रमा हो और हृदय के तम नाश क
को तुम सूर्य हो। हे माता! मुझको दो वर दो-एक यह कि, जब
भर्त्ता मृतक हो तब उसका पुर्यष्टक वपु बाह्य न जावे अन्तःपुरह

रहे और दूसरा यह कि, जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शन की हो तब तुम दर्शन दो। सरस्वती ने कहा ऐसेही होगा। हे रामजी ! ऐसा वरदान देकर; जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके लीन होते हैं; तैसेही देवी अन्तर्द्धान होगई और लीला वरदान पाकर बहुत प्रसन्न भई। कालरूपी चक्र में क्षणरूपी आरे लगे हुये हैं और उसकी तीनसौ साठ कीलें हैं वह चक्र वर्षपर्यन्त फिरकर फिर उसी ठौर आता है। ऐसे कालचक्र के वेग से राजा पद्म रणभूमिका से विषयरूपी घर में पड़ा हुआ मृतक हो ऐसा होगया जैसे सूखे पत्र से रस निर्मल होजाता है। पुर्यष्टक के निकलने से राजा का शरीर कुम्हिला गया और रानी उसके मरने से बहुत शोकवान् भई। जैसे कमलिनी जल विना कुम्हिला जाती है तैसेही उसके मुख की कान्ति दूर होगई और विलाप करने लगी। कभी ऊँचे स्वर से रुदन करे और कभी चुप रहजावे। जैसे चकवे के वियोग से चकवी शोकवान् होती है और जैसे सर्प की फुत्कार लगे से कोई मूर्च्छित होता है तैसेही राजा के वियोग से लीला मूर्च्छित होगई और व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी। तब सरस्वतीजी ने दया करके आकाशवाणी की कि, हे सुन्दरि ! यह जो तेरा भर्त्ता मृतक भया है इसको तू सर्व ओर से फूलों से ढांप कर रख; तुझको फिर भर्त्ता की प्राप्ति होवेगी और यह फूल न कुम्हिलावेंगे। तेरे भर्त्ता की ऐसी अवस्था है जैसे आकाश की निर्मल कान्ति है और वह तेरे ही मन्दिर में है कहीं गया नहीं। हे रामजी ! इस प्रकार कृपा करके जब देवीने वचन कहे तो जैसे जल विना मछली तड़पती हुई मेघ की वर्षा से कुछ शान्तिमान् होतीहै; तैसेही लीला कुछ शान्तिमान् हुई। फिर जैसे धनहो और कृपणता से धन का सुख न होवे तैसेही वचनोंसे उसे शान्ति हुई और भर्त्ताके दर्शन विना जब शान्ति न हुई तब उसने ऊपर नीचे फूलोंसे भर्त्ता को ढांपा और उसके पास आप शोकवान् होकर बैठी रुदन करने लगी। फिर देवी की आराधना की तो अर्द्धरात्रिके समय देवीजी आ प्राप्त हुईं और कहा; हे सुन्दरि ! तैंने मेरा स्मरण किस २ निमित्त कियाहै और तू शोक किस

कारण करतीहै यह तो सब जगत् भ्रान्तिमात्र है, जैसे मृगतृष्णाकी न
होती है; तैसेही यह जगत् है। अहं त्वं इदं से ले आदिक जो जग
भासता है सो सब कल्पनामात्र है और भ्रम करके भासता है। आत्मा
हुआ कुछ नहीं तुम किसका शोक करती हो। लीला बोली, हे परमेश्वरि
मेरा भर्त्ता कहां स्थितहै और उसने क्या रूप धारण किया है? उस
मुझे मिलाओ; उस विना मैं अपना जीना नहीं देखसक्ती। देवी बोल
हे लीले! आकाश तीन हैं—एक भूताकाश, दूसरा चित्ताकाश और ती
सरा चिदाकाश। भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय है और चित्ता
चिदाकाश के आश्रय है तेरा भर्त्ता अब भूताकाश को त्याग कर प्रत्य
चिदाकाश को गया है। चित्ताकाश चिदाकाश के आश्रय स्थित है इस
जब तू चिदाकाश में स्थित होगी तब सब ब्रह्माण्ड तुझको भासेगा। स
उसीमें प्रतिबिम्बित होते हैं वहां तुझको भर्त्ता का और जगत् का दर्श
होगा। हे लीले! देशसे क्षण में संवित् देशान्तर को जाता है उसके म
जो अनुभव आकाश है वह चिदाकाश है। जब तू संकल्प को त्याग
तो उससे जो शेष रहेगा सो चिदाकाश है। हे लीले! यहां जो जी
विचरते हैं सो पृथ्वी के आश्रय हैं और पृथ्वी आकाश के आश्रय
इससे ये सब जीव जो बिचरते हैं सो भूताकाश के आश्रय बिचरते हैं औ
चित्त जिसके आश्रय से एक क्षण में देश देशान्तर भटकता है सो चि
काश है। हे लीले! जब दृश्य का अत्यन्त अभाव होता है तब परमा
की प्राप्ति होती है सो चिरकाल के अभ्यास से होती है और मेरा यह
है कि, तुझको शीघ्रही प्राप्तहो। हे रामजी! जब इस प्रकार कह
ईश्वरी अन्तर्द्धान होगई तब लीला रानी निर्विकल्प समाधि में स्थि
भई और चितसहित देहका अहङ्कार त्याग कर पक्षी समान अपने गृह
उड़कर एक क्षण में आकाश को पहुँची जो नित्य शुद्ध, अनन्त, आत्म
परमशान्तिरूप और सर्वका अधिष्ठान है उसमें जाकर भर्त्ता को देख
रानी स्पन्दकल्पना लेगई थी उससे अपने भर्त्ता को वहां देखा और ब
मण्डलेश्वर भी सिंहासनों पर बैठे देखे। एक बड़े सिंहासन पर

अपने भर्त्ता को भी देखा जिसके चारों ओर जय जय शब्द होता था। उसने वहां बड़े सुन्दर मन्दिर देखे और देखा कि, राजा के पूर्व दिशा में अनेक ब्राह्मण, ऋषीश्वर और मुनीश्वर बैठे हैं और बड़ी ध्वनि से पाठ करते हैं; दक्षिणदिशा में अनेक सुन्दरी स्त्रियां नाना प्रकार के भूषणों सहित बैठी हुई हैं उत्तरदिशामें हस्ती, घोड़े, रथ, प्यादे और चारों प्रकार की अनन्त सेना देखी और पश्चिम में मण्डलेश्वर देखे। चारों दिशा में मण्डलेश्वर उसके जीव के आश्रय विराजते देखके आश्चर्य में हुई। फिर नगर और प्रजा देखी कि, सब अपने व्यवहार में स्थित हैं और राजा की सभा में जा बैठी पर रानी सबको देखती थी और रानी को कोई न देखता था। जैसे और के संकल्पपुर को और नहीं देखसक्ता तैसेही रानी को कोई देख न सके। तब रानी ने उसका अन्तःपुर देखा जहां ठाकुरद्वारे बने हुये देवताओं की पूजा होती थी। वहां की गन्ध धूप और पवन त्रिलोकी को मग्न करती थी और राजा का यश चन्द्रमा की नाईं प्रकाशित था। इतने में पूर्वदिशा से हरकारे ने आके कहा कि, हे राजन्! पूर्व दिशा में और किसी राजा का क्षोभ हुआ है; फिर उत्तर दिशा से हरकारे ने आकहा कि, हे राजन्! उत्तर दिशा में और राजा का क्षोभ हुआ है और तुम्हारे मण्डलेश्वर युद्ध करते हैं। इसी प्रकार दक्षिण दिशा की ओर से भी हरकारा आया और उसने भी कहा कि, और राजा का क्षोभ हुआ है और पश्चिम दिशा से हरकारा आया उसने कहा कि, पश्चिमदिशा में भी क्षोभ हुआ है। एक और हरकारा आया उसने कहा कि, सुमेरु पर्वतपर जो देवतों और सिद्धों के रहने के स्थान हैं वहां क्षोभ हुआ है और अस्ताचल पर्वत क्षोभ हुआ है। तब जैसे बड़े मेघ आवें तैसेही राजा की आज्ञा से बहुतसी सेना आई। रानीने बहुतसे मन्त्री, नन्द आदिक टहलुये, ऋषीश्वर और मुनीश्वर वहां देखे। जितने भृत्य थे वे सब सुन्दर और वर्षासे रहित श्वेतबादरों की नाईं श्वेतवस्त्र पहिने देखे और बड़े वेदपाठी ब्राह्मण देखे जिनके शब्द से नगारे के शब्द भी सूक्ष्म भासते थे। हे रामजी! इस प्रकार ऋषीश्वर मन्त्री, टहलुये और बालक उसमें देखे सो पूर्व और अपूर्व

दोनों देखती भई और आश्चर्यवान् हो चित्त में यह शङ्का उपजी कि, मे भर्त्ता ही मुआ है वा सम्पूर्ण नगर मृतक भया है जो ये सब परलोक आये हैं। तब क्या देखा कि, मध्याह्न का सूर्य शीशपर उदित है औ राजा सुन्दर षोड़श वर्ष का प्रथम की जरावस्था को त्याग कर नूतन श रीर को धारे बैठा है। ऐसे आश्चर्य को देखके रानी फिर अपने गृह आई उस समय आधीरात्रि का समय था अपनी सहेलियों को सोई हु देख जगाया और कहा जिस सिंहासन पर मेरा भर्त्ता बैठता था उसको सा करो मैं उसके ऊपर बैठूंगी और जिस प्रकार उसके निकट मन्त्री औ भृत्य आन बैठते थे उसी प्रकार आवें। इतना सुनकर सहेलियों ने ज बड़े मन्त्री से कहा और मन्त्री ने सबको जगाय और सिंहासन झड़व कर मेघ की नाईं जलकी वर्षा की। सिंहासन पर और उसके आस पा वस्त्र बिछाये और मशालें जगाकर बड़ा प्रकाश किया। जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पान किया था तैसेही अन्धकार को प्रकाश ने जब पान क लिया तब मन्त्री, टहलुये, पण्डित, ऋषीश्वर, ज्ञानवान् जितने कुछ राज के पास आते थे वे सब सिंहासन के निकट आकर बैठे और इतने लो आये मानो प्रलयकाल में समुद्र का क्षोभ हुआ है और जल से पूर्ण प्रल हुई सृष्टि मानो अनन्त उत्पन्न भई है। लीला इस प्रकार मन्त्री, टहलु पण्डित और बालकों को भर्त्ता बिना देख बड़े आश्चर्य को प्राप्त भई। चि एक आदर्श को अन्तर बाहर दोनों ओर देखती है। इस प्रकार देख हृदय की वार्त्ता किसी को न बताई और भीतर आकर कहने लगी कि बड़ा आश्चर्य है; ईश्वर की माया जानी नहीं जाती कि, यह क्या है। इ प्रकार आश्चर्यमान होकर उसने सरस्वतीजी की आराधना की औ सरस्वती कुमारी कन्या का रूप धरके आन प्राप्त भई। तब लील ने कहा; हे भगवति ! मैं बारम्बार पूछती हूं तुम उद्वेगवान् न होन बड़ों का यह स्वभाव होता है कि जो शिष्य बारम्बार पूछे तो खेदवान् नहीं होते। अब मैं पूछती हूं कि, यह जगत् क्या है औ वह जगत् क्या है ? दोनों में कृत्रिम कौन है और अकृत्रिम कौन है

देवी बोली; हे लीले ! तूने पूछा कि, कृत्रिम, कौन है और अकृत्रिम, कौन है सो मैं पीछे तुझसे कहूंगी । लीला बोली; हे देवि ! जहां तुम हम बैठे हैं वह अकृत्रिम है और वह जो मेरे भर्त्ता का स्वर्ग है सो कृत्रिम है क्योंकि; सूर्यस्थान में वह सृष्टि हुई है । देवी बोली; हे लीले ! जैसा कारण होता है तैसाही कार्य होता है । जो कारण सत् होता है तो कार्य भी सत् होता है और सत् से असत् नहीं होता और असत् से सत् भी नहीं होता और न कारण से अन्यकार्य होता है । इससे जैसे यह जगत् है तैसाही वह जगत् भी है । इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि ! कारण से अन्यकार्यसत्ता होती है क्योंकि; मृत्तिका जल के उठाने में समर्थ नहीं और जब मृत्तिका का घट बनता है तब जल को उठाता है तो कारण से अन्यकार्य की भी सत्ता हुई । देवी बोली; हे लीले ! कारण से अन्यकार्य की सत्ता तब होती है जब सहायकारी भिन्न २ होते हैं । जहां सहायकारी नहीं होता वहां कारण से अन्यकार्य की सत्ता नहीं होती । तेरे भर्त्ता की सृष्टि भी कारण विना भासी है । उसका जीव पुर्यष्टक आकाशरूप था, वहां न कोई समवायकारण था और न निमित्त कारण था इससे उसको कृत्रिम कैसे कहिये ? जो किसी का किया हो तो कृत्रिम हो पर वह तो आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है । जो समवाय कारण ही न हो तो उसका निमित्त कारण कैसे हो । इस से तेरे भर्त्ता का सर्ग अकारण है । लीला ने पूछा; हे देवि ! उस सर्ग की जो स्मृति संस्कार है सो कारण क्यों न हो ? देवी बोली; हे लीले ! स्मृति तो कोई वस्तु नहीं है । स्मृति आकाशरूप है । स्मृति संकल्प का नाम है सो वह भी संकल्प आकाशरूप है और कोई वस्तु नहीं वह मनोराजरूप है इससे उसकी सत्ता भी कुछ नहीं है केवल आभासरूप है लीला बोली; हे महेश्वरि ! जो वह संकल्पमात्र आकाशरूप है तो भी आकाशरूप है और जहां हम तुम बैठे हैं वह भी वही है तो दोनों तुल्य हैं देवी बोली; हे लीले ! जैसे तुम कहती हो तैसे ही है । अहं, त्वं, इदं, यह, वह सम्पूर्ण जगत् आकाशरूप है और भ्रान्तिमात्र भासता है ।

उपजा कुछ नहीं सब आकाशमात्र है और स्वरूप से इनका कुछ सद्भा
नहीं होता जो पदार्थ सत्य न हो उसकी स्मृति कैसे सत् हो ? लील
बोली; हे देवि ! अमूर्त्तिवत् मेरा भर्त्ता था सो मूर्त्तिवत् हुआ और उसक
जगत् भासने लगा सो कैसे भासा ? उसका स्मृति कारण है वा कि
और प्रकार से यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्ति के निमित्त मुझको वही रूप
हुआ है। देवी बोली, हे लीले ! यह और वह सर्ग दोनों भ्रमरूप है
जो यह सत् हो तो इसकी स्मृति भी सत हो पर यह जगत् असत्रूप है
जैसे यह भ्रम तुमको भासा है सो सुनो। एक महाचिदाकाश है जिसक
किञ्चन चिद्अणु है और उसके किसी अंश में जगत्रूपी वृक्ष हैं। सुमे
उस वृक्ष के थम्भ हैं सप्तलोक डाली हैं; आकाश शिखा हैं सप्तसमुद्र उ
में रस हैं और तीनों लोक फल हैं। सिद्ध, गन्धर्व, देवता, मनुष्य औ
दैत्यरूप मच्छर उसमें रहते हैं और तारागण उसके फूल हैं। उसी वृक्ष
किसी छिद्र में एक देश है और उसमें एक पर्वत है जिसके नीचे ए
नगर बसता है। वहां एक नदी का प्रवाह चलता है और वशिष्ठ ना
एक ब्राह्मण जो बड़ा धार्मिक है वहां सदा अग्निहोत्र करता है ध
विद्या, पराक्रम और कर्मों में वशिष्ठजी ऋषीश्वरों के समान था पर
ज्ञान में भेद था। जो खेचर वशिष्ठ का ज्ञान है तैसा भूचर वशिष्ठ
ज्ञान न था। उसकी स्त्री का भी नाम अरुन्धती था। वह पतिव्रता औ
चन्द्रमा के समान सुन्दर थी और उसी अरुन्धती के समान विद्या, क
क्रान्ति, धन, चेष्टा और पराक्रम उसका भी था और चैतन्यता अथ
ज्ञान और सब लक्षण एक समान थे। वह आकाश की अरुन्धती
और यह भूमि की अरुन्धती थी। एक काल में वशिष्ठ ब्राह्मण पर्वत
शिखर पर बैठा था। वह स्थान सुन्दर हरे तृणों से शोभायमान था ए
दिन एक अति सुन्दर राजा नाना प्रकार के भूषणों से भूषित परिव
सहित उस पर्वत के निकट शिकार खेलने के निमित्त चला जाता थ
उसके शीशपर दिव्य चमर होता ऐसा शोभा देता था मानो चन्द्रमा
किरणें प्रसर रही हैं और शिर पर अनेक प्रकार के छत्रों की छाया मा

रूपे का आकाश विदित होता था। रत्नमणि के भूषण पहिरेहुये मण्ड-लेश्वर उसके साथ थे और हस्ती, घोड़े, रथ और पैदल चारों प्रकार की सेना जो आगे चली जाती थीं उनकी धूर बादल होकर स्थित भई। निदान नौबत नगारे बजते हुये राजा की सवारी जाती देखके वशिष्ठ ब्राह्मण मन में चिन्तवन करने लगा कि, राजा को बड़ा सुख प्राप्त होता है क्योंकि, सब सौभाग्य से राजा सम्पन्न होता है। इस प्रकार राज्य मुझको भी प्राप्त हो। तब तो वह यह वांछा करने लगा कि, मैं कब दिशाओं को जीतूंगा और मेरे यश से कब दशोंदिशा पूर्ण होंगी। ऐसे छत्र मेरे शिरपर कब ढरेंगे और चारों प्रकार की सेना मेरे आगे कब चलेगी। सुन्दर मन्दिरों में सुन्दरी स्त्रियों के साथ मैं कब विलास करूंगा और मन्द २ शीतल पवन सुगन्धता के साथ कब परस होगा। हे लीले! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने संकल्प को धारण किया और जो अपने स्वकर्म थे सो भी करता रहा कि, इतने ही में उसको जरावस्था प्राप्तहुई; जैसे कमल के ऊपर बरफ़ पड़ता है तो कुम्हिला जाता है तैसे ही ब्राह्मण का शरीर कुम्हिला गया और मृत्यु का समय निकट आया। जब उस की स्त्री भर्त्ता की मृत्यु निकट देखके कष्टवान् हुई तो उसने मेरी आराधना, जैसे तूने की है, की और भर्त्ता की अजर अमरताको दुर्लभ जानके मुझसे वर मांगा कि; हे देवि! मुझको यह वर दे कि, जब मेरा भर्त्ता मृतक हो तब इसका जीव बाह्य न जावे। तब मैंने कहा ऐसेही होगा। हे लीले! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तो ब्राह्मण मृतक हुआ पर उसका जीव मन्दिर में ही रहा। जैसे मन्दिर में आकाशही रहता है तैसेही मन्दिर में रहा। हे लीले! जब वह आकाशरूप होगया तब उसकी पुर्यष्टक में जो राजा का दृढ़ संकल्प था इसलिये जैसे बीज से अंकुर निकल आता है तैसेही वह संकल्प आनफुरा और उससे वह अपने को त्रिलोकी का राजा और परम-सौभाग्य सम्पन्न देखने लगा कि, दशों दिशा मेरे यशसे पूर्णहो रहीहैं; मानो यशरूपी चन्द्रमा की यह पूर्णमासी है। जैसे प्रकाश अन्धकार

को नाश करता है तैसेही शत्रुरूपी अन्धकार का नाशकर्त्ता प्रकाश हु
और ब्राह्मणों के चरणों का सिंहासन हुआ अर्थात् ब्राह्मणों को ब
पूजनेलगा। निदान अर्थियों को कल्पवृक्ष और स्त्रियों को काम
इत्यादिक जो सात्त्विकी और राजसी गुण हैं उनसे सम्पन्न हुआ।
उसकी स्त्री उसको मृतक देख के बहुत शोकवान् हुई। जैसे जेठ आ
की मञ्जरी सूख जाती है तैसेही वह सूखगई और शरीर को छोड़के अ
वाहक शरीर से अपने भर्त्ता को वैसेही जा मिली जैसे नदी समुद्र को
मिलती हैं और ब्राह्मणके पुत्र धनसंयुक्त अपने गृह में रहे। उस ब्राह्मण
मृतक हुये अब आठ दिन हुये हैं कि, वही वशिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्त्ता रा
पद्म हुआ अरुन्धती उसकी स्त्री तू लीला हुई। जितना कुछ आकाश, पर्व
समुद्र, पृथ्वी और त्रिलोकी है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के अन्तःपुरमें एक खुण
स्थित है। वहां तुमको आठ दिन व्यतीत भये हैं और अभी सूतक भी न
गया पर यहां तुमने साठसहस्र वर्ष राज्य करके नाना प्रकार के सुन्दर भो
भोगेहैं। हे लीले ! जिस प्रकार तूने जन्मलिया है सो मैंने सब कहा है।
वह क्या है ? सब भ्रममात्र है। जितना कुछ जगत् तुझको भासता है
आभासमात्र है संकल्प से फुरता है वस्तुगत कुछ नहीं है। हे लीले !
यह जगत् सत् न हुआ तो इसकी स्मृति कैसे सत्यहो। तुम हम अ
सब उसी ब्राह्मण के मन्दिर में स्थित हैं। लीला बोली; हे देवि ! तुम
वचन को मैं असत् कैसे कहूं ? पर जो तुम कहती हो कि उस ब्राह
का जीव अपने गृह में ही रहा; वहां हम तुम बैठे हैं और देश देशान्त
पर्वत, समुद्र, लोक और लोकपालक सब जगत् उसीही गृह में हैं तो
उसमें समाते कैसे हैं ? ये वचन तुम्हारे ऐसे हैं जैसे कोई कहे कि, सर
के दाने में उन्मत्त हाथी बांधे हुये हैं; सिंहों के साथ मच्छर युद्ध क
हैं; कमल के डोड़े में सुमेरु पर्वत आया है; कमल पर बैठकर भ्रमर
पानकर गया और स्वप्ने में मेघ गर्जता है, चित्रामणि के मोर नाचते
और जाग्रत् की मूर्त्ति के ऊपर लिखा हुआ मोर मेघ को गर्जता दे
नृत्य करता है। जैसे ये सब असम्भव वार्त्ता हैं तैसेही तुम्हारा कह

मुझको असम्भव भासता है। देवी बोली; हे लीले ! यह मैंने तुझसे झूठ नहीं कहा। हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं क्योंकि; यह आदि परमात्मा की नीति है कि, महापुरुष असत् नहीं कहते। हम तो धर्म के प्रतिपादन करने वाली हैं; जहां धर्म की हानि होती है वहां हम प्रतिपादन करती हैं और जो हम धर्म का प्रतिपादन न करें तो धर्म को और कैसे मानें। हे लीले ! जैसे सोये हुये के स्वप्न में त्रिलोकी भास आती है सो अन्तःकरण में ही होती है और स्वप्न से जाग्रत् होती है तैसे ही मरना भी जान। जब जहां मृतक होता है तहां ही जीव पुर्यष्टक आकाश रूप होजाता है और फिर वासना के अनुसार उसको जगत् भासि आता है। जैसे स्वप्न में जगत् भास आता है वह क्या रूप है ? आकाश रूप ही है तैसे ही इसको भी जान। हे लीले ! यह सब जगत् तेरे उसी अन्तःपुर में है क्योंकि; जगत् चित्ताकाश में स्थित है। जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होता है तैसे ही चित्त में जगत् है और आकाश रूप है इससे जो चित्त अन्तःपुर में हुआ तो जगत् भी हुआ। हे लीले ! यह जगत् जो तुझको भासता है सो आकाश-रूप है। जैसे स्वप्न और संकल्पनगर और कथा के अर्थ भासते हैं तैसे ही यह जगत् भी है और जैसे मृगतृष्णा का जल भासता है तैसे ही यह जगत् भी जान। हे लीले ! वास्तव में कोई पदार्थ उपजा नहीं भ्रम से सब भासते हैं। जैसे स्वप्न में स्वप्नान्तर फिर उससे और स्वप्न दिखाता है तैसे ही तुमको भी यह सृष्टि भ्रम भासित है। हे लीले ! यह जगत् आत्मरूप है। जहां चिद्अणु है वहां जगत् भी है परन्तु क्या रूप है; आभासरूप है। जैसे वह आकाशरूप है तैसे ही यह जगत् भी आकाशरूप है। जिस प्रकार यह चैत्यता है उस प्रकार हो भासता है इससे संकल्पमात्र है। जैसे स्वप्नपुर भासता है और जैसे संकल्पनगर होता है तैसे ही यह जगत् है। जैसे मरुस्थल की नदी के तरङ्ग भासते हैं तैसे ही यह जगत् भासता है। इससे इसकी कल्पना त्याग के रहो। इतना सुन फिर लीला ने पूछा; हे देवि ! उस वशिष्ठ ब्राह्मण को मरे आठ दिन बीते हैं और हम

को ये साठ सहस्र वर्ष बीते हैं यह वार्त्ता कैसे सत् जानिये ? थोड़े का में बड़ा काल कैसे हुआ ? देवी बोली; हे लीले ! जैसे थोड़े देश में बहु देश आते हैं तैसे ही थोड़े काल में बहुत काल भी आता है। अहन्त ममता आदिक जितना कुछ जगत् है सो आभासमात्र है उसे क्रम सुन। जब जीव मृतक होता है तब मूर्च्छा होती है और फिर मूर्च्छा चैतन्यता फिर आती है; उस में यह भासता है कि, यह आधार है त यह आधेय है; यह मेरा हाथ; यह मेरा शरीर हैं; यह मेरा पिता है; इ का मैं पुत्र हूं; अब इतने वर्ष का मैं हुआ; ये मेरे बान्धव हैं; इनके सा मैं स्नेह करता हूं; यह मेरा गृह है और यह मेरा कुल चिरकाल से चला आता है। मरने के अनन्तर इतने क्रम को देखता है। हे लील जिस प्रकार वह देखता है तैसेही यह भी जान। एक क्षण में और क और भासने लगताहै। यह जगत् चैतन्य का किञ्चन है। जैसे चेतन संवित् चैत्यता होती है तैसेही यह जगत् भी भासता है और जैसे स्वप्न में द्रष्ट दर्शन, दृश्य तीनों भासते हैं; तैसेही आत्मसत्ता में यह जगत् किञ्च होताहै और भ्रम से भासता है, वास्तव में नानात्व कुछ हुआ नहीं जैसे स्वप्न में कारण विना नाना प्रकार का जगत् भासता है तैसेही प लोक में नाना प्रकार का जगत् कारण विनाही भासता है सो आका रूप है और मन के भ्रम से भासता है तैसेही यह जगत् भी मनके भ्र से भासता है। स्वप्न जगत्; परलोक जगत् और जाग्रत् जगत् में भे कुछ नहीं। जैसे वह भ्रममात्र है तैसेही यहभी भ्रममात्र है-वास्तव कुछ उपजा नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग कुछ वास्तव नहीं तैसेही आत्म में जगत् कुछ वास्तव नहीं; असतही सत् की नाईं भासताहै। कि कारण से उपजा नहीं इस कारण से अविनाशी है। हे लीले ! जै चैत्योन्मुखत्व हुये चेतन आकाशभासता है तैसेही चैत्यता में चेतन आ काश है क्योंकि; कुछ हुआ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग होता है तो व तरङ्ग कुछ जल से इतर है नहीं, जलही है; तैसेही आत्मा में जगत् कु इतर नहीं बल्कि; जल में तरङ्ग की नाईं भी आत्मा में जगत् नहीं

जैसे शशे के शृङ्ग असत् हैं तैसेही जगत् असत् है—कुछ उपजा नहीं। हे लीले! जब जीव मृतक होताहै तब उसको देश, काल, क्रिया, उत्पत्ति, नाश, कुटुम्ब, शरीर, वर्ष आदिक नानारूप भासतेहैं पर वे सब आभास रूप हैं। जिस प्रकार क्षण २ में इतने भासआते हैं तैसेही कारण विना यह जगत् भासित है तो दृश्य और द्रष्टा भी कोई न हुआ। देश, काल, क्रिया, द्रव्य, इन्द्रियां, प्राण, मन और बुद्धि सब भ्रम से भासते हैं। आत्मा उपाधि से रहित आकाशरूप है और उसके प्रमाद से जगत् भ्रम उदय हुआ है। हे लीले! भ्रम में क्या नहीं होता? जैसे एक रात्रि में हरिश्चन्द्र को द्वादशवर्ष भ्रम से भासे थे तैसेही यहां भी थोड़े काल में बहुत काल भासा है। दो अवस्था में और का और भासता है। स्वप्न में और का और भासता है और उन्मत्तता से भी और का और भासता है। अभोक्ता आपको भोक्ता मानता है और भ्रम से उत्साह और शोक को इकट्ठा देखता है। किसी को उत्साह होता है और स्वप्न में मृतकभाव शोक को देखता है। बिछुड़ा हुआ स्वप्न में मिला देखता है और जो मिला है सो आपको बिछुड़ा जानता है। काल है। और भ्रम करके और काल देखता है। इससे देखो यह सब भ्रमरूप है। जैसे भ्रम से यह भासता है तैसेही यह जगत् भी भ्रमसे भासता है परन्तु ब्रह्मसे इतर कुछ नहीं। इससे न बन्ध है और न मोक्ष है। जैसे मिरच में तीक्ष्णता है तैसेही आत्मा में जगत्है; जैसे थम्भे में पुतलियां होती हैं तैसेही आत्मा में जगत् है और जैसे थम्भे में पुतलियां कुछ हुई नहीं ज्योंका त्यों है और शिल्पी के मन में पुतलियां हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् है नहीं पर मन रूपी शिल्पी ने जगत्‌रूपी पुतलियां कल्पी हैं आत्मसत्ता ज्यों की त्यों नित्य, शुद्ध, अज, अमर अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मराडपाख्याने परमार्थप्रतिपादनं नाम चतुर्दशस्सर्गः॥ १४॥

देवी बोली; हे लीले! जब जीव को मृत्यु से मूर्च्छा होतीहै तब शीघ्र ही उसको फिर कुछ जन्म और देश, काल, क्रिया, द्रव्य और अपना

परिवार आदि नाना प्रकार का जगत् भास आताहै पर वास्तव कु
नहीं–स्मृति भी असत् है। एक स्मृति अनुभव से होती है और एक स्मृ
अनुभव विना भी होती है पर दोनों स्मृति मिथ्या हैं। जैसे स्वप्न में अ
पना देह देखता है तो वह अनुभव असत् है क्योंकि, वह कुछ अप
मरने की स्मृति से नहीं भासा और उस मन की स्मृति भी असत् है
स्वप्न में कोई पदार्थ देखा तो जाग्रत् में उसको स्मरण करना भी अस
है क्योंकि, वास्तव में कुछ हुआ नहीं। इससे यह जगत् अकारणरूप
और जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है। न कुछ विदूरथ की सृष्टि सत्
और न यह सृष्टि सत् है–सब संकल्पमात्र है। इतना सुन लीलाने पूछा
हे देवि! जो यह सृष्टि भ्रममात्र है तो वह जो विदूरथ की सृष्टि है
इस सृष्टि के संस्कार से हुई है और यह सृष्टि उस ब्राह्मण और ब्राह्म
की स्मृतिसंस्कार से हुई है तो ब्राह्मण और ब्राह्मणी की सृष्टि किसकी
स्मृति में हुई है। देवी बोली; हे लीले! वह जो वशिष्ठ ब्राह्मणी की सृ
है सो ब्राह्मण के संकल्प में हुई है और ब्रह्मा ब्राह्मण में फुरा है परन्
वास्तव में ब्रह्मा भी कुछ नहीं हुआ तो उसकी सृष्टि क्या कहों। य
जितनी कुछ सृष्टि है सो उसी ब्राह्मण के मन्दिर में है; वास्तव में कु
हुई नहीं सब संकल्परूप है। और मन के फुरने से भासती है। जैसे जै
संकल्प फुरताहै तैसेही तैसे होकर भासता है। यह सृष्टि जो तेरे भ
को भासि आई है वह दृढ़ संकल्प के भाव से भासि आई है। थो
काल में वहुत भ्रम होकर भासता है। लीलाने पूछा; हे देवि! ज
ब्राह्मण को मृतक हुये आठ दिन व्यतीत भये हैं उस सृष्टि को हम कि
प्रकार देखें? देवी बोली: हे लीले! जब तू योगाभ्यास करे तब देख
अभ्यास विना देखनेकी सामर्थ्य न होगी क्योंकि, वह सृष्टि चिदाका
में फुरती है। जब तू चिदाकाश में अभ्यास करके प्राप्त होगी तब तु
को सब सृष्टि भासिआवेगी। वह जो सृष्टि है सो और के संकल्प में
जब उसके संकल्प में प्रवेश करे तो उसकी सृष्टि भासे; अन्यथा न
भासती। जैसे एक के स्वप्न को दूसरा नहीं जानसक्ता तैसेही और

सृष्टि नहीं भासती। जब तू अन्तवाहकरूप हो तब वह सृष्टि देखे। जबतक आधिभौतिक स्थूल पञ्चतत्त्वों के शरीर में अभ्यास है तबतक उसको न देख सकेगी क्योंकि, निराकार को निराकार ग्रहण करता है आकार नहीं ग्रहण कर सक्ता। इससे यह आधिभौतिक देह भ्रम है; इसको त्याग कर चिदाकाश सत्ता में स्थित हो। जैसे पक्षी आलय को त्याग कर आकाश में उड़ता है और जहां इच्छा होती है वहां चला जाता है; तैसे ही चित्त को एकाग्र करके स्थूल शरीर को त्यागदे और योग अभ्यास कर आत्मसत्ता में स्थित हो। जब आधिभौतिक को त्याग कर अभ्यास के बल से चिदाकाश में स्थित होगी तब आवरण से रहित होगी और फिर जहां इच्छा करेगी वहां चली जावेगी और जो कुछ देखा चाहेगी वह देखेगी। हे लीले! हम सदा उस चिदाकाश में स्थित हैं। हमारा वपु चिदाकाश है इस कारण हम को कोई आवरण रोक नहीं सक्ता हम से उदारों की सदा स्वरूप में स्थिति है और हम सदा निरावरण हैं कोई कार्य हम को आवरण नहीं कर सक्ता; हम स्वइच्छित हैं—जहां जाया चाहें वहां जाते हैं और सदा अन्तवाहक रूप हैं। तू जबतक आधिभौतिकरूप है तबतक वह सृष्टि तुझको नहीं भासती और तू वहां जा भी नहीं सक्ती। हे लीले! अपनाही संकल्प मनोराज होता है। उसमें जबतक चित्त की वृत्ति लगी है उस काल में यह अपना शरीर नहीं भासता तो और का कैसे भासे? जब तुझको अन्तवाहकता का दृढ़ अभ्यास हो और आधिभौतिक स्थूल शरीर की ओर से वैराग्य हो तब आधिभौतिकता मिटजावेगी क्योंकि; आगे ही सब सृष्टि अन्तवाहकरूप है पर संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासती है। जैसे जल दृढ़शीतलता से बरफरूप होजाता है तैसे ही अन्तवाहकता से आधिभौतिक होजाते हैं—प्रमादरूप संकल्प वास्तव में कुछ हुआ नहीं। जब वही संकल्प उलट कर सूक्ष्म अन्तवाहक की ओर आता है तब आधिभौतिकता मिटजाती है और अन्तवाहकता आ उदय होती है। जब इस प्रकार तुझको निरावरणरूप उदय होगा

तब देखनेमात्र और जानने में कुछ यत्न न होगा । साकार से नि-
कार को ग्रहण नहीं कर सक्ता। निराकार की एकता निराकार के स
ही होती है-अन्यथा नहीं होती। जब तू अन्तवाहकरूप होगी त
उसकी संकल्प सृष्टि में तेरा प्रवेश होगा। हे लीले ! यह जगत् संक
भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ हुआ नहीं; एक अद्वैत आत्मसत्ता अप
आपमें स्थित है और द्वैत कुछ है नहीं। लीला बोली; हे देवि !
एक अद्वैत आत्मसत्ता है तो कलना यह दूसरी वस्तु क्या है सो कहो
देवी बोली; हे लीले ! जैसे स्वर्ण में भूषण कुछ वस्तु नहीं; जैसे सी
में रूपा दूसरी वस्तु कुछ नहीं और जैसे रस्सी में सर्प दूसरी व
नहीं तैसे ही कलना भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं है एक अद्वैत आत्मस
सहज ज्योंकी त्यों स्थित है; उसमें नानात्व भासता है पर वह भ्रमम
है-वास्तव में अपना आप एक अनुभवसत्ता है इतना सुन फिर लील
ने पूछा; हे देवि ! जो एक अनुभवसत्ता और मेरा अपना आप है
मैं इतनाकाल क्यों भ्रमती रही ? देवी बोली; हे लीले ! तू अविचार भ्र
से भ्रमती रही है। विचार किये से भ्रम शान्त होजाता है भ्रम औ
विचार भी दोनों तेरेही स्वरूप हैं और तुझसे ही उपजे हैं। जब तुझ
अपना विचार होगा तब भ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे दीपक के प्रका
से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसे ही विचार से द्वैतभ्रम नष्ट होजावे
और जैसे रस्सी के जाने से सर्पभ्रम नष्ट होजाता है और सीप के जा
से रूपे का भ्रम नष्ट होजाता है तैसे ही आत्मा के जाने से आधिभौति
भ्रम शान्त होजावेगा। जब दृश्य का अत्यन्ताभाव जान के दृढ़ वैरा
करिये और आत्मस्वरूप का दृढ़ अभ्यास हो तब आत्मा का साक्षात्
होकर भ्रम शान्त होजाता है और इसीसे कल्याण होता है। हे लीले
जब दृश्य जगत् से वैराग्य होता है तब वासना क्षय होजाती है औ
शान्ति प्राप्त होती है। हे लीले ! तू आत्मसत्ता का अभ्यास कर तो
जगत् भ्रम शान्त होजावेगा। भ्रम भी कुछ वस्तु नहीं है क्योंकि;
आदिक भ्रम भी कुछ हुआ नहीं जैसे रस्सी के जाने से सांप

अभाव विदित होता है तैसे ही आत्मा के जाने से देहादिकों का अत्यन्त अभाव होजाता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विश्रान्तिवर्णनन्नाम पञ्चदशस्सर्गः ॥ १५ ॥

देवी बोली; हे लीले ! जितने कुछ शरीर तुझको भासते हैं सो सब स्वप्नपुर की नाईं हैं । जैसे स्वप्ने में शरीर भासता है पर जब निज स्वरूप में स्मृति होती है तब स्वप्ने का शरीर वास्तव नहीं भासता । जैसे संकल्प के त्याग से संकल्पशरीर नहीं भासता तैसे ही बोधकाल में यह शरीर भी नहीं भासता और जैसे मनोराज के त्याग से मनोराज का शरीर नहीं भासता तैसे ही यह शरीर भी नहीं भासता । जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब यह भी वास्तव न भासेगा । जैसे स्वरूप के स्मरण हुये स्वप्न-शरीर शान्त होता है तैसे ही वासना के शान्त हुये जाग्रत् शरीर भी शान्त होजाता है । जैसे स्वप्न का देह अभाव ज्ञान से असत् होता है तैसे ही जाग्रत् शरीर की भावना त्यागे से यह भी असत् भासता है इस के नष्ट हुये अन्तवाहक देह उदय होवेगा । जैसे निद्रा से स्वप्न में राग द्वेष होता है और जब पदार्थों की वासना बोध से निर्बीज होती है तब उनसे मुक्त होता है तैसे ही जिस पुरुष की वासना जाग्रत् पदार्थों में नष्ट हुई है सो पुरुष जीवनमुक्त पद को प्राप्त होता है । और यदि उसमें फिर भी वासना दृष्ट आवे तो वह वासना भी निर्वासना है । जो सर्व कल्पनाओं से रहित है तिसका नाम सत्तासामान्य है । हे लीले ! जिस पुरुष ने वासना रोकी है और ज्ञाननिद्रा से आवर्या हुआ है उसको सुषुप्तिरूप जान उसकी वासना सुषुप्ति है और जिसकी वासना प्रकट है और जाग्रत्रूप से विचरता है उसको अधिक मोह से आवर्या जानिये । जो पुरुष चेष्टा करता दृष्टि आता है और जिसकी अन्तःकरण की वासना नष्ट भई है उसको तुरीया जान । हे लीले ! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है और अन्तःकरण की वासना से रहित है वह जीवन्मुक्त है । जिस पुरुष का चित्त सत्पद को प्राप्त भया है उसको जगत् की

वासना नष्ट हो जाती है और जो वासना फुरती भासती है तौ भी स
जानके नहीं फुरती । जब शरीर की वासना नष्ट होती है तब आ
भौतिकता नष्ट होजाती है और अन्तवाहकता आन प्राप्त होती है
जैसे बरफ की पुतली सूर्य के तेज लगे से जलरूप होजाती है तैसे
आधिभौतिकता क्षीण होकर अन्तवाहकता प्राप्त होती है । जब अन्त
वाहकता प्राप्त होती है तब शरीर अभासमय चित्तरूप होता है औ
अपने जन्मान्तरों, व्यतीत सृष्टि और सर्वज्ञान होआता है । तब व
जहां जाने की इच्छा करता है वहां जा प्राप्त होता है और यदि कि
सिद्ध के मिलने अथवा किसीके देखने की इच्छा करे सो सब कुछ सि
होता है; परन्तु अन्तवाहक विना शक्ति नहीं होती । जब इस देह
तेरा अहंभाव उठेगा तब सब जगत् तुझ को प्रत्यक्ष भासेगा । हे लीले
जब आधिभौतिक शरीर की वासना नष्ट होती है तब अन्तवाहक दे
होती है और जब अन्तवाहक में वृत्ति स्थित होती है तब और के संकल्प क
सृष्टि भासती है । इससे तू वासना घटाने का यत्न कर । जब वासना न
होगी तब तू जीवन्मुक्त पद को प्राप्त होगी । हे लीले ! जबतक तुझको पू
बोध नहीं प्राप्त होता तबतक तू अपनी इस देह को यहां स्थापन कर वह सृ
चल कर देख जैसे अन्तवाहक शरीर से मांसमय स्थूल देह का व्यवहार नह
सिद्ध होता तैसेही स्थूल देहसे सूक्ष्मकार्य नहीं होता । इससे तू अन्तवाह
शरीर का अभ्यास कर; जब अभ्यास करेगी तब वह सृष्टि देखने क
समर्थ होगी । हे लीले ! जैसे अनुभव में संस्थिति होती है सो मैंने तुझ
कही । यह वार्त्ता बालक भी जानते हैं कि यह वर और शाप की ना
नहीं है । जब अपना आपही अभ्यास करेगी तब बोध की प्राप्ति होगी
हे लीले ! सब जगत् अन्तवाहकरूप है अर्थात् संकल्परूप और अबोधरू
है । संकल्प के अभ्यास से आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है; इससे संसा
की वासना दृढ़भई है और जन्म मरण आदिक विकार चित्त में भास
हैं । जीव न मरता है और न जन्मता है । जैसे स्वप्ने में जन्म मर
भासते हैं और जैसे संकल्प से भ्रम भासता है तैसेही जन्म-मरण भ्र

से भासता है। जब तुम आत्मपद का अभ्यास करोगी तब यह विकार मिट जावेगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी लीला ने पूछा; हे देवि! तुमने मुझसे परमनिर्मल उपदेश कहा है जिसके जानने से दृश्य विसूचिका निवृत्ति होती है; पर वह अभ्यास क्या है; बोध का साधन कैसे होता है; अभ्यास पुष्ट कैसे होता है और पुष्टहोने से फल क्या होता है? देवी बोली; हे लीले! जो कुछ कोई करता है सो अभ्यास विना सिद्ध नहीं होता। सबका साधक अभ्यास है। इससे तू ब्रह्म अभ्यास कर हे लीले! चित्त में आत्मपद की चिन्तना; कथन; परस्परबोध; प्राणोंकी चेष्टा और आत्मपद के मनन का नाम ब्रह्माभ्यास कहते हैं। बुद्धिमान् चिन्तना किसको कहते हैं सो भी सुन। शास्त्र और गुरु से जो महावाक्य श्रवण किये हैं उनको युक्तिपूर्वक विचारना और कथन करना चिन्तना कहाता है। शिष्य को अन्योन्य उपदेश करना; परस्पर बोध करना और समान धर्म चर्चा और निर्णय निश्चयकर करना; इन तीनों के परायण रहने को बुद्धिमान् ब्रह्मअभ्यास कहते हैं। जिन पुरुषों के पाप अन्त को प्राप्तभये हैं और पुण्य बचे हैं वे रागद्वेष से मुक्त हुये हैं; उनको तू ब्रह्मसेवक जान। हे लीले! जिन पुरुषों को रात्रिदिन अध्यात्म शास्त्र के चिन्तन में व्यतीत होते हैं और वासनाको नहीं प्राप्त होते उनको ब्रह्माभ्यासी जान—वे ब्रह्माभ्यास में स्थित हैं। हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण हुई है और संसार के अभाव की भावना करते हैं वे विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्ति शीघ्रही आत्मपद को प्राप्त होते हैं और जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रङ्ग से रँगी है और आत्मानन्द की ओर वृत्ति धाती है ऐसे उदार आत्माओं को ब्रह्माभ्यासी कहते हैं। हे लीले! जिन पुरुषों ने जगत् का अत्यन्त अभाव जाना है कि, यह आदि से उत्पन्न नहीं हुआ और दृश्य को असत् जानके त्यागते हैं; परमतत्त्व को सत्य जानते हैं और इस युक्ति में अभ्यास करते हैं वे ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं। जिस पुरुषको असम्भव दृश्य का बोध हुआ है और रागद्वेषसे रहित है वह जगत् में ही है—इस बुद्धि का भी जो

अभाव करके परमात्मपद में प्राप्ति करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं
लीले ! दृश्यके अभाव जाने विना राग और द्वेष निवृत्त नहीं होते
रागद्वेष बुद्धि इस लोक में दुःखों को प्राप्त करती है और जिसको दृश
की असम्भव बुद्धि प्राप्तभई है उसको ज्ञेय अर्थात् परमात्मतत्त्व का ज्ञान
प्राप्त होता है। जब उस पद में दृढ़ अभ्यास होता है तब परमानन्द
निर्वाण पद को प्राप्त होता है और जो इस निमित्त यत्न करता है व
प्राकृत है। हे लीले ! बोध का साधन अभ्यास है; अभ्यास शास्त्र से
होता है; प्रयत्न से पुष्ट होता है और पुष्ट हुये से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती
है। हे लीले ! जिनका नाम ब्रह्माभ्यासी वा ब्रह्म के सेवक कहते हैं वे
तीनप्रकारके हैं—एक उत्तम, दूसरे मध्यम और तीसरे प्राकृत। उत्तम
अभ्यासी वह है जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है और दृश्य का असम्भव
बोध हुआ है। जिसको दृश्य का असम्भव बोध हुआ है पर बोधकला
नहीं उपजी और वह उसके अभ्यास में है वह मध्यम है। जिसको दृश्य
का असम्भव बोध नहीं हुआ और सदा यही हृदय में रहता है कि
दृश्य का असम्भव हो यह प्राकृत है। इससे जिस प्रकार मैंने तुझको
अभ्यास कहा है तैसेही अभ्यास किये से तू परमपद को प्राप्त होगी
इतना कह कर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जैसे अज्ञानरूपी निद्रा में
जीव शयन कररहा है तिससे जगत् को नाना प्रकार का देखता है तैसे
ही अविद्यारूपी निद्रा में विवेकरूपी वचनों के जल की वर्षा करके जब
देवीने लीला को जगाया तब उसकी अज्ञानरूपी निद्रा ऐसे नष्ट होगई
जैसे शरत्काल में मेघ की कुहड़ नष्ट होजाती है। वाल्मीकिजी बोले,
जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तो सायंकाल का समय हुआ और
सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई और जब सूर्य की
किरणें उदय हुईं तब फिर सब आ स्थितभये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विज्ञानाभ्यासवर्णनन्नाम
षोडशस्सर्गः॥ १६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार अर्द्धरात्रि के समय देवी औ

लीला का संवाद हुआ। उस समय सबलोग और सहेलियां बाहर पड़ी सोती थीं और लीला का भर्त्ता फूलों में दबा हुआ था उसके पास दिव्य वस्त्र पहिरेहुये चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दर देवियां सर्वकलनाओं को त्याग के और अङ्गों को संकोचकर ऐसी समाधि में स्थित भईं मानों रत्न के थम्भे से पुतलियां उत्कीर्ण किये स्थित हैं। अन्तःपुर भी उनके प्रकाश से प्रकाशमान भया और वे ऐसी शोभा देती थीं मानों काग़ज़ के ऊपर मूर्तियां लिखी हैं। इस प्रकार सब दृश्य कलना को त्याग के वे निर्विकल्प समाधि में स्थित भईं जैसे कल्पवृक्ष की लता दूसरी ऋतु के आयेसे अगले रस को त्याग के दूसरी ऋतु के रस को अङ्गीकार करती है तैसेही वे सब दृश्यभ्रम को त्याग के आत्मतत्त्व में स्थितहुईं और अहंसत्ता से आदि लेकर उनका दृश्यभ्रम शान्त होगया। दृश्य-रूपी पिशाच के शान्त हुये, जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है; तैसेही वे निर्मलभाव को प्राप्त भईं। हे रामजी! यह जगत् शशेके शृङ्गकी नाईं असत् है। जो आदि न हो; अन्त भी न रहे और वर्त्तमान में दृष्टि आवे वह भी असत् जानिये। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्य है तैसेही यह जगत् भी असत्य है। ऐसे जब स्वभावसत्ता उनके हृदय चिदाकाश में स्थित भईं तब अन्य सृष्टि के देखने का जो संकल्प था सो आन फुरा। उस फुरने से वे आकाशरूप देह से चिदाकाश में उड़ीं और सूर्य और चन्द्रमा के मण्डलों को लंघकर दूरसे दूर जाकर अनन्त योजन पर्यन्त स्थान लांघे। फिर भूतों की सृष्टि देखी उसमें प्रवेश किया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविज्ञानदेहाकाशसमागमनन्नाम सप्तदशस्सर्गः॥ १७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार परस्पर हाथ पकड़कर वे दूरसे दूर गईं; मानों एकही आसन पर दोनों चलीजाती हैं। जहां मेघों के स्थान और अग्नि और पवन के वेग नदियों की नाईं चलते थे और जहां निर्मल आकाश था वहांसे भी आगे गईं। कहीं चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाशही न था और कहीं चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशमान थे; कहीं देवता विमानों पर

आरूढ़ थे; कहीं सिद्ध उड़ते थे और कहीं विद्याधर, किन्नर और गन्धर्व गान करते थे। कहीं सृष्टि उत्पन्न होती; कहीं प्रलय होती और कहीं शिखा-धारी तारे उपद्रव करते उदय हुये थे। कहीं प्राणी अपने व्यवहार में लगे-हुये; कहीं अनेक महापुरुष ध्यान में स्थित; कहीं हस्ति, पशु-पक्षी और दैत्य-डाकिनी विचरते और योगिनियां लीला करती थीं। कहीं अन्धे गूंगे रहते थे, कहीं गीध पक्षी; सिंह और घोड़े के मुखवाले गण विचरते और कहीं वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल बैठे थे। कहीं बड़े पर्वत सुमेरु, मन्दराचल आदिक स्थित; कहीं अनेक योजनोपर्यन्त वृक्षही चले जाते; कहीं अनेक योजनपर्यन्त अविनाशी प्रकाश; कहीं अनेक योजन-पर्यन्त अविनाशी अन्धकार; कहीं जलसे पूर्ण स्थान; कहीं सुन्दर पर्वतोंपर गङ्गाके प्रवाह चलेजाते और कहीं सुन्दर बगीचे, बावड़ी, ताल और उनमें कमल लगे हुये थे। कहीं भूत भविष्यत् होता कहीं कल्पवृक्षों के वन कहीं अनन्त चिन्तामणि; कहीं शून्यस्थान; कहीं देवता और दैत्योंके बड़े युद्ध होते और नक्षत्रचक्र पड़े फिरते और कहीं प्रलय होता था। कहीं देवता विमानों में फिरते; कहीं स्वामिकार्त्तिक के रक्खे हुये मोरों के समूह विचरते; कहीं कुक्कुट, मोर आदिक पक्षी विद्याधरों के वाहन विचरते और कहीं यमके वाहन महिषोंके समूह विचरते थे। कहीं पाषाण संयुक्त पर्वत; कहीं भैरव के गण नृत्य करते; कहीं विद्युत् चमकती; कहीं कल्पतरु; कहीं मन्द २ शीतल पवन सुगन्ध समेत चलता और कहीं पर्वत रत्न और मणि शोभते थे निदान इसी प्रकार अनेक जगतों की जाल उन देवियों ने देखी। जीवरूपी मच्छड़ त्रिलोकरूपी गूलरों के अनन्त वृक्षों में देखे। इसके अनन्तर उन्होंने भूमण्डल को देखके मही-तल में प्रवेश किया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आकाशगमन-वर्णनन्नामाष्टादशस्सर्गः॥ १८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब देवियों ने भूतल ग्राम में आका ब्रह्माण्ड खप्पर में प्रवेश किया। वह ब्रह्माण्ड त्रिलोकिरूपी कमल है औ

उसकी अष्ट पखुड़ियां हैं। उसमें पर्वतरूपी डोड़ा है; चेतनता सुगन्ध है और नदियां समुद्र अम्बुकण हैं। जब रात्रिरूपी भँवरे उसपर आन विराजते हैं तब वे कमल सकुचाय जाते हैं। वे पातालरूपी कीचड़ में लगे हैं; पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं; दैत्य राक्षस उसके कण्टक हैं और डोड़ी उसकी शेषनाग है। जब वह हिलता है तब भूचालन होता है और दिनकर से प्रकाशता है। इसका विस्तार इस प्रकार है कि, एक लाख योजन जम्बूद्वीप है और उसके परे दुगुना खारा समुद्र है। जैसे हाथ का कङ्कण होता है तैसेही उस जल से वह द्वीप आवरण किया है। उससे आगे दुगुना शाकद्वीप है और उससे दुगुने क्षीरसमुद्र से वेष्टित है उसके आगे उससे दुगुनी पृथ्वी है जिसका नाम कुशद्वीप है और उससे दूने घृत के समुद्रसे वेष्टित है। उसके आगे उससे दूनी पृथ्वी का नाम क्रौंचद्वीप है वह अपने से दूने दधि के समुद्र से वेष्टित है। फिर शाल्मलीद्वीप है और उससे दूना मधु का समुद्र उसके चारों ओर है। फिर प्लक्षद्वीप है तिससे दूना इक्षुरस का समुद्र है। फिर उससे दूना पुष्करद्वीप है और उससे दूना मीठे जल का समुद्र उसे घेरे है इस प्रकार सप्त समुद्र हैं। उससे परे दशकोटि योजन कञ्चन की पृथ्वी प्रकाशवान् है और उससे आगे लोकालोक पर्वत हैं और उनपर बड़ा शून्य वन है। उससे परे एक बड़ा समुद्र है समुद्र से परे दशगुणी अग्नि है; अग्नि से परे दशगुणी वायु है; वायु से परे दशगुणा आकाश है और आकाश से परे लक्ष योजनपर्यन्त घनरूप ब्रह्माण्ड का कन्ध है। उसको देख के दोनों फिर आईं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकगमनवर्णनन्नामैकोनविंशस्सर्गः॥ १९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वहां से फिर के उन्होंने वशिष्ठ ब्राह्मण और अरुन्धती का मण्डल, ग्राम और नगर को देखा कि शोभा जाती रही है। जैसे कमलों पर धूल की वर्षा हो और कमल की शोभा जाती रहै; जैसे वन को अग्नि लगे और वन की लक्ष्मी जाती रही है; जैसे

अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पान कर लिया और समुद्र की शोभा जाती रही थी; जैसे तेल और बाती के पूर्ण भये से दीपक का प्रकाश अभाव होजाता है और जैसे वायु के चलने से मेघ का अभाव होता है तैसेही ग्राम की शोभा का अभाव देखा जो कुछ प्रथम शोभा थी सो सब नष्ट होगई थी और दासियां रुदन करती थीं । तब लीला रानी को जिसने चिरकाल तप और ज्ञान का अभ्यास किया था, यह इच्छा उपजी कि; मुझे और देवी को मेरे बान्धव देखें । तब लीला के सत्य संकल्प से उसके बान्धवों ने उनको देखकर कहा कि; यह वनदेवी गौरी और लक्ष्मी आई हैं इनको नमस्कार करना चाहिये । वशिष्ठ के बड़े पुत्र ज्येष्ठशर्मा ने फूलों से दोनों के चरण पूजे और कहा; हे देवि ! तुम्हारी जय हो । यहां मेरे पिता और माता थे वह अब दोनों काल के वश स्वर्ग को गये हैं इससे हम बहुत शोकवान् भये हैं । हमको त्रैलोक शून्य भासता हैं और हम सबही रुदन करते हैं । वृक्षों पर जो पक्षी रहते थे सो भी उनको मृतक देख के वन को चले गये; पर्वत की कन्दरा से पवन मानों रुदन करता आता है; और नदी जो वेग से आती है और तरंग उछलते हैं मानों वह भी रुदन करते हैं । कमलों पर जो जल के कण हैं मानों कमलों के नयनों से रुदन करके जल चलता है और दिशा से जो उष्ण पवन आता है मानों दिशा भी उष्ण श्वासें छोड़ती है । हे देवियो ! हम सबही शोक को प्राप्त भये हैं । तुम कृपा करके हमारा शोक निवृत्त करो क्योंकि; महापुरुषों का समागम निष्फल नहीं होता और उनका शरीर परोपकार के निमित्त है । हे रामजी ! जब इस प्रकार ज्येष्ठ शर्मा ने कहा तब लीला ने कृपा करके उसके शिर पर हाथ रक्खा और उसके हाथ रखते ही उसका सब ताप नष्ट होगया । और जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ के दिनों में तपीहुई पृथ्वी मेघ की वर्षा होने से शीतल होजाती है तैसेही उसका अन्तःकरण शीतल हुआ जो वहां के निर्धन थे सो उनके दर्शन करने से लक्ष्मीवान् होकर शान्ति को प्राप्त भये और शोक नष्ट होगया और सूखे वृक्ष सफल होगये । इतना सुन रामजी बोले

हे भगवन्! लीला ने अपने ज्येष्ठशर्मा को मातारूप होकर दर्शन क्यों न दिया इसका कारण मुझको कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता में जो स्पन्द संवेदन हुई है सो संवेदन भूतों का पिण्डाकार हो भासती है और वास्तव में आकाशरूप है भ्रान्ति से पृथ्वीआदिक भूत भासते हैं। जैसे बालक को छाया में भ्रम से वैताल भासता है तैसेही संवेदन के फुरने से पृथिव्यादिक भूत भासते हैं। जैसे स्वप्ने में भ्रम से पिण्डाकार भासते हैं और जागे से आकाशरूप भासते हैं तैसे भ्रम के नष्ट हुये पृथ्वी आदिक भूत आकाशरूप भासते हैं। जैसे स्वप्ने के नगर स्वप्नकाल में अर्थाकार भासते हैं और अग्नि जलाती है पर जागे से सब शून्य होजाती है; तैसे ही अज्ञान के निवृत्त हुये से यह जगत् आकाशरूप होजाता है। जैसे मूर्च्छा में नाना प्रकार के नगर; परलोक जगत; आकाश में तरवरे और मुक्तमाला और नौकापर बैठे तटके वृक्ष चलते भासते हैं तैसेही यह जगत् भ्रमसे अज्ञानी को भासता है और ज्ञानवान् को सब चिदाकाश भासता है- जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती। इससे लीला उसको पुत्रभाव और आप को माताभाव कैसे देखती। उसका अहं और मम भाव नष्ट होगया था। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होता है तैसेही लीला का अज्ञानभ्रम नष्ट होगया था और सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था। इस कारण यह आपको माताभाव न जानती भई। जो उसमें कुछ ममत्व होता तो उसको माताभाव से देखती परन्तु उसको यह अहं मम भाव न था इस कारण माताभाव और देवीरूप में दिखाया और शिर पर हाथ इसलिये रक्खा कि, सन्तों का दयालु स्वभाव है। माता पुत्र की कल्पना उसमें कुछ न थी इस कारण उसके शिर पर हाथ रक्खा। और कल्पना कुछ न थी-केवल आत्मारूप जगत् उसको भासता था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्यानेसिद्धदर्शनहेतुकथनन्नाम विंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

—*—

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर वहां से देवी और लीला दोनों अन्तर्धान होगई। तब वहां के लोग कहनेलगे कि, वनदेवियों ने हमारे ऊपर बड़ी कृपा करके हमारे दुःख नाशकिये और अन्तर्धान होगई। हे रामजी! तब दोनों आकाश में आकाशरूप अन्तर्धान भई और परस्पर संवाद करने लगीं। जैसे स्वप्ने में संवाद होता है तैसेही उनका परस्पर संवाद हुआ। देवी ने कहा; हे लीले! जो कुछ जानना था सो तूने जाना और जो कुछ देखना था सो भी देखा—यह सब ब्रह्म की शक्ति है। और जो कुछ पूछना हो सो पूछो। लीला बोली; हे देवि! मैं अपने भर्त्ता विदूरथ के पास गई तो उसने मुझे क्यों न देखा और मेरी इच्छा से ज्येष्ठशर्मा आदि ने मुझे क्यों देखा इसका कारण कहो? देवी बोली; हे लीले! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट हुआ न था और अभ्यास करके अद्वैत को न प्राप्त भई थी। जैसे धूप में छाया का सुख नहीं अनुभव होता तैसेही तुझ को अद्वैत का अनुभव न था। हे लीले! जैसे ऋतु का फल मधुर होता है। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ विदित हो और वर्षा नहीं आई तैसेही तू थी—अर्थात् यह कि; संसारमार्ग को लंघी थी पर अद्वैत तत्त्व को न प्राप्त भई थी इससे आत्मशक्ति तुझको न प्रत्यक्ष भई थी। आगे तेरा सत्संकल्प न था और अब तू सत्संकल्प हुई है। अब तैंने सत्संकल्प किया है कि, तुझ को ज्येष्ठशर्मा ने देखा और इसीसे वे सब तुझ को देखते भये। अब तू विदूरथ के निकट जा तो पूर्ववत् तेरे साथ व्यवहार हो। लीला बोली; हे देवि! इस मण्डप आकाश में मेरा भर्त्ता वशिष्ठ ब्राह्मण हुआ और फिर जब मृतक हुआ तब इसीलोक मण्डपआकाश में उसको पृथ्वी लोक फुरिआया जिससे पद्मराजा हो उसने चिरकाल पर्यन्त चारों द्वीपों का राज्य किया और जब फिर मृतक हुआ तब इसी मण्डप आकाश में उसको जगत् भासित होकर पृथ्वीपति हुआ तिसका नाम विदूरथ हुआ। हे देवि! इसी मण्डप आकाश में जर्जरीभाव और जन्म मरण हुआ और अनन्त ब्रह्माण्ड इसमें स्थित हैं। जैसे सम्पुट में सरसों के अनेक दाने होते हैं तैसेही इसमें सब ब्रह्माण्ड

मुझको समीपही भासते हैं और भर्त्ता की सृष्टि भी मुझको अब अनन्तर भासती है अब जो कुछ तुम आज्ञा करो सो मैं करूं? देवी बोली; हे भूतल अरुन्धती! तेरे जन्म तो बहुत भये हैं और अनेक तेरे भर्त्ता हुये हैं पर उन सब में यह भर्त्ता इस मण्डप में है। एक वशिष्ठ ब्राह्मण था सो मृतक हो उसका शरीर तो भस्म होगया है और फिर पद्मराजा हुआ उसका शव तेरे मण्डप में पड़ा है और तीसरा भर्त्ता संसारमण्डप में बसुधापति हुआ वह संसार समुद्र में भोगरूपी कल्लोलकर व्याकुल है। वह राज में चतुर हुआ है पर आत्मपद से विमुख हुआ है। आज्ञा से जानता था कि, मैं ईश्वर हूं; मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है और मैं बड़े भोगों का भोगनेवाला और सिद्ध बलवान् हूं। हे लीले! वह संकल्प विकल्परूपी रस्सी से बांधाहुआ है। अब तू किस भर्त्ता के पास चलती है। जहां तेरी इच्छा हो वहां मैं तुझको लेजाऊँ। जैसे सुगन्ध को वायु लेजाता है तैसेही मैं तुझको लेजाऊँगी। हे लीले! जिस संसारमण्डलको तू समीप कहती है सो वह चिदाकाश की अपेक्षा से समीप भासता है और सृष्टि की अपेक्षासे अनन्तकोटि योजनों का भेद है। इसका वपु आकाशरूप है। ऐसी अनन्त सृष्टि पड़ी फुरती है। समुद्र और मन्दराचल पर्वत आदिक अनन्त हैं उनके परमाणु में अनन्त सृष्टि चिदाकाश के आश्रय फुरती है। चिद्अणु में रुचि के अनुसार सृष्टि बड़े आरम्भ से दृष्टि आती है और बड़े स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टि आते हैं पर विचारकर तौलिये तो एक चावल के समान भी नहीं होते। हे लीले! नाना प्रकारके रत्नों से परिपूर्ण पर्वत भी दृष्टि आते हैं पर आकाशरूप हैं। जैसे स्वप्न में चेतनका किञ्चन नाना प्रकार का जगत् दृष्टि आता है तैसेही यह जगत् चेतनका किञ्चन है। पृथ्वी आदिक तत्त्वों से कुछ उपजा नहीं। हे लीले! आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों अपने आप में स्थित है। जैसे नदी में नाना प्रकार के तरङ्ग उपजते हैं और लीनभी होते हैं तैसेही आत्मा में जगत्जाल उपजता और नष्ट भी होजाता है पर आत्मसत्ता इनके उपजने और लीन होने में एक रस है। यह सब

केवल आभासरूप है वास्तव कुछ नहीं। लीला बोली; हे मातः! अब पूर्वकी मुझको सब स्मृति हुई है। प्रथम मैंने ब्रह्मा से राजसी जन्म पाया और उससे आदि लेकर नाना प्रकार के जो अष्टशत जन्म पाये हैं वे सब मुझको प्रत्यक्ष भासते हैं प्रथम जो चिदाकाश से मेरा जन्म हुआ उसमें मैं विद्याधर की स्त्री भई और उस जन्म के कर्म से भूतल में आकर मैं दुःखी हुई। फिर पक्षिणी भई और जाल में फँसी और उसके अनन्त भीलिनी होकर कदम्बवन में विचरने लगी। फिर वनलता भई; वह गुच्छे मेरे स्तन और पत्र मेरे हाथ थे। जिसकी पर्णकुटी में मैं लता थी वह ऋषीश्वर मुझको हाथ से स्पर्श किया करता था इससे मैं मृतक होकर उसके गृह में पुत्री भई। वहां जो मुझसे कर्म हो सो पुरुषही क कर्म हो इस से मैं बड़ी लक्ष्मी से सम्पन्न राजा भई। वहां मुझसे दुष्ट हुये इससे मैं कुष्ठरोग ग्रसित बन्दरी होकर आठ वर्ष वहां रही। फिर मैं बै हुई; मुझको किसी दुष्टने खेतीके हल में जोड़ा और उससे मैंने दुःख पाया फिर मैं भ्रमरी भई और कमलों पर जाकर सुगन्ध लेती थी। फिर मृग होकर चिर पर्यन्त वन में विचरी। फिर एक देश का राजा भई और स वर्ष पर्यन्त वहां सुख भोगे और फिर कछुये का जन्म लेकर; राजा ह का जन्म लिया। इसी प्रकार मैंने अनेक जन्मों को धारण करके बड़े क पाये हे देवि! आठसौ जन्म पाकर मैं संसार समुद्र में वासना से घटीयन की नाईं भ्रमी हूं। अब मैंने निश्चय कियाहै कि, आत्मज्ञान विना जन्म का अन्त कदाचित् नहीं होता सो तुम्हारी कृपासे अब मैंने निःसंकल्प पद को पाया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जन्मान्तरवर्णनन्नाम एकविंशतितमस्सर्गः॥ २१॥

इतनी कथा सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! वज्रसार की नाईं ब्रह्माण्ड खप्पर जिसका अनन्त कोटि योजनों पर्यन्त विस्तार था ये दोनों कैसे लंघती गई? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वज्रसार ब्रह्माण्ड खप्पर कहां है और वहांतक कौन गया है? न कोई वज्रसार ब्रह्माण्ड

और न कोई लांघगया है सब आकाशरूप है। उसी पर्वत के ग्राम में जिसमें वशिष्ठ ब्राह्मण का गृह था उसी मण्डप आकाशरूप वह सृष्टि का अनुभव करता भया। हे रामजी! जब वशिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया तब उसी मण्डपाकाश के कोने में आपको चारों ओर समुद्रों पर्यन्त पृथ्वी का राजा जाननेलगा कि, मैं राजा पद्म हूं और अरुन्धती को लीला करके देखा कि, यह मेरी स्त्री है। फिर वह मृतक हुआ तो उसको उसी आकाशमण्डप में और जगत् का अनुभव भया और उसने आप को राजा विदूरथ जाना इससे तुम देखो कि, कहां गया और क्या रूप है? उसी मण्डप आकाश में तो उसको सृष्टि का अनुभव हुआ; इससे जो सृष्टि है वह उसी वशिष्ठ के चित्त में स्थित है। तब ज्ञप्तिरूप देवी की कृपा से अपनेही देहाकाश में लीला अन्तवाहक देह से जो आकाशरूप है, उड़ी और ब्रह्माण्ड को लांघ के फिर उसी गृह में आई। जैसे स्वप्न से स्वप्नान्तर को प्राप्त हो तैसेही देख आई। पर वह गई कहां और आई कहां? एकही स्थान में होके एक सृष्टि से अन्य सृष्टि को देखा। इनको ब्रह्माण्ड के लंघजाने में कुछ यत्न नहीं क्योंकि; उनका शरीर अन्तवाहकरूप है। हे रामजी! जैसे मनसे जहां लंघना चाहे वहां लंघजाता है तैसेही वह प्रत्यक्ष लंघी है। वह सत्यसंकल्परूप है और वस्तु से कहे तो कुछ नहीं। हे रामजी! जैसे स्वप्ने की सृष्टि नाना प्रकार के व्यवहारों सहित बड़ी गम्भीर भासती है पर आभासमात्र है तैसेही यह जगत देखते हैं पर न कोई ब्रह्माण्ड है न कोई जगत् है और न कोई कुण्ड है केवल चैतन्य-मात्र का किञ्चन है और बना कुछ नहीं। जैसे चित्तसंवेदन फुरता है तैसेही आभास हो भासता है। केवल वासनामात्र ही जगत् है; पृथ्वी आदिक भूत कोई उपजा नहीं—निरावरण ज्ञान आकाश अनन्तरूप स्थित है। जैसे स्पन्द और निस्पन्द दोनों रूप पवनही हैं तैसेही स्फुर और अफुररूप आत्माही है कि, वनमें भी ज्योंका त्यों है और शान्त और सर्वरूप चिदाकाश है। जब चित्त किञ्चन होता है तब आपही जगत्रूप हो भासता है—दूसरा कुछ नहीं। जिन पुरुषोंने आत्माको जानाहै उनको

जगत् आकाश से भी शून्य भासता है और जिन्होंने नहीं जाना उनको जगत् वज्रसार की नाईं दृढ़ भासता है। जैसे स्वप्न में नगर भासते; तैसेही यह जगत् है। जैसे मरुस्थल में जल और सुवर्ण में भूषण भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है। हे रामजी ! इस प्रकार देवी और लीला ने संकल्प से नाना प्रकार के स्थानों को देखा जहां झरनों से जल चला आता था; बावली और सुन्दर ताल और बगीचे देखे जहां पक्षी शब्द करते थे और सुन्दर मेघ पवनसंयुक्त देखे मानों स्वर्ग यहांही था ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्राम वर्णनन्नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः ॥ २२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार देखके वे दोनों शीतलचित्त ग्राम में वास करती भईं और चिरकाल जो आत्म अभ्यास किया था उससे शुद्ध ज्ञानरूप और त्रिकालज्ञान से सम्पन्न हुईं। उससे उन्हें पूर्व की स्मृति हुई और जो कुछ अरुन्धती के शरीर से किया था सो देवी से कहा कि, हे देवि ! तुम्हारी कृपा से अब मुझको पूर्व की स्मृति भई जो कुछ इस देशमें मैंने किया था सो प्रकट भासता है कि; यहां एक ब्राह्मणी थी; उसका शरीर; वृद्ध था और नाड़ियां दीखती थीं और भर्त्ता को बहुत प्यारी और पुत्रों की माता थी वह मैंही हूं। हे देवि ! मैं यहां देवता और ब्राह्मणों की पूजा करती थी, यहां दूध रखती, यहां अन्नादिकों के बासन रखती थी यहां मेरे पुत्र, पुत्रियां, दामाद और दुहिते बैठतेथे; यहां मैं बैठतीथी और भृत्यों को कहती थी कि, शीघ्रही कार्य करो। हे देवि ! यहां मैं रसोईं करतीथी और भर्त्ता मेरा शाक और गोबर लेआता था और सर्व मर्यादा कहता था। ये वृक्ष मेरे लगाये हुये हैं; कुछ फल मैंने इनसे लिये हैं और कुछ रहे हैं वो ये हैं। यहां मैं जलपान करती थी। हे देवि ! मेरा भर्ता सब कर्मों में शुद्ध था पर आत्मस्वरूप से शून्य था सबकर्म मुझको स्मरण होते हैं। यहां मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृह में रुदन करता है यह बेल मेरे गृह में विस्तरी है और सुन्दर फूल लगे हैं। इनके गुच्छे छत्रों की नाईं हैं और झरोखे बेलसे आवरे हुये हैं। यह मेरा मरा

आकाश है; इसमें मेरे भर्त्ता का जीव आकाश है । देवी बोली; हे लीले ! इस शरीर के नाभिकमल से दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है और सौ अंगुष्ठमात्र हृदय है; उसमें उसका संवित् आकाश है । उसमें जो राजसी वासना थी उससे उसको चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य फुरआया कि, "मैं राजा हूं," । यहां उसे आठ दिन मृतक हुये बीते हैं और यहां चिरकाल राज्य का अनुभव करता है । हे देवि ! इस प्रकार थोड़े काल में बहुत काल अनुभव होता है और हमारेही मण्डप में वह सब पड़ाहै । उसकी पुर्यष्टक में जगत् फुरता है उसमें आपका राजा विदूरथ है । इस राज्य के संकल्प से उसकी संवित् इसी मण्डप आकाश में स्थित है । जैसे आकाश में गन्ध को लेके पवन स्थित हो तैसेही उसकी चेतन संवित् संकल्प को लेकर इसी मण्डपाकाश में स्थित है । उसकी संवित् इस मण्डप आकाश में है उस राजा की सृष्टि मुझको कोटि योजनों पर्यन्त भासती है । यदि मैं पर्वत और मेघ अनेक योजनों पर्यन्त लंघती जाऊं तब भर्त्ता के निकट प्राप्त होऊं और चिदाकाश की अपेक्षासे अपने पासही भासता है । अब व्यवहारदृष्टि से वह कोटि योजनों पर्यन्त है इससे चलो जहां मेरा भर्त्ता राजा विदूरथ है वह स्थान दूर है तौ भी निश्चय है । इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार कहकर वे दोनों; जैसे खड्ग की धारा श्याम होती है; जैसे विष्णुजी का अङ्ग श्याम है; जैसे काजर श्याम होता और जैसे भ्रमरे की पीठ श्याम होती है तैसेही श्याम मण्डपाकाश में पखेरू के समान अन्तवाहक शरीर से उड़ीं और मेघों और बड़े वायु के स्थान; सूर्य, चन्द्रमा और ब्रह्मलोक पर्यन्त देवतों के स्थानों को लंघकर इस प्रकार दूर से दूर गईं और शून्य आकाश में ऊर्ध्व जाके ऊर्ध्व को देखती भईं कि, सूर्य और चन्द्रमा आदिक कोई नहीं भासता । तब लीला ने कहा; हे देवि ! इतना सूर्य आदिक का प्रकाश था वह कहां गया ? यहां तो महाअन्धकार है; ऐसा अन्धकार है कि; मानों सृष्टि में ग्रहण होता है । देवी बोली; हे लीले ! हम महाआकाश में आई हैं । यहां अन्धकार का स्थान है सूर्य

आदिक कैसे भासें ? जैसे अन्धकूप में त्रसरेणु नहीं भासते तैसेही यह सूर्य चन्द्रमा नहीं भासते हम बहुत ऊर्ध्व को आये हैं। लीला ने पूछा; हे देवि ! बड़ा आश्चर्य है कि; हम दूरसे दूर आये हैं जहां सूर्यादिकों का प्रकाश भी नहीं भासता इससे आगे अब कहां जाना है ? देवी बोली; हे लीले ! इसके आगे ब्रह्माण्ड कपाट आवेगा। वह बड़ा वज्रसार है और अनन्त कोटि योजनों पर्यन्त उसका विस्तार है और उसकी धूर की कणिका भी इन्द्र के वज्रसमान हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार देवी कहतीही थी कि, आगे महावज्रसार ब्रह्माण्ड कपाट आया और अनन्त कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार देखकर उसको भी वे लांघ गईं पर उन्हें कुछ भी क्लेश न भया क्योंकि; जैसा किसीको निश्चय होता है वैसाही अनुभव होता है। वह निरावरण आकाशरूप देवियां ब्रह्माण्ड कपाटको लांघगईं। उसके परे दशगुणा जलका आवरण; उसके परे दशगुणा अग्नितत्त्व; उसके परे दशगुणा वायु; उसके परे दशगुणा आकाश और उसके परे परमाकाश है। उसका आदि, मध्य और अन्त कोई नहीं। जैसे बन्ध्या के पुत्र की कथा की चेष्टा का आदि अन्त कोई नहीं होता तैसेही परम आकाश है वह नित्य, शुद्ध और अनन्तरूप है और अपने आपमें स्थित है। उसका अन्त लेनेको यदि सदाशिव मनरूपी वेग से और विष्णुजी गरुड़ पर आरूढ़ होके कल्प पर्यन्त धावें तौ भी उसका अन्त न पावें और पवन अन्त लियाचाहे तो यह भी न पावे। वह तो आदि, मध्य और अन्त कलनासे रहित बोधमात्र है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे पुनराकाशवर्णनन्नाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥ २३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब ये पृथ्वी, अप, तेज आदिक आवरणों को लांघ गईं तब परमाणु से रहित परमआकाश उनको भासित हुआ उसमें उनको धूर की कणिका और सूर्य के त्रसरेणु के समान ब्रह्माण्ड भासे। वह महाशून्य को धारनेवाला परम आकाश है और आप कणचिद् अ सृष्टि जिसमें फुरती है वह ऐसा महासमुद्र है कि, कोई उसमें अधको जाता

और कोई ऊर्ध्व को जाता और कोई तिर्यक् गति को जाता है। हे रामजी! चित् संवित् में जैसा २ स्पन्द फुरता है तैसाही तैसा आकार हो भासता है; वास्तव में न कोई अध है, न कोई ऊर्ध्व है, न कोई आता है और न कोई जाता है केवल आत्मसत्ता अपने आपमें ज्योंकी त्यों स्थित है। फुरने से जगत् भासताहै और उत्पत्ति हो फिर नष्ट होता है। जैसे बाल का संकल्प उपज के नष्ट होजाता है तैसेही चेतन संवित् में जगत् फुरके नष्ट होजाता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अध और ऊर्ध्व क्या होते हैं तिर्यक् क्या भासते हैं और यहां क्या स्थित है सो मुझसे कहो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! परमाकाश सत्ता आवरण से रहित शुद्ध बोधरूप है। उसमें जगत् ऐसे भासता है जैसे आकाश में भ्रान्ति से तरुवरे भासते हैं उसमें अध और ऊर्ध्व कल्पनामात्र है। जैसे हलों के बेटेके चौगिर्द चींटियां फिरती हैं और उनको मन में अध ऊर्ध्व भासताहै सो उनके मन में अध ऊर्ध्व की कल्पना हुई है। हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभासरूप है। जैसे मन्दराचल पर्वत के ऊपर हस्तियों के समूह विचरते हैं तैसेही आत्मा में अनेक जगत् फुरते हैं जैसे मन्दाचल पर्वतके आगे हस्ती हो तैसेही ब्रह्मके आगे जगत् है और वास्तव में सर्व ब्रह्मरूप है। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण सर्व ब्रह्मही हैं और ये जगत् ब्रह्मसमुद्र के तरङ्ग हैं। उन जगत् ब्रह्माण्डों को देवियों ने देखा। जैसे ब्रह्माण्ड उन्होंने देखे हैं वे सुनिये। कई सृष्टि तो उन्होंने उत्पन्न होती देखीं और कई प्रलय होती देखीं। कितनों के उपजने का आरम्भ देखा जैसे नूतन अंकुर निकलता है; कहीं जलही जल है कहीं अन्धकारही है—प्रकाश नहीं; कहीं सर्व व्यवहार संयुक्त हैं और कहीं वेदशास्त्र के अपूर्व कर्म हैं। कहीं आदि ईश्वर ब्रह्मा हैं उनसे सब सृष्टि हुई है; कहीं आदि ईश्वर विष्णु हैं उनसे सब सृष्टिहुई हैं और कहीं आदि ईश्वर सदाशिव हैं। इसीप्रकार कहीं और प्रजापति से उपजते हैं; कहीं नाथको कोई नहीं मानते सब अनीश्वरवादी हैं; कहीं तिर्यक्ही जीव रहते हैं; कहीं देवता ही रहते हैं और कहीं मनुष्य ही रहते हैं। कहीं बड़े आरम्भ करके सम्पन्न हैं और कहीं शून्यरूप हैं। हे रामजी!

इसीप्रकार उन्होंने अनेक सृष्टि चिदाकाश में उत्पन्न होती देखीं जिन की संख्या करनेको कोई समर्थ नहीं चिदात्मा के आभासरूप फुरती हैं और जैसी फुरना होती हैं उसके अनुसार फुरती हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्माण्डवर्णनन्नाम चतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार दोनों देवियां राजा के जगत् में आकर अपने मण्डप स्थानों को देखती भईं। जैसे सोया हुआ जाग के देखता है तैसेही जब अपने मण्डप में उन्होंने प्रवेश किया तब क्या देखा कि; राजा का शव फूलों में ढांपा हुआ पड़ा है। अर्द्धरात्रि का समय है; सब लोग गृह में सोये पड़े हैं और राजा पद्म के शव के पास लीला का शरीर पड़ा है। और अन्तःपुर में धूप, चन्दन, कपूर और अगर की सुगन्ध भरी है। तब वे विचारनेलगीं कि, वहां चलें जहां राजा राज्य करता है। उसकी पुर्यष्टक में विदूरथ का अनुभव हुआ था उस संकल्प के अनुसार विदूरथ की सृष्टि देखने को देवी के साथ लीला चली और अन्तवाहक शरीर से आकाशमार्ग को उड़ीं। जाते जाते ब्रह्माण्ड की बाट को लांघगईं तब विदूरथ के संकल्प में जगत् को देखा जैसे तालाब में सेवार होती है तैसेही उन्होंने जगत् को देखा। सप्तद्वीप नवखण्ड, सुमेरुपर्वत, द्वीपादिक सब रचना देखीं और उसमें जम्बूद्वीप और भरतखण्ड और उसमें विदूरथ राजा का मण्डपस्थान देखती भईं। वहां उन्होंने राजा सिंध को भी देखा कि, राजा विदूरथ की पृथ्वी की कुछ हद उसके भाइयों ने दबाई थी और उसके लिये सेना भेजी राजा विदूरथ ने भी सुन के सेना भेजी और दोनों सेना मिलके युद्ध करने लगीं। फिर उन्होंने देखा कि, त्रिलोकी युद्ध का कौतुक देखने को आई है; देवता विमानों पर आरूढ़ और सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विद्याधर शास्त्रों को छोड़के देखनको स्थित भये हैं। विद्याधरी और अप्सरा आई हैं कि, जो शूरमा युद्ध में प्राणोंको त्यागेंगे हम उनको स्वर्ग लेजावेंगी। रक्त और मांसभोजन करने को भूत, राक्षस, पिशाच, योगि

नियां भी आन स्थित भई हैं। हे रामजी! शूर पुरुष तो स्वर्ग के भूषण हैं और अक्षयस्वर्ग को भोगेंगे और जिनका मरना धर्मपक्ष से संग्राम में होगा वह भी स्वर्ग को जावेंगे। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! शूरमा किसको कहतेहैं और जो युद्ध करके स्वर्गको नहीं प्राप्त होते वे कौनहैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो शास्त्रयुक्त युद्ध नहीं करते और अनर्थरूपी अर्थ के निमित्त युद्ध करते हैं सो नरक को प्राप्त होते हैं और जो धर्म, गौ, ब्राह्मण, मित्र, शरणागत और प्रजा की पालना के निमित्त युद्ध करते हैं वे स्वर्ग के भूषण हैं। वेही शूरमा कहाते हैं और मरके स्वर्ग में जाते हैं और स्वर्ग में उनका यश बहुत होता है। जो पुरुष धर्म के अर्थ युद्ध करते हैं वे अवश्य स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं और जो अधर्म से युद्ध करते हैं वे मृतक हो नरक को प्राप्त होते हैं। हे रामजी! जो पुरुष कहते हैं कि, संग्राम में मरे सब स्वर्ग को प्राप्त होते हैं वे मूर्ख हैं। स्वर्ग को वही जाते हैं जिनका मरना धर्म के अर्थ हुआ है। जो किसी भोग के अर्थ युद्ध करते हैं सो नरक को ही प्राप्त होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे लीलोपाख्याने गगननगरयुद्धप्रेक्षकान्वितवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दोनों देवियों ने रणसंग्राम में क्या देखा कि, एक महाशून्य वन है उसमें जैसे दो बड़े समुद्र उछलकर परस्पर मिलने लगें तैसेही दोनों सेना जुड़ी हैं। तब उन्होंने क्या देखा कि, सब योधा आन स्थित हुये हैं और मच्छव्यूह गरुड़व्यूह और चक्रव्यूह भिन्न २ भाग करके दोनों सेना के योधा एक २ होकर युद्ध करने लगे हैं। प्रथम परस्पर देख एकने कहा कि, यह बाण चलावे और दूसरे ने कहा कि, नहीं तू चला; उसने कहा नहीं तुही प्रथम चला। निदान दोषदृष्टि करके सब स्थिर हो रहे-मानों चित्र लिख छोड़े हैं। इसके अनन्तर दोनों सेना के और योधा आये मानों प्रलयकाल के मेघ उछले हैं उनके आनेसे एक २ योधा की मर्यादा दूर होगई सब इकट्ठे युद्ध करनेलगे और बड़े-शस्त्रों के प्रवाह के प्रहार करने लगे। कहीं खड्गों के प्रहार चलते थे और

कहीं कुल्हाड़े, त्रिशूल, भाले, बरछियां, कटारी, छूरी, चक्र, गदादिक शस्त्र बड़े शब्द करके चलाने लगे। जैसे वर्षाकाल में मेघ वर्षा करते हैं तैसेही शस्त्रों की वर्षा होने लगी। हे रामजी! प्रलयकाल के जितने उपद्रव थे सो सब इकट्ठे हुये। योधा युद्ध की ओर आये और कायर भागगये। निदान ऐसा संग्राम हुआ कि, अनेकों योधाओं के शिर काटेगये और उनके हस्ती घोड़े मृत्यु को प्राप्त भये। जैसे कमल के फूल काटे जाते हैं तैसेही उनके शीश काटे जाते थे। तब दोनों सेनाओं के राजा चिन्ता करने लगे कि, क्या होगा। हे रामजी! इस युद्ध में रुधिर की नदियां चलीं; उनमें प्राणी बहते जाते थे और बड़े शब्द करते थे जिनके आगे मेघों के शब्द भी तुच्छ भासते थे। हे रामजी! दोनों देवियां संकल्प के विमान कल्पके आकाश में स्थित हुईं तो क्या देखा कि, ऐसा युद्ध हुआहै जैसे महाप्रलय में समुद्र एकरूप होजाते हैं। और बिजली की नाईं शस्त्रों का चमत्कार होता था। जो शूरवीर हैं उनके रक्त की जो बूंदियां पृथ्वीपर पड़ती हैं उन बूंदों में जितने मृत्तिका के कणके लगे होते हैं उतनेही वर्ष वे स्वर्गको भोगेंगे। जो २ शूरमा युद्ध में मृतक होते थे उनको विद्याधरियां स्वर्गको लेजाती थीं और देवगण स्तुति करते थे कि, ये शूरमा स्वर्गको प्राप्त भये हैं और अक्षय अर्थात् चिर-काल स्वर्ग भोगेंगे। हे रामजी! स्वर्गलोक के भोग मन में चिन्तन करके शूरमा हर्षवान् होते थे और युद्धमें नाना प्रकार के शस्त्र चलाते और सहन करतेथे और फिर युद्ध के सम्मुख धीरज धरके स्थित होते थे। जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् और अचल स्थित है उससे भी अधिक वे धैर्यवान् थे। संग्राममें योधा ऐसे चूर्ण होते थे जैसे कोई वस्तु उखली में चूर्ण होती है पन्तु फिर सम्मुख होते और बड़े हाहाकार शब्द करते थे। हस्तीसे हस्ती पर परस्पर युद्ध करते शब्द करते थे। हे रामजी! इसी प्रकार अनेक जीव नाशको प्राप्त भये। जो २ शूरमा मरते थे तिनको विद्याधरियां स्वर्ग को लेजाती थीं। निदान परस्पर बड़े युद्धहुये खड्गवाले खड्गवाले से और त्रिशूलवाले त्रिशूलवाले से युद्ध करते थे। जैसा २ शस्त्र किसी के पास

हो तैसेही उसके साथ युद्ध करें और जब शस्त्र पूर्ण होजावें तो मुष्टि के साथ युद्धकरें। इसी प्रकार दशोंदिशा युद्ध से परिपूर्ण हुईं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे लीलोपाख्याने रणभूमिवर्णनन्नाम षड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार बड़ा युद्ध हुआ तो गङ्गाजी के समान शूरमों के रुधिर का तीक्ष्ण प्रवाह चला और उस प्रवाह में हस्ती, घोड़े, मनुष्य, रथ सब बहेजाते थे और सेना सृष्टि नाश को प्राप्त होती जाती थी। हे रामजी! उस समय बड़ा क्षोभ उदय हुआ और राक्षस, पिशाचादिक तामसी जीव मांस भोजन करते और रुधिर पान करते उत्साहक्रिया प्राप्तभई। जैसे मन्दराचल पर्वत से क्षीरसमुद्र को क्षोभ हुआ था तैसेही युद्ध संग्राम में योद्धाओं का क्षोभ हुआ और रुधिर का समुद्र चला उसमें हस्ती, घोड़े, रथ और शूरमा तरङ्गों की नाईं उछलते दृष्टि आते थे। रथवालों से रथवाले; घोड़ेवालों से घोड़ेवाले; हस्तीवाले से हस्तीवाले और प्यादे से प्यादे युद्ध करते थे। हे रामजी! जैसे प्रलयकाल की अग्नि में जीव जलते हैं तैसेही जो योद्धा रणभूमि में आवें सो नाश को प्राप्तहों। जैसे दीपक में पतङ्ग प्रवेश करता है और जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं तैसेही रणभूमि में दशोंदिशा के योद्धा प्रवेश करते थे। किसी का शीश काटा जावे और धड़ युद्ध करे; किसी की भुजा काटीजावें और किसी के ऊपर रथ चले जावें और हस्ती, घोड़े, उलट २ पड़ें और नाश होजावें। हे रामजी! दोनों राजाओं की सहायता के निमित्त पूर्वदिशा, काशी, मद्रास, भीला, मालव, सकला, कवटा, किरात, म्लेच्छ, पारसी, काश्मीर, तुरक, पञ्जाब, हिमालय पर्वत, सुमेरुपर्वत इत्यादि के अनेक देशपाल, जिनके बड़े भुजदण्ड, बड़े केश और बड़े भयानकरूप थे, युद्ध के निमित्त आये। बड़ी ग्रीवावाले, एकटँगे, एकाचल, एकाक्ष, घोड़े के मुखवाले, श्वान के मुखवाले और सुमेरु और कैलास के राजा और जितने कुछ पृथ्वी के राजा थे सो सबही आये। जैसे महाप्रलय

के समुद्र उछलते हैं और दिशा स्थान जल से पूर्ण होते हैं तैसेही सेन से सब स्थान पूर्णभये और दोनों ओर से युद्ध करने लगे। चक्रवाले चक्रवाले से और खड्ग, कुल्हाड़े, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा बाणादिक शस्त्रों से परस्पर युद्ध करने लगे। एक कहै कि, प्रथम मैं जाता हूं, दूसरा कहै कि, मैं प्रथम जाता हूं। हे रामजी! उसकाल ऐसा युद्ध होनेलगा कि, कहने में नहीं आता। दौड़ दौड़ के योद्धा रण में जावें और मृत्यु को प्राप्त हों। जैसे अग्नि में घृत की आहुति भस्म होती है तैसेही रण में योद्धा नाश को प्राप्त होते थे। ऐसा युद्ध हुआ कि, रुधिर का समुद्र चला उसमें हस्ती, घोड़े, रथ और मनुष्य तृणों की नाईं बहते थे और सम्पूर्ण पृथ्वी रक्तमय होगई। जैसे आंधी से फल, फूल और वृक्ष गिरते हैं तैसेही पृथ्वी पर कट २ शब्द करते शिर गिरते थे। हे रामजी! जो उस काल में युद्ध हुआ वह कहा नहीं जाता। सहस्रमुख शेषनाग भी उस युद्ध के कर्मों को सम्पूर्ण वर्णन न कर सकेंगे तब और कौन कहेगा। मैंने वह संक्षेप से कुछ सुनाया है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे लीलोपाख्याने द्वन्द्वयुद्धवर्णनन्नाम सप्तविंशति-
तमस्सर्गः॥ २७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार युद्ध हुआ तो सूर्य अस्त हुआ मानों उसकी किरणें भी शस्त्रों के प्रहारसे अस्तता को प्राप्त हुईं तब विदूरथ ने सेनापति और मन्त्री को बुलाकर कहा कि, हे मन्त्रियो! अब युद्ध को शान्त करो क्योंकि; सूर्य अस्त भया है और योद्धा भी सब युद्ध करके थके हैं। रात्रि को सब आराम करें दिन को फिर युद्ध करेंगे। इससे आज्ञा फेरो कि, अब युद्ध शान्त हो। तब मन्त्री ने दोनों सेना के मध्य में ऊंचे चढ़के वस्त्र फेरा कि, अब युद्ध को शान्त करो दिन को फिर युद्ध करेंगे। निदान दोनों सेनाओं ने युद्ध का त्याग किया और अपनी २ सेना में नौबत नगारे बजाने लगे और राजा विदूरथ भी अपने गृह में आ स्थित भया। जैसे शरत्काल में मेघों से रहित आकाश निर्मल होता है तैसेही रण में संग्राम शान्त हुआ। रा

को राक्षस, पिशाच, गीदड़, भेड़िये और डाकिनी मांस का भोजन करने और रुधिर पान करने लगे। कितनों के शिर और अङ्ग काटेगये पर जीते थे और पड़े हाय २ करते थे वे निशाचरों को देख के डरने लगे और कितने लोगों ने भाई और मित्रों को देखा। हे रामजी! तब राजा विदूरथ ने स्वर्ण के मन्दिर में जो फूलों सहित चन्द्रमा की नाईं शीतल और सुन्दर शय्या पर सब किवाड़ चढ़ा के विश्राम किया और मन्त्रियों के साथ विचार किया कि, प्रातःकाल उठके ऐसे करेंगे। ऐसे विचार करके राजा ने शयन किया पर एक मुहूर्त्त पर्यन्त सोया और फिर चिन्ता से जग उठा इधर इन दोनों देवियों ने आकाश से उतर के; जैसे सन्ध्याकाल में कमल के मुख मूंदते हैं और उनमें वायु प्रवेश कर जाता है तैसेही मन्दिरों में सूक्ष्म परमाणु के मार्ग से प्रवेश किया। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! शरीर से परमाणु के रन्ध्र में देवियोंने कैसे प्रवेश किया वह तो कमल के तन्तु और बाल के अग्र से भी सूक्ष्म होते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! भ्रान्ति से जो आधिभौतिक शरीर हुआ है उस आधिभौतिक शरीर से आपसे सूक्ष्मरन्ध्र में प्रवेश कोई नहीं करसक्ता है परन्तु मनरूपी शरीरको कोई नहीं रोकसक्ता। हे रामजी! देवी और लीला का अन्तवाहक शरीर था उस से सूक्ष्म परमाणु के मार्गसे उनको प्रवेश करने में कुछ विचार न हुआ। जो उनका आधिभौतिक शरीर होता तो यत्न भी होता। जहां आधिभौतिक न हो वहां यत्न की शङ्का कैसे हो? हे रामजी! और भी सब शरीर चित्तरूपी हैं पर जैसा निश्चय अनुभव संवित् में होताहै तैसेही सिद्धता होती है अन्यथा नहीं होती। जिसके निश्चय में ये शरीरादिक आकाशरूप हैं उसको आधिभौतिकता का अनुभव नहीं होता और जिसके निश्चय में आधिभौतिकता दृढ़ होरही है उसको अन्तवाहकता का अनुभव नहीं होता। जिस पुरुष को पूर्वार्धका अनुभव नहीं उसको उत्तरार्ध में गमन नहीं होता—जैसे वायु का चलना ऊर्ध्व को नहीं होता, तिरछा स्पर्श होताहै; अग्नि का चलना अध को नहीं होता और जल का ऊर्ध्वको नहीं होता। जैसे आदि चेतन

संवित् में प्रवृत्ति भईहै तैसेही अबतक स्थितहै। इससे जिसको अन्तवाह
शक्ति उदय भई है उसको आधिभौतिकता नहीं रहती और जिस
आधिभौतिकता दृढ़ है उसको अन्तवाहक शक्ति उदय नहीं होती।
रामजी! जो पुरुष छाया में बैठाहो उसको धूप का अनुभव नहीं हो
और जो धूपमें बैठाहै उसको छाया का अनुभव नहीं होता। अनुभ
उसीको होताहै जिसके चित्त में दृढ़ता होती है अन्यथा कि
को कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! जैसा प्रमाण चित्तसंवित् में हो
है तो जबतक और प्रतीति नहीं होती तबतक तैसेही सिद्धता होती
जैसे रस्सी में भ्रमसे सर्प भासता है और मनुष्य भय से कंपायमान हो
है; सो कंपना भी तबतक है जबतक सर्प का अनुभव अन्यथा न
होता; जब रस्सी का अनुभव उदय होताहै तब सर्पभ्रम नष्ट होता
तैसेही जैसा अनुभव चित्त संवित् में दृढ़ होताहै उसीका अनुभव हो
है। यह वार्त्ता बालक भी जानता है कि, जैसी जैसी चित्तकी भाव
होती है तैसाही रूप भासता है। निश्चय और हो और अनुभव औ
प्रकार हो ऐसा कदाचित् नहीं होता। हे रामजी! जिनको ये आक
स्वप्न संकल्पपुर की नाईं हुये हैं सो आकाशरूप हैं। जिनको ऐ
निश्चय हो उनको कोई रोक नहीं सक्ता। औरों का भी चित्तमात्र श
है पर जैसा जैसा संवेदन दृढ़भया है तैसाही तैसा आपको जानता
हे रामजी! आदि में सब कुछ आत्मा से स्वाभाविक उपजा है
अकारणरूप है और पीछेसे प्रमाद से द्वैतकार्य अकारणरूप होके स्थि
भया है। हे रामजी! आकाश तीनहैं—एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताका
और तीसरा भूताकाश है। उनमें वास्तव एक चिदाकाश है और भाव
करके भिन्न २ कल्पना हुई हैं। आदि शुद्ध अचेत, चिन्मात्र चिदाका
में जो संवेदन फुरा है उसका नाम चित्ताकाश है और उसीमें यह सम्पू
जगत् हुआहै। हे रामजी! चित्तरूपी शरीर सर्वगत होकर स्थितभ
है। जैसा जैसा उसमें स्पन्द होताहै तैसाही तैसा होके भासता है। जि
कुछ पदार्थ हैं उन सबों में व्यापरहा है; त्रसरेणु के अन्तर भी सूक्ष्म

से स्थितभया और आकाश के अन्तर भी व्यापरहाहै। पत्र फल उसीसे होते हैं; जल में तरङ्ग होके स्थित भयाहै; पर्वत के भीतर यही फुरता, मेघ होके भी यही वर्षता और जलसे बरफ भी यह चित्तही होताहै। अनन्त आकाश परमाणुरूप भीतर बाहर सर्वजगत् में यही है। जितना जगत् है वह चित्तरूपही है और वास्तव में आत्मा से अनन्यरूप है। जैसे समुद्र और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और चित्त में कुछ भेद नहीं। जिस पुरुष को ऐसे अखण्डसत्ता आत्मा का अनुभव हुआहै और जिसका सर्ग के आदि में चित्तही शरीर है और आधिभौतिकता को नहीं प्राप्तभया वह महाआकाशरूप है उसको पूर्व का स्वभाव स्मरणरहा है इस कारण उसका अन्तवाहक शरीरहै। हे रामजी! जिस पुरुष को अन्तवाहकता में अहंप्रत्यय है उसको सब जगत् संकल्पमात्र भासता है वह जहां जाने की इच्छा करताहै वहां जाताहै और उसको कोई आवरण नहीं रोकसक्ता। जिसको आधिभौतिकता में निश्चय है उसको अन्तवाहक शक्ति नहीं होती। हे रामजी! सबही अन्तवाहकरूप हैं और भ्रम से अनहोता आधिभौतिक देखते हैं। जैसे मरुस्थल में जल भासता है और जैसे स्वप्न में बन्ध्याके पुत्रका सद्भाव होता है तैसेही आधिभौतिक जगत् भासता है। जैसे जल शीतलता से बरफ होजाताहै तैसेही जीव प्रमाद से अन्तवाहकसे आधिभौतिक शरीर होता है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! चित्तमें क्या है; कैसे होताहै और कैसे नहीं होता; यह जगत् कैसे चित्तरूप है और क्षणमें अन्यथा कैसे होजाता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! एक २ जीवप्रति चित्त होताहै। जैसा जैसा चित्त है तैसे ही तैसी शक्ति है। चित्त में जगत् भ्रम होताहै क्षण में कल्प और सम्पूर्ण जगत् उदय होआता है और क्षण में सम्पूर्ण लय होताहै। किसीको निमेष में कल्प होआता है और किसी को क्रमसे भासताहै सो मन लगाकर सुनिये। हे रामजी! जब मरनेकी मूर्च्छा होतीहै तो उस महाप्रलयरूप मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर नाना प्रकार का जगत् फुर आता है जैसे स्वप्ने में सृष्टि फुरआती हैं और जैसे

संकल्प का पुर भासताहै तैसे ही मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर सृष्टि भासत है जैसे महाप्रलय के अनन्तर आदि विराट्रूप ब्रह्मा होताहै तैसेह मृत्यु के अनन्तर इसको अनुभव होता है यह भी विराट् होता है क्योंकि इसका मनरूपी शरीर होता है। रामजी बोले; हे भगवन्! मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि होती है वह स्मृति से होती है; स्मृति विना नहीं होत इसलिये मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि हुई तो सकारणरूप हुई? वशिष्ठज बोले; हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब हरि हरादिक सबह विदेहमुक्त होते हैं। फिर स्मृति का सम्भव कैसे हो? हमसे आदि ले जो बोध आत्मा हैं जब विदेहमुक्त हुये हैं तब स्मृति कैसे सम्भ हो? अब के जो जीव हैं उनका जन्म मरण स्मृति कारण होता है क्योंकि; मोक्ष नहीं होता—मोक्ष का उनको अभाव है हे रामजी! जब जीव मरते हैं तब उन्हें मृत्यु मूर्च्छा होती है प कैवल्यभाव में स्थित नहीं होते; मूर्च्छा से उनका संवित् आकाशरू होता है तिससे फिर चित्तसंवेदन फुर आता है। तब उन्हें क्रम कर जगत् फुर आता है पर जब बोध होता है तब तन्मात्रा और काल क्रिया, भाव, अभाव, स्थावर-जङ्गम जगत् सब आकाशरूप होजात है। जिनका संवेदन दृश्य की ओर धावता है उनको मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर अज्ञान संवेदन फुरता है उससे उन्हें शरीर और इन्द्रियां भास आती हैं। वह अन्तवाहक शरीर है परन्तु चिरकाल की प्राप्ति करके आधिभौतिक हो भासता है। तब देश, काल, क्रिया, आधार, आधे उदय होकर स्थित होते हैं। जैसे वायु स्पन्द और निस्पन्दरूप है प जब स्पन्द होता है तब भासता है और निस्पन्द हुये से नहीं भासत तैसेही संवेदन से जब जगत् भासता है तब जानता है कि, मैं यह उपजा हूं। जैसे स्वप्न में अङ्गना के स्पर्श का अनुभव होता है व मिथ्या है तैसेही भ्रम से जो आपको उपजा देखता है वह भी मिथ्य है। हे रामजी! जहां यह जीव मृतक होता है वहीं जगत्भ्रम देखत है। वास्तव में जीव भी आकाशरूप है और जगत् भी आकाशरूप है

अज्ञान से जीव आपको उपजा मानता है और नाना जगत्भ्रम देखता है कि, यह नगर है; यह पर्वत है, ये सूर्य और चन्द्रमा हैं; ये तारागण हैं और जरा-मरण, आधि-व्याधि सङ्कट से व्याकुल होता है । वह भाव-अभाव, भय, स्थूल, सूक्ष्म, चर-अचर, पृथ्वी, नदियां, पर्वत, भूत-भविष्य-वर्त्तमान; क्षय-अक्षय और भूमि को भी देखता है और समझता है कि मैं उपजाहूं, मैं अमुक का पुत्रहूं, यह मेरा कुल है; यह मेरी माता है; ये मेरे बांधव हैं; इतना धन हमको प्राप्तभया है इत्यादि अनेक वासना जालों में दुःखी होता है और कहता है कि; यह सुकृत है और यह देहाकृत है; प्रथम मैं बालक था; अब मेरी यह अवस्था हुई और यह मेरा वर्ण है इत्यादिक अनेक जगत् कल्पना हर एक जीव को उदय होती है । हे रामजी ! संसाररूपी एक वृक्ष उगा है; चित्तरूपी उसका बीज है; तारागण उसके फूल हैं और चञ्चल मेघ पत्र हैं । जङ्गम जीव, मनुष्य, देवता, दैत्यादिक पक्षी उसपर बैठनेवाले हैं और रात्रि उसके ऊपर धूर है; समुद्र उसकी तलावड़ी है; पर्वत उसमें शिलबट्टे हैं और अनुभवरूप अंकुर हैं । जहां जीव मरता है तहीं क्षण में ये सब देखता है । इसी प्रकार एक २ जीव को अनेक जगत् भासते हैं । हे रामजी ! कितने कोटि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, पवन और सूर्यादिक हुये हैं । जहां सृष्टि है वहीं ये होते हैं इससे चिद्अणु में अनेकसृष्टि हैं जीव भी अनन्त हुये हैं और उन्हों में सुमेरु, मण्डल, द्वीप और लोक भी बहुतेरे हुये हैं । जो चिद्अणु में ही सृष्टि का अन्त नहीं तो परब्रह्म में अन्त कहां से आवे ? वास्तव में है नहीं; जैसे पर्वत की दीवार में शिल्पी पुतलियां कल्पे तो कुछ है नहीं तैसेही जगत् चिदाकाश में नहीं है केवल मनोमात्र ही है । हे रामजी ! मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप है और चिदाकाश में मनन और स्मरणहै । जैसे तरङ्ग भी जलरूप हैं और जलही में होते हैं; जल से इतर तरङ्ग कुछ वस्तु नहीं हैं; तैसेही मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप जानो । हे रामजी ! दृश्य कुछ भिन्न वस्तु नहीं है; द्रष्टा ही दृश्य की नाईं होकर भासता है । जैसे मनाकाश नाना प्रकार

हो भासता है; तैसेही चिदाकाश का प्रकाश नाना प्रकार जगत् होकर भासता है । यह विश्व सब चिदाकाशरूप है; हमको तो ऐसेही भासता है पर तुमको अर्थाकाररूप भासता है इसी कारण कहा है कि; लीला और सरस्वती आकाशरूप, सर्वज्ञ स्वच्छरूप और निराकार थीं । वे जहां चाहती थीं तहां जाय प्राप्त होती थीं और जैसी इच्छा करती थीं तैसी सिद्धि होती थी क्योंकि; जिसको चिदाकाश का अनुभव हुआ है उसको कोई रोक नहीं सकता है । सर्वरूप होके जो स्थित हुआ उसे गृह में प्रवेश करना क्या आश्चर्य है । वह तो अन्तवाहकरूप हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्मृत्यनुभववर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः ॥ २८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब दोनों देवियां जिनकी चन्द्रमा के समान कान्ति थी राजा के अन्तःपुर में संकल्प से प्रवेशकर सिंहासन पर स्थित भई तो बड़ा प्रकाश अन्तःपुर में हुआ और शीतलता से व्याधि ताप शान्त हुआ । जैसे नन्दनवन होता है तैसेही अन्तःपुर होगया और जैसे प्रातःकाल में सूर्य का प्रकाश होता है तैसेही देवियों के प्रकाश से अन्तःपुर पूर्णभया; मानों देवियों के प्रकाश से राजा पर अमृत की सींचना हुई तब राजा ने देखा कि मानों सुमेरु के शृङ्ग से दो चन्द्रमा उदय हुये हैं । ऐसे देखके वह विस्मय को प्राप्तहुआ और चिन्तना की कि, ये देवियां हैं । इसलिये; जैसे शेषनाग की शय्या से विष्णु भगवान् उठते हैं तैसेही उसने उठके और वस्त्रों को एक ओर करके हाथों में पुष्प लिये और हाथ जोड़के देवियों के चरणों पर चढ़ाये और माथा टेक के पद्मासन बांध पृथ्वी पर बैठगया और कहने लगा; हे देवियो ! तुम्हारी जय हो । तुम जन्म दुःख तप के शान्त करनेवाले चन्द्रमा हो और अपूर्व सूर्य हो—अर्थात् पूर्व सूर्य के प्रकाश से बाह्यतम नष्ट होता है और तुम्हारे प्रकाश से अन्तर अज्ञानतम भी नष्ट होता है इससे अपूर्व सूर्य हो । इसके अनन्तर देवीने मन्त्री को जो राजा के पास नदी के तटके फलों के वृक्षों के समान सोया था जन्म और कुल के

कहावने के निमित्त संकल्प से जगाया और मन्त्री उठके फलों से देवियों का पूजन कर राजा के समीप जा बैठगया। तब सरस्वती कहनेलगीं; हे राजन्! तू कौन है; किसका पुत्र है और कबका तूने जन्म लिया है? हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने पूछा तब मन्त्री, जो निकट बैठाथा, बोला; हे देवि! तुम्हारी कृपा से राजा का जन्म और कुल मैं कहता हूं। इक्ष्वाकु कुल में एक राजा हुआ था जिसके कमल की नाईं नेत्र थे और वह श्रीमान् था उसका नाम कुन्दरथ था। निदान उसका पुत्र बुधरथ हुआ; बुधरथ के सिंधुरथ हुआ; उसका पुत्र महारथ हुआ; महारथ का पुत्र विष्णुरथ हुआ; उसका पुत्र कलारथ हुआ; कलारथ का पुत्र सयरथ हुआ; सयरथ का पुत्र नभरथ हुआ और उस नभरथ के बड़े पुण्य करके यह विदूरथ पुत्र हुआ। जैसे क्षीरसमुद्र से चन्द्रमा निकला है तैसेही सुमित्रा माता से यह उपजा है। जैसे गौरीजी से स्वामिकार्त्तिक उत्पन्न भये हैं तैसेही यह सुमित्रा से उत्पन्न हुये हैं। हे देवि! इस प्रकार तो हमारे राजा का जन्म हुआ है। जब यह दश वर्षका भया तब पिता इसको राज्य देकर आप वनको चला गया और उस दिन से इसने धर्म की मर्यादा से पृथ्वी की पालना की और बड़े पुण्य किये हैं। उन्हीं पुण्यों का फल तुम्हारा दर्शन अब इसको भया है। हे देवि! जो तुम्हारे दर्शन के निमित्त बहुत वर्षों तप करते हैं उनको भी तुम्हारा दर्शन पाना कठिन है; इससे इसके बड़े पुण्य हैं कि, तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ। हे रामजी! इस प्रकार कहके जब मन्त्री तूष्णी हुआ तब देवीजी ने कृपा करके राजा विदूरथ के शीश पर हाथ रखकर कहा; हे राजन्! तुम अपने पूर्वजन्मको विवेकदृष्टि करके देखो कि, तुम कौन हो? देवी के हाथ रखने से राजा के हृदय का अज्ञानतम निवृत्त होगया; हृदय प्रफुल्लित हुआ और देवी के प्रसाद से राजाको पूर्वकी स्मृति फुरआई। लीला और पद्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त स्मरण करके कहने लगा हे देवि! बड़ा अचरज है कि, यह जगत् मन से रचा है। यह मैंने तुम्हारे प्रसाद से जाना कि, मैं राजा पद्म था और लीला मेरी स्त्री थी। मुझको मृतक

हुये एक दिन ऐसे में भासा और यहां मैं सौ वर्ष का भया हूं सो अबत
भ्रम से मैंने नहीं जाना; अब प्रत्यक्ष जानता हूं। सौ वर्षों में जो अने
कार्य मैंने किये हैं वह सब मुझको स्मरण होते हैं और अपने प्रपिताम
और अपनी बाल्यावस्था व यौवनअवस्था, मित्र और बान्धव
स्मरण आते हैं-यह बड़ा आश्चर्य हुआ है। सरस्वती बोली; हे राजन
जब जीव मृतक होते हैं तब उनको बड़ी मूर्च्छा होती है। उस मूर्च्छा
अनन्तर और २ लोक भास आते हैं और एक मुहूर्त्त में वर्षों का अनुभ
होता है। जैसे स्वप्ने में एक मुहूर्त्त में अनेक वर्षों का अनुभव होता
तैसेही तुझको मत्यु मूर्च्छा के अनन्तर यह लोक भ्रम भासा है।
राजन्! जहां तुम पद्मराजा थे उस गृह में मृतक हुये तुमको एक मुहू
बीता है और यहां तुमको बहुतेरे वर्षों का अनुभव हुआ है। इससे
जो पिछला वृत्तान्त है वह सुनिये। हे राजन्! पहाड़ के ऊपर ए
ग्राम था उसमें एक वशिष्ठ ब्राह्मण रहता था और अरुन्धती उसकी स्
थी। वह दोनों मन्दिर में रहते थे। अरुन्धती ने मुझसे वर लिया कि
जब मेरा भर्त्ता मृतक हो तब उसका जीव इसही मण्डपाकाश में रहे
निदान जब वह मृतक हुआ तब उसकी पुर्यष्टक उसही मन्दिर में र
पर उसके संवित् में राजा की दृढ़वासना थी इसलिये उस मण्डपाका
में उसको पद्मराजा की सृष्टि फुरआई और अरुन्धती उसकी स्त्री लील
होकर उसको प्राप्तभई। राजा पद्म का मण्डप उस ब्राह्मणके मण्डपाक
में स्थित हुआ और फिर उस मण्डपमें जब तू राजा पद्म मृतक हु
तब तेरे संवित् में नाना प्रकार के आरम्भसंयुक्त यह जगत् फुर आ
हे राजन्! यह तेरा जगत् पद्मराजा के हृदय में फुर आया है
पद्मराजा के मण्डपाकाश में स्थित है पद्मराजा का जगत् उस व
ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है और वही वशिष्ठ ब्राह्मण तुम वि
राजा हुयेहो। हेराजन्! यह सब जगत्प्रतिभा मात्रहै और मनकी कल
से भासता है-उपजा कुछ नहीं। इतना सुन विदूरथ बोले, बड़ा आ
है कि, जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप हुआ तैसेही इक्ष्वाकु का कुल

मेरे माता पिता सब भ्रमरूप हुये हैं तिसमें मैं जन्म लेके बालक हुआ और जब दशवर्षका था तब पिताने मुझको राज्य देके वनवास लिया फिर मैंने दिग्वजय करके प्रजाकी पालनाकी और शतवर्षोंका मुझको अनुभव होता है। फिर मुझको दारुण अवस्था युद्ध की इच्छा हुई है और युद्ध करके रात्रिको मैं गृह में आया। अब तुम दोनों देवियां मेरे गृह में आईं और मैंने तुम्हारी पूजाकी तब तुम दोनों में से एक देवी ने कृपा करके मेरे शीश पर हाथ रक्खा है उसीसे मुझको ज्ञान प्रकाश भया है। जैसे सूर्य के प्रकाश से कमल प्रफुल्लित होता है तैसेही मेरा हृदय देवी के प्रकाश से प्रफुल्लित भया है। इनकी कृपासे मैं कृतकृत्य हुआ और अब मेरा सब सन्ताप नष्टहोकर निर्वाण, समता, सुख और निर्मलपदको प्राप्त हुआहूं। सरस्वती बोली; हे राजन्! जो कुछ तुझको भासा है वह भ्रममात्र है और नाना प्रकार के व्यवहार और लोकान्तर भी भ्रममात्र हैं क्योंकि; वहां तुझको मृतक हुए अभी एकमुहूर्त्त व्यतीत हुआ है और इसी अनन्तर में उसी मण्डपआकाश में तुझको यह जगत् भासा। पद्म राजा की वह सृष्टि ब्राह्मण के मण्डप में स्थित है और यहां तुझको नदियां, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत सम्पूर्ण जगत् भासि आये हैं। हे राजन्! मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर कभी वही जगत् भासता है, कभी और प्रकार भासता है और कभी पूर्व-अपूर्व भी भासता है। यह केवल मनकी कल्पना है पर वास्तव में असत्रूप है और अज्ञान से सत् की नाईं भासता है। जैसे एक मुहूर्त्त शयन करके स्वप्ने में बहुतेरे वर्षों का क्रम देखता है; तैसेही जगत् का अनुभव होता है। जैसे संकल्पपुर में अपना जीना, मरना और गन्धर्वनगर भ्रममात्र होता है; जैसे नौका में बैठेहुये मनुष्य को तटके वृक्ष चलतेहुये भासते हैं भ्रमण करने से पर्वत, पृथ्वी और मन्दिर भ्रमते भासते हैं और स्वप्ने में अपना शिर कटा भासताहै तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है। हे राजन्! अज्ञान से तुझको मिथ्या कल्पना उपजी है; वास्तव में न तू मृतक हुआ और न तूने जन्मलिया तेरा अपना आप जो शुद्ध

विज्ञान शान्तिरूप आत्मपद है उसी में स्थित है। नाना प्रकार का जग
अज्ञान से भासता है और सम्यक्ज्ञान से सर्वात्मसत्ता भासती है। आत
सत्ताही जगत् की नाईं भासती है। जैसे बड़ी मणि की किरच ना
प्रकार हो भासती है सो वह मणि से भिन्न नहीं; तैसेही आत्मसत्ता
किञ्चन आकाशरूप जगत् भासता है। गिरि और ग्राम और किञ्च
रूप हो जितना जगत् विस्तार तुमको भासताहै वह लीला और पद्मरा
के मण्डपाकाश में स्थित है और लीला और पद्म की राजधानी
वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थितहै। हे राजन्! यह ज
वशिष्ठ ब्राह्मण के हृदय मण्डपाकाश में फुरताहै। वह मण्डपाकाश
आकाश में स्थित है उसमें न पृथ्वी है न पर्वत हैं। न मेघ हैं; न समु
और न कोई मुमुक्षु है। केवल शून्य शून्यस्थित है और न कोई ज
है, न कोई देखनेवाला है—यह सब भ्रान्तिमात्र है। हे राजन्! यह
तेरे उस मण्डपाकाश में फुरते हैं। विदूरथ बोले; हे देवि! जो ऐसे
तो यह मेरे भृत्य भी अपने आत्म में सत् हैं वा असत् हैं कृपा
कहिये? देवी बोली, हे राजन्! विदित वेद जो पुरुष है वह शुद्ध
रूप है। उसको कुछ भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता; सब चिदाका
रूपही भासता है। जैसे भ्रम निवृत्त हुये रस्सी में सर्प नहीं भास
तैसेही जिन पुरुषों को आत्मबोध हुआ है और जिनका जगत्
निवृत्त हुआ है उनको जगत् सत् नहीं भासता जैसे सूर्य की किरणों
जलको असत् जाने तो फिर जलसत्ता नहीं भासती; तैसेही जिन
आत्मबोध हुआ है और जगत् को असत जानते हैं उनको सत
भासता। हे राजन्! जैसे स्वप्ने में कोई भ्रम से अपना शीश कटा
और जागे से स्वप्न का मरना नहीं देखता तैसेही ज्ञानवान् को ज
सत् नहीं भासता। जैसे स्वप्ने का मरना भ्रम से देखता है तैसेही अज्ञा
को जगत् सत् भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं शुद्ध बोध में ज
भ्रम भासता है। जैसे शरत्काल में मेघ से रहित शुद्ध आकाश होत
तैसेही शुद्धबोधवालों को अहं त्वं आदिक व्यर्थशब्द का अभाव होत

हे राजन्! तुम और तुम्हारे भृत्य इत्यादिक जो यह सृष्टि है वह सब आत्मा में फुरे हैं और वास्तव में कुछ नहीं हुआ। केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और भ्रम से और कुछ भासता है पर शुद्धविज्ञान घनरूप ही उसका शेष रहता है। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि इसप्रकार जब देवी और विदूरथ का संवाद वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य अस्त होकर सायंकाल का समय हुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई जब रात्रि बीतगई सूर्य की किरणों के निकलतेही सब अपने २ स्थानों पर आके बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे लीलोपाख्यानेभ्रान्तिविचारोनामैकोन त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो पुरुष अबोध हैं अर्थात् परमपद में स्थित नहीं हुये उनको जगत् वज्रसारकी नाईं दृढ़ है। जैसे मूर्ख बालक को अपनी परछाहीं में बैताल भासता है तैसेही अज्ञानी को असत्रूप जगत् सत् हो भासताहै और जैसे मरुस्थल में मृग को असत्रूप जला-भास सत्यहो भासता है; स्वप्न में क्रिया अर्थभ्रम करके भासती है; जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती उसको भूषणबुद्धि सत् भासती है और जैसे नेत्र दूषण से आकाश में मुक्तमाला भासती हैं तैसेही असम्यक्दर्शी को असत्रूप जगत् सत् हो भासता है। हे रामजी! यह जगत् दीर्घकालका स्वप्ना है; अहन्ता से दृढ़ जाग्रत्रूप हो भासताहै और वास्तव में कुछ उपजा नहीं परमचिदाकाश सर्वदा शान्ति और अचिन्त्य चिन्मात्रस्वरूप सर्वशक्ति सर्व आत्माही है; जहां जैसा स्पन्द फुरता है वैसाही जगत् होकर भासता है। जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है वह स्वप्नभ्रम चिदाकाश में स्थित है। उस चिदाकाश में एक स्वप्नपुर फुरता है और वही द्रष्टा हो दृश्य को देखता है। वह द्रष्टा और दृश्य दोनों चेतन संवित् में आभास-रूप हैं तैसेही यह जगत् भी आभासरूप है। हे रामजी! सर्ग की आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी उसमें आदि संवेदन स्पन्द हुआहै—वही ब्रह्माजी हैं और उसी के संकल्प में यह संपूर्ण जगत् स्थित है। यह सम्पूर्ण जगत्

स्वप्न की नाईं है; उस स्वप्नरूप में तुम्हारा सद्भाव हुआ है। जैसे तुम
तैसेही और भी हैं। जैसे स्वप्न में स्वप्ननर को और स्वप्ना हो और जै
स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता तैसेही यह जगत् भी जो दृष्टि आत
है भ्रममात्र है। जैसे स्वप्न में असत्‌ही सत् होके भासता है तैसेही यह
अहं त्वं आदिक भासते हैं और जैसे स्वप्नमें सब कर्म होते हैं तैसेही यह
जानों। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! स्वप्नसे जब मनुष्य जाग
है तब स्वप्न के पदार्थ उसे असत्‌रूप हो भासते हैं पर ये तो ज्योंके त्य
रहते हैं और जब देखिये तब ऐसेही हैं; फिर आप जाग्रत् और स्वप्न क
कैसे समान कहते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसा स्वप्न है वैसेह
जाग्रत् है; स्वप्न और जाग्रत् में कुछ भेद नहीं। स्वप्न को भी असत् त
जानता है जब जागता है; जबतक जागा नहीं तबतक असत् न
जानता; तैसेही मनुष्य भी जबतक आत्मपद में नहीं जागता तबत
असत् नहीं भासता और जब आत्मपद में जागता है तब यह जगत्
असत्‌रूप भासता है। हे रामजी! यह जगत् असत्‌रूप है और भ्रम
सत् की नाईं भासता है। जैसे स्वप्न की स्त्री असत्‌रूप होती है औ
उसको पुरुष सत्‌रूप जानता है; तैसेही यह जगत् भी असत्‌रूप सत्
दिखाई देता है। केवल आभासरूप जगत् है और आत्मसत्ता सर्व
सर्वदा अद्वैतरूप है, जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसेही होके भासता है
जैसे डिब्बे में अनेक रत्न होते हैं उसमें जिसको चाहता है लेता
तैसेही सर्वगत चिदाकाश है जहां जैसा चिन्तता है वहां वैसा ह
भासता है। हे रामजी! अब पूर्व का प्रसङ्ग सुनो जब देवी ने विदूर
पर अमृत के समान ज्ञानवचनों की वर्षा की तब उसके हृदय में विवेक
रूप सुन्दर अंकुर उत्पन्न हुआ तब सरस्वती ने कहा; हे राजन्! जो
कुछ कहना था वह मैं तुझसे कहचुकी। अब तुम रणसंग्राम में मृतक हो
यह मैं जानती हूं। अब हम जाती हैं; लीलादि को देखाने के लिये हम
आई थीं सो सब दिखाचुकीं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी
जब इस प्रकार मधुरवाणी से सरस्वती ने कहा तब बुद्धिमान् रा

विदूरथ बोला। हे देवि! बड़े का दर्शन निरर्थक नहीं होता वह तो महाफल देनेवाला है। हे देवि! जो अर्थी मेरे पास आता है उसे मैं निरर्थक नहीं जाने देता और सब का अर्थ पूर्ण करता हूं। तुम तो साक्षात् ईश्वरी हो इसलिये मुझे यह वर दो कि, देह को त्याग कर मैं लोकान्तर में पद्म के शव में प्राप्त होऊं और मेरे मन्त्री और लीला भी मेरे साथ हों। हे देवि! जो भक्त शरण में प्राप्त होता है उसको बड़े लोग त्याग नहीं करते बल्कि उसके सर्व अर्थ सिद्ध करते हैं। सरस्वती बोली हे राजन्! ऐसेही होगा। तू पद्मराजा के शरीर में प्राप्तहोगा और बोधसहित निश्शङ्क होकर राज्य करेगा। हमारी आराधना किसी को व्यर्थ नहीं होती जैसी कामना करके कोई हमको सेवता है तैसेही फल को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यता वर्णनन्नाम त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३० ॥

सरस्वती बोली; हे राजन्! अब तुम रण में मृतक होके पूर्व के पद्मराजा के शरीर में प्राप्त होगे और यह तुम्हारी भार्या और मन्त्री भी तुम्हें वहां प्राप्त होंगे। हे राजन्! तुम ऐसे चले जावोगे जैसे वायु चलीजाती है। जैसे अश्व और खर; मृग और ऊंट हाथी का संग नहीं करते तैसेही तुम्हारा हमारा क्या संग है—इससे हम जाती हैं। इतना कहकर वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब एक पुरुष ने आकर कहा; हे राजन्! जैसे प्रलयकाल में मन्दराचल और अस्ताचल आदिक पर्वत वायु से उड़ते हैं तैसेही शत्रु चले आते हैं और चक्र गदा आदिक शस्त्रों की वर्षा करते हैं। जैसे महाप्रलय में सब स्थान जलसे पूर्ण होजाते हैं तैसेही सेना से सब स्थान पूर्ण हुये हैं और उन्होंने अग्नि भी लगाई है उससे स्थान जलने लगे हैं। वे शब्द करते हैं और नदी के प्रवाह की नाईं बाण चले आते हैं। अग्नि ऐसी लगी है जैसे महाप्रलय की बड़वाग्नि समुद्र को सोखती है। तब दोनों देवियां और राजा और मन्त्री ऊंचे चढ़के और झरोखे में बैठ के क्या देखने लगे कि, जैसे प्रलयकाल में मेघ चले आते हैं तैसेही सेना चली है और जैसे

प्रलय की अग्नि से दिशा पूर्ण होती हैं तैसेही अग्नि की ज्वाला से सब दिशा पूर्ण हुई हैं और उससे ऐसी चिनगारियां उड़ती हैं मानो तारागण गिरते हैं और अङ्गारों की वर्षा होती है उससे जीव जलते हैं सुन्दर स्त्रियां जो नाना प्रकार के भूषणों से पूर्ण थीं वह तृणों की अग्नि में जलती हैं और पुरुषों की देह और वस्त्र भी जलते हैं। सब हाय २ शब्द करते हैं और जलते २ बांधव, पुत्र और स्त्रियों को ढूंढ़ते हैं। हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि, ऐसे स्नेह से जीव बांधे हुये हैं कि मृत्युकाल में भी स्नेह नहीं त्याग सक्के पर सेना के लोग दूसरे लोगों को मार के स्त्रियों को ले जाते हैं। हे रामजी! उस काल रणभूमिका में चहुँओर शब्द छा गया; कोई कहता था हाय पिता; कोई कहता था हाय माता; हाय भाई, हाय पुत्र, हाय स्त्री। घोड़े, गौ, बैल, ऊंट आदिक पशु इकट्ठे मिल गये और अग्नि की ज्वाला वृद्धि होती जाती है और बड़ा क्षोभ उदय हुआ। जैसे महाप्रलय की अग्नि होती है तैसेही सब स्थान अग्नि से पूर्ण हुये और उनमें अनेक जीव और स्थान दग्ध होने लगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाह-वर्णनन्नामैकत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार राजा नगर को देखता था कि, लीला सहेलियों सहित अपने दूसरे स्थान से जहां राजा विदूरथ था आई; उसके महासुन्दर भूषण कुछ टूटे हुये और कुछ शिथिल थे एक सहेली ने कहा; हे राजन्! तुम्हारे अन्तःपुर में जो स्त्रियां थीं उनको शत्रु ले गये हैं पर इस लीलारानी को हम बड़े यत्न से चुराकर ले आई हैं; और दूसरे लोगों को उन शत्रुओं ने बड़ा कष्ट दिया है। तुम्हारे द्वार पर जो सेना बैठी है उसको भी वह चूर्ण करते हैं और समस्त नगर को जलाकर लूटलिया है। हे रामजी! जब इस प्रकार सहेली ने राजा से कहा तब राजा ने सरस्वती जी से कहा; हे देवीजी! यह लीला तुम्हारी शरण आई है और तुम्हारे चरणकमलों की भ्रमरी है; इसकी रक्षा करो और मैं अब युद्ध करने जाता हूं। जब इस प्रकार कह कर राजा क्रो-

संयुक्त युद्ध करने को रण की ओर मत्तहाथी के समान चला तब देवी के साथ जो प्रथम लीला थी उसने क्या देखा कि, उस लीला का अपनीही मूर्त्ति सा सुन्दर आकार है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब होता है तैसेही देखके कहने लगी; हे देवि ! इसमें मैं क्योंकर प्राप्त हुई ? जब मैं प्रथम आई थी तब तो मुझको मन्त्री, टहलुये और अनेक पुरवासी दीखते थे और वह संशय मैंने तुम से निवृत्त कियाथा; फिर अब मैं इस प्रकार कैसे आन स्थित हुई ? यह दृश्यरूप कैसा आदर्श है ।जिसके भीतर बाहर प्रतिबिम्ब होताहै ? यह मन्त्री और टहलुये और मेरा यह स्वरूप क्या है और दृश्यभाव हो क्योंकर भासता है ? मेरा यह संशय दूर करो। देवी बोली; हे लीले ! जैसे चित्त संवित् में स्पन्द फुरताहै तैसेही तत्काल सिद्ध होताहै। जिस अर्थ को चिन्तन करनेवाला चित्तसंवित् शरीर को त्यागता है उसी अर्थ को प्राप्तहोता है और उसी क्षण में देश, काल और पदार्थ की दीर्घता होती है। जैसे स्वप्न सृष्टि फुर आती है तैसेही परलोक सृष्टि भासआती है। हे लीले ! जब तेरा भर्त्ता मृतक होनेलगा था तब तुझ में और मन्त्रियों में इसका बहुत स्नेह था इससे वही रूप सत् होकर अपनी वासना के अनुसार उसे भासा है जैसे सङ्कल्पपुर और स्वप्नसेना भासती है तैसेही यह "देश, काल और पदार्थ" भासे हैं। हे लीले ! जो कोई असत् पदार्थ सत् रूप होकर भासते हैं वह अज्ञानकाल में ही भासते हैं, ज्ञानकाल में सब तुल्य होजाते हैं, न्यूनाधिक कोई नहीं रहता; जाग्रत् में स्वप्न मिथ्या भासता और स्वप्न में जाग्रत् का अभाव हो जाताहै। जाग्रत् शरीर मृतक में नाश होजाता है; मृतकजन्म में असत् होजाताहै और मृतक में जन्म असत् होजाता है। हे लीले ! जब इस प्रकार इनको विचारकर देखिये तो सब अवस्था भ्रान्तिमात्र हैं; वास्तव में कोई सत्य नहीं। हे लीले ! सर्ग से आदि महाप्रलयपर्यन्त कुछ नहीं हुआ। सदा ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; जगत् कल्पना आभासमात्रहै और अज्ञान से भासता है जैसे आकाशमें तरुवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है और वास्तव में कुछभी नहीं है।

जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर लीन होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् उपज कर लीन होतेहैं। इससे 'अहं' 'त्वं' आदिक शब्द भ्रान्तिमात्र हैं। हे लीले ! यह जगत् मृगतृष्णा के जलवत् है। इसमें आस्था करनी अज्ञानता है और भ्रान्ति भी कुछ नहीं। जैसे घनतम में यक्ष भासताहै पर वह यक्ष कोई वस्तु नहीं है; ब्रह्मसत्ता ज्योंकी त्यों है; तैसेही भ्रान्तिभी कुछ वस्तु नहीं। जन्म मृत्यु और मोह सब असत्‌रूप हैं। 'अहं' 'त्वं' आदिक जितने शब्द हैं उनका महाप्रलय में अभाव होजाताहै; उसके पीछे जो शुद्ध शान्तरूप है अबभी वही जान कि, ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता है। हे लीले ! यह जो पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं सोभी संवित्‌रूप हैं क्योंकि; जब चित्त संवित् स्पन्दरूप होता है तब यह जगत् होके भासता है और इसीकारण संवित्‌रूप है। हे लीले ! जीवरूपी समुद्र में जगत्‌रूप तरङ्ग उत्पन्न होते हैं और लीन भी होते हैं पर वास्तव में जलरूप हैं; और कुछ नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता होती है तैसे ... में सर्ग है। जो ज्ञानवान् है उसको सर्वात्मा भासताहै और अज्ञानी को भिन्न २ कल्पना होती है। हे लीले ! जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु भासते हैं पवन में स्पन्द होता है और उसमें सुगन्ध होती है सो सब निराकार हैं; तैसेही जगत् भी आत्मा में निर्वपु है। भाव-अभाव; ग्रहण त्याग; सूक्ष्म-स्थूल; चर-अचर इत्यादिक सब ब्रह्म के अवयव हैं। हे लीले ! यह जगत् जो साकाररूप भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे वृक्ष के अङ्ग पत्र, फल, टासरूप हो भासते हैं; तैसेही ब्रह्मसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है और कुछ नहीं। जैसे चेतन संवित् में जैसे स्पन्द फुरता है तैसेही होकर भासता है पर वह आकाशरूप संवित् ज्योंकी त्यों है उस में और कल्पना भ्रममात्र है। हे लीले ! यह जो जगत् भासता है वह न सत् है और न असत् है। जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है तैसेही आत्मा में जगत् भासता है। जिसको असम्यक् ज्ञान होता है उसको रस्सी में सर्प भासता है, तो वह असत् न हुआ और जिसको सम्यक् बोध होता है उसको सर्प सत् नहीं। ऐसेही अज्ञानी

जगत् असत् नहीं भासता और आत्मज्ञान हुये सत् नहीं भासता क्योंकि; कुछ वस्तु नहीं है । हे लीले ! जैसे जिस के अन्तःकरण में स्पन्द फुरता है उसका वह अनुभव करता है । जब यह जीव मृतक होता है तब इसको एक क्षण में जगत फुर आता है किसी को अपूर्वरूप फुर आता है; किसी को पूर्वरूप फुरआताहै और किसी को पूर्वअपूर्व मिश्रित फुर आता है । इस कारण तेरे भर्त्ताको भी वही मन्त्री, स्त्री और सभा वासना के अनुसार फुरआये हैं क्योंकि; आत्मा सर्वत्ररूप है; जैसा २ इसमें तीव्र स्पन्द फुरता है तैसाही होकर भासता है । हे लीले ! जैसे अपने मनोराज में जो प्रतिभा उदय हो आती है वह सत्रूप हो भासती है; तैसेही यह जो लीला तेरे सन्मुख बैठी है सो यही हुई है और तेरे भर्त्ता की जो तेरे में तीव्रवासना थी इससे उसको तेरा प्रतिबिम्बरूप होकर यह लीला प्राप्तहुई और तेरा सा शील, आचार, कुल, वपु इसको प्रतिबिम्बित हुआहै । हे लीले ! सर्वगत संवित् आकाश है । जैसा २ उसमें फुरना होताहै तैसाही तैसा चिद्रूप आदर्श में प्रतिबिम्ब भासताहै । इस सब जगत्का चेतन दर्पण में प्रतिबिम्ब होताहै; वास्तव में तू और मैं, जगत्, आकाश, भवन, पृथ्वी, राजा आदिक सब आत्मरूप हैं । आत्माही जगत्रूप हो भासता है । जैसे बिल्ली से मज्जा भिन्न नहीं तैसेही यह जगत् ब्रह्मस्वरूप है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्यानेऽग्निदाहवर्णन-
न्नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३२ ॥

देवी बोली, हे लीले ! तेरा भर्त्ता राजा विदूरथ रणमें संग्राम करके शरीर त्यागेगा और उसी अन्तःपुर में प्राप्त होकर राज्य करेगा । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब विदूरथ के पुरवाली लीला ने हाथ जोड़ के देवी को प्रणाम किया और कहा; हे देवि ! भगवति ! मैंने ज्ञप्तिरूप का नित्य पूजन किया और उसने स्वप्न में मुझको दर्शन दिया । जैसे वह ईश्वरी थी तैसेही तुम भी मुझको दृष्टि आती हो । इससे मुझपर कृपा करके मनवाञ्छित फल दो । तब देवी अपने भक्त पर प्रसन्न होकर बोली; हे लीले ! तूने अनन्य

होकर मेरी भक्ति की है और उससे तेरा शरीर भी जीर्ण होगया है; अब मैं तुझपर प्रसन्न हूं जो कुछ तुझको वाञ्छित हो वह वर मांग। लीला बोली; हे भगवति ! जब मेरा भर्त्ता रणमें देह त्यागदे तो मैं इसी शरीर से उसकी भार्या होऊं। देवी बोली तूने भावनासहित भली प्रकार पुण्यादिकों से निर्विघ्न मेरी सेवा की है इससे ऐसाही होगा। तब पूर्व लीला ने कहा हे देवि ! तुम तो सत्यसंकल्प, सत्यकाम और ब्रह्मस्वरूप हो, मुझको उसी शरीर से तुम विदूरथ के गृह में वशिष्ठ ब्राह्मण की सृष्टि में मुझे क्यों न लेगई ? देवी बोली, हे लीले ! मैं किसी का कुछ नहीं करती। सब जीवों के संकल्पमात्र देह हैं और मैं ज्ञप्तिरूप हूं। एक एक जीव के अन्तर चेतनमात्र देवता होकर मैं स्थित हूं; जो जो जीव जैसी २ भावना करता है तैसीही तैसी उसको सिद्धता होती है। हे लीले ! जब तूने मेरा आराधन किया था तब तूने यह प्रार्थना की थी कि, मेरे भर्त्ता का जीव इसी आकाशमण्डपमें रहे और मुझको ज्ञान की भी प्राप्ति हो। उसीके अनुसार मैंने तुझको ज्ञान का उपदेश दिया और तुझको ज्ञान प्राप्तभया। इसी निमित्त तूने पूजन किया था इससे तुझको यही प्राप्त हुआ है कि, देहसहित भर्त्ता के साथ जावेगी। जैसा २ चित्त संवित् में स्पन्द दृढ़ होता है तैसीही तैसी सिद्धता होती है। हे लीले ! जो तपकरते हैं उनकी दृढ़ता से चिदात्माही देवतारूप होके फलको देते हैं। जैसे जैसे संकल्पकी तीव्रता किसीको होतीहै चेतनसंवित् से उसको वैसाही फल होताहै। चित्तसंवित् से भिन्न किसीसे किसी को कदाचित् कुछ फल नहीं प्राप्तहोता। आत्मा सर्वगत और सर्वके अन्तःकरणमें स्थितहै। जैसे उसमें चैत्यताका यत्न होताहै उसको वैसाही शुभाशुभ भाव प्राप्त होता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठउत्पत्तिप्रकरणेसत्यकामसंकल्पवर्णन
न्नामत्रयस्त्रिंशस्सर्गः ॥ ३३ ॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! राजा विदूरथ जब देवीसे कहकर संग्राम में गया तो उसने वहां क्या किया ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जब राजा गृह से निकला तो तारों में चन्द्रमा के सदृश सम्पूर्ण सेना

सुशोभित हुआ और रथपर आरूढ़ होकर सभासहित संग्राम में आया। वह रथ मोती और माणिकों से पूर्ण था और उसमें आठ घोड़े लगे थे जो वायु से भी तीक्ष्ण चलते थे और उसमें पांच ध्वजा थीं। उस रथपर आरूढ़ हो राजा इसभांति संग्राम में आया जैसे सुमेरु पर्वत पङ्खों से समुद्र में जा पड़े। तब जैसे प्रलयकाल में समुद्र इकट्ठे होजाते हैं वैसेही दोनों सेना इकट्ठी हो गईं और बड़ा युद्ध होने लगा और मेघों की नाईं योधों के शब्द होने लगे। जैसे मेघ से बूंदों की वर्षा होती है और अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं तैसेही शस्त्रों की वर्षा होने लगी। जैसे प्रलयकाल की बड़वानल अग्नि होती है तैसेही शस्त्रों से अग्नि निकलती थी और उन शस्त्रों से अनेक जीव मरे। इस प्रकार जब बड़ा युद्ध होने लगा तब विदूरथ की सेना कुछ निर्बल हुई और ऊर्ध्व में जो दोनों लीला देवी की दिव्यदृष्टि से देखती थीं उन्होंने कहा; हे देवि! तुमतो सर्व शक्तिमान् हो और हमारे पर तुम्हारी दया भी है हमारे भर्त्ता की जय क्यों नहीं होती इसका कारण कहो? देवी बोली; हे लीले! विदूरथ के शत्रु राजा सिद्ध ने जयके निमित्त चिरकाल पर्यन्त मेरी पूजा की है और तुम्हारे भर्त्ताने जयके निमित्त पूजा नहीं की मोक्ष के निमित्त की है इससे जीत सिद्धराजा की होगी और तेरे भर्त्ता को मोक्ष की प्राप्ति होगी। हे लीले! जिस २ निमित्त कोई हमारी सेवा करता है हम उसको वैसाही फल देती हैं। इससे राजा सिद्ध विदूरथ को जीतकर राज्य करेगा। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! फिर सेना को सब देखने लगीं और दोनों राजों का परस्पर तीव्र युद्ध होनेलगा दोनों राजों ने ऐसे बाण चलाये मानों दोनों विष्णु हो खड़े हैं। विदूरथ ने एक बाण चलाया उसके सहस्र होगये और उसके आगे जाकर लाख होगये और परस्पर युद्ध करते २ टुकड़े टुकड़े होके गिरपड़े। ऐसे दूरसे दूर बाण चले जाते थे कि, जैसे निर्वाण किया दीपक नहीं भासता। तब राजा सिद्ध ने मोहरूपी अस्त्र चलाया और उसके आनेसे विदूरथ के सिवा सब सेना मोहित हुई। जैसे उन्मत्तता से कुछ सुधि नहीं रहती तैसेही

उनको कुछ सुधि न रही और परस्पर देखतेही रहगये मानों चित्र लिखे हैं। तब राजा विदूरथको भी मोहका आवेशहोनेलगा तो उसने प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया उससे सबका मोह छूटगया और जैसे सूर्य के उदयहुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आतेहैं तैसेही सबके हृदय प्रफुल्लित होगये। तब सिद्ध राजा ने नागास्त्र बाण चलाया उससे अनेक ऐसे नाग निकल आये मानों पर्वत उड़े आते हैं। निदान सब दिशा नागों से पूर्ण होगईं और उनके मुखसे विष और अग्नि की ज्वाला निकली जिससे विदूरथ की सेना ने बहुत कष्ट पाया तब राजा विदूरथ ने गरुड़ास्त्र चलाया उससे अनेक गरुड़ प्रकट हुये और जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही सर्प नष्टहुये और नागों को नष्ट करके गरुड़ भी अन्तर्धान होगये। जैसे संकल्प के त्यागे से संकल्प सृष्टि का अभाव होजाता है तैसेही गरुड़ अन्तर्धान होगये और जैसे स्वप्ने से जागे हुये को स्वप्न नगर का अभाव होजाताहै तैसेही गरुड़ों का अभाव होगया फिर जब कोई बाण सिद्ध चलावे तो विदूरथ उसको नष्टकरे—जैसे सूर्य तमको नाशकरे और उसने बड़ी बाणोंकी वर्षाकी उससे सिद्ध भी क्षोभ को प्राप्त हुआ। तब पिछली लीला ने झरोखे से देख के देवीजी से कहा; हे देवि अब मेरे भर्त्ता की जय होती है। देवी सुन के मुसकराई पर मुख से कुछ न कह हृदय में बिचारा कि, जीव का चित्त बहुत चञ्चल है। ऐसे देखतेही थे कि सूर्य उदय हुये—मानों सूर्य भी युद्ध का कौतुक देखने आये हैं—और सिद्ध ने तमरूप अस्त्र चलाया जिससे सर्वदिशा श्याम होगईं और कुछ भी न भासित होता था—मानों काजल की समष्टिता इकट्ठी हुई है। तब विदूरथ ने सूर्यसा प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया जिससे सर्वतम नष्ट हो गया। जैसे शरद्काल में सब घटा नाश होजाती हैं केवल शुद्ध आकाश ही रहता है; जैसे आत्मज्ञान से लोभादिक का ज्ञानी को अभाव हो जाता और जैसे लोभरूपी कज्जल के निवृत्त हुये ज्ञानवान् की बुद्धि निर्मल होती है तैसे प्रकाश से तम नष्ट होगया और सर्वदिशा निर्मल हुईं। जैसे अगस्त्यमुनि समुद्र को पान कर गये थे तैसेही प्रकाश तम

का पान कर गया। तब सिद्ध ने वैतालरूपी अस्त्र चलाया जिससे विदूरथ की सेना मोहित होगई और उसमें से महाविकराल और परछाहीं समान मूर्ति धारण किये ऐसे श्यामरूप वैताल भासने लगे; जो ग्रहण न किये जावें और जीव के भीतर प्रवेश करजावें और जिनके रहने का स्थान शून्य मन्दिर, कीचड़ और पर्वत हैं शस्त्रसे निकलकर विदूरथ की सेना को दुःख देनेलगे। पिशाच वह होते हैं जिनकी शास्त्रोक्त क्रिया नहीं होती और जो मरके भूत, पिशाच और वैताल होते हैं और राग, द्वेष, तृष्णा और भूख से जलते रहते हैं। उनका कोई बड़ा सरदार विदूरथ के निकट आने लगा तब विदूरथ ने रूपका नामक अस्त्र चलाया और उससे महा भयानक रूप बड़े नख, केश, जिह्वा, उदर और होंठ सहित नग्नरूप भैरव प्रकट होकर वैतालों को भोजन करने और खप्पर में रक्त भरकर पीने और नृत्य करने लगे और सबों को दुःख देने लगे। तब सिद्ध ने क्रोध करके राक्षसरूपी अस्त्र चलाया जिससे एक कोटि भयानकरूप और काले राक्षस पाताल और दिशाओं से निकले जिनकी जिह्वा निकली हुई और ऐसा चमत्कार करते थे जैसे श्याम मेघ में बिजली चमत्कार करती है। वे जिसको देखें उसको मुख में डाल के लेजावें और उनको देख के विदूरथ की सेना बहुत डरगई क्योंकि, जिस के सन्मुख वे हँसके देखें वह भय से मर जावे। तब राजा विदूरथ ने अपनी सेना को कष्टवान् देख विष्णुअस्त्र चलाया जिससे सब राक्षस नष्ट होगये। फिर राजा सिद्ध ने अग्नि नामक अस्त्र चलाया जिससे सम्पूर्ण दिशाओं में अग्नि फैलगई और लोग जलने लगे; तब राजा विदूरथ ने वरुणरूपी बाण चलाया जिससे, जैसे सन्तों के सङ्ग से अज्ञानी के तीनों ताप मिटजाते हैं तैसेही अग्नि का ताप मिट गया। जल से सब स्थान पूर्ण होगये और सिद्ध की बहुत सेना जल में बहगई। तब सिद्ध ने शोषणमय अस्त्र चलाया जिससे सब जल सूखगया पर कहीं २ कीचड़ रहगई इससे उसने फिर तेजोमय बाण चलाया जिससे कीचड़ भी सूखगई और विदूरथकी सेना गरमीसे व्याकुल होकर ऐसी तपने

लगी जैसे मूर्ख का हृदय क्रोध से जलता है। तब विदूरथ ने मेघनामक अस्त्र चलाया जिससे मेघ वर्षने लगे और शीतल मन्द २ वायु चलने लगा। जैसे आत्मा की ओर आये जीव का संसरना घटता जाता है तैसेही विदूरथ की सेना शीतल हुई। फिर सिद्ध ने वायुरूपी अस्त्र चलाया जिससे सूखेपत्र की नाईं विदूरथ फिरने लगा। तब विदूरथ ने पहाड़रूपी अस्त्र चलाया जिससे पहाड़ों की वर्षा होनेलगी और वायु का मार्ग रुकगया और वायु के क्षोभ मिट जाने से सब पदार्थ स्थिरभूत होगये। जैसे संवेदन से रहित चित्त शान्त होता है तैसे ही सब शान्त होगये। जब पहाड़ उड़ २ के सिद्ध की सेना पर पड़े तब सिद्ध ने वज्ररूप अस्त्र चलाया जिससे पर्वत नष्ट हुये। जब इस प्रकार वज्र वर्षे तब विदूरथ ने ब्रह्मअस्त्र चलाया जिससे वज्र नष्ट हुये और ब्रह्म अस्त्र अन्तर्द्धान होगये। हे रामजी! इस प्रकार परस्पर इनका युद्ध होता था। जो अस्त्र सिद्ध चलावे उसको विदूरथ विदारणकरे और जो विदूरथ चलावे उसको सिद्ध विदारण कर डाले। निदान विदूरथ राजा ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि राजा सिद्ध का रथ चूर्ण होगया और घोड़े भी सब चौपट कर डाले। तब सिद्ध राजा ने रथ से उतर ऐसा अस्त्र चलाया कि विदूरथ का रथ और घोड़े नष्ट हुये और दोनों ढाल और तरवार लेकर युद्ध करने लगे। फिर दोनों के रथवाहक और रथ ले आये उसके ऊपर दोनों आरूढ़ होकर युद्ध करने लगे। विदूरथ ने सिद्ध पर एक बरछी चलाई जो उसके हृदय में लगी और रुधिर चला। तब उसको देख लीला ने देवी से कहा; हे देवि! मेरे भर्त्ता की जय हुई है। हे रामजी! इस प्रकार लीला कहती ही थी कि सिद्ध ने बरछी चलाई सो विदूरथ के हृदय में लगी और उसको देख के विदूरथ की लीला शोकवान् होकर कहने लगी; हे देवि! मेरा भर्त्ता मरता है; सिद्ध दुष्ट ने बड़ा कष्ट दिया है। हे रामजी! फिर सिद्ध ने एक ऐसा खड्ग चलाया कि जिससे विदूरथ के पांव कटगये और घोड़े भी काटे गये पर तौभी विदूरथ युद्ध करता रहा। फिर सिद्ध ने विदूरथ के शिरपर खड्ग का प्रहार किया

तो वह मूर्च्छा खाके गिर पड़ा। ऐसे देख के उसके सारथी रथ को गृह में लेआने लगे तो सिद्ध उसके पीछे दौड़ा कि, शीश मैं इसका ले आऊं परन्तु पकड़ न सका। जैसे अग्नि में मच्छर प्रवेश नहीं कर सकता तैसेही देवी के प्रभाव से विदूरथ को वह न पकड़ सका॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विदूरथमरण वर्णनन्नाम चतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब सारथी राजाको गृह में लेआया तो स्त्रियां, मन्त्री, बान्धव और कुटुम्बी रुदन करनेलगे और बड़े शब्द होने लगे। सिद्धकी सेना लूटने लगी और हाथी, घोड़े स्वामी विना फिरते थे फिर ढिंढोरा फिरायागया कि, राजा सिद्ध की जय है। निदान सर्व ओर से शान्ति हुई सिद्धराजा के ऊपर छत्र होनेलगा और सब पृथ्वी का राजा वही हुआ। जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकलके शान्त हुआ तैसेही सर्वओर शान्ति हुई। हे रामजी! जब राजा विदूरथ गृह में आया तब उसकी और दूसरी लीला को देखके प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवि! यह लीला इस शरीर से वहां क्योंकर जा प्राप्तहोगी? यह तो भर्त्ता को ऐसे देखके मृतकरूप होगई है और राजाभी मृत्यु के निकट पड़ाहै केवल कुछ श्वास आते जातेहैं। देवी बोली, हे लीले! यह जितने आरम्भ तू देखती है कि, युद्ध हुआ और नाना प्रकार का जगत् है सो सब भ्रान्तिमात्र है और तेरा भर्त्ता जो पद्म था उसका हृदय जो मण्डपाकाश में था वहीं यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है। पद्म का मण्डपाकाश वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थितहै और वशिष्ठ ब्राह्मण का मण्डपाकाश चिदाकाश के आश्रय स्थित है। हे लीले! यह सम्पूर्ण जगत् वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश की पुर्यष्टक में स्थितहै सो आकाश में ही आकाश स्थित है। किञ्चन है इससे सम्पूर्ण जगत् फुरता है पर वास्तव में किञ्चन भी कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ताही अपने आप में स्थित है। उस आत्मसत्ता में 'अहं' 'त्वं' ज़गत् भ्रमसे भासता है; कुछ उपजा नहीं। हे लीले! उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में नाना प्रकार के स्थान

हैं और उनमें प्राणी आते जाते और नाना व्यवहार करते भासते हैं। जैसे स्वप्नसृष्टि में नाना प्रकारके आरम्भ भासते हैं सो असत्‌रूप हैं तैसेही यह जगत् भी असत्‌रूप है। हे लीले! न यह द्रष्टा है और न आगे दृश्य है; सब भ्रमरूप हैं। द्रष्टा, दर्शन, दृश्य त्रिपुटी पदार्थों में है। जो दृश्य नहीं तो द्रष्टा कैसेहो ? सब असत्‌रूप है। इनसे रहित जो परमपद है वह उदय-अस्त से रहित, नित्य, अज, शुद्ध अविनाशी और अद्वैतरूप अपने आपमें स्थित है। जब उसको जानता है तब दृश्यभ्रम नष्ट होजाता है। हे लीले! दृश्य भ्रम से भासता है। वास्तव में न कुछ उपजा है और न उपजेगा। जितने सुमेरु आदिक पर्वत जाल और पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं जैसे स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष भासती है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं तैसेही इस जगत् को भी जानो। हे लीले! जीव जीव प्रति अपनी सृष्टि है परन्तु उसमें सार कुछ नहीं। जैसे केलेके थम्भे में सार कुछ नहीं निकलता तैसेही इस सृष्टि में विचार किये से सार कुछ नहीं निकलता-चित्तसंवेदन के फुरनेसे भासतीहै। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्म की जो सृष्टि है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है अर्थात् विदूरथ का जगत् पद्म के हृदय में स्थित है वहां तेरा शरीर पड़ाहै और राजा पद्मकाभी शव पड़ा है। हे लीले! तेरे भर्त्ता पद्म की सृष्टि हमको प्रादेशमात्र है। उस प्रादेश मात्र में अंगुष्ठ प्रमाण हृदयकमल है; उसमें तेरे भर्त्ता का जीवाकाश है और उसी में यह जगत् फुरता है सो प्रादेशमात्र भी है और दूर से दूर कोटि योजनों पर्यन्त है। मार्ग में वज्रसार की नाईं तत्त्वों का आवरण है उसको लांघ के तेरे भर्त्ता की सृष्टि है। जहां वह शव पड़ा है उसके पास यह लीला जाय प्राप्त हुई है। लीला ने पूछा; हे देवि! ऐसे मार्ग को लांघके वह क्षण में कैसे प्राप्तहुई और जिस शरीर से जाना था वह शरीर तो यहांही पड़ा है वह किसरूप से वहां गई और वहांके लोगोंने उसको देखके कैसे जाना है सो संक्षेपमात्रसे कहो ? देवी बोली; हे लीले इस लीला के वृत्तान्तकी महिमा ऐसी है जिसके धारे से यह जगत्भ्र

निवृत्त होजाता है। उसे मैं संक्षेपमात्रसे कहती हूं। हे लीले! जो कुछ जगत् भासताहै वह सब भ्रममात्र है। यह भ्रमरूप जगत् पद्म के हृदय में फुरता है। उसमें विदूरथ का जन्म भी भ्रममात्र है; लीलाका प्राप्तहोना भी भ्रम है; संग्रामभी भ्रमरूप है; विदूरथ का मरनाभी भ्रमरूपहै और उसके भ्रमरूप जगत् में तुम हम बैठे हैं। लीला तूभी और राजाभी भ्रम-रूप है और मैं सर्वात्माहूं—मुझ को सदा यही निश्चय रहताहै। हे लीले! जब तेरा भर्त्ता मृतक होनेलगाथा तब तुझसे उसका स्नेह बहुत था इसलिये तू महासुन्दर भूषण पहिनेहुये वासनाके अनुसार उसको प्राप्तहुई। हे लीले! जब जीव मृतक होताहै तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर होता है; फिर वासना से आधिभौतिक होताहै। उसीके अनुसार तेरा भर्त्ता जब मृतकहुआ तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर था; उस से आधिभौतिक होगया और जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्मभी हुआ और मरणभी हुआ। जब तेरा भर्त्ता मृतक हुआ तब उसको अपना जन्म और कुल लीलाका जन्म, माता, पिता और लीला के साथ विवाह भास आये। जैसे तू पद्मको भासी आई थी तैसेही वह सब विदूरथ को भास आये। हे लीले! ब्रह्म सर्वात्माहै; जैसा २ उसमें तीव्र स्पन्द होताहै तैसेही सिद्ध होताहै। मैं ज्ञप्तिरूप चेतन शक्तिहूं मुझको जैसी इच्छा धरके लोग पूजते हैं तैसेही फलकी प्राप्तिहोती है। हे लीले! जैसी २ इच्छा धर के कोई हमको पूजताहै उसको वैसेही सिद्धता प्राप्त होती है। लीलाने जो मुझसे वर मांगाथा कि, मैं विधवा न होऊं और इसी शरीरसे भर्त्ताके निकट जाऊं और मैंने कहाथा कि, ऐसेही होगा इसलिये मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर उसको अपना शरीर भासआया और अपने शरीरसहित जहां तेरे भर्त्ता पद्मका शव पड़ाथा वहां मण्डपमें वैसेही शरीरसे उसके निकट तूभी जा प्राप्तहुईहै, हे लीले! उसको यह निश्चय रहा कि, मैं उसी शरीरसे आई हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्यानेमृत्युमूर्च्छा-नन्तरप्रतिमावर्णनंनामपञ्चत्रिंशतितमस्सर्गः॥ ३५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! जिस प्रकार वह लीला पद्मराजा के मण्डप में जा प्राप्त हुई है वह सुनिये। जब वह लीला मृतक मूर्च्छा को प्राप्त हुई तो उसके अनन्तर उसको पूर्वके शरीर की नाईं वासना के अनुसार अपना शरीर भास आया और उसने जाना कि, मैं देवीका वर पाके उसही शरीर से आई हूं। वह अन्तवाहक शरीर से आकाश में पक्षी की नाईं उड़ती जाती थी तब उसको अपने आगे एक कन्या दृष्टि आई उससे लीलाने कहा; हे देवि ! तू कौन है ? देवी ने कहा मैं ज्ञप्ति देवी की पुत्री हूं और तुझे पहुँचाने के लिये आई हूं। लीलाने कहा; हे देवीजी ! मुझे मेरे भर्त्ता के पास लेचलो। हे रामजी ! तब वह कन्या आगे और लीला पीछे हो दोनों आकाश में उड़ीं और चिरकाल पर्यन्त आकाश में उड़ती गईं। पहले मेघों के स्थान मिले; फिर वायुके स्थान मिले; फिर सूर्य का मण्डल और तारामण्डल मिला; फिर और लोकपालों के स्थान; ब्रह्मा विष्णु और रुद्र के लोक आये। इन सबको लांघ महा वज्रसार की नाईं ब्रह्माण्ड कपाट आया उसको भी लांघ गईं। जैसे कुम्भ में बरफ डालिये तो उसकी शीतलता बाहर प्रकट होती है तैसेही वह ब्रह्माण्ड से बाह्य निकल गईं। उस ब्रह्माण्ड से दशगुणा जल तत्त्व आया; इसी प्रकार वह अग्नि, वायु और आकाशतत्त्व आवरण को भी लांघ गईं। उसके आगे महाचैतन्य आकाश आया उसका अन्त कहीं नहीं—वह आदि, अन्त और मध्य से रहित है। हे रामजी ! जो कोटि कल्प पर्यन्त गरुड़ उड़ते जावें तौभी उसका अन्त न पावें; ऐसे परमाकाश में वह गईं और वहां इनको कोटि ब्रह्माण्ड दृष्टि आये। जैसे वन में अनेक वृक्षों के फल होते हैं और परस्पर नहीं जानते तैसेही वह सृष्टि आपको न जानती थी फिर एक ब्रह्माण्डरूपी फल में दोनों प्रवेश करगईं जैसे फलको मुखमार्ग में प्रवेश करजाती हैं। उसमें फिर उन्हों ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित त्रिलोकी देखी उनके भी लोक लांघ गईं और उनके नीचे और लोकपालों के स्थान लांघे। फिर वे चन्द्रमा, तारा, वायु और मेघमण्डलों को लांघ के उतरीं और राजा के नगर में

उस मण्डपाकाश में जहां पद्मराजा का शव फूलों से ढँपा पड़ा था प्रवेश करगई। इसके अनन्तर वह कुमारी इस भांति अन्तर्द्धान होगई जैसे कोई मायावी पदार्थ हो और अन्तर्द्धान होजावे। लीला पद्मके पास बैठ गई और मनमें विचारने लगी कि; यह मेरा भर्त्ता है। वहां इसने संग्राम किया था, अब शूरमा की गतिको प्राप्त भयाहै और इस परलोकमें आयके सोयाहै। उसके पास मैंभी अपने शरीरसे देवीजी के वरसे आन प्राप्त हुई हूं। मेरे ऐसा अब कोई नहीं और मैं बड़े आनन्द को प्राप्त हुई हूं। हे रामजी! ऐसे विचार के पास एक चमर पड़ा था उसको हाथ में लेके भर्त्ता के हिलाने लगी। जैसे चन्द्रमा किरणों सहित शोभा पाता है तैसेही उसके उठाने से वह चमर शोभा पाने लगा। देवी से लीला ने पूछा; हे देवि! यह राजा तो मृतक होता है। इसके श्वास अब थोड़े से रहे हैं जब यहां से मृतक होके पद्मके शरीर में जावेगा तब राजा के जागे हुये मन्त्री और नौकर कैसे जानेंगे? देवी बोली; हे लीले! तब मन्त्री और नौकर जो होवेंगे उनको द्वैतकलना कुछ न भासेगी कि, यह क्या आश्चर्य हुआ है। इस वृत्तान्त को तू, मैं और पूर्व लीला जानेगी और कोई न जानेगा क्योंकि; इसके संकल्प को और कोई कैसे जाने? लीला ने फिर पूछा; हे देवि! पूर्व लीला जो वहां जाय प्राप्त हुई थी उसका शरीर तो यहां पड़ा है और तुम्हारा उसको वर भी था तो फिर इस देह के साथ वह क्यों न प्राप्त हुई? देवी बोली; हे लीले! छाया भी कदाचित् धूप में गई हो और सच झूठ भी कदाचित् इकट्ठा हुआ हो, यह आदि नीति है। जैसे जैसे आदि नीति हुई है तैसेही होता है—अन्यथा नहीं होता। हे लीले! जो परछाहीं में वैताल कल्पना मिटी तो परछाहीं और वैताल इकट्ठे नहीं होते तैसेही भ्रमरूप जगत का शरीर उस जगत् में नहीं जाता और दूसरे के संकल्प में दूसरा अपने शरीर से नहीं जासक्ता क्योंकि; वह और शरीर है और यह और शरीर है; तैसेही राजा के जगत् दर्पण में लीला के संकल्प का शरीर नहीं प्राप्त हुआ मेरे वर से तब उस देह से प्राप्त होई कि, जब उसको मृत्यु मूर्च्छा प्राप्त भई तब उसको उसका

साही अपना शरीर भी भास आया। उसका शरीर संकल्प में स्थित था सो अपना संकल्प वह साथ ले गई है इससे अपने उसी शरीर से व गई है उसने आपको ऐसे जाना कि मैं वही लीला हूं। हे लीले! आत्म सत्ता सर्वात्मरूप है। जैसी २ भावना उसमें दृढ़ होती है वैसाही वैस रूप होजाताहै। जिसको यह निश्चय हुआ है कि, मैं पञ्चभौतिकरूप उसको ऐसेही दृढ़ होता है कि, मैं उड़ नहीं सक्ता। हे लीले! यह लील तो अविदित वेदन थी अर्थात् अज्ञानसहित थी और उसका आधिभौ तिक भ्रम नहीं निवृत्त हुआ था परन्तु मेरा वर था इस कारण से उसक मृत्यु मूर्च्छा के अनन्तर भास आया कि, मैं देवी के वर से चली जाऊंगी इस वासना की दृढ़ता से वह प्राप्त हुई है। हे लीले! यह जगत् भ्रान्ति मात्र है। जैसे भ्रमसे जेवरी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में भी भ्रमसे जगत् भासता है। सब जगत् आत्मा में आभासरूप है। सर्वका अधि ष्ठान आत्मसत्ता अपनेही अज्ञानसे दूर भासता है। हे लीले! ज्ञानवान् पुरुष सदा शान्तरूप और आत्मानन्द से तृप्तरहते हैं पर अज्ञानी शान्ति कैसे पावें? जैसे जिसको तप चढ़ा होता है उसका अन्तःकरण जलता और तृषा भी बहुत लगती है; तैसेही जिसको अज्ञानरूपीतप चढ़ा हुआ उसका अन्तर राग द्वेषसे जलताहै और विषयों की तृष्णारूपी तृषा भी बहु होती है। जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट हुआ है उसका अन्तर राग द्वेषादि से नहीं जलता और उसकी विषय की तृष्णारूपी तृष्णा भी नष्ट हुई है इति श्रीयोगवाशिष्ठेमण्डपाकाशगमनवर्णनन्नामषट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥३६

देवी बोली; हे लीले! जो पुरुष अविदितवेद है अर्थात् जिस जानने योग्य पद नहीं जाना वह बड़ा पुण्यवान् भी हो तौ भी उसक अन्तवाहकता नहीं प्राप्त होती। अन्तवाहक शरीर भी झूठ है क्योंकि संकल्परूप है। इससे जितना जगत् तुझको भासता है वह कुछ उप नहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपमें स्थित है। फिर लीला पूछा; हे देवि! जो यह सब जगत् संकल्पमात्र है तो भाव और अ रूप पदार्थ कैसे होते हैं? अग्नि उष्णरूप है; पृथ्वी स्थिररूप है,

शीतल है; आकाश की सत्ता है; काल की सत्ता है; कोई स्थूल है; कोई सूक्ष्म पदार्थ है; ग्रहण, त्याग, जन्म, मरण होता है; और मृतक हुआ फिर जन्मता है इत्यादिक सत्ता कैसे भासती हैं? देवी बोली हे लीले! जब महाप्रलय होता है तब सर्व पदार्थ अभाव को प्राप्त होते हैं और काल की सत्ता भी नष्ट होजाती है। उसके पीछे अनन्त चिदाकाश; सब कलनाओं से रहित और बोधमात्र ब्रह्मसत्ता ही रहती है। उस चेतनमात्रसत्ता से जब चित्संवित् चैत्यता होती है तब चेतनसंवित् में आपको तेज अणु जानता है। जैसे स्वप्ने में कोई आपको पक्षीरूप उड़ता देखे तैसे ही देखता है। उससे स्थूलता होती है; वही स्थूलता ब्रह्माण्डरूप होती है उससे तेज अणु आपको ब्रह्मारूप जानता है। फिर ब्रह्मारूप होकर जगत् को रचता है। जैसे २ ब्रह्मा चेतता जाता है तैसे ही तैसे स्थिरतारूप होता जाता है। आदि रचना से जैसा निश्चय धारण किया है कि 'यह ऐसे हो, और 'इतने काल रहे, उसका नाम नीति है। जैसे आदि रचना नियत की है वह ज्यों की त्यों होती है; उसके निवारण करने को किसी की सामर्थ्य नहीं वास्तव में आदि ब्रह्मा भी अकारणरूप है अर्थात् कुछ उपजा नहीं तो जगत् का उपजना मैं कैसे कहूं? हे लीले! कोई स्वरूप नहीं उपजा परन्तु चेतन संवेदन के फुरने में जगत् आकार होके भासता है। उसमें जैसे निश्चय है तैसे ही स्थित है। अग्नि उष्णही है; बर्फ शीतलही है और पृथ्वी स्थितरूप ही है। जैसे उपजे हैं तैसे ही स्थित हैं। हे लीले! जो चेतन है उस पर भी नीति है कि, वह उपदेश का अधिकारी है और जो जड़ है उसमें यही स्वभाव है। जो आदि चित् संवित् में आकाश का फुरना हुआ वह आकाशरूप होकर ही स्थित हुआ। जब काल का स्पन्द फुरता है तब वही चेतन संवित् कालरूप होकर स्थित होता है; जब वायु की चैतन्यता होती है तब वही संवित् वायुरूप होकर स्थित होता है। इसी प्रकार अग्नि, जल, पृथ्वी नानारूप होकर स्थित हुये हैं। स्थूल, सूक्ष्म रूप होकर चेतन संवितही स्थित होरहा है। जैसे स्वप्न में चेतन संवित्

ही पर्वत वृक्षरूप होकर स्थित होता है तैसेही चेतन संवित् जगत् रू
होकर भी स्थित हुआ है। हे लीले! जैसे आदि नीति में पदार्थों
संकल्परूप धरे हैं तैसेही स्थित हैं उसके निवारण करने की किसी
सामर्थ्य नहीं क्योंकि; चेतन का तीव्र अभ्यास किया है। जब
संवित् उलटकर और प्रकार स्पन्द हो तब औरही प्रकार हो; अन्यथ
नहीं होता। हे लीले! यह जगत् सत् नहीं। जैसे संकल्पनगर भ्रमसि
है और जैसे स्वप्नपुरुष और ध्याननगर असत्रूप होता है; तैसेही य
जगत्भी असत्रूप है और अज्ञान से सत् की नाईं भासता है। जै
स्वप्न सृष्टि के आदि में सन्मात्र सत्ता होती है और उस सन्मात्रसत्ता क
आभास किंचित् स्वप्नसृष्टि का कारण होता है; तैसेही यह जाग्रत् जग
के आदि सन्मात्रसत्ता होती है और उससे किञ्चन अकारणरूप य
जगत् होता है। हे लीले! यह जगत् वास्तव में कुछ उपजा नहीं
असत् ही सत् की नाईं होकर भासता है। जैसे स्वप्ने की अग्नि स्वप्ने
असत् ही सत्रूप हो भासती है; तैसेही अज्ञान से यह असत् जगत् स
भासता है और जन्म, मृत्यु और कर्मों का फल होता है सो तू श्रव
कर। हे लीले! बड़ा और छोटा जो होता है सो देश काल और द्र
होता है। एक बाल्यावस्था में मृतक होते हैं और एक यौवन अवस्था
मृतक होते हैं जिसकी देश काल और द्रव्य की क्रिया चेष्टा यथाशा
होती है उसकी क्रिया भी शास्त्र के अनुसार होती है और जो चे
शास्त्र के विरुद्ध होती है तो आयुर्बल भी वैसी ही होती है। एक क्रि
ऐसी है जिससे आयु वृद्धि होती है और एक क्रिया से घटजाती है
इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयु के घटाने बढ़ानेवाली
उन्हों में जीवों के शरीर बड़ी सूक्ष्म अवस्था में सोये हैं। यह अ
नीति रची है। युगों की मर्यादा जैसे है तैसे ही है। एक सौ दिव्य
कलियुग के; दोसौ दिव्य वर्ष द्वापर के; तीनसौ त्रेता के और चार
सतयुग के—यह दिव्य वर्ष हैं। लौकिक वर्षों के अनुसार चार
बत्तीस हजार वर्ष कलियुग है; आठलाख चौंसठ हजार वर्ष द्वापर

हैं; बारह लाख छानबे हजार वर्ष त्रेता है और सत्रहलाख अट्ठाइस हजार वर्ष सतयुग है। इस प्रकार युगों की मर्यादा है जिनमें जीव अपने कर्मों के फलसे आयु भोगते हैं। हे लीले! जो पाप करनेवाले हैं वह मृतक होते हैं और उनको मृत्युकाल में भी बड़ा कष्ट होता है। फिर लीला ने पूछा; हे देवि! मृतक हुये सुख और दुःख कैसे होते हैं और कैसे उन्हें भोगते हैं? देवी बोली, हे लीले! जीव की तीन प्रकार की मृत्यु होती है एक मूर्ख की दूसरी धारणाभ्यासी की और तीसरी ज्ञानवान् की। उनका भिन्न २ वृत्तान्त सुनो। हे लीले! जो धारणाभ्यासी हैं वह मूर्ख भी नहीं और ज्ञानवान् भी नहीं; वह जिस इष्टदेवता की धारणा करते हैं शरीरको त्यागके उसही देवताके लोक को प्राप्त होतेहैं और जो ब्रह्माभ्यासी हैं पर उनको पूर्णदशा नहीं प्राप्तहुई उनका सुखसे शरीर छूटताहै। जैसे सुषुप्ति होजातीहै तैसेही धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है और फिर सुखभोगकर आत्मतत्त्व को प्राप्तहोता है। ज्ञानवान् का शरीर भी सुख से छूटता है; उसको भी यत्न कुछ नहीं होता और उस ज्ञानी के प्राण भी वहांही लीन होते हैं और यह विदेहमुक्त होता है। जब मूर्ख की मृत्यु होने लगती है तो उसे बड़ाकष्ट होता है। मूर्ख वही है जिसकी अज्ञानियों की संगति है; जो शास्त्रों के अनुसार नहीं विचरता और सदा विषयोंकी ओर धावता और पापाचार करता है। ऐसे पुरुष को शरीर त्यागने में बड़ा कष्ट होताहै। हे लीले! जब मनुष्य मृतक होने लगता है तब पदार्थों से आवरण अर्थ बुद्धि जो सम्बन्धी थी उससे वियोग होने लगता है और कण्ठ रुकजाता है; नेत्र फटजाते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी विरूप होजाती है जैसे कमल का फूल कटाहुआ कुम्हिलाजाता है। अङ्ग टूटने लगते हैं और प्राण नाड़ियों से निकलते हैं। जिन अङ्गों से तदात्म सम्बन्ध हुआ था और पदार्थों में बहुत स्नेह था उनसे वियोग होने लगता है इससे बड़ा कष्ट होता है। जैसे किसी को अग्नि के कुण्ड में डालने से कष्ट होता है तैसेही उसको भी कष्ट होता है। सब पदार्थ भ्रम से भासते हैं; पृथ्वी आकाशरूप और आकाश पृथ्वीरूप भासतेहैं।

निदान महाविपर्यय दशा में प्राप्तहोता है और चित्तकी चेतनता घटती जाती है। ज्यों ज्यों चित्त की चेतनता घटती जाती है त्यों त्यों पदार्थ के ज्ञान से अन्धा होजाता है। जैसे सायंकाल में सूर्य अस्त होताहै तो भ्रान्तिमान् नेत्र को दिशाका ज्ञान नहीं रहता तैसेही इसको पदार्थों का ज्ञान नहीं रहता और कष्टका अनुभव करताहै। जैसे आकाश से गिरता है और पाषाण में पीसाजाताहै, जैसे अन्धकूप में गिरता है और कोल्हू में पेराजाताहै जैसे रथ से गिरताहै और गले में फांसी डालके खींचा जाताहै; और जैसे वायु से तरङ्गों में उछलता और बड़वाग्नि में जलता कष्ट पाता है; तैसेही मूर्ख मृत्युकाल में कष्ट पाताहै। जब पुर्यष्टक का वियोग होता है तब मूर्च्छा से जड़सा होजाता है और शरीर अखण्डित पड़ा रहता है। लीला ने पूछा; हे देवि! जब जीव मृतक होनेलगता है तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है? शरीर तो अखण्डित पड़ारहता है कष्ट कैसे पाता है? देवी बोली; हे लीले! जो कुछ जीव ने अहंकारभावको लेकर कर्म कियेहैं वे सब इकट्ठे होतेजाते हैं और समय पाके प्रकट होते हैं जैसे बोया बीज समय पाके फल देता है तैसेही उसको कर्मवासना-सहित फल आन प्रकट होता है। जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है तब शरीर को तादात्म्यता और पदार्थों के स्नेह के वियोग से इस को कष्ट होता है। प्राण अपान की जो कला है और जिसके आश्रय शरीर होता है सो टूटनेलगता है। जिन स्थानों में प्राण फुरते थे उन स्थानों और नाड़ियों से निकल जाते हैं और जिन स्थानों से निकलते हैं वहां फिर प्रवेश नहीं करते। जब नाड़ियां जर्जरीभूत होजाती हैं और सब स्थानों को प्राण त्यागजाते हैं तब यह पुर्यष्टक शरीर को त्याग निर्वाण होताहै। जैसे दीपक निर्वाण होजाता और पत्थर की शिला [illegible] जड़ीभूत होती है तैसेही पुर्यष्टक शरीर को त्यागकर जड़ीभूत हुएक [illegible] होजाती है और प्राण अपान की कला टूटपड़ती है। हे लीले! मरना और [illegible]र जन्म [illegible] भ्रान्ति से भासता है—आत्मा में कोई नहीं। संवित्मात्र में [illegible] जो संवेद फुरता है सो अन्यस्वभाव में सत्ता की नाईं होकर स्थित होता [illegible] है

मरण और जन्म उसमें भासते हैं और जैसी २ वासना होती है उसके अनुसार सुखदुःख का अनुभव करता है। जैसे कोई पुरुष नदी में प्रवेश करता है तो उसमें कहीं बहुत जल और कहीं थोड़ा होता है कहीं बड़े तरङ्ग होते हैं और कहीं सोमजल होताहै पर वे सब सोमजल में होते हैं; तैसेही जैसी वासना होती है उसीके अनुसार सुखदुःख का अनुभव होता है और अध, ऊर्ध्व, मध्य, वासनारूपी गढ़े में गिरतेहैं। शुद्ध चेतनमात्र में कोई कल्पना नहीं अनेक शरीर नष्ट होजाते हैं और चेतनसत्ता ज्योंकी त्यों रहती है। जो चेतनसत्ता भी मृतक हो तो एक के नष्टहुये सब नष्ट होजावें पर ऐसे तो नहीं होता चैतन्यसत्ता सब कुछ सिद्ध होती है; जो वह न हो तो कोई किसी को न जाने। हे लीले! चेतनसत्ता न जन्मती है और न मरती है; वह तो सर्व कल्पना से रहित केवल चिन्मात्र है उसका किसी कालमें कैसे नाशहो? जन्ममरण की कल्पना संवेदन में होती है अचेत चिन्मात्र में कुछ नहींहुआ। हे लीले! मरता वही है जिसके निश्चय में मृत्युका सद्भाव होताहै। जिसके निश्चय में मृत्यु का सद्भाव नहीं वह कैसे मरे? जब जीवको दृश्य का अत्यन्त अभाव हो तब बन्धनों से मुक्तहो वासना ही इसके बन्धनका कारणहै; जब वासना से मुक्तहोता है तब बन्धन कोई नहीं रहता। हे लीले! आत्मविचार से ज्ञान होता है और ज्ञान से दृश्य का अत्यन्ताभाव होता है। जब दृश्य का अत्यन्ताभाव हुआ तब सब वासना नष्ट होजाती हैं यह जगत् उदय हुआ नहीं परन्तु उदयहुये की नाईं वासना से भासता है। इससे वासना का त्यागकरो! जब वासना निवृत्त होगी तब बन्धन कोई न रहेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठउत्पत्तिप्रकरणेमृत्युविचारवर्णनन्नामसप्त त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

लीला ने पूछा; हे देवि! यह जीव मृतक कैसे होताहै और जन्म कैसे लेताहै, मेरे बोध की वृद्धता के निमित्त फिर कहो? देवी बोली; हे लीले! इसके अनन्तर पान अपान की कला के आश्रय यह शरीर रहता है और जब मृतक होने लगताहै तब प्राणवायु अपने स्थान को त्यागताहै और

जिस २ स्थान की नाड़ी से वह निकलता है वह स्थान शिथिल होजाता है। जब पुर्यष्टकशरीर से निकलता है तब प्राणकला टूटपड़ती है और चैतन्यता जड़ीभूत होजातीहै। तब परिवारवाले लोग उसको प्रेत कहते हैं। हे लीले! तब चित्तकी चैतन्यता जड़ीभूत होजातीहै और केवल चैतन्य जो ब्रह्मसता है सो ज्योंकी त्यों रहती है जो स्थावर-जङ्गम सर्व जगत् और आकाश, पहाड़, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थों में व्याप रहा है और उदयअस्त से रहित है। हे लीले! जब मृत्यु मूर्च्छा होती है तब प्राणपवन आकाश में लीन होते हैं। उस प्राण में चैतन्यता होती है और चैतन्यता में वासना होती है। ऐसी जो प्राण और चैतन्यसत्ता है सो वासना को लेकर आकाश में आकाशरूप स्थित होती है। जैसे गन्ध को लेकर आकाश में वायु स्थित होता है तैसेही वासना को लेकर चैतन्यता स्थित होती है। हे लीले! उस अपनी वासना के अनुसार उसे देवस्थान सहित फिर जगत् फुर आता है उससे वह देश, काल क्रिया और द्रव्य करके देखता है। मृत्यु भी दो प्रकार की है एक पापात्मा की और दूसरी पुण्यात्मा की। पापी तीन प्रकार के हैं एक महापापी; दूसरे मध्यमपापी और तीसरे अल्पपापी। ऐसेही पुण्यवान् भी तीन प्रकार के हैं-एक महापुण्यवान्; दूसरा मध्यम पुण्यवान् है और तीसरा अल्प पुण्यवान्। प्रथम पापियों की मृत्यु सुनिये। जब बड़ा पापी मृतक होता है तब वह जर्जरीभूत हो जाता है और घन पाषाण की नाईं सहस्रों वर्षों तक मूर्च्छा में पड़ा रहता है। कितने ऐसे जीव हैं जिनको उस मूर्च्छा में भी दुःख होता है। जैसे बाहर इन्द्रियों को दुःख होता है तब उसके रागद्वेष को लेकर चित्त की वृत्ति हृदय में स्थित होती है तैसेही पापवासना का दुःख हृदय में होता है और भीतर से जलता है। इस प्रकार जड़ीभूत मूर्च्छा में रहता है। इसके अनन्तर उसको फिर चैतन्यता फुरआती है तब अपने साथ शरीर देखता है। फिर नरक भोगताहै और चिरकाल पर्यन्त नरक भोगके बहुतेरे जन्म पशु आदिकों के लेता है और महानीच और दरिद्री निर्धनों के गृहमें जन्म लेकर वहां भी दुःखों से

तम रहता है । हे लीले! यह महापापियों की मृत्यु तुझसे कही। अब मध्यम पापी की मृत्यु सुन। जब मध्यमपापी की मृत्यु होती है तब वह भी वृक्ष की नाईं मूर्च्छा से जड़ीभूत होजाता है और भीतर दुःख से जलता है। जड़ीभूत से थोड़े काल में फिर चेतनता पाता है। फिर नरक भुगतता है और नरक भोग के तिर्यगादिक योनि भुगतता है। तिसके पीछे वासना के अनुसार मनुष्य शरीर पाता है। अब अल्पपापी की मृत्यु सुनो। हे लीले! जब अल्पपापी मृतक होता है तब मूर्च्छित हो जाता है और कुछकाल में उसको चेतनता फुरती है फिर नरक जाकर भुगतता है; फिर कर्मों के अनुसार और जन्मों को भुगतता है और फिर मनुष्य शरीर धारता है। हे लीले! यह पापात्मा की मृत्यु कही अब धर्मात्मा की मृत्यु सुन। जो महाधर्मात्मा है वह जब मृतक होता है तब उसके निमित्त विमान आते हैं उन पर आरूढ़ कराके उसे स्वर्ग में ले जाते हैं। जिस इष्टदेवता की वासना उसके हृदय में होती है उसके लोक में उसे लेजाते हैं और वहां वह कर्मानुसार स्वर्गसुख भुगतता है। स्वर्गसुख जो गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरा आदिक भोग हैं तिनको भोग के फिर गिरता है और किसी फल में स्थित होता है। जब उस फल को मनुष्य भोजन करता है तब वीर्य में जा स्थित होता है और उस वीर्य से माता के गर्भ में स्थित होता है। वहां से वासना के अनुसार फिर जन्म लेता है; जो भोग की कामना होती है तो श्रीमान् धर्मात्मा के गृह में जन्म होता है और जो भोग से निष्काम होता है तब सन्तजनों के गृह में जन्म लेता है। अब मध्यम धर्मात्मा की मृत्यु सुनो। हे लीले! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है उसको शीघ्रही चैतन्यता फुर आती है और वह स्वर्ग में जाकर अपने पुण्य के अनुसार स्वर्ग भोग के फिर गिर कर किसी फल में स्थित होता है। जब फिर उस फल को कोई पुरुष भोजन करता है तब पिता के वीर्य द्वारा माता के गर्भ में आता है और वासना के अनुसार जन्म लेता है। अल्पधर्मात्मा जब मृतक होता है तब उसको यह फुरआता है कि, मैं मृतक हुआ हूँ; मेरे बान्धवों और

पुत्रों ने मेरी पिण्डक्रिया की है और मैं पितरलोक को चला जाता हूं।
वहां वह पितरलोक का अनुभव करता है और वहां के सुख भोग के
गिरता है तब धान्य में स्थित होता है। जब उस धान्य को पुरुष भोजन
करता है तब वीर्यरूप होके स्थित होता है। फिर उस वीर्यद्वारा माता
के गर्भ में आता है और वासना के अनुसार जन्म लेता है। हे लीले
जब पापी मृतक होता है तब उसको महाक्रूर मार्ग भासता है और उस
मार्ग पर चलता है जिसमें चरणों में कण्टक चुभते हैं; शीश पर सूर्य
तपता है और धूप से शरीर कष्टवान् होता है। जो पुण्यवान् होता है
उसको सुन्दर छाया का अनुभव होता है और बावली और सुन्दर स्थानों
के मार्ग से यमदूत उसको धर्मराज के पास ले जाते हैं। धर्मराज चित्र
गुप्त से पूछते हैं तो चित्रगुप्त पुण्यवानों के पुण्य और पापियों के पाप
प्रकट करते हैं और वह कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरक को भुगतता
है फिर वहां से गिर के धान्य अथवा और किसी फल में आन स्थित
होता है। जब उस अन्न को पुरुष भोजन करता है तब वह स्वप्नवासना
को लेकर वीर्य में आन स्थित होता है। जब पुरुष का स्त्री के साथ
संयोग होता है तब वीर्यद्वारा माता के गर्भ में आता है। वहां भी अपने
कर्मों के अनुसार माता के गर्भ को प्राप्त होता है और उस माता के गर्भ
में इसको अनेक जन्मों का स्मरण होता है। फिर बाहर निकल के
महामूढ़ बालअवस्था धारण करता है; तब उसे पछिली स्मृति विस्मरण
होजाती है और परमार्थ की कुछ सुध नहीं होती केवल क्रीड़ा में मग्न
होता है। उससे आगे यौवन अवस्था आती है तो कामादिक विकारों से
अन्धा होजाताहै और कुछ विचार नहीं रहता। फिर वृद्ध अवस्था आतीहै तब
शरीर महाकृश होजाता है बहुत रोग उपजते हैं और शरीर कुरूप होजाता
है। जैसे कमलों पर बरफ पड़ती और वे कुम्हिला जाते हैं तैसेही वृद्ध
अवस्था में शरीर कुम्हिला जाता है और सब शक्ति घटकर तृष्णा बढ़
जाती है। फिर कष्टवान् होकर मृतक होता है तब वासना के अनुसार
स्वर्ग नरक के भोगों को प्राप्त होता है। इस प्रकार संसारचक्र में वासना

के अनुसार घटीयन्त्र की नाईं भ्रमता है-स्थिर कदाचित् नहीं होता। हे लीले! इस प्रकार जीव आत्मपद के प्रमाद से जन्म मरण पाता है और फिर माता के गर्भ में आके बाल, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्था को प्राप्त होता है। फिर वासना के अनुसार परलोक देखना है और जाग्रत् स्वप्ने की नाईं भ्रम से फिर देखता है। जैसे स्वप्ने में स्वप्नान्तर देखता है तैसेही अपनी कल्पना से जगत्भ्रम फुरता है। स्वरूप में किसी को कुछ भ्रम नहीं;आकाशरूप आकाश में स्थितहै भ्रमसे विकार भासते हैं लीला ने पूछा; हे देवी! परब्रह्म में यह जगत् भ्रम से कैसे हुआ है? मेरे बोध की दृढ़ता के निमित्त कहो। देवी बोली; हे लीले! सब आत्मरूप हैं; पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी, आकाशादिक स्थावर-जङ्गम जो कुछ जगत् है वह सब परमार्थ घन है और परमार्थसत्ता ही सर्व आत्मा है। हे लीले! उस सत्ता संवित् आकाश में जब संवेदन आभास फुरता है तब जगत्भ्रम भासता है। आदि संवेदन जो संवित्मात्र में हुआ है सो ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआ है और जैसे वह चेतता गया है उसी प्रकार स्थावर जङ्गम जगत् होकर स्थित हुआ है। हे लीले! शरीर के भीतर नाड़ी है नाड़ी में छिद्र हैं और उन छिद्रों में स्पन्दरूप होकर प्राण विचरता है उसको जीव कहते हैं। जब वह जीव निकल जाता है तब शरीर मृतक होता है। हे लीले! जैसे २ आदि संवित्मात्र में संवेदन फुरा है तैसेही तैसे अब तक स्थित है। जब उसने चेता कि, मैं जड़ होऊं तब वह जड़रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित भये और जब चेतन की भावना की तब चेतनरूप होकर स्थित हुआ। हे लीले! जिसमें प्राणक्रिया होती है वह जङ्गमरूप बोलते चलते हैं और जिसमें प्राण स्पन्दाक्रिया नहीं पाई जाती सो स्थावररूपहैं पर आत्मसत्तामें दोनों तुल्यहैं; जैसे जंगम हैं तैसेही स्थावरहैं और दोनों चैतन्य हैं जैसे जङ्गम में चैतन्यता है तैसेही स्थावर में चैतन्यता है। यदि तू कहे कि, स्थावर में चेतनता क्यों नहीं भासती तो उसका उत्तर यह है कि; जैसे उत्तर दिशा के समुद्रवाले मनुष्य की बोली को दक्षिण दिशाके

समुद्रवाले नहीं जानते और दक्षिणदिशा के समुद्रवाले की बोली उत्तर दिशाके समुद्रवाले नहीं समझसक्ते; तैसेही स्थावरों की बोली जङ्गम नहीं समझसक्के और जङ्गमों की बोली स्थावर नहीं समझसक्ते परन्तु परस्पर अपनी२ जातिमें सबचेतनहैं–उसकाज्ञान उसको होताहै और उसकाज्ञान उसको होताहै। जैसे एक कूपका दर्दुर और कूपके दर्दुरको नहीं जानता और और कूपका दर्दुर उस कूप के दर्दुर को नहीं जानता तैसेही जङ्गमों की बोली स्थावर नहीं जानसक्के। और स्थावरों की बोली जङ्गम नहीं जानसक्के। हे लीले! जो आदि संवित्में संवेदन फुराहै वैसाही रूप होकर महाप्रलयपर्यन्त स्थितहै–अन्यथा नहीं होता। जब उस संवित्में अवकाश का संवेदन फुरताहै तब आकाशरूप होकर स्थित होताहै; जब स्पन्दताको चेतता है तब वायुरूप होकर स्थित होताहै; जब उष्णता को चेतताहै तब अग्निरूप होकर स्थित होताहै; जब द्रवताको चेतताहै तब जलरूप होकर स्थित होताहै और जब गन्ध की चिन्तवना करता है तब पृथ्वीरूप होकर स्थित होता है इसीप्रकार जिस जिसको चेतताहै सो सो पदार्थ प्रकट होते हैं। आत्मसत्ता में सब प्रतिबिम्बित है। वास्तव में न कोई स्थावर है न जङ्गम है केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थितहै और उसमें भ्रम से जगत् भासते हैं और दूसरी कुछ वस्तु नहीं। हे लीले! अबराजा विदूरथ को देख कि, मृतक होताहै? लीला ने पूछा; हे देवी! यह राजा पद्म शव शरीरवाले मण्डप में किस मार्ग से जावेगा और इसके पीछे हम किस मार्ग से जावेंगे? देवी बोली; हे लीले! यह अपनी वासनाके अनुसार मनुष्यमार्ग के राह जावेगा। है तो यह चिदाकाशरूप परन्तु अज्ञानके वश इसको दूर स्थान भासेगा और हम भी इसही के मार्ग इसके संकल्प के साथ अपना संकल्प मिलाके जावेंगे। जबतक संकल्प से संकल्प नहीं मिलता तबतक एकत्वभाव नहीं होता। इतना कह वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसप्रकार देवीजी ने लीला को परम बोध का कारण उपदेश किया कि, इतने में राजा जर्जरीभूत होनेलगा॥

इति श्रीयो॰उ॰लीलोपाख्यानेसंसारभ्रम व॰नामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥३८

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! इस प्रकार देवी और लीला देखती थीं कि, राजाके नेत्र फट गये और शरीर निरस हो गिरपड़ा और श्वास नासिका के मार्ग से निकल गया। तब जैसे रस से रहित पत्र और कटा हुआ कमल विरस होजता है तैसेही राजा का शरीर निरस होगया; जो कुछ चित्त की चैतन्यता थी वह जर्जरीभूत होगई; मृत्यु मूर्च्छारूपी अन्धकूपमें जा पड़ा और चेतना और वासनासंयुक्त प्राण आकाश में जा स्थित हुये। प्राणों में जो चेतना थी और चेतना में वासना थी उस चेतना और वासना सहित प्राण जैसे वायु गन्ध को लेकर स्थित होता है आकाश में जा स्थित हुआ। हे रामजी ! राजा की पुर्यष्टक तो जर्जरीभूत होगई परन्तु दोनों देवियां उसको दिव्य दृष्टि से ऐसे देखती थीं जैसे भ्रमरी गन्ध को देखती है। राजा एक मुहूर्त्तपर्यन्त तो मूर्च्छा में रहा फिर उसको चेतनता फुरआई और अपने साथ शरीर देखनेलगा उसने जाना कि मेरे बान्धवों ने मेरी पिण्डक्रिया की है उससे मेरा शरीर भयाहै और धर्मराज के स्थान को मुझे दूत लेचले हैं हे रामजी ! इसप्रकार अनुभव करता वह धर्मराज के स्थानको चला और उसके पीछे देवी, जैसे वायुके पीछे गन्ध चलीजाती है, चली जैसे गन्ध के पीछे भ्रमरी जाती हैं। तैसेही राजा विदूरथ धर्मराज के पास पहुँच गया। धर्मराज ने चित्रगुप्त से कहा कि, इसके कर्म विचार के कहो ! चित्रगुप्त ने कहा; हे भगवन् ! इसने कोई अपकर्म नहीं किया बल्कि बड़े २ पुण्य किये हैं और भगवती सरस्वती का इसको वर है। इसका शव फूलों से ढपा हुआ है; उस शरीर में यह भगवती के वर से जाकर प्रवेश करेगा। इससे अब और कुछ कहना पूछना नहीं; यह तो देवीजी के वर से बँधा है। हे रामजी ! ऐसे कहकर यमराज ने राजा को अपने स्थान से चलादिया तब राजा आगे चले और उसके पीछे दोनों देवियां चलीं। राजा को यह देवियां देखती थीं पर राजा इनको न देख सकता था। तब तीनों उस ब्रह्माण्ड को लांघ जिसका राज्य विदूरथ ने किया था दूसरे ब्रह्माण्ड में आये और उसको भी लांघ के पद्मराजा के देश में आकर उसके मन्दिर में जहां फूल से ढपा

शव था आये। जैसे मेघ से वायु आन मिलता है तैसेही एक क्षण में देवियां आन मिलीं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! वह राजा तो मृतक हुआ था; मृतक होकर उसने उस मार्ग को कैसे पहिचाना? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! वह विदूरथ जो मृतक हुआ था उसकी वासना नष्ट न हुई थी। अपनी उस वासना से यह अपने स्थानको प्राप्त हुआ। हे रामजी! चिद् अणु जीव के उदर में भ्रान्तिमात्र जगत् है—जैसे वट के बीज में अनन्त वट वृक्ष होते हैं तैसेही चिद् अणुमें अनन्त जगत् हैं—जो अपने भीतर स्थित है उसको क्यों न देखे? जैसे जीव अपने जीवत्व का अंकुर देखता है तैसेही स्वाभाविक चिद् अणु त्रिलोकी को देखता है। जैसे कोई पुरुष किसी स्थान में धन दबारक्खे और आप दूरदेश में जावे तो धन की वासना से देखता है तैसेही वासना की दृढ़ता से विदूरथ ने देखा और जैसे कोई जीव स्वप्नभ्रम से किसी बड़े धनवान् के गृह में जा उपजता है और भ्रम के शान्त हुये उसका अभाव देखता है तैसेही उसको अनुभव हुआ। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जिसकी वासना पिण्डदान क्रिया की नहीं होती वह मृतक हुये अपने साथ कैसे देह को देखता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पुरुष जो माता पिताके पिण्ड करता है उनकी वासना हृदय में होती है और वही फलरूप होकर भासती है कि, मेरा शरीर है; मेरे पीछे मेरे बान्धवों ने पिण्डदान किया है उससे मेरा शरीर हुआ है। हे रामजी! सदेह हो अथवा विदेह अपनी वासनाही के अनुसार अनुभव होता है—भावना से भिन्न अनुभव नहीं होता। चित्तमय पुरुष है; चित्त में जो पिण्ड की वासना दृढ़ होती है तो आपको पिण्डवान् ही जानता है और भावना के वश से असत् भी सत् होजाता है। इससे पदार्थों का कारण भावना ही है; कारण विना कार्यका उदय नहीं होता। महाप्रलयपर्यन्त कारण विना कार्य होता नहीं देखा और सुना भी नहीं। इससे कहा है कि जैसी वासना होती है तैसा ही अनुभव होता है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जिस पुरुष को अपने पिण्डदान आदिक कर्मों की वासना

नहीं वह जब मृतक होता है तब क्या प्रेतवासना संयुक्त होता है कि, मैं पापी और प्रेत हूं? अथवा पीछे उसके बान्धव जो उसके निमित्त क्रिया कर्म करते हैं और जो बान्धवों ने पिण्डक्रिया की हैं उससे उसे यह भावना होती है कि, मेरा शरीर हुआ है वह क्रिया उसको प्राप्त होती है वा नहीं होती? अथवा उसके बान्धवों के मन में यह दृढ़ भावना हुई कि इसको सब क्रिया प्राप्तहोगी और वह अपने मन में धन अथवा पुत्रादिकों के अभाव से निराश है और किसी प्रभाव से किसीने पिण्डादिक क्रिया की वह उसको प्राप्त होती है अथवा नहीं होती? आप तो कहते हैं कि, भावना के वश से असत् भी सत् होजाता है यह क्या है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! भावना; देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पांचोंसे होती है। जैसी भावना होती है वैसीही सिद्धि होती है; जिसकी कर्त्तव्यता बली होती है उसकी जय होती है। पुत्र, दारादिक बान्धव सब वासनारूप हैं। जो धर्म की वासना होती है तो बुद्धि में प्रसन्नता उपजआतीहै और पुण्यकर्मों से पूर्व भावना नष्टहो शुभगति को प्राप्त होती है। जो अतिबली वासना होती है। उसकी जय होती है। इससे अपने कल्याणके निमित्त शुभ का अभ्यास किया चाहिये। रामजी बोले; हे भगवन्! जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पांचोंसे वासना होती है तो महाप्रलय सर्ग की आदि में देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं होती तो जहां पांचो कारण नहीं होते और उनकी वासना भी नहीं होती उस अद्वैत से जगद्भ्रम फिर कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! महाप्रलय और सर्ग की आदि में देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं रहती और निमित्तकारण और समवायकारण का अभाव होता है। चिदात्म में जगत् कुछ उपजा नहीं और है भी नहीं; वास्तव में दृश्य का अत्यन्त अभाव है और जो कुछ भासताहै वह ब्रह्म का किञ्चन है। वह ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थितहै। ऐसेही अनेक युक्तियों से मैं तुमसे कहूंगा अब तुम पूर्व कथा सुनो। हे रामजी! जब वे दोनों देवियां

उस मन्दिर में पहुँचीं तो क्या देखा कि, फूलों से सुन्दर शीतल स्थान बनेहुये हैं—जैसे वसन्तऋतु में वनभूमिका होतीहै—और प्रातःकाल का समय है; सुवर्ण के मङ्गलरूपी कुम्भ जलसे भरे रक्खे हैं; दीपकोंकी प्रभा मिटगई है; किवाड़ चढ़ेहुये हैं, मन्दिरों में लोग सोयेहुये मनुष्यों के श्वास आतेजाते हैं और महासुन्दर झरोखे हैं। ऐसे बनेहुये स्थान शोभा देते हैं जैसे सम्पूर्ण कला से चन्द्रमा शोभता है और जैसे इन्द्र के स्थान सुन्दर हैं। जिस सुन्दर कमलसे ब्रह्माजी उपजे हैं तैसेही वे कमल सुन्दरहैं।
इति श्रीयो०उ०मरणानंतरावस्थावर्णन्नामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ३९।

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब दोनों देवियों ने उस शव के पास विदूरथ की लीला को देखा कि, वह उसकी मृत्यु से पहले वहां पहुँची है और पूर्वकेसे वस्त्र भूषण पहिरे हुये; पूर्व कासा आचार किये; पूर्वकीसी सुन्दर है और पूर्वकासा ही उसका शरीर है। एवम् उसका सुन्दर मुख चन्द्रमा की नाईं प्रकाशता है और महासुन्दर फूलों की भूमि पर बैठी है। निदान लक्ष्मी के समान लीला और विष्णु के समान राजा को देखा पर जैसे दिन के समय चन्द्रमा की प्रभा मध्यम होती है तैसे उन्होंने लीला को कुछ चिन्तासहित राजा की बाईं ओर एक हाथ चिबुक पर रक्खे और दूसरे हाथ से राजा को चमर करती देखा। लीला ने इनको न देखा क्योंकि; ये दोनों प्रबुध आत्मा और सत्संकल्प थीं और लीला इनके समान प्रबुध न थी रामजी ने पूछा; हे भगवन्! उस मण्डप में पूर्वलीला जो देह को स्थापन कर और ध्यान में विदूरथ की सृष्टि देखने को सरस्वती के साथ गई थी उस देह का आपने कुछ वर्णन न किया कि उसकी क्या दशा हुई और कहां गई? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! लीला कहां थी, लीला का शरीर कहां था और उसकी सत्ता कहां थी? वह तो अरुन्धती के मन में लीला के शरीर को भ्रान्तिप्रतिभा हुई थी। जैसे मरुस्थल में जल की प्रतिभा होती है तैसेही लीला के शरीर की प्रतिभा उसे हुई थी। हे रामजी! यह आधिभौतिक अज्ञान से भासता है और बोध से निवृत्त हो जाता है। जब उस लीला को बोध में परिणाम हुआ

तब उसका आधिभौतिक शरीर निवृत्त हो गया—जैसे सूर्य के तेज से बरफ का पुतला गल जाता है—और अन्तवाहकता उदय हुई। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब आकाशरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासता है तैसेही अन्तवाहकता में आधिभौतिकता भ्रम से भासती है। आदि शरीर अन्तवाहक है अर्थात् संकल्पमात्र है उसमें दृढ़ भावना होगई उससे पृथ्वी आदि तत्त्वों का शरीर भासने लगा। वास्तव में न कोई भूत आदिक तत्त्व है और न कोई तत्त्वों का शरीर है। उसका शब शशे की शृङ्गों की नाईं असत् है। हे रामजी! आत्मा में अज्ञान से आधिभौतिक भासे हैं। जब आत्मा का बोध होता है तब आधिभौतिक नष्ट हो जाते हैं। जैसे किसी पुरुष ने स्वप्न में आपको हरिण देखा और जब जाग उठा तब हरिण का शरीर दृष्टि नहीं आया तैसेही अज्ञान से आधिभौतिकता दृष्टि आई है और आत्मबोध हुये आधिभौतिकता दृष्टि नहीं आती। जब सत्य का ज्ञान उदय होता तब असत् का ज्ञान लीन हो जाता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के ज्ञान से सर्प का ज्ञान लीन होता है तैसे ही सम्पूर्ण जगत् मन से उदय हुआ है और अज्ञान से आधिभौतिकता को प्राप्त हुआ है। जैसे स्वप्न में जगत् आधिभौतिक हो भासता है और जागे से स्वप्न शरीर नहीं भासता तैसेही आत्मज्ञान से आधिभौतिकता निवृत्त हो जाती है और अन्तवाहक शरीर भासता है। रामजी बोले; हे भगवन्! योगीश्वर जो अन्तवाहक शरीर से ब्रह्मलोक पर्यन्त आते जाते हैं उनके शरीर कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अन्तवाहक शरीर ऐसे हैं जैसे कोई पुरुष स्वप्न में हो उसको पूर्व के जाग्रत् शरीर का स्मरण हो तब स्वप्न शरीर दृष्टि भी आता है पर उसको आकाशरूप जानता है; तैसेही आधिभौतिकता बोध से नष्ट हो जाती है। जैसे शरत्काल का मेघ देखनेमात्र होता है तैसेही ज्ञानवान् योगीश्वरों का शरीर देखनेमात्र होता है और अदृश्यरूप है; और को शरीर भासता है पर उसको आकाशरूप ही भासता है। हे रामजी! यह देहादिक आत्मा में भ्रान्ति

से दृष्टि आते हैं और आत्मज्ञान से निवृत्त हो जाते हैं। जैसे रस्सी
अज्ञान से सर्प भासता है; जब रस्सी का सम्यक्ज्ञान होता है तब स
भाव उसका नहीं रहता तैसेही तत्त्वबोध के हुये देह कहां हो और दे
की सत्ता कहां रहे दोनों का अभाव ही हो केवल अद्वैत ब्रह्मसत्ता भास
है। रामजी बोले; हे भगवन्! अन्तवाहक से आधिभौतिकरूप होता
वा आधिभौतिक से अन्तवाहकरूप होताहै यह मुझ से कहिये? वशिष्ठज
बोले; हे रामजी! मैंने तुमको बहुत बेर कहा है तुम मेरे कहे को धार
क्यों नहीं करते? मैंने आगे भी कहा है कि, जो कुछ जीव हैं वह स
अन्तवाहक हैं आधिभौतिक कोई नहीं। आदि में जो शुद्ध संवित्मात्र
संवेदन आभास उठा है उससे इस जीव का संकल्परूप अन्तवाहक आ
शरीर हुआ। जब उसमें दृढ़ अभ्यास होता है तब वह संकल्परूपी शरी
आधिभौतिक होकर भासने लगता है। जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफरू
हो जाताहै तैसेही प्रमादसे संकल्पके अभ्याससे आधिभौतिकरूप होजात
है। उस आधिभौतिक के तीन लक्षण होते हैं भारी शरीर होता है; कठो
भाव होता है और शिथिल होता है उससे अहं प्रतीत होती है इस कार
आधिभौतिक कहाताहै। जब तत्त्वका बोध होताहै तब आधिभौतिक
आकाशरूप हो जाती है। जैसे स्वप्ने में देह से आदि लेकर जगत ब
स्पष्टरूप भासता है और जब स्वप्ने में स्वप्नका ज्ञान होताहै कि, यह स्व
है तब वह स्वप्ने का शरीर लघु हो जाताहै अर्थात् संकल्परूप होजाता
तैसेही परमात्मा के बोध से आधिभौतिक शरीर निवृत्त हो जाताहै अ
संकल्परूप भासता है। हे रामजी! आधिभौतिकता अबोध के अभ्यास
प्राप्त होती है। जब उलटके उसीही अभ्यासका बोधहो तब आधिभौतिक
नष्ट होजावे और अन्तवाहकता उदय हो। हे रामजी! जीव एक शरीर
त्याग के दूसरेको अङ्गीकार करताहै—जैसे स्वप्ने से स्वप्नान्तर प्राप्त होता
और जब बोध होताहै तब शरीर और कुछ वस्तु नहीं वही आधिभौति
शरीर शान्त हो जाताहै जैसे स्वप्नेसे जागके स्वप्नशरीर शान्त होजात
हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब भ्रममात्र है अज्ञा

सतकी नाईं भासताहै। जब आत्मबोध होगा तब सब आकाशरूप होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्ननिरूपणं नाम चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब वह दोनों देवियां अन्तःपुर में गईं तब प्रबुधलीला कहनेलगी; हे देवीजी! समाधि में लगे मुझको कितना काल व्यतीत हुआ? मैं ध्यान से भूपाल की सृष्टि में गई थी और मेरा शरीर यहां पड़ा था वह कहां गया? देवी बोली; हे लीले! तुझको समाधि में लगे इकतीस दिन व्यतीत हुये हैं। जब तू ध्यान में लगी तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथ की सृष्टि में विचरता फिरा जब इस शरीर की वासना तेरी निवृत्त होगई तब जैसे रससे रहित पत्र सूखजाता है तैसेही तेरा शरीर निर्जीव होकर गिरपड़ा और जैसे काष्ठ पाषाण होताहै तैसेही हो बरफ़ की नाईं शीतल होगया। तब देखके सबने बिचार किया कि, यह मरगई इसको जलाइये और चन्दन और घृत से लपेट के जला दिया। बान्धवजन रुदन करने लगे और पुत्रोंने पिण्डक्रिया की। हे लीले! जो तू ध्यान से उतरती तो तुझको देखके लोग आश्चर्यमान होते और अबभी देखके सब आश्चर्यमान होवेंगे कि, रानी परलोक से फिर आई है। हे लीले! अब तुझको बोध उदय हुआ है इससे शरीर की वासना नष्ट होगई और अन्तवाहक में दृढ़ निश्चय हुआ इस कारण वह शरीर जीवितहुआ। अब जो उसके समान तेरा शरीर हुआ है वह इस कारण है कि, तुझको लीला की वासना में बोध हुआ है कि, मैं लीला हूं इस कारण तेरा शरीर तैसाही रहा। यह लीला शरीर की तेरी वासना नष्ट न हुई थी इस कारण तू निर्वाण न हुई नहीं तो विदेहमुक्त हो जाती। अब तू सत्संकल्प हुई है जैसे तेरी इच्छा होगी तैसेही अनुभव होगा। हे लीले! जैसी वासना जिसको होती है उसके अनुसार उसको प्राप्त होता है। जैसे बालक को अन्धकार में जैसी भावना होती है तैसाही भान होताहै—जो वैताल की भावना होती है तो वैताल हो भासताहै परन्तु वास्तवमें वैताल कोई नहीं। तैसे जितनी आधिभौतिकता

भासती है वह भ्रममात्र है। सब जीवों का आदि शरीर अन्तवाहक है से प्रमाद से आधिभौतिक भासता है। हे लीले! एक लिङ्गशरीर है; एक अन्तवाहक शरीर है—यह दोनों संकल्पमात्र हैं और इनमें इतना भेद है कि, लिङ्गशरीर संकल्परूपी मन है उसमें जिसको आधिभौतिकता का अभिमान होताहै उसको गौरत्व और कठोररूप और वर्णाश्रमका अभिमान होता है। जिस पुरुषको ऐसे अनात्मा में आत्माभिमान हुआ जिसकी आधिभौतिक लिङ्गदेह है उसकी चिन्तना सत्य नहीं होती जिसको आधिभौतिक का अभिमान नहीं होता वह अन्तवाहक शरीर है। वह जैसा चिन्तवन करता है वैसीही सिद्धि होती है। हे लीले! अब अन्तवाहक में दृढ़ स्थित हुई है इसकारण तेरा फिर वैसाही शरीर हुआहै। तेरी आधिभौतिक बुद्धि नष्ट होगइ और वह स्थूलशरीर श होकर गिरपड़ा है जैसे जल से रहित मेघ हो और जैसे सुगन्ध से रहित फूल हो तैसेही तेरा शरीर होगया है और अब तू सत्यसंकल्प हुई है जैसा चिन्तवन कर तैसाही होगा। हे लीले! यह कमलनयनी लीला तेरे भर्त्ताके पास बैठी है और उसको इस अन्तःपुरके लोग और सहे लियां जान नहीं सकीं क्योंकि; मैंने इनको निद्रा में मोहित किया था जबतक मेरा दर्शन इसको न होवेगा तबतक इसको और कोई न जान सकेगा अब यह हमको देखेगी। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ऐसे विचारके देवी उसको अपने संकल्प से ध्यान करनेलगी तब उस लीला ने देखा कि, अन्तःपुरमें बहुत से सूर्योंका प्रकाश इकट्ठा हुआहै और चन्द्रमा की नाईं शीतल प्रकाश है। ऐसे दोनों देवियों को देखके उसने नमस्कार कर मस्तक नवाया और दोनों को स्वर्ण के सिंहासन पर बैठाके कहनेलगी; हे जीव की दाता! तुम्हारी जय हो तुमने मुझपर बड़ी कृपा की। तुम्हारेही प्रसाद से मैं यहां आई। देवी बोली; हे पुत्री! तू यहां कैसे आई और क्या वृत्तान्त तूने देखा सो कह विदूरथ की लीला बोली; हे देवी! जब मेरा भर्त्ता संग्राम में घायल हुआ तब उसको देखके मैं मूर्च्छित हो गिरपड़ी परन्तु मृतक न भई

इसके अनन्तर फिर मुझको चेतना फुरी तो मैंने अपना वही शरीर देखा और उस शरीरसे मैं आकाशमार्ग को उड़ी। जैसे वायु गन्ध लेकर उड़ता है तैसेही एक कुमारी मुझे उड़ाकर परलोक में भर्त्ता के पास बैठा आप अन्तर्द्धान होगई। मेरा भर्त्ता जो संग्राम में थका था वह आके सोरहा है और मैं सँभालती देखती मार्ग में आई हूँ परन्तु मुझको तुम दृष्टि कहीं न आईं। यहां कृपाकर तुमने दर्शन दियाहै। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले हे रामजी! इसप्रकार सुनके देवी ने प्रबुध लीला से कहा कि; अब मैं राजा की जीवकला को छोड़ती हूं। ऐसे कहके देवी ने नासिका के मार्ग से जीवकला को छोड़ दिया और जैसे कमल के भीतर वायु प्रवेश करजावे अथवा शरीर में वायु प्रवेश करजावे तैसेही शरीर में जीवकला प्रवेश कर गई। जैसे समुद्र जलसे पूर्ण होता है तैसेही पुर्यष्टक वासना से पूर्ण थी। शरीरकी कान्ति उज्ज्वल होगई और जैसे वसन्तऋतु में फूल और वृक्षों में रस फैलता है अङ्गों में प्राणवायु फैलगई। तब सब इन्द्रियां खिलआईं जैसे वसन्तऋतु में फूल खिल आते हैं। तब राजा फूलोंकी शय्यासे इस भांति उठ खड़ा हुआ; जैसे रोकाहुआ विन्ध्याचल पर्वत उठआवे। तब दोनों लीला राजा के सन्मुख आ खड़ी हुईं और राजाने कहा मेरे आगे तुम कौन खड़ी हो? प्रबुध लीला ने कहा; हे स्वामी! मैं तुम्हारी पूर्व पटरानी लीला हूं; जैसे शब्द के सङ्ग अर्थ रहता है तैसे सदा तुम्हारे सङ्ग रहीहूं! जब तुम यहां शरीर त्यागके परलोकमें गयेथे तब मुझमें तुम्हारा अतिस्नेह था इससे मेरा प्रतिबिम्ब यह लीला तुमको भासी थी। अब जो और कथाका वृत्तान्तहै सो मैं तुमसे कहतीहूं। हे राजन्! हमारे ऊपर इस देवी ने कृपा की है जो हमारे शीशपर स्वर्ण के सिंहासनपर बैठी है। यह सरस्वती सर्वकी जननी है; इसने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है और परलोक से तुम्हें ले आई है। हे रामजी! ऐसे सुनके राजा प्रसन्न हो उठखड़ा हुआ और सरस्वती के चरणों पर मस्तक नवाकर बोला; हे सरस्वति! तुमको मेरा नमस्कार है। तुम सबकी हितकारिणी हो और तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है। अब कृपाकरके मुझको यह वर दो कि, मेरी आयुर्बल

बड़ी हो; निष्कण्टक राज्य करूं; लक्ष्मी बहुतहो; रोग कष्ट न हो और आत्मज्ञानसे सम्पन्न होऊं अर्थात् भोग और मोक्ष दोनों दो। इतना कह कर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार राजा ने कहा तब देवी ने उसके शीशपर हाथधरके आशीर्वाद दिया कि, हे राजन्! ऐसेही होगा। तेरी आर्युबल बड़ी होगी; तेरा शत्रु भी कोई न होगा; निष्कण्टक राज्य करेगा; आपदा तुझको न होगी; लक्ष्मी संपदासे सम्पन्न होगा; तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहकर तुझको देखके प्रसन्न होगी; तेरी प्रजा में आपदा किसी को न होगी और तू आत्मानन्द से भी पूर्ण होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवजीवन्वर्णनन्नामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहके देवी तो अन्तर्द्धान होगई और प्रातःकाल का समय हुआ; सब लोग जाग उठे; सूर्य भी उदय हुआ और सूर्यमुखी कमल खिल आये। राजा दोनों लीला को कण्ठ लगा प्रसन्न और आश्चर्यमान हुआ मन्दिर में नगारे बजने लगे और नाना शब्द होने लगे मन्दिर में बड़ा हुलास और आनन्द हुआ अनेक अङ्गना नृत्य करने लगीं और बड़ा उत्साह हुआ। विद्याधर सिद्ध देवता, फूलों की वर्षा करने लगे और लोग बड़े आश्चर्यमान हुये कि, लीला परलोक से फिर आई है और अपने भर्त्ता और एक आपसी दूसरी लीला ले आई है। हे रामजी! यह कथा देश से देशान्तर चली गई और सब लोग सुनके आश्चर्यमान हुये। जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्धहुई तब राजा ने भी सुना कि, मैं मर के फिर जियाहूं और विचारा कि, फिर मेरा अभिषेक हो निदान मन्त्री और मण्डलेश्वरों ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर से सब समुद्र और सर्व तीर्थों का जल मँगा राजा को राजका अभिषेक किया और चारों समुद्रों पर्यन्त राजा निष्कण्टक राज्य करने लगा। राजा और लीला यह पूर्व की कथा को विचारते और आश्चर्यमान होते थे। सरस्वती के उपदेश और प्रसादसे अपना पुरुषार्थ पाके राजा और दोनों लीला ने इसभांति

सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन्मुक्त होके राज किया और मन सहित षट्इन्द्रियों को वश करके यथालाभ संतुष्ट रहे और दृश्यभ्रम उनका नष्ट होगया। ऐसा सुन्दर राजा था कि, उसकी सुन्दरता की कणिका मानों चन्द्रमा थी और उसके तेज की कणिका मानों सूर्य थी निदान उसने प्रजा को भली प्रकार संतुष्ट किया और सब प्रजा राजा को देखके प्रसन्न हुई और विदेह मुक्त हो दोनों लीला और तीसरा राजा निर्वाण-पद को प्राप्त हुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निर्वाणवर्णनन्नाम द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह दोनों कथा एक आकाशज ब्राह्मण की और दूसरी लीलाकी मैंने तुमको दृश्यदोषके निवृत्ति अर्थ विस्तार-पूर्वक सुनाई है। हे रामजी! दृश्यकी दृढ़ता जो होरही है उसको त्याग करो। अब तुम इन दोनों इतिहासों को संक्षेपमात्र से सुनो। यह जगत् जो तुमको भासता है आभासरूप है—आदि से कुछ उपजा नहीं जो वस्तु सत् होती है उसके निवारण में प्रयत्न होता है और जो वस्तु असत्‌ही हो उसके निवृत्ति होने में कुछ यत्न नहीं। इस कारण ज्ञानवान् को सब आकाशरूप भासताहै और आकाशकी नाईं स्थित होताहै। हे रामजी! आदि जो ब्रह्मसत्तामें आभास संवेदन फुरा है सो ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआ है। वह ब्रह्म पृथ्वी आदिक भूतोंसे रहित है। जो आपही आभासरूप हो उसके उपजाये जगत् कैसे सत् हो? हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष आकाशरूप है। जिसको आत्मपद का साक्षात्कार हुआ उसको दृश्यभ्रमका अभाव होजाताहै और जो अज्ञानी है उसको जगत् भ्रम स्पष्ट भासता है। शुद्ध चिदाकाश का एक अणु जीवहै और उस जीव अणुमें यह जगत् भासताहै, उस जगत् की सृष्टि में तुमको क्या कहूं; नीति क्या कहूं; वासना क्या कहूं और पदार्थों को क्या कहूं? हे रामजी! जगत् कुछ उपजा नहीं केवल संवेदनके फुरनेसे जगत् भासता है। शुद्ध संवित् में संवेदनरूपी नदी चली है और उसमें यह जगत् फुरताहै। जब संवेदन को यत्न करके रोंकोगे तब दृश्यभ्रम नष्ट होजावेगा। प्रयत्न करना

यहीहै कि, संवेदन को अन्तर्मुख करे और जबतक आत्माका साक्षात्का न हो तबतक श्रवण, मनन और निदिध्यासन से दृढ़ अभ्यास करन चाहिये। जब साक्षात्कार होताहै तब दृश्य नष्ट होजाताहै। हे रामजी! य सर्व जगत् जो तुमको भासताहै सो हमको अखण्ड ब्रह्मसत्ता ही भासताहै जगत् मायामय है परन्तु माया भी कुछ और वस्तु नहीं ब्रह्मसत्ता ही अपन आप में स्थित है। रामजी बोले; बड़ा आश्चर्य है! बड़ा आश्चर्य है हे मुनीश्वर! आपने मुझसे परमदशा कही है। आपका उपदेश दृश्यरूप तृणों का नाशकर्त्ता दावाग्नि है और अध्यात्मक, आधिभौतिक औ आधिदैविक तापोंका शान्तकर्त्ता चन्द्रमाहै। हे मुनीश्वर! आपके उपदेश से अब मैं ज्ञातज्ञेय हुआहूं और पांच विकल्प मैंने विचारे हैं। प्रथम य कि, यह जगत् मिथ्या है और इसका स्वरूप अनिर्वचनीय है; दूसरे य कि, आत्मा में आभास है; तीसरे यह कि, इसका स्वभाव परिणामी है चौथे यह कि, अज्ञानसे उपजाहै और पांचवें यह कि, यह अनादि अज्ञान पर्यन्तहै। ऐसे जानके मैं ज्ञानवानों और निर्वाण मुक्तोंकी नाईं शान्तात्मा हुआ हे मुनीश्वर! और शास्त्रोंसे यह आपका उपदेश आश्चर्य है। श्रवण रूपी पात्र आपके वचनरूपी अमृत से तृप्त नहीं होते। इससे मेरा यह संशय दूर करो कि, लीलाके भर्त्ता को प्रथम वशिष्ठ, फिर पद्म और फिर विदूर की सृष्टिका अनुभव कैसे हुआ और उनमें उसको कहीं दिन हुआ, कहीं मास, कहीं वर्षोंका अनुभव भया सो काल का व्यतिक्रम कैसे हुआ? हे मुनीश्वर! इससे स्पष्ट करके कहिये कि, आपके वचन मेरे हृदयमें स्थित हों। एक बेर कहनेसे हृदय में स्थित नहीं होते इससे फिर कहिये। वशिष्ठ जी बोले; हे रामजी! शुद्धसंवित् सबका अपना आप है। उससे जैसा संवेदन फुरताहै तैसारूप हो भासता है। कहीं क्षण में कल्पों के समूह बीत भासते हैं और कहीं कल्प में क्षण का अनुभव होता है। हे रामजी जिसको विष में अमृतभावना होती है उसको अमृत ही हो भासता और जिसको अमृत में विष की भावना होती है तब वही विषरूप हो भासता है। किसी पुरुष का कोई शत्रु होता है पर उसमें वह मित्र

भावना करता है तो वह मित्ररूप ही भासता है और जिसको मित्र में शत्रुभावना होती है तब वही शत्रु हो भासता है । हे रामजी ! जैसा संवेदन फुरता है तैसाही स्वरूप हो भासता है । जिसका संवेदन तीव्र-भाव के अभ्यास से निर्मलभाव को प्राप्त होता है उसका संकल्प सत् होता है और जैसे चेतता है तैसेही सिद्ध होता है । इससे संवेदन की तीव्रता हुई है । हे रामजी ! रोगी को एक रात्रि कल्प के समान व्यतीत होती है और जो आरोग्य होता है उसको रात्रि एक क्षण की नाईं व्यतीत होती है । एक मुहूर्त्त के स्वप्ने में अनेक वर्षों का अनुभव करता है और जानता है कि, मैं उपजा हूं; ये मेरे माता पिता हैं; अब मैं बड़ा हुआ और ये मेरे बान्धव हैं । हे रामजी ! एक मुहूर्त्त में इतने भ्रम देखता है और जागे पर एक मुहूर्त्त भी नहीं बीतता । हरिश्चन्द्र को एक रात्रि में बारह वर्षों का अनुभव हुआ था और राजा लवण को एक क्षण में सौ वर्ष का अनुभव हुआ था । इससे जैसा २ रूप होकर संवेदन फुरता है तैसा ही तैसा होकर भासता है । हे रामजी ! ब्रह्मा के एक मुहूर्त्त में मनुष्य की आयुर्बल व्यतीत हो जाती है । ब्रह्मा जितने काल में एक मुहूर्त्त का अनुभव करता है मनुष्य उतने ही में पूर्ण आयुर्बल का अनुभव करता है और ब्रह्मा जितने काल में अपनी संपूर्ण आयुर्बल का अनुभव करता है सो विष्णु का एक दिन होता है । ब्रह्मा का आयुर्बल व्यतीत हो जाता है और विष्णु को एक दिन का अनुभव होता है । इससे जैसे २ संवेदन में दृढ़ता होती है तैसा २ भान होता है । हे रामजी ! जो कुछ जगत् तुम देखते हो सो संवेदन फुरने में स्थित है । जब संवेदन स्थित होता है तब न दिन भासता है; न रात्रि भासती है; न कोई पदार्थ भासते हैं और न अपना शरीर भासता है केवल आत्मतत्त्वमात्र सत्ता रहती है । इससे तुम देखो कि; सब जगत् मन के फुरने में होता है । जैसा २ मन फुरता है तैसा २ रूप हो भासता है । कडुवे में जिसको मीठे की भावना होती है तो कडुवा उसको मीठा हो जाता है और मीठे में जिसको कटुक भावना होती है तब मधुर भी उसको कटुकरूप हो जाता है ।

स्वप्ने और शून्य स्थान में नानाप्रकार के व्यवहार होते भासते हैं और स्थिर पड़ा स्वप्ने में दौड़ता फिरता है। इससे जैसा फुरना मन में होता तैसा ही हो भासता है। हे रामजी! नौका में बैठे हुये पुरुष को नदी के तट वृक्षों सहित दौड़ते भासते हैं। जो विचारवान् हैं वे चलते भासने में उन्हें स्थिर ही जानते हैं। और जो पुरुष थमता है उसको स्थिरभूत मन्दिर भ्रमते भासते हैं और जो विचार में दृढ़ है उसको भ्रमते भासने में भी अचल बुद्धि होती है। इससे जैसा २ निश्चय होता है तैसा ही तैसा हो भासता है। हे रामजी! जिसके नेत्र में दूषण होता है उसको श्वेत पदार्थ भी पीतवर्ण भासता है और जिसके शरीर में वात, पित्त, कफ का क्षोभ होता है उसको सब पदार्थ विपर्यय भासते हैं। इसीप्रकार पृथ्वी आकाशरूप भासती है और आकाश पृथ्वीरूप हो भासता है; चल पदार्थ अचलरूप भासता है और अचल पदार्थ चलता भासता है। हे रामजी! जैसे स्वप्ने में अङ्गना असत्‌रूप होती है परन्तु भ्रान्ति से उसको स्पर्श करके प्रसन्न होता है तो उस काल में प्रत्यक्ष ही भासती है और जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है सो असत् ही सत्‌रूप हो भासता है। हे रामजी! शत्रु में जो मित्र भावना होती है तो वह शत्रु भी मित्र सुहृद् हो भासता है और जो मित्र में शत्रुभाव होता है तो वह सुहृद् शत्रुरूप हो भासता है। जैसे रस्सी में सर्प है नहीं परन्तु भ्रम से सर्प भासता है और भय देता है तैसेही बान्धवों में जो बान्धव की भावना न करे तो बान्धव भी अबान्धव हो भासता है और अबान्धव भी भावना के अभाव से बान्धव हो जाते हैं। हे रामजी! शून्य स्थान में और स्वप्ने में बड़े क्षोभ भासते हैं और निकटवर्त्ती को जागे से कुछ नहीं भासता। स्वप्ने वाले को सुनने का अनुभव होता है और जाग्रत्‌वाले को जाग्रत् का अनुभव होता है इत्यादिक पदार्थ विपर्यय भ्रम से भासते हैं। जब मन फुरता है तबहीं भासता है। तैसेही लीला के भर्त्ता को भी ऐसी सृष्टि का अनुभव हुआ। जैसे जाग्रत् के एक मुहूर्त्त का स्वप्न में बहुत काल का अनुभव होता है तैसेही लीला के भर्त्ता को भी हुआ था। जैसी

मन की स्फूर्ति होती है तैसाही तैसा रूप चैतन्य संवित् में भासता है। हमको सदा ब्रह्म का निश्चय है इससे हमको सब जगत् ब्रह्मस्वरूप ही भासता है और जिसको जगत्भ्रम दृढ़ है उसको जगत् ही भासता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् भासता है सो कुछ आदि से उपजा नहीं—सब आकाशरूप है। रोंकनेवाली कोई भीति नहीं है बड़े विस्तार से जगत् है परन्तु स्वप्नवत् है। जैसे थम्भे में बनाने विना पुतली शिल्पी के मन में भासती है और थम्भे में कुछ बनी नहीं तैसेही आत्मारूपी थम्भा है उसमें जगत्रूपी पुतलियों को संवेदन रचता है परन्तु वह कुछ पदार्थ नहीं है आत्मसत्ता ही ज्यों की त्यों है। हे रामजी! जैसे एक स्थान में दो पुरुष लेटे हों और उनमें एक जागता हो और दूसरा स्वप्ने में हो तो जो स्वप्ने में है उसको बड़े युद्ध होते भासते हैं और जागे हुये को आकाशरूप है तैसेही जो प्रबोध आत्मज्ञानवान् है उसको जगत् का सुषुप्ति की नाईं अभाव है और जो अज्ञानी है उसको नानाप्रकार के व्यवहारों सहित स्पष्ट भासता है। जैसे वसन्तऋतु में पत्र, फल और गुच्छे रस सहित भासते हैं तैसेही आत्मसत्ता चैतन्यता से जगत्रूप भासती है। जैसे स्वर्ण में द्रवता सदा रहती है परन्तु जब अग्नि का संयोग होता है तभी भासती है। हे रामजी! आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे अवयवी और अवयवों में और पृथ्वी और गन्ध में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। ब्रह्मसत्ता ही संवेदन से जगत्रूप होकर भासती है और दूसरी कोई वस्तु नहीं। जब महाप्रलय होता है और सर्ग नहीं होता तब कार्यकारण की कल्पना कोई नहीं होती केवल चिन्मात्र सत्ता होती है और उसमें फिर चिदाकाश जगत् भासता है तो वही रूप हुआ। जो तुम कहो कि, इस जगत् का कारण स्मृति है तो सुनो; जब महाप्रलय होता है तब ब्रह्माजी तो विदेहमुक्त होते हैं फिर वह जगत् के कारण कैसे हों और जो तुम स्मृति का कारण मानो तो स्मृति भी अनुभव में होती है जो स्मृति से जगत् हुआ तो भी अनुभवरूप हुआ। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! पद्मराजा के मन्त्री,

नौकर और सब लोग विदूरथ को कैसे जाकर मिले ? यह वार्त्ता फि कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! केवल चेतनसंवित् सबका अपना आप है उस संवित् के आश्रय से जैसा संवेदन फुरता है तैसाही रूप हो भासता है। हे रामजी ! जब राजा विदूरथ मृतक होने लगा तब उसकी वासना उनमें थी और मन्त्री, नौकर आदिक राजा के अङ्ग हैं इस कारण वैसेही मन्त्री और नौकर राजा को मिले। हे रामजी ! जैसी भावना संवेदन में दृढ़ होती है तैसाही रूप हो भासता है। एक चल पदार्थ होते हैं और एक अचल होते हैं जो अचल पदार्थ हैं उनका प्रतिबिम्ब आदर्श में भासता है और चल पदार्थ रहता नहीं भासता इससे उसका प्रतिबिम्ब नहीं भासता। तैसेही जिस पदार्थ की तीव्र संवेग भावना होती है उसी का प्रतिबिम्ब चेतन दर्पण में भासता है अन्यथा नहीं भासता। जैसे तीव्र वेगवान् बड़ा नद समुद्र में शीघ्र ही जा मिलता है और दूसरे नहीं प्राप्त हो सके तैसेही जिसकी दृढ़ वासना होती है वह उसके अनुसार शीघ्र जाकर पाता है। हे रामजी ! जिसके हृदय में अनेक वासना होती हैं और अच्छी तीव्रता होती है उसी की जय होती है। जैसे समुद्र में अनेक तरङ्ग होते हैं तो कोई उपजता है और कोई नष्ट हो जाता; कोई सदृश होता है कोई विपर्यय होता है उसके सदृश मन्त्री और नौकर भी हुये। हे रामजी ! एक २ चिद् अणु में अनेक सृष्टि स्थित होती हैं पर वास्तव में कुछ नहीं केवल चिदाकाश ही चिदाकाश में स्थित है। यह जो जगत् भासता है सो आकाश ही रूप है जो जाग्रत्‌रूप होकर असत् ही सत्‌रूप की नाईं भासता है। जैसे पत्र, फल, फूल सब वृक्षरूप हैं और वृक्ष ही ऐसे रूप होकर स्थित हैं तैसेही अनन्त शक्ति परमात्मा अनेकरूप होकर भासता है। हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, त्रिपुटी ज्ञानी को अजन्मापद भासता है और अज्ञानी को द्वैतरूप जगत् होकर भासता है। कहीं शून्य भासता है; कहीं तम भासता है और कहीं प्रकाश भासता है। देश, काल, क्रिया, द्रव्य आदिक सब जगत् आदि, अन्त और मध्य से रहित स्व आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है जैसे सोमजल में जो तरङ्ग होते हैं

सो जलही रूप हैं तैसेही अहं, त्वं आदिक जगत् भी बोधरूप हैं और सदा अपने आप में स्थित है—उसमें द्वैतकल्पना का अभाव है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने प्रयोजनवर्णनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४३॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अहं त्वं आदिक दृश्य भ्रान्ति कारण विना परमात्मा से कैसे उदय हुई है? जिस प्रकार मैं समझूं उसी प्रकार मुझको फिर समझाइये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जो कुछ कारण कार्य जगत् भासता है वह परमात्मा से उदय हुआ है अर्थात् संवेदन के फुरने से इकट्ठे हो पदार्थ भास आये हैं और सर्वदा, सर्वप्रकार, सर्वात्मा, अजरूप अपने आप में स्थित है। हे रामजी! यह सर्व शब्द और अर्थ-रूप कलना जो भासी है सो ब्रह्मरूप है; ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं और ब्रह्मसत्ता सर्वशब्द अर्थ की कलना से रहित अपने आप में स्थित है। जैसे भूषण सुवर्ण से भिन्न नहीं और तरङ्ग जल से भिन्न नहीं तैसेही ब्रह्म से भिन्न जगत् नहीं—ब्रह्मस्वरूपही है। हे रामजी! ईश्वर जो आत्मा है सो जगत्रूप है जगत् ईश्वररूप है। जैसे सुवर्ण भूषणरूप है और भूषण स्वर्णरूप है अर्थात् सुवर्ण में भूषण शब्द और अर्थ कल्पित हैं—वास्तव में नहीं—तैसेही जगत् आत्मा का आभासरूप है—वास्तव में कुछ नहीं। हे रामजी! जो कुछ जगत् है सो ब्रह्मरूप है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। जैसे अवयव अवयवी से भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जो कुछ अवयवी जगत् है सो भिन्न नहीं। आत्मा में संवेदन के फुरने से तन्मात्रा फुरी है और आत्मामें ही इनका उपजना सम हुआ है; पीछे विभाग कल्पना हुई है इसलिये उनसे जो भूत हुये हैं वे आत्मा से अन्य नहीं। जैसे शिला में चितेरा भिन्न २ पुतली कल्पता है सो शिलारूपही हैं; भिन्न कुछ नहीं; तैसेही अहं त्वं आदिक जगत् चिद्घन आत्मा में मनरूपी चितेरे ने कल्पा है सो चिद्घनरूप ही है कुछ भिन्न नहीं। जैसे जल में तरङ्ग स्थित होते हैं सो जलरूपही हैं; तरङ्गों का शब्द और अर्थ जल में कोई नहीं; तैसेही आत्मा जगत् स्थित है पर जगत् के शब्द और अर्थ

से रहित है। हे रामजी! जगत् परमपद से भिन्न नहीं और परम
जगत् विना नहीं; केवल चिद्रूप अपने आप में स्थित है। जैसे वायु औ
स्पन्द में कुछ भेद नहीं है स्पन्द और निस्स्पन्द दोनों रूप वायुके ही है
जब स्पन्दरूप होता है तब स्पर्शरूप होकर भासता है और निस्स्प
हुये स्पर्श नहीं भासता; तैसेही जगत् और ब्रह्म में कुछ भेद नहीं; ज
संवेदन किंचित्रूप होता है तब जगत्रूप हो भासता है और संवेदन
निस्स्पन्द हुये से जगत् नहीं भासता पर आत्मसत्ता सदा एकरूप है।
रामजी! जब संवेदन फुरने से रहित होकर आत्मपद में स्थित हो त
यदि संकल्परूप जगत् फिर भी भासे तो आत्मरूप ही भासे। जैसे वा
के स्पन्द और निस्स्पन्द दोनों रूप अपने आपही भासते हैं तैसे
इसको भी भासता है। जैसे वायु में स्पन्दता वायुरूप स्थित है तैसे
आत्मा में जगत् आत्मरूप से स्थित है। जैसे तेज अणु का प्रकाश ज
मन्दिर में होता है तब बाहर भी प्रकट होता है तैसेही जब केव
संवित्मात्र में संवेदन स्थित होता है तब फुरने में भी संवित्मात्र
भासता है। हे रामजी! जैसे रसतन्मात्रा में जल स्थित होता है तैसे
आत्मा में जगत् स्थित है। जैसे गन्धतन्मात्रा के भीतर सम्पूर्ण पृ
स्थित है तैसेही किञ्चनरूप जगत् आत्मा में स्थित है। वह निरा
और चिन्मात्ररूप आत्मसत्ता उदय और अस्त से रहित अपने आ
स्थित है; प्रपञ्चभ्रम उसमें कोई नहीं। हे रामजी! जे ज्ञानवान् पुरु
उनको दृढ़ीभूत जगत् भी आकाशरूप भासता है और जे अज्ञानी
उनको असत्रूप जगत् भी सत्रूप हो भासताहै। हे रामजी! जैसा ज
संवेदन चित्तसंवित् में फुरता है तैसाही तैसा रूप जगत् हो भासता
ये जितने तत्त्व और तन्मात्रा हैं वे सब चित्तसंवेदन के फुरने से स्थित
हैं; जैसी २ उससे स्फूर्त्ति होती है तैसी २ होकर भासती है क्यों
आत्मा सर्वशक्तिमान् है इसलिये जिस २ पदार्थ का फुरना फुरता है
अनुभव में सत्रूप होकर भासता है। पञ्चज्ञानेन्द्रिय और छठे म
जो कुछ विषय होता है वह सब असत्रूप है और आत्मसत्ता

अतीत है। विश्व भी क्या रूप है; जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् स्थित है। जैसे तेज और प्रकाश अनन्यरूप हैं तैसेही आत्मा और जगत् अनन्यरूप हैं। जैसे थम्भे में शिल्पी पुतलियां देखताहै; जैसे मृत्तिका के पिण्डमें कुम्हार बर्तन देखताहै और जैसे भीतपर चितेरा रङ्ग की मूरतें लिखता है सो अनन्यरूप हैं तैसेही परमात्मा में सृष्टि अनन्य-रूप है। हे रामजी! जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल और तरङ्गें असत् हैं पर सत्‌रूप हो भासती हैं; तैसेही आत्मा में असत्‌रूप जगत् त्रिलोकी भासती है। जब चित्तसंवित् में संवेदन फुरताहै तब जगत् भासता है और जब संवेदन नहीं फुरता तब जगत् भी नहीं भासता। जगत् कुछ ब्रह्म से भिन्न नहीं। जैसे बीज और वृक्ष में; चीर और मधुरता में; मिरच और तीक्ष्णता में; समुद्र और तरङ्गमें और वायु और स्पन्द में कुछ भेद नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता स्वाभाविक स्थित है तैसेही निराकार आत्मा में सृष्टि स्वाभावि-कही स्थित है। हे रामजी! यह जगत् ब्रह्मरूपी रत्न का किञ्चन है; जैसा २ किञ्चन होता है तैसाही तैसा होकर भासता है। अकारणपदार्थ अकारण ही होताहै और जिस अधिष्ठान में भासता है उससे अनन्यरूप होता है; अधिष्ठान से भिन्न उसकी सत्ता नहीं होती; तैसेही यह जगत् आत्मा में अनन्यरूप होताहै कुछ उपजा नहीं परन्तु संवेदन फुरने से भासता है। जितने जगत् और वासना हैं उनका बीज संवेदन है इससे वे भ्रम हैं। इसलिये संवेदन के अभाव का पुरुषार्थ करो; जब संवेदन का अभाव होगा तब जगत्‌भ्रम नष्ट होगा। वास्तव में कुछ न उपजा है और न कुछ नष्ट होताहै; सर्व शान्तरूप चिद्घन ब्रह्मशिलाघन की नाईं अपने आप स्थित है। हे रामजी! चित् परमाणु में चैत्यता से अनेकसृष्टि भासती हैं। उन सृष्टियों में जो परमाणु हैं उन परमाणुओं के भीतर और सृष्टि स्थित हैं उनकी कुछ संख्या नहीं। जैसे जल में अनेक तरङ्ग होते हैं उन से कोई गुप्त और कोई प्रकट होते हैं पर वे सब जल की शक्तिरूप हैं और जैसे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था जीवों के भीतर स्थित हैं पर

कोई गुप्त है कोई प्रकटरूप है। हे रामजी ! जबतक संवेदन द्वैत के सा मिलाहुआ है तबतक सृष्टि का अन्त नहीं। जब चित्त उपशम होगा त जगत्भ्रम मिटजावेगा। जब भोगोंमें कुछ भी वृत्ति न उपजे तब जानि कि, आत्मपद प्राप्त होगा। यह श्रुति का निश्चय है। हे रामजी ! ज्यों ममत्व दूर होताहै त्यों २ बन्धनों से मुक्त होताहै। जब अहंभाव अथ जीवत्वभाव निर्वाण होताहै तब जन्मोंकी संपदा नष्ट होजाती हैं केव शुद्धरूपही होताहै और तब स्थावर जङ्गमरूप जगत् सब आत्मरूप प्रती होताहै। जैसे समुद्रको तरङ्ग और बुद्बुदे सब अपने आपरूप भासते तैसेही ज्ञानवान् को सब जगत् आत्मरूप भासता है। हे रामजी ! शु आत्मसत्ता में जो संवेदन फुराहै उसने आपको ब्रह्मरूप जाना और भाव करके संकल्परूप नाना प्रकार का जगत् रचा है पर उसको अन्तर अनुभ असत्यरूप किया। उसमें कहीं निमेषमें अनेक युगों का अन्त भासत और कहीं अनेक युगों में एक निमेष का अनुभव होता है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगत्किञ्चनवर्णनन्नाम चतुश्च-
त्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! चिद् परमाणुमें जो एक निमेष होता उसके लाखवें भाग में जगतों के अनेक कल्प फुरते हैं। और उन ष्टियों में जो परमाणु हैं उनमें सृष्टि फुरती हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग फु हैं सो जलरूप ही हैं तरङ्ग शब्द और उसका अर्थ भ्रमरूप है-तैसे आत्मा में भ्रमरूप अनेक सृष्टि फुरती हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा नदी चलती दृष्टि आती है तैसेही आत्मा में यह जगत् भासता है। ज स्वप्नसृष्टि और गन्धर्वनगर भासते हैं; जैसे कथा के अर्थचित्त में फुरते और संकल्पपुर भासता है; तैसेही जगत् असत्रूप सत् हो भासता इतना सुन रामजी ने पूछा; हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ ! जिस पुरुष को वि द्वारा सम्यक् ज्ञान हुआ और निर्विकल्प आत्मपद की प्राप्ति हुई है उस अपने साथ देह कैसे भासती है; उसकी देह कैसे रहती है और देह प्रा से उसका शरीर कैसे रहता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! अ

जो ब्रह्मशक्ति में संवेदन फुरा है उसका नाम नीति हुआ है। उसमें जो संभावना की है कि, यह पदार्थ ऐसे होगा; इससे होगा और इतने काल रहेगा वैसेही अनेक कल्पपर्यन्त होता है। जितना काल उसने धारा है उतने काल का नाम नीति है। महामत् भी उसीको कहते हैं और महाचेतना भी उसीको कहते हैं। महाशक्ति भी उसीका नाम है और महाअदृष्ट वा महाकृपा भी वही है और महाउद्भव भी उसीको कहते हैं। अर्थ यह कि, वह नीति अनन्त ब्रह्माण्डों की उपजानेवाली है। जैसा फुरना दृढ़ हुआ है तैसाही रूप होकर स्थित है। यह स्थावररूप है यह जङ्गम है; यह दैत्य है; यह देवता है; यह नाग है; यह नागिनी है; ब्रह्मा से तृणपर्यन्त जैसी उसमें अभ्यास है उसी प्रकार स्थित है। स्वरूप से ब्रह्मसत्ताका व्यभिचार कदाचित् नहीं हुआ वह तो सदा अपने आपमें स्थित है। जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है और जो अज्ञानी है उसको जगत् और नीति भी भिन्न भासती है। ज्ञानवान् को सब अचल ब्रह्मसत्ताही भासती है और अज्ञानियों को चलनरूप जगत् भासता है। वह जगत् ऐसा है जैसे कि; आकाश में वृक्ष भासते हैं और शिला के उदर में मूर्ति होती है। जो ज्ञानवान् हैं उनको सर्ग और निमित्त सब ज्ञानरूप ही भासते हैं। जैसे अवयवी के अवयव अपनाही रूप होते हैं तैसेही ब्रह्मसत्ता के अवयव ब्रह्म नित्य सर्गादिक अपनाही रूप हैं। हे रामजी! उसी नीतिको देवभी कहते हैं। जो कुछ किसी को प्राप्त होता है वह उसी देव की आज्ञा से प्राप्त होता है क्योंकि; आदि से यही निश्चय धरा है कि इस साधन से यह फल प्राप्त होगा। जैसा साधन होता है तैसाही फल अवश्य सबको उस देवसे प्राप्त होता है। इस कारण नीतिको दैव कहते हैं और दैव को नीति कहते हैं। हे रामजी! पुरुष जो कुछ पुरुषार्थ करता है उसके अनुसार फल प्राप्त होता है। इसी कारण इसका नाम नीति है और इसीका नाम पुरुषार्थ है। तुमने जो मुझसे दैव और पुरुषों का निर्णय पूछा और मैंने कहा उसीकी तुम पालना करो। इसीका नाम पुरुषार्थ है और इसका जो फल तुमको प्राप्तहो

उसका नाम दैव है। हे रामजी ! जो पुरुष ऐसा दैवपरायण हुआ है कि
मुझको जो कुछ दैव भोजन करावेगा सोही करूंगा और मौनधारी हो
अक्रिय हो बैठे उसको जो आय प्राप्तहो सो भी नीति है और जो पुरु
भोगों के निमित्त पुरुषार्थ करता है वह भोगों को भोगकर मोक्षपर्यन्
अनेकशरीरों को धारेगा; यह भी नीति है। हे रामजी ! जो आदि संवि
में संवेदन फुरकर भवितव्यता धरी है उसही प्रकार स्थित है उसका ना
भी नीति है। उस नीति को ब्रह्मा विष्णु और रुद्र भी उल्लङ्घन नहीं करस
तो और कैसे उल्लङ्घि सके। हे रामजी ! जो पुरुष पुरुषार्थ को त्याग बै
हैं उनको फल नहीं प्राप्त होता—यह भी नीति है और जो पुरुष फल
निमित्त पुरुषार्थ करता है उसको फल प्राप्त होता है—यह भी नीति है। ज
पुरुष प्रयत्न को त्यागकर निष्क्रिय हो बैठे हैं और मन से विषयों क
चित्त में वासना करते हैं वे निष्फल ही रहते हैं और जो पुरुष कर्तृत्व क
त्यागकर चित्तकी वृत्ति से शून्य दैवपरायण होरहे हैं और विषयों क
चित्त में वासना नहीं करते उनको सफलताही होती है क्योंकि; फुरने
रहित होना भी पुरुषार्थ है। यह भी नीति है कि, अर्थ चिन्तवन करने
वाले को प्राप्त नहीं होती और अयाचक को प्राप्त होती है। हे रामजी
पुरुषार्थ सफल भी नहीं है जो आत्मबोध के निमित्त न हो। जब ब्रह्मसत्त
की ओर तीव्र अभ्यास होता है तब परमपद की अवश्य प्राप्ति होती
और जब परमपद पाया तब सब जगत् चिदाकाशरूप हो भासता है
नीति आदिक जो विस्तार कहे हैं सो सर्व भ्रमरूप हैं केवल ब्रह्मसत्ता ह
ऐसे हो भासती है। जैसे पृथ्वी में रस सत्ता है और वह तृणवत्, गुच्
और फूलरूप होकर स्थित हैं तैसेही नीति आदिक सब जगत् होक
ब्रह्मही स्थित है; और कुछ वस्तु नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थविचारो
नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो कुछ तुमको भासताहै सो सर्व प्रकार, स
र्वदा और सर्व ओरसे ब्रह्मतत्त्वही सर्वात्मा होकर स्थित हुआहै। वह अनन्

आत्मा है; जब उसमें चित्तशक्ति प्रकट होती है अर्थात् शुद्ध चैतन्यमात्र में अहंस्फूर्त्ति होतीहै तब जगत भासता है; कहीं उपजता है; कहीं नष्ट होताहै; कहीं हुलास करता है; कहीं चित्त भासता है; कहीं किञ्चन है; कहीं प्रकट है और कहीं अप्रकट भासता है। निदान नानाप्रकार का जगत् है जहां जैसा तीव्र अभ्यास होता है वहां वैसा होकर भासता है क्योंकि; आत्मा सर्व शक्ति और सर्वरूप है; जैसा २ फुरना उसमें दृढ़ होता है वही रूप होकर भासता है। हे रामजी! ये जो नाना प्रकार की शक्तियां कही हैं सो वास्तव में आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; बुद्धिमानोंने समझाने के निमित्त नाना प्रकार के विकल्प जाल कहे हैं आत्मा में विकल्प जाल कोई नहीं। जैसे जल और उसकी तरङ्ग में; सुवर्ण और भूषणों में और अवयवों में और अवयव में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और शक्ति में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! एक संवित् है और एक संवेदन है; संवित् वास्तव है और संवेदन कल्पना है। जब संवित् में चिन्मात्र संवेदन फुरता है तो वह जैसे चेतता जाता है तैसेही होकर स्थित होता है। शुद्धचिन्मात्र संवित् में भीतर और बाहर कल्पना कोई नहीं। जब स्वभाव से किञ्चनरूप संवेदन होता है तब आगे कुछ देखता है और उस देखने से नाना प्रकार के आकार भासते हैं पर वह और कुछ नहीं सर्व ब्रह्महीहै। हे रामजी! शक्ति और शक्तिमान् में भेद अज्ञानी देखते हैं और अवयवी और अवयव भेद भी कहते हैं। परमार्थ में कुछ भेद नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है उसके आश्रय संकल्प आभास होता है। जब संकल्प की तीव्रता होती है तब वह सत् हो अथवा असत् परन्तु उसही का भान होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजावतारोनाम षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो सर्वगत देव, परमात्मा महेश्वर है यह स्वच्छ अनुभव, परमानन्दरूप और आदि अन्त से रहित है। उस शुद्धचिन्मात्र परमानन्द से प्रथम जीव उपजा; उससे चित्त उपजा और चित्त से जगत उपजा है। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! अनुभव परि-

णाम से जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व; सर्वव्यापी, द्वैत से रहित स्थित है उसमें तुच्छ रूप जीव कैसे सत्यता को पाता है ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब्रह्म सदा भास है अर्थात् असत्‌रूप जगत् उससे सत् भासता है और स्वच्छ है अर्थात् आभासरूपी जगत से भी रहित है। वृहत् है अर्थात् बड़ा है बड़ा भी दो प्रकार का है; अविद्याकृत जगत् से जो बड़ा है सो अविद्या की बड़ाई मिथ्या है। ब्रह्म बड़ाई सर्वात्मकरूप है सो सर्वदेश, सर्वकाल और सर्व वस्तु से पूर्ण है और अविद्याकृत बड़ाई देश, काल वस्तु से रहित निराकार है सो ज्ञानी का विषय है इससे वृहत् है और परम चेतन है। भैरव है अर्थात् जिसके भय से चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु और जल अपनी मर्यादा में चलते हैं। परमानन्द है, अविनाशी है सर्व ओर से पूर्ण है; सम है; शुद्ध है और अचिन्त्य है अर्थात् वाणी से नहीं कहा जाता और क्षोभ से रहित चिन्मात्र है ऐसी आत्मसत्ता ब्रह्म का जो स्वभाव सम्पत् है उसीका नाम जीव है अर्थात् जो शुद्ध चिन्मात्र में अहंफुरना है उसीका नाम जीव है। उस अनुभवरूपी दर्पण में अहं रूपी प्रतिबिम्ब फुरने को जीव कहते हैं। जीव अपने शान्त पद को त्यागे की नाईं स्थित होता है सो चिदात्माही फुरने के द्वारा आपको जीवरू जानता है। जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्गरूप होता है पर समुद्र और तर में कुछ भेद नहीं; तैसेही ब्रह्महीं जीवरूप है। जैसे वायु और स्पन्द औ बरफ और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जीव में कुछ भे नहीं। हे रामजी! चित्तरूपी आत्मतत्त्व को ही अपने स्वभाववश से माया करके संवेदन सहित जीवरूप कहते हैं वह जीव आगे फुरने से बड़े विस्तार धारण करता है। जैसे इन्धन से अग्नि के बहुत अणु होते हैं और बड़े प्रकाश को प्राप्त होता है तैसेही जीव फुरने से जगत्‌रूप को प्राप्त होता है। जैसे आकाश में नीलता भासती है सो नीलता कुछ भि वस्तु नहीं है तैसेही अहंभाव ते ब्रह्म में जीवरूप भासता है और अहं को अङ्गीकार करके कल्पितरूप की नाईं स्थित होता है। जैसे घन शून्यता से आकाश में नीलता भासती है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से दे

काल वस्तु के परिच्छेद सहित अहंकाररूपी जीव भासते हैं पर वास्तव में चिदाकाश ही चिदाकाश में स्थित है। जैसे वायु से समुद्र तरङ्गरूप होता है तैसेही संवेदन फुरने से आत्मसत्ता जीवरूप होती है। जीव की चैत्योन्मुखत्वता के कारण इतनी संज्ञा हैं—चित्त, जीव, मन, बुद्धि, अहंकार माया प्रकृति सहित ये सब उसही के नाम हैं। उस जीव ने संकल्प से पञ्चभूत तन्मात्रा को चेता तो उन पञ्चतन्मात्रा के आकार से अणुरूप होकर स्थित हुआ; उससे अणु अनउपजेही उपजे की नाईं स्थित हुये और भासने लगे। फिर उसी चित्त संवेदन ने अणु अङ्गीकार करके जगत् को रचा और जैसे बीज से सत् अंकुर वृक्ष होता है तैसेही संवेदन ने विस्तार पाया। प्रथम वह एक अण्डरूपी होकर स्थित हुआ और फिर उसने अण्ड को फोड़ा। जैसे गन्धर्वनगर और स्वप्न सृष्टि भासती है तैसेही उसमें जगत् भासने लगा। फिर उसमें भिन्न २ देह और भिन्न २ नाम कल्पे। जैसे बालक मृत्तिका की सेना कल्पता है और उनका भिन्न भिन्न नाम रखता है तैसेही स्थावर, जङ्गम आदिक नाम। कल्पना की पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश है इन पांचों भूतों की सृष्टि संकल्प से उपजी है। हे रामजी! आदि ब्रह्म से जो जीव फुरा है उसका नाम ब्रह्मा है। वह ब्रह्मा आत्मा में आत्मरूप होकर स्थित है और उससे क्रम करके जगत् हुआ है। जैसे वह चेतता है तैसेही होकर स्थित होता है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरङ्ग होते हैं तैसेही ब्रह्म में चित्त स्वभाव से जीव होता है। वह जीव जब प्रमाद से अनात्मभाव को धारण करता है तब कर्मों से बन्धवान् होता है। जैसे जल जब दृढ़ जड़ता को अङ्गीकार करता है तब बरफरूप होकर पत्थर के समान हो जाता है; तैसे जीव जब अनात्म में अभिमान करता है तब कर्मों के बन्धन में आता है। हे रामजी! कर्मों का बीज संकल्प है और संकल्प जीव से फुरता है। जीवत्वभाव तब होता है जब शुद्धचेतनमात्र स्वरूप से उत्थान होता है। उत्थान के अर्थ ये हैं कि, जब प्रमाद होता है तब जीवत्वभाव होता है और जब जीवत्वभाव होता है तब अनेक संकल्प कल्पना फुरती हैं। उन

संकल्प कल्पनाओं से कर्म होते हैं; और कर्मों से जन्म, मरण आदि नाना प्रकार के विकार होते हैं। जैसे बीज से अंकुर और पत्र होते हैं फिर आगे फूल, फल और टास होते जाते हैं तैसेही संकल्प कर्मों से नाना प्रकार के विकार होते हैं। जैसे २ कर्म जीव करता है उनके अनुसार जन्म, मरण और अध-ऊर्ध्व को प्राप्त होता है। हे रामजी! मन के फुरने का कर्म नाम है; फुरने का ही नाम चित्त है; फुरने का ही नाम कर्म है और फुरने का ही नाम दैव है। उसही से जीव को शुभ अशुभ जगत् प्राप्त होता है। सबका आदि कारण ब्रह्म है; उससे प्रथम मन उत्पन्न हुआ फिर उस मनही ने सम्पूर्ण जगत् की रचना की है। जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है और फिर पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसेही ब्रह्म से मन और जगत् उपजा है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बीजांकुरवर्णन्नामसप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आदि कारण ब्रह्म से मन उत्पन्न हुआ है। वह मन संकल्परूप है और मन से ही सम्पूर्ण जगत् हुआ है। वह मन आत्मा में मनत्वभाव से स्थित है और उस मन ने ही भाव अभावरूपी जगत् कल्पा है। जैसे गन्धर्व की इच्छा से गन्धर्वनगर होता है तैसेही मन से जगत् होता है। हे रामजी! आत्मा में द्वैतभेद की कुछ कल्पना नहीं। इस मन से ही ऐसी संज्ञा हुई है। ब्रह्म, जीव, मन, माया, कर्म, जगत् और द्रष्टा आदि सब भेद मन से हुये हैं; आत्मा में कोई भेद नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग-उछलते और बड़े विस्तार धारण करते हैं तैसेही चित्तरूपी समुद्र में संवेदन से जो नाना प्रकार जगत् विस्तार पाता है सो असत्‌रूपी है क्योंकि; स्थित नहीं रहता और सदा चलरूप है और जो अधिष्ठान स्वरूपभाव से देखिये तो सत्‌रूप है। इससे द्वैत कुछ न हुआ। जैसे स्वप्ने का जगत् सत् असत्‌रूप चित्त से भासता है तैसेही सत् असत्‌रूप यह जगत् भासता है। वास्तव में कुछ उपजा नहीं भ्रम से भासता है। जैसे इन्द्रजाली की बाजी में जो नाना

प्रकार के वृक्ष और औषध भासते हैं सो भ्रममात्र हैं तैसे यह जगत् भ्रम-मात्र है। हे रामजी! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्ना है और मन के भ्रम से सत् होकर भासता है। जैसे बालक भ्रम से परछाहीं में भूत कल्पता है और भय पाता है तैसेही यह पुरुष चित्त के संयोग से द्वैत कल्प के भय पाता है। जैसे विचार किये से वैताल का भय नष्ट होता है तैसेही आत्मज्ञान से भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं। हे रामजी! आत्मा, अनादि, दिव्य स्वरूप और अंशांशीभाव से रहित, शुद्ध चैतन्यरूप है। जब वह चेतन संवित् चैत्योन्मुखत्व होता है तब चित्त अर्थात् जो चेतनता का लक्षण है उससे जीवकल्पना होती है,। उस जीव में जब अहंभाव होता है कि, 'मैं हूं' तब उससे चित्त फुरता है; चित्त से इन्द्रियां होती हैं; उन इन्द्रियों से देहभाव होता है और उस देह-भ्रम से मलिन हुआ नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्ष आदि की कल्पना होती है जैसे बीज से अंकुर, पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसेही अहंभाव से जगत्विस्तार होता है। हे रामजी! जैसे देह और कर्मों में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और चित्त में कुछ भेद नहीं। जैसे चित्त और जीव में कुछ भेद नहीं तैसेही चित्त और देह में कुछ भेद नहीं। जैसे देह और कर्मों में कुछ भेद नहीं तैसेही जीव और ईश्वर में कुछ भेद नहीं और तैसेही ईश्वर और आत्मा में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! सर्व ब्रह्मस्वरूप है; द्वैत कुछ नहीं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नामाष्टचत्वा-रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो नानात्व भासता है सो वास्तव एक ब्रह्मस्वरूप है, चैत्यता से एक का अनेक रूप हो भासता है। जैसे एक दीप से अनेक दीप होते हैं तैसेही एक परब्रह्म से अनेक रूप हो भासते हैं। हे रामजी! यह असत्‌रूपी जगत् जिसमें आभास है उस आत्मतत्त्व का जब पदार्थ ज्ञान होता है तब चित्त में जो अहंभाव है सो नष्ट हो जाता है और उस अहंभाव के नष्ट हुये सब शोक नष्ट हो जाते

हैं। हे रामजी! जीव चित्तरूपी है और चित्त में जगत् हुआ है।
चित्त नष्ट हो तब जगत्भ्रम भी नष्ट हो जावेगा। जैसे अपने चरण
चर्म की जूती पहनते हैं तो सर्व पृथ्वी चर्म से लपेटी प्रतीत होती है
ताप कण्टक नहीं लगते हैं तैसेही जब चित्त में शान्ति होती है तब
जगत् शान्तिरूप होता है। जैसे केले के थम्भ में पत्रों के सिवाय अ
कुछ सार नहीं निकलता तैसेही सब जगत् भ्रममात्र है और इससे
कुछ नहीं निकलता है। हे रामजी! इतना भ्रम चित्तसे होता है। बाल
वस्था में क्रीड़ा करता फिरता है; यौवन अवस्था धारण करके वि
को सेवता है और वृद्धावस्था में चिन्ता से जर्जरीभूत होता है फिर मृ
होकर कर्मों के अनुसार नरक स्वर्ग में चला जाता है। हे रामजी!
सब मनका नृत्य है। मनहीं भ्रमता है जैसे नेत्रदूषण से आकाश
दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही अज्ञान से जगत्भ्रम भासता है।
मद्यपान करके वृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही चित्त के संयोग से भ्रम क
जगत्द्वैत भासते हैं। जैसे बालक लीला करके भ्रम से जगत् को
की नाईं भ्रमता देखता है तैसेही चित्तके भ्रम से जीव जगत्भ्रम दे
है। हे रामजी! जब चित्तद्वैत नहीं चेतता तब यह द्वैतभ्रम मिट ज
है। जबतक चित्तसत्ता फुरती है तबतक नाना प्रकार का जगत् भा
है और शान्ति नहीं पाता और जब घन चेतनता पाता है तब शा
पाकर जगत्भ्रम मिट जाता है। जैसे पपीहा बकता है और शान्ति
नहीं होता पर घन वर्षा से तृप्त होकर शान्त होता है तैसेही जब
महाचैतन्य घनता को प्राप्त होता है तब शान्तिमान् होता है तब
चाहे व्यवहार में हो अथवा तूष्णी रहे सदा शान्तिमान् होता है
रामजी! जब चित्त की चैतन्यता फुरती है तब जगत्भ्रम से न
प्रकार के विकार देखता है और भ्रम सेही ऐसे देखता है कि, मैं उ
हूं; अब बड़ा हुआ हूं और अब मैं मरूंगा। पर वास्तव में जीव चै
ब्रह्म से अनन्यस्वरूप है। जैसे वायु और स्पन्द में कुछ भेद
तैसेही ब्रह्म और चैतन्यता में कुछ भेद नहीं जैसे वायु सदा रहता है

जब स्पन्दरूप होता है तब स्पर्श करता भासता है तैसेही चैतन्यता मिटती नहीं। ब्रह्म की चेतना हो तब जगत्भ्रम मिट जाता है और केवल ब्रह्मसत्ताही भासती है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्पभ्रम होता है और रस्सी के यथार्थ जाने से सर्पभ्रम मिट जाता है तो रस्सी ही भासती है; तैसेही ब्रह्म के अज्ञान से जगत्भ्रम भासता है और जब चित्त से दृढ़ चैत्यता भासती है तब भ्रम पदार्थ का ज्ञान होता है और तभी जगत्भ्रम भी मिट जाता है केवल ब्रह्मसत्ता ही भासती है। हे रामजी! दृश्यरूपी व्याधिरोग लगाहै और उस रोग का नाशकर्त्ता संवित्मात्र है जब तक चित्त बहिर्मुख होकर दृश्य को चेतताहै तबतक शान्त नहीं होता और जब सर्व वासना को त्यागकर अपने स्वभाव में स्थित अन्तर्मुख होगा तब उसही काल में मुक्तिरूप शान्त होगा—इसमें कुछ संशय नहीं। जैसे रस्सी दूरके देखनेसे सर्प भासती है और जब निकट होकर देखे तब सर्पभ्रम मिटजाता है रस्सीही भासती है; तैसेही आत्मा का निवृत्तरूप जगत् है; जब बहिर्मुख होके देखताहै तब जगत्ही भासता है और जब अन्तर्मुख होके देखता है तब जगत्भ्रम मिटकर आत्माही भासता है। हे रामजी! जिसमें अभिलाषा हो उसको त्याग दे। ऐसे निश्चय से मुक्ति प्राप्त होती है त्याग का यत्न कुछ नहीं। महात्मा पुरुष प्राणों को तृण की नाईं त्याग देते हैं और बड़े दुःख को सह रहते हैं। तुमको अभिलाषा त्यागने में क्या कठिनताहै? हे रामजी! आत्मा के आगे अभिलाषा ही आवरण है। अभिलाषा के होते आत्मा नहीं भासताहै। जैसे बादलों के आवरण से सूर्य नहीं भासता और जब बादलोंका आवरण नाशहोताहै तब सूर्य भासता है; तैसेही अभिलाषा के निवृत्तहुये आत्मा भासता है। इससे जो कुछ अभिलाषा उठे उसको त्यागो और निरभिलाषा होकर आत्मपद में स्थित हो। प्रकृत आचार देह और इन्द्रियों में ग्रहण करो और जो कुछ त्याग करना हो उसको त्याग करो पर देह में ग्रहण त्याग की बुद्धि न हो। हे रामजी! जो तुम सम्पूर्ण दृश्य की इच्छा त्यागोगे तो जैसे हाथ में बेलफल प्रत्यक्ष होताहै और जैसे नेत्रों के आगे प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष

भासता है तैसेही अभिलाषा के त्याग से आत्मपद तुमको प्रत्यक्षभा
और सब जगत् भी आत्मरूप ही भासेगा। जैसे महाप्रलय में सब ज
जल में भासताहै और कुछ दृष्टि ही नहीं आता तैसेही आत्मपद से
तुमको कुछ न भासेगा। आत्मतत्त्व को न जानने का ही नाम ब
है और आत्मपद का जाननाही मोक्ष है और मोक्ष कोई नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे संश्रितउपशमयोगोनामैकोन
पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ४९ ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! मन क्योंकर उत्पन्न हुआ है? वशि
बोले; हे रामजी! ब्रह्म अनन्तशक्ति है और उसमें अनेक प्रकार का शि
होताहै। जहां२ जैसी२ शक्ति फुरती है तहां२ तैसाही तैसारूप होक
सता है। जब शुद्ध चिन्मात्र सत्ता चेतन में फुरती है कि, 'अहं अस्मि
उस फुरनेसे जीव कहाता है। वही चित्तशक्ति संकल्प का कारण भ
है। जब वह दृश्य की ओर फुरती है तब जगत्दृश्य होकर भास
और नाना प्रकार के कार्य-कारण हो भासते हैं। रामजीने फिर पूछा
हे मुनियों में श्रेष्ठ! जो इस प्रकार है तो देव किसका नाम है; कर्म क
और कारण किसको कहते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फुरना
रना दोनों चिन्मात्रसत्ता के स्वभाव हैं। जैसे फुरना अफुरना दोनों
के स्वभावहैं परन्तु जब फुरताहै तब आकाश में स्पर्श होकर भास
और जब चलनेसे रहित होताहै तब शान्त होजाता है; तैसेही
चिन्मात्रमें जब चैत्यताका लक्षण, 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूं' होता
उसका नाम 'स्पन्द बुद्धीश्वर' कहते हैं। उससे जगत् दृश्यरूप हो भ
है। उस जगत् दृश्यसे रहित होनेको निस्पन्द कहते हैं। चित्तके फु
नाना प्रकार जगत् हो भासताहै और चित्तके अफुर हुये जगत्भ्रम
जाताहै और नित्य शान्त ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। हे रामजी! ज
कर्म और कारण ये सब चित्तस्पन्द के नाम हैं और चित्तस्पन
भिन्न अनुभव नहीं, अनुभव ही चित्तस्पन्दहुये की नाईं भासता
जीव, कर्म और कारणका बीजरूप चित्तस्पन्दही है। चित्तस्प

दृश्य होकर भासताहै, फिर चिदाभासद्वारा देह में अहंप्रतीति होती है और उस देह में स्थित होकर चित्तसंवेदन दृश्य की ओर संसरता है। संसरना दो प्रकार का है—एक बड़ा और दूसरा अल्प। कितनों को संसरने में अनेकजन्म व्यतीत होते हैं और कितनों को एकजन्म होता है। आदिही फुरकर जो स्वरूप में स्थित हैं उनको प्रथमजन्म होताहै और जो आदि उपजकर प्रमादी हुये हैं सो फुरकर दृश्यकी ओर चलेजाते हैं और उनके बहुतेरे जन्म होते हैं। चित्तके फिरनेसे ऐसा अनुभव करते हैं। पुण्यक्रिया करके स्वर्ग में जातेहैं और पापक्रिया करके नरकमें जाते हैं। इस प्रकार दृश्यभ्रम देखतेहैं और अज्ञान से बन्धन में रहतेहैं। जब ज्ञानकी प्राप्ति होती है तब मोक्ष का अनुभव करते हैं सो बड़ा संसरना है और जो एकही जन्म पाकर आत्मा की ओर आतेहैं वह अल्पसंसरना है। हे रामजी! जैसे स्वर्ण ही भूषणरूप धारण करता है तैसे ही संवेदन ही काष्ठलोष्ट आदिकरूप होके भासता है। इस चित्त के संयोग से ही अज और अविनाशी पुरुष को नानाप्रकार के देह प्राप्त होते हैं और जानता है कि, मैं अब उपजा, अब जीता हूं फिर मरजाऊंगा। जैसे नौका में बैठे भ्रम से तट के वृक्ष भ्रमते दीखते हैं तैसेही भ्रम से अपने में जन्मादि अवस्था भासती हैं। आत्मा के अज्ञान से जीव को 'अहं' आदि कल्पना फुरती हैं। जैसे मथुरा के राजा लवण को स्वप्ने में चाण्डाल का भ्रम हुआ था तैसेही चित्त के फुरने से जीव जगत्भ्रम देखते हैं। हे रामजी! यह सब जगत् मन के भ्रम से भासता है। शिव जो परम तत्त्व है सो चिन्मात्र है; उसमें जब चैत्योन्मुखत्व होता है कि, 'मैं हूं' उसका ही नाम जीव है। जैसे सोमजल में द्रवता होता है, इससे उसमें चक्र फुरते हैं और तरङ्ग होते हैं; तैसेही ब्रह्मरूपी सोमजल में जीवरूपी चक्र फुरते हैं और चित्तरूपी तरङ्ग उदय होते हैं और सृष्टिरूपी बुद्बुदे उपजकर लीन हो जाते हैं। हे रामजी! चेतन स्फूर्तिद्वारा जीव की नाईं भासता है। जैसे समुद्र ही द्रवता से तरङ्गरूप हो भासता है; तैसेही चित्त चैत्य के संयोग से जीव कहाता है। उस जीव

में जब संकल्प का फुरना होता है तब मन कहाता है; जब संकल्प नि
रूप होता है तब बुद्धि होकर स्थित होता है और जब अहंभाव हो
तब अहं प्रतिकार कहाता है। उस अहंभाव को पाकर तन्मात्रा की क
होती है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये सूक्ष्म भूत
हैं-उनके पीछे जगत् होता है। हे रामजी! असत्‌रूपी चित्त के सं
से ही जगत्‌रूप हो भासता है। जैसे नेत्रदूषण से आकाश में मुक्त
भ्रममात्र गन्धर्वनगर और स्वप्नभ्रम से स्वप्नजगत् भासते हैं तैसेही
के संसरने से जगत्‌भ्रम भासता है। हे रामजी! शुद्ध आत्मा नि
तृप्त, शान्तरूप, सम और अपने आपही में स्थित है। उसमें चित्तसं
ने जगत् रचा है और उसको भ्रम से सत्य की नाईं देखता है। जैसे
सृष्टि को मनुष्य भ्रम से देखता है; तैसेही यह जगत् फुरने से सत्य भा
है। हे रामजी! मन के संसरने का नाम जाग्रत् है; अहंकार का
स्वप्न है; चित्त जो सजातीयरूप चेतनेवाला है उसका नाम सुषु
और चिन्मात्र का नाम तुरीयपद है। जब शुद्ध चिन्मात्र में अत
परिणाम हो तब उसका नाम तुर्यातीत पद है। उसमें स्थित हुआ
शोकवान् कदाचित् नहीं होता। उसी ब्रह्मसत्ता से सब उदय होते हैं
उसही में सब लीन होते हैं और वास्तव में न कोई उपजा है औ
कोई लीन होता है; चित्त के फुरने से ही सब भ्रम भासता है। जैसे
दूषण से आकाश में मुक्तमाला भासती हैं तैसेही चित्त के फुरने से
जगत् भासता है। हे रामजी! जैसे वृक्ष के बढ़ने को आकाश ठौर
है कि, जितना बीज का सत्ता हो उतना ही आकाश में बढ़ता जावे तै
सबको आत्मा ठौर देता है। अकर्त्तारूप भी संवेदन से भासता है
रामजी! जैसे निर्मल किया हुआ लोहा आरसी की नाईं प्रतिबिम्ब ग्र
करता है तैसेही आत्मा में संवेदन से जगत् का प्रतिबिम्ब होता है
वास्तव में जगत् भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं है। जैसे एक ही बीज,
फूल, फल और टास हो भासता है तैसेही आत्मा संवेदन से नान
जगत् हो भासता है। जैसे पत्र और फूल वृक्ष से भिन्न नहीं होते तै

अबोधरूप जगत् भी बोधरूप आत्मा से भिन्न नहीं। जो ज्ञानवान् है उसको अखण्डसत्ता ही भासती है। जैसे समुद्र ही तरङ्ग और बुद्बुदे होकर और बीज ही पत्र, फूल, फल और टास होकर भासते हैं; तैसेही अज्ञानी को भिन्न २ नामरूपसत्ता भासती है। 'मूर्ख' जो देखता है तो उनके नामरूप सत् मानता है और ज्ञानवान् देखके एक रूप ही जानता है। ज्ञानवान् को एक ब्रह्मसत्ता ही अनन्त भासती है और जगत्भ्रम उनको कोई नहीं भासताहै। इतना सुन रामजी ने कहा; बड़ा आश्चर्य है कि; असत्रूपी जगत् सत् होकर बड़े विस्तार से स्पष्ट भासता है। यह जगत ब्रह्म का आभास है; अनेक तन्मात्रा उसके जल और बूँदों की नाईं हैं और अविद्या करके फुरती हैं। ऐसाभी मैंने सुना है। हे मुनीश्वर! यह स्फूर्त्ति बहिर्मुख कैसे होती है और अन्तर्मुख कैसे होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दृश्य का अत्यन्त अभाव है। अनहोते दृश्य के फुरनेसे अनुभव होताहै। शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मसत्ता में फुरनेसे जो जीवत्व हुआ है वह जीवत्व असत् है और सत् की नाईं होताहै। जीव ब्रह्मसे अभिन्न है पर फुरनेसे भिन्न की नाईं स्थित होता है। उस जीव में जब संकल्पकलना होती है तब मनरूप होके स्थित होता है; स्मरण करके चित्त होता है, निश्चय करके बुद्धि होती है और अहंभाव करके अहंकार होता है। फिर काकताली की नाईं चिद्अणु में तन्मात्रा फुर आती हैं। जब शब्द सुनने की इच्छा हुई तब श्रवण इन्द्रिय प्रकट हुई; जब देखने की इच्छा हुई तब नेत्र इन्द्रिय प्रकट हुई; गन्ध लेने की इच्छा से नासिका इन्द्रिय प्रकट हुई; स्पर्श की इच्छा से त्वचा इन्द्रिय प्रकट हुई और रसलेने की इच्छा से रसना इन्द्रिय प्रकट हुई। इस प्रकार पांचों इन्द्रियां प्रकट हुईहैं और भावना से सतही असत् की नाईं भासने लगीं। हे रामजी! इस प्रकार आदि जीव हुये हैं और उसकी भावनासे अन्तवाहक शरीर हो आये हैं। चलते भासते हैं पर अचलरूप हैं, इससे जो कुछ जगत् भासता है वह सब ब्रह्मस्वरूप है भिन्न कुछ नहीं। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय ब्रह्म है और संवेदन ब्रह्म से ही अनेकरूप नाना प्रकार के भासते हैं। जैसा २ संवेदन

फुरता है तैसा २ रूप होकर भासता है। जब दृश्य को चेतता है त
नाना प्रकार का दृश्य भासता है और जब अन्तर्मुख ब्रह्म चेतता है त
ब्रह्मरूप होकर भासता है। हे रामजी! दृश्य कुछ उपजा नहीं, आत्
सदा अपने आप में स्थित है। जब दृश्य असंभव हुआ तब बन्धन औ
मोक्ष किसको कहिये और विचार किसका कीजिये? सर्वकल्पना क
अभाव है। यह जो तुम्हारा प्रश्न है उसका उत्तर सिद्धान्तकाल में होग
यहां न बनेगा। जैसे कमल के फूलों की माला अपने काल में बन
है और विनासमय शोभा नहीं देती तैसेही तुम्हारा प्रश्न सिद्धान्तका
में शोभा पावेगा समय विना सार्थक शब्द भी निरर्थक होता है।
रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं उनका फल भी समय पाके होता है; सम
विना नहीं होता इससे अब पूर्वप्रसङ्ग सुनो। हे रामजी! ब्रह्म में चैत्य
न्मुखत्व से आदि जीव ने आप को पिता माता जाना। जैसे स्वप्न
आपको कोई देखे तैसेही ब्रह्माजी ने आपको जाना उन ब्रह्मा ने प्रथ
'ॐ' शब्द उच्चारण किया; उस शब्द तन्मात्रा से चारों वेद देखे औ
उसके अनन्तर मनोराज से सृष्टि रची। तब असत्‌रूप सृष्टि भावना
सत्य होकर भासने लगी। जैसे स्वप्न में सर्प और गन्धर्बनगर भासते
तैसेही असत्यरूप सृष्टि सत्य भासने लगी। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता में जै
ब्रह्माआदिक उपजे हैं तैसेही और जीव, कीट आदिभी उत्पन्न हुये। जग
का कारण संवेदन है। संवेदन भ्रम से जीवों का जगत् भासता है। उनक
भौतिक शरीर में जो अहंप्रतीति हुई है उससे अपने निश्चय के अनुसा
शक्ति हुई। ब्रह्मा में ब्रह्मा की शक्ति का निश्चय हुआ और चींटी में चीं
की शक्ति का निश्चय हुआ। हे रामजी! जैसी २ वासना संवित् में होत
है उसके अनुसार ही अनुभव होता है। शुद्ध चिन्मात्र में जो चैत्योन्मु
खत्व हुआ उसीका नाम जीव हुआ। उसमें जो ज्ञानरूप सत्ता है सो
पुरुष है और जो फुरना है सोई कर्म है। जैसे २ फुरता है तैसेही तै
भासता है। हे रामजी! आत्मसत्ता में जो अहं हुआ है उसीका नाम चि
है। उससे जो जगत् रचा है वह भी अविचारसिद्ध है; विचार कियेसे न

होजाता है। जैसे अविचार से अपनी परछाहीं में भूत पिशाच कल्पता है और उससे भय उत्पन्न होता है पर विचार कियेसे पिशाच और भय दोनों नष्ट होजाते हैं; तैसेही हे रामजी! आत्मविचार से चित्त और जगत् दोनों नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! ब्रह्मसत्ता सदा अपने आप में स्थित है; उसमें चित्त कल्पना कोई नहीं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, भी ब्रह्म से भिन्न नहीं तो द्वैत की कल्पना कैसेहो? जैसे शशेके शृङ्ग असत् हैं; तैसे आत्मा में द्वैतकल्पना असत्य है। हे रामजी! यह ब्रह्माण्ड भावनामात्र है। जिसको सत्य भासता है उसको बन्धन का कारण है। जैसे घुरान अर्थात् कुशवारी अपना गृह अपने बन्धन का कारण बनाती है और उसमें फँस मरती है; तैसेही जो जगत् को सत्य मानते हैं उनको अपना मानताही बन्धन करता है और उससे जन्म मरण देखते हैं। जिसको जगत् का असत्य निश्चय हुआ है उसको बन्धन नहीं होता—उसको उल्लास है। हे रामजी! अनुभवसत्ता सबका अपना आप है। उसमें जो जैसा निश्चय किया उसको अपने अनुभव के अनुसार पदार्थ भासते हैं। वास्तव में तो जगत् उपजाही नहीं। जगत् का उपजना भी मिथ्या है; बढ़ना भी मिथ्या है; रसभी मिथ्या है और रसलेनेवाला भी मिथ्या है। शुद्धब्रह्म सर्वगत, नित्य और अद्वैत सदा अपने आप में स्थित है परन्तु अज्ञान से शुद्ध भी अशुद्ध भासता है; सर्व जगत् भी परिच्छिन्न भासता है; ब्रह्म भी अब्रह्म भासताहै; नित्य भी अनित्य भासता है और अद्वैत भी द्वैतसहित भासता है। हे रामजी! अज्ञान से ऐसा भासता है। जैसे जल और तरङ्गमें मूर्ख भेद मानतेहैं परन्तु भेद नहीं; तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद अज्ञानी देखते हैं। जैसे सुवर्ण में भूषण और रस्सी में सर्प मूर्ख देखतेहैं; तैसेही ब्रह्म में नानात्व मूर्ख देखतेहैं; ज्ञानीको सब चिदाकाश है। हे रामजी! जब आत्मसत्ता में अनात्मरूप दृश्यकी चैत्यता होती है तब कल्पना उत्पन्न होती है और मनरूप होके स्थित होतीहै। उसके अनन्तर अहंभाव होताहै और फिर तन्मात्रकी कल्पना होकर शब्दअर्थ की कल्पना होती है। इसी प्रकार चित्सत्ता में जैसी २ चैत्यता फुरतीहै तैसाही तैसारूप

भासनेलगताहै ।सत् असत् पदार्थ वासना के वश फुरआतेहैं । स्वप्नसृष्टि फुर आती है सो अनुभवरूपही होती है यह जगत् फुर आ है सो अनुभवरूप है। इससे सृष्टिमें भी चिन्मात्र है और चिन्मात्र ह सृष्टि है। सबको सत्तारूपी भीतर बाहर ऊर्ध्व अध चिन्मात्रही है। प्रमा प्रमाण और प्रमेय सब पद चिन्मात्रही में धारे हैं नित्य उपशान्तरू सम सत् जगत् की सत्ता उसही से होतीहै सो एकही सम है और तु अतीतपद नितही स्थित है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशोनाम पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रसङ्गपर एक पुरातन इतिहा और उसमें महा प्रश्नों का समूह है सो सुनो । काजल के पर्वत की कर्कटीनाम एक महाश्याम राक्षसी हिमालय पर्वत के शिखरपर विसूचिका भी उसका नाम था। अस्थिर बिजली की नाईं उसके और अग्नि की नाईं बड़ी जिह्वा चमत्कार करती थी और उसके नख और ऊंचा शरीर था। जैसे बड़वाग्नि तृप्त नहीं होता तैसेही भी भोजन से तृप्त न होती थी। उसके मन में विचार उपजा कि ज द्वीप के सम्पूर्णजीवों को भोजन करूं तो तृप्त होऊं अन्यथा मेरी नहीं होती । आपदा उद्यम किये से दूर होती है इससे मैं अखण्डा होकर तप करूं। हे रामजी! ऐसा विचारकर वह एकान्त हिमा पर्वतकी कन्दरा में एक टांगसे स्थितहुई और दोनों भुजाओं को उठ नेत्र आकाश की ओर किये मानो मेघको पकड़तीहै। शरीर और प्र को स्थित करके मूर्त्ति की नाईं होगई। शीत और उष्ण के क्षोभ से र हुई और पवन से शरीर जर्जरीभाव हुआ। जब इस प्रकार सहस्र दारुण तप किया तब ब्रह्माजी आये। और राक्षसीने उन्हें देख मनसे नमस्कार किया और मनमें बिचारा कि, मेरे वर देने के निमि यह आये हैं। तब ब्रह्माजीने कहा, हे पुत्री! तूने बड़ा तपकिया। अब खड़ीहो और जो कुछ चाहती है वह वरमांग। कर्कटी बोली, हे भगव

मैं लोहेकी नाईं वज्रसूचिका होऊं जिससे जीवों के हृदय में प्रवेश करजाऊं। हे रामजी! जब ऐसे उस मूर्ख राक्षसी ने वर मांगा तब ब्रह्माजीने कहा ऐसेहीहो। तेरा नामभी प्रसिद्ध विसूचिका होगा। हे राक्षसी! जो दुराचारी जीव होंगे उनके हृदय में तू प्राणवायु के मार्ग से प्रवेश करेगी और जो गुणवान् तेरे निवृत्त करने के निमित्त 'ॐ' मन्त्र पढ़ेंगे और यह पढ़ेंगे कि, हिमालय के उत्तर शिखर में कर्कटीनाम राक्षसी विसूचिका है सो दूरहो और विसूचिका का दुःखी चन्द्रमा के मण्डल में चितवे कि, अमृत के कुण्डमें बैठा है और राक्षसी हिमालयके शिखर को गई तब तू उनको त्याग जाना। उनमें तू प्रवेश न करसकेगी। हे रामजी! इसप्रकार कहके ब्रह्माजी आकाशको उड़े और इन्द्र और सिद्धोंके मार्गसे गये और वही मन्त्र उनको भी सुनाया। जब उन्होंने उस मन्त्रको प्रसिद्ध किया तब कर्कटी का शरीर सूक्ष्म होनेलगा। जैसे संकल्प का पहाड़ संकल्प के क्षीण हुये से क्षीण होजाता है तैसेही क्रम से प्रथम जो उसका मेघवत् आकार था सो घटकर वृक्षवत् होगया। फिर वह पुरुषरूप होगई; फिर हस्तमात्र; फिर प्रादेशमात्र और फिर लोहे की सुई की नाईं सूक्ष्म होगई। हे रामजी! ऐसे रूप को कर्कटी ने धारा जिसको देख मूर्ख अविचारी पुरुष तृण की नाईं शरीर को त्यागते हैं। जो पुरुष परस्पर की विचारते हैं सो पीछे से कष्ट नहीं पाते और जो पूर्वापर विचार से रहित हैं सो पीछे कष्ट पाते हैं और अनर्थ करके औरों को कष्ट देते हैं। वे एक पदार्थ को केवल भला जानके उसके निमित्त यत्न करते हैं; न धर्म की ओर देखते हैं और न सुख की ओर देखते हैं। इस प्रकार मूर्ख राक्षसी ने भोजन के निमित्त बड़े गम्भीर शरीर को त्याग कर तुच्छ शरीर को अङ्गीकार किया। उसके एक शरीर तो सूक्ष्म हुआ और दूसरा पुर्यष्टक हुआ। कहीं तो सूक्ष्म शरीर से जिसको इन्द्रियां भी न ग्रहण कर सकें प्रवेश करे और कहीं पुर्यष्टक से जा प्रवेश करे। कहीं प्राणवायु के साथ प्रवेश करके दुःख दे और कहीं प्राणों को विपर्ययकरे तब प्राणी कष्ट पावें और कहीं रक्त आदिक रसों का पानकर एक बूंद से उदर पूर्ण हो जावे

परन्तु तृष्णा निवृत्त न हो। जब शरीर से बाहर निकले तब भी कष्ट
और वायु चले उससे गढ़े और कीचड़ में गिरे और चरणों के
आवे। निदान कभी देशों में रहे और कभी घास और तृणों में रह
नीच पापी जीव हैं उनको कष्ट दे और जो गुणवान् हों उनको क
देसके। मन्त्र पढ़ने से निवृत्त होजावे। जो आप किसी छिद्र में भी
तो जाने कि मैं बड़े कूप में गिरी। हे रामजी! मूर्खता से उसने इ
कष्ट पाये। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशि
ने कहा तब सूर्य अस्त होकर सायंकालका समय हुआ तब सब सभा पर
नमस्कार करके स्नान को गई और विचारसंयुक्त रात्रि व्यतीत क
सूर्य की किरणों के निकलतेही फिर आ स्थित हुई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे विसूचिकाव्यवहार
वर्णनन्नामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार प्राणियों को मारते
कुछ वर्ष बीते तब उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि, बड़ा कष्ट
बड़ा कष्ट!! यह विसूचिका शरीर मुझको कैसे प्राप्त हुआ है!!!
मूर्खता से यह वर ब्रह्माजी से मांगा था। मूर्खता बड़े दुःख को
करती है! कैसा मेघ की नाईं मेरा शरीर था कि, सूर्यादिक को
लेती थी। हाय मन्दराचल पर्वत की नाईं मेरा उदर और बड़वा
की नाईं मेरी जीभ कहां गई? जैसे कोई अभागी पुरुष चिन्ताम
को त्याग दे और कांच अङ्गीकार करे तैसेही मैंने बड़े शरीर को त्य
के तुच्छ शरीर का अङ्गीकार किया जो एक बूंद से ही तृप्त होजात
परन्तु तृष्णा पूरी नहीं होती। उस शरीरसे मैं निर्भय विचरती थी यह श
पृथ्वी के कण से भी दब जाता है। अब तो मैं बड़े कष्ट पाती हूं
मैं मृतक होजाऊं तो छूटूं; परन्तु मांगी हुई मृत्यु भी हाथ नहीं आ
इससे मैं फिर शरीर के निमित्त तप करूं। वह कौन पदार्थ है जो उ
किये से हाथ न आवे। हे रामजी! ऐसे विचारकर वह फिर हिमा
पर्वत के निर्ज्जनस्थान वन में जा एक टांग से खड़ी हुई और ऊर्ध्व

करके तप करने लगी। हे रामजी! जब पवन चले तो उसके मुख में फल, मांस और जल के कणके पड़ें परन्तु वह न खाय बल्कि मुख मूंद ले। पवन यह दशा देख के आश्चर्यवान् हुआ कि, मैंने सुमेरु आदि को भी चलायमान किया है परन्तु इसका निश्चय चलायमान नहीं होता। निदान मेघ की वर्षा से वह कीचड़ में दबगई परन्तु ज्यों की त्योंही रही और मेघ के बड़े शब्द से भी चलायमान न हुई। हे रामजी! इस प्रकार जब सहस्र वर्ष उसको तप करते बीते तब दृढ़ वैराग्य से उसका चित्त निर्मल हुआ और सब संकल्पों के त्याग से उसको परमपद की प्राप्ति हुई; बड़े ज्ञान का प्रकाश उदय हुआ और परब्रह्म का उसको साक्षात्कार हुआ उससे परमपावनरूप होकर चित्तसूची हुई अर्थात् चैतन में एकत्वभाव हुआ। जब उसके तप से सातों लोक तपायमान हुये तब इन्द्र ने नारदजी से प्रश्न किया कि, ऐसा तप किसने किया है जिससे लोक जलने लगे हैं? तब नारदजी ने कहा; हे इन्द्र! कर्कटी नाम राक्षसी ने सात हज़ार वर्ष बड़ा कठिन तप किया। जिससे वह सूचिका हुई। वह शरीर पा उसने बहुत कष्ट पाया और लोगों को भी कष्ट दिया जैसे विराट् आत्मा और चित्तशक्ति सब में प्रवेश करजाती है तैसेही वह भी सब की देह में प्रवेश कर जाती थी। जो मन्त्र जाप न करें उनके भीतर प्रवेश करके रक्त मांस भोजन करे परन्तु तृप्त न हो मन में तृष्णा रहे और सूक्ष्मशरीर धूल में दबजावे। इस प्रकार उसने बहुत कष्ट पाके विचार किया कि, उद्यम से सब कुछ प्राप्त होता है इससे पूर्व शरीर के निमित्त फिर एकान्त स्थान में जाकर तप करूं इतने में एक गीध पक्षी वहां आकर कुछ भोजन करने लगा कि, उसकी चोंच के मार्ग से विसूचिका भीतर चली गई। जब वह पक्षी कष्ट पाके उड़ा तो वह विसूचिका उसकी पुर्यष्टक से मिलके और उसको प्रेरके हिमालय पर्वत की ओर इस भांति लेचली जैसे वायु मेघ को लेजाता है। उस गीध ने वहां पहुँचकर वमन करके विसूचिका को त्याग दिया और आप सुखी होकर उड़ गया। तब उसी शरीर से विसूचिका वहां तप करने

लगी। हे रामजी! इस प्रकार इन्द्र ने सुनकर उसके देखने के निमि
पवन चलाया। तब पवन आकाश छोड़के भूतल में उतरा और लोक
लोक पर्व्वत, स्वर्ण की पृथ्वी, समुद्रों और द्वीपों को लांघ के क्रम
हिमालय के वन में सूक्ष्म शरीर से आया और क्या देखा कि, पवन च
रहा है और सूर्य तप रहे हैं परन्तु वह चलायमान नहीं होती और प्रा
वायु का भी भोजन नहीं करती तब पवन ने भी आश्चर्यमान हो
कहा। हे तपस्विनी! तू किसलिये तप करती है? पर विसूचिका त
भी न बोली। पवन ने फिर कहा भगवती विसूचिका ने बड़ा तप कि
है—अब इसको कोई कामना नहीं रही ऐसे कहके पवन उड़ा और क्रम
इन्द्र के पास गया। इन्द्र विसूचिका के दर्शन के माहात्म्य से पवन क
कण्ठ लगाय मिले और बड़ा आदर किया कि, तू बड़े पुण्यवान्
दर्शन करके आया है। पवन ने भी सब वृत्तान्त कह सुनाया औ
कहा, हे राजन्! उसके तप के तेज से हिमालय की शीतलता दब ग
है। आप ब्रह्माजी के पास चलिये नहीं तो उसके तप से सब जग
जलेगा। तब इन्द्र पवन और देवतागणों सहित ब्रह्माजी के पास आ
और प्रणाम करके बैठे। ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारी जो अभिलाषा है व
मैंने जानी। इस प्रकार इन्द्र से कहकर ब्रह्माजी विसूचिका के पा
जिसका नाम सूची था आये और उसको देखके आश्चर्यमान हुये कि
तृण की नाईं विसूचिका ने सुमेरु से भी अधिक धैर्य धारणकिया है जै
मध्याह्न का सूर्य तेजवान् होता है तैसे ही इसका तप से तेज हुआ
और परब्रह्म में स्थित हुई है अब इसका जगत्भ्रम शान्त होगया है इ
से बन्दना करने योग्य है। हे रामजी! फिर आकाश में स्थित होक
ब्रह्माजी ने कहा; हे पुत्री! तू अब वर ले तब विसूचिका विचारकर कह
लगी कि, जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना और शान्तरू
हुई हूं सम्पूर्ण संशय मेरे नष्ट हुये अब वर से मुझे क्या प्रयोजन है? य
जगत् अपने संकल्प से उपजा है। जैसे बालक को अपनी परछाहीं
वैताल बुद्धि होती है और उससे भय पाता है तैसेही मैं स्वरूप के प्रसा

से भटकती फिरी । अब इष्ट अनिष्ट जगत् की मुझको कुछ इच्छा नहीं। अब मैं निर्विकार शान्ति में स्थित हूं। हे रामजी! ऐसे कहकर जब सूची तूष्णी हो रही तब बीतराग और प्रसन्नबुद्धि ब्रह्माजी उसके भाव को देखके कहने लगे; हे कर्कटी! तू कुछ वर ले क्योंकि; कुछ काल तुझे भूतल में बिचरना है। भोगों को भोग के तू विदेहमुक्त होगी। अब तू जीवन्मुक्त होकर बिचरेगी। नीति के निश्चय को कोई नहीं लांघ सक्ता। जब तू तप करने लगी थी तब पूर्व देह के पाने का संकल्प किया था। तेरा वह संकल्प अब सफल हुआ है। जैसे बीज में वृक्ष का सद्भाव होता है सो काल पाकर होता है तैसे ही तेरे में पूर्व शरीर का जो संकल्प था सो अब प्राप्त होवेगा अर्थात् वैसाही शरीर पाके तू हिमालय के वन में बिचरेगी। हे पुत्री! तुझे तो अनिच्छित योग हुआ है। जैसे कोई छाया के निमित्त आंब के वृक्ष के निकट आन बैठे और उसे छाया और फल दोनों प्राप्त हों तैसे ही तूने शरीर की वृद्धि के लिये यत्न किया था वह तुझे तृप्ति करनेवाला हुआ है और ब्रह्मतत्त्व भी प्राप्त हुआ। हे पुत्री! राक्षसी शरीर में जीवन्मुक्त होके तू बिचरेगी और दूसरा जन्म तुझको न होगा। इस जन्म में तू परमशान्त रहेगी और शरत्काल के आकाश की नाईं निर्मल होगी। जब तेरी वृत्ति बहिर्मुख फुरेगी तब सब जगत् तुझको आत्मरूप भासेगा; व्यवहार में समाधि रहेगी और समाधि में भी समाधि रहेगी। पापीजीवों को तू भोजन करेगी; न्यायबान्धव तेरा नाम होगा और विवेकपालक तेरी देह होगी। इससे पूर्व के शरीर को अङ्गीकार कर। इतना कह फिर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ऐसे कहकर जब ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये तब सूची ने कहा ऐसे ही हमको दोनों तुल्य हैं। तब जैसे बीज से वृक्ष होता है तैसेही क्रम से शरीर बढ़गया। प्रथम प्रादेशमात्र हुआ, फिर हस्तमात्र हुआ; फिर वृक्षमात्र हुआ और फिर योजनमात्र होगया। जैसे संकल्प का वृक्ष एक क्षण में बढ़जाता है तैसे उसका शरीर बढ़गया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीशरीरलाभोनाम द्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जैसे वर्षाकाल का बादल सूक्ष्म से स्थूल होजाता है तैसे सूची सूक्ष्मशरीर से फिर कर्कटी राक्षसी होगई। जैसे सर्प काञ्चली त्याग के फिर ग्रहण नहीं करता तैसेही राक्षसी ने आत्म तत्त्व के कारण शरीर न ग्रहण किया। छः महीने तक पहाड़ के शिख की नाईं खड़ी रही और फिर पद्मासन बांध संवित्सत्ता और निर्विकल्प पद में स्थित हुई। जब प्रारब्ध के वेग से जागी तब वृत्ति बहिर्मुख हुई और क्षुधा लगी क्योंकि; शरीर के स्वभाव शरीर पर्यन्त रहते हैं तब विचारने लगी कि, जो विवेकी हैं उनका मैं भोजन न करूंगी उनके भोजन से मेरा मरना श्रेष्ठ है पर जो न्याय से भोजन करने योग्य है उसको खाऊंगी और जो शरीर भी नष्ट हो तौ भी न्याय विना भोजन न करूंगी। देहादिक सब संकल्प मात्र हैं; मुझे न मरने की इच्छा है और न जीने की। हे रामजी ! जब ऐसे विचारकर सूची तूष्णीं हो बैठी और राक्षसी स्वभाव का त्याग किया तब सूर्य भगवान् ने आकाश वाणी से कहा; हे कर्कटी ! तू जाके मूढ़जीवों का भोजन कर। जब तू उनका भोजन करेगी तब उनका कल्याण होगा। मूढ़ों का उद्धार करना भी सन्तों का स्वभाव है। जो विवेकी पुरुष हैं उनको न खाना और जो तेरे उपदेश से ज्ञान पावें उनको भी न मारना जो उपदेश से भी बोधात्मा न हों उनका भोजन करना—यह न्याय है। तब राक्षसीने कहा, हे भगवन् ! तुमने अनुग्रह करके जो कहा है वही मुझसे ब्रह्माजी ने भी कहा था। ऐसे कहकर सूची हिमालय के शिखर से उतरी और जहां किरातदेश था और बहुत मृग और पशु रहते थे उनमें बिचरने लगी। रात्रि में श्यामराक्षसी और श्यामही तमालवृक्ष भी महाअन्धकार भासते थे—मानों कज्जल का मेघ स्थित भया है। ऐसी श्यामता में किरातीदेश के राजा मन्त्री और वीरों सहित यात्रा को निकले तो उनको आतेदेख राक्षसी ने बिचारा कि; मुझे भोजन मिला। यह मूढ़ अज्ञानी हैं और इनको देहाभिमान है; इन मूर्खों के जीने से न यह लोक न परलोक कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। ऐसे जीवों का जीना दुःख के निमित्त

इसलिये इनको यत्न करके भी मारनायोग्यहै और इनका पालना अनर्थ के निमित्त है क्योंकि, यह पाप को उदय करते हैं। ब्रह्मा की आदि नीति है कि, पापी मारने योग्य हैं और गुणवान् मारने योग्य नहीं। कदाचित् ये गुणवान् हों तो मैं इन्हें न मारूंगी। गुणवान् भी दो प्रकार के होते हैं। जो अमानी, अदम्भी, अहिंसक, शान्तिमान् और पुण्यकर्म करनेवाले हैं वे भी गुणवान् हैं पर महागुणवान् तो ब्रह्मवेत्ता हैं जिनके जीने से बहुतों के कार्य सिद्ध होते हैं इसलिये जो मेरा शरीर भोजन विना नष्ट भी होजावे तो भी मैं गुणवान् को न मारूंगी जो उदार पुरुष है वह पृथ्वी का चन्द्रमा है; उसकी संगति से स्वर्ग और मोक्ष होता है। जैसे संजीवनी बूटी से मृतक भी जीता है तैसे ही सन्तों के संग से अमृत होता है। इससे मैं प्रश्न करके इनकी परीक्षा लूं; कदाचित् यह भी गुणवान् हों। यह कमलनयन ज्ञानवान् भासते हैं; यदि यथार्थ ज्ञानवान् पुरुष हैं तो पूजने योग्य हैं और जो मूर्ख हैं तो दण्ड देने योग्य हैं और मैं उनको अवश्य भोजन करूंगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारोनाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तब वह राक्षसी उनको देखके मेघ की नाईं गरजने लगी और कहा; अरे आकाश के चन्द्रमा और सूर्य! तुम कौन हो? बुद्धिमान् हो अथवा दुर्बुद्धि हो? कहां से आये हो और तुम्हारा क्या आचार है? तुम तो मुझको ग्रास की नाईं आन प्राप्त हुये हो इससे अब मैं तुमको भोजन करूंगी। राजा बोले; अरी! इस भौतिक तुच्छ शरीर को पाकर तू कहां रहती है? हमको देखके जो तू गरजती है सो तेरा शब्द हमको भ्रमरी के शब्दवत् भासता है; हमको कुछ भय नहीं। हे राक्षसी! यह शरीर तेरा मायामात्र है इसलिये इस तुच्छ स्वभाव को त्याग के जो कुछ तेरा अर्थ है वह कह हम पूर्णकर देंगे। तब राक्षसी ने उनके डराने को ग्रीवा और भुजा को ऊंचे करके प्रलयकाल के मेघों की नाईं फिर बड़ा शब्द किया कि, जिसके नाद से पहाड़ भी

चूर्ण होजावें। निदान सब दिशा शब्द से भरगईं और वह बिजली
नाईं नेत्रों को चमकाने लगी। उसकी मूर्ति देख राक्षस और पिश
भी शङ्कायमान हों पर ऐसे भयानक स्वरूप को देखके भी उन दोनों
धीरज रक्खा। मन्त्री ने कहा; अरी राक्षसी! ऐसे शब्द तू व्यर्थ कर
है। इससे तो तेरा कुछ प्रयोजन न सिद्ध होगा इसलिये इस आरम्भ
त्यागके अपना अर्थ कह। बुद्धिमान् पुरुष उस अर्थ को ग्रहण करते
जो अपना विषयभूत होता है और जो अपना विषय भूत नहीं हो
उसके निमित्त वे यत्न नहीं करते हम तेरे विषयभूत नहीं तुझ ऐसे
हजारों हमने मारडाले हैं। हे राक्षसी! हमारे धैर्यरूपी पवन से तुझ ऐ
अनन्त मक्खियां तृणवत् उड़ती फिरती हैं। इससे अपने नीच स्वभ
को त्याग स्वस्थचित्त होके जो कुछ तेरा प्रयोजन हो सो कह। बुद्धिम
स्वस्थचित्त होके व्यवहार करते हैं; स्वस्थ हुये विना व्यवहार भी सि
नहीं होता; यह आदि नीति है। हमारे पास से स्वप्न में भी कोई-अ
व्यर्थ नहीं गया। हम सबका अर्थ पूर्ण करते हैं इसलिये तू भी हम
अपना प्रयोजन कहदे। तब राक्षसी समझी कि, यह कोई बड़े उ
आत्मा और उज्ज्वल आचारवान् हैं और जीवों के समान नहीं।
बड़े प्रकाशवान् और धैर्यवान् जान पड़ते हैं उदारता केसे इनके व
ज्ञानवानों से मिलते हैं। अब मैंने इनको जाना है और इन्होंने मुझ
जाना है इससे मुझसे इनका नाश भी न होगा। अविनाशी पुरुष अ
सत्ता में स्थित हैं इससे ज्ञानवान् हैं। ऐसा निश्चय ज्ञान विना किसी
नहीं होता परन्तु कदाचित् अज्ञानी हो तो फिर सन्देह को अङ्गीक
करके पूछता हूं। जो संदेहवान् होकर बोधवान् से नहीं पूछते वे भी नि
बुद्धि हैं। हे रामजी! ऐसे मन में विचार फिर उसने पूछा; तुम कौन
और तुम्हारा आचार क्या है? निष्पाप महापुरुषों को देखके मित्रभ
उपज आता है! मन्त्री बोला; किरातदेश का यह राजा है और मैं
का मन्त्री हूं। रात्रि में तुमसे दुष्टों के मारने के निमित्त उठे हैं। रा
दिन में हमारा यही आचार है कि, जो जीव धर्मकी मर्यादा त्यागनेवा

हैं। उनका हम नाश करते हैं। जैसे अग्नि ईंधन का नाश करता है। राक्षसी बोली; हे राजन्! यह तेरा दुष्टमन्त्री है। जिस राजा का मन्त्री भला नहीं होता वह राजा भी भला नहीं होता और जिस राजा का मन्त्री भला होता है उसकी प्रजा भी शान्तिमान् होती है। भला मन्त्री वह कहाता है जो राजा को न्याय और विवेक में लगावे। जो राजा विवेकी होता है वह शान्तात्मा होता है और जो राजा शान्तिमान् हुआ तब प्रजा भी शान्तिमान् होती है। सब गुणों से जो उत्तम गुण है वह आत्मज्ञान है। जो आत्मा को जानता है वही राजा और जिसमें प्रभुता और समदृष्टि हो वही मन्त्री है जो प्रभुता और समदृष्टि से रहित है वह न राजा है न मन्त्री है। हे राजन्! जो तुम आत्मज्ञानवान् पुरुष हो तो तुम कल्याणरूप हो। जो ज्ञान से रहित होता है उसको मैं भोजन करती हूं। तुम्हारे छूटने का उपाय यही है कि, जो मैं प्रश्नों का समूह पूछती हूं उसका उत्तर दो। जो तुमने प्रश्नों का उत्तर दिया तो मेरे पूजने योग्य हो और जो मेरा अर्थ होगा सो कहूंगी तुम पूर्ण करना और जो तुमने प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा भोजन करूंगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीविचारो नाम चतुः-
पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार राक्षसी ने कहा तब राजा बोला तू प्रश्न कर हम तुझको उत्तर देंगे। राक्षसी बोली, हे राजन्! वह एक कौन अणु है जिससे अनेक प्रकार हुये हैं और एक के अनेक नाम हैं और वह कौन अणु है जिसमें अनेक ब्रह्माण्ड होते हैं और लीन हो जाते हैं? जैसे समुद्रमें अनेक बुद्बुदे उपजकर लीन होते हैं। वह कौन आकाश है जो पोल से रहित है और वह कौन अणु है जो न किञ्चित् है न अकिञ्चित् है? वह कौन अणु है जिसमें तेरा और मेरा अहं फुरता है और वह कौन है जो अहं त्वं एक में जानता है? वह कौन है जो चला जाता है और कदाचित् नहीं चलता और वह कौन है जो तिष्ठित भी है और प्रतिष्ठित भी है? वह कौन है जो पाषाणवत् है और वह

कौन है जिसने आकाश में चित्र किये हैं? वह कौन अग्नि है जो दा
शक्ति से रहित है और अग्निरूप है और वह अग्नि कौन है जिससे अ
उपजी है? वह कौन अणु है जो सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा और ता
प्रकाश से रहित और अविनाशी है और वह कौन है जो नेत्रों से
नहीं जाता और सब प्रकाशों को उत्पन्न करता है? वह कौन ज
है जो फूल, फल और बेल को प्रकाशती है और जन्मान्ध को भी
शती है? वह कौन अणु है जो आकाशादिक भूतों को उपजात
और वह कौन अणु है जो स्वाभाविक प्रकाशमान है? वह भण्डार
है जिससे ब्रह्माण्डरूपी रत्न उपजते हैं? वह कौन अणु है जिसमें प्र
और तम इकट्ठे रहते हैं और वह कौन अणु है जिसमें सत् असत्
इकट्ठे रहते हैं? वह कौन अणु है जो दूर है परन्तु दूर नहीं और
कौन अणु है जिसमें सुमेरु आदिक पर्वत भी समाय रहे हैं? वह
अणु है जिसमें निमेष में कल्प और कल्प में निमेष है और वह कौ
जो प्रत्यक्ष और असद्रूप है? वह कौन है जो सत् और अप्रत्यक्ष
है? वह कौन चेतन है जो अचेतन है और वह कौन वायु है जो
युरूप है? वह कौन है जो अशब्दरूप है और वह कौन है जो सर्व
निष्किञ्चित है? वह कौन अणु है जिसमें अहं नहीं है? वह कौ
जिसको अनेक जन्मों के यत्न से पाता है और पाके कहता है कि,
नहीं पाया और सब कुछ पाया? वह कौन अणु है जिसमें सुमेरु आ
तीनों भुवन तृणसमान हैं और वह कौन अणु है जो अनेक यो
को पूर्ण करता है? वह कौन अणु है जिसके देखने से जगत् फुर
है और वह कौन अणु है जो अणुता को त्यागे विना सुमेरु आ
स्थूल आकार को प्राप्त होता है? वह कौन अणु है जो बाल का
भाग और सुमेरुसे भी ऊंचा हुआ है? वह कौन अणु है जिसमें सब
भव स्थित है और वह कौन अणु है जो अत्यन्त निस्स्वाद है और
ही सब स्वाद होता है? वह कौन अणु है जिसको अपने ढांपने
सामर्थ्य नहीं और सबको ढांप रहा है और वह कौन अणु है जि

सब जीते हैं ? वह कौन अणु है जिसका अवयव कोई नहीं और सब अवयव को धारण कर रहा है ? वह कौन निमेष है जिसमें बहुतेरे कल्प स्थित हैं ? वह कौन अणु है जिसमें अनन्त जगत् स्थित है जैसे बीज में वृक्ष होता है ? वह कौन अणु है जिसमें बीज से आदि फल पर्यन्त अन- उदय हुये भी भासते हैं ? वह कौन है जो प्रयोजन और कर्तृत्व से रहित है और प्रयोजनवान् और कर्तृत्ववान् की नाईं स्थित है ? वह कौन द्रष्टा है जो दृश्य से मिलकर दृश्य होता है और वह कौन है जो दृश्य के नष्ट हुये भी आपको अखण्ड देखता है ? वह कौन है जिसके जाने से द्रष्टा-दर्शन-दृश्य तीनों लय हो जाते हैं; जैसे सोने के जाने से भूषणभाव लीन हो जाते हैं और वह कौन है जिससे भिन्न कुछ नहीं; जैसे जल से भिन्न तरङ्गों का अभाव है ? वह एकही कौन है जो देश, काल वस्तु के परिच्छेद से रहित सत् असत् की नाईं स्थित है और वह कौन अद्वैत है जिससे द्वैत भी भिन्न नहीं -जैसे समुद्र से तरङ्ग भिन्न नहीं ? वह कौन है जिसके देखे से सत्ता असत्ता सब लीन होता है और वह कौन है जिसमें भ्रमरूपी अनन्त जगत् स्थित है-जैसे बीज में वृक्ष होता है ? वह कौन है जो सबके भीतर है-जैसे वृक्ष में बीज होते हैं और वह कौन है जो सत्ता असत्तारूपी आपही हुआ है-जैसे बीज वृक्षरूप है और वृक्ष बीजरूप है ? वह अणु कौन है जिसमें तांत भी सुमेरु की नाईं स्थूल है और जिसके भीतर कोटि ब्रह्माण्ड हैं ? हे राजन् ! उस अणु को देखा हो तो कहो ? यही मुझको संशय है इसको तुम अपने मुख से दूर करो। जिससे संशय निवृत्त न हो उसको पण्डित न कहना चाहिये । जो ज्ञानवान् हैं उनको इन प्रश्नों का उत्तर कहना सुगम है। इन संशयों को वह शीघ्र ही निवृत्त कर देते हैं। जो अज्ञानी हैं उनको उत्तर देना कठिन है। हे राजन् ! जो तुमने मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया तो तुम मेरे पूजने योग्य हो और जो मूर्खता से प्रश्नों का उत्तर न दोगे और प्रश्नों के विपर्यय जानोगे तो तुम दोनों को भोजन कर जाऊंगी और फिर तुम्हारी सब प्रजा को ग्रास कर लूंगी क्योंकि; मूर्ख पापियों का मार न

श्रेष्ठ है कि, आगे को पाप करने से छूटेंगे। इतना कहकर वशिष्ठजी बो
हे रामजी! इस प्रकार राक्षसी कहकर और शुद्ध आशय को लेकर तूष्
हुई और जैसे शरत्काल में मेघमण्डल निर्मल होता है तैसे निर्मल हु

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नवर्णनन्नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५५ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अर्द्धरात्रि के समय महाशून्य वन
जब उस राक्षसी ने ये महाप्रश्न किये तब महामन्त्री ने उससे क
हे राक्षसी! ये जो तुमने संशयप्रश्न किये हैं उनका मैं क्रमसे उत्तर
हूं। जैसे उन्मत्तहाथी को केसरी सिंह नष्टकरता है तैसे मैं तेरे संशयों
निवृत्त करताहूं। तूने सब प्रश्न परमात्माही के विषय किये हैं इससे
सब प्रश्नों का एकही प्रश्न है परन्तु तूने अनेक प्रकार से किये हैं
ब्रह्मवेत्ता के योग्य हैं। हे राक्षसी! जो अनामाख्य है अर्थात् सर्व इन्
का विषय नहीं और अगम है और मन की चिन्तना से रहित है
सत्ता चिन्मात्र है और उसका आकार भी सूक्ष्म है इस कारण सू
कहाताहै। सूक्ष्मता से ही उसकी अणु संज्ञा है। उस अणु में सत् अ
की नाईं जगत् स्थितहै और उसही चिद् अणु में जब कुछ संवेदन फु
है। वही संवेदन सत्य असत्य जगत् की नाईं भासता है इससे उसे
कहते हैं। सृष्टि से पूर्व उसमें कुछ न था इससे निष्किञ्चन कहाता
और इन्द्रियोंका विषय नहीं इससे न किञ्चित् है। उसी चिद्अणु में
का आत्मा है इससे वह अनन्त भोक्ता पुरुष किञ्चन है और उससे
भिन्न नहीं इससे किञ्चन नहीं। वही चिद्अणु सबका आत्मा है
एकही अभास से अनेकरूप भासताहै–जैसे सुवर्ण से नाना प्रका
भूषण भासते हैं वही चिद्अणु परमाकाशरूपहै जो आकाश से भी सू
और मन वाणी से अतीतहै। वह सर्वात्मा है शून्य कैसे हो? सत्
जो शून्य कहते हैं वह उन्मत्त हैं क्योंकि; असत् भी सत् विना सिद्ध न
होता। जिसके आश्रय असत् भी सिद्ध होता है सो सत् है। वह
अणु पञ्चकोशों में नहीं छिपता। जैसे कपूर की गन्ध नहीं छिपती तैसे

पञ्चकोश में आत्मा नहीं छिपता अनुभवरूप है। वही चिन्मात्र सर्वरूप से किञ्चित्है और अचेतन चिन्मात्र है इससे अकिञ्चित् इन्द्रियों से रहित और निर्मल है। उसही चिद्अणु में फुरने से अनेक जगत् स्थित हैं। जैसे समुद्र में फुरनेसे तरङ्ग उपजते हैं और फिर लीन होते हैं तैसेही चिद् अणु में फुरने से अनेक जगत् उपज के लीन होते हैं वह मन और इन्द्रियों से अतीतहै इससे शून्य कहाता है और अपने आपही प्रकाशता है इससे अशून्य है। हे राक्षसी! मेरा और तेरा अहं एकही आत्मा है। अहं की अपेक्षा से त्वं है और त्वं की अपेक्षा से मैं परिच्छिन्न हूं परन्तु दोनों का उत्थान एक आत्मतत्त्व से ही है। उसही चिद्अणु के बोध से ब्रह्मरूप होता है और उसही बोध में अहं त्वं सब लीन होते हैं अथवा सर्व आपही होता है। त्रिपुटिरूप भी वही है। वही चिद्अणु अनेक योजनों पर्यन्त जाता है और कदाचित् चलायमान नहीं होता क्योंकि; संवित् अनन्तरूप है। योजनों के समूह उसके भीतर हैं वास्तव में न कोई आता है और न जाता है, अपने आकाशकोश में सब देश काल स्थित है। जिसमें सब कुछ हो उसकी प्राप्ति वास्तव में क्या होय? यह जितना जगत् है वह तो आत्मा में है फिर आत्मा कहां जावे? जैसे माता की गोद में पुत्र हो तो फिर वह उस निमित्त कहां जावे तैसेही आत्मा में यह जगत् स्थित है फिर आत्मा कहां जाय; देह की अपेक्षा से चलता भासता है वह कदाचित् चला नहीं। जैसे आकाश में घटादिक स्थित हैं तैसेही चिद्अणु में देशकाल स्थित है। जैसे घट एकदेश से देशान्तर को जावे तो घट जाता है आकाश नहीं जाता पर घट की अपेक्षा से आकाश जाता भासता है वास्तव में घटाकाश कहीं नहीं गया क्योंकि; आकाश में सब देश स्थित हैं यह कहांजावे; तैसेही आत्मा भी जाता है और नहीं जाता। उसही चिन्मात्र परमात्मा में संवेदन आकार रचे हैं और आदि अन्तसे रहित विचित्ररूपी जगत रचा है। वही चिद् अणु अग्नि की नाईं प्रकाशरूप है और जलाने से रहित है। ज्ञानअग्नि से प्रकाशमान है; अग्नि भी उससे उपजी है और सर्वगत वही है।

द्रव्यों को पचाता भी वही है; प्रलय में सब भूत उसमें ही लीन हो
और पुष्कल मेघ इकट्ठा हो तो भी उसको आवरण नहीं करसकते।
सदा प्रकाश और ज्ञानरूप है; आकाशसे भी निर्मलहै और अग्नि
उससे उत्पन्न होती है। सबको सत्तादेनेवाला वही है और सूर्यादिक
उसके प्रकाश से प्रकाशते हैं वह अनुभवरूप है और नेत्रों विना भा
है। ऐसा हृदयरूपी मन्दिर का दीपक आत्मा अनन्त और परमप्रक
रूप है और मन और इन्द्रियों का विषय नहीं। वह लता, फूल,
आदिक सबको आत्मत्व से प्रकाशता है सबका अनुभवकर्त्ता व
और काल, आकाश, क्रिया आदिक पदार्थों को सत्ता देनेवाला भी
चिद्अणु है। सबका स्वामी कर्त्ता वही है; सबका पिता भोक्ता भी
है; और सदा अकर्त्ता अभोक्तारूप है। जैसे स्वप्न में कर्त्ता भोक्ता भा
है पर अकर्त्ता अभोक्ता है; उससे भिन्न नहीं; इस कारण किञ्चनरू
और जगत् को धारण करनेवाला है। स्वरूप से मातृ, मान, मेय जि
प्रकाशते हैं और कुछ उपजा नहीं। चिदात्मा का किञ्चन है; किञ्च
जगत् की नाईं भासता है। तूने जो पूछाथा कि, 'दूर और निकट
है' सो अलखभाव से दूरभी वही है और चिद्रूपभाव से निकट भी व
अथवा ज्ञानसे निकट है और अज्ञान से दूरसे दूर है। अज्ञान से तम
है और ज्ञानसे प्रकाशरूप भी वही है और उसही चिद्अणु में संवेद
सुमेरु आदिक स्थित हैं। हे राक्षसी ! जो कुछ जगत् भासता है वह
संवेदनरूप है। सुमेरु आदिक पदार्थ कुछ उपजे नहीं, चिद्सत्ता ज्यो
त्यों स्थित है; उसमें जैसा संवेदन फुरता है तैसा आकार हो भासता
जहां निमेष का संवेदन फुरताहै वहां निमेष कहाता है और जहां
का संवेदन फुरताहै वहां उसे कल्पकहते हैं। कल्प, क्रिया आदिक ज
विलास सब निमेष में फुरआये हैं। जैसे मन के फुरने से बहुत यो
पर्यन्त पुरुष देखआता है और जैसे छोटे शीशे में बड़े विस्तार नग
प्रतिबिम्ब समाजाताहै तैसेही एक निमेषके फुरने में सब जगत् फुर
है। एक निमेष में कल्प, समुद्र, पुर इत्यादिक अनन्त योजनोंका वि

चिद् अणु में स्थित है और एक दो के भ्रम से रहित है। हे राक्षसी! इस जगत् का स्वरूप कुछ नहीं, संवेदनसे भासता है; जैसा २ संवेदनमें दृढ़ प्रतीत होताहै तैसाही तैसा अनुभव होताहै। देख कि, क्षण के स्वप्ने में सत् असत् जगत् फुरआताहै और बहुत काल का अनुभव होता है। जो दुःखी होते हैं उनको थोड़े काल में बहुत काल भासता और सुखी जनों को बहुतकाल में थोड़ा काल भासता है। जैसे हरिश्चन्द्र को एक रात्रि में द्वादश वर्ष का अनुभव हुआ था। इससे जितना २ संवेदन दृढ़ होता है उतने देश काल हो भासते हैं और सत् भी असत् की नाईं भासता है। जैसे सुवर्ण में भूषणबुद्धि होती है तो भूषण भासते हैं और समुद्र में तरङ्गों की दृढ़ता से तरङ्ग भिन्न भासते हैं; तैसेही निमेष में कल्प भासते हैं पर वास्तव में न निमेष है; न कल्प है; न दूर है और न निकट है; चिद् अणु आत्मा का सब आभास है। हे राक्षसी! प्रकाश और तम; दूर और निकट सब चैतन सम्पुट में रत्नों की नाईं है और वास्तव में अनन्यरूप है; भेदाभेद कुछ नहीं। हे राक्षसी! जबतक दृश्य का सद्भाव दृढ़ होता है तबतक द्रष्टा नहीं भासता—जैसे जबतक भूषणबुद्धि होती है तबतक स्वर्ण नहीं भासता और जब स्वर्ण जानागया तब भूषणबुद्धि नहीं रहती स्वर्ण ही भासता है; तैसेही जबतक दृश्यका स्पन्दभाव होताहै तबतक द्रष्टा नहीं भासता और जब आत्मज्ञान होता है तब केवल ब्रह्मसत्ताही निर्मल हो सद्रूप से सर्वत्र भासती है। दुर्लक्षता अर्थात् मन और इन्द्रियों के अविषय से असत्रूप कहते हैं; चैत्यता से उसको चैतन कहते हैं और चैत्य के अभावसे अचैतनरूप कहते हैं अर्थात् चैत्य के अभाव से अचैत्य चिन्मात्र कहते हैं। चैतन चमत्कार से जगत्की नाईं हो भासताहै। हे राक्षसी! और जगत् उससे कोई नहीं—जैसे वायु का गोला वृक्षाकार हो भासता है और सघनधूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही एक अद्वैत चैतन घन चैतन्यता से जगत् की नाईं हो भासताहै। जैसे सघन शून्यता से आकाश में नीलता भासती है तैसेही दृढ़सघन चैतनता से जगत् भासता है। जैसे सूर्यकी सूक्ष्म किरणों का किंचन मृगतृष्णा का

जल होता है; उस नदी का प्रमाण कुछ नहीं तैसेही इस जगत् की आ
भासती है पर सब आकाशरूपहै। जैसे भ्रमसे धूलिके कण में स्वर्णकी
चमत्कार होताहै तैसेही जगत्कल्पना चित्तके फुरने से भासती है।
स्वप्नपुर और गन्धर्वनगर आकारसहित भासते हैं सो न सत हैं न अस
तैसेही यह जगत् दीर्घ स्वप्ना है; न सत्है और न असत् है। हे राक्षसी!
आत्मा में अभ्यास हो तब यह कुण्डादिक ऐसेही रहें और आकाशरूप
भासें। कुण्डादिकभी आकाशरूप हैं; आकाश और कुण्डादिकों में
कुछ नहीं मूढ़ता से भेद भासता है। ज्ञानी को सब चिदाकाशरूप भास
है। हे राक्षसी! ब्रह्मा से तृणपर्यन्त के संवेदन में जैसी कल्पना
होरही है तैसेही भासती है और वास्तव में वही चिदाकाश प्रकाशता
घन चेतनता से वही चिदाकाश आकारों की नाईं प्रकाशता है और अ
का यह प्रकाश है। जैसे बीज और वृक्ष अनन्यरूप हैं तैसेही असंख्य
जगत् जो ब्रह्मसत्ता में स्थित है वह अनन्यरूप है। जैसे बीज में वृक्ष
भाव स्थित है सो आकाशरूप है तैसेही ब्रह्म में जगत् स्थित है सो अक्षे
रूप है—अन्यभाव को नहीं प्राप्तहुये। ब्रह्मसत्ता सब ओर से शान्तरूप, अ
एक और आदि—मध्य अन्त से रहित है। उसमें एक और द्वैत की कल्प
नहीं। वह अनउदय ही उदय हुआ है और निर्मल स्वप्रकाश आत्मा है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नभेदो नाम
षट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले; बड़ा आश्चर्य है? कि मन्त्री ने तो यह परमपा
परमार्थ वचन कहे और कमलनयन राजा ने भी कहा; हे राक्षसी!
जो जाग्रत् जगत् की प्रतीति होती है इसका जब अभाव हो तब आ
प्रतीति होती है। जब सब संकल्प की चैत्यता का नाश हो तब आ
का साक्षात्कार हो। उस आत्मसत्ता में संवेदन फुरने से जगत् भास
है और संवेदन के संकोच से सृष्टि का प्रलय होता है। सबका अधिष्ठा
रूप वही आत्मसत्ता है तिसको वेदान्तवाक्य जतावने के अर्थ कुछ क
हैं क्योंकि; वाणी से अतीतपद है। हे राक्षसी! यह जो द्रष्टा, दर्

और दृश्य है इसके अन्तर जो अनुभवसत्ता है सो परमात्मा है। वह परमात्मा ही द्रष्टा, दर्शन, दृश्यरूप होकर भासता है। उसीमें यह सब जगत्लीला है; नानात्वभाव से भी वह कुछ खण्डितभाव को नहीं प्राप्त हुआ; अखण्ड ही है। उसी सन्मात्रसत्ता को ब्रह्म कहते हैं। हे भद्रे! वही चिद्अणु संवेदन से वायुरूप हुआ है और वायु उसमें अत्यन्त भ्रान्तिमात्र है क्योंकि; केवल शुद्ध चिन्मात्र है। जब उसमें शब्द का संवेदन फुरता है तब शब्दरूप हो भासता है और शब्दरूप उसमें भ्रान्तिमात्र है। उसमें शब्द और शब्द का अर्थ देखना दूर से दूर है क्योंकि; केवल चिन्मात्र है। उसमें अहं त्वं कुछ नहीं। वह निष्किञ्चन है ऐसे रूप होकर भासता है क्योंकि; शक्तिरूप है। उसमें जैसी प्रतिभा फुरती है तैसाही होकर भासता है इससे फुरनाही इस जगत् का कारण है। जो अनेक यत्नों से मिलता है सो भी आत्मसत्ता है। जब उसको कोई पाता है तब उसने कुछ नहीं पाया और सब कुछ पाया है। पाया तो इस कारण नहीं कि, आगे भी अपना आप था और सब कुछ इस कारण पाया कि, आत्मा को पाये से कुछ और पाना नहीं रहता। हे राक्षसी! अज्ञानरूपी वसन्तऋतु में जन्मों की परम्परा बेलि तब तक बढ़ती जाती है जब तक इसके काटनेवाला बोधरूपी खड्ग नहीं प्राप्त हुआ। जब बोधरूपी खड्ग प्राप्त होता है तब जन्मरूपी बेलि को काटता है। हे राक्षसी! चिद्अणु संवेदन द्वारा आपको दृश्य में प्रीति करता है—जैसे किरणों का चमत्कार जलरूप होकर स्थित होता है—सो शुद्ध ही आपको संवेदन द्वारा फुरता देखता है। चिद्अणु द्वारा जो जगत् हुआ है सो मेरु से आदि लेकर तीनों भुवनों में किरणों की नाईं स्थित होता है और वास्तव में सब मायामात्र हैं भ्रम से भासते हैं। जैसे स्वप्न में रागी को स्वप्न स्त्री का आलिङ्गन होता है तैसे ही यह जगत् मन के फुरने से भासता है सो भ्रममात्र है। हे राक्षसी! सर्वशक्तिरूप आत्मा में जैसे सृष्टि का आदि फुरना हुआ है तैसाही रूप होकर भासने लगा है। और जैसे संकल्प किया है तैसे ही स्थित हुआ है। इससे सब जगत्

संकल्पमात्र है। जैसे जिसमें बालक का मन लगता है तैसाही रूप का हो भासता है; तैसे ही संवित् के आश्रय जैसा संवेदन फुरता है तै ही रूप हो भासता है। हे राक्षसी! चिद्‌अणु परमाणु से भी सूक्ष और उसने ही सब जगत् को पूर्ण किया है और सब जगत् अनन्त आत्मा है उसमें संवेदन से जगत् की रचना हुई है। जैसे नटनायक जैसे बालक को नेत्रों से जताता है तैसेही तैसे वह नृत्य करता है जब वह ठहर जाता तब यह भी ठहरजाता है; तैसेही चित्त के अवलो से सुमेरु से तृण पर्यन्त जगत् नृत्य करता है। जैसे चित्त संवेदन श शक्ति आत्मा में फुरता है तैसेही तैसे हो भासता है। हे राक्ष देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से आत्मसत्ता रहित है, इस क सुमेरु आदिक से भी स्थूलहै; उसकेसामने सुमेरु आदिक तृण के स हैं और बाल के अग्र के सहस्रवें भाग से भी सूक्ष्म है। अल्पता से सूक्ष्म नहीं जिसमें सरसों का दाना भी सुमेरुवत् स्थूल है। माया कला बहुत सूक्ष्म है उससे भी चिद्‌अणु सूक्ष्म है क्योंकि; निर्माधि परमात्मा है। जैसे सुवर्ण और भूषण की शोभा समान नहीं अ स्वर्ण में भूषण कल्पित है समान कैसे हो; तैसे ही माया परमात्म समान नहीं क्योंकि; कल्पित है। हे राक्षसी! जैसे कुछ सूर्य आ सब अनुभव से प्रकाशते हैं इनका सद्भाव कुछ न था उस सत्ता स इनका प्रकट होना हुआ है और फिर जर्जरीभूत होते हैं शुद्ध चिन सत्ता प्रकाशरूप है और वह सदा अपने आपमें स्थित है उस चिद् के भीतर बाहर प्रकाश है और यह जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्निआ प्रकाश हैं सो तम से मिले हुये हैं अर्थात् भेदरूप हैं। ये भी तमरू क्योंकि; प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं। इनमें इतना भेद है कि, प्र शुक्लरूपहै और तम कृष्णरूपहै इससे रङ्ग का भेद है प्रकाशरूप कोई जैसे मेघका कोहिरा श्याम होताहै और बरफका शुक्ल होता है पर कुहिरे हैं; तैसेही तम और प्रकाश दोनों तुल्य हैं और आत्मसत्ता को प्रकाशती है इससे दोनों का आश्रयभूत आत्मसत्ताही है। हे राक्ष

रात्रि, दिन, भीतर, बाहर, नदियां, पहाड़ आदिक सबलोक आत्मसत्ता के प्रकाश से प्रकाशते हैं—जैसे कमल और नीलोत्पल दोनों को सूर्य प्रकाशता है। कमल श्वेत है और नीलोत्पल श्याम है; जहां श्वेतकमल है वहां नीलोत्पल का अभाव है और जहां नील कमल है तहां श्वेत कमल का अभाव है पर दोनों का प्रकाशक सूर्य है; तैसे ही तम और प्रकाश दोनों का प्रकाशक चिदात्मा है। जैसे रात्रि और दिन दोनों सूर्य से सिद्ध होते हैं तैसे ही तम और प्रकाश दोनों आत्मा से सिद्ध होते हैं। जैसे दिन तब कहाता है जब सूर्य उदय होता है और जब सूर्य अस्त होता है तब रात्रि होती है आत्मा तैसे भी नहीं। आत्मप्रकाश सदा उदयरूप है और उदय अस्त से रहित भी है। उस विना कुछ सिद्ध नहीं होता सबका प्रकाशक चिद्अणु ही है। हे राक्षसी! उस अणु के भीतर विचित्र अनुभव अणु है। जैसे वसन्तऋतु के भीतर पत्र, फूल, फल और टास होते हैं तैसे ही चिद्अणु में सब अनुभव अणु होते हैं। जैसे एक बीज से अनेक वृक्ष क्रम से होजाते हैं तैसे ही एक चिद्अणु से अनेक अनुभव अणु होते हैं। कई व्यतीत हुये हैं; कई वर्त्तमान हैं और कई होंगे। जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं सो कोई अब वर्त्तते हैं और कई आगे होंगे; तैसे ही आत्मा में तीनों काल की सृष्टि वर्त्तती है। हे राक्षसी! चिद्अणु आत्मा उदासीन है और आसीन की नाईं स्थित होता है। सबका कर्त्ता भी है और भोक्ता भी है और स्पर्श किसी से नहीं किया जाता। जगत् की सत्यता उसीसे उदय होती है इस कारण यह सबका कर्त्ता है और सबका अपना आप है इससे सबको भोगता है। वास्तव में न कुछ उपजाहै और न लीन होताहै। चिन्मात्रसत्ता ज्यों की त्यों सदा अपने आपमें स्थित है और अखण्ड और सूक्ष्म है इस कारण किसी से स्पर्श नहीं किया जाता। हे राक्षसी! जो कुछ जगत् दीखता है वह सब आत्मरूप है; आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। आत्मा और जगत् कहनेमात्र को दोनों नाम हैं वास्तव में एक आत्मा ही है। आत्मा का चमत्कार ही जगतरूप हो भासताहै वास्तव में जगत्

कुछ बना नहीं, चिन्मात्रसत्ता सदा अपने आप में स्थित है और कुछ कहना है वह उपदेश के निमित्त है वास्तव में दूसरी कुछ नहीं बनी–तीनों जगत् चिदाकाशरूप हैं। हे राक्षसी ! द्रष्टा जब पदको प्राप्त होता है तब स्वाभाविकही अपने भाव को नहीं देखता। नेत्र जब घट को देखता है तब घटही भासता है अपना नेत्रत्वभाव दृष्टि आता; तैसेही दृश्य के होते द्रष्टा नहीं भासता और जब दृश्य होता है तब द्रष्टा भी अवास्तव है क्योंकि; द्रष्टा भी दृश्य के सम्बन्ध कहते हैं। जब दृश्य नष्ट हो जावे तब द्रष्टा किसका कहिये। दृश्य भूत वह होता है जो अदृश्य है; वह विषयभूत किसी का नहीं इस उसमें और कोई कल्पना नहीं बनती और यह जगत् भी उसका आभास है। हे राक्षसी ! जैसे भोक्ता विना भोग नहीं होते; तैसेही विना दृश्य नहीं होता। जैसे पिता विना पुत्र नहीं होता; तैसेही विना द्वैत नहीं होते। हे राक्षसी ! द्रष्टा को दृश्य उपजाने की सा है परन्तु दृश्य को द्रष्टा उपजाने की सामर्थ्य नहीं क्योंकि; दृश्य है। जैसे सुवर्ण से भूषण बनता है पर भूषण से स्वर्ण नहीं बनता; तैसे ही से दृश्य होता है; दृश्य से द्रष्टा नहीं होता। हे राक्षसी ! सुवर्ण में जैसे भूष तैसे ही द्रष्टा में जो दृश्य है। वह भ्रमरूप है–इसीसे जड़रूप है। जब दृश्य को देखता है तब दृश्य भासता है द्रष्टत्वभाव नहीं भासता जब द्रष्टा अपने स्वभाव में स्थित होता है तब दृश्य नहीं भासता। जब तक भूषण बुद्धि होती है तब तक सुवर्ण नहीं भासता–भूषण भासता है और जब सुवर्ण का ज्ञान होता है तब सुवर्ण ही भासता भूषण नहीं भासता। एक सत्ता में दोनों नहीं सिद्ध होते। जैसे अन्ध में किसी पुरुष को देखकर उसमें पशुत्वभ्रम हो तो जब तक पशु होती है तब तक पुरुष का निश्चय नहीं होता और जब निश्चय पुरुष जाना तब फिर पशुबुद्धि नहीं रहती; तैसेही जब द्रष्टा दृश्य देखता है तब द्रष्टाभाव नहीं दीखता दृश्य ही भासता है। जैसे रस ज्ञान से सर्प का अभाव हो जाता है तैसेही बोध करके दृश्य का अ

होता है तब एकही परमात्मसत्ता भासती है–द्रष्टासंज्ञा भी नहीं रहती। जैसे दूसरे की अपेक्षा से एक कहाता है और दूसरे के अभाव हुये एक २ नहीं कह सक्के; तैसेही दृश्य के अभाव हुये द्रष्टा कहना नहीं रहता केवल शुद्ध संविन्मात्र पद शेष रहता जिसमें वाणी की गम नहीं। जैसे दीपक पदार्थों को प्रकाशता है तैसेही द्रष्टा, दर्शन और दृश्य को प्रकाशता है और बोध से मातृ, मान और मेय त्रिपुटी लीन हो जाती है। जैसे सुवर्ण के जानने से भूषण की कल्पना का अभाव हो जाता है तैसेही ज्ञान से त्रिपुटी का अभाव हो जाता है केवल शुद्ध अद्वैतरूप रहता है। हे राक्षसी! परमअणु जो अत्यन्त निस्वादरूप है वह सर्व स्वादों को उपजाता है। जहां रस सहित होता है वहां चिदूअणु करके होता है। जैसे आदर्श विना प्रतिबिम्ब नहीं होता तैसेही सब स्वाद चिदूअणु विना नहीं होते। सब को रस देनेवाला चिदूअणु ही है। आत्मभाव से सबका अधिष्ठान है और सूक्ष्म से सूक्ष्म है इससे निस्वाद है। वह चिदूअणु आपको छिपा नहीं सक्का। सब जगत् को उसने ढांप रक्खा है और आप किसी से ढांपा नहीं जाता। वह चिदाकाशरूप है; सब पदार्थों को सत्ता देनेवाला है और सबका आश्रयभूत है। जैसे घास के बन में हाथी नहीं छिपता तैसेही आत्मा किसी पदार्थ से नहीं छिपता। हे राक्षसी! जिससे सब पदार्थ सिद्ध होते हैं और जो सदा प्रकाशरूप है वह मूर्खों को नहीं भासता–यह बड़ा आश्चर्य है। वह सदा अनुभवरूप है और यह सब जगत् उस ही से जीता है। जैसे वसन्तऋतु से फूल, फल, टास और पत्र फूलते हैं तैसेही सब जगत् आत्मा से फूलता है। वही चिदात्मा जगत्‌रूप होके भासता है और सर्वात्मभाव से सब उसके ही अवयव हैं। परमार्थ निरवयव और निराकाररूप है उसमें कुछ उदय नहीं हुआ। हे राक्षसी! एक निमेष के अबोध से चिदूअणु में अनेक कल्पों का अनुभव होता है। जैसे एक क्षण के स्वप्ने में पहले आपको बालक और फिर वृद्ध अवस्था देखने लगता है। उन कल्पों में जो निमेष है उसमें अनेक कल्प व्यतीत होते हैं क्योंकि; अधिष्ठान सर्व शक्तिमान् है जैसा संवेदन जहां

फुरता है वैसा रूप हो भासता है। जैसे स्वप्न में अभोक्ता को भोक्तृत्व
अनुभव होता है। तैसेही निमेष में कल्प का अनुभव होता है। वा
से आवेष्टित अभोक्ता ही आपको भोक्ता देखता है जैसे स्वप्न में म
अपना मरण प्रत्यक्ष देखता है तैसेही यह जगत् भ्रम से भासता है।
जहां स्फूर्ति दृढ़ होती है वैसेही होकर वहां भासता है। हे राक्षसी!
कुछ आकार भासते हैं वे भ्रान्तिमात्र हैं। जैसे निर्मल आकाश में नी
भासती है तैसेही आत्मा में विश्व भासता है। आत्मा सर्वगत और
का अनुभवरूप है। हे राक्षसी! उसमें व्याप्य-व्यापक भाव भी
क्योंकि; सर्वआत्मा है और सर्वरूप भी वही है। जब शुद्धचित्त सं
में संवेदन फुरता है तब पृथक् २ भाव चेतता है। इच्छा से जिस प
की उपलब्धि होती है उसमें व्याप्य व्यापक भाव की कल्पना होती
वास्तव में जो इच्छा है वही पदार्थ है। जैसे जल में द्रवता होती है
उससे तरङ्ग, फेन और बुद्बुदे होते हैं सो सब जलरूप हैं, जल से
नहीं; तैसेही इच्छा से उपजे पदार्थ आत्मारूप हैं उससे भिन्न न
आत्मा देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित है; केवल
चिन्मात्र और सर्वरूप होकर स्थित हुआ है और सबका अनुभव
उसी में हुआ है। वह तो शुद्ध सत्तामात्र है उसमें द्वैतकल्पना
कहिये? हे राक्षसी! जब कुछ द्वैत होता है तब एकभी होता है; जो
ही नहीं तो एक कैसे कहिये? जैसे धूप की अपेक्षा से छाया है
छाया की अपेक्षा से धूप है; तैसेही एककी अपेक्षा से द्वैत कहाता
इस कल्पना से जो रहित है वही चिन्मात्ररूप है और जगत् भी उ
व्यतिरिक्त नहीं। जैसे जल और द्रवतामें कुछ भेद नहीं तैसेही आ
और जगत् में कुछ भेद नहीं। हे राक्षसी! नाना प्रकार के आरम्भ
दृष्टि आते हैं तौभी आत्मसत्ता सम है। हे राक्षसी! जब सम्यक्बोध
है तब द्वैत भी अद्वैतरूप भासताहै क्योंकि; अज्ञानसे द्वैत कल्पना
है। वास्तव में द्वैत कुछ नहीं; अज्ञानके अभाव से द्वैतका भी अ
होजाताहै ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे जल और द्रवता;

और स्पन्दता और आकाश और शून्यता में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं। हे राक्षसी! द्वैत और अद्वैत जानना दुःख का कारणहै। द्वैत और अद्वैतकी कल्पना से रहित होनेको ही परमपद कहते हैं। द्रष्टारूप जो जगत् है वह चिद्परमाणुमें स्थितहै और उसमें सुमेरु आदिक स्थित हैं बड़ा आश्चर्य है कि, मायासे चिद् परमाणु में त्रिलोकियोंकी परम्परा स्थितहैं इसीसे असंभवरूप और मायामय है। जैसे बीज में वृक्ष स्थितहै तैसेही चिद्अणु में जगत् स्थितहै। जैसे शाखा, पत्र, फूल और फलसे बीज अपना बीजत्व नहीं त्यागता और अखण्ड रहताहै तैसेही चिद्अणुके भीतर जगत्का विस्तारहै और अणुत्वभाव नहीं त्यागता—अखण्डही रहताहै। हे राक्षसी! जैसे बीज परिणाम से वृक्षभावमें प्राप्तहोता है तैसेही चिद्अणु भी परिणामसे जगत्रूप होताहै। सब चिद्अणुका किञ्चनरूपहै इससे ऐसे दिखाई देता है; वास्तव में न द्वैत है; न अद्वैत है; न बीजहै—न अंकुर है; न स्थूल है—न सूक्ष्म है; न कुछ उपजाहै—न नष्ट होताहै; न अस्ति है—न नास्ति है; न सम है—न असम है और न जगत् है—न अजगत्है; केवल चिदानन्द आत्मसत्ता अचिन्त्यचिन्मात्र अपने आपमें स्थित है जैसी २ भावना होती है तैसी ही तैसी हो भासती है। हे राक्षसी! यह अनउदयही संवेदन के वश से उदय होकर भासता है। जैसे बीज से वृक्ष अनन्यरूप अनेक हो भासता है तैसेही एक आत्मा अनेकरूप हो भासताहै। न कुछ उदय हुआहै और न मिटता है। हे राक्षसी! उस चिद्अणु में कमल के डंडी की तांत सुमेरु की नाईं स्थूल है। जैसे कमल की डंडी की तांत से सुमेरु स्थूल है तैसेही चिद्अणु से कमल की डंडी स्थूलहै और दृश्यरूपहै पर चिद्अणु दृश्य और मन सहित षड्इन्द्रियों का विषय नहीं इस कारण तांतसे भी सूक्ष्म है उस चिद्अणु में अनन्त सुमेरु आदिक स्थित हैं सो क्या रूप है; जैसे आकाश में शून्यता होती है तैसेही आत्मा में जगत् है। हे राक्षसी! जिसको आत्मा का बोध हुआ है उसको जगत् सुषुप्ति की नाईं भासता है। वह आत्मसत्ता सदा अद्वैतरूप और परिणाम से

रहित है उसमें मुक्त पुरुष सदा स्थितहै। परमार्थ से जगत् भी ब्रह
है भिन्नभाव कुछ नहीं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्युपाख्याने परमार्थनिरूपण
सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार राजा के मुख से सु
कर्कटी ने वन के मर्कटीरूप जीवोंके मारनेकी चपलता त्याग की
भीतर से शीतल होकर विश्राम पाया। जैसे वर्षाकाल में मोरनी प्र
होती है, चन्द्रमाको देखके चन्द्रवंशी कमल प्रफुल्लित होतेहैं और मे
शब्द से बगली गर्भवान् होतीहै तैसेही राजाके वचन सुनके क
परमानन्द हुई और बोली; बड़ा आश्चर्य है। बड़ा आश्चर्य है!
राजन्! तुम ने महा पावन वचन कहे। इससे मैंने तुम्हारा विमल
देखा और अमृतसार और समरस से पूर्ण, शुद्ध और रागद्वेष आदिक
से रहित है। जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा शीतल; अमृत से पूर्ण और
होताहै तैसेही तुम्हारा बोध है विवेकी जगत् में पूज्य है। जैसे चन
को देखके कमलिनी प्रफुल्लित होतीहै; फूलों से मिल के वायु सुगन्ध
होती है और सूर्यके उदयहुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित होआते हैं;
ही सन्तों की सङ्गति से बुद्धि सुखपाती है। हे राजन्! वह कौनहै
दीपक हाथ में लेकर गढ़े में गिरै और वह कौनहै जो दीपक हाथ
लेकर तम देखै? तैसेही वह कौन है जो सन्तों की संगति करे
दुःखीरहे। सन्तोंकी संगति से सभी दुःख नष्ट होते हैं। हे राजन्!
इस वनमें किस प्रयोजन से आये हो? तुम तो पूजने योग्य हो। रा
बोले, हे राक्षसी! मेरे नगर में जो मनुष्य रहते हैं उनको एक विसूचि
व्याधिरोग लगा है और उससे वे बहुत कष्ट पाते हैं। औषधि भी
बहुत कररहेहैं पर दुःख दूर नहीं होता। हमने सुना है कि, एक राक्ष
जीवों को कष्ट देतीहै और उसका एक मन्त्र भी है उस मन्त्र के प
निवृत्त होजाती है। इस लिये उस तुमसी राक्षसियों के मारने के निमि
मैं रात्रि को वीरयात्रा करने निकलाहूं। जो वह राक्षसी तूहीहै तो हम

तेरा संवाद भी होचुकाहै उसको अङ्गीकार करके प्राणियों की हिंसा करना छोड़ और किसी को कष्ट न दे। राक्षसी बोली; हे राजन्! तुमने सत्य कहा। अब मैंने हिंसाधर्म का त्याग किया और अब किसी जीव को न मारूंगी। राजा बोले, हे राक्षसी! तूने तो कहा कि, मैं अब किसी जीव को न मारूंगी पर तेरा आहार तो जीव हैं जीवों को मारे विना तेरे शरीर का निर्वाह कैसे होगा? राक्षसी बोली; हे राजन्! हजारवर्ष मैं समाधिमें स्थित रही और जब समाधि खुली तब मुझे क्षुधा लगी। अब मैं फिर हिमालय पर्वत की कन्दरा में जाकर निश्चल समाधि में; जैसे मूर्त्ति लिखी होतीहै तैसेही स्थित हूंगी और जब समाधि से उतरूंगी तब अमृत की धारणा में विश्राम करूंगी। जब उससे उतरूंगी तब शरीर का त्याग करूंगी परन्तु हिंसा न करूंगी। हे राजन्! जिस प्रकार मैंने हिंसाधर्म को अङ्गीकार किया था वह सुन। मुझको जब बड़ी क्षुधा लगी तब उसके निवारण के अर्थ मैं हिमालय पर्वत के उत्तर शिखरपर वन में एक सोने की शिला के पास लोहे के थम्भ की नाईं जीवों के नाश के निमित्त तप करनेलगी और जब बहुत वर्ष व्यतीत हुये तब ब्रह्माजी ने मनोवांछित वर मुझको दिया। तब मेरे दो शरीर हुये—एक आधारभूत सूर्य की नाईं और दूसरा पुर्यष्टक और मैं विसूचिका नाम राक्षसी हुई। उस शरीर से मैं अनेक जीवों के भीतर जाकर उनको भोजन करतीरही परन्तु ब्रह्माजी ने मुझसे कहाथा कि, जो गुणवान् होंगे और जो 'ॐ' मन्त्र पढ़ेंगे उनपर तेरा बल न चलेगा तू निवृत्त होजावेगी। हे राजन्! उसी मन्त्र का उपदेश अब तुम भी अङ्गीकार करो। उस मन्त्र के पाठ से सबके रोग नष्ट होंगे। ब्रह्माजी का जो उपदेश है उसको तुम नदी के तटपर जाकर और पवित्र होकर शीघ्रही ग्रहणकरो। उसके पाठ से तुम्हारी प्रजा का दुःख नष्ट होजावेगा। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार जब अर्द्धरात्र के समय राक्षसी ने कहा तब राजा, मन्त्री और राक्षसी तीनों निकट नदी के तीरपर गये और अनन्य व्यतिरेक करके आपस में सुहृद हुये। जब तीनों पवित्र होकर बैठे तब जो मन्त्र

राक्षसीको ब्रह्माजीने उपदेश कियाथा वही मन्त्र विसूचिका ने प्रीतिसं
राजा को उपदेश किया और वहां से चलने लगी तब राजा ने कहा
महादेवी ! तू हमारी गुरु है इससे हम कुछ प्रार्थना करते हैं उसे अ
कार कर। जो महापुरुष हैं उनका सुन्दर सुहृद्पना बढ़ता जाता है
तुम्हारा शरीर भी इच्छाचारी है। इससे मनके हरनेवाले भूषण-वस्त्र
युक्त स्त्री का सा लघु शरीर धरके कुछ काल हमारे नगर में निवास क
राक्षसी बोली; हे राजन् ! मैं तो लघु आकार भी धरूंगी परन्तु तुम
भोजन न देसकोगे। जो लघु स्त्री का शरीर धरूंगी तो भी मेरा स्वभ
राक्षसी का है इसको तृप्त करना समान जनों की नाईं तो नहीं। जै
कुछ शरीर का स्वभाव है सो सृष्टि पर्यन्त तैसाही रहता है-अन्यथा न
होता। राजा बोले; हे कल्याणरूपी ! तू स्त्री समान शरीर धरके ह
नगर में चलकर रह; जो चोर पापी मेरे मण्डल में आवेंगे वे हम तु
देंगे और तू उन्हें स्त्रीरूप को त्याग करके राक्षसी शरीर से एकान्त
लेजाकर अथवा हिमालय की कन्दरा में जाके भोजन करना क्यों
बड़े भोजन करनेवाले को एकान्त में खाना सुखरूप है। जब उन
भोजन करके तृप्त होना तब सो रहना; जब निद्रा से जागना तब समा
में स्थित होना और जब समाधि से उतरना तब फिर हमारे पास आ
हम तेरे निमित्त बन्दीजन इकट्ठे कर रक्खेंगे उनको लेजाकर भोज
करना। जो धर्म के निमित्त हिंसा है वह हिंसा पापरूप नहीं और जि
की हिंसा करता है उसका मरण भी नहीं बल्कि उस पर दया है क्यों
वह पाप करने से छूटता है। राक्षसी बोली; हे राजन् ! तुमने युक्तिस
वचन कहे हैं इससे मैं स्त्री का शरीर धरके तुम्हारे साथ चलती हूं। यु
पूर्वक वचन को सब कोई मानते हैं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले;
रामजी ! इस प्रकार कहकर राक्षसी ने महासुन्दर स्त्री का श
धारण किया और बहुत कङ्कण आदिक नाना प्रकार के भूषण और व
पहिनकर राजाके साथ चली। निदान राजा और मन्त्री आगे चले
स्त्री पीछे चली। राजा उसको अपने ठाम में लेआया और एकान्तस्थ

में तीनों बैठ रात्रि को परस्पर चर्चा करते रहे। जब प्रातःकाल हुआ तब सौभाग्यवती स्त्रीरूप राक्षसी राजा के अन्तःपुर में जा बैठी और जो कुछ स्त्रियों का व्यवहार है वह करती रही और राजा और मन्त्री अपने व्यवहारमें लगे। इसीप्रकार जब छःदिन व्यतीत हुए तब राजा के मण्डल में जो तीनसहस्र चोर बँधेहुये थे उन्हें सबको उसने कर्कटी को देदिया और उसने राक्षसी का शरीर धारके उनको भुजा मण्डल में ले जैसे मेघ बूंदों को धारता है; हिमालय के शिखर को चली। जैसे किसी दरिद्री को सुवर्ण पाने से प्रसन्नता होती है तैसे वह प्रसन्नहुई और वहां जा तृप्त होके भोजन किया और सुखी होके सोरही। दो दिनपर्यन्त सोई रही उसके उपरान्त जागके पांचवर्ष पर्यन्त समाधि में लगीरही और जब समाधि खुली तब फिर राजा के पास आई। इसी प्रकार जब वह आवे तब राजा उसकी पूजा करे और जितने दुष्ट जन इकट्ठे किये हों उसको देदे। वह उन्हें लेजाकर हिमालय की कन्दरा में भोजन करकेफिर ध्यान में लगे और जब ध्यान से उतरे तब फिर वहां आवे और फिर लेजावे। हे रामजी! इसी प्रकार जीवन्मुक्त होकर वह राक्षसी प्रकृत स्वभाव को करतीरही और जब अनेक वर्ष व्यतीतहुये तब राजा विदेहमुक्तहुआ। फिर जो कोई उस मण्डल का राजा हो उससे भी राक्षसी की सुहृदता हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीसुहृदता-
वर्णनन्नामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! निदान जब राक्षसी आवे तब किरातदेश का राजा पूर्व की नाईं उसकी पूजा करे और जो कुछ विसूचिका अथवा दूसरा कोई रोग उनकी प्रजा में हो उसे वह राक्षसी निवृत्त करदे। इसी प्रकार अनेक वर्ष व्यतीत हुये। एकबार उसको ध्यान में लगे बहुत वर्ष व्यतीत होगये तब किरातदेश के राजाने दुःखके निवृत्ति के लिये ऊंचे स्थानपर उसकी प्रतिमा स्थापन की और उसप्रतिमाका एक नाम कन्दरा देवी और दूसरा नाम मङ्गलादेवी रक्खा। उसका ध्यान करके सब पूजा करने लगे और उसी से उसका कार्य सिद्ध होनेलगा। हे रामजी! उस

प्रतिमामें उस देवीने आप निवास किया। जो कोई जिस फलके निमि उस प्रतिमाकी पूजा करे उसका कार्य सिद्ध हो और न पूजे तो दुःखि हो। इससे जो कोई कुछ कार्य करने लगे वह प्रथम मङ्गलादेवी की पू करे तो उसका कार्य सिद्ध होवे और जो विधिकरके उसकी पूजाक उससे वह बहुत प्रसन्न हो। हे रामजी! अबतक वह प्रतिमा किरातदेश स्थित है। जिस २ फलके निमित्त उसकी कोई सेवा करताहै तैसा तै फल उसको वह देती है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सूच्याख्यानसमाप्ति-
वर्णनन्नामैकोनषष्टितमस्सर्गः ॥ ५९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह आनन्दित कर्कटी का आख्या जैसे पूर्व हुआ है तैसेही मैंने तुमसे कहा है। रामजीने पूछा, हे भगव राक्षसी का कृष्णवपु किस निमित्त था और कर्कटी इसका नाम क्योंथ वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह राक्षसों के कुलकी कन्या थी राक्षसों का व शुक्ल भी होताहै; कृष्ण भी होताहै और रक्त, पीत आदि भी होताहै। हे रा जी! कर्कटी नाम एक जलजन्तु भी होता है और उसका श्याम आक होताहै; उसीके समान कर्कट नाम एक राक्षस था उसके समान उसकी य पुत्री हुई; इस कारण इसका नाम कर्कटी हुआ। हे रामजी! यहां कर्क का और कुछ प्रयोजन न था; अध्यात्मप्रसंग और शुद्ध चेतनके निरूप के निमित्त मैंने तुमसे यह व्याख्यान कहाहै। यह आश्चर्य है कि असत्रूप जगत् के पदार्थ सत्रूप होकर भासते हैं और जो आत्मसत्त सदा सम्पन्नरूप है वह अविद्यमान की नाईं भासती है। हे रामजी वास्तव में तो एक अनादि, अनन्त और परम कारण आत्मसत्ता स्थि है; भावना के वश से उसमें जगत्रूप भासताहै और अनन्यरूपहै। जै जल और तरङ्गमें कुछ भिन्नता नहीं होती तैसेही ब्रह्म और जगतमें कु भिन्नता नहीं। आत्मामें जगत् कुछ द्वैतरूप नहीं हुआ आत्मसत्ता सद अपने आपही में स्थित है और उसमें जैसा २ चित्तस्पन्द दृढ़ होता तैसाही तैसा रूप होकर भासता है। जैसे वानर रेत को इकट्ठा करके उस

अग्नि की भावना करते हैं और तापते हैं तो उनका शीत उसीसे निवृत्त होता है तैसेही सम, स्थित और शान्तरूप आत्मा में जब जगत् की भावना फुरती है तब नाना प्रकार का भासताहै! जैसे थम्भे में पुतलियां अनउदयही शिल्पी के मनमें उदय की नाईं भासती हैं तैसेही भावना के वश से आत्मा ही जगत् हो भासताहै। जैसे बीज में पत्र, फूल, टहनी और वृक्ष अनन्यरूप होते हैं तैसेही ब्रह्म में जगत् अनन्यरूप है। जैसे बीज और वृक्ष में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं; अविचार से भेद भासता है और विचार किये से जगत् भेद नष्ट होजाता है। हे रामजी! अब यह विचार न करना कि, कैसे उपजा है; कहां से आया है और कबका हुआहै? जैसे हुआ तैसे हुआ अब इसकी निवृत्ति का उपाय करना चाहिये। जब तुम यह जानोगे तब हृदय की चिद्जड़ ग्रन्थि टूटजावेगी। शब्द और अर्थ की जो कुछ कल्पना उठती है सो मेरे वचनों और स्वरूप में स्थित भये से नष्ट होजावेगी। हे रामजी! यह सब जगत् अनर्थरूप चित्त से उपजा है और मेरे वचनों के सुनने से शान्त हो जावेगा। इसमें संशय नहीं कि, सब जगत् ब्रह्म से उपजा है और सब ब्रह्मस्वरूपही है पर जब तुम ज्ञान में जागोगे तब ज्योंका त्यों ही जानोगे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो जिसमे होताहै वह उससे व्यतिरेक होताहै; जैसे कुलाल से घट भिन्नरूप होताहै; तो आप कैसे कहते हैं कि; सब जगत् ब्रह्म से उपजा है और ब्रह्मस्वरूप ही है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जगत् ब्रह्म से ही उपजाहै। जितने कुछ प्रतियोगी शब्द शास्त्रों ने कहे हैं सो दृश्य में हैं। शास्त्र ने उपदेश जताने के निमित्त कहे हैं वास्तव में यह शब्द कोई नहीं। जैसे किसी बालक को परछाहीं में वैताल भासता है तो पूछते हैं कि, किसभाग में स्थित होकर वैताल ने भयदियाहै और वह कहता है कि, अमुक ठौर में वैताल ने भयदिया है सो वह व्यवहार के निमित्त कहता है पर वैताल तो वहां कोईभी न था; तैसेही आत्मा में उपदेशके निमित्त भेदकल्पना करी है वास्तव में उसमें द्वैतकल्पना कोई नहीं। हे रामजी! ब्रह्म से जगत्

हुआ है यह अर्थ केवल व्यतिरेक में नहीं होता। कुलाल जो दण्ड
घट उपजाता है सो व्यतिरेक के अर्थ है। स्वामी का टहलुआ यह
के अर्थ हैं और ये अभिन्नरूप भी होते हैं। जैसे अवयवी के अवयव
सुवर्ण से भूषण हुये हैं और मृत्तिका से घट हुये हैं तैसेही यह अभिन्न
अवयवी को स्वरूप है। जैसे भूषण स्वर्णरूप है घट मृत्तिकारूप है तै
ब्रह्मसे उपजा जगत् ब्रह्मरूपही है। वास्तव में भिन्न-अभिन्न; कारण-
णाम; भाव-विकार; अविद्या और विद्या; सुख-दुःख आदिक मि
कल्पना अज्ञान से उठती हैं। हे रामजी! अबोध से भेदकल्पना होत
और ज्ञान से सब कल्पना शान्त होजाती हैं। केवल अशब्दपद
रहता है। जब तुम ज्ञानयोग होगे तब ऐसे जानोगे कि, आदि-म
अन्तसे रहित; अविभाग और अखण्डरूप एक आत्मसत्ता ज्योंकी
स्थित है। अज्ञान से अथवा जिज्ञासु को उपदेश के निमित्त द्वैत
कल्पना है; बोध हुये से द्वैत भेद कुछ नहीं रहता। हे रामजी! वा
वाचकभाव द्वैत विना सिद्ध नहीं होता। जबबोध होताहै तब वाच्य
मौन होता है। इससे महावाक्य के अर्थ में निष्ठा करो और जो कुछ
कल्पना मनने रची है उसकी निवृत्ति के अर्थ मेरे वचन सुनो। हे राम
यह मन ऐसे उपजा है जैसे गन्धर्वनगर होताहै और उसी ने जगत्
रचना की है मैंने जैसे देखाहै तैसे तुमसे दृष्टान्त में कहताहूं; जिसके
से सब जगत् तुमको भ्रान्तिमात्र भासेगा। वह निश्चय धारण करके
जगत् की वासना दूरसे त्याग दोगे और बोधसे सब जगत् तुमको
का मननरूप भासेगा। तब तुम आत्मरूप होकर अपने आपमें नि
करोगे अर्थात् जगत् की कल्पना त्याग करके अपने स्वभावसत्ता में स्थि
होगे। इसलिये इसको सावधान होकर सुनो। हे रामजी! यह मनरू
बड़ारोगहै इसलिये विवेकरूपी औषधसे उसको शान्त करना चाहिये।
जगत् चित्त की कल्पना है। वास्तव में वह शरीर आदिक कुछ नहीं। जै
रेतसे तेल नहीं निकलता; तैसेही जगत् से वास्तवमें कुछ नहीं निकलत
चित्तद्वारा भासता है। वह चित्तरूपी संसार स्वप्ने की नाईं है और राग

आदिक संकल्पों से युक्त है। उससे रहित होताहै वही संसारसमुद्र के पार जाता है। इसलिये शुभ गुणोंसे चित्तकी शुद्धता करो। जो विवेकी हैं वे शुभकार्य करते हैं अशुभ नहीं करते हैं और आहार व्यवहार भी विचारके करते हैं। उन्हीं आर्यों की नाईं तुम भी शास्त्रों के अनुसार सचेष्टा करो। जब तुमको ऐसा अभ्यास होगा तब तुम शीघ्रही ज्ञानवान् होगे और ज्ञानके प्राप्त हुये से सब कल्पना मिटजावेंगी और आत्मस्थिति होगी। चित्तने सब जगत्‌रूपी चित्र मन में ही रचे हैं। जैसे मोर का अण्डा काल पाकर अनेक रङ्ग धारण करता है तैसेही मन अनेक प्रकार के जगत् धारण करता है वह मन जड़ और अजड़रूप है। उसमें जो चेतनभाग है वह सब अर्थों का बीजरूप है अर्थात् सबका उपादान है और जड़भाग जगत्‌रूप है। हे रामजी! सर्गके आदि में पृथ्वी आदिक तत्त्व न थे। जैसे स्वप्न में जगत् विद्यमान की नाईं भासता है तैसेही ब्रह्मा ने विद्यमान की नाईं उसको देखा। जड़संवेदन से पहाड़ आदिक जगत् देखा और चेतनसंवेदन से जङ्गमरूप देखा। वह सब जगत् दीर्घ वेदना है। वास्तवमें देहादिक सब शून्यरूप हैं और आत्मा में व्यापे हुये हैं। आत्मा का कोई शरीर नहीं। अपने से जो दृश्यरूप मन चेता है वही आत्मा का शरीर है। वह आत्मा विस्तरणरूप है और निर्मल स्थित है और मन उसका आभासरूप है। जैसे सूर्यकी किरणों से जलाभास होता है तैसेही आत्मा का आभास मन है। वह मनरूपी बालक अज्ञान से जगत्‌रूपी पिशाच को देखता है और ज्ञानसे परमात्मपद शान्तरूप निरामय को देखता है। हे रामजी! जब आत्मा चैत्यता को प्राप्त होता है तब वही चित्तरूप दृश्य एक ब्रह्म को द्वैत देखता है। उसकी निवृत्ति के लिये मैं तुमसे एक कथा कहताहूं गुरुके वचन जो दृष्टान्तसहित होते और वाणी भी मधुर और स्पष्ट होती है तो श्रोता के हृदय में वह अरोक्ष से जल में तेल की बूंद फैलजाती है तैसेही, फैलजाते हैं और जो दृष्टान्तसे रहित होते और अर्थ स्पष्ट नहीं होता तो वह क्षोभसंयुक्त वचन होता है और अक्षर पूर्ण नहीं होते; इसलिये वे वचन श्रोता के हृदय में

नहीं ठहरते और उपदेष्टा के निष्फल होजाते हैं । मैं तुमसे एक अ नाना प्रकार के दृष्टान्तों सहित, मधुरवाणी में स्पष्ट करके कहताहूं चन्द्रमा की किरणें अपने गृहपर उदय हों और मन्दिर शीतल ह तैसेही मेरे स्पष्ट वचन और प्रकाशरूप अर्थ सुनेसे तुम्हारा भ्रम होजावेगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनअंकुरोत्पत्तिकथनन्नाम षष्टितमस्सर्गः ॥ ६० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! पूर्व जो मुझसे ब्रह्माजीने सर्ग का कहा है वह मैं तुमसे कहता हूं । एक समय मैंने ब्रह्माजी के पास पूछा कि, हे भगवन् ! ये जगत् गण कहां से आये और कैसे उत्प तब पितामहजी ने मुझसे इन्दु ब्राह्मणका आख्यान इस भांति क बोले; हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् मनसे उपजा है और मनसेही है । जैसे जल में द्रवता के कारण नाना प्रकार के तरङ्ग और चक्र तैसेही मनके फुरनेसे सब जगत् फुरतेहैं और मनरूपही हैं । हे मुनी पूर्व कल्प में मैंने एक वृत्तान्त देखा है उसे सुनो । एक समय जब का क्षय हुआ तब मैं सम्पूर्णसृष्टि को संहार करके एकाग्रभाव हो रा स्वस्थभाव होकर रहा जब मेरी रात्रि व्यतीत हुई और मैं जागा त उठकर विधिसंयुक्त सन्ध्यादिक कर्म किये और बड़े आकाश की देखा कि, तम और प्रकाश से रहित; शून्यरूप और इतरसे रहित व्य है । चिदाकाश में चित्तको मिलाके जब मैंने सर्ग के उपजाने का स चित्त में धारण किया तब मुझको शुद्ध सूक्ष्म चिदाकाश में सृष्टि आई । वह सृष्टि मुझे बड़े विस्तार सहित और परस्पर अदृष्टरूप दृष्ट है और हर सृष्टि में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—तीनों देवता भी थे । दे गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य; सुमेरु, मन्दराचल, कैलास, हिमालय अ पर्वत, पृथ्वी, नदियां, सातो समुद्रादिक सब सृष्टिके विस्तार हैं । दे सृष्टि हैं । उनमें जो दश ब्रह्मा देखे वे मानों मेरेही प्रतिबिम्ब कमलसे उ हुये हैं और राजहंस के ऊपर आरूढ़ हैं । उनकी भिन्न २ सृष्टि है ।

नदीके बड़े प्रवाह चलते हैं; वायु आकाश में चलता है; सूर्य और चन्द्रमा उदय होतेहैं; देवता स्वर्ग में क्रीड़ा करते हैं; मनुष्य पृथ्वी में फिरतेहैं। दैत्य और नाग पाताल में भोग भोगते हैं और कालचक्र फिरता है बारह मास उसकी बारह कीलें हैं और वसन्तादिक षट्ऋतु हैं। वासना के अनुसार शुभाशुभ आचार करके लोग नरक स्वर्ग भोगते हैं और मोक्ष फल पातेहैं। हर सृष्टि में सप्तद्वीप हैं; उत्पत्ति और प्रलय कल्प होते हैं और गङ्गाजी का प्रवाह जगत् के गलेमें यज्ञोपवीत है। कहीं ऐसे सृष्टि स्थित है; कहीं सदा प्रकाश रहताहै और कहीं अहंकार से स्थावर-जङ्गम प्रजा हैं। बिजली की नाईं सृष्टि उपजती और मिटजाती है। जैसे वृक्ष के पत्र उपजते हैं और नष्ट होजाते हैं वैसेही और गन्धर्वनगरवत् सृष्टि देखी। एक २ ब्रह्माण्डमें स्थावर जङ्गम ऐसी प्रजा देखी जैसे गूलर के फल में अनेक मच्छर होते हैं। आत्मा में कालका भी अभावहै। क्षण, लव, दिन, मास और वर्षों का प्रवाह चलाजाता है। हे मुनीश्वर! अन्तवाहक दृष्टि से मैंने उन सृष्टियों को देखा। जब मैं चर्मदृष्टि से देखूं तब कुछ न भासे और दिव्यदृष्टि से देखूं तो सब कुछ भासे। चिरकालपर्यन्त मैं यह चरित्र देखता रहा कि कदाचित् चित्तभ्रम हो तो स्पष्ट हो भासे। तब एक सृष्टिके सूर्य को देखके मैंने आवाहन किया और जब वह मेरे निकट आया तो मैंने उससे कहा; हे देवदेवेश, भास्कर! तुम कुशल से तो हो? ऐसे कहकर मैंने फिर कहा कि; हे सूर्य! तुम कौन हो और यह सृष्टि कहां से उपजी है? यह एक जगत् है व ऐसे अनेक जगत् हैं; जैसे तुम जानते हो कहो? तब वह सूर्य भी जो त्रिकालज्ञान रखता था मुझको जान के प्रणामकर आनन्दितदवाणी से बोला; हे ईश्वर! इस दृश्यरूपी पिशाचके आपही नित्य कारण होते हैं। आप तो सब जानते ही हैं तो मुझसे क्यों पूछते हैं? यदि लीलाके अर्थ पूछतेहो। तो जैसे वृत्तान्त हुआहै तैसे मैं आपके सन्मुख निवेदन करता हूं। हे भगवन्! यह जो सत् असत् रूपी नानाप्रकार के व्यवहारों संयुक्त जगत् भासता है वह सब मन के फुरने में स्थित है॥

इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे आदित्यसमागमनन्नामैकषष्टितमस्सर्गः॥६१॥

भानु बोले; हे भगवन्! आपका जो कल्प का दिन व्यतीत भ
उसमें जो जम्बूद्वीप था उसके एक कोने में कैलास पर्वत था
उसकी कन्दरा में सुवर्णज्येष्ठ नाम आपका एक पुत्र रहता था। उ
वहां एक कुटी रची जिसमें साधुजन निवास करते थे इन्दुनाम ब्रा
वेद वेत्ता शान्तरूप ने कश्यप ऋषि के कुल में उत्पन्न हो स्त्री स
उस कुटी में जाके निवास किया और उस स्त्री से प्राणों की नाईं
करता था। जैसे मरुस्थल में घास नहीं उपजती तैसेही उससे सन्ता
उपजे। और जैसे शरदकाल की बेलि बहुत सुन्दर होती है परन्तु
से शून्य होती है तैसेही वह स्त्री थी। तब दोनों स्त्री पुरुष पुत्र के नि
कैलास के निकट निर्जनस्थान और कुञ्ज में एक वृक्ष के ऊपर च
और तप करने लगे। कुछ दिन तक वे केवल जल पानकर भोजन
न करें और रात्रि दिन व्यतीत करें। फिर कुछ समय तक एकही अ
जल पान करने लगे और फिर उसका भी त्यागकर और फुरने से र
हो वृक्ष की नाईं बैठे रहे। निदान जब उनको तप करते त्रेता और
युग बीते तब शशिकलाधारी भवानीशंकर तुष्टमन होकर आये
क्या देखा कि, स्त्री पुरुष दोनों वृक्ष पर बैठे हैं। तब उन्होंने शिवजी
देख के प्रणाम किया तो जैसे दिन की तपन से सकुची हुई चन्द्र
कमलिनी चन्द्रमा के उदय हुये प्रफुल्लित हो आती है तैसेही महाहिम
नाईं शिवजी को देख कर वे प्रफुल्लित हुये—मानो आकाश और पृ
दोनों रूप धर के आन खड़ हुये हैं। ऐसे भवानीशंकर ने उस ब्राह्मण
कहा; हे ब्राह्मण! मैं तुझ पर तुष्ट हुआ; जो कुछ तुझको वाञ्छित व
सो तू मांग। हे ब्रह्माजी! जब ऐसे शिवजी ने कहा तब ब्राह्मण प्रफु
होकर कहने लगा; हे भगवन्! देवदेवेश! मेरे गृह में दश पुत्र बड़े बु
मान् और कल्याणमूर्ति हों जिससे मुझको फिर शोक कदाचित् न
तब ईश्वर ने कहा ऐसेही होगा। ऐसे कह कर जब शिवजी समुद्र
तरङ्गवत् अन्तर्द्धान हुये तब वे स्त्री पुरुष दोनों शिव के चरणों को प्र
करके प्रसन्न हुये और जैसे सदाशिव और भवानी की मूर्ति है तैसे

प्रसन्न होकर वे अपने गृह में आये। निदान ब्राह्मणी गर्भवती हुई और समय पाके उसके दश पुत्र हुये। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा की शोभा होती है तैसेही उसकी शोभा हुई और षोड़शवर्ष के आकार की नाईं ब्राह्मणी का आकार रहा वृद्ध न हुई। वे बालक दशों संस्कारों को ले उपजे और जैसे वर्षाकाल की बदली थोड़ी भी शीघ्र बड़ी होजाती है तैसेही वे थोड़ेही काल में बड़े होगये। जब सात वर्षों के हुये तब वे सब वाणी के वेत्ता हुये और उनके माता और पिता दोनों शरीर त्याग के अपनी गति में प्राप्त हुये। वे दशो ब्राह्मण माता पिता से रहित हो गृहको त्याग के कैलास के शिखर पर जा चढ़े और परस्पर विचार करने लगे कि, वह कौन ईश्वर है जो परमेश्वररूप है और वह कौन ईश्वरपद है जिसके पाये से फिर दुःखी भी न हो और नाश भी न हो और सबका ईश्वर हो। तब एक भाई ने कहा कि, सबसे बड़ा ऐश्वर्य मण्डलेश्वर का है। क्योंकि सब पर उसकी आज्ञा चलती है। दूसरे भाई ने कहा कि, मण्डलेश्वर की विभूति भी कुछ नहीं क्योंकि; वह भी राजा के आधीन होताहै; इससे राजा का पद बड़ा है। तीसरे ने कहा राजा की विभूति भी कुछ नहीं क्योंकि; राजा चक्रवर्त्तीके आधीन होताहै। इसलिये चक्रवर्तीका पद बड़ाहै चौथे ने कहा चक्रवर्ती भी कुछ नहीं क्योंकि, वह भी यम के आधीन होता है, इससे यम का पद बड़ा है। पांचवें ने कहा कि, इन्द्र के आगे यमकी विभूति कुछ नहीं इससे इन्द्र का पद बड़ा है। छठे ने कहा कि, इन्द्र की विभूति भी कुछ नहीं ब्रह्मा के एक मुहूर्त्तमें इन्द्र नष्ट होजाता है। तब सबसे बड़े भाई ने जो बड़ा बुद्धिमान् था गम्भीर वचन से कहा कि, जो कुछ विभूतिहै सो सब ब्रह्माके कल्प में नष्ट होजाती है—इससे बड़ा ऐश्वर्य ब्रह्माजी का है उससे बड़ा और कोई नहीं। हे भगवन्! इस प्रकार जब बड़े भाई ने कहा तब सबने कहा भली कही! भली कही! फिर सबने बड़े भाईसे कहा, हे तात! जो सबका दुःख नाशकर्त्ता और जगत्पूज्य ब्राह्मपदहै तो उसको हम कैसे प्राप्तहों? जिस उपायसे हम प्राप्तहों वह उपाय कहो। उसने कहा, हे भाइयो! और सब भावनाओंको त्याग करो और यह निश्चय करो कि,

हम ब्रह्मा हैं और पद्मासन पर बैठे हैं। सब सृष्टि के कर्त्ता और सब पालना और संहारकर्त्ता हमही हैं और जो कुछ जगतजाल है उस आश्रयभूत हम नहीं। सब सृष्टि हमारे अङ्ग में स्थित है जब हम ऐ निश्चय और सजातिभावना धरके बैठेंगे तब हमको ब्रह्मा का पद प्र होगा। हे भगवन्! जब इस प्रकार बड़े भाई ने कहा तब छोटे भाइयों कहा, हे तात! तुमने यथार्थ कहा है जैसे तुमने कहा है तैसेही हम करते ऐसा कहकर सब ध्यान में स्थित हुये और जैसे काग़ज़ पर मूर्त्ति लि होती है तैसेही दशो ध्यान में स्थित हुये। मन में हरएक ने यही चिन्त किया कि, मैं ब्रह्मा हूँ; कमल मेरा आसन है, मैं सृष्टिकर्त्ता और भोक्त और महेश्वर भी मैं ही हूँ। साङ्गोपाङ्ग जगत्कर्म मैंनेही रचे हैं; सरस्वती गायत्री सहित वेद मेरे आगे आखड़े हैं और इस लोकपाल और सिद्धों मण्डलों को पालनेवाला भी मैं ही हूँ। स्वर्ग, भूमि, पाताल, पहाड़, नदि और समुद्र सब मैंनेही रचे हैं और महाबाहु वज्र के धारनेवाला और य का भोक्ता इन्द्र मैंने ही रचा है। सूर्य मेरीही आज्ञा से तपता है और ज की मर्यादा के निमित्त सब लोकपाल मैंने ही रचे हैं जैसे गौको गोप पालता है तैसे ही लोकपाल मेरी आज्ञा पाकर जीवों को पालते हैं जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और मिटजाते हैं तैसे ही जगत् मुझ उपजा है और फिर मुझमेंही लीन होता है। क्षण, दिन, मास, वर्ष, आदिक काल मेरेही रचेहुये हैं और मैंने ही सब कालके नाम रक्खेहैं। मैं दिन को उत्पन्न करता हूं और रात्रि को लीन करलेता हूं; सदा आत्म में स्थित हूं और पूर्ण परमेश्वर मैं ही हूं। हे ब्रह्माजी! इसप्रकार वे द भाई भावना धारण कर बैठे रहे—मानो काग़ज़ पर मूर्ति लिख छोड़ी है

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवसमाधिवर्णनन्नाम द्विषष्टि-
तमस्सर्गः ॥ ६२ ॥

भानु बोले; हे भगवन्! इस प्रकार इन्द्र के दशो पुत्र पितामह भावना धारण करके बैठे और जैसे जेठ, आषाढ़ में कमलके पत्र सूख गिर पड़ते हैं तैसे ही उनकी देह धूप और पवन से सूखकर गिरपड़ी

तब वनचर उनके शरीरों को आपस में खैंचकर भक्षण करगये। जैसे वानर फल पकड़ते हैं और विदारण करते हैं तैसे ही इनके देह वे विदारने लगे तौ भी उनकी वृत्ति ध्यान से छूट के बाह्यदेहादिक अभ्यास में न आई ब्रह्माकी भावना में ही लगी रही। इस प्रकार जब चारोंयुग का अन्त हुआ और तुम्हारे कल्प दिन का क्षय होने लगा तब द्वादश सूर्य तपने लगे; पुष्कल मेघ गरजके वर्षनेलगे; बड़ा भूचाल आया; वायु चलनेलगा; समुद्र उछलनेलगे; सब जल ही जल होगया और सब भूत क्षय होगये। जब सबको संहार करके रात्रि को वे आत्मपद में स्थित हुये तब उनके शरीर भी नष्ट होगये और पुर्यष्टक आकाश में आकाशरूप होके ब्रह्मा के संकल्प को लेकर तीव्र भावना के वश से दशों सृष्टि सहित भिन्नभिन्न अपनी २ सृष्टि के दश ब्रह्मा हुये। फिर जागकर देखते हैं कि, आकाश में फुरते हैं। हे भगवन्! उन दशों ब्राह्मणों के चित्त आकाश में ही सब सृष्टि स्थित हैं। उन दश सृष्टियों में से एक सृष्टिका सूर्य मैं हूं। आकाश में मेरा मन्दिर है और क्षण, दिन, पक्ष, मास और युग मुझहीसे होते हैं—इसक्रिया में मुझको उन्होंने लगायाहै। हे भगवन्! इसप्रकार मैंने आपसे दशों ब्रह्मा और उनकी दशों सृष्टि कहीं वे सृष्टि सब मनोमात्र हैं। अब जैसी आपकी इच्छा हो तैसी कीजिये। भिन्नभिन्न जगत्जाल कल्पना जो इन्द्रजाल की नाईं विस्तृत हुई हैं वे चित्त के भ्रम से भासती हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जगद्रचनानिर्वाणवर्णनन्नाम त्रिषष्टितमस्सर्गः॥ ६३॥

इतना कहकर ब्रह्मा बोले; हे ब्राह्मण, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! इस प्रकार ब्रह्मा के सूर्य ब्रह्मा से कहकर जब तूष्णी हुये तब उसकेवचनों को विचार कर मैंने कहा; हे भानु! तुमने सृष्टि दश कहीं अब मैं क्या रचूं? यह तो दश सृष्टि हुई हैं और दश ही ब्रह्मा हैं अब मेरे रचने से क्या सिद्ध होगा? हे मुनीश्वर! जब इस प्रकार मैंने कहा तब सूर्य विचार कर बोले; हे प्रभो! आप तो निरिच्छित हैं, आपको सृष्टि रचने में कुछ इच्छा नहीं सृष्टि का रचना आपको विनोदमात्र है किसी कामना के निमित्त

नहीं रचते। आप निष्कामरूप हैं। जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब हो
है और जल विना प्रतिबिम्ब की कल्पना नहीं होती तैसे ही संवेदनक
आपसे सृष्टि की रचना होती है। अज्ञानी को आप सृष्टिकर्त्ता भासते हैं
आप तो सदा ज्यों के त्यों निष्क्रियरूप हैं। हे भगवन्! आपको श
आदिक की प्राप्ति और त्याग में कुछ द्वेष नहीं और उत्पत्ति और सं
की आपको कल्पना नहीं—लीलामात्र आपसे सृष्टि होती है। जैसे
से दिन होता है और सूर्य के अस्त होने से दिन लय होजाता है पर
असंसक्तरूप हैं तैसे ही आप में संवेदन के फुरने से सृष्टि होती है अ
संवेदन के अस्फुर हुये सृष्टिका लय होता है पर आप सदा आसक्त
जगत् की रचना आपका नित्यकर्म है और उस कर्म के त्याग किये
आपको कुछ अपूर्व वस्तु भी नहीं प्राप्त होती इससे जो कुछ आप
नित्यकर्म है उसे कीजिये। हे जगत्पति! जैसे निष्कलङ्कदर्पण प्रतिबि
अङ्गीकार करता है तैसेही महापुरुष यथाप्राप्तकर्म को असंसक्त होकर अङ्गी
कार करते हैं। जैसे ज्ञानवान् को कर्म करने में कुछ प्रयोजन नहीं तैसे
उसको करने में और न करने में कुछ प्रयोजन नहीं; करना न कर
दोनों उसको समहैं। इसकारण दोनों में आप सुषुप्तिरूप हैं। हे भगवन्
आप तो सदा सुषुप्तिरूप हैं और उत्थान किसीप्रकार नहीं। इससे अ
सुषुप्ति प्रबोध होकर अपने प्रकृत आचार कीजिये। जो इन्द्र ब्राह्मणके पु
की सृष्टि देखो तब भी विरुद्ध कुछ नहीं। जो ज्ञानदृष्टि से देखो तो एक
अद्वैत ब्रह्महै और कुछ नहीं बना और जो चित्तदृष्टि से देखो तो संकल्प
अनेक सृष्टि फुरती हैं। उनमें आस्था करनी क्या है? जो चर्मदृष्टिसे दे
तो आपको सृष्टि भासतीही नहीं। उनके साथ आपको क्याहै; उनकी सृ
उनहीं के चित्तमें स्थित है और उनकी सृष्टि आप नाश भी न कर सको
क्योंकि जो इन्द्रियों से कर्म होता है वह नाश हो सक्ता है परन्तु मन
निश्चय को कोई नाश नहीं कर सक्ता। हे भगवन्! जो निश्चय जिस
चित्त में दृढ़ होगया है उसको वही निवृत्त करे तो निवृत्त होताहै और को
निवृत्त नहीं कर सक्ता। देह नष्ट हो परन्तु निश्चय नहीं नष्ट होता। ज

चिरकाल का निश्चय दृढ़ हो रहा है उसका स्वरूप से नाश नहीं होता। हे भगवन्! जो मन में दृढ़ निश्चय हो रहा है वही पुरुष का रूप है; उसका निश्चय और किसी से नहीं होता। जैसे जल सींचने से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही चित्त का निश्चय और से चलायमान नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ऐन्दवनिश्चयकथनन्नामचतुः षष्टितमस्सर्गः॥ ६४॥

भानु बोले, हे देवेश! इसपर एक पूर्व इतिहास है वह आप सुनिये। इन्द्रद्युम नाम एक राजा था और उसकी कमलनयनी अहल्या रानी थी। उसके नगर में इन्द्रनामक एक ब्राह्मण का पुत्र बहुत सुन्दर और बलवान् रहता था। एक समय उस रानीने पूर्व की अहल्या गौतम की स्त्री और इन्द्र की कथा सुनी तब एक सहेलीने कहा; हे रानी! जैसे पूर्व अहल्या थी तैसेही तुमभी हो और जैसा वह इन्द्र सुन्दर था तैसेही तुम्हारे नगर में भी एक इन्द्र ब्राह्मणहै। हे भगवन्! जब इस प्रकार रानीने सुना तब उस इन्द्रमें रानी का अनुराग हुआ परन्तु वह रानीको न मिले और रानी का शरीर इसी कारण दिन पर दिन सूखताजावे। निदान राजा ने सुना कि, इसको गरमी का कुछ रोग है इसकारण उसकी निवृत्तिके लिये केलेके पत्र और शीतल औषध उसको दिलवाये परन्तु उसको वाञ्छित पदार्थ कोई दृष्टि न आये और खाना, पीना, शय्यादिक जो कुछ इन्द्रियों के वाञ्छित पदार्थ हैं वह उसको कोई सुखरूप न भासे। वह दिन दिन पीत वर्ण होती जावे और इन्द्र के वियोगसे जैसे जल विना मछली मरुस्थल में तड़फे तैसे वह तड़फतीरहे और कहे हा इन्द्र! हा इन्द्र! निदान जब उसने लोकलाज त्यागदी और इन्द्र में उसका बहुत स्नेह बढ़गया तब विचारकर एक सखी ने कहा, हे रानी! मैं इन्द्र ब्राह्मण को ले आतीहूं यह सुन रानी सावधानहुई और जैसे चन्द्रमा को देखके कमलिनी खिलआती है तैसे वह खिलआई। वह सखी रानीसे कहके ब्राह्मणके घर गई और उस इन्द्रको प्रबोध करके रात्रिके समय अहल्या के पास लेआई। जब वह गोप्यस्थान में इकट्ठे हुये तो परस्पर लीला करनेलगे और दोनों का चित्त

परस्पर स्नेह से बँधगया और बहुत प्रसन्न हुये। जैसे चकवी–चकवे
रति और कामदेव का स्नेह होताहै तैसेही उनका स्नेह हुआ और
दूसरे विना एकक्षण भी रह न सकें। निदान सब क्रिया उनकी नि
गईं और लज्जा भी दूर होगई। जैसे चन्द्रमा को देखकर चन्द्रमुखी
प्रसन्नहों तैसेही एक दूसरेको देखके वे प्रसन्न होवें। हे भगवन्! उस
का भर्त्ता भी बड़ा गुणवान् था परन्तु रानी ने भर्त्ता का त्याग किया
इन्द्रसे उसका स्नेह किया। जब राजा ने उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त सु
उनको दण्ड देनेलगा परन्तु उनको कुछ खेद न हो और जब कीच
डालें तब कमल की नाईं ऊपरही रहें कुछ कष्ट न हो। फिर जब
में उनको डाला तौभी खेदवान् न हुये। तब राजा ने कहा, हे दुर्म
तुमको दुःख क्यों नहीं होता? उन्होंने कहा हमको दुःख कैसे हो
तो अपने आपको भी नहीं जानते? तब अहल्या ने कहा मुझको
इन्द्रही भासता है; भिन्न दुःख क्या हो? इन्द्र ने कहा मुझको सब अ
ही भासती है भिन्न दुःख कहां हो? तेरे दण्ड देने से हमको कुछ
नहीं होता हम परस्पर हर्षवान् हैं। तब राजा ने उनको बांधकर
में डालदिया तौभी वह न जले और फिर हाथी के चरणों तले
दिये गये तौभी उनको कुछ कष्ट न हुआ। तब राजा ने कहा, रे पा
तुमको अग्नि आदिक में दुःख क्यों नहीं होता? तब इन्द्र ने क
राजन्! जो कुछ जगत्जालहै वह मन में स्थित है। जैसा मन है
पुरुषरूप है। जैसा निश्चय मनमें दृढ़ होता है उसको कोई दूर
करसक्ता। चाहे कोई हमको दण्ड दे परन्तु हमको कुछ दुःख न
क्योंकि, हमारे हृदय में परस्पर प्रतिभा होरही है। जो कोई अनिष्ट
हो तो दुःख भी हो; हमको अनिष्ट तो कोई नहीं तब दुःख कैसे हो
राजन्! जो कुछ मन में दृढ़ीभूत होता है वही भासताहै उसका नि
कोई दूर नहीं करसक्ता। शरीर नष्ट होजाता है परन्तु मनका नि
नाश नहीं होता हे राजन्! जो मनमें तीव्रसंवेग होता है सो व
शाप से भी दूर नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत को मन्द मन्द वायु

चलासक्ता तैसेही मन के निश्चय को कोई नहीं चलासक्ता। मेरे हृदय में इसकी मूर्त्ति स्थिरीभूत है और इसके हृदयमें मेरी मूर्त्ति स्थिरीभूत है। इस को सब जगत् में हीं भासता हूं और मुझको सब जगत् यही भासती है। जो कुछ दूसरा भासे तो दुःख भी हो। जैसे लोहेके कोटमें कोई दुःख नहीं देसक्ता तैसेही मुझको कोई दुःख नहीं मैं जहां जाता हूं वहां सब ओर से अहल्याही भासती है। जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ की वर्षा में पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही हमको दुःख नहीं होता। हे राजन्! मन का ही नाम अहल्या और इन्द्र है और मनही ने सब जगत् रचा है। जैसा २ मन में दृढ़ निश्चय होताहै तैसाही भासता है और सुमेरु की नाईं स्थिर होजाता है कदापि नष्ट नहीं होता। जैसे पत्र, फल, फूल, और टहनी के काटे से वृक्ष नहीं नष्ट होता; जब बीजही नष्ट हो तब वृक्ष नष्ट होताहै तैसेही शरीर के नष्ट हुये से मन का निश्चय नहीं नष्ट होता। जब मन का निश्चय ही उलटपड़े तव हीं दूर होताहै। एक शरीर जब नष्ट होताहै तब जीव और शरीर धरलेता है। जैसे स्वप्न में यह शरीर रहता है और २ शरीर धरके चेष्टा करता है तो शरीर के ही आधीन हुआ; तैसेही शरीर के नष्ट हुये मन का निश्चय दूर नहीं होता। जब मन नष्ट होताहै तब शरीर के होते भी कुछ क्रिया सिद्ध नहीं होती। इससे सबका बीज मनही है। जैसे पत्र, टहनी, फल और फूलका कारण जल है; तैसेही सब पदार्थों का कारण मन है। जैसा चित्त है तैसा रूप पुरुष का है। इससे जहां मेरा चित्त जाता है वहां सब ओरसे रानीही भासती है। मुझको दुःख कैसे हो?

इति श्रीयो० उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमइन्द्रवाक्यं नाम पञ्चषष्टितमस्सर्गः॥६५॥

भानु बोले; हे भगवन्! इसप्रकार जब इन्द्र ब्राह्मण ने कहा तब कमल-नयन राजा ने भरत नाम ऋषीश्वर से जो समीप बैठे थे कहा, हे सर्वधर्मों के वेत्ता भरत मुनीश्वर! तुम देखो कि यह कैसा ढीठ पापात्मा है। जैसा इनका पापहै उसके अनुसार इनको शाप दो कि यह मरजावें। जो मारने योग्य न हो और उसको राजा मारे तो उसको पाप होताहै; तैसेही पापी के न मारने से भी पाप होता है। इससे इन पापियों को शाप दो कि यह

नष्ट होजावें । भरत मुनि ने उनका पाप विचार के कहा, अरे पापि
तुम मरजावो तब उस इन्द्र ब्राह्मण ने कहा, रे दुष्टो ! तुमने जो शाप
उससे हमारा क्या होगा ? केवल हमारा शरीर नष्ट होगा मन तो
होने का नहीं । तुम चाहे लाख यत्न करो उस मन से हम और श
धारण करेंगे-हमारे मन के नष्ट हुये विना विपर्यय दशा न होगी।
कहकर दोनों पृथ्वी पर इसभांति गिर पड़े जैसे मूल के काटे से वृक्ष
पड़ता है और वासना संयोग से दोनों मृग हुये वहां भी परस्पर स्ने
रहे और फिर उस जन्म को भी त्याग कर पक्षी हुये । कुछ दिन के प
उन्होंने उस देह को भी त्याग किया और अब हमारी सृष्टि में तप
पुण्यवान् ब्राह्मण और ब्राह्मणी हुये हैं । इससे तुम देखो कि, भरतमु
शाप दिया तो उनके शरीर नष्ट हुये परन्तु मन का जो कुछ निश्चय
सो नष्ट न हुआ । वे जहां शरीर पावें वहां दोनों इकट्ठे ही अकृत्रिम
वान् रहें और किसी से आनन्द मान न हों ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अहल्यानुरागसमाप्तिवर्णनन्ना
षट्षष्टितमस्सर्गः ॥ ६६ ॥

भानु बोले; हे नाथ ! आप देखें कि, जैसा मन का निश्चय होता
उसके अनुसार आगे भासता है । इन्द्र के पुत्र की सृष्टिवत् मनके निश
को कोई दूर नहीं करसक्ता । हे जगत् के पति ! मनही जगत् का क
और मनही पुरुष है । मन का किया सब कुछ होता है और शरीर
किया कोई कार्य नहीं होता । जो मन में दृढ़ निश्चय होता है वह कि
औषध से दूर नहीं होता । जैसे मणि में प्रतिबिम्ब मणि के उठाये वि
नहीं दूर होता तैसेही मन का निश्चय भी किसी और से दूर नहीं हो
जब मनही उलटे तबहीं दूर हो । इसी से कहा है कि, अनेकसृष्टि
भ्रम चित्त में स्थित हैं । इससे, हे ब्रह्माजी ! आप भी चिदाकाश में सृ
रचो । हे नाथ ! तीन आकाश हैं-एक भूताकाश; दूसरा चित्ताक
और तीसरा चिदाकाश । ये तीनों अनन्त हैं; इनका अन्त कहीं नहीं
भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय स्थित है और चित्ताकाश चिदाक

के आश्रय है। भूताकाश और चित्ताकाश ये दोनों चिदाकाश के आश्रय प्रकाशित हैं। इससे चिदाकाश के आश्रय जितनी आपकी इच्छा हो उतनी सृष्टि आपभी रचिये। चिदाकाश अनन्तरूप है। इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों ने आपका क्या लिया है? अपना नित्यकर्म आप भी कीजिये! ब्रह्मा बोले; हे वशिष्ठजी! इसप्रकार जब सूर्य ने मुझसे कहा तो मैंने विचार करके कहा; हे भानु! तुमने युक्त वचन कहे हैं कि; एक भूताकाश है; दूसरा चित्ताकाश है और तीसरा चिदाकाश है, वे तीनों अनन्त हैं परन्तु भूताकाश और चित्ताकाश दोनों चिदाकाश के आश्रय फुरते हैं। इससे हम भी अपने नित्यकर्म करते हैं और जो कुछ मैं तुमको कहता हूं वह तुम भी मानो। मेरी सृष्टिके तुम मनु प्रजापति हो और जैसी तुम्हारी इच्छाहो तैसे रचो। सूर्य ने मेरी आज्ञा मानके अपने दो शरीर किये—एक तो पूर्व के सूर्य से उस सृष्टि का सूर्य हुआ और दूसरा शरीर स्वायम्भुवमनु का किया। और मेरी आज्ञा के अनुसार उसने सृष्टि रची। इससे मैंने तुमसे कहा है कि, यह जगत् सब मनका रचा हुआ है। जो मनमें दृढ़ निश्चय होता है वही सफल होता है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण की सृष्टि हुई। हे मुनीश्वर! देह के नष्ट हुये भी मन का निश्चय दूर नहीं होता; चित्तमें फिर भी वही भास आता है। वह चित्त आत्मा का किञ्चनरूप है। जैसे उसमें स्फूर्त्ति होती है तैसेही होकर भासता है। प्रथम जो शुद्ध संवित्‌रूप में उत्थान हुआ है वह अन्तवाहक शरीर है और फिर जो उसमें दृढ़अभ्यास और स्वरूप का प्रमाद हुआ तो आधिभौतिक शरीर हुये और जब आधिभौतिक का अभिमानी हुआ तब उसका नामी जीव हुआ। देहाभिमान से नाना प्रकार की वासना होती है और उनके अनुसार घटीयन्त्र की नाईं भटकता है। जब फिर आत्मा का बोध होता है तब देह से आदि लेकर दृश्य शान्त होजाता है। हे मुनीश्वर! यह सब दृश्यभ्रम से भासता है; वास्तव में न कोई उपजा है और न कोई जगत है। यह सब भ्रम चित्तने रचा है उसके अनुसार घटीयन्त्र की नाईं भटकता है। जब फिर आत्मा का बोध होता है तब देह से आदि ले सब प्रपञ्च शान्त होजाते

हैं। हे मुनीश्वर! जो कुछ दृश्य भासता है वह मन से भासता
वास्तव में न कोई माया है और न कोई जगत् है—यह सब भ्रम भास
है। हे वशिष्ठजी! और द्वैत कुछ नहीं; चित्त के फुरने से ही अहं
आदिक भ्रम भासते हैं। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र मन के निश्चय से ब्र
रूप होगये तैसेही मैं ब्रह्मा हूं। शुद्ध आत्मा में जो चैत्यता होती
वही ब्रह्मारूप होकर स्थित है और शुद्ध आत्मा में जो चैत्यता होती
वही मनरूप है। उस मन के संयोग से चेतन को जीव कहते हैं।
इसमें जीवत्व होता है तब अपनी देह देखता है और फिर नाना प्र
के जगत्भ्रम देखता है। जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों को सृष्टि भासी
जैसे भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा और रस्सी में सर्प भासता है
ही जगत् सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं। प्रत्यक्ष देखने से स
भासता है और नाशभाव से असत्य है और वह सब मन में फुरता
मन के दो रूप हैं—एक जड़ और दूसरा चेतन। जड़रूप मन का दृश्य
है और चेतनरूप ब्रह्म है। जब दृश्य की ओर फुरता है तब दृश्य
होता है और जब चेतनभाव की ओर स्थित होता है तब जैसे सुवर्ण
जाने से भूषणभाव नष्ट होजाता है तैसेही दृश्यरूप जड़भाव नष्ट
जाता है। जब जड़भाव में फुरता है तब नाना प्रकार के जगत् देख
है। वास्तव में ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सबही चेतनरूप हैं। जड़ उसको कह
चाहिये जिसमें चित्त का अभाव हो। जैसे लकड़ी में चित्त नहीं भास
और प्राणधारियों में चित्त भासता है परन्तु स्वरूप में दोनों तुल्य हैं क्यों
सर्व परमात्माद्वारा प्रकाशते हैं। हे वशिष्ठजी! सब चेतनस्वरू
हैं, जो चेतनस्वरूप न हों तो क्यों भासें। चेतनता से उपलब्धरूप
हैं। जड़ और चेतन का विभाग अवाच्य ब्रह्म में नहीं पाया जा
प्रमाद दोष से है वास्तव में नहीं। जैसे स्वप्न में जो दो प्रकार के
और चेतन भूत भासते हैं उनका प्रमाद होता है तब उस चेतन
प्राणी को जड़ चेतन विभाग भासता है और स्वरूपदर्शी को सब
स्वरूप है। हे मुनीश्वर! ब्रह्मा में जो चैत्यता हुई वही मन हुआ

मन में जो चेतनभाग है वही ब्रह्मा है और जड़भाग अबोध है। जब अबोधभाव होता है तब दृश्यभ्रम देखता है और जब चेतनभाव में स्थित होजाता है तब शुद्ध रूप होता है। हे मुनीश्वर! चेतनमात्र में अहंकार का उत्थान दृश्य है और परमार्थ में कुछ भेद नहीं। जैसे तरङ्ग जल से भिन्न नहीं तैसेही अहं चेतनमात्र से भिन्न नहीं होता। सबकी प्रतीति ब्रह्मही में होती है वह परमानन्द है और सब दुःखों से रहित है वही शुद्ध चित्त जीव जब चैत्यभाव को चेतता है तब जड़भाव को देखता है जैसे स्वप्न में कोई अपना मरना देखता है तैसेही वह चित्त जड़भाव को देखता है। आत्मा सर्वशक्तिमान् है; कर्त्ता है तौ भी कुछ नहीं कर्त्ता और उसके समान और कोई नहीं। हे मुनीश्वर! यह जगत् कुछ वास्तव में उपजा नहीं चित्त के फुरने से भासता है। जब चित्त की स्फूर्त्ति होती है तब जगत्जाल भासता है और जब चैतन आत्मा में स्थित होता है तब मन का जड़भाव नहीं रहता। जैसे पारस-मणि के मिलाप से तांबा सुवर्ण होजाता है और फिर उसका तांबा भाव नहीं रहता तैसेही जब मन आत्मा में स्थित होता है तब उसकी जड़ता दृश्यभाव नहीं रहती। जैसे सुवर्ण को शोधन किये से उसका मैल जल जाता है और शुद्धही शेष रहता है तैसेही चित्त जब आत्मा में स्थित होता है तब उसका जड़भाव जलजाता है और शुद्ध चैतनमात्र शेष रहता है। वास्तव में पूछो तो शुद्ध भी द्वैत में होता है; आत्मा में द्वैत नहीं इससे शुद्ध कैसे हो? जैसे आकाश के फूल और वृक्ष वास्तव में कुछ नहीं होते तैसेही शोधन भी वास्तव में कुछ नहीं। हे मुनीश्वर! जबतक आत्मा का अज्ञान है तबतक नानाप्रकार का जगत् भासता है और जब आत्मा का बोध होता है तब जगत्भ्रम नष्ट होजाता है। यह जगत्भ्रम चित्त में है; जैसा निश्चय चित्तमें होता है तैसाही हो भासताहै। इसी पर अहल्या और इन्द्र का दृष्टान्त कहा है। इससे जैसी भावना दृढ़ होती है तैसा हो भासता है। हे वशिष्ठजी! जिसको यही भावना दृढ़ है कि, मैं देह हूं वह पुरुष देह के निमित्त सब चेष्टा करता है और इसी कारण बहुत काल

पर्यन्त कष्ट पाता है। जैसे बालक वैताल की कल्पना से भय पात तैसेही देह में अभिमान से जीव कष्ट पाता है। जिसकी भावना दे निवृत्त होकर शुद्ध चैतनभाव में प्राप्त होती है उसको देहादिक जगत शान्त होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे जीवकर्मोपदेशोनाम सप्तषष्टितमस्सर्गः॥ ६७॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इसप्रकार ब्रह्माजी ने मुझसे कहा मैंने फिर प्रश्न किया कि, हे भगवन्! आपने कहा है कि; शाप में म दिकों का बल होता है। वह शाप भी अचलरूप है मिटता नहीं। ऐसे भी देखा है कि; शाप से मन, बुद्धि और इन्द्रियां भी जड़ीभूत जाती हैं पर ऐसी तो नहीं है कि; देह को शाप हो और मन को न हे भगवन्! मन और देह तो अनन्यरूप हैं। जैसे वायु और स्पन्दमें घृत और चिकनाई में भेद नहीं होता तैसेही मन और जगत् में नहीं। यदि कहिये कि, देह कुछ वस्तु नहीं चैतन्यही चित्त है और भी चित्त में कल्पित है-जैसे स्वप्न देह; मृगतृष्णा का जल और दू चन्द्रमा भासता है सो एकके नष्ट हुये दोनों क्यों नहीं नष्ट होते तैसे दे शाप से चाहिये कि, मन को भी शाप लगजावे तो मैंने देखा है शाप से भी जड़ीभूत होगये हैं और आप कहते हैं कि; देह का कर्म को नहीं लगता। यह कैसे जानिये? ब्रह्मा बोले; हे मुनीश्वर! ऐ पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो सब कर्मों को त्यागकर पुण्यरूप पुरु किये से सिद्ध न हो। पुरुषार्थ किये से सब कुछ होता है। ब्रह्मा से चीं पर्यन्त जिस जिसकी भावना होती है तैसाही रूप हो भासता है। जगत् के दो शरीर हैं-एक मनरूपी जो चञ्चलरूप है और दूसरा आ भौतिक मांसमय शरीर है। उसका किया कार्य निष्फल होता है और से जो चेष्टा होती है वह सुफल होती है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष मांसमय शरीर में अहंभाव है उसको आधिव्याधि और शाप भी अ लगता है और मांसमय शरीर जो गूंगे; दीन और क्षणनाशी हैं उ

साथ जिसका संयोग है वह दीन रहता है। चित्तरूपी शरीर चञ्चल है वह किसी के वश नहीं होता अर्थात् उसका वश करना महा कठिन है। जब दृढ़ वैराग्य और अभ्यास हो तब वह वश हो—अन्यथा नहीं होता। मन महा चञ्चल है और यह जगत् मनमें है। जैसा २ मनमें निश्चय है सो दूर नहीं होता। मांसमय शरीर का किया कुछ सुफल नहीं होता और जो मन का निश्चय है सो दूर नहीं होता। हे मुनीश्वर! जिन पुरुषों ने चित्तको आत्मपद में स्थित किया है उनको अग्नि में भी डालिये तौभी दुःख कुछ नहीं होता और जलमें भी उनको दुःख नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त शरीरादिकभाव ग्रहण नहीं करता केवल आत्मा में स्थित होता है। हे मुनीश्वर! सब भावों को त्यागकर मनका निश्चय जिसमें दृढ़ होता है वही भासता है। जहां मन दृढ़ीभूत होकर चलता है उसको वही भासता है और किसी संसार के कष्ट और शापसे चलायमान नहीं होता। जो किसी दुःख शाप से मन विपर्ययभाव में प्राप्त होजावे तो जानिये कि, यह दृढ़ लगा न था—अभ्यास की शिथिलता थी। हे मुनीश्वर! मन की तीव्रता के हिलाने में किसी पदार्थ की शक्ति नहीं क्योंकि; सृष्टि मानसी है। इससे मनमें मनको समाय चित्त को परमपद में लगावो। जब चित्त आत्मा में दृढ़ होता है तब जगत् के पदार्थों से चलायमान नहीं होता। माण्डव्य ऋषीश्वर को जिनका चित्त आत्मा में लगाहुआ था शूलीपर भी खेद न हुआ। हे मुनीश्वर! जिसमें मन दृढ़ होकर लगता है उसको कोई चला नहीं सक्ता। जैसे इन्द्र ब्राह्मण चलायमान न हुआ तैसेही आत्मा में स्थिरहुआ मन चलायमान नहीं होता। हे मुनीश्वर! जैसा २ मन में तीव्रभाव होता है उसीकी सिद्धता होती है। दीर्घतपा एक ऋषि था वह किसी प्रकार अन्धे कूप में गिर पड़ा और उस कूप में मनको दृढ़कर यज्ञ करने लगा। उस यज्ञ से मन में लगता होकर इन्द्रपुरी में फल भोगने लगा और जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्र पुरुषों के समान थे और उनके मन में जो ब्रह्मा की भावना थी उससे दशों ब्रह्मा हुये और दशों ने अपनी २ सृष्टि रची और वह सृष्टि

मुझसे भी नहीं खण्डित होती। इससे जो कुछ दृढ़ अभ्यास होता है वह नष्ट नहीं होता। देवता और महाऋषि आदि जो धैर्यवान् हुये हैं और जिनकी एक क्षणमात्र भी वृत्ति चलायमान नहीं होती थी उनको संसार का आधि-व्याधि ताप, शाप, मन्त्र और पाप कर्म से लेकर संसार के जो क्षोभ और दुःख हैं नहीं स्पर्श करते थे। जैसे कमल फूल का प्रहार शिला नहीं फोड़ सक्ता तैसेही धैर्यवान्को संसार का ताप नहीं खण्डन करसक्ता। जिसको आधि व्याधि दुःख देते हैं उसे जानिये कि वह परमार्थ दर्शन से शून्य है। हे मुनीश्वर! जो पुरुष स्वरूप में सावधान हुये हैं उनको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता और स्वप्नमें भी उनको दुःख का अनुभव नहीं होता क्योंकि; उनका चित्त सावधान है। इससे तुमभी दृढ़ पुरुषार्थ करके मनसे मनको मारो तो जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। हे मुनीश्वर! जिसको स्वरूप का प्रमाद होता है उसको क्षण में जगत्भ्रम दृढ़ होजाता है। जैसे बालक को क्षणमें वैताल भासि आताहै तैसेही प्रमाद से जगत् भासता है। हे मुनीश्वर! मनरूपी कुलाल है और वृत्तिरूपी मृत्तिका है; उस मनसे वृत्ति क्षण में अनेक आकार धरती है। जैसे मृत्तिका कुलाल द्वारा घटादिक अनेक आकार को धरती है तैसेही निश्चय के अनुसार वृत्ति अनेक आकारों को पाती है। जैसे सूर्य में उलूकादि अपनी भावना से अन्धकार देखते हैं; कितनों को चन्द्रमा की किरणें भी भावना से अग्निरूप भासती हैं और कितनों को विष में अमृत की भावना होतीहै तो उनको विषभी अमृतरूप हो भासता है। इसी प्रकार कटुक आमल और लवण भी भावना के अनुसार भासते हैं। जैसा मनमें निश्चय होताहै तैसेही भासता है। मनरूपी बाजीगर जैसी रचना चाहता है तैसीही रचलेता है और मनका रचा जगत् सत्य नहीं और असत्य भी नहीं। प्रत्यक्ष सुनेसे सत्य है असत्य नहीं और नष्टभाव से असत्य है सत्य नहीं और सत्य असत्य भी मनसे भासता है वास्तव में कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनन्नामाष्टषष्टितमस्सर्गः॥ ६८॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार प्रथम ब्रह्माजी ने जो मुझसे कहा था वह मैंने अब तुमसे कहा है। प्रथम ब्रह्म जो अहंशब्द पद में स्थित था उसमें चित्त हुआ अर्थात् अहंअस्मि चेतनता का लक्षण हुआ और उसकी जब दृढ़ता हुई तब मन हुआ; उस मनने पञ्चतन्मात्रा की कल्पना की वह तेजाकार ब्रह्मा परमेष्ठी कहाता है। हे रामजी! वह ब्रह्माजी मनरूप हैं और मनही ब्रह्मारूप है। उसका रूप संकल्प है जैसा संकल्प करता है तैसाही होता है। उस ब्रह्मा ने एक अविद्याशक्ति कल्पी है। अनात्मा में आत्माभिमान करनेका नाम अविद्या है। फिर अविद्या की निवृत्ति विद्या कल्पी। इसी प्रकार पहाड़, तृण, जल, समुद्र, स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया। इस प्रकार ब्रह्मा हुआ और इस प्रकार जगत् हुआ। तुमने जो कहा कि, जगत् कैसे उपजता है और कैसे मिटता है सो सुनो। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और समुद्रही में लीन होते हैं तैसेही सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म में उपजता है और ब्रह्महो में लीन होता है। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता में जो अहं का उल्लेख हुआ है सो मन है और वही ब्रह्मा है; उसीने नानाप्रकार का जो जगत् रचा है वही सर्वचित्त शक्ति फैली है और चित्त के फुरनेही से नानात्व भासता है। हे रामजी! जो कुछ जीव हैं उन सबमें आत्मसत्ता स्थित है परन्तु अपने स्वरूप के प्रमाद से भटकते हैं। जैसे वायु से वनके कुञ्जों में सूखे पात भटकते हैं तैसेही कर्मरूपी वायु से जीव भटकते हैं और अर्द्ध और ऊर्ध्व में घटी यन्त्र की नाईं अनेक जन्म धरते हैं। जब काकतालीवत् सत्सङ्गकी प्राप्ति हो और अपना पुरुषार्थ करे तब मुक्त हो। इसकी जबतक प्राप्ति नहीं होती तबतक कर्मरूपी रस्सी से बांधेहुये अनेक जन्म भटकते हैं और जब ज्ञानकी प्राप्ति होगी तभी दृश्यभ्रम से छूटेंगे अन्यथा न छूटेंगे। हे रामजी! इस प्रकार ब्रह्मासे जीव उपजते और मिटते हैं। अनन्त सङ्कटों की कारण वासना ही है जो नानाप्रकार के भ्रम दिखाती है और जगत्-रूपी मनकी जन्मरूपी बैताल बेल वासना जल से बढ़ती है। जब सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो तब उसी कुठारसे काटो जब मनमें वासना का क्षोभ मिटे तब

शरीररूपी अंकुर मनरूपी बीजसे न उपजे जैसे भुने बीज में अंकुर नहीं उपजता तैसेही वासना से रहित मन शरीर को नहीं धारण करता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे वासनात्यागवर्णनन्नामैकोनसप्ततितमस्सर्गः॥ ६९॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जितनी भूतजाति हैं वह ब्रह्मसे उपजी हैं। जैसे समुद्र में जो तरङ्ग और बुद्बुदे कोई बड़े, कोई छोटे और कोई मध्यभाव के होते हैं वे सब जल हैं तैसेही यह जीव ब्रह्मसे उपजे हैं और ब्रह्मरूप हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासता है अग्निसे चिनगारे उपजते हैं तैसेही ब्रह्मसे जीव उपजते हैं। जैसे कल्पवृक्ष की मञ्जरी नानारूप धरती है तैसेही ब्रह्म से जीवहुये हैं। जैसे चन्द्रमा से किरणों का विस्तार होता है और वृक्षसे पत्र, फल और फूल आदिक होते हैं तैसेही ब्रह्मसे जीव होते हैं। जैसे सुवर्ण से अनेक भूषण होते हैं तैसेही ब्रह्मसे जगत् होते हैं। जैसे झरनोंसे जल के कण उपजते हैं तैसेही परमात्मा से भूत उपजते हैं। जैसे आकाश एकही है पर उससे घट मठ की उपाधि से घटाकाश और मठाकाश कहाता है तैसेही संवेदन के फुरनेसे जीव कल्पना होती है जैसे जलही द्रवतासे तरङ्ग और आवृत्तरूप हो भासता है तैसेही ब्रह्महीं संवेदन से जगत्रूप हो भासता है। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सब ब्रह्मसेही उपजे हैं। जैसे सूर्य के तेज से मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसे संवेदन से ब्रह्म में द्रष्टा, दर्शन, दृश्य-त्रिपुटी भासती है पर वास्तव में द्रष्टा, दर्शन और दृश्य कोई कल्पना नहीं जैसे चन्द्रमा और शीतलता में और सूर्य और प्रकाश में कुछ भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और समुद्र में ही लीन होते हैं तैसेही जीव ब्रह्महीसे उपजते हैं और ब्रह्महीं में लीन होते हैं। कोई सहस्र जन्मों के अनन्तर प्राप्त होते और कोई थोड़े ही जन्मों में प्राप्त होते हैं। हे रामजी! इस प्रकार जगत् परमात्मा से हुआ है और उसही की इच्छानुसार सब व्यवहार करते हैं। वही व्यवहार की नाईं हो भासते हैं।

इति श्रीयो॰उत्पत्ति प्रकरणे सर्वब्रह्मप्रतिपादनन्नामसप्ततितमस्सर्गः॥७०॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! कर्त्ता और कर्म अभिन्नरूप हैं और इकट्ठे-ही ब्रह्म से उत्पन्न हुये हैं। जैसे फूल और सुगन्ध वृक्ष से इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं तैसेही कर्त्ता और कर्म इकट्ठे उत्पन्न हुये हैं। जब जीव सब संकल्प कलना को त्यागता है तब निर्मल ब्रह्म होता है। जैसे आकाश में नीलता भासती है तैसेही आत्मा में जगत् कल्पना फुरती है पर आत्मा अद्वैत सदा अपने आप में स्थित है। यह भी अज्ञानी के बोधके लिये कहता हूं कि, जीव ब्रह्म से उपजे हैं। इस प्रकार सात्त्विक, राजस और तामस गुणों के भेद स्थित हैं। जो ज्ञानवान् हैं उनके प्रति यह कहना भी नहीं बनता कि, ब्रह्मसे सब उपजे हैं; तौ भी दूसरा कुछ नहीं पर दूसरे को अङ्गीकार करके उपदेश करताहूं वास्तव में ब्रह्मसत्ता में कोई कल्पना नहीं; वह तो सदा अपने स्वभाव में स्थित है। जो ज्ञानवान् हैं उनको सदा ऐसेही प्रत्यक्ष भासता है और अज्ञानी दूर से दूर चला जाता है—उसको सुमेरु और मन्दराचलकी नाईं आत्मा और जीवका अन्तर भासता है। जैसे वसन्त ऋतु में नानाप्रकार के नूतन अंकुर उपजते हैं और उसके अभाव हुये नष्ट होते हैं तैसेही चित्त के फुरने से जीव राशि उपजते हैं और चित्त के अफुर हुये नष्ट होते हैं। मन और कर्म में कुछ भेद नहीं; मन और कर्म इकट्ठेही उत्पन्न होते हैं। जैसे वृक्षसे फल और सुगन्ध इकट्ठे उपजते हैं तैसेही आत्मा से मन और कर्म इकट्ठेही उपजते हैं और फिर आत्मा में लीन होते हैं। हे रामजी! दैत्य, नाग, मनुष्य, देवता आदिक जो कुछ जीव तुमको भासते हैं वे आत्मासे उपजे हैं और फिर आत्माही में लीन होते हैं। इनका उत्पत्ति कारण अज्ञान है; आत्माके अज्ञान से भटकते हैं और जब आत्मज्ञान उपजता है तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। रामजी बोले; हे भगवन्! जो पदार्थ शास्त्रप्रमाण से सिद्ध है वही सत्य है और शास्त्रप्रमाण वही है जिसमें राग द्वेषसे रहित निर्णय है और अमानित्व अदम्भित्व आदिक गुण प्रतिपादन किये हैं। उसदृष्टिसे जो उपदेश किया है सोही प्रमाणहै और उसके अनुसार जो जीव विचरते हैं सो उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और जो शास्त्रप्रमाण से विपरीत बर्तते हैं वह

अशुभगति में प्राप्त होते हैं। लोकमें भी प्रसिद्ध है कि; कर्मों के अनुस
जीव उपजते हैं–जैसा २ बीज होता है तैसाही तैसा उससे अंकुर उ
जता है; तैसेही जैसा कर्म होता है तैसी गति को जीव प्राप्त होता है
कर्त्ता से कर्म होता है इस कारण यह परस्पर अभिन्न हैं इनका इक
होना क्योंकर हो ? कर्त्ता से कर्म होते हैं और कर्म से गति प्राप्ति होती
पर आप कहते हैं कि, मन और कर्म ब्रह्मसे इकट्ठेही उत्पन्न हुये हैं इ
तो शास्त्र और लोगों के वचन अप्रमाण होते हैं। हे देवताओं में श्रे
इस संशयके दूर करने को तुमही योग्य हो। जैसे सत्यहो तैसेही कहि
वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! यह प्रश्न तुमने अच्छा किया है इसका उ
मैं तुमको देताहूं जिसके सुनने से तुमको ज्ञान होगा। हे रामजी ! शु
संवित्मात्र आत्मतत्त्व में जो संवेदन फुरा है सोही कर्मका बीज मन हु
और सोही सबका कर्मरूप है इसलिये उसी बीज से सब फल होते हैं–क
और मन में कुछ भेद नहीं। जैसे सुगन्ध और कमल में कुछ भेद न
तैसेही मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। मन में संकल्प होता अ
उससे कर्म अंकुर ज्ञानवान् कहते हैं। हे रामजी ! पूर्व देह मनही
और उस मनरूपी शरीरसे कर्म होते हैं। वह फल पर्यन्त मि
होता है। मन में जो स्फूर्त्ति होती है वही क्रिया है और वही कर्म है
उस मनसे क्रिया कर्म अवश्य सिद्ध होताहै अन्यथा नहीं होता। ऐ
पर्वत और आकाशलोक कोई नहीं जिसको प्राप्तहोकर कर्मों से छूटे;
कुछ मन के संकल्प से किया है वह अवश्यमेव सिद्ध होता है पूर्व
पुरुषार्थ प्रयत्न कुछ कियाहै वह निष्फल नहीं होता अवश्यमेव उस
प्राप्ति होती है। हे रामजी ! ब्रह्म में जो चैत्यता हुई है वही मन है औ
कर्मरूप है और सब लोकों का बीज है कुछ भिन्न नहीं। हे रामजी ! ज
कोई देश से देशान्तर जाने लगता है तब जानेका संकल्पही उसे लेजा
है; वह चलना कर्म है इससे स्फूर्तिरूप कर्म हुआ और स्फूर्तिरूप मन
भी है इससे मन और कर्म में कुछ भेद नहीं। अक्षोभ समुद्ररूपी ब्रह्म
इसमें द्रवतारूपी चैत्यता है। वह चैत्यता जीवरूप है और उसही

नाम मन है। मन कर्मरूप है इसलिये जैसे मन फुरता है और जो कुछ मन से कार्य करता है वही सिद्ध होता है शरीर से चेष्टा नहीं सिद्ध होती। इस कारण कहा है कि, मन और कर्म में कुछ भेद नहीं पर भिन्न २ जो भासता है सो मिथ्या कल्पना है। मिथ्या कल्पना मूर्ख करते हैं बुद्धिमान् नहीं करते जैसे समुद्र और तरङ्गों में भेद मूर्ख मानते हैं, बुद्धिमान् को भेद कुछ नहीं भासता। प्रथम परमात्मा से मन और कर्म इकट्ठेही उपजे हैं। जैसे समुद्र मेंसे द्रवतासे तरङ्ग उपजते हैं तैसेही चित्त फुरने से आत्मा से कर्म उपजते हैं। जैसे तरङ्ग समुद्रमें लीन होते हैं तैसेही मन और कर्म परमात्मा ही में लीन होते हैं। जैसे जो पदार्थ दर्पण के निकट होताहै उसीका प्रतिबिम्ब भासता है। तैसेही जो कुछ मनका कर्म होताहै सो आत्मारूपी दर्पण में प्रतिबिम्ब भासता है। जैसे बरफ का रूप शीतल है-शीतलता विना बरफ नहीं होती तैसेही चित्तकर्म है-कर्मों विना चित्त नहीं होता। जब चित्तसे स्पन्दता मिटजाती है तब चित्तभी नष्ट होजाता है चित्त के नष्ट हुये कर्म भी नष्ट होजाते हैं और कर्म के नाशहुये मन का नाशहोता है। जो पुरुष मनसे मुक्तहुआ है वही मुक्त है और जो मनसे मुक्त नहीं हुआ वही बन्धन में है। एकके नाशहुये दोनों का नाश होताहै। जैसे अग्निके नाशहुये उष्णता भी नाश होती है और जब उष्णता नाश होती है तब अग्नि भी नाश होताहै तैसेही मनके नष्ट हुये कर्म भी नाशहोते हैं और कर्मनाश हुये मनभी नष्ट होता है। एकके अभाव हुये दोनों का अभाव होताहै। कर्मरूपी चित्तहै और चित्तरूपी कर्म है इनमें परस्पर अभेदरूप हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठ उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपौरुषयोरैक्यप्रतिपादनन्नामैक सप्ततितमस्सर्गः॥ ७१॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मन भावनामात्र है। भावना फुरनेका नाम है और फुरना क्रियारूप है। उस फुरने क्रिया से सर्वफल की प्राप्ति होती है। रामजी बोले; हे ब्राह्मण! इस मनकारूप जो जड़-अजड़ है वह विस्तारपूर्वक कहिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आत्मतत्त्व अनन्तरूप और सर्वशक्तिमान् है। जब उसमें संकल्प शक्ति फुरती है तब उसको मन

कहते हैं जड़-अजड़ के मध्य में जो डोलायमान होता है उस मिश्रित का नाम मनहै। हे रामजी! भावरूप जो पदार्थ हैं उनके मध्य में जो असत्य का निश्चय करता है उसका नाम मन है। उसमें जो यह नि देह से मिलकर फुरता है कि, मैं चिदानन्दरूप नहीं; कृपण हूं सो मन रूप है। कल्पना से रहित मन नहीं होता। जैसे गुणों विना गुणी रहता तैसेही कर्म कल्पना विना मन नहीं रहता। जैसे उष्णताकी अग्नि से भिन्न नहीं होती तैसेही कर्मोंकी सत्ता मनसे भिन्न नहीं है और मन और आत्मा में कुछ भेद नहीं। हे रामजी! मनरूपी बीज संकल्परूपी नानाप्रकार के फूल होते हैं; उनमें नानाप्रकार के शरीर संपूर्ण जगत् देखताहै और जैसी २ मन में वासना होती है उसके अनु फलकी प्राप्ति होती है। इससे मनका फुरनाही कर्मोंका बीजहै और उ जो भिन्न क्रिया होती हैं सो उस वृक्षकी शाखा और नानाप्रकारके वि फल हैं। हे रामजी! जिस ओर मनका निश्चय होता है उसी ओर इन्द्रियां भी प्रवर्त्तित होती हैं और जो कर्म है वही मनका फुरनाहै मनही स्फूर्त्तिरूप है। इसी कारण कहाहै कि, मन कर्मरूपहै। उस मन इतनी संज्ञा कही हैं मन, बुद्धि, अहंकार, कर्मकल्पना, स्मृति, वास अविद्या, प्रकृति, माया इत्यादिक। कल्पनाही संसारके कारणहैं चित्त जब चैत्य का संयोग होताहै तब संसारभ्रम होताहै और ये जितनी सं तुमसे कही हैं सो चित्तके फुरने से काकतालीयवत् अकस्मात् फुरी रामजी बोले; हे भगवन्! अद्वैत तत्त्व परमसंवित् आकाशमें इतनी कल कैसे हुई और उनमें अर्थरूप दृढ़ता कैसे हुई? वशिष्ठजी बोले; हे रामज शुद्ध संवितमात्र सत्ता फुरनेकी नाईं जो स्थितहुई उसका नाम मन है जब वह वृत्ति निश्चयरूप हुई तो भाव अभाव पदार्थोंको निश्चय करनेल कि, यह पदार्थ ऐसा है; यह पदार्थ ऐसा है—उस वृत्तिका नाम बुद्धि है जब अनात्मामें आत्मभाव परिच्छिन्नरूप मिथ्या अभिमान दृढ़ हुअ तब उसका रूप अहंकार हुआ। वही मिथ्या अहंवृत्ति संसार बन्धन का कारण है; किसी पदार्थ को धावती करती है और किसीको त्याग करती

है और बालक की नाईं विचार से रहित ग्रहण है उसका नाम चित्त है। वृत्तिका धर्म फुरना है उस फुरने में फलको आरोपकरके उसकी ओर धावना और कर्त्तव्य का अभिमान फुरना कर्म है। पूर्व जो कार्य किये हैं उनको त्याग उनका संस्कार चित्त में धरकर स्मरण करने का नाम स्मृति है अथवा पूर्व जिसका अनुभव नहीं हुआ और हृदय में फुरे कि, पूर्व मैंने यह कियाथा इसका नाम भी स्मृति है। जिस पदार्थ का अनुभव हो और जिसका संस्कार हृदय में दृढ़ होवे उसके अनुसार जो चित्त फुरे उसका नाम वासना है। हे रामजी! आत्मतत्त्व अद्वैत है; उसमें अविद्यमान द्वैत विद्यमान हो भासता है इससे उसका नाम अविद्या है और अपने स्वरूप को भुलाकर अपने नाश के निमित्त स्पन्द चेष्टा करने और शुद्ध आत्मा में विकल्प उठने का नाम मूल अविद्या है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँचों इन्द्रियों को दिखानेवाला परमात्मा है और अद्वैततत्त्व आत्मा में जिस दृढ़ जालको रचाहै उस स्पन्दकलना का नाम प्रकृति है और जो असत्य को सत्य और सत्य को असत्य की नाईं दिखाती है वह माया कहाती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका अनुभव करना कर्म है और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध होतेहैं वह कर्त्ता, कार्य, कारण कहाता है। शुद्ध चेतन चैत्य को कलना की नाईं प्राप्त होताहै; उस फुरन वृत्ति को विपर्यय कहते हैं। उससे जब संकल्प जाल उठता है तब उसको जीव कहते हैं; मन भी इसी का नामहै; चित्त भी इसीका नाम है और बन्धभी इसीका नामहै। हे रामजी! परमार्थ शुद्ध चित्तही चैत्य के संयोग से और स्वरूपसे बरफ की नाईं स्थित हुआ है। रामजी बोले; हे भगवन्! यह मन जड़ है किंवा चेतन है; एकरूप मुझसे कहिये कि; मेरे हृदय में स्थित हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मन जड़ नहीं और चेतन भी नहीं जड़ चेतन की गाँठ के मध्यभाव का नाम मन है और संकल्प विकल्प में कल्पितरूप मन है। उस मन से यह जगत् उत्पन्न हुआ है और जड़ और चेतन दोनों भावों में डोलायमान है अर्थात् कभी जड़भाव की ओर आता है और कभी चेतनभाव की ओर आता है। शुद्ध चेतन मात्र में

जो फुरना हुआ उसी का नाम मन है और मन, बुद्धि, चित्त, अहं
जीवादिक अनेक संज्ञा उसी मन की हैं। जैसे एक नट अनेक स्
से अनेक संज्ञा पाता है-जिसका स्वांग धरता है उसी नाम से कहात
तैसेही संकल्प से मन अनेक संज्ञा पाता है। जैसे पुरुष विचित्र कर्म
अनेक संज्ञा पाता है-पाठ से पाठक; और रसोई से रसोइयां कहात
तैसे ही मन अनेकसंकल्पों से अनेक संज्ञा पाताहै। हे रामजी! ये जो
तुमसे चित्त की अनेक संज्ञा कही हैं उनके अन्य अन्य बहुत प्र
वादियों ने नाम रक्खे हैं; जैसा जैसा मत है तैसाही तैसा स्वभाव
मन, बुद्धि और इन्द्रियों को मानते हैं। कोई मनको जड़ मान
कोई मन से भिन्न मानते हैं और कोई अहंकार को भिन्न मानते हैं वे
मिथ्याकल्पना हैं। नैयायिक कहते हैं कि, सृष्टितत्वों के सूक्ष्म परमाणु
से उपजती हैं। जब प्रलय होता है तब स्थूलतत्त्व प्रलय होजा
और उनके सूक्ष्म परमाणु रहते हैं और फिर उत्पत्तिकाल में वही
परमाणु दूने तिगुने आदिक होकर स्थूल होते हैं; उनही पाँचों तत्व
सृष्टि होती है। सांख्य मतवाले कहते हैं कि, प्रकृति और माया के
णाम से सृष्टि होती है और चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज, वायु चारों
के इकट्ठे होने से सृष्टि उपजती मानते हैं और चारों तत्वों के शरीर
पुरुष मानते हैं और कहते हैं कि, जब तत्त्व अपने आपसे बिछुर
हैं तब प्रलय होते हैं। आर्हत औरही प्रकार मानते हैं और बौद्ध
वैशेषिक आदिक और और प्रकार से मानते हैं। पञ्चरात्रिक
प्रकार ही मानते हैं परन्तु सबही का सिद्धान्त एकही ब्रह्म आत्म
है। जैसे एकही स्थान के अनेक मार्ग हों तो उन अनेक मार्गों से
स्थान को पहुँचता है तैसेही अनेक मतों का अधिष्ठान आत्मसत्ताहै
सबका सिद्धान्त एकही है उसमें कोई वाद प्रवेश नहीं करता। हे
जी! जितने मतवाले हैं वे अपने २ मत को मानते हैं और दूसरे
अपमान करते हैं। जैसे मार्ग के चलनेवाले अपने २ मार्ग की उ
करते हैं-दूसरे की नहीं करते तैसे ही मन के भिन्न भिन्न रूप से अ

प्रकार जगत् को कहते हैं। एक मनकी अनेक संज्ञा हुई हैं। जैसे एक पुरुषको अनेक प्रकार से कहते हैं; स्नान करने से स्नानकर्त्ता; दान करने से दान कर्त्ता; तप करने से तपस्वी इत्यादि क्रिया करके अनेकसंज्ञा होती हैं तैसे ही अनेकशक्ति मन की कही हैं। मनही का नाम जीव; वासना और कर्म है। हे रामजी! चित्तही के फुरनेसे सम्पूर्ण जगत् हुआ है और मन ही के फुरने से भासता है। जब वह पुरुषचैत्य के फुरने से रहित होता है तब देखताहै तौ भी कुछ नहीं देखता। यह प्रसिद्ध जानिये कि, जिस पुरुष को इन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इष्ट अनिष्टमें हर्ष शोक देता है उसका नाम जीव है। मन ही से सब सिद्ध होता है और सब अर्थों का कारण मन ही है। जो पुरुष चैत्य से छूटता है वह मुक्तरूप है और जिसको चैत्य का संयोग है वह बन्धन में बँधा है। हे रामजी! जो पुरुष मन को केवल जड़ मानते हैं उनको अत्यन्त जड़ जानो और जो पुरुष मन को केवल चेतन मानते हैं वे भी जड़ हैं। यह मन केवल जड़ नहीं और न केवल चेतन ही है जो मन का एकही रूप हो तो सुख दुःख आदिक विचित्रता न हों और जगत् की लीनता भी नहीं! जो केवल चैतन्य ही रूप हो तो जगत् का कारण नहीं होसक्ता और जो केवल जड़-रूप हो तौ भी जगत्का कारण नहीं क्योंकि; केवल जड़ पाषाणरूप होता। जैसे पाषाण से कुछ क्रिया उत्पन्न नहीं होतीं तैसेही केवल जड़ मन जगत् का कारण नहीं होता। मन केवल चैतन्य भी नहीं; केवल चैतन्य तो आत्मा है जिसमें कर्तृत्व आदि कल्पना नहीं होतीं इससे मन केवल चैतन्य भी नहीं और केवल जड़ भी नहीं। चैतन्य और जड़का मध्यभाव ही जगत् का कारणहै। हे रामजी! जैसे प्रकाश सब पदार्थोंके प्रकाश का कारणहै तैसेही मन सब अर्थों का कारण है जबतक चित्त है तब तक चैत्य भासता है और जब चित्त अचित्त होताहै तब सर्व भूतजात लीन हो जाते हैं। जैसे एकही जल रस से अनेकरूप हो भासता है तैसेही एकही मन अनेक पदार्थ रूपहोकर भासता है और अनेकसंज्ञा इसकी शास्त्रों के मतवालों ने कल्पी हैं। सबका कारण मनही है और परमदेव परमात्माकी सर्व शक्तियों में से

एक शक्ति है। उसी परमात्मा से यह फुरी है और जड़भाव फुरकर उसही में लीन होती है। जैसे मकड़ी अपने मुख से जाला निकाल फैलाती है और फिर आपही में लीन करलेती है तैसेही परमात्मा से जड़भाव उपजता है। हे रामजी! नित्य शुद्ध और बोधरूप ब्रह्म है जब प्रकृतभाव को प्राप्त होता है तब अविद्या के वश से नाना प्रक जगत् को धारता है और उसही के सर्व पर्याय हैं। जीव, मन, बुद्धि, अहंकार इत्यादिक संज्ञा मलीन चित्त की होती हैं। ये संज्ञा भिन्न मतवादियों ने कल्पी हैं पर हमको संज्ञा से क्या प्रयोजन है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनःसंज्ञाविचारोनाम द्विसप्ततितमस्सर्गः॥ ७२॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! यह सब जगत् आडम्बर मनही ने है और सब मनरूप है और मनही कर्मरूप है—यह आपके कहे मैंने निश्चय किया है परन्तु इसका अनुभव कैसे हो? वशिष्ठजी ब हे रामजी! यह मन भावनामात्र है। जैसे प्रचण्ड सूर्य की धूप मरु में जल हो भासती है तैसे ही आत्मा का आभासरूप मन होता उस मन से जो कुछ जगत् भासता है वह सब मनरूप है; कहीं मनु कहीं देवता; कहीं दैत्य; कहीं पक्षी; कहीं गन्धर्व; कहीं नागपुर आ जो कुछ रूप भासते हैं वे सबही मन से विस्तार को प्राप्त हुये हैं प तृण और काष्ठ के तुल्य हैं। उनके विचारने से क्या है? यह सब मन रचना है और मन अविचार से सिद्ध है विचार किये से नष्टहोजाता मन के नष्टहुये परमात्मा ही शेष रहता है जो सबका साक्षीभूत सर्वप अतीत; सर्वव्यापी और सबका आश्रयभूत है। उसके प्रमाद से मन ज को रच सक्ता है इस कारण कहा है कि; मन और कर्म एकरूप हैं शरीरों के कारण हैं हे रामजी! जन्म मरण आदिक जो कुछ विकार मनसे ही भासते हैं और मन अविचार से सिद्ध है विचार किये से लीन जाता है। जब मन लीन होता है तब कर्म आदिक भ्रम भी सब नष्ट जाते हैं। जो इस भ्रमसे छुटा है वही मुक्त है और वह पुरुष फिर जन्म

मरणमें नहीं आता उसका सब भ्रम नष्ट होजाता है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! आपने सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीनप्रकार के जीव कहे हैं और उनका प्रथम कारण सत्य असत्यरूपी मन कहाता वह मन अशुद्धरूप शुद्ध चिन्मात्र तत्त्वसे उपजकर बड़े विस्ताररूपी विचित्र जगत् को कैसे प्राप्त हुआ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आकाश तीन हैं एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश; और तीसरा भूताकाश भाव से वे समानरूप हैं और आप अपनी सत्ताहै। जो चित्ताकाश से नित्य उपलब्ध रूप और चेतनमात्र सब के भीतर बाहर स्थितहै अनुमाता; बोधरूप और सर्वभूतों में सम व्याप रहाहै वह चिदाकाशहै। जो सर्वभूतों का कारणरूप है और आप विकल्परूप है और सब जगत् को जिसने विस्तारा है वह चित्ताकाश कहाता है। दश दिशाओं को विस्तारकर जिसका वपु प्रच्छेद को नहीं प्राप्त होता, शून्यस्वरूप है और पवन आदिक भूतों के आश्रय-भूत है वह भूताकाश कहाता है। हे रामजी! चित्ताकाश और भूताकाश दोनों चिदाकाश से उपजे हैं और सबके कारण हैं। जैसे दिन से सब कार्य होते हैं तैसेही चित्त से सब पदार्थ प्रकट होते हैं। वह चित्त जड़ भी नहीं और चैतन्य भी नहीं आकाश भी उसी से उपजता है। हे रामजी! ये तीनों आकाश भी अप्रबोधक के विषय हैं ज्ञानी के विषय नहीं। ज्ञानवान् तीन आकाश अज्ञानी के उपदेश के निमित्त कहते हैं। ज्ञानवान् को एक परब्रह्म पूर्ण सर्वकल्पना से रहित भासता है। द्वैत; अद्वैत और शब्द भी उपदेश के निमित्त है प्रबोध का विषय कोई नहीं। हे रामजी! जबतक तुम प्रबोध आत्मा नहीं हुये तबतक मैं तीन आकाश कहता हूं—वास्तव में कोई कल्पना नहीं। जैसे दावाग्नि लगे से वन जलकर शून्य भासता है तैसेही ज्ञानाग्नि से जलेहुये चित्ताकाश और भूताकाश चिदाकाश में शून्यकल्पना भासते हैं। मलीन चैतन्य जो चैत्यता को प्राप्त होता है इससे यह जगत् भासता है। जैसे इन्द्रजाल की बाजी होती है तैसेही यह जगत है। बोधहीन को यह जगत् भासताहै। जैसे असम्यक्दर्शी को सीपी में रूपा भासताहै तैसेही अज्ञानीको जगत्

भासता है—आत्मतत्त्व नहीं भासता जब दृश्यभ्रम नष्ट होजावे त
मुक्तरूप हो ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चिदाकाशमाहात्म्यवर्णनन्नाम
त्रिसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७३ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह जो कुछ उपजा है इसे तुम चित्त
उपजा जानों यह जैसे उपजा है तैसे उपजा है अब तुम इसकी निवृ
के लिये यत्न करके आत्मपद में चित्त लगाओ तब यह जगत्भ्रम
होजावेगा। हे रामजी! इस चित्त पर एकचित्ताख्यान जो पूर्वहुआ
उसे सुनो; जैसे मैंने देखा है तैसेही तुमसे कहता हूं। एक महाशून्य
था और उसके किसी कोने में यह आकाश स्थित था उस उजाड़
मैंने एक ऐसा पुरुष देखा जिसके सहस्र हाथ और सहस्र लोचन
और चञ्चल और व्याकुलरूप था। उसका बड़ा आकार था और सह
भुजाओं से अपने शरीर के मारे आपही कष्टमान हो अनेक योजनों त
भागता चला जाता था। जब दौड़ता २ थकजाय और अङ्ग चूर्ण
जाएँ तो एक कृष्ण रात्रि की नाईं भयानकरूप कूप में जा पड़े और ज
कुछ काल बीते तब वहाँ से भी निकलकर कञ्ज के वन में जापड़े और ज
वहां कण्टक चुभें तो कष्टपावे। जैसे पतङ्ग दीपक को सुखरूप जान
उसमें प्रवेश करे और नाश हो तैसेही वह जहाँ सुखरूप जानके प्रवेश क
वहांही कष्ट पावे और फिर उसी वन में जापड़े। फिर वहां से निकल
आपको अपने ही हाथों से मारे और कष्टमान हो और फिर दौड़ता २ कू
में जापड़े। वहां से निकल फिर कदली के वन में जावे और उससे निक
कर फिर आपको मारे जब कदली वन में जावे तब कुछ शान्तिमान् औ
प्रसन्न हो दौड़े और आपको मारे और कष्टमान होके दूर से दूर जाप
इसी प्रकार वह अपना किया आपही कष्ट भोगे और भटकता फिरे। त
मैंने उसको पकड़ के पूछा कि, अरे तू कौन है; यह क्या करता है औ
किस निमित्त करता है तेरा नाम क्या है और यहां क्यों मिथ्या जग
में मोह को प्राप्त हुआ है? तब उसने मुझसे कहा कि; न मैं कुछ हूं;

यह कुछ है और न मैं कुछ करता हूं। तू तो मेरा शत्रु है; तेरे देखने से मैं नाश होता हूं। इस प्रकार कहकर वह अपने अङ्गों को देखने और रुदन करने लगा। एक क्षण में उसका वपु नाश होने लगा और प्रथम उसके शीश, फिर भुजा, फिर वक्षस्थल और फिर उदर क्रम से गिरपड़े। जैसे स्वप्न से जागे स्वप्न का शरीर नष्ट होता है। तब मैं नीति शक्ति को विचार के आगे गया तो और एक पुरुष इसी भांति का देखा। वह भी इसी प्रकार आपको आपही प्रहार करे; कष्टमान हो और पूर्वोक्त क्रिया करे। जब उसने मुझको देखा तब प्रसन्न होकर हँसा और मैंने उसको रोकके उसी प्रकार पूछा तो उसने भी मेरे देखते २ अपने अङ्गों को त्याग दिया और कष्टवान् और हर्षवान् भी हुआ। फिर मैं आगे गया तो एक और पुरुष देखा वह भी इसी प्रकार करे कि, अपने हाथों से आपको मार के बड़े अन्धे कुवें में जापड़े। चिरकालपर्यन्त मैं उसको देखता रहा और जब वह कूप से निकला तब मैंने उसपर प्रसन्न होकर जैसे दूसरे से पूछा था पूछा पर वह मूर्ख मुझको न जानके दूर से त्याग गया और जो कुछ अपना व्यवहार था उसमें जा लगा। इसके अनन्तर चिरकालपर्यन्त मैं उस वन में विचरता रहा तो उसी प्रकार मैंने फिर एक पुरुष देखा कि, वह आपही आपको नाश करता था। निदान जिसको मैं पूछूं और जो मेरे पास आवे उसको मैं कष्ट से छुड़ा दूं और आनन्द को प्राप्त करूं और जो मेरे निकट ही न आवे और मुझको त्याग जावे तो उस वन में उस का वही हाल हो और वही व्यवहार करे। हे रामजी! वह वन तुमने भी देखा है परन्तु तुमने वह व्यवहार नहीं किया और उस अटवी में जाने योग्यभी तुम नहीं। तुम बालक हो और वह अटवी महाभयानक है उसमें प्राप्त हुये कष्ट से कष्ट पाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानन्नाम चतुःसप्ततितमस्सर्गः॥ ७४॥

रामजी बोले; हे ब्राह्मण! वह कौन अटवी है; मैंने कब देखी है और कहां है और वे पुरुष अपने नाश के निमित्त क्या उद्यम करते थे सो

कहिये ? वशिष्ठजी बोले; हेरामजी ! वह अटवी दूर नहीं और वह
भी दूर नहीं। यह जो गम्भीर बड़ा आकाररूप संसार है वही
अटवी है और विकारों से पूर्ण है। यह अटवी भी आत्मा से सिद्ध
है। उसमें जो पुरुष रहते हैं वे सब मन हैं और दुःखरूपी चेष्टा करते
विवेक ज्ञानरूपी मैं उनको पकड़ता था। जो मेरे निकट आते थे वे
जैसे सूर्य के प्रकाश से सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं तैसे मेरे प्रबो
प्रफुल्लित होकर महामती होते थे और चित्त से उपशम होकर पर
को प्राप्त होते थे और जो मेरे निकट न आये और अविवेक से
हुये मेरा निरादर करते थे वे मोह और कष्ट ही में रहे। अब उनके
प्रहार; कूप; कञ्ज और केले के वन का उपमान सुनो। हे रामजी !
कुछ विषय अभिलाषा हैं वे उस मन के अङ्ग हैं। हाथों से प्रहार क
यह है कि, सकाम कर्म करते हैं और उनसे फटे हुये दूर से दूर दौड़ते
मृतक होते हैं। अन्धकूप में गिरना यही विवेक का त्याग करना है।
प्रकार वह पुरुष आपको आपही प्रहार करते भटकते फिरते हैं और अ
लाष रूपी सहस्र अङ्गों से घिरे हुये मृतक होकर नरकरूपी कूप में प
हैं। जब उस कूप से बाहर निकलते हैं तब पुण्य कर्मों से स्वर्ग में ज
हैं वही कदली के वन समान है वहां कुछ सुख पाते हैं स्त्री, पुत्र, क
आदिक कुटुम्ब कञ्ज के वन हैं और कञ्ज में कण्टक होते हैं सो पुत्र,
और लोकों की कामना हैं उनसे कष्ट पाते हैं। जब महा पापकर्म क
हैं तब नरकरूपी अन्धकूप में पड़ते हैं और जब पुण्यकर्म करते हैं
कदली वन की नाईं स्वर्ग को प्राप्त होते हैं तो कुछ उल्लास को भी प्र
होते हैं। हे रामजी। गृहस्थाश्रम महादुःखरूप कञ्ज वन की नाईं है
मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि, अपने नाश के निमित्त ही दुःखरूप कर्म क
हैं। उनमें जो विहित करके विवेक के निकट आते हैं वे शुभ अशु
कर्मों के बन्धन से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त होते हैं और जो विवे
से हित नहीं करते वे दूरसे दूर भटकते हैं। हे रामजी ! जो पुरुष भो
भोगने के निमित्त तप आदिक पुण्यकर्म करते हैं वे उत्तम शरीर ध

स्वर्गसुख भोगते हैं। वे जो मनरूपी पुरुष मुझको देख के कहते थे कि, तू हमारा शत्रु है तुझसे हम नष्ट होते हैं और रुदन करते थे वे विषयभोग त्यागने के निमित्त मूर्ख चित्त मनुष्य कष्ट पाते थे क्योंकि; मूर्खों की प्रीति विषय में होती है और उसके त्यागने से वे कष्टमान होते हैं और विवेक को देख के रुदन करने लगते हैं कि ये अर्द्धप्रबुद्ध हैं। जिनको परमपद की प्राप्ति नहीं हुई वे भोगों को त्यागे से कष्टवान् होते हैं और रुदनकरते हैं। जब अर्द्धप्रबोध मूर्ख चित्त अभिलाषारूपी अङ्गों से तपायमान हुआ अज्ञानको त्याग करताहै और विवेकको प्राप्त होताहै तब परम तुष्टिमान हो हँसने लगता है। इससे तुमभी विवेकको प्राप्त होकर संसारकी वासना को त्यागो तब आनन्दमान होगे। पूर्वके सुभाव और नीच चेष्टाको त्याग कर वह इसलिये हँसता है कि, मैं मिथ्या चेष्टा करता था और चिरकाल पर्यन्त मूर्खता से कष्ट पातारहा। हे रामजी! जब इस प्रकार विवेक को प्राप्त होकर चित्त परमपद में विश्राम पाताहै तब पूर्व की दीन चेष्टा को स्मरण करके हँसता है। हे रामजी! जब मैं उस मनरूपी पुरुष को रोककर पूछता था और वह अपने अङ्गों को त्यागता जाता था वहभी सुनो। मैं विवेकरूप हूं। जब मैं उस चित्तरूपी पुरुष को मिला तब उसके सहस्र हाथ और सहस्र लोचनरूपी अभिलाषाओं का त्याग हुआ और वह अपने प्रहार करने से भी रहगया और जब उस पुरुष का शीश और परिच्छिन्नदेह अभिमानी गिरपड़ा तब दुर्वासनारूपी अङ्गों को उसने त्याग दिया। उनको त्यागकर वह आपभी नष्ट होगया सो अहंकार ने अपनी निर्वाणता को देखा अर्थात् परब्रह्म में लीन होगया। हे रामजी! पुरुषको बन्धन का कारण वासना है। जैसे बालक विचार से रहित चञ्चलरूपी चेष्टा करता है और कष्ट पाताहै और जैसे कुसवारी कीट आपही अपने बैठने की गुफा बनाके फँस मरती है तैसेही मनुष्य अपनी वासना से आपही बन्धन में पड़ताहै। जैसे मर्कट लकड़ी में हाथ डालके कील को निकालने लगताहै और लीला करताहै तो उसका हाथ फँसजाता है और कष्ट पाता है तैसेही अज्ञानी को अपनी चेष्टाही बन्धन करती है क्योंकि, विचार बिना करता

है। इससे हे रामजी! तुम चित्तसे शास्त्र और सन्तों के गणों में पर्यन्त चलो और जो कुछ अर्थशास्त्र में प्रतिपाद्य है उसकी दृढ़भा करो। जब अभ्यास से तुम्हारा चित्त स्वस्थ होगा तब तुमको कोई श न होगा। हे रामजी! जब चित्त आत्मपद में स्थित होगा तब राग द्वेष से चलायमान न होगा और जो कुछ देहादिकों से प्रच्छिन्न अहंक सो नष्ट होगा। जैसे सूर्य के उदय हुये से बरफ गलजाती है तैसेही अहंकार नष्ट होजावेगा और सर्व आत्माही भासेगा। हे रामजी! जब आत्मज्ञान नहीं होता तबतक शास्त्रों के अनुसार आनन्दित आचा विचरे; शास्त्रों के अर्थ में अभ्यास करे और मनको रागद्वेषादिक से करे तब पानेयोग्य, अजन्मा शुद्ध और शान्तरूप पद को प्राप्त हो और सब शोकों से तरके शान्तरूप होताहै। हे रामजी! जबतक आत्म का प्रमाद है तबतक अनेक दुःख प्रवृद्ध होते जाते हैं शान्ति नहीं ह और जब आत्मपद की प्राप्ति होती है तब सब दुःख नष्ट होजाते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नाम पञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥ ७५॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह चित्त परब्रह्म से उपजा है सो आ रूप है और आत्मरूप भी नहीं। जैसे समुद्र से तरङ्ग तन्मय और होते तैसेही चित्त है। जो ज्ञानवान् हैं उनको चित्त ब्रह्मरूपही है भिन्न नहीं। जैसे जिसको जल का ज्ञान है उसको तरङ्ग भी जल भासते हैं और जो ज्ञानसे रहित हैं उनको मन संसारभ्रम का कारण जैसे जिसको जल का ज्ञान नहीं उसको भिन्न भिन्न तरङ्ग भासते हैं तै अज्ञानी को भिन्न २ जगत् भासता है और ज्ञानवान् को केवल ब्रह्मस ही भासती है। हे रामजी! ज्ञानवान् अज्ञानी के उपदेश के निमित्त कल्पते हैं; अपनी दृष्टि में उनको सर्व ब्रह्मही भासता है। मन आदिक जो तुमको भासते हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं अनन्य और शक्तिरूप हैं। उ अन्य कोई पदार्थ नहीं; सर्वशक्ति परब्रह्म नित्य और सर्वओर से अविनाशी है और सबही ब्रह्मसत्ता में है सर्व शक्तिमान् आत्मा है। जै

उसको रुचि है वही शक्ति प्रत्यक्ष होती है और सर्व शक्तिरूप होकर फैला है। जीवों में चेतनशक्ति ज्ञान; वायु में स्पन्दता; पत्थर में जड़ता; जल में द्रवता; अग्नि में तेज; आकाश में शून्यता; स्वर्ग में भाव; काल में नाश; शोक में शोक; मुदिता में आनन्द; वीरों में वीर; सर्गके उपजाने में उत्पत्ति और कल्प के अन्त में नाश शक्ति आदि जो कुछ भाव अभाव शक्ति है सो सब ब्रह्मही की है। जैसे फूल, फल, बेल, पत्र, शाखा, वृक्ष विस्तार बीजके अन्दर होताहै तैसेही सब जगत् ब्रह्म में स्थित होताहै और जीव, चित्त और मन आदिक भी ब्रह्मही में स्थित हैं। हे रामजी! जैसे वसन्त ऋतु में एकही रस नाना प्रकार के फूल, फल, टहनियों सहित बहुत रूपों को धरता है तैसेही एकही आकाश ब्रह्म चैत्यता से जगत्रूप हो भासता है और उसमें देशकालादिक कोई विचित्रता नहीं सम्पूर्ण जगत् वही रूप है। वह ब्रह्मात्मा सर्वज्ञ, नित्य उदित और बृहद्रूप है। हे रामचन्द्र! उसीकी मनन कलना मन कहाती है। जैसे आकाश में आंख से तरवरे और सूर्यकी किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में मन है। हे रामजी! ब्रह्म में चित्त मन का रूप है और वह मन ब्रह्म की शक्तिरूप है; इसीकारण ब्रह्म मे भिन्न नहीं ब्रह्मही है—ब्रह्मसे भिन्न कल्पना करनी अज्ञानता है। ब्रह्म में मैं ऐसा उत्थान हुआहै इसका नाम मन है और जड़ अजड़रूप मन से जगत् हुआहै। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्यारूप सब मन के कल्पे हैं। प्रतियोगी और व्यवच्छेदक संख्या का भेद यह है कि, प्रतियोगी विरोधी को कहते हैं; जैसे चेतन का प्रतियोगी जड़ और व्यवच्छेद इसे कहते हैं कि, जैसे घट अविच्छिन्न पट। ऐसे अनेकरूप दृश्य सब मन के कल्पे हैं। जैसे २ ब्रह्म में इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की नाईं मन दृढ़ होता है तैसेही तैसे भासता है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरङ्गचक्र हो भासते हैं तैसेही शुद्ध चिन्मात्र में जीव फुरने से नाना प्रकार का जगत् हो भासता है परन्तु कुछ हुआ नहीं ब्रह्मही अपने आप में स्थित है। जैसे तरङ्गों के होने और मिटने में जल एकही रस रहताहै तैसेही जगत् के उपजने और मिटने से ब्रह्म ज्योंका त्यों है। जैसे

सूर्यकी किरणोंमें दृढ़तेजसे जल भासताहै तैसेही आत्मतत्त्व में विचित्र भासती है परन्तु सदा अपने आप में स्थित है। हे रामजी! कारण, क और कर्त्ता; जन्म; मरणादिक जो कुछ भासते हैं सो सब ब्रह्मरूप हैं अ से भिन्न कुछ नहीं और आत्मा शुद्धरूपहै उसमें न लोभ है; न मोहहै औ न तृष्णाहै क्योंकि; अद्वैतरूप और सर्वात्मा है। जैसे सुवर्ण से नानाप्रक के भूषण हो भासते हैं तैसेही ब्रह्म से जगत् हो भासता है। जो ज्ञानव पुरुषहै उसको सदा ऐसेही भासता है और जो अज्ञानी है उसको भिन्न कल्पना भासती है। जैसे किसीका बान्धव दूरदेशसे चिरकाल पीछे आ तो वह देशकाल के व्यवधान से बान्धवको भी अबान्धव जानताहै तैसे अज्ञानके व्यवधान से जीव अभिन्नरूप आत्मा को भिन्नरूप जानता है जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रमसे भासता है तैसेही सत्य असत्यरू मन आत्मा में भासता है। उस मन ने शब्द—अर्थ—रूप भिन्न२ कल्पन रची हैं पर आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है और उसमें बन्ध मो कल्पना का अभाव है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! मन जो निश्चय होताहै वही होताहै अन्यथा नहीं होता पर मन में जो बन्धक निश्चय होता है सो बन्ध कैसे सत्य है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! ब की कल्पना मूर्ख करते हैं इससे वह मिथ्या है और जो बन्धकी कल्पन मिथ्या हुई तो बन्ध की अपेक्षा से मोक्ष भी मिथ्या है—वास्तव में न ब है और न मोक्षहै। हे महामते रामजी! अज्ञान से अवस्तु भी वस्तुरूप ह भासती है—जैसे रस्सी में सर्प भासताहै पर ज्ञानवान् को अवस्तु सत्य नह भासती। जैसे रस्सी के ज्ञान से सर्प नहीं भासता तैसेही बन्ध—मोक्ष क ल्पना मूर्खों को भासती है; ज्ञानवान् को बन्ध मोक्ष कल्पना कोई नहीं हे रामजी! आदि परमात्मा से मन उपजा है उसने ही बन्ध और मोक्ष मोहसे कल्पाहै और फिर दृश्य प्रपञ्चको रचाहै। वह प्रपञ्च कल्पनामात्र है और बालक की कथावत् मूर्खों को रुचता है अर्थात् जो विचारसे रहित हैं उनको यह जगत् सत्य भासता है॥

इति श्रीयो॰उत्पत्तिप्र॰चित्तचिकित्सावर्णनन्नामषट्सप्ततितमस्सर्गः॥७६॥

रामजी बोले; हे मुनियों में श्रेष्ठ! बालक की कथा क्या है वह क्रम से कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! एक मूर्ख बालक ने दाई से कहा कि, कोई अपूर्व कथा जो आगे न हुई हो मुझ से कह तब उसके विनोद निमित्त महाबुद्धिमान् धात्री एक कथा कहने लगी। वह बोली हे पुत्र! सुन; एक बड़ा शून्यनगर था और उसका एक राजा था। उस राजा के शुभ आचारवान् और बड़े सुन्दर तेजवान् तीन पुत्र थे। उनमें से दो तो उपजे न थे और एक गर्भ में ही आया न था। वे तीनों शुभ आचारवान् और शुभ क्रिया कर्त्ता द्रव्य के अर्थ जीतने को चले और शून्य नगर से बाहर जा निर्मार्गरूप नगर में ते निर्बुध और शोक सहित इकट्ठे ऐसे चले जैसे बुध, शुक्र और शनैश्चर। इकट्ठे चलने का दृष्टान्त शुक्र, शनैश्चर और बुध का नहीं है निर्बुध और शोक का ग्रहणरूप दृष्टान्त है। सरसों के फूलों की नाईं उनके अङ्ग कोमल थे इसलिये वे मार्ग में थक गये और ऊपर से सूर्य की धूप तपने लगी। जैसे ज्येष्ठ-आषाढ़ की धूप से कमल कुम्हिला जाते हैं तैसेही वे भी कुम्हिला गये और तप्त चरणों से तपने लगे और महाशोक को प्राप्त हुये। चरणों में डाभ के कण्टक लगे; मुख धूरसे धूसल होगये और तीनों कष्टवान् हुये आगे चलकर उन्होंने तीन वृक्ष देखे जिनमें से दो तो उपजे नहीं और तीसरे का बीज भी नहीं बोया गया। उन तीनों ने एक २ वृक्षके नीचे आकर विश्राम किया-जैसे स्वर्ग में कल्पवृक्ष के नीचे इन्द्र और यम आ बैठें-और उनके फल भक्षण किये; फलों को काटके रस पान किया; उनके फूलों की माला गले में पहिरी और चिरकाल पर्यन्त वहां विश्रामकर फिर दूरसे दूर चले गये। इतने में मध्याह्न का समय हुआ उस से वे तपायमान हुये। आगे उन्होंने तीन नदियां देखीं और उनके निकट गये जो तरङ्गों से लीलायमान थीं। उनमें से दो में तो कुछ भी जल न था और तीसरी सूखी पड़ी थी। उनमें वे चिरकाल पर्यन्त क्रीड़ा करते रहे-जैसे स्वर्ग की गङ्गा में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कलोल करते हैं और जलपान किया। फिर जब दिन अस्त होने लगा तब वहां से चले

तो एक भविष्यत नगर देखा जो बड़ी ध्वजाओं से सम्पन्न और रत्न म
और सुवर्ण से जड़ा मानों सुमेरु का शिखर था। उसमें उन्होंने हीरे
माणिकों से जड़ा हुआ एक मन्दिर देखा जो निराकाररूप था। उ
वे घुसगये तो वहां बहुत अङ्गना देखीं और फिर विचार किया कि, स
कीजिये और ब्राह्मण को भोजन खवाइये। तब उन्होंने कञ्चन की त
बटलोइयां मँगवाईं जिनमें से दो का करनेवाला तो उपजा नहीं अ
आधार से रहित थीं और तीसरी चूर्णरूप थी। उस चूर्णरूप बटलो
उन्होंने सोलहसेर रसोईं चढ़ाई और ब्रह्मा आदि विदेहरूप और नि
ऋषियों ने भोजन किया। उससे उन्होंने सैकड़ों ब्राह्मणों को भोज
कराय आपभी भोजन किया। इस प्रकार वह राजपुत्र आजतक सु
स्थित हैं। हे पुत्र! यह रमणीक कथा मैंने तुझको सुनाई है। यदि
इसको हृदय में धारेगा तो पंडित होगा। हे रामजी! इसप्रकार धात्री
जब बालक को कथा सुनाई तब बालक के मन में सच प्रतीति हुई। ज
उस कथा का रूप संकल्प से भिन्न कुछ न था तैसे ही यह जगत्
संकल्पमात्र है, अज्ञान से हृदय में स्थित होरहा है; भ्रम से इसमें आ
हुई है और बन्ध, मोक्ष भी कल्पना मात्र है; संकल्पसे भिन्न इसका स्व
नहीं। हे रामजी! शुद्ध आत्मा निष्किञ्चनरूपहै पर संकल्पके वश से
ञ्चनरूप हो भासता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, नदियां; देश आदिक
पञ्चभौतिक सृष्टिहैं सो सब संकल्पमात्रहैं जैसे स्वप्न में नानाप्रकार की सृ
भासती है और कुछ नहीं उपजी तैसेही इसजगतको जानो। जैसे कल्पि
राजपुत्र भविष्यतनगरमें स्थित हुए थे और वह रचना संकल्प बालक
स्थिरीभूत हुई थी तैसे ही यह जगत् संकल्पमात्र मन के फुरने से दृढ़ हु
है। जैसे द्रवता से जो जल में तरङ्ग होते हैं वह जलही जल है तैसे
आत्माही आत्मा में स्थित है। यह सब जगत् संकल्प से उपजताहै औ
बड़े विस्तार को प्राप्त होताहै जैसे दिन होने से सब व्यवहार विस्तार
प्राप्त होते हैं तैसेही संकल्पसे उपजा जगत् विस्तारको प्राप्त होताहै और चि
का विलासहै; चित्तके फुरनेहीसे भासताहै। इससे; हे रामजी! सङ्कल्पसे

मैल को त्याग करके निर्विकल्प आत्मतत्त्व का आश्रय करो। जब उस पद में स्थित होगे तब परम शान्ति की प्राप्ति होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिकावर्णनन्नाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७७ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मूढ़ अज्ञानी पुरुष अपने संकल्पसे आपही मोह को प्राप्त होता है और जो पण्डित है वह मोह को नहीं प्राप्त होता। जैसे मूर्ख बालक अपनी परछाहीं में पिशाच कल्पकर भयपाता है तैसेही मूर्ख अपनी कल्पनासे दुःखी होताहै। रामजी बोले; हे भगवन्! ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! वह संकल्प क्या है और छाया क्या है जो असत्यही सत्यरूप पिशाचकी नाईं दीखती है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! पञ्चभौतिकशरीर परछाहीं की नाईं है क्योंकि; अपनी कल्पना से रचा है और अहंकाररूपी पिशाच है। जैसे मिथ्या परछाहीं में पिशाच को देख के मनुष्य भयवान् होता है तैसेही देह में अहंकार को देखके खेद प्राप्त होता है। हे रामजी! एक परम आत्मा सर्वमें स्थितहै तब अहंकार कैसे हो? वास्तव में अहंकार कोई नहीं परमात्मा ही अभेदरूप है और उसमें अहंबुद्धि भ्रम से भासती है। जैसे मिथ्यादर्शी को मरुस्थल में जल भासताहै तैसेही मिथ्याज्ञान से अहंकार कल्पना होती है। जैसे मणि का प्रकाश मणि पर पड़ता है सो मणि से भिन्न नहीं, मणिरूपही है; तैसेही आत्मा में जगत् भासता है सो आत्मा ही में स्थित है। जैसे जल में द्रवता से चक्र और तरङ्ग हो भासते हैं सो जलरूपही हैं; तैसेही आत्मा में चित्त से जो नानात्व हो भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं; असम्यक् दर्शन से नानात्व भासता है। इससे असम्यक् दृष्टि को त्याग के आनन्दरूप का आश्रय करो और मोह के आरम्भ को त्याग कर शुद्धि बुद्धि सहित विचारो और विचार से सत्य ग्रहण करो; असत्य का त्याग करो। हे रामजी! तुम मोह का माहात्म्य देखो कि, स्थूलरूप देह जो नाशवन्त है उसके रखने का उपाय करता है पर वह रहता नहीं और जिस मनरूपी शरीर के नाश हुये कल्याण होता है उसको पुष्ट करता है। हे रामजी! सब मोह के आरम्भ मिथ्या

भ्रम से दृढ़ हुये हैं, अनन्त आत्मतत्त्व में कोई कल्पना नहीं; कौन
को कहे। जो कुछ नानात्व भासता है वह है नहीं और जीव ब्र
अभिन्न है। उस ब्रह्मतत्त्व में किसे बन्ध कहिये और किसे मोक्ष क
वास्तव में न कोई बन्ध है न मोक्ष है क्योंकि; आत्मसत्ता अनन्तरू
हे रामजी! वास्तव में द्वैतकल्पना कोई नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता अ
आप में है। जो आत्मतत्त्व अनन्त है वही अज्ञान से अन्य की
भासता है। जब जीव अनात्म में आत्माभिमान करता है तब परिच्छि
कल्पना होती है और शरीर को अच्छेदरूप जान के कष्टवान् होत
पर आत्मपद में भेद अभेद विकार कोई नहीं क्योंकि; वह तो नित्य,शु
बोध और अविनाशी पुरुष है। हे रामजी! आत्मा में न कोई विका
न बन्धन है और न मोक्ष है क्योंकि; आत्मतत्त्व अनन्तरूप; निर्वि
अच्छेद, निराकार और अद्वैतरूप है। उसको बन्ध विकार कल्पना
हो? हे रामजी! देह के नष्ट हुये आत्मा नष्ट नहीं होता। जैसे चम
में आकाश होता है तो वह चमड़ी के नाश हुये नाश नहीं होता तैसे
देह के नाश हुये आत्मा नाश नहीं होता। जैसे फूल के नाश
गन्ध आकाश में लीन होती है; जैसे कमल पर बरफ पड़ता है तो कम
नष्ट होजाता है भ्रमर नाश नहीं होता और जैसे मेघ के नाश हुये प
का नाश नहीं होता; तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश न
होता। हे रामजी! सबका शरीर मन है और वह आत्मा की शक्ति
उसमें यह शरीर आदिक जगत् रचा है। उस मन का ज्ञान विना ना
नहीं होता तो फिर शरीर आदि के नष्ट हुये आत्मा का नाश कैसे हो
हे रामजी! शरीर के नष्ट हुये तुम्हारा नाश नहीं होगा, तुम क्यों मिथ्
शोकवान् होते हो? तुम तो नित्य, शुद्ध और शान्तरूप आत्मा हो
हे रामजी! जैसे मेघ के क्षीण हुये पवन क्षीण नहीं होता और कमल
के सूखे से भ्रमर नष्ट नहीं होता तैसेही देह के नष्ट हुये आत्मा नहीं न
होता। संसार में क्रीड़ाकर्त्ता जो मन है उसको संसार में नाश नहीं हो
तो आत्मा का नाश कैसे हो? जैसे घट के नाश हुये घटाकाश न

नहीं होता। हे रामजी ! जैसे जल के कुण्ड में सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है और उस कुण्ड के नाश हुये प्रतिबिम्ब नाश नहीं होता; यदि उस जल को और ठौर ले जायँ तो प्रतिबिम्ब भी चलता भासता है तैसेही देह में जो आत्मा स्थित है सो देह के चलने से चलता भासता। जैसे घट के फूटे से घटाकाश महाकाश में स्थित होता है तैसेही देह के नाश हुये आत्मा निरामयपद में स्थित होता है। हे रामजी ! सब जीवों का देह मनरूपी है। जब वह मृतक होता है तब कुछ कालपर्यन्त देश, काल और पदार्थ का अभाव होजाता है और इसके अनन्तर फिर पदार्थ भासते हैं; उस मूर्च्छा का नाम मृतक है। आत्मा का नाश तो नहीं होता चित्त की मूर्च्छा से देश, काल और पदार्थों के अभाव होने का नाम मृतक है। हे रामजी ! संसार भ्रम के रचनेवाला जो मन है उसका ज्ञानरूपी अग्नि से नाश होता है; आत्मतत्त्वा का नाश कैसे हो ? हे रामजी ! देश, काल और वस्तु से मन का निश्चय विपर्ययभाव को प्राप्त होता है; चाहो अनेक यत्न करे परन्तु ज्ञान विना नष्ट नहीं होता। हे रामजी ! कल्पितरूप जन्म का नाश नहीं होता तो जगत् के पदार्थों से आत्मसत्ता का नाश कैसे हो ? इसलिये शोक किसी का न करना। हे महाबाहो! तुमतो नित्यशुद्ध अविनाशी पुरुष हो। यह जो संकल्पवासना से तुम में जन्म मरण आदिक भासते हैं सो भ्रममात्र हैं। इससे इस वासना को त्याग के तुम शुद्ध चिदाकाश में स्थित हो जाओ। जैसे गरुड़ पक्षी अण्डा त्याग के आकाश को उड़ता है तैसे ही वासना को त्याग करके तुम चिदाकाश में स्थित हो जाओ। हे रामजी ! शुद्ध आत्मा में जो मनन फुरता है वही मन है; वह मनन शक्ति इष्ट अनिष्ट से बन्धन का कारण है और वह मन मिथ्या भ्रान्ति से उदय हुआ है। जैसे स्वप्न सृष्टि भ्रान्तिमात्र होता है तैसेही जाग्रत् सृष्टि भ्रान्तिमात्र है। हे रामजी ! यह जगत् अविद्या से बन्धनमय और दुःख का कारण है और उस अविद्या को तरना कठिन है। अविचार से अविद्या सिद्ध है; विचार किये से नष्ट होती है। उसी अविद्या ने जगत् विस्तारा है। यह जगत् बरफ़

की दीवार है जब ज्ञानरूपी अग्नि का तेज होगा तब निवृत्त होजा
हे रामजी ! यह जगत् आकाशरूप है; अविद्याभ्रान्ति दृष्टि से आक
भासता है और असत्य अविद्या से बड़े विस्तार को प्राप्त होताहै। यह
स्वप्नाहै; विचार किये से निवृत्त होजाताहै। हे रामजी! यह जगत् भ
मात्र है; वास्तव में कुछ उपजा नहीं। जैसे आकाश में भ्रान्ति से म
पुच्छ की नाईं तरवरे भासते हैं तैसेही भ्रान्ति से जगत् भासता है।
बरफ़की शिला तप्त करनेसे लीन होजाती है तैसेही आत्मविचार से
लीन हो जाताहै। हे रामजी ! यह जगत् अविद्या से बँधाहै सो अन
कारण है। जैसे२ चित्त फुरताहै। तैसेही तैसे हो भासताहै। जैसे इन्द्र
सुवर्णकी वर्षा आदिक माया रचता है तैसेही चित्त जैसा फुरता है तै
हो भासता है। आत्माके प्रमादसे जो कुछ चेष्टा मन करताहै वह अप
नाश के कारण होती है। जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी की चेष्टा अप
बन्धन का कारण होती है तैसेही मन की चेष्टा अपने नाश के नि
होती है और जैसे नटवा अपनी क्रिया से नाना प्रकार के रूप धार
तैसेही मन अपने संकल्प को विकल्प करके नानाप्रकार के भावरूप
धारता है। जब चित्त अपने संकल्प विकल्प को त्यागकर आत्मा
ओर देखता है तब चित्त नष्ट होजाता है और जब तक आत्मा की
नहीं देखता तब तक जगत् को फैलाता है सो दुःख का कारण
है। हे रामजी ! संकल्प आवरण को दूर करो तब आत्मतत्त्व प्रकाशे
संकल्प विकल्पही आत्मा में आवरण है। जब दृश्य को त्यागोगे
आत्मबोध प्रकाशेगा। हे रामजी ! मन के नाश में बड़ा आनन्द
होता है और मन के उदय हुए बड़ा अनर्थ होता है इससे मन के
करने का यत्न करो। मन के बढ़ाने का यत्न मत करो। हे राम
मनरूपी किसान ने जगत्‌रूपी वन रचाहै; उसमें सुखदुःखरूपी वृक्षहैं
मनरूपी सर्प रहताहै। जो विवेकसे रहित पुरुष हैं उनको वह भोजन क
है। हे रामजी ! यह मन परम दुःख का कारण है; इससे तुम इस मन
शत्रु को वैराग्य और अभ्यासरूपी खड्ग से मारो तब आत्मपद को

होगे। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, इसप्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सायंकाल का समय हुआ और सब श्रोता परस्पर नमस्कार करके अपने२ स्थानको गये और फिर सूर्यकी किरणों के उदयहुये अपने२ स्थान पर आ बैठे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मननिर्वाणोपदेशवर्णनन्नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७८ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह चित्र भी परमात्मा से उठे हैं। जैसे समुद्र में लीला से जल कणिका होती हैं तैसे ही परमात्मा से मन हुआ है। उस मनने बड़े विस्तार का जगत् रचा है जोकि, छोटे को बड़ा कर लेता है और बड़े को छोटा करता है; जो अपना आप रूप है उसको अन्य की नाईं दिखाता है और जो अन्य रूप है उसको अपना रूप दिखाता है अर्थात् आत्मा को अनात्मभाव प्राप्त करता है और अनात्मा को आत्मभाव प्राप्त करता है। ऐसा भ्रान्तिरूप मन निकट वस्तु को दूर दिखाता और दूर वस्तु को निकट दिखाता है—जैसे स्वप्न में निकट वस्तु दूर भासती है और दूर वस्तु निकट भासती है। हे रामजी! मन एक निमेष में संसार को उत्पन्न करता और एक निमेष में ही लीन करलेता है। जो कुछ स्थावर-जङ्गमरूप जगत् भासता है वह सब मनही से उपजा है और देश, काल, क्रिया और द्रव्य अनेक शक्ति विपर्यरूप मनही दिखाता है और अपने फुरने से नानाप्रकार के भाव अभाव को प्राप्त होताहै। जैसे नट लीला करके नाना प्रकार के स्वांग रचता और सच को झूठ और झूठ को सत्र दिखाता है तैसेही मनमें जैसा फुरना दृढ़ होता है तैसेही भासता है। जैसा २ निश्चय चञ्चल मनमें होता है उनके अनुसार इन्द्रियां भी विचरती हैं। हे रामजी! जो मन से चेष्टा होती है वही सफल होती है, शरीर की चेष्टा मन विना सफल नहीं होती। जैसे जैसा बेल का बीज होता है वैसाही उसका फल होता है और प्रकार नहीं होता तैसेही जो कुछ मन में निश्चय होताहै वही सफल होता है। जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाताहै और

नाना प्रकार के उसके नाम रखता है तैसेही मन भी संकल्प से जगत
लेताहै। जैसे मट्टी की सेना मट्टीसे भिन्न नहीं तैसेही आत्मा में जो न
प्रकार का जगत् कल्पा है वह आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे संकल
मन नाना प्रकार अर्थों को कल्पता है तैसेही जाग्रत जगत् भी भ्र
कल्पा है। हे रामजी! एक गोपद में मन अनेक योजन रचलेत
और कल्प का क्षण और क्षणका कल्प रच लेता है। जैसा कुछ म
तीव्र संवेग होता है तैसाही होकर भासता है, उसको रचने में विलम्ब
लगता; जो कुछ देशकाल पदार्थ हैं वह मन से उपजे हैं और स
कारणरूप मनही है। जैसे पत्र, फूल, फल और टहनी वृक्ष से उप
वे वृक्षरूप हैं; जैसे समुद्र में लहरें होती हैं वे जलरूप हैं और जैसे अ
उष्णतारूप है, तैसेही नाना प्रकार के स्वभाव मन से उपजे दृष्ट आ
और सब मनरूपहैं। हे रामजी! कर्त्ता–कर्म–क्रिया; द्रष्टा–दर्शन–दृश्य
मन ही का फैलावा है। जसे सुवर्ण से नाना प्रकार के भूषण भासते हैं
जब सुर्वणका ज्ञान हुआ तब सब भूषण एक सुवर्णही भासता है, भूषण
नहीं भासता तैसेही; जबतक आत्मा का प्रमाद है तबतक द्वैतरूप ज
भासता है और जब आत्मज्ञान होता है तब सब भ्रम मिट जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चित्तमाहात्म्यवर्णनन्नामै-
कोनाशीतितमस्सर्गः ॥ ७९ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! अब एक वृत्तान्त जो पूर्वकाल में हुअ
तुमको सुनाता हूं। यह जगत् इन्द्रजालवत् है। जैसे मनरूपी इन्द्रज
में यह जगत् स्थित है तैसे तुम सुनो। इस पृथ्वी में एक उत्तरपाद
देश था, उसमें एक बड़ा वन था और वहां नानाप्रकार के वृक्ष, प
फल और ताल थे जिन पर मोर आदिक अनेक प्रकार के पक्षी श
करते थे। फूलों से सुगन्धें निकलती थीं और विद्याधर, सिद्धगण
देवता आनकर विश्राम करते थे, किन्नर गान करते थे और मन्द २ प
चलता था। निदान उस स्थान में महासुन्दर रचना बनी थी
स्वर्णवत् महाकल्पवृक्ष लगे थे। उस देश का लवण नाम राजा

तेजवान् और धर्मात्मा राजा हरिश्चन्द्र के कुल में उपजा। उसका ऐसा तेज हुआ कि शत्रु उसका नाम स्मरणकरे तो उसको ताप चढ़ जावे और वह श्रेष्ठ पुरुषों की पालना करे। उस राजा के यशसे सम्पूर्ण पृथ्वी पूर्ण होगई और स्वर्ग में देवता और विद्याधर यश गाते थे। उस राजा में लोभ और कुटिलता न थी और वह बड़ा बुद्धिमान् और उदार था। एक दिन सभा में बड़े ऊंचे सिंहासन पर वह बैठा था और सुन्दर स्त्रियों का नृत्य होता था; अतिसुन्दर बाजे बजते थे और मधुरध्वनि होती थी। राजा के शीशपर चमर झुलता था और मन्त्री और मण्डलेश्वरों की सेना आगे खड़ी राजा को देशमण्डल की वार्त्ता सुनाती थी। इतिहास और कथा की पुस्तकें ढांप के उठारक्खी थीं और भाट स्तुति करते थे। केवल दो मुहूर्त्त दिन रहगया था कि, उस कालमें एक इन्द्रजाली बाजीगर आडम्बर संयुक्त सभा में आया और राजा से कहने लगा; हे राजन्! आप मेरा एक कौतुक देखिये। इतना कहकर उसने अपना पिटारा खोला और उसमें से एक मोर की पूंछ निकालकर घुमाने लगा। उससे राजा को नानाप्रकार की रचना भासने लगी—मानो परमात्मा की माया है और नाना प्रकार के रङ्ग राजा ने देखे। उसी क्षण में किसी मण्डलेश्वर का दूत एक घोड़ा लेकर राजा के निकट आया और बोला; हे राजन्! यह महाबलवान् घोड़ा राजा ने आपको दिया है। जैसे उच्चैःश्रवा इन्द्र का घोड़ा समुद्रमथने से निकला है तैसाही यह है और इसका पवन के सदृश वेग है। मेरे स्वामी ने कहा है कि, जो उत्तम पदार्थ है वह बड़ेको देना चाहिये और यह आपके योग्य है इससे आप इसे ग्रहण कीजिये। तब इन्द्रजाली बोला; हे राजन्! आप इस घोड़े पर आरूढ़ हों; इसपर चढ़कर आप शोभा पावेंगे। इतना सुन राजा घोड़े की ओर देख मूर्च्छित हो गया और भयसे मन्त्री भी उसे न जगावें और उसके हाथ पांव भी कुछ न हिलें। जैसे कीचड़ में कमल अचल होता है तैसेही राजा अचल होगया और दो मुहूर्त्तपर्यन्त मूर्च्छित रहा। भाट और कवि जो स्तुति करते थे वे सब चुप होरहे और मन्त्री और नौकर भय और संशय के समुद्र में

डूबगये और उन्होंने जाना; राजा के मनमें कोई बड़ी चिन्ता उपज
और सबके सब अति आश्चर्यवान् थे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्याने
नृपमोहो नामाशीतितमस्सर्गः ॥ ८० ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! दो मुहूर्त्त के उपरान्त राजा चैतन्य हु
और उसका अङ्ग हिलकर सिंहासन से गिरनेलगा, तब राजा के म
और २ नौकरों ने उसकी भुजा पकड़ के थाँभा परन्तु राजा की इ
व्याकुल होगई और बोले कि, यह नगर किस का है, यह सभा कि
है और इसका कौन राजा है? जब इस प्रकार का वचन मन्त्रियों ने
तो शान्त हुये और प्रसन्न होकर कहने लगे; हे राजन्! आप
व्याकुल हुये हैं? आपका मन तो निर्मल है और आप उदारात्मा
जिन पुरुषोंकी प्रीति पदार्थों में होती है और आपात रमणीय भोगें
चित्त है उनका मन मोह में भरजाता है और जो सन्तजन उदार हैं
का चित्त निर्मल होता है। उनका मन मोह में कैसे पड़े? हे देव! जि
का चित्त भोगों की तृष्णा में बँधा है उनका मन मोह जाता और
महापुरुष सन्तजन हैं उनका मन मोहमें नहीं डूबता। जिनका चित्त
आत्मतत्त्व में स्थित हुआ है और बड़ेगुणों से सम्पन्न हैं उनको शरी
रहने और नष्ट होनेमें कुछ मोह नहीं उपजता; और जिनको आत्मतत्
अभ्यास नहीं प्राप्तहुआ है और जो अविवेकी हैं उनका चित्त देश,काल,
और औषध के वश से मोह को प्राप्त होता है। आपका चित्त तो विवेक
को ग्रहण करता है क्योंकि, आप नित्यही नूतन कथा और शब्द सु
हो। अब आप कैसे मोह से चलायमान हुये हो? जैसे वायु से प
चलायमान हो तैसेही आप चलायमान हुये हैं—यह आश्चर्य है! अ
अपनी उदारता स्मरण कीजिये। इतना सुनकर राजा सावधान हु
और उसके मुखकी कान्ति उज्ज्वल हुई— जैसे शरत्काल की सूखी
मञ्जरी वसन्त ऋतु में प्रफुल्लित होती है तैसेही, राजा नेत्रों को खो
कर देखने लगा और जैसे सूर्य राहु की ओर और सर्प नेवले की ओ

देखता है तैसेही इन्द्रजाली की ओर देखकर बोला, हे दुष्ट इन्द्रजाली! तूने यह क्या कर्म किया? राजा से भी कोई ऐसा कर्म करता है? जैसे जल विना मछली कष्ट पाके फिर जल में प्रसन्न हो तैसेही मैं हुआ हूं। बड़ा आश्चर्य है परमात्मा की अनन्त शक्ति हैं और अनेक प्रकार के पदार्थ फुरते हैं। मैंने दो मुहूर्त्त में क्याही भ्रम देखा। मेरा मन सदा ज्ञान के अभ्यास में था सो तो मोह गया तो प्राकृत जीवों का क्या कहना है? मैंने बड़ा आश्चर्य भ्रम देखा है! यह इन्द्रजाली मानों सम्बर दैत्य है कि, उसने दो मुहूर्त्त में मुझको अनेक देश, काल और पदार्थ दिखाये। जैसे ब्रह्मा एक मुहूर्त्त में नाना प्रकार के पदार्थ रच लेवें तैसेही एक मुहूर्त्त में इसने मुझको अनेक भ्रम दिखाये हैं। मैं वह सब तुम्हारे आगे कहता हूं—मानों सारी सृष्टि इसके पिटारे में है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे राजाप्रबोधोनामैकाशीतितमस्सर्गः॥ ८१॥

राजा बोला; हे साधो! मैं इस पृथ्वी का राजा हूं और सब पृथ्वी में मेरी आज्ञा चलती है और मैं इन्द्रजाली की नाईं सिंहासन पर बैठता हूं जैसे स्वर्ग में इन्द्र के आगे देवता होते है तैसेही मेरे आगे भृत्य और मन्त्री हैं। ऐसी उदारता से मैं सम्पन्न हूं पर मैंने बड़ा भ्रम देखा। हे साधो! जब इस इन्द्रजाली ने पिटारे से मोर की पूंछ निकाल कर घुमाई तो वह मुझको सूर्य की किरणों की नाईं भासी और जैसे बड़ा मेघ गरज के शान्त हो जाता है और पीछे इन्द्रधनुष दीखता है तैसेही वह विचित्र रूप पूंछ मुझको दीखी। फिर एक दूत घोड़ा लेकर आया उस पर मैं आरूढ़ हुआ और वह चित्तही से मुझको दूर से दूर ले गया। जैसे भोगों की वासना से मूर्ख घरही बैठे दूर से दूर भटकते फिरते हैं तैसेही मुझको वह घोड़ा दूर से दूर ले गया। फिर वह मुझे एक महाभयानक निर्जन देश में ले गया जैसे प्रलयकाल के जले हुए स्थानों के समान था। वहां मानों दूसर आकाश था और सातसमुद्र थे और उनके समान एक आठवां समुद्र था। चारों दिशा के जो चार समुद्र वर्णन

किये हैं उनके समान वह मानों पांचवां समुद्र था निदान वह महाभयानक स्थानों और देशों को लांघकर एक महावन में ले आ जैसे ज्ञानी का चित्त आकाशवत् होता है और जैसे अज्ञानी का कठोर और शून्य होता है तैसेही स्थान में मुझे लेगया; जहां घास जीव, मनुष्य कोई भी दृष्टि न आता था वहां मैं महाकष्ट और दी को प्राप्त हुआ। जैसे धन और बान्धवों से और देश और बल से पुरुष कष्ट पाता है तैसेही मैं कष्टवान् हुआ। तब दिन का अन्त हो और वहां उजाड़ में कष्ट से मैंने रात बिताई और पृथ्वी पर सोया निद्रा न आई और दुःख से कल्पसमान रात्रि होगई। जब सूर्य हुआ तब मैं वहां से चला और आगे गया तो पक्षियों का शब्द और वृक्ष देखे परन्तु खाने पीने को कुछ न पाया। उन वृक्षों को दे मैं प्रसन्न हुआ—जैसे मृत्यु से छुटा पुरुष रोग से भी प्रसन्न हो—और जामुन के वृक्ष के नीचे बैठ गया—जैसे मार्कण्डेय ऋषि ने प्रल समुद्र में भ्रमकर वटका आश्रय लिया था। तब वह घोड़ा मुझको के चला गया और सूर्य अस्त हुआ तो मैंने वहां रात्रि बिताई परन् कुछ भोजन किया और न जलपान किया और न स्नानही कि इससे मैं महादीन हुआ। जैसे कोई बिका मनुष्य दीन होजाता है जैसे अन्धकूप में गिरा मनुष्य कष्टवान् होता है तैसेही मैं कष्टवान् और कल्प के समान रात्रि बीती। जब वहां अन्नपानी कुछ दृ आया तब मैं आगे गया जहां पक्षी शब्द करते थे। उस समय अ पहर दिन रह गया था तब एक कन्या मुझे दिखाई दी जो अपने में मृत्तिका की एक मटकी में पके हुये चावल और जांबू के रस का हुआ पात्र लिये जाती थी मैं उसके सन्मुख आया—जैसे रात्रि के सन् चन्द्रमा आता है और कहा कि, हे बाले! मुझको भोजन दे, मैं क्ष से आतुर हूं! जो कोई दीन आर्त्त को अन्न देता है वह बड़ी सम् पाता है। हे साधो! जब मैंने बारम्बार कहा तब उसने कहा तुम तो राजा भासते हो कि, नाना प्रकार के भूषण वस्त्र पहिने हुये हो, मैं

को भोजन न दूंगी। ऐसे कह के वह आगे चली और मैं भी उसके पीछे जैसे छाया जावे तैसे चला। मैं कहता जाता था कि, हे बाले! मुझे भोजन दे कि, मेरी क्षुधा शान्त हो और वह कहती, हे राजन्! हम नीच लोग हैं अपने प्रयोजन बिना किसी को भोजन नहीं देते; जो तुम मेरे भर्त्ता हो तो मैं तुमको यह अन्न जो अपने पिता के निमित्त लेचली हूं दूं। मेरा पिता मशान में वैताल की नाईं अवधूत हो बैठा है और धूर से अङ्ग भरे हैं, जो तुम मेरे भर्त्ता बनो तो मैं देती हूं क्योंकि; भर्त्ता प्राणों से भी प्यारा होता है पिता से क्षमा करालूंगी। मैंने कहा अच्छा मैं तुझ से विवाह करूंगा पर मुझे भोजन दे। हे साधो! ऐसा कौन है जो ऐसी आपदा में अपने वर्णाश्रम के धर्म को दृढ़ रक्खे! उसने मुझको आधा भोजन और आधा जांबू का रस दिया, उसे भोजन कर मैं कुछ शान्तिमान् हुआ परन्तु मेरा मोह निवृत्त न हुआ। तब उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ के मुझको आगे कर लिया और अपने पिता के निकट लेगई—जैसे पापी को यमदूत लेजाते हैं—और कहा, हे पिता! यह मैंने भर्त्ता कियाहै। उसके पिताने कहा अच्छा किया और ऐसे कहकर चावल और जांबू के रसका भोजन किया। फिर उसके पिताने कहा, हे पुत्री! इसको अपने घर लेजा। तब वह मुझको अपने घर ले गई और जब अपने घर के निकट गई तब मैंने देखा कि, वहां अस्थि, मांस और रुधिर है और कुत्ते, गर्दभ, हस्ति आदिक जीवों की खालें पड़ी हैं। उनको लांघ कर वह मुझे अपने घर में लेगई—जैसे पापी को नरक में यमदूत लेजाते हैं। वहांसे एक बगीचा था उसमें जाकर वह अपनी माता के पास मुझे लेगई और कहा; हे माता! यह तेरा जामातृ हुआहै। माता ने कहा अच्छी बात है। उसदिन उनके घर हमने विश्राम किया और उस चाण्डाली ने मुझको जो भोजन दिया उसको मैंने भोजन किया—मानों अनेक जन्मोंके पाप भोगे। फिर विवाह का दिन नियत कियागया और उसदिन मैंने विवाह किया। चाण्डाल हँसते थे और नृत्य करते थे मानों मेरे पाप नृत्य करते थे॥

इति श्रीयो०उ०प्र० चाण्डालीविवाहवर्णनन्नाम द्व्यशीतितमस्सर्गः ८२॥

राजा बोले; हे साधो! बहुत क्या कहूं सात दिनतक विवाह का उ
रहा और फिर वहां मैं एक बड़ा चाण्डाल हुआ। आठमहीने वहां
फिर मैं और स्थानों में रहा। निदान वह चाण्डाली गर्भवती हुई और उ
एक कन्या उत्पन्न हुई जो शीघ्रही बढ़गई। तीन वर्ष पीछे एकबालक उ
हुआ और फिर एक पुत्र और एक कन्या और भी उपजी। इसी प्र
उसके तीन पुत्र और तीन कन्या उत्पन्न हुईं और मैं एक बड़ा परिवार
चाण्डाल हुआ। उस चाण्डाली सहित मैं चिरकाल पर्यन्त चाण्डा
विचरता रहा और जैसे जाल में पक्षी बँधजाताहै तैसे मैं उनमें बन्ध
हुआ। हे साधो! उनमें मैंने बड़े कष्ट पाये, प्रथम जिस शिर में पटक
चुभता था उसपर मैं भार उठाऊं; नीचे नंगे चरण जलें और शिरपर
तपें। रात्रि को मैं कांटों पर सोऊं; कोई वस्त्र न मिले और जीव जन्
के लोहूसे भरेहुये और गीले पुराने कपड़े शिरहाने रक्खूं। कुक्कुट, ह
आदिक अशुचि पदार्थों का भोजन करूं और उनके रुधिर का पान
ऐसी मेरीचेष्टा होगई कि, जालसे पक्षी मारूं; कण्डीसे मच्छ कच्छ आ
पकडूं; अनेकप्रकार के क्रूर नीच कर्म करूं और जैसी कैसी वस्तु मिले
भोजन करूं; निदान ऐसी व्यवस्था होगई कि अस्थि मांस के निमित्
आपस में लड़ें और शीतकाल में शीतसे; उष्णकाल में उष्णता से कष्ट
हों। इससे मेरा शरीर बहुत कृश होगया और अवस्था भी वृद्धहुई; म
में हमारा बहुत काल व्यतीत हुआ और मांस और रक्त पान करते रहे
वैताल जन आवें उनको हम मारें—जैसे चण्डिका ने दैत्यों को मार
और उनकी आंतड़ें और चमड़े तले बिछाके सोवें और शिरके शिर
रक्खें। ऐसेही चिरकाल पर्यन्त हम चेष्टा करते रहे और बन्धुओं में
स्नेह बढ़गया परवर्षाकाल की नदीकी नाईं हमारी तृष्णा बढ़ती जात
जिन मृतिका के पात्रों में चाण्डाल भोजन करजाते थे उन्हीं बासन
हमभी भोजन करते थे कालवशात् वर्षा बन्द होगई और कालपड़ा;
ऐसे तपने लगे मानों द्वादश सूर्य इकट्ठे तपते हैं और दावाग्नि
लगी है। वनके जीव अन्न जलके निमित्तकष्ट पानेलगे और अपना

छोड़ के देशान्तर जानेलगे । निदान महाउपद्रव हुआ; समय विनाही मानों प्रलय आया है तब क्षुधा और तृष्णा से कितने जीव मृतक होगये; कितने गिरपड़े और हमको भी बहुत कष्ट हुआ । तब हम तीनों पुत्रों; तीनों कन्या और स्त्रीसहित वहां से निकले और जहां अन्नजल सुनें वहांही जावें । फिर यह भी हाथ न आवे तब हम बहुत शोकवान् हुये और शरीर निरससा होगया । निदान सब ऐसे कष्टवान् हुये कि, पुत्र पिताको न सँभाले और पिता पुत्रको न सँभाले; बान्धवों का स्नेह आपस में छूटगया और सब अपने २ वास्ते दौड़े ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्याने उपद्रव वर्णनन्नाम त्र्यशीतितमस्सर्गः ॥ ८३ ॥

राजा बोले; हे सभा ! इस प्रकार हम चिरकालतक विचरते फिरे; शरीर बहुत वृद्ध होगया और बाल बरफ की नाईं श्वेत होगये । जैसे सूखापात वायुसे विचरता है तैसेही हमभी कर्मों के वश से भ्रमते रहे । जो कुछ राजा का अभिमान था वह मुझे विस्मरण होगया और चाण्डाल भाव दृढ़ होगया । सब जीव कष्टवान् होके कलत्र को छोड़गये और कितने पहाड़पर चढ़कर दुःखके मारे गिरगिरपड़े । और जैसे चिड़िया को बाज भोजन करताहै तैसेही जीवों को भेड़िये भोजन करते थे । एक वृक्ष के नीचे मैंने विश्राम किया तब एक बालक जो सबसे छोटा था मेरे पास आया और बोला; हे पिता ! मुझको मांस दे कि; मैं भोजन करूं; नहीं तो मेरे प्राण निकलते हैं । तब मैंने कहा मांस तो नहीं है; उसने कहा कहीं से लादे ! छोटा पुत्र सबसे प्यारा होता है इससे मैंने कहा; हे पुत्र ! मेरा मांस है वह खाले ! तब उस दुर्बुद्धिने कहा; दे ! मैंने बनसे लकड़ियां इकट्ठी करके अग्नि जलाई और कहा, हे पुत्र ! मैं अग्नि में प्रवेश करताहूं जब परिपक्क होजाऊं तब तू भोजन करना । हे सभा ! इस प्रकार मैंने स्नेह के वश कहा कि, किसी प्रकारयह जीतेरहैं । ऐसे कहकर मैं चिता में घुसगया और जब मुझको उष्णता लगी तब मैं कांपा और तुमको दृष्ट आया । फिर कुछ सावधान हुआ और तुरियां बाजने लगीं।

हे साधो! इस प्रकार मैंने चरित्र देखा सो तुम्हारे आगे कहा। मार्कण्डेय ने प्रलय में क्षोभ देखे और देवताओंसे कहे तैसेही मैंने अपना वृत्तान्त कहाहै। जब इन्द्रजाली ने पूछ घुमाई थी तब उसकेस में घोड़ेपर आरूढ़ हुआथा और इतने काल प्रत्यक्ष भ्रम देखतारहा। आश्चर्य है कि, मेरेसे विवेकवान् राजा को इसने मोहितकिया तो प्राकृतजीवों की क्या वार्त्ता है? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस तेजवान् राजा ने कहा तब वह साम्बरीक अन्तर्द्धान होगया और स जो मन्त्री आदि बैठे थे सब आश्चर्यवान् हुये और परस्पर देखके लगे; बड़ा आश्चर्य है! बड़ा आश्चर्य है! भगवान् की माया विचि है। यह साम्बरी माया नहीं है क्योंकि; साम्बरी अपने लोभ के नि तमाशा दिखाताहै पीछे यत्न से धनआदिक पदार्थ मांगताहै पर यह विनाही अन्तर्द्धानहोगया। यह ईश्वरकी मायाहै जिससे ऐसा विवेक राजा मोहगया। जो ऐसा बड़ा तेजवान् और शूरमा राजा मो हुआ तो सामान्य जीवों की क्या वार्त्ताहै? हे रामजी! ऐसे संदे होकर सब स्थितहुये और मैंभी उससभा में बैठाथा। यह वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा है किसी के मुख से सुनके नहीं कहा। हे रामजी! य अणुरूप मनहै सो महामोह और अविद्या है। इसके फुरने से अनेकप्र का मोह दीखताहै। जब यह मन उपशम हो तभी कल्याणहै। इससे इ को जो बहुत कल्पना उठती हैं उनको त्यागकर आत्मपदमें स्थितक

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे साम्बरोपाख्यान समाप्तिवर्णनं चतुरशीतितमस्सर्गः ॥ ८४ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! आदि जो शुद्ध परमात्मा से चित्त सं फुरा है वह कलनारूप होके स्थित हुआहै; उसी से दृश्य सत्य हो भ है। आत्मा के प्रमादसे मोह में प्राप्तहुआहै और चित्त के फुरने से चिर जगत् में मग्न होरहाहै। वह मन असत्यरूप है और उस मननेही स जगत् विस्तारा है जिससे अनेक दुःखों को प्राप्त हुआहै। जैसे ब अपनी परछाहीं में बैताल कल्पकर आपही भयवान् होताहै। वही

जब संसार की वासना को त्यागकर आत्मपद में स्थित होता है; तब जैसे सूर्य की किरणों से अन्धकार नष्ट होजाताहै; तैसेही एक क्षण में सब दुःख नष्ट होजाते हैं। हे रामजी! ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो अभ्यास किये से प्राप्त न हो। इससे जब आत्मपद का अभ्यास कीजियेगा तब वह प्राप्तहोगा। आत्मपद के अभ्यास किये से आत्मा निकट भासताहै और संसार दूर भासता; और जब जगत्का अभ्यास दृढ़ होताहै तब जगत् निकट भासताहै और आत्मा दूरभासताहै। हे रामजी! जो मूर्ख मनुष्य है उसको अभयपद में भय होता है। जैसे पथिक को दूर से वृक्ष में बैताल कल्पना होती है और भय पाताहै तैसेही चित्तकी वासनासे जीव भय पाताहै। हे रामजी! वासना सहित मलीन मन में नाना प्रकार संसार भ्रम उठता है और जब आत्मपद में स्थित होता है तब भ्रम मिटजाता है। जैसा मन में निश्चय होता है तैसाही हो भासता है; यदि मित्र में शत्रु बुद्धि होती है तो निश्चय करके वह शत्रु होजाताहै और मद से उन्मत्त को सम्पूर्ण पृथ्वी भ्रमती दीखतीहै और व्याकुल होता है; तो चन्द्रमाभी श्यामसा भासता है। जो अमृत में विष की भावना होती है तो अमृतभी विषकी नाईं भासताहै। यह जाग्रत् पदार्थ देश, काल और क्रिया मनसे भासते हैं। हे रामजी! संसार का कारण मोह है; उससे जीव भटकता है। इसलिये ज्ञानरूपी कुल्हाड़े से वासनारूपी मलीनता को काटो; आत्मपद पाने में वासनाही आवरण है। हे रामजी! वासना-रूपी जाल में मनुष्यरूपी हरिण फँसकर संसाररूपी वन में भटकता है। जिस पुरुष ने विचारकरके वासना नष्ट की है उसको परमात्मा का प्रकाश भासता है। जैसे बादल से रहित सूर्य प्रकाशित होता है तैसेही वासना रहित चित्त में आत्मा प्रकाशता है। हे रामजी! मनही को तुम मनुष्य जानो; देह को मनुष्य न जानना क्योंकि; देह जड़ है और मन जड़ और चेतन से विलक्षण है। मनसे कियाहुआ कार्य सफल होताहै। जो मनसे दिया और जो मनसे लिया है वही दिया और लियाहै और जो देहसे किया है वहभी मन ने ही किया है। हे रामजी! यह सम्पूर्ण जगत्

मनरूप है। मनही पर्वत, आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी सूर्यादिकों का प्रकाश मनही से होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, ग सब मनही से ग्रहण होते हैं और नाना प्रकार की वासनाओं से नानाप्रक के रूप मनही धरता है। जैसे नटवा नाना प्रकार के स्वांग धारता है ही नानाप्रकार के रूप मनही धरता है लघु पदार्थ को मनही दीर्घ करता है सत्यको असत्यकी नाईं और असत्य जगत् के पदार्थको सत्यकीनाईं मन करता है; और मनही मित्र को शत्रु और शत्रुको मित्र करताहै। हे रामजी जैसीवृत्ति मनकी दृढ़ होती है वही सत्य हो भासती है। हरिश्चन्द्र को प रात्रि में बारह वर्ष का अनुभव हुआ था औरइन्द्रको एक मुहूर्त्त में युगों अनुभव हुआ था और मनही के दृढ़ निश्चय से इन्द्र ब्राह्मण के दशों ब्रह्मपद को प्राप्त हुयेथे। हे रामजी! जो सुख से बैठेहुये को मनमें चिन्ता आन लगी तो सुखही में उसको रौरव नरक हो जाताहै और दुःखमें बैठाहै और मनमें शान्त है तो दुःखभी सुख होताहै। इससे जै निश्चय मन में होताहै वैसाही हो भासता है और जिस ओर मन निश्चय होताहै उसी ओर इन्द्रियां का समूह विचरता है। इन्द्रियों आधारभूत मन है; जो मन टूटपड़ता है तो इन्द्रियां भिन्न २ होजाती जैसे तागे के टूटने से माला के दाने भिन्न २ होजाते हैं तैसेही मनसे र इन्द्रियां अर्थोंसे रहित भिन्न होती हैं; वास्तव में आत्मतत्त्व सब में अधि स्थितहै और स्वच्छ, निर्विकार, सूक्ष्म, समभाव नित्य और सबका साक्षी और सब पदार्थों का ज्ञाता है। वह देहसेभी अधिकसूक्ष्मरूप है अ अहंभावके उत्थानसे रहित चिन्मात्र है; उसमें मनके फुरनेसे संसारभास है, वास्तव में द्वैतभ्रमसे रहित है। सब जगत् आत्माका किञ्चिनमय है और सब में चैतन शक्ति व्यापी है। वायु में स्पन्द; पृथ्वी में कठोरता; और अग्नि आदिक में प्रकाश; जल में द्रवता; और आकाश में शून्य वही है और सब पदार्थों में वही चैतनशक्ति व्यापरही है। वास्तव उसमें अनेकता नहीं है, मनसे भासती है; शुक्लपदार्थ को कृष्ण देश, काल पदार्थ, क्रिया और द्रव्य, को मनही विपर्यय, करता

हे रामजी! जैसे निश्चय मन में दृढ़ होताहै वही सिद्ध होताहै और मन विना किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता। हे रामजी! जिह्वा से नाना प्रकार के भोजन करता है परन्तु मन और ठौर होता है तो उसका कुछ स्वाद नहीं आता और नेत्रों से चित्त सहित देखता है तो रूप का ज्ञान होता है; इसकारण मन विना किसी इन्द्रिय का विषय सिद्ध नहीं होता और अन्धकार और प्रकाश भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! सब पदार्थ मनसे भासते हैं। जैसे नेत्रों में प्रकाश नहीं होता तो कुछ नहीं भासता तैसेही विद्यमान पदार्थ भी मन विना नहीं भासते। हे रामजी! इन्द्रियों से मन नहीं उपजा परन्तु मन से इन्द्रियां उपजी हैं और जो कुछ इन्द्रियों का विषय दृश्य जाल है वह सब मन से उपजा है। जिन पुरुषों ने मन वश किया है वही महात्मा पुरुष परिडत हैं और उनको नमस्कार है। हे रामजी! यदि नाना प्रकार के भूषण और फूल पहिरे हुये स्त्री प्रीति से कण्ठ लगे पर जो चित्त आत्मपद में स्थित है तो वह मृतक के समान है अर्थात् उसको इष्ट अनिष्ट का राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। इष्ट अनिष्ट में राग द्वेष मनही उपजाताहै; मन के स्थित हुये राग द्वेष कुछ नहीं उपजता। हे रामजी! एक बीतराग ब्राह्मण ध्यानस्थित वन में बैठाथा और उसके हाथ को कोई वनचर जीव तोड़लेगया परन्तु उसको कुछ कष्ट न हुआ क्योंकि; मन उसका स्थित था। यही मन फुरने से सुखको भी दुःख करताहै और अपने में स्थित हुये दुःखको भी सुख करताहै। हे रामजी! कथा के सुननेमें जो मन किसी और चिन्तवन में जाताहै तो कथा के अर्थ समझ में नहीं आते और जो अपने गृह में बैठाहै और मन के संकल्पसे पहाड़पर दौड़ता २ गिरपड़ताहै तो उसको प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सो मनकाही भ्रम है। जैसी फुरना मन में फुरती है वही भासती है। जैसे स्वप्न में एक क्षण में नदी पहाड़ आकाशादिक पदार्थ भासने लगते हैं तैसेही यह पदार्थ भी भासते हैं। हे रामजी! अपने अन्तःकरण में सृष्टि भी मनके भ्रम से भासती है जैसे जल के भीतर अनेक तरङ्ग होते हैं और वृक्ष में पत्र, फूल, फल, टास होते हैं

तैसेही एकमन के आत्मकी चिन्तना से सत्यकर्मकी शुद्धता लेकर चि
से भूषण अन्तर संवित् की ओर लगाओ और सब वासना को त्य
जैसे तरङ्ग करो तब परमपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! जिन पुरु
के स्त्री इच्छा त्यागनी कठिनहै वे विषयों के कीट हैं क्योंकि; अशुभ
मूढ़ता से रमणीय भासते हैं। उस अशुभ को अशुभ और शुभ को
जानना यही पुरुषार्थ है। हे रामजी! शुभ अशुभ दोनों पहलवा
उन दोनों में जो बली होता है उसकी जय होती है। इससे शी
पुरुष प्रयत्न करके अपने चित्त को जीतो। जब तुम अचित्त होगे तब
विना आत्मपद को प्राप्त होगे। जैसे बादलों के अभाव हुए यत्न
सूर्य भासता है तैसेही आत्मपद के आगे चित्त का फुरना जो बादल
आवरण है उसका जब अभाव होगा तब अयत्नसिद्ध आत्मपद भा
सो चित्त के स्थित करने का मन्त्र भी आप से होता है। जिसको अ
चित्त वश करने की भी शक्ति नहीं उसको धिक्कार है वह मनुष्यों में ग
है। अपने पुरुषार्थ से मन का वश करना अपने साथ परम मित्रता क
है और अपने मन के वश किये विना अपना आपही शत्रु है अर्थात्
के उपशम किये विना घटी यन्त्र की नाईं संसारचक्र में भटकता
जिन मनुष्यों ने मन को उपशम किया है उनको परम लाभ हुआ
हे रामजी! मन के मारने का मन्त्र यही है कि, दृश्य की ओर से
को निवृत्त करे और आत्मचेतन संवित् में लगावे; आत्मचिन्तना क
चित्त को मारना सुखरूप है। हे रामजी! इच्छा से मन पुष्ट रहता
जब भीतर से इच्छा निवृत्त होती है तब मन उपशम होता है और
मन उपशम; होता है तब गुरु और शास्त्रों के उपदेश और मन्त्र आदि
की अपेक्षा नहीं रहती। हे रामजी! जब पुरुष असंकल्परूपी औ
करके चित्तरूपी रोग काटे तब उस पद को प्राप्त हो जो सर्व और सर्व
शान्तरूप है। इस देह को निश्चय करके मूढ़ मन ने कल्पा है। इ
पुरुषार्थकरके चित्तको अचित्तकरो तब इस बन्धन से छुटोगे। हे रामजी
शुद्ध चित्त आकाश में यत्न करके चित्त को लगाओ। जब चिरक

पर्यन्त मन का तीव्र संवेग आत्मा की ओर होगा तब चैतन चित्त का भक्षण करलेगा और जब चित्त का चिन्तत्व निवृत्त होजावेगा तब केवल चैतनमात्रही शेष रहेगा। हे रामजी! जब जगत् की भावना से तुम मुक्त होगे तब तुम्हारी बुद्धि परमार्थतत्त्व में लगेगी अर्थात् बोधरूप होजावेगी। इससे इस चित्त को चित्त से ग्रास कर लो; जब तुम परम पुरुषार्थ करके चित्त को अचित्त करोगे तब महा अद्वैतपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! मन के जीतने में तुमको और कुछ यत्न नहीं केवल एक संवेदन का प्रवाह उलटना है कि; दृश्य की ओर से निवृत्त करके आत्मा की ओर लगाओ; इसीसे चित्त अचित्त होजावेगा। चित्त के क्षोभ से रहित होना परमकल्याण है; इस से क्षोभ से रहित हो जाओ। जिसने मनको जीता है उसको त्रिलोकी का जीतना तृण समान है। हे रामजी! ऐसे शूरमा हैं जोकि, शस्त्रों के प्रहार सहते हैं; अग्नि में जलना भी सहते हैं और शत्रु को मारते हैं तब स्वाभाविक फुरने के सहने में क्या कृपणता है? हे रामजी! जिनको अपने चित्त के उलटाने की सामर्थ्य नहीं वे नरों में अधमहैं। जिनको यह अनुभव होता है कि, मैं जन्मा हूं; मैं मरूंगा और मैं जीव हूं; उनको वह असत्यरूप प्रमाद चपलता से भासता है। जैसे कोई किसी स्थान में बैठाहो और मनके फुरने से और देश में कार्य करनेलगे तो वह भ्रमरूप है; तैसेही आपको जन्म मरण भ्रम से मानता है। हे रामजी! मनुष्य मनरूपी शरीर से इस लोक और परलोक में मोक्ष होने पर्यन्त चित्तमें भटकताहै। जो चित्त भी मोक्ष पर्यन्त नाश नहीं होता तो तुमको मृत्युका भय कैसे होताहै? तुम्हारा स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध और सर्व विकार से रहित है। यह लोक आदिक भ्रम चित्त में मन के फुरने से उपजा है; मन से भिन्न चित्त का कुछ रूप नहीं। पुत्र, भाई, नौकर आदिक जो स्नेह के स्थान हैं और उनके क्लेश से आपको क्लेशित मानतेहैं वह भी चित्तसे मानते हैं। जब चित्त अचित्त हो जावे तब सर्व बन्धन से मुक्त हो। हे रामजी! मैंने अध ऊर्ध्व सर्वस्थान देखे हैं; सब शास्त्र भी देखे हैं और उनको एकान्त में बैठकर बारम्बार विचारा भी है; शान्त होने का

और कोई उपाय नहीं; चित्त का उपशम करना ही उपाय है। जब
चित्त दृश्य को देखता है तब तक शान्ति प्राप्त नहीं होती और जब
उपशम होता है तब उस पद में विश्राम होता है जो नित्य, शुद्ध, सर्व
और सबके हृदय में चैतन आकाश परम शान्तरूपहै। हे राम
हृदयाकाश में जो चैतन चक्र है अर्थात् जो ब्रह्माकार वृत्ति है उ
और जब मनका तीव्र संवेग हो तब सबही दुःखोंका अभाव होजावे
का मननभाव उसी ब्रह्माकार वृत्तिरूपी चक्र से नष्ट होता है। हे राम
संसारके भोग जो मनसे रमणीय भासते हैं वे जब रमणीय न भासें तब
निये कि, मन के अङ्ग कटे। जो कुछ अहं और त्वं आदि शब्दार्थ भास
वे सब मनोमात्र हैं। जब दृढ़ विचार करके इनकी अभावना हो तब म
वासना नष्ट हो। जैसे हँसियेसे खेती कट जाती है तैसेही वासना
होनेसे परमतत्त्व शुद्ध भासता है। जैसे घनके अभावहुये से शरद्
का आकाश निर्मल भासता है तैसेही वासना से रहित मन शुद्ध भासे
हे रामजी! मनही जीव का परमशत्रु है और इच्छा संकल्प करके
होजाता है। जब इच्छा कोई न उपजे तब आपही निवृत्त होजावे
जैसे अग्नि में काष्ठ डालिये तो बढ़जाती है और यदि न डालिये
आपही नष्ट होजाती है। हे रामजी! इस मन में जो संकल्प कल
उठती है उसका त्यागकरो तब तुम्हारा मन स्वतः नष्ट होगा। जहां
चलते हैं और अग्नि लगती है वहां शूरमा निर्भय होके जापड़ते हैं
शत्रुको मारते हैं; प्राण जाने का भय नहीं रखते तो तुमको संकल्प त्या
में क्या भय होताहै? हे रामजी! चित्त के फैलाने से अनर्थ होताहै
चित्त के अस्फुरण हुये से कल्याण होताहै—यह वार्त्ता बालकभी जान
है। जैसे पिता बालक को अनुग्रह करके कहताहै, तैसेही मैं भी तुम
समझाताहूं कि; मनरूपी शत्रु ने भय दिया है और संकल्प कलन
जितनी आपदा हैं वे मनसे उपजती हैं। जैसे सूर्य की किरणों से
तृष्णा का जल दीखता है; तैसेही सब आपदा मनसे दीखती हैं। जिस
मन स्थिर हुआहै उसको कोई क्षोभ नहीं होता। हे रामजी! प्रलयक

का पवन चले; सप्त समुद्र मर्यादा त्यागके इकट्ठे होजावें और द्वादश सूर्य इकट्ठे होके तपें तौभी मन से रहित पुरुष को कोई विघ्न नहीं होता-वह सदा शान्तरूप है। हे रामजी! मनरूपी बीज है, उससे संसारवृक्ष उपजा है; सातलोक उसके पत्र हैं और शुभ अशुभ सुख दुःख उसके फल हैं। वह मन संकल्प से रहित नष्ट होजाता है और संकल्प के बढ़ने से अनर्थ का कारण होता है। इससे संकल्पसे रहित उस चक्रवर्ती राजपद में आरूढ़ हुआ परमपद को प्राप्तहोगा जिस पद में स्थितहुये चक्रवर्ती राजा तृणवत् भासता है। हे रामजी! मनके क्षीण होने से जीव उत्तम परमानन्द पद को प्राप्त होता है हे रामजी! सन्तोष से जब मन वश होता है तब नित्य, उदयरूप, निरीह, परमपावन, निर्मल, सम, अनन्त और सर्वविकार विकल्प से रहित जो आत्मपद शेष रहता है वह तुमको प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे मनशक्ति रूपप्रति पादनन्नामषड-शीतितमस्सर्गः॥ ८६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जिसके मनमें तीव्र संवेग होता है उस को मन देखताहै। अज्ञान से जो दृश्य का तीव्र संवेग हुआहै उससे चित्त जन्म मरणादिक विकार देखता है और जिसका निश्चय मन में दृढ़ होताहै उसीका अनुभव करता है; जैसा मन का फुरना फुरता है तैसाही रूप होजाता है। जैसे बरफ का शीतल और शुक्लरूप है और काजल का कृष्णरूप है; तैसेही मन का चञ्चलरूप है। इतना सुन रामजी ने पूछा; हे ब्रह्मन्! यह मन जो वेग अवेग का कारण चञ्चलरूप है उस मनकी चपलता कैसे निवृत्त हो? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! तुम सत्य कहते हो; चञ्चलता से रहित मन कहीं नहीं दीखता क्योंकि; मन का चञ्चल स्वभावही है। हे रामजी! मन में जो चञ्चलता फुरना मानसी-शक्ति है वही जगत्आडम्बर का कारणरूपहै। जैसे वायु का स्पन्दरूप है तैसेही मन का चञ्चलरूप है। जिसका मन चञ्चलतासे रहित है। उसको मृतक कहतेहैं। हे रामजी! तप और शास्त्र का जो सिद्धान्त है वह यही है कि; मन के मृतकरूप को मोक्ष कहते हैं; उसके क्षीण हुये सब दुःख

नष्ट होजाते हैं। जब चित्तरूपी राक्षस उठताहै तब बड़े दुःख को
होताहै और चित्तके लय हुये अनन्त सुखभोग प्राप्त होते हैं और
परमानन्दस्वरूप आत्मपद प्राप्त होताहै। हे रामजी! मन में चञ्च
अविचार से सिद्ध है और विचारसे नष्ट होजाती है। चित्त की चञ्च
रूप जो वासना भीतर स्थित है जब वह नष्ट हो तब परमसा
प्राप्ति हो; इससे यत्न करके चपलतारूपी अविद्या का त्याग करो
चपलता निवृत्त होगी तब मन शान्त होगा। सत्य, असत्य और
चैतन के मध्य जो डोलाय शक्ति है उसका नाम मन है। जब यह
से जड़ की ओर लगता है तब आत्मा के प्रमाद से जड़रूप होजा
अर्थात् अनात्म में आत्म प्रतीति होती है और जब विवेक वि
लगता है तब उस अभ्यास से जड़ता निवृत्त होजाती है। और
चैतन आत्मतत्त्व भासता है। जैसा अभ्यास दृढ़ होताहै तैसाही अ
इसको होताहै और जैसे पदार्थ की एकता चित्त में होती है अभ्या
वश से तैसा ही रूप चित्त होजाता है। हे रामजी! जिस पद के नि
मन पुरुष प्रयत्न करताहै उस पदको प्राप्त होताहै और अभ्यासकी ती
से भावितरूप होजाता है। इसी कारण तुम से कहताहूं कि, चि
चित्त से स्थिर करो और अशोकपद का आश्रय करो। जो कुछ
अभावरूप संसार के पदार्थ हैं वे सब मन से उपजे हैं; इससे मनके
शम करने का प्रयत्न करो; मनके उपशम विना छूटनेका और कोई उ
नहीं और मन को मनही निग्रह करता है और कोई नहीं करसक्ता।
राजा से राजाही युद्धकरताहै और कोई नहीं करसक्ता; तैसेही म
मनही युद्धकरताहै। इससे तुम मनहीसे मन को मारो कि; शान्ति
प्राप्त हो। हे रामजी! मनुष्य बड़े संसार समुद्र में पड़ा है जिसमें तृ
रूपी सिवार ने इसको घेरलिया है; इस कारण अधः को चलाजाताहै
राग, द्वेषरूपी भँवर में कष्ट पाताहै। उससे तरने के निमित्त मनरूपी
है, जब शुद्ध मनरूपी नावपर आरूढ़ हो तब संसार समुद्र के
उतरे; अन्यथा कष्ट को प्राप्त होताहै। हे रामजी! अपना मनही बन्ध

कारणहै, उस मन को मनहीसे छेदन करो और दृश्य की ओर जो सदा धाता है उससे वैराग्य करके आत्मतत्त्व का अभ्यास करो तब छूटोगे; और उपाय छूटने का नहीं। जहां जैसी वासना से मन आशा करके उठे उसको वहांही बोध करके त्यागेसे तुम्हारी अविद्या नष्ट होजावेगी। हे रामजी! जब प्रथम भोगों की वासनाका त्याग करोगे तब यत्न विनाही जगत् की वासना छूट जावेगी। जब भाव अभावरूप जगत् का त्याग किया तब निर्विकल्प सुखरूप होगा। जब सब दृश्यभाव पदार्थों का अभाव होताहै तब भावना करनेवाला मन भी नष्ट होताहै। हे रामजी! जो कुछ संवेदन फुरता है उस संवेदन का होनाही जगत् है और असंवेदन होने का नाम निर्वाण है संवेदन होनेसे दुःखहै, इससे प्रयत्न करके संवेदन का अभावही कर्त्तव्य है। जब भावना की अभावना हो तब कल्याण हो। जो कुछ भाव अभाव पदार्थों का राग द्वेष उठना है वह मन के अबोध से होताहै पर वे पदार्थ मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या हैं। इससे इनकी आस्था को त्याग करो, ये सब अवस्तुरूप हैं और तुम्हारा स्वरूप नित्य तृप्त अपने आपमें स्थित है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखोपदेशवर्णनन्नाम सप्ताशीतितमस्सर्गः॥ ८७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह वासना भ्रान्ति से उठी है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रान्ति से भासताहै तैसेही आत्मा में जगत् भ्रान्ति से भासता है—इसकी वासना दूरसे त्याग करो। हे रामजी! जो ज्ञानवान् हैं उनको जगत् नहीं भासता और जो अज्ञानी हैं उनको अविद्यमान ही विद्यमान भासताहै और संसार नाम से संसार को अङ्गीकार करता है। ज्ञानवान् सम्यकदर्शी को आत्मतत्त्व से भिन्न सब अवस्तुरूप भासता है। जैसे समुद्र द्रवता से तरङ्ग और बुद्बुदे होके भासता है परन्तु जल से भिन्न कुछ नहीं तैसेही अपनेही विकल्प से भाव अभावरूप जगत् देखताहै; जो वास्तवमें असत्यरूप है क्योंकि, आत्मतत्त्वही अपने स्वरूप में स्थित है। जो नित्य, शुद्ध, सम और अद्वैत तुम्हारा अपना आप है न

तुम कर्त्ता हो, न अकर्त्ता हो; कर्त्ता, अकर्त्ता; ग्रहण, त्याग; भेद को ले
कहाताहै। तुम दोनों विकल्पों को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो
जो कुछ क्रिया आचार आ प्राप्त हों उनको करो पर भीतर से अनासक्त
अर्थात् अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मत मानो क्योंकि; कर्त्तव्य आ
तब होते हैं जब कुछ ग्रहण वा त्याग करना होताहै और ग्रहण त्याग
होताहै जब पदार्थ सत्य भासताहै पर ये सब पदार्थ तो मिथ्या इन्द्रज
की मायावत् हैं। हे रामजी! मिथ्या पदार्थों में आस्था करनी और उ
ग्रहण और त्याग करना क्या है? सब संसार का बीज अविद्या है
वह अविद्या स्वरूप के प्रमाद से अविद्यमान ही सत्य की नाईं हो
सतीहै। हे रामजी! चित्त में चैत्यमय वासना फुरतीहै सोही मोहका का
है। संसाररूपी वासना का चक्र है; जैसे कुम्हार चक्रपर चढ़ाके मृत्तिका
अनेक प्रकारके घटआदिक बरतन रचता है तैसेही चित्त से जो चैत्य
वासना फुरती है वह संसार के पदार्थों को उत्पन्न करतीहै। यह अविद्या
संसार देखनेमात्र बड़ासुन्दर भासताहै पर जैसे बांस बड़े विस्तार को प्र
होताहै और भीतर से शून्य है तैसेही यहभी भीतर से शून्य है और
केले का वृक्ष देखने को विस्तार सहित भासता है और उसके भीतर
कुछ नहीं होता तैसेही संसार असाररूप है। जैसे नदी का प्रवाह चल
जाता है तैसेही संसार नाशरूप है हे रामजी! इस अविद्या को पकड़
तो कुछ ग्रहण नहीं होता; कोमल भासती है पर अत्यन्त क्षीणरूप
और प्रकट आकार भी दृष्टिआते हैं पर मृगतृष्णा के जल समान असत
रूपहै। अविद्या-माया जिससे यह जगत् उपजता है, कहीं विकार
कहीं स्पष्ट है और कहीं दीर्घरूप भासती है और आत्मा से व्यतिरे
भाव को प्राप्त होती है। जड़ है परन्तु आत्मा की सत्ता पाके चैतन हो
है और चैतनरूप भासती है तौभी असत्यरूप है। एक निमेष के भूलने
वह बड़े भ्रम को दिखाती है। जहां निर्मल प्रकाशरूप आत्मा है उस
तम दिखाती कि, मैं आत्मा नहीं जानता। जैसे उलूक को सूर्य में अन्धक
भासता है तैसेही मूर्खों को अनुभवरूप आत्मा नहीं भासता, जग

भासता है जो असत्यरूपहै। जैसे मृगतृष्णा की नदी विस्तार सहित भासती है तैसेही अविद्या नानारङ्ग, विलास, विकार, विषम, सूक्ष्म, कोमल और कठिनरूप है और स्त्री की नाईं चञ्चल और क्षोभरूप सर्पिणी है; जो तृष्णारूपी जिह्वासे मारडालती है। वह दीपक की शिखावत् प्रकाशमान है। जैसे जबतक स्नेह होता है तबतक दीपशिखा प्रज्वलित होती और जब तेल चुकजाता है तब निर्वाण होजाती है तैसेही जबतक भोगों में प्रीति है तबतक अविद्या वृद्धि है और जब भोगों में स्नेह क्षीण होताहै तब नष्ट होजाती है। रागरूपी अविद्या तृष्णा विना नहीं रहती और भोगरूप प्रकाश बिजली की नाईं चमत्कार करती है। इनके आश्रय में जो कार्य करो तो नहीं होता, क्षणभंगुररूप हैं। जैसे बिजली मेघ के आश्रय है तैसेही अविद्या मूर्खों के आश्रय रहती है और तृष्णा देनेवाली है। भोग पदार्थ बड़े यत्न से प्राप्त होते हैं और जब प्राप्त हुये तब अनर्थ उत्पन्न करते हैं। जो भोगों के निमित्त यत्न करते हैं उनको धिक्कार है क्योंकि; भोग बड़े यत्न से प्राप्त होते हैं और फिर स्थिर भी नहीं रहते बल्कि अनर्थ उत्पन्न करते हैं। उनकी तृष्णा करके जो भटकते हैं वे महामूर्ख हैं। हे रामजी! ज्यों २ इनका स्मरण होता है त्यों २ अनर्थ होते हैं और ज्यों २ इनका विस्मरण होता है त्यों २ सुख होता है। इसकारण अत्यन्त सुख का निमित्त इनका विस्मरण है और स्मरण दुःख का निमित्त है। जैसे किसी को क्रूर स्वप्न आताहै तो उसके स्मरणमें कष्टवान् होता है और जैसे और किसी उपद्रव प्राप्त होने की स्मृति में अनर्थ जानता है; तैसेही अविद्या जगत् के स्मरण में अनर्थ कष्ट होता है। अविद्या एक मुहूर्त्त में त्रिलोकी रचि लेती है और एकक्षण में ग्रासकरलेती है। हे रामजी! स्त्रीके वियोगी और रोगी पुरुष को रात्रि कल्प की नाईं व्यतीत होती है और जो बहुत सुखी होता है उसको रात्रि क्षण की नाईं व्यतीत होजाती है। काल-भी अविद्या प्रमाद से विपर्ययरूप होजाता है। हे रामजी! ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो अविद्या से विपर्यय न हो। शुद्ध, निर्विकार, निराकार, अद्वैततत्त्व में इसके कर्तृत्व भोक्तृत्वका स्पन्द फुरता है। हे रामजी!

यह सब जगत्जाल तुमको अविद्या से भासता है। जैसे दीपक क
काश चक्षु इन्द्रियों को रूप दिखाता है तैसेही अविद्या जिन पदार्थों
दिखाती है वह सब असत्यरूप हैं जैसे नानाप्रकार की सृष्टि मनोराज
है और जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है और उनमें अनेक शाखासंयुक्त
भासते हैं वे सब असत्यरूप हैं तैसेही यह जगत् असत्यरूप है
मृगतृष्णा की नदी बड़े आडम्बरसहित भासती है तैसेही यह जगत
है। जैसे मृगतृष्णा की नदी को देखके मूर्ख मृग जल पान के नि
दौड़ते हैं और कष्टवान् होते हैं, तैसेही जगत् के पदार्थों को देख
अज्ञानी दौड़के यत्न करते हैं और ज्ञानवान् तृष्णा के लिये यत्न
करते। ज्यों २ मूर्ख मृग दौड़ते हैं त्यों २ कष्टपाते हैं, शान्ति नहीं
तैसेही अज्ञानी जगत् के भोगों की तृष्णा करते हैं परन्तु शान्ति
पाते। जैसे तरङ्ग और बुद्बुदे सुन्दर भासते हैं परन्तु ग्रहण किये से
नहीं निकलते तैसेही शान्ति का कारण जगत् में सार पदार्थ कोई
निकलता। जड़रूप अविद्या चिदाकार हुई है, वह चैतनसे अभिन्न
है परन्तु भिन्न की नाईं स्थित हुई है। जैसे मकड़ी अपनी तन्तु फैल
फिर अपने में लीनकरलेती है, वह उससे अभिन्नरूप है परन्तु भिन्न
नाईं भासती है और जैसे अग्नि से धूम निकलकर बादल का आ
हो रस खैंचता है और मेघ होकर वर्षा करता है तैसेही अविद्या आ
से उपजकर और आत्मा की सत्ता पाकर जगत् रचती है उस जगत् में
जीव घटीयन्त्र की नाईं भटकता है। जैसे रस्सी से बँधीहुई टीड़ी ऊपर
भटकती है तैसेही तीनों गुणों की वासना से बँधाहुआ जीव भटकता
जैसे कीचड़ से कमल की जड़ उपजती है और उसके भीतर छिद्र
हैं तैसेही अविद्यारूपी कीचड़ से यह जगत् उपजा है और विकार
दृश्य इसमें छिद्र हैं—सारभूत इसमें कुछ नहीं। जैसे अग्नि; घृत
ईंधन के संयोग से बढ़ती जाती है तैसेही अविद्या विषयों की तृष्णा
बढ़ती जाती है। जैसे घृत और ईंधन से रहित अग्नि शान्त होजा
तैसेही तृष्णा से रहित अविद्या शान्त होजाती है। जब विवेकरूपी

पड़े और तृष्णारूपी घृत न पड़े तब अग्निरूपी अविद्या नष्ट होजाती है अन्यथा नहीं नष्ट होती। हे रामजी! यह अविद्या दीपक की शिखा तुल्य है और तृष्णारूपी तेल से अधिक प्रकाशवान् होती है। जब तृष्णारूपी तेल से रहित हो और विवेकरूपी वायु चले तब दीपक शिखा-रूप निर्वाण होजावेगी और न जानियेगा कि, कहां गई अविद्या कुहिरे की नाईं आवरण करती भासती है परन्तु ग्रहण करिये तो कुछ हाथ नहीं आती; देखनेमात्र स्पष्ट दृष्टि आती है परन्तु विचार किये से अणुमात्र भी नहीं रहती। जैसे रात्रि को बड़ा अन्धकार भासता है परन्तु जब दीपक लेकर देखिये तब अणुमात्र भी अन्धकार नहीं दीखता तैसेही विचार किये से अविद्या नहीं रहती। जैसे भ्रान्ति से आकाश में नीलता और दूसरा चन्द्रमा भासता है; जैसे स्वप्न की सृष्टि भासती है, जैसे नावपर चढ़े से तट के वृक्ष चलते भासते हैं और जैसे मृगतृष्णा की नदी, सीपी में रूपा और रस्सी सर्प भ्रम से भासते हैं तैसेही अविद्यारूपी जगत् अज्ञानी को सत्य भासता है। हे रामजी! यह जाग्रत् जगत्भी दीर्घकाल का स्वप्न है। जैसे सूर्य की किरणों में जलबुद्धि मृग के चित्त में आती है तैसेही जगत् की सत्यता मूर्ख के चित्तमें रहती है। हे रामजी! जिन पुरुषों को पदार्थों में रति होरही है, उनकी भावना से उनका चित्त खिंचता है और उन पदार्थों को अङ्गीकार करके बड़े कष्ट पाता है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है पर दाने में उसकी प्रीति होती है उससे चुगने के निमित्त पृथ्वीपर आता है और सुखरूप जानके चुगने लगता है तो जाल में फँसता है और कष्टवान् होता है। जैसे कण की तृष्णा पक्षी को दुःख देती है तैसेही जीवों को भोगों की तृष्णा दुःख देती है। हे रामजी! ये भोग प्रथम तो अमृत की नाईं सुखरूप भासते हैं परन्तु परिणाम में विष की नाईं होते हैं; मूर्ख अज्ञानी को ये सुन्दर भासते हैं। जैसे मूर्खपतङ्ग दीपक को सुखरूप जानके वाञ्छा करता है परन्तु जब दीपक से स्पर्श करता है तब नाश को प्राप्त होता है तैसेही भोगों के स्पर्श से ये जीव नाश होते हैं। जैसे संध्याकाल आकाश में लाली

भासती है तैसेही अविद्या से जगत् भासता है। जैसे भ्रम से दूर व
निकट भासती है और निकटवस्तु दूर भासती है; और स्वप्न में ब
काल में थोड़ा और थोड़ेकाल में बहुत भासता है तैसेही यह सब ज
जाल अविद्या ही भासता है। वह अविद्या आत्मज्ञान से नष्ट होती
इससे यत्न करके मन के प्रवाह को रोको। हे रामजी! जो कुछ दृश्यम
जगत् है वह सब तुच्छरूप है, बड़ा आश्चर्य है कि; मिथ्याभाव
करके जगत् अन्ध हुआ है। हे रामजी! अविद्या निराकार और शू
है; उसने सत्य होकर जगत् को अन्धा किया है अर्थात् संसारील
असत्रूप पदार्थों को सत् जानके यत्न करते हैं। जैसे सूर्य के प्रकाश
उल्लू को अन्धकार भासताहै और भ्रान्ति से सूर्य उसको नहीं भासत
तैसेही चिदानन्द आत्मा सदा अनुभव से प्रकाशता है और अविद्य
नहीं भासता। असत्यरूप अविद्या ने जगत् को अन्धा किया है;
विकर्मों को कराती है और विचार किये से नहीं रहती, उससे अप
आप नहीं भासता और बड़ा आश्चर्य है कि, धैर्य्यवान् धर्मात्मा को
अपने वश करके समर्थ होने नहीं देती। अविचार सिद्ध अविद्यारू
स्त्री ने पुरुषों को अन्धा किया है और अनन्त दुःखों का विस्तार फै
ती है; यह उत्पत्ति और नाश, सुख और दुःख को कराती है, आत्मा
भ्रमाती है, अनन्त दुःख अज्ञान से दिखाती है; बोध से हीन करती
और काम, क्रोध उपजाती है और मनमें वासना से यही भा
वृद्धि करती है। हे रामजी! यह अविद्या निराकाररूप है और इ
जीव को बांधा है। जैसे स्वप्न में कोई आपको बँधा देखे तैसीही अवि
है। स्वरूप के प्रमाद का ही नाम अविद्या है और कुछ नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्ति प्रकरणे अविद्या
वर्णनन्नामाष्टाशीतितमस्सर्गः॥ ८८॥

इतना सुन रामजी ने पूछा; हे भगवन्! जो कुछ जगत् दीसत
वह सब यदि अविद्या से उपजा है तो वह निवृत्त किस भांति होती
वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ की पुतली सूर्य के तेजसे क्ष

नष्ट होजाती है तैसेही आत्मा के प्रकाश से अविद्या नष्ट होजाती है। जबतक आत्मा का दर्शन नहीं होता तबतक अविद्या मनुष्य को भ्रम दिखाती है और नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्तकरतीहै पर जब आत्मा के दर्शन की इच्छा होती है तब वही इच्छा मोहका नाश करती है। जैसे धूप से छाया क्षीण होजाती है तैसेही आत्मपदकी इच्छासे अविद्या क्षीण होजाती है और सर्वगत देव आत्मा के साक्षात्कार हुयेसे नष्ट होजाती है। हे रामजी! दृश्यपदार्थों में इच्छा उपजनेका नाम अविद्या है और उस इच्छाके नाशका नाम विद्या है। उस विद्या ही का नाम मोक्ष है। अविद्या का नाश संकल्पमात्र है। जितने दृश्य पदार्थ हैं उनकी इच्छा न उपजे और केवल चिन्मात्र में चित्त की वृत्ति स्थितहो—यही अविद्या के नाश का उपाय है। जब सब वासना निवृत्त हों तब आत्मतत्त्व का प्रकाश आवे। जैसे रात्रि के क्षय हुये सूर्य प्रकाशता है तैसेही वासना के क्षय हुये आत्मा प्रकाशता है। जैसे सूर्य के उदय हुये से नहीं विदित होता कि, रात्रि कहां गई तैसेही विवेकके उपजे नहीं विदित होता कि, अविद्या कहां गई। हे रामजी! मनुष्य संसार की दृढ़ वासना में बँधा है। और जैसे संध्याकाल में मूर्ख बालक परछाहीं में वैताल कल्पकर भयवान् होताहै तैसेही अपनी वासनासे भय पाता है। रामजीने पूछा; हे भगवन्! यह सब दृश्य अविद्यासे हुआ है और अविद्या आत्मभावसे नाश होती है तो वह आत्मा कैसा है? वशिष्ठजी बोले; चैत्योन्मुखत्व से रहित और सर्वगत समान और अनुभवरूप जो अशब्दरूप चेतन तत्त्व है वह आत्मा परमेश्वर है। हे रामजी! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जगत् सब आत्मा है और अविद्या कुछ नहीं। हे रामजी! सब देहों में नित्य चेतनघन अविनाशी पुरुष स्थित है; उसमें मनो नाम्नी कल्पना अन्य की नाईं आभास होकर भासती है पर आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ नहीं। हे रामजी! कोई न जन्मता है, न मरता है और न कोई विकार है; केवल आत्मतत्त्व प्रकाश सत्तासमान, अविनाशी, चैत्य से रहित, शुद्ध, चिन्मात्रतत्त्व अपने आप में स्थित है और नित्य, सर्वगत, शुद्ध,

चिन्मात्र, निरुपद्रव, शान्तरूप, सत्तासमान, निर्विकार अद्वैत आत्मा
हे रामजी! उस एक सर्वगत देव, सर्वशक्ति महात्मा की जब विभ
कलना शक्ति प्रकट होती है तो उसका नाम मन होता है। जैसे समु
द्रवता से लहरें होती हैं तैसेही शुद्धचिन्मात्र में जो चैत्यता होती है उस
नाम मन है। वही संकल्प कलना से दृश्य की नाईं भासता है
उसी संकल्प कल्पना का नाम अविद्याहै। संकल्पही से वह उपजी
और संकल्पसेही नाशहोजाती है। जैसे वायु से अग्नि उपजती है
वायुसेही लीन होती है तैसेही संकल्प से अविद्यारूपी जगत् उपजता
और संकल्पहीसे नष्ट होजाता है। जब चित्त की वृत्ति दृश्यकी ओर फु
है तब अविद्या बढ़ती है और जब दृश्य की वृत्ति नष्ट हो और स्वरूप
ओर आवे तब अविद्या नष्ट होजाती है। हे रामजी! जब यह संक
करता है कि, मैं 'ब्रह्म नहीं हूं' तब मन दृढ़ बन्धमय होता है और
यही संकल्प दृढ़ करता है कि 'सब ब्रह्म है' तब मुक्त होताहै। जब अनात्म में
हंअभिमान का संकल्प दृढ़ करताहै तब बन्धन होताहै और सर्वब्रह्मके संक
से मुक्त होता है। दृश्य का संकल्प बन्ध है और असंकल्पही मोक्ष है; अ
जैसी तुम्हारी इच्छा हो तैसे करो। जैसे बालक आकाश में सुवर्ण
कमलों की कल्पनाकरे कि, सूर्यवत् प्रकाशित और सुगन्ध से पूर्ण हैं
वे भावनामात्र होते हैं; तैसे अविद्या भावनामात्रहै। अज्ञानी जो जान
है कि, मैं कृश, अतिदुःखी और बृद्ध हूं और मेरे हाथ, पांव और इन्द्रि
तो ऐसे व्यवहार से बन्धवान् होता है और यदि ऐसे जाने कि, मैं दुः
नहीं न मेरी देह है; न मेरे बन्धन हैं; न मैं मांसहूं और न मेरे अस्थि हैं
तो देह से अन्यसाक्षी हूं; ऐसे निश्चयवान् को मुक्त कहना चाहिये। जै
सूर्य में और मणि के प्रकाश में अन्धकार नहीं होता तैसेही आत्मा
अविद्या नहीं। जैसे पृथ्वीपर स्थित पुरुष आकाश में नीलता कल्पता
तैसेही अज्ञानी आत्मा में अविद्या कल्पता है—वास्तव में कुछ नहीं। फि
रामजी ने पूछा; हे भगवन्! सुमेरुकी छाया आकाश में पड़ती है अथ
तमकी प्रभाहै व और कुछहै; आकाशमें नीलता कैसे भासती है? वशिष्ठ

बोले; हे रामजी ! आकाश में नीलता नहीं है; न सुमेरु की छायाही है और न तमहै, आकाश पोलमात्रहै यह शून्यता गुणहै। हे रामजी ! यह ब्रह्माण्ड तेजरूप है, इसका प्रकाशही स्वरूप है; तम का स्वभाव नहीं। तम ब्रह्माण्ड के बाह्य है, भीतर नहीं; ब्रह्माण्ड का प्रकाश स्वभाव है और दृढ़ शून्यतासे आकाशमें नीलता भासती है और कुछ नहीं। जिसकी मन्ददृष्टि है उसको नीलता भासती है और जिसकी दिव्यदृष्टि है उसको नीलता नहीं भासती-पोल भासता है। जैसे मन्ददृष्टि को आकाश में नीलता भासती है, तैसेही अज्ञानी को अविद्या सत्य भासती है। जैसे दिव्यदृष्टिवाले को नीलता नहीं भासती, तैसेही ज्ञानवान् को अविद्या नहीं भासती-ब्रह्मसत्ताही भासती है। हे रामजी ! जहांतक इसके नेत्रोंकी दृष्टि जाती है वहांतक आकाश भासताहै और जहां वृत्ति कुण्ठित होती है वहां नीलता भासती है। हे रामजी ! जैसे जिसकी दृष्टि क्षय होती है उसको नीलता भासती है तैसेही जिस जीव की आत्मदृष्टि क्षय होती है, उसको अविद्यारूपी सृष्टि भासने लगती है-वही दुःखरूप है। हे रामजी ! चेतन को छोड़के जो कुछ स्मरण करता है उसका नाम अविद्या है और जब चित्त अचल होता है तब अविद्या नष्ट होजाती है-असंकल्प होनेसेही अविद्या नष्ट होती है। जैसे आकाश के फूल हैं तैसेही अविद्याहै। यह भ्रमरूप जगत् मूर्खों को सत्य भासता है, वास्तव में कुछ नहींहै। मन जब फुरने से रहित हो तब जगत् भावनामात्र है। उसी भावना का नाम अविद्याहै और वह मोह का कारण है। जब वही भावना उलटकर आत्मा की ओर आवे तब अविद्या का नाश हो। बारम्बार चिन्तना करने का नाम भावना है। जब भावना आत्मा की ओर वृद्धि होती है तब आत्मा की प्राप्ति होती है और अविद्या नष्ट होजाती है। मनके संसरने का नाम अविद्या है। जब आत्मा की ओर संसरना होता है तब अविद्या नष्ट होजाती है। हे रामजी ! जैसे राजा के आगे मन्त्री और टहलुये कार्य करते हैं; तैसेही मन के आगे इन्द्रियां कार्य करती हैं। हे रामजी ! बाह्य के विषय पदार्थों की भावना छोड़के तुम भीतर आत्मा की भावनाकरो तब आत्मपद को

प्राप्त होगे। जिन पुरुषों ने अन्तःकरण में आत्मा की भावना का
किया है वे शान्तिको प्राप्त हुये हैं। हे रामजी! जो पदार्थ आदि में
होता, वह अन्त में भी नहीं रहता; इससे जो कुछ भासता है वह
ब्रह्मसत्ता है। उससे कुछ भिन्न नहीं और जो भिन्न भासता है वह मन
है। तुम्हारा स्वरूप निर्विकार और आदि अन्त से रहित ब्रह्मतत्त्व
तुम क्यों शोक करते हो? अपना पुरुषार्थ करके संसार की भोगवा
चित्तके मूलसे उखाड़ो और आत्मपद का अभ्यास करो तो दृश्य
मिटजावे। हे रामजी! इस संसारकी वासना का उदयहोना जरा मरण
मोह देनेवाला है। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब जीव को यह कल
उठती है और आकाशरूपी अनन्त फाँसियों से बन्धवान् होता है।
वासना और भी वृद्धि होजाती है और कहता है कि ये मेरे पुत्र हैं,
मेरा धन है, यह मेरे बान्धव हैं; ये मैं हूं; वह और है। हे राम
जिस शरीर से मिलकर यह कल्पना करता है वह शरीर शून्यरूप
जैसे वायु गोलेके साथ तृण उड़ते हैं; तैसे अविद्यारूपी वासना से श
उड़ते हैं अहं त्वं आदिक जगत् अज्ञानी को भासता है और ज्ञान
को केवल सत्यब्रह्म भासता है। जैसे रस्सी के न जानने से सर्प भा
है और रस्सी के सम्यक् ज्ञान से सर्पभ्रम नष्ट होजाता है, तैसेही आ
के अज्ञान से जगत भासता है और आत्मा के सम्यक् ज्ञान हुयेसे ज
भ्रम नष्ट होजाता है। इससे तुम आत्मा की भावनाकरो। हे राम
रस्सी में दो विकल्प होते हैं एक रस्सी का और दूसरा सर्प का; वे द
विकल्प अज्ञानी को होते हैं ज्ञानी को नहीं होते। जो जिज्ञासी हो
उसकी वृत्ति सत्य और असत्य में डोलायमान होती है और जो ज्ञान
है उसको विचार से रहित ब्रह्म तत्त्वही भासता है। इससे तुम अज्ञ
मत होना, ज्ञानवान् होना; जो कुछ जगत् की वासना है उन स
त्यागकरो तब शान्तिमान होगे। हे रामजी! संसारभोग की वासना भी
होतीहै जब अनात्मा में आत्माभिमान होताहै; तुम इसके साथ काहे
अभिमान करते हो? यह देह तो मूक जड़ है और अस्थि मांस की

है। ऐसी देह तुम क्यों होतेहो ? जबतक देह में अभिमान होता है तब तक सुख और दुःख भोगता है और इच्छा करता है। जैसे काष्ठ और लाख; और घट और आकाश का संयोग होता है तैसेही देह अभिमान और देही का संयोग होता है। जैसे झिर्झी के अन्तर आकाश होता है सो उसके नष्ट हुये आकाश नहीं नष्ट होता और जैसे घट के नष्ट हुये घटाकाश नहीं नष्ट होता; तैसेही देह के नष्ट हुये आत्मा नहीं नाश होता। हे रामजी ! जैसे मृगतृष्णा की नदी भ्रान्ति से भासती है तैसेही अज्ञान से सुख दुःख की कल्पना होती है। इससे तुम सुख दुःख की कल्पना को त्यागके अपने स्वभावसत्ता में स्थित हो। बड़ा आश्चर्य है कि; ब्रह्मतत्त्व सत्यस्वरूपहै पर मनुष्य उसे भूलगयाहै और जो असत्य अविद्याहै उसको बारम्बार स्मरण करता है। ऐसी अविद्याको तुम मत प्राप्तहो। हे रामजी ! मनका मननही अविद्या है और अनर्थ का कारण है; इससे जीव अनेक भ्रम देखता है। मनके फुरने से अमृत से पूर्ण चन्द्रमा का बिम्ब भी नरक की अग्निसमान भासता है और बड़ी लहरों; तरङ्गों और कमलोंसे संयुक्त जल भी मरुस्थल की नदी समान भासता है। जैसे स्वप्ने में मनके फुरने से नानाप्रकार के सुख और दुःख का अनुभव होता है तैसेही यह सब जगत्-भ्रम चित्त को वासना से भासता है। जाग्रत् और स्वप्ने में यह जीव मन के फुरने से बिचित्र रचना देखता है। जैसे स्वर्ग में बैठे हुये को भी स्वप्ने में नरकों का अनुभव होता है तैसे ही आनन्दरूप आत्मा में प्रमाद से दुःख का अनुभव होता है। हे रामजी ! अज्ञानी मन के फुरने से शून्य अणु में भी सम्पूर्ण जगत् भ्रम दीखता है; जैसे राजा लवण को सिंहासन पर बैठे चाण्डाल की अवस्था का अनुभव हुआ था। इससे संसार की वासना को तुम चित्त से त्याग दो। यह संसार वासना बन्धन का कारण है। सब भावों में बर्त्तो परन्तु राग किसी में न हो। जैसे स्फटिक मणि सब प्रतिबिम्बों को लेता है परन्तु रङ्ग किसी का नहीं लेता तैसे ही तुम सब कार्य करो परन्तु द्वेष किसी में न रक्खो। ऐसा पुरुष निर्बन्धन है उसको शास्त्र के उपदेश की आवश्यकता नहीं; वह तो निजरूप है

हे रामजी! जो कुछ प्रकृत आचार तुमको प्राप्त हो तो देना, लेना, बोल चालना आदिक सब कार्य करो परन्तु भीतर से अभिमान कुछ न क निरभिमान होकर कार्य करो—यह ज्ञान सब से श्रेष्ठ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे यथाकथितदोषपरिहारोपदेशो नाम नवाशीतितमस्सर्गः॥ ८९ ॥

इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि; इस प्रकार जब महात्मा वशिष्ठ ने कहा तब कमलनयन रामजी ने वशिष्ठजी की ओर देखा और उन अन्तःकरण रात्रि के मुँदेहुये कमल की नाईं प्रफुल्लित हो आया। रामजी बोले कि; बड़ा आश्चर्य है! पद्म की तांत के साथ पर्वत ब है। अविद्यमान अविद्या ने सम्पूर्ण जगत् वश किया है और अविद्यम जगत् को वज्रसारवत् दृढ़ किया है। यह सब जगत् असत्यरूप है अ सत्य की नाईं स्थित किया है। हे भगवन्! इस संसार की नटनी मा का क्या रूप है; महापुण्यवान् लवणराजा ऐसी बड़ी आपदा में कै प्राप्त हुआ और इन्द्रजाली जिसनें भ्रम दिखाया था वह कौन था कि, उ को अपना अर्थ कुछ न था? वह कहां गया और इस देही और देहका कै सम्बन्ध हुआ और शुभ अशुभ कर्मों के फल कैसे भोगता है? इतने प्र का उत्तर मेरे बोध के निमित्त दीजिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! देह काष्ठ मट्टी के समान है। जैसे स्वप्न में चित्तके फुरने से देह भासता तैसेही यह देह भी चित्तका कल्पित है और चित्तही चैत्य सम्बन्ध से जी पद को प्राप्त हुआ है। वह जीव चित्तसत्ता से शोभायमान है; उस चि के फुरने से संसार उपजा है; वह वानरके बालक के समान चञ्चल और अपने फुरनेरूप कर्मोंसे नानाप्रकार के शरीर धरता है। उसी चित्त नाम अहङ्कार, मन और जीव हैं। वह चित्त ही अज्ञान से सुख दुः भोगता है; शरीर नहीं भोगता। जो प्रबोधचित्त है वह शान्तरूप है जबतक मन अप्रबोध है और अविद्यारूपी निद्रा में सोया है तबत स्वप्नरूप अनेकसृष्टि देखताहै और जब अविद्या निद्रासे जागताहै तब न देखता। हे रामजी! जबतक जीव अविद्या से मलिन है तबतक संस

भ्रम देखता है और जब बोधवान् होता है तब संसारभ्रम निवृत्त होजाता है। जैसे रात्रि होने से कमल मुंदजाते हैं और सूर्य के उदय हुये खिल आते हैं तैसे ही अविद्या से जगत्भ्रम देखता है और बोध से अद्वैतरूप होता है। इससे अज्ञान ही दुःख का कारण है। अविवेक से पञ्चकोश देहमें अभिमानी होकर जैसे कर्म करता है तैसेही भोगता है; शुभ करता है तो सुख भोगता है और अशुभ से दुःख भोगता है जैसे नटवा अपनी क्रियासे अनेक स्वाँग धरता है तैसेही मन अपने फुरने से अनेक शरीर धरता है। जो कुछ इष्ट-अनिष्ट सुख दुःख हैं वे एक मन के फुरने में हैं और शरीर में स्थित होकर मनहीं करता है। जैसे रथपर आरूढ़ होकर सारथी चेष्टा करता है और बाँबी में बैठके सर्प चेष्टा करता है तैसेही शरीर में स्थित होकर मन चेष्टा करताहै। हे रामजी! अचलरूप शरीर को मन चञ्चल करता है। जैसे वृक्ष को वायु चञ्चल करता है तैसे जड़ शरीर को मन चञ्चल करताहै। जो कुछ सुख दुःख की कलनाहै वह मनहीं करताहै और वही भोगता और वही मनुष्यहै। हे रामजी! अब लवण का वृत्तान्त सुनो। लवण राजा मनके भ्रमने से चाण्डाल हुआ। जो कुछ मनसे करता है वही सफल होताहै। हे रामजी! एक काल में हरिश्चन्द्रके कुल में उपजा राजा लवण एकान्त बगीचे में बैठ के विचारने लगा कि; मेरा पितामह बड़ा राजा हुआ है और मेरे बड़ोंने राजसूय यज्ञ किये हैं। मैं भी उनके कुलमें उत्पन्न हुआहूं इससे मैं भी राजसूय यज्ञ करूं। इस प्रकार चिन्तना करके लवणने मानसी यज्ञ आरम्भ किया और देवता, ऋषि, सुर, मुनीश्वर, अग्नि, पवन आदिक देवताओं की मनसे पूजा की और मन्त्र और सामग्री जो कुछ राजसूय यज्ञका कर्म है सो संपूर्ण करके मन से दक्षिणा दीं। सवावर्ष पर्यन्त उसने यह यज्ञ किया और मनहीं से उसका फल भोगा। इससे हे रामजी! मनहीं से सब कर्म होता है और मनहीं भोगता है। जैसा चित्त है तैसाही पुरुष है, पूर्णचित्त से पूर्ण होताहै और नष्टचित्त से नष्ट होता है अर्थात् जिसका चित्त आत्मतत्त्वसे पूर्ण है सो पूर्णहै और जो आत्मतत्त्वसे नष्टचित्तहै वह नष्टपुरुषहै। हे रामजी! जिसको

यह निश्चय है कि; मैं देह हूँ वह नीचबुद्धि है और अनेक दुःखों को
होगा और जिसका चित्त पूर्ण विवेक में जागा है उसको सब दुः
अभाव होजाता है। जैसे सूर्यके उदयहुये कमलों का सकुचना दू
जाता है और वे खिल आते हैं, तैसेही विवेकरूपी सूर्य के प्रकाश से
पुरुष दुःखों में संकुचित रहते हैं। जो विवेकरूपी सूर्य के प्रकाश से
खिले हुये हैं वे संसार के दुःखों से तरजाते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सुखदुःखभोक्तव्योपदेशकथन
नवतितमस्सर्गः॥ ९० ॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! राजा लवण ने राजसूय यज्ञ म
किया और मन हीं से उसका फल भोगा परन्तु ऐसा साम्बर कौन
जिसने उसको भ्रम दिखाया। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब वह सा
लवणराजा की सभा में आया तब मैं वहां था। मुझसे लवण और उ
मन्त्री ने पूछा कि, यह कौन है? तब मैंने उनसे जो कुछ कहा था
तुझसे भी कहता हूं। हे रामजी! जो पुरुष राजसूय यज्ञ करता है उ
द्वादश वर्ष की आपदा प्राप्त होती है उस द्वादश वर्ष में वह अनेक
देखता है। राजा लवण ने जो मनसे यज्ञ किया इसलिये उसको आ
भी मनसेही प्राप्त हुई। स्वर्गसे इन्द्रने अपना दूत आपदा भुगवानेके नि
भेजा। वह साम्बरी का रूप होकर आया और राजा को चाण्डाल
आपदा भुगताकर फिर स्वर्ग में चलागया। हे रामजी! जो कुछ
प्रत्यक्ष देखा था वह तुमसे कहा। इससे मनहीं करता है और म
भोगता है। जैसा २ दृढ़ संकल्प मन में फुरता है उसके अनुसार उस
सुख दुःख का अनुभव होता है। हे रामजी! जबतक चित्त फुरताहै
तक आपदा प्राप्त होती है जैसे ज्यों २ कीकर का वृक्ष बढ़ता है त्यों
कण्टक बढ़ते जाते हैं; तैसेही मन के फुरने से आपदा बढ़ती जाती
जब मन स्थिर होताहै तब आपदा मिटजाती हैं। इससे, हे रामजी!
चित्तरूपी बरफ को विवेकरूपी तपन से पिघलाओ तब परमसार
प्राप्ति होगी। यह चित्त ही सकल जगत्आडम्बर का कारण है; उस

तुम अविद्या जानो। जैसे वृक्ष, विटप और तरु एकही वस्तु के नाम हैं; तैसेही अविद्या, जीव, बुद्धि, अहंकार सब फुरनेके नाम हैं। इसको विवेक से लीन करो। हे रामजी! जैसा संकल्प दृढ़ होता है तैसाही देखता है। हे रामजी! वह कौन पदार्थ है जो यत्न किये से सिद्ध न हो? जो हठसे न फिरे तो सब कुछ सिद्ध होता है। जैसे बरफ के बासनों को जल में डालिये तो जल की एकता ही होजाती है तैसेही आत्मबोध से सब पदार्थों की एकता होजाती है। रामजी ने फिर पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, सुख दुःख सब मनहीं में स्थित हैं और मन की वृत्ति नष्ट हुये सब नष्ट होजाती हैं सो चपल वृत्ति कैसे क्षय हो? वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुल में श्रेष्ठ और आकाश के चन्द्रमा! मैं तुमसे मनके उपशम की युक्ति कहता हूँ। जैसे सवार के वश घोड़ा होता है तैसेही मन तुम्हारे वश रहेगा। हे रामजी! सब भूत ब्रह्मही से उपजे हैं। उनकी उत्पत्ति तीन प्रकार की है—एक सात्त्विकी; दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। प्रथम शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्म में जो कलना उठी है उसी बाह्य-मुखी फुरने का नाम मन हुआ है। वही ब्रह्मारूप है, उस ब्रह्मा ने जैसा संकल्प किया तैसा ही आगे देखा; उसने यह भुवनआडम्बर और उसमें जन्म, मरण और सुख, दुःख, मोह आदिक संसरना कल्पा। इसी प्रकार अपने आरम्भसंयुक्त, जैसे बरफ का कणुका समुद्र से उपजकर सूर्य के तेज से लीन होजावे; तैसेही आरम्भ से निर्वाण होगया, संकल्प के वश से फिर उपजा और फिर लीन होगया। इसी प्रकार कई अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड ब्रह्मा से उपज २ कर लीन होगये हैं और कितने होंगे और कितने वर्त्तमान हैं। अब जैसे मुक्त होते हैं सो सुनो। हे रामजी! शुद्ध ब्रह्म-तत्त्वसे प्रथम मनसत्ता उपजी; उसने जब आकाश चेता तब आकाश हुआ, उसके उपरान्त पवन हुआ, फिर अग्नि और जल हुआ और उसकी दृढ़ता से पृथ्वी हुई। तब चित्तशक्ति दृढ़ संकल्पसे पांच भूतोंको प्राप्त हुई और अन्तःकरण जो सूक्ष्म प्रकृति है सो पृथ्वी, तेज और वायु से मिलकर धान्य में प्राप्त हुआ। उसको जब पुरुष भोजन करतेहैं तब वह परिणाम होकर वीर्य

और रुधिररूप होके गर्भ में निवास करता है; जिससे पुरुष उपजता
वह पुरुष जन्ममात्र से वेद पढ़ने लगता है; फिर गुरुके निकट ज
और क्रमसे उसकी बुद्धि विवेकद्वारा चमत्कारवान् होजाती है तब उ
ग्रहण और त्याग और शुभ अशुभ में विचार उपजता है। और नि
अन्तःकरण सहित स्थित होता है और क्रम से सप्तभूमिका चन्द्रमा
नाईं उसके चित्त में प्रकाशती हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे सात्त्विकजन्मावतारोनामै-
कनवतितमस्सर्गः॥ ९१॥

रामजी बोले, हे सर्वशास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, भगवन्! ज्ञानकी वे स
मिका कैसे निवास करनेवाली हैं संक्षेप में मुझसे कहिये? वशि
बोले, हे रामजी! अज्ञान की सप्तभूमिका हैं और ज्ञान की सप्तभूमिक
और उनके अन्तर्गत और बहुत अवस्था हैं कि, उनकी कुछ संख्या
परन्तु वे सब इन्हीं सप्त के अन्तर्गत हैं। हे रामचन्द्र! आत्मरूपी वृ
और अपना पुरुषार्थरूपी वसन्तऋतु है; उससे दो प्रकारकी बेलें उ
होती हैं—एक शुभ और दूसरी अशुभ। पुरुषार्थरूपी रसके बढ़ने से
की प्राप्ति होती है। अब ज्ञान किसको कहते हैं सो सुनो। शुद्धचिन्मा
चैत्यदृश्य फुरने से रहित होकर स्थित होनेका नाम ज्ञानहै और
चिन्मात्र अद्वैत में अहं संवेदना उठती है सो स्वरूप से गिरना है;
अज्ञानदशा है। हे रामचन्द्र! यह मैंने तुमसे संक्षेपसे ज्ञान और अज्ञान
लक्षण कहा है। शुद्ध चिन्मात्रमें जिनकी निष्ठा है; सत्यस्वरूप से चल
मान नहीं होते और राग द्वेष किसीसे नहीं रखते, वे ज्ञानी हैं और ऐसे
चिन्मात्र स्वरूपसे जो गिरे हैं वे अज्ञानी हैं। और जो जगत् के पदार्थ
मग्न हैं वे अज्ञानी हैं। इससे परममोह और कोई नहीं—यही परममोह
स्वरूपस्थित इसका नाम है कि, एक अर्थ को छोड़ के जो संवित्
अर्थको प्राप्त होता है। जैसे जाग्रत्को त्यागकर सुषुप्ति प्राप्त होती है
उसके मध्य में जो निर्मननरूप सत्ता है उसमें स्थित होना स्वरूप स्थि
कहाता है। हे रामचन्द्र! भलीप्रकार सर्व संकल्प जिसके शान्त हु

और जो शिलाके अन्तरवत् शून्यहै वह स्वरूपस्थितिहै। अहं त्वं आदिक फुरनेसे और भेदविकार और जड़से रहित अचैत्य चिन्मात्रहै सो आत्मस्वरूप कहाता है। उसतत्त्व में फिरकर जो जीवों की अवस्था हुई है वह सुनो। हे रामचन्द्र! १ बीज जाग्रत् है; २ जाग्रत्; ३ महाजाग्रत्; ४ जाग्रत् स्वप्न; ५ स्वप्न; ६ स्वप्न जाग्रत् और ७ सुषुप्ति ये सात प्रकार की मोह की अवस्था हैं। इनके अन्तर्गत और भी अनेकअवस्था हैं। पर मुख्य ये सातही हैं अब इनके लक्षण सुनो। हे रामजी! आदि जो शुद्ध चिन्मात्र अशब्दपद तत्त्वसे चैतनता का अहं है उसका भविष्यत् नाम जीव होता है। आदि वह सर्व पदार्थों का बीजरूप है और उसीका नाम बीज जाग्रत् है। उसके अनन्तर जो अहं और यह मेरा इत्यादिक प्रतीति दृढ़ हो और जन्मान्तरों में भासे उसका नाम जाग्रत् है। यह है, मैं हूं इत्यादिक शब्दों से तन्मय होना और जन्मान्तर में बैठे हुये जो मन फुरता है मनोराज में वह फुरना दृढ़ हो भासना जाग्रत् स्वप्न कहाता है और दूसरा चन्द्रमा, सीपी में रूपा, मृगतृष्णा का जल इत्यादिक विपर्यय भासना भी जाग्रत् स्वप्न है। निद्रा में जब मन फुरने लगता है और उससे नाना पदार्थ भासने लगते हैं तो जब जाग उठता है तब कहता है कि, मैंने अल्प काल में अनेक पदार्थ देखे और निद्राकाल में जो पदार्थ देखे थे उनको असत्यरूप जाग्रत् में जानने लगता है। उस निद्राकाल में मनके फुरने का नाम स्वप्न है। स्वप्न आवे और उसमें यह दृढ़ प्रतीति होजावे कि, दीर्घकाल बीतगया उसका नाम महा जाग्रत् है और महाजाग्रत् में अपना बड़ा वपु देखा और उसमें अहं, ममभाव दृढ़हुआ और आपको सत्य जानकर जन्म मरण आदिक देखे, देह रहे अथवा न रहे; उसका नाम स्वप्नजाग्रत् है। वह स्वप्न महाजाग्रत्रूप को प्राप्त होता है। इन छः अवस्थाओं का जहां अभाव हो; जड़रूप और भविष्यत् हो उसका नाम सुषुप्ति है। उस अवस्था में घास, पत्थर, वृक्षादिक स्थित हैं। हे रामजी! यह अज्ञान की सप्तभूमिका कही; उसमें एक२ में अवस्था भेद है। हे रामचन्द्र! स्वप्न चिरकाल से जाग्रत्रूप हो जाता है; उसके अन्तर्गत और स्वप्न जाग्रत् है

और उसके अन्तर और है। इस प्रकार एक२ के अन्तर अनेक हैं। मोह की घनता है और उस से जीव भ्रमते हैं। जैसे जल नीचे से न चला जाताहै, तैसेही जीव मोह के अनन्तर मोह पाते हैं। हे रामजी! तुम से अज्ञान की अवस्था कही जिस में नानाप्रकार के मोह और विकारहैं। इनसे तुम विचारकर मुक्त हो तब तुम महात्मा पुरुष और आ विचार करके निर्मल बोधवान् होगे और तभी इस भ्रमसे तर जावोगे

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनन्नाम द्विनवतितमस्सर्गः ॥ ९२ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! अब तुम ज्ञानकी सप्तभूमिका सुन भूमिका चित्त की अवस्था को कहते हैं। ज्ञान की भूमिका जान जीव फिर मोहरूपी कीचड़ में नहीं डूबता। हे रामचन्द्र! और मत भूमिका को बहुत प्रकार से कहते हैं पर मेरा अभिमत पूछो तो यह है इससे सुगम और निर्मल बोध प्राप्त होताहै। स्वरूप में जागने का ज्ञान है; उस ज्ञान की सप्तभूमिका हैं और जो मुक्त इन सप्तभूमिकाओं के हैं वे विदेहमुक्त हैं वे ये हैं-१ शुभेच्छा, २ विचारना, ३ तनु मान ४ सत्त्वापत्ति, ५ असंशक्ति, ६ पदार्थाभावनी और ७ तुरीया। इ सार को प्राप्तहुआ फिर शोक नहीं करता। अब इसका अर्थ सु जिसको यह विचार फुरआवे कि, मैं महामूढ़ हूं; मेरी बुद्धि सत्य में है संसार की ओर लगी है और ऐसे विचारके वैराग्यपूर्वक सत् और सन्तजनों की संगति की इच्छा करे तो इसका नाम शुभेच्छा सत्शास्त्रों को विचारना; सन्तों की संगति; विषयों से वैराग्य और स मार्ग का अभ्यास करना; इनके सहित सत्यआचार में प्रवर्तना सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानकर त्याग करना इ नाम विचार है। विचार और शुभेच्छा सहित तत्त्व का अभ्यास क और इन्द्रियों के विषयों से वैराग करना यह तीसरी भूमिका तनुमानस इन तीन भूमिकाओं का अभ्यास करना; इन्द्रियों के विषय और अ से वैराग करना और श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे सत्य आत

स्थित होने का नाम सत्त्वापत्ति है। इसमें सत्य आत्माका अभ्यास होता है। ये चार भूमिका संयम का फल जो शुद्ध विभूति है उसमें असंशक्त रहने का नाम असंशक्ति है। दृश्यका विस्मरण और भीतर बाहरसे नाना प्रकार के पदार्थों के तुच्छ भासनेका नाम पदार्थाभावनी है; यह छठी भूमिका है। हे रामचन्द्र! चिरपर्यन्त छठी भूमिका के अभ्याससे भेद कलना का अभाव होजाता है और स्वरूप में दृढ़ परिणाम होता है। छः भूमिका जहां एकताको प्राप्त हों उसका नाम तुरीयाहै। यह जीवन्मुक्तकी अवस्थाहै। जीवन्मुक्त तुरीयापद में स्थित है। तीन भूमिका जगत् की जाग्रत् अवस्था में हैं; चौथी तत्त्वज्ञानी की है; पांचवीं और छठी जीवन्मुक्त की अवस्था हैं और तुरीयातीतपद में विदेहमुक्त स्थित होता है। हे रामचन्द्र! जो पुरुष महाभाग्यवान् है वह सप्त भूमिका में स्थित होता है और वही आत्मारामी महापुरुष परमपद को प्राप्त होता है। हे रामचन्द्र! जो जीवन्मुक्त पुरुष हैं वे सुख दुःख में मग्न नहीं होते और शान्तरूप होके अपने प्रकृत आचार को करते हैं; अथवा नहीं करते तो भी उनको कुछ बन्धन नहीं; उनको क्रियाका बोध कुछ नहीं रहता। जैसे सुषुप्ति पुरुष के निकट जाके कोई क्रिया करे तो उसे कुछ बोध नहीं होता तैसेही उसको भी क्रियाबोध कुछ नहीं होता; वह तो सुषुप्तिवत् उन्मीलितलोचन है। हे रामचन्द्र! जैसे सुषुप्त पुरुष को रूप, इंद्रिय और उनका अभाव हो जाता है; तैसे ही सप्त भूमिका में अभाव हो जाता है। यह ज्ञान की सप्तभूमिका ज्ञानवान् का विषय है; पशु, वृक्ष, म्लेच्छ, मूर्ख और पापाचारियों के चित्त में इनका अधिकार नहीं होता। जिसका मन निर्मल है उसको इन भूमिकाओं में अधिकार है; कदाचित् पशु, म्लेच्छ आदि को भी इनका अभ्यास हो तो वह भी मुक्त हो जाता है; इसमें कुछ संशय नहीं। हे रामचन्द्र! आत्मज्ञान से जिनके हृदय की गांठ टूट गई है उनको संसार मृगतृष्णा के जलवत् मिथ्या भासता है और वे मुक्तरूप हैं और जो संसार से विरक्त होकर इन भूमिकाओं में आये हैं और मोहरूपी समुद्र से नहीं तरे और पूर्ण पद को भी नहीं प्राप्त हुये और सप्तभूमिका में से किसी भूमिका में

लगे हैं वे भी आत्मपद को पाकर पूर्ण आत्मा होंगे हे रामचन्द्र!
तो सप्त भूमिकाओं को प्राप्त हुये हैं; कोई पहली ही भूमिका में; कोई दू
और कोई तीसरी को प्राप्त हुये हैं। कोई चौथी को; कोई पञ्चम; कोई
को और कोई अर्द्धभूमिकाकोही प्राप्त हुये हैं। कोई गृहमें कोई वन
कोई तपसी हैं और कोई अतीत हैं। इससे आदि लेकर वे पुरुष
और बड़े शूरमा हैं कि, जिन्हों ने इन्द्रियरूपी शत्रु को जीता है।
पुरुषने एक भूमिका को भी जीता है सो वन्दना करने योग्य है; उस
चक्रवर्ती राजा जानना बल्कि, उसके सामने राज्य और बड़ा ऐश्
विभूति भी तृणवत् है। वह परमपद को प्राप्त हुआ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे ज्ञानभूमिकोपदेशोनाम
त्रिनवतितमस्सर्गः॥ ९३॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जैसे सोने में भूषण फुरे और अप
सुवर्णभाव भूल के कहै मैं भूषण हूं तैसे ही चित्त संवेदन जिस स्व
से फुरा है उससे भूलकर अहंवेदना हुई है उससे अहंकार रूप धर
कि, मैं यह कुछ हूं। रामजी ने पूछा; हे भगवन्! सोने में जो भू
होते हैं वे मैं जानता हूं परन्तु आत्मा में अहंभाव कैसे होता है
कहिये? वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! अहंकार आदिकों का हो
असत्यरूप आगमापाई है। इसका कुछ भिन्न रूप नहीं है; यह आ
का चमत्कार है—वास्तव में द्वैत कुछ नहीं। जैसे समुद्र में अध ऊर्ध्व
ही जल है और कुछ नहीं; तैसे ही परमतत्त्व में और विभाग कल्पना क
नहीं—शान्तरूप है। जैसे समुद्र में द्रवता से तरंग आदिक भासते हैं
ही संवेदना से जगत्भ्रम भासते हैं। आत्मा में नाना प्रकार का भ्रम भास
है परन्तु और कुछ नहीं जैसे सुवर्ण में भूषण; जल में द्रवता और वायु में स्प
भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है। फुरने से रहित शान्त
केवल परमपद है। हे रामजी! जैसे मृत्तिका की सेना में जो हाथी, घोड़
पशु होते हैं वे सब मृत्तिकारूप हैं कुछ भिन्न नहीं तैसे ही सब जगत् आत्मस्
है, भ्रम से नाना तत्त्व भासता है; वास्तव में आत्मा ही पूर्णरूप आप

स्थित है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है, तैसे ब्रह्म में ब्रह्म स्थित है और सत्यमें सत्य स्थितहै। जैसे दर्प्पण में प्रतिबिम्ब होताहै तैसेही आत्मा में जगत् है; जैसे स्वप्न में दूर पदार्थ निकट भासते हैं और निकट दूर भासते हैं सो भ्रममात्र हैं तैसे ही आत्मा में विपर्ययदृष्टि से जगत् भासता है। हे रामजी! असत्य जगत् भ्रम से सत्रूप भासता है; वास्तव में असत्यरूप है। जैसे दर्प्पण में नगर का प्रतिबिम्ब; जैसे मृगतृष्णा का जल और आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता; तैसेही यह जगत् आत्मामें भासता है। जैसे इन्द्रजाल के योग से आकाश में नगर भासता है तैसेही यह असत्यरूप जगत् अज्ञान से सत्य भासता है। जबतक आत्मविचार-रूपी अग्नि से अविद्यारूपी बल्ली को तू न जलावेगा तबतक जगत्रूपी बेल निवृत्त न होगी बल्कि, अनेकप्रकार के सुख दुःख दिखावेगी। जब तू विचारकरके मूल सहित इसको जलावेगा तब शान्तपद को प्राप्तहोगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे युक्तोपदेशो नाम
चतुर्णवतितमस्सर्गः॥ ९४॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामचन्द्र! जैसे सुवर्ण में भूषण मिथ्यारूप हैं तैसे ही आत्मा में 'अहं' 'त्वं' आदिक अविद्यारूप हैं। लवण की कथा जो तुमने सुनी है उसे अब फिर सुनो। लवण राजा दूसरे दिन विचार करने लगा कि, यह मुझको भ्रम से भासा है परन्तु सत्यरूप होकर देखा है। देश, नगर, मनुष्यादिक पदार्थ मुझको प्रत्यक्ष दृष्टि आए हैं इससे अब तो वहां जाकर देखूं कि, कैसी वार्त्ता है। ऐसे विचार से दिग्विजय का मन करके मन्त्री और सेना को साथ लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला। देशों को लांघता २ विन्ध्याचल पर्वत में पहुँचा और पूर्व और दक्षिण के समुद्र के मध्य में मार्ग को भ्रमता भ्रमता किरात देश में जा पहुँचा जो वृत्तांत और देश ग्राम आदिक भ्रम में देखे थे सो प्रत्यक्ष देखे और अति विस्मित हो विचार करने लगा कि; हे दैव! यह क्या है? जो कुछ मैंने भ्रममें देखा था वह अब भी मुझको प्रत्यक्ष भासता है। यह बड़ा आश्चर्य है! ऐसे विचार के आगे गया तो क्या देखा कि, अग्नि से वृक्ष जले हैं

और अकाल पड़ाहै। अपने सम्बन्धियों की चेष्टाके स्थान देखे और उन
कथा सुनी। इसप्रकार देखते २ आगे गया तो क्या देखा कि, चाण्ड
शरीर की सासु बैठी रुदन करती है कि; हे दैव! मेरा पुत्र कहां गया
पुत्र! तुम कहां गये, जिनका चन्द्रमा की नाईं मुख था? मेरी मृगनय
कन्या जीर्ण देह होगई है–और पौत्र, पौत्रियां दुर्भिक्षता से सब जाते
उनके यह खाने के पदार्थ हैं और ये चेष्टा ये स्थान हैं। जो रतिकाकी म
कण्ठ में डाले जीवों के मांस खाते और रुधिर पान करते थे वह कहां ग
इसीप्रकार पुत्र, पुत्री, भर्त्ता, दामाद आदि का नाम लेकर वह रुदन क
थी और और लोग जो आ बैठते थे वह भी रुदन करते थे। तब रा
उनका रोना बन्द कराके वृत्तान्त पूछने लगा कि, तू किस निमित्त रु
करती है? किससे तेरा वियोग हुआ है?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणे चाण्डालीशोचनवर्णनन्नाम प
नवतितमस्सर्गः॥ ९५॥

चाण्डाली बोली, हे राजन्! एक समय वर्षा न होनेसे काल प
और सब जीवों को बड़ा दुःख हुआ। उस समय मेरे पुत्र, पौत्र, पौत्रि
जामात, भर्त्ता आदिक बांधव यहांसे निकलगये और कहीं कष्ट प
मरगये। उनके वियोग से मैं दुःखी होकर रुदन करती हूं और उ
विना मैं शून्य होगईहूं! जैसे बिछुरी हुई हथिनी अकुलाती है तैसेही
अकुलाती हूं। हे रामचन्द्र! जब इस प्रकार चाण्डाली ने कहा तब रा
अति विस्मित हुआ और मन्त्री के मुख की ओर ऐसे देखनेलगा ज
कागज़ पर पुतली होती है। निदान राजा विचारे और आश्चर्यवान्
उस चाण्डाली से बारम्बार पूछे और वह फिर कहे और राजा आश्च
वान् होवे। तब राजा उसको यथायोग्य धन देकर चिरपर्यन्त वहां
और फिर अपने राजमन्दिर में आया। जब प्रातःकाल हुआ तब स
में आकर मुझसे पूछनेलगा; हे मुनीश्वर! यह स्वप्न मुझ को प्रत्य
कैसे हुआ? इसको देखकर मैं आश्चर्यवान् हुआहूं! तब मैंने प्रश्नानुस
उसको युक्ति से उत्तर दिया और उसके चित्तका संशय ऐसे दूर करदि

जैसे मेघ को वायु दूर करे; वही तुमसे कहताहूं। हे रामजी! अविद्या ऐसी है कि, असत्य को शीघ्रही सत्य और सत्य को असत्य कर दिखाती है और बड़ा भ्रम दिखानेवाली है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! स्वप्न कैसे सत्य हुआ; यह मेरे चित्त में बड़ा संशय स्थित हुआ है। उसको दूर कीजिये। वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इसमें क्या आश्चर्य है? अविद्या से सब कुछ बनताहै। स्वप्न में तुम प्रत्यक्ष देखते हो कि, घटसे पट और पटसे घट होजाता है। स्वप्न और मृत्यु में मूर्च्छा के अनन्तर बुद्धि विपर्यय होजाती है। जिनका चित्त वासनासे वेष्टितहै उनको जैसा संवेदन फुरताहै तैसेही भासताहै। हेरामजी! जिनका चित्त स्वरूपसे गिराहै उनको अविद्या अनेक भ्रम दिखाती है। जैसे मद्यपान और विष पीनेवाला भ्रम को प्राप्त होताहै तैसेही अविद्या से जीव भ्रम को प्राप्त होता है। एक और राजा था उसकी भी वही व्यवस्था हुईथी जो लवण राजा के चित्त में फुर आईथी। जैसे उसकी चेष्टा हुई थी तैसेही इसको भी फुरआई तब उसने जाना कि, मैंने यह क्रिया की है। जैसे अभोक्ता पुरुष आप को स्वप्नमें भोक्ता देखताहै कि, मैं राजा हुआहूं; मैं तृप्त हूं, अथवा भूखा सोयाहूं; और यह क्रिया मैंने करी है; तैसेही लवण को फुर आया था सो प्रतिमाभास है। सभा में बैठे चाण्डाली चेष्टा लवण की फुरआई अथवा विन्ध्याचल पर्वतके चाण्डालों की प्रतिमा लवण की फुरी सो लवण के चित्त का भ्रम उसको दृढ़ होगया। एकही सदृश भ्रम अनेकों को फुर आता है और स्वप्न भी सदृश होताहै जैसे एकही रस्सी में अनेकों को सर्प भासताहै। इसी प्रकार अनेक जीवों को एक भ्रम अनेक हो भासताहै। हे रामजी! जितने पदार्थ भासते हैं उनकी सत्तारूप संवेदन है। जैसे उनमें संकल्प दृढ़ होताहै तैसेही होकर भासताहै। जो पदार्थ सत्यरूप हो भासताहै वह सत्य होताहै और जो असत्यरूप हो भासता है वह असत्य हो जाताहै। सबही पदार्थ संवेदनरूप हैं और तीनों काल भी संवेदन से उपजे हैं। इनका बीज संवेदन है। सब पदार्थ अविद्यारूप हैं और जैसे रेतमें तेल है तैसेही आत्मा में अविद्या है।

आत्मा से अविद्या का सम्बन्ध कदाचित नहीं क्योंकि; सम्बन्ध सम
का होताहै। जैसे काष्ठ और लाख का सम्बन्ध होता है सो आकारसहि
है और जो आकार से रहित हो उसका सम्बन्ध कैसे हो ? जैसे प्रका
और तम का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही चेतनसे चेतन का सम्बन्ध हो
है और विजातीय का सम्बन्ध नहीं। इससे अविद्यारूप देह को आत
से सम्बन्ध नहीं। जो जड़ से आत्मा का सम्बन्ध हो तो आत्मा जड़
पर आत्मा तो सदा चेतनरूप है और सर्वदा अनुभव से प्रकाशता
उसको जड़ कैसे कहिये ? जैसे स्वाद को जिह्वा ग्रहण करती है अ
अङ्ग नहीं करते; तैसेही चेतनसे चेतन की, जड़से जड़ की, जल से ज
की, माटी से माटी की, अग्नि से अग्नि की, प्रकाश से प्रकाश की, त
से तम की, इसी प्रकार सब पदार्थों की सजातीय पदार्थों से एकता हो
है; विजातीय से नहीं होती। इससे सब चैतन्याकाश है और पाषाणादि
दृश्यवर्ग कोई नहीं; भ्रम से इनके आकार भासते हैं। जैसे सुवर्ण बु
को त्यागकर नाना प्रकार के भूषण भासते हैं तैसेही जब अहं वेद
आत्मा में फुरती है तब अनेकरूप होकर विश्व भासता है। जैसे सुव
की ओर देखिये तब सब भूषण स्वर्णरूप भासते हैं तैसेही जब ब्रह्मस
की ओर देखिये तब सब जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है। जैसे मृत्तिका
सेना बालकों को अनेकरूप भासती है और बुद्धिमान् को एक मृत्तिक
रूप है; तैसेही अज्ञानी को यह जगत् नानारूप भासता है, ज्ञानवान्
एक ब्रह्मसत्ता ही भासती है। वह कौन ब्रह्म है जिस में द्रष्टा, दर्शन, दृ
फुरे हैं ? इनके मध्य और इनसे रहित जो सत्ता है। वह ब्रह्मसत्ता है
हे रामचन्द्र ! जो सत्ता चैतन्यरूप और शिला के कोशवत् निर्विकल
तन्मय रूप है उसमें जब स्थित हो और समाधि में रहो अथ
उत्पन्न न हो तब तुमको सब वही रूप भासेगा। हे रामचन्द्र! ज
पुरुष निरममसत्ता में स्थित भयाहै वह शरीरके इष्ट में हर्षवान् नहीं हो
और अनिष्ट में शोकवान् नहीं होता; वह निर्मलरूप होकर स्थित हो
है। जैसे भविष्यत् नगर में जो अनेक चिन्तायुक्त जीव बसते हैं वह

उसके चित्त में स्थित होते हैं। जैसे पुरुष को देशान्तर जाते अनेक पदार्थ मार्ग में इष्ट अनिष्टरूप भासते हैं परन्तु जहां जाना है उसकी ओर वृत्ति रहती है; मार्ग के पदार्थों में उसको रागद्वेष नहीं होता; तैसेही तुम हो-जावो। जैसे पत्थर से जल और जलसे अग्नि नहीं निकलती, तैसेही आत्मामें चित्त नहीं, अविचार भ्रमसे चित्त जानताहै, विचार से नहीं पाता। जैसे भ्रम से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है, तैसेही आत्मा में चित्त भासता है; वास्तव में कुछ नहीं। वह सत्ता नित्य, शुद्ध, परमानन्द स्वरूप अपने आप में स्थित और अनुभवरूप है; उसके विस्मरण करने से दुःख प्राप्त होताहै और अमृतरूपी चन्द्रमा में अग्नि प्राप्त होती है। इससे हे रामचन्द्र! तुम सावधान हो! यह जो फुरना उठताहै इसी का नाम चित्त है और चित्त कोई नहीं। इस चित्त को दूरसे त्याग करो जो तुमहो वही स्थित हो। हे रामचन्द्र! असत्यरूप चित्त ही संसार है, जो उसको असत्य जानके त्याग नहीं करता वह आकाश के वन में विचरता है; उसको धिक्कार है। जिसका मननभाव नष्ट हुआ है वह महापुरुष संसार से पार होकर परमपद निश्चितरूप में प्राप्त हुआ है॥

इति श्रीयो० उत्पत्तिप्र० चिताभावप्रतिपादनन्नाम षराणवतितमस्सर्गः ९६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मनुष्य जिस प्रकार भूमिका को प्राप्त होताहै उसका क्रम सुनो। प्रथम जन्म से पुरुष को कुछ बोध होता है और फिर क्रमसे बड़ा होकर सन्तों की संगति करता है। सदा सदृशरूप जो संसार का प्रवाह है उसके तरने को सत्य शास्त्र और सन्तजनों की संगति विना समर्थ नहीं होता। जब सन्तों का संग और सत्शास्त्रों का विचार करने लगता है तब उसको ग्रहण और त्याग की बुद्धि उपजती है कि, यह कर्त्तव्य है और यह त्यागने योग्य है। इस विचार का नाम शुभेच्छाहै। जब यह इच्छा हुई तब शास्त्रद्वारा यह विचार उपजताहै कि, यह शुभहै और यह अशुभ है; शुभ को ग्रहण करना और अशुभ को त्याग करना और यथाशास्त्र विचारना इसका नाम विचारहै। जब सम्यक् विचार दृढ़ होता है तब मिथ्या रूप संसार की वासना त्यागता

है और सत्य में स्थित होता है—इसका नाम तनुमानसा है। जब संसार
वासना क्षीण होती है और सत्य का दृढ़ अभ्यास होता है तब
वैराग्य और अभ्यास से सम्यक् ज्ञान उपजता और आत्मा का साक्षात्
होता है—उसका नाम सत्त्वापत्ति है। मन से वासना नष्ट होके सि
आदिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, इनकी प्राप्ति में भी संसक्त नहीं होता; स्व
में सदा सावधान रहता है। सिद्धि आदिक पदार्थ प्रारब्ध से प्राप्त हो
उनको स्वरूप जान कर्मों के फल में बन्धवान् नहीं होता—इसका न
असंसक्त है। इसके अनन्तर जब मन की तनुता होगई है और स्वरूप
और चित्त का परिणाम हुआ तब दृढ़ परिणाम से व्यवहार का भी अ
होजाता है जो पल पल में कर्म प्रारब्धवेग से करता है, बल्कि; उस
चित्त में फुरना भी नहीं फुरता और वह मन क्षीणभाव में प्राप्तहो
है। वह कर्त्ता हुआ भी कुछ नहीं करता और देखता है पर न
देखता अर्द्धसुषुप्तिवत् होता है; उसे कर्त्तव्य की भावना नहीं फुरती
मन भी नहीं फुरता—इसका नाम पदार्थाभावनी योगभूमिका है। इ
चित्त लीन होजाता है। इस अवस्था में जब स्वाभाविक चित्त का
काल इस अभ्यास में व्यातीत होता है और भीतर से सब पदार्थों
अभाव दृढ़ होजाता है तब तुरीयारूप होताहै और जीवन्मुक्त कहा
है। तब वह इष्टको पाके हर्षवान् नहीं होता और उसकी निवृत्ति में शो
वान् नहीं होता; केवल विगतसन्देह हो उत्तमपद को प्राप्त होता है।
रामचन्द्र! तुम भी अब ज्ञात ज्ञेय हुये हो। जो कुछ जानने के योग्य
सो तमने ज्यों का त्यों जाना है और सब तुम्हारी पदार्थों की भाव
तनुता को प्राप्त हुई है। अब तुम्हारे साथ शरीर रहे अथवा न रहे तु
हर्ष शोक से रहित निरामय आत्मा हो और स्वच्छ आत्मतत्त्व में स्थि
सर्वगत सदा उद्योतरूप जन्म, मरण, जरा, सुख, दुखसे रहित आत्म अ
बोधरूप शोकसे रहितहो और अद्वैतरूप अपने आप में स्थितहो। देह उद
भी होताहै और लीन भी होजाता है पर देश, काल, वस्तुके भेदसे रहि
जो आत्माहै वह उदय और अस्त कैसे हो? हे रामचन्द्र! तुम अ

नाशी हो; आपको नाशरूप जानकर शोक काहेको करतेहो तुम अमृत स्वच्छरूप हो। जैसे घटके फूटनेसे घटाकाश नाश नहीं होता, तैसेही शरीर के नाश हुये तुम नाश नहीं होते। जैसे सूर्य की किरणोंके जाने से मृगतृष्णाके जल का नाश होजाताहै, किरणों का नाश नहीं होता। हे रामचन्द्र! जो कुछ जगत्के पदार्थ भासते हैं सो असत्यरूप हैं और उनकी वासना भ्रान्तिसे होती है पर तुमतो अद्वैतरूप हो और यह सब तुम्हारी छायामात्र है। तुम किसकी वाञ्छा करतेहो? शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह जो पांचों विषयरूप दृश्यहैं सो तुमसे रञ्चकमात्रभी भिन्न नहीं; सब तुम्हारा स्वरूप है। तुम भ्रम मतकरो। हे रामजी! आत्मा सर्वशक्ति है; वही आभास करके अनेकरूप हो भासता है। जैसे आकाश में शून्यता शक्ति आकाश से भिन्न नहीं, तैसेही आत्मामें सर्वशक्ति है। जो जगत् द्वैतरूप होकर भासता है वही चित्त से दृढ़ हुआ है सो क्रम से तीन प्रकार का त्रैलोक्य जगत् जीव को भ्रम हुआ है—एक सात्त्विक, दूसरा राजस और तीसरा तामस। जब इन तीनों का उपशम हो तब कल्याण होताहै। जब वासना क्षय हो तब उसके वे कर्म भी क्षय होजाते हैं—उससे भी भ्रम नाश होजाता है। चित्त के संसरने का नाम वासना है कर्म संसार मायामात्रहै; उनके नष्ट हुये सब शान्त होजाते हैं। हे रामजी! यह संसार घटीयन्त्र की नाईं है और जीव वासना से बँधेहुये भ्रमते हैं। तुम आत्मविचाररूपी शस्त्र से यत्न करके इसको काटो। जबतक अविद्या को जीव नहीं जानता तबतक यह बड़े मोह और भ्रम दिखाती है और जब इसको जानता है तब बड़े सुख को प्राप्त करती है अर्थात् जबतक अविद्या को वास्तव में नहीं जानता तबतक संसार सत्य भासता है और उसमें अनेक भ्रम भासते हैं और जबइसका स्वरूप जाना कि, कुछ वस्तु नहीं, भ्रमरूपहै तब संसारवृत्ति त्याग करता है और स्वरूप को प्राप्त होता है। यह संसार भ्रम से उपजा है और उसीसे भोग भोगता और लीला करता है और फिर ब्रह्म में लीन होजाता है। हे रामचन्द्र! शिवतत्त्व अनन्तरूप अप्रमेय और निर्दुःखरूप है; सब उसी भूततत्त्वसे उपजते हैं। जैसे जलसे तरङ्ग

और अग्नि से उष्णता होती है तैसेही ब्रह्म से जगत् होता है; उ
स्थित है और वही रूप है। वह सबका आत्मा है और वही अ
ब्रह्म कहाता है। उसके जाननेसे जगत् जानता है पर तीनों लोकों को ज
से उसको नहीं जानता वह जो अव्यक्त और निर्वाणरूपहै; उसके जान
निमित्त शास्त्रकारोंने ब्रह्म, आत्मा आदिक नाम कल्पे हैं; वास्तवमें कोई
संज्ञा नहीं। हे रामचन्द्र! वह पुरुष राग द्वेषसे रहितहै और इन्द्रियों
इन्द्रियों के विषयों के संयोग वियोग में द्वेषको नहीं प्राप्त होता।
तो एक, चैतन, शुद्ध, संवित्, अनुभवरूप, अविनाशी और आकाशसे
स्वच्छ निर्मलहै। उसमें जगत् ऐसे स्थितहै जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब अन
न्यरूप हो कर स्थितहै—उससे द्वैतरूप कुछ नहीं। हेरामचन्द्र! देहसे
निर्विकल्प चैतन तुम्हारा आकार है। लज्जा, मोह आदिक विकार तु
कहां हैं? तुम आदिरूप हो, और लज्जा, हर्ष, भयादिक असत्यरूप
तुम क्यों दुर्बुद्धि मूर्ख की नाईं विकल्प जाल को प्राप्त होते हो? तुम चै
आत्मा अखण्डरूप हो; देह के खण्डित हुये आत्मा का अभाव
होता। असम्यक्दर्शी भी ऐसे मानते हैं तो बोधवानों का क्या क
है। हे रामचन्द्र! जो चित्त संवेदन जानता है उसके अनुभव करनेवा
सत्ता सूर्य के मार्ग से भी नहीं रोकीजाती, उसीको तुम चित्सत्ता ज
वही पुरुष है, शरीर पुरुषरूप नहीं। हे रामचन्द्र! शरीर सत्य हो अ
असत्य पर पुरुष तो शरीर नहीं। देह के रहने और नष्ट होने से आ
ज्यों का त्योंही है। ये जो सुख दुःख ग्रहण करते हैं वे देह इन्द्रिया
चिदात्मा को नहीं ग्रहण करते। जिन पुरुषों को अज्ञान से देह में अ
मान हुआ है उनको सुख दुःख का अभिमान होता है ज्ञानवान् को न
होता। आत्मा को दुःख स्पर्श नहीं करता; वह तो सब विक
से रहित मन के मार्ग से अतीत शून्य की नाईं स्थित है; उसको
दुःख कैसे हो? और देह से मिला हुआ जो भासता है सो स्वरूप
त्यागकर दृश्यके चेतनेसे देहादिक भ्रम भासते हैं और वासनाके अनु
देह से सम्बन्ध होताहै। जैसे भ्रमर और कमलों का संयोग होता

देहपींजर के नाश हुये आत्मा का नाश तो नहीं होता। जैसे कमल के नाश हुये भ्रमर का नाश नहीं होता। इससे तुम क्यों वृथा शोक करते हो? हे रामजी! जगत् को असत्य जानकर अभावना करो। मन निरीक्षित हो साक्षीभूत, सम, स्वच्छ, निर्विकल्प चिदात्मा में जगत् हो भासता है। जैसे मणि प्रकाशरूप हो भासता है तो फिर जगत् और आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो। जैसे अनिच्छित दर्पण में प्रतिबिम्ब आ प्राप्त होता है, तैसेही आत्मा को जगत् का सम्बन्ध भासता है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब द्वैतरूप होता है, तैसेही आत्मा में जगत्भेद भी अभेदरूप है। जैसे सूर्य के उदय होने से सब जीवों की क्रिया होती है और दीपक से पदार्थों का ग्रहण होता है तैसेही आत्मसत्ता से जगत् के पदार्थों का अनुभव होता है। यह जगत् चैतन्य तत्त्व के स्वभाव से उपजा है। प्रथम आत्मा से मन उपजा है और उससे यह जगत्जाल रचाहै—वास्तवमें आत्मसत्ता में आत्मसत्ता स्थितहै। जैसे शून्याकाश शून्यतामें स्थितहै और उसमें जगत् भासताहै सो ऐसे है जैसे आकाश में नीलता और इन्द्रधनुषहै परन्तु वह शून्यस्वरूपहै। हे रामचन्द्र! यह जगत् चित्तमें स्थितहै और चित्त संकल्परूप है। जब संकल्प क्षय होता है तब चित्त नष्ट होजाता है और जब चित्त नष्ट हुआ तब संसाररूपी कुहिरा नष्ट होजाता है और निर्मल शरत्काल के आकाशवत् आत्मसत्ता प्रकाशती है। वह चैतनमात्र सत्ता एक, अज आदि-मध्य-अन्तसे रहितहै; उसीसे जो स्पन्द फुराहै वह संकल्परूप ब्रह्मा होकर स्थित हुआ है और उसने नानाप्रकार का जगत् रचाहै। वह शून्यरूप है मूर्ख बालक को सत्यरूप भासताहै। जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है और जैसे जीवों को अज्ञान से देहाभिमान होता है, तैसेही असत्यरूपही सत्यरूप होकर भासता है। जब सम्यक्ज्ञान होता है तब लीन होजाता है। जैसे समुद्र से तरङ्ग उपजकर समुद्र में लीन होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् उपजकर आत्मा में ही लीन होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे आर्षे महारामायणे सप्तनवतितमस्सर्गः॥ ६७॥

समाप्तमिदं श्रीयोगवाशिष्ठे उत्पत्तिप्रकरणं तृतीयम्॥ ३॥

ॐसच्चिदानन्दाय नमः ।

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

स्थितिप्रकरणं चतुर्थं प्रारभ्यते ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! अब स्थितिप्रकरण सुनिये जिसके सु
से जगत् निर्वाणता को प्राप्त हो । कैसा जगत् है कि, जिसके अ
अहन्ता है । ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है सो भ्रान्तिमात्र है । जैसे आक
में नाना प्रकार के रङ्गों सहित इन्द्रधनुष असत्‌रूप है, तैसेही यह ज
है । जैसे द्रष्टा विना अनुभव होताहै और निद्रा विना स्वप्न और भविष्
नगर भासता है तैसेही भ्रम से चित्त में जगत् स्थित हुआ है । जैसे व
रेत इकट्ठी करके अग्नि की कल्पना करते हैं पर उससे शीतनिवृत्ति
होती; भावनामात्र अग्नि होती है, तैसेही यह जगत् भावनामात्र
जैसे आकाश में रत्न मणि का प्रकाश और गन्धर्वनगर भासता है
जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है; तैसेही यह असत्‌रूप जगत् भ्रम
सत्‌रूप हो भासता है । जैसे दृढ़ अनुभव से संकल्प भासता है पर
असत्‌रूप है और जैसे कथा के अर्थ चित्त में भासते हैं; तैसेही निःस
रूप जगत् चित्त में साररूप हो भासता है । जैसे स्वप्न में पहाड़
नदियां भासआती हैं, तैसेही सब भूत बड़े भी भासते हैं पर आकाश
शून्यरूप हैं । जैसे स्वप्न में अङ्गना से प्रेम करता अर्थ से रहित और अस
रूप है और जैसे मूर्ति के लिखे अग्नि और सूर्य होते हैं परन्तु उनसे
अर्थ सिद्ध नहीं होता है; तैसेही यह जगत् भी प्रत्यक्ष भासता है पर
वास्तव में कुछ नहीं अर्थ से रहित है । जैसे चित्र की लिखी कमलि
सुगन्ध से रहित होतीहै; तैसेही यह जगत् शून्यरूप है । जैसे आक
में इन्द्रधनुष और केले का थम्भ सुन्दर भासता है परन्तु उसमें कुछ स
नहीं निकलता, तैसेही यह जगत् देखने में रमणीय भासता है पर
अत्यन्त असत्‌रूप है; इसमें सार कुछ नहीं निकलता । देखने में प्रत्
अनुभव होता है परन्तु मृगतृष्णा की नदीवत् असत्‌रूप है । रामजी
पूछा, हे भगवन् ! सर्व संशयों के नाशकर्त्ता ! जब महाकल्प क्षय होत

तब दृश्यमान सब जगत् आत्मरूप बीज में लीन होता है। जैसे बीज में अंकुर रहता है, उससे उपजता है, उसीमें स्थित होता है और फिर उसीमें लीन होता है। यह बुद्धि ज्ञान की है अथवा अज्ञान की ? सर्व संशयों से निवृत्ति के अर्थ मुझसे स्पष्ट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार महाकल्पके क्षयहुये बीजरूप आत्मामें जगत् स्थित होता है। जो ऐसे कहते हैं। वह परम अज्ञानी और महामूर्ख बालक हैं जो ब्रह्म को जगत् का कारण बीज से अंकुर की नाईं कहते हैं वह मूर्ख हैं। बीज तो दृश्यरूप इन्द्रिय का विषय होता है। जैसे वटबीज से अंकुर होताहै और फिर विस्तार पाताहै सो इन्द्रियों का विषय है और जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है, अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं, आकाश से भी अधिक निर्मल है; उसको जगत् का बीज कैसे कहिये ? जो आकाश से भी अधिक सूक्ष्म, परम उत्तम, अनुभव से उपलब्ध और नित्य प्राप्त है उसको बीज भाव कहना नहीं बनता। हे रामजी ! जो कि, शान्त, सूक्ष्म, सदा प्रकाश सत्ता है और जिसमें दृश्य जगत् असतरूप है उसको बीजरूप कैसे कहिये ? और जब बीजरूप कहना नहीं बनता तब उसे जगत् कैसे कहिये। आकाश से भी अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपदमें सुमेरु, समुद्र, आकाश आदिक जगत् नहीं बनता। जो किञ्चन और अकिञ्चन है और निराकार, सूक्ष्मसत्ताहै उसमें विद्यमान जगत् कैसे हो वह महासूक्ष्मरूप है और दृश्य उसमें विरुद्धरूप है। जैसे धूप में छाया नहीं, जैसे सूर्यमें अन्धकार नहीं; जैसे अग्नि में बरफ़ नहीं, और जैसे अणुमें सुमेरु नहीं होता; तैसेही आत्मा में जगत् नहीं होता। सत्यरूप आत्मा में असत्यरूप जगत् कैसे हो ? वट का बीजभी साकाररूप होताहै और निराकाररूप आत्मा में साकाररूप जगत् होना अयुक्तहै। हे रामजी ! कारण दो प्रकार का होताहै—एक समवायकारण और दूसरा निमित्तकारण; आत्मा दोनों कारण भावों से रहित है। निमित्तकारण तब होता है जब कार्य से कर्त्ता भिन्न हो पर आत्मा तो अद्वैत है; उसके निकट दूसरी वस्तु नहीं है वह कर्ता कैसे

हो और किसका हो; सहकारी भी नहीं जिससे कार्य करे, वह तो म
और इन्द्रियों से रहित निराकार अविकृतरूप है। और समवायकारण
परिणाम से होताहै। जैसे वट बीज परिणाम से वृक्ष होताहै; पर आत्मा
अच्युतरूप है, परिणाम को कदाचित् नहीं प्राप्त होता तो समवाय का
कैसे हो। जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षीयते, नश्यति; इन
विकारों से रहित निर्विकार आत्मा जगत् का कारण कैसे हो? इस
यह जगत् अकारणरूप भ्रान्ति से भासता है। जैसे आकाश में नील
सीप में रूपा और निद्रादोष से स्वप्न दृष्टि भासते हैं तैसेही यह ज
भ्रान्तिसे भासता है। और जब स्वरूप में जागे तब जगतभ्रम मिटजा
है। इससे कारणकार्य भ्रमको त्याग कर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो
दुर्बोधसे संकल्परचना हुई है उसको त्याग करो और आदि; मध्य औ
अन्त से रहित जो सत्ताहै उसीमें स्थित हो तब जगतभ्रम मिट जावेगा।
इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगतनिराकरणन्नाम प्रथमस्सर्गः॥

वशिष्ठजी बोले, हे देवताओं में श्रेष्ठ, रामजी! बीज से अंकुर
आत्मा से जगत् का होना अङ्गीकार कीजिये तो भी नहीं बनता क्यों
आत्मा सर्व कल्पनाओं से रहित महा चैतन्य और निर्मल आकाश
है; उसको जगत् का बीज कैसे मानिये? बीज के परिणाम में अं
होता है; और कारण समवायों से होता है; आत्मा में समवाय औ
निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते। जैसे बन्ध्या स्त्री की सन्ता
किसी ने नहीं देखा तैसे ही आत्मा से जगत् नहीं होता। जो समवा
और निमित्तकारण विना सहकारी पदार्थ भासे तो जानिये कि यह
नहीं भ्रान्तिमात्र भासता है। आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है। औ
सृष्टि, स्थिति, प्रलय से ब्रह्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है। जो इ
प्रकार स्थित है तो कारण कार्य का क्रम कैसे हो और जो कारण का
भाव न हुआ तो पृथ्वी आदिक भूत कहां से उपजे? और जो कार
कार्य मानिये तो पूर्व जो विकार कहे हैं उनका दूषण आता है। इससे
कोई कारण है और न कार्य है; कारण-कार्य विना जो पदार्थ भा

उसको सत्‌रूप जाने । वह मूर्ख बालक और विवेक से रहित है जो उसे कार्य कारण मानता है—इससे यह जगत् न आगे था; न अब है और न पीछे होगा—स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आप में स्थित है। जब जगत् का अत्यन्त अभाव होता है तब सम्पूर्ण ब्रह्म ही दृष्टि आता है। जैसे समुद्र में तरङ्ग भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भासताहै—अन्यथा कारण कार्यभाव कोई नहीं और न प्रागभाव,प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव ही है। प्रागभाव उसे कहते हैं कि, जो प्रथम न हो; जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता और पीछे उत्पन्न होताहै। और जैसे मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है। प्रध्वंसाभाव वह है जो प्रथम होकर नष्ट हो जाता है;जैसे घट था और नष्ट होगया। अन्योन्याभाव वह है; जैसे घट में पट का अभाव है और पटमें घटका अभाव है। ये तीन प्रकार के भाव जिसके हृदय में हैं उसको जगत् दृढ़ होता है और उसको शान्ति नहीं होती। जब जगत् का अत्यन्ताभाव दीखता है तब चित्त शान्तिमान् होता है। जगत् के अत्यन्ताभाव के सिवाय और कोई उपाय नहीं और अशेष जगत् की निवृत्ति विना मुक्ति नहीं। सूर्य से आदि लेकर जो कुछ प्रकाश पृथ्वी आदिक तत्त्व, क्षण, वर्ष, कल्प आदिक काल और मैं, यह, रूप, अवलोक, मन, संस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्र है और कल्प, कल्पक, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा,विष्णु,रुद्र, इन्द्रसे कीट आदि पर्यन्त जो कुछ जगत्‌जाल है वह उपज उपजकर अन्तर्द्धान हो जाता है। महाचैतन्य परम आकाश में अनन्त वृत्ति उठती है। जैसे जगत् के पूर्व शान्त सत्ता थी तैसे ही तुम अब भी जानो और कुछ नहीं हुआ। परमाणु के सहस्रांश की नाईं सूक्ष्म चित्तकला है, उस चित्त कला में अनन्त कोटि सृष्टियां स्थित हैं; वही चित्तसत्ता फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है और प्रकाशरूप और निराकार शान्तरूप है; न उदयहोता है; न अस्त होताहै; न आता है और न जाताहै। जैसे शिलामें रेखा होती है तैसे आत्मा में जगत् है। जैसे आकाश में आकाशसत्ता फुरती है तैसे ही आत्मा में जगत् फुरता है और आत्मा ही में स्थित है निराकार, निर्विकाररूप विज्ञान घनसत्ता अपने आप में स्थित और उदय और अस्त से

रहित, विस्तृतरूप है। हे रामजी ! जो सहकारी कारण कोई न हुआ
जगत् शून्य हुआ ऐसे जानने से सर्व कलङ्क कलना शान्त होजाती
हे रामजी ! तुम दीर्घ निद्रा में सोये हो, उस निद्राका अभाव करके
भूमिका को प्राप्त हो जाओ। जागे से निःशोक पद प्राप्त होगा ॥
इति श्रीयो०स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपन्यासोनाम द्वितीयस्सर्गः॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! महाप्रलय के अन्त और सृष्टि के आ
में जो प्रजापति होता है वह जगत् को पूर्व की स्मृति से उसी
रचता है तो ये जगत् स्मृति रूप क्यों न होवे ? वशिष्ठ जी बोले कि
रामजी ! महाप्रलय के आदि में प्रजापति स्मरण करके पूर्व की
जगत् रचता है जो ऐसे मानिये तो नहीं बनता क्योंकि; महाप्रलय
प्रजापति कहां रहता है ? जो आपही न रहे उसकी स्मृति कैसे मानि
जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होता तैसे ही महाप्रलय में प्रजापति
होता। फिर रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मण्य ! जगत् के आदि में जो ब्रह्मा
उसने जगत् रचा; महाप्रलय में उसकी स्मृति का नाश तो नहीं हो
वह तो फिर स्मृति से जगत् रचता है आप कैसे कहते हैं कि,
बनता ? वशिष्ठजी बोले, हे शुभव्रत, रामजी ! महाप्रलय के पूर्व
ब्रह्मादिक होते हैं वह महाप्रलय में सब निर्वाण हो जाते हैं अर्थ
विदेहमुक्त होते हैं। जो स्मृति करनेवाले अन्तर्द्धान होगये तो स्मृ
कहां रही और जो स्मृति निर्मूल हुई तो उसको जगत् का कारण कै
कहिये ? महाप्रलय उसका नाम है जहां सर्व शब्द अर्थ सहित निमू
हो जाते हैं; जहां सर्व अन्तर्द्धान होगये तहां स्मृति किसकी क
और जो स्मृति का अभाव हुआ तो कारण किसका किसकी न
कहिये ? इससे सर्व जगत् चित्त के फुरने मात्र हैं। जब महाप्रलय हो
है तब सब यत्न विनाही मोक्षभागी होते हैं और जो आत्मज्ञान हो
जगत् के होते भी मोक्षभागी होते हैं पर जो आत्मज्ञान नहीं होता
जगत् दृढ़ होता है; निवृत्त नहीं होता। जब दृश्य जगत् का अभाव होता
तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता जो आदि अन्त से रहित है प्रकाशती है और

जगत् भी वही रूप भासता है सर्व में अनादि सिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्रकाशित है, उसमें जो आदि संवेदन फुरता है वह ब्रह्मरूप है और अन्तवाहक देह विराट् जगत् हो भासता है। उसका एक प्रमाणरूप यह तीनों जगत् हैं, उसमें देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआ है। उसके अणु में जो जगत् फुरते हैं सो क्या है? सब संकल्परूप है और ब्रह्मसत्ता का प्रकाश है। जो प्रबुध आत्मज्ञानी है उसको सब जगत् एक ब्रह्मरूपही भासता है और जो अज्ञानी है उसके चित्त में अनेकप्रकार जगत् की भावना होती है। द्वैत भावना से यह भ्रमता है। जैसे इस ब्रह्माण्ड के अनेक जीव परमाणु हैं; उनके भीतर अनन्त सृष्टियां हैं और उनके अन्तर और अनन्त सृष्टि हैं तैसेही और जो अनन्त सृष्टि हैं उनके अन्तर और अनन्त सृष्टियां फुरती हैं सो सब ब्रह्मतत्त्व का ही प्रकाश है। ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, उसके भीतर अनेक जगत्रूपी परमाणु हैं सो सब अभिन्नरूप हैं। हे रामजी! सूर्यकी किरणों के समूह में जो सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं उनकी संख्या कदाचित् कोई करभीसके परन्तु आदि अन्तसे रहित जो आत्मरूपी सूर्य है उसकी त्रिलोकीरूपी परमाणुओंकी संख्या कोई नहीं करसक्ता। जैसे समुद्रमें जल और पृथ्वी में धूरके असंख्य परमाणु हैं; तैसेही आत्मा में असंख्य परमाणु सृष्टि हैं। जैसे आकाश शून्यरूप है तैसेही आत्मा चिदाकाश जगत्रूप है; यह जो मैंने उसकी सृष्टि कही है जो इनको तुम जगत् शब्द से जानोगे तो अज्ञानबुद्धि है और दुःख और भ्रम देखोगे और जो इनको ब्रह्मशब्दका अर्थ जानोगे तो इस बुद्धि से परमसार को प्राप्तहोगे। सर्व विश्व ब्रह्मसे फुरता है और विज्ञानघन ब्रह्मरूपही है; द्वैत नहीं। जब जागोगे तब तुमको ऐसेही भासेगा॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगदनन्त वर्णनन्नाम तृतीयस्सर्गः॥३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियों का जीतना मोक्ष का कारण है और किसी क्रम तथा उपाय से संसारसमुद्र नहीं तराजाता। सन्तों के संग और सत्शास्त्रों के विचार से जब आत्मतत्त्व का बोध होता है तब इन्द्रियां जीतीजाती हैं और जगत्का अत्यन्त अभाव होता है। जबतक

संसार का अत्यन्त अभाव नहीं होता तबतक आत्मबोध नहीं होता
मैंने तुमसे क्रम कहा है सो संसारसमुद्र तरने का उपाय है। बहुत कह
क्या है, सबकर्मों का बीज मन है; मनके छेदसेही सब जगत् का
होता है। जब मनरूपी बीज नष्ट होता है तब जगत्रूपी अंकुर भी
होजाता है। सर्व जगत् मन का रूप है, इसके अभाव का उपाय
मलीन मन से अनेक जन्म के समूह उत्पन्न होते हैं और इसके जीत
सब लोकों में जय होती है। सब जगत् मन से हुआहै, मनके रहित
देहभी नहीं भासती; जब मनसे दृश्य का अभाव होताहै तब मनभी
होजाता है, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं। हे रामजी! मनरूपी
का नाश और किसी उपाय से नहीं होता। अनेक कल्प बीतगये हैं
बीतजायँगे तब भी मनका नाश न होगा। इससे जबतक जगत् दृश्य
है तबतक इसका उपाय करे। जगत् का अत्यन्त अभाव चिन्तना
स्वरूप आत्मा का अभ्यास करना यही परम औषध है। इस उपा
मनरूपी द्रष्टा नष्ट होताहै जबतक मन नष्ट नहीं होता तबतक मनके
सेजन्म मरण होताहै और जब ईश्वर परमात्माकी प्रसन्नता होती है तब
बन्धन से मुक्त होता है। सम्पूर्ण जगत्, मनके फुरने से भासता है;
आकाश में शून्यता और गन्धर्वनगर भासते हैं, तैसेही संपूर्ण जगत्
में भासता है। जैसे पुष्प में सुगन्ध; तिलों में तेल; गुणी में गुण और
में धर्म रहतेहैं तैसेही यह सत्-असत्; स्थूल, सूक्ष्म; कारण, कार्यरूप ज
मन में रहताहै जैसे समुद्रमें तरङ्ग; आकाश में दूसरा चन्द्रमा और मरुस्
में मृगतृष्णा का जल फुरताहै तैसेही चित्त में जगत् फुरताहै। जैसे सूर्
किरणें; तेज में प्रकाश और अग्नि में उष्णता है; तैसेही मन में जगत्
जैसेबरफ़ में शीतलता; आकाश में शून्यता और पवनमें स्पन्दताहै तैसे
मनमें जगत् है। संपूर्ण जगत् मनरूप है, मन जगत्रूप है और परस्
एकरूप हैं; दोनों में से एक नष्ट हो तब दोनों नष्ट होजाते हैं। जब ज
नष्ट हो तब मनभी नष्ट होजाता है। जैसे वृक्षके नष्ट हुये पत्र, टास, फू
फल नष्ट होजाते हैं और इनके नष्ट हुये वृक्ष नष्ट नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनन्नाम चतुर्थस्सर्गः॥४

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप सर्वधर्मों के वेत्ता और पूर्व अपर के ज्ञाता हैं; मन के फुरने से जगत् कैसे फुरता है और कैसे हुआ है? दृष्टान्त सहित मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की दश सृष्टि हुईं और दश ही ब्रह्मा हुये सो मन के फुरनेसेही उपजकर मनके फुरने में स्थित हुये और जैसे लवण राजा को इन्द्रजाल की माया से चाण्डालकी प्रतिमा दृढ़ होकर भासी, तैसेही यह जगत् मनमें स्थित हुआ है। जैसे शुक्र मनके फुरने से चिरकाल स्वर्ग को भोगते रहे और अनेक भ्रम देखे, तैसेही यह जगत् मनके भ्रम से स्थित हुआहै। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! भृगु ऋषीश्वर के पुत्र ने मनके भ्रमसे कैसे स्वर्गसुख भोगे; वह कैसे भोग का अधिपति हुआ है और कैसे संसारी होकर भ्रम देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भृगुके पुत्र का वृत्तान्त सुनो। भृगु और काल का संवाद मन्दराचल पर्वत में हुआ है। एक समय भृगु मन्दराचल पर्वत में जहां कल्पवृक्ष और मन्दार वृक्ष आदिक वृक्ष, बहुत सुन्दर स्थान और दिव्यमूर्ति हैं तप करते थे और शुक्रजी उनकी टहल करते थे जब भृगुजी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुये तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकान्त जा बैठे। वे कण्ठमें मन्दार और कल्पवृक्षों के फूलों की माला पहरेहुये विद्या और अविद्या के मध्य में स्थित थे। जैसे त्रिशंकु राजा चाण्डाल था पर विश्वामित्र के वर को पाके जब स्वर्ग में गया, तब देवताओं ने अनादरकर उसे स्वर्ग से गिरादिया और विश्वामित्र ने देखके कहा कि; वहांहीं खड़ारह इससे वह भूमि और आकाश के मध्य में स्थितरहा; तैसेही शुक्र बैठे तो क्या देखा कि, एक महासुन्दर अप्सरा उसके ऊर्ध्व स्वर्गकी ओर चलीजातीहै। जैसे लक्ष्मी की ओर विष्णुजी देखें तैसेही अप्सराको शुक्र ने देखा कि, महासुन्दर और अनेकप्रकारके भूषण और वस्त्र पहिने हुये महासुगन्धित है और महासुन्दर आकाशमार्ग भी उससे सुगन्धित हुआ है। पवन भी उसको स्पर्श करके सुगन्ध पसारती है और महामद से उसके घूर्ण नेत्र हैं। ऐसी अप्सरा को देखके शुक्रका मन क्षोभायमान हुआ और जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को

देखके क्षीरसमुद्र क्षोभित होता है तैसेही उसकी वृत्ति मार्ग से रहित होक
अप्सरा में जा स्थित हुई और कामदेव का बाण आलगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्गमनं नाम पञ्चमस्सर्गः॥ ५

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसने अप्सरा को देखके ने
मूंदे और मनोराज को फैलाकर चिन्तनेलगा कि, यह मृगनयनी लल
जो स्वर्ग को गई है मैं भी उसके निकट पहुँचूं! ऐसे विचार के वह उस
पीछे चला और जाते जाते मन से स्वर्ग में पहुँचा। वहां सुगन्ध सहि
मन्दार और कल्पतरु; द्रव स्वर्ण की नाईं देवताओं के शरीर और ह
विलास संयुक्त स्त्रियां जिनके हरिण की नाईं नेत्र हैं देखे। मणियों
समूह कि, परस्पर उनमें प्रतिबिम्ब पड़ते हैं और विश्वरूप की उप
स्वर्गलोक में देखी। मन्द २ पवन चलती है, मन्दार वृक्षों में मञ्जरी प्र
फुल्लित हैं और अप्सरागण विचरती हैं। इन्द्रभाग में आगे गया तो दे
कि, ऐरावत हस्ती जिसने युद्ध में दांतों से दैत्य चूर्ण किये हैं बड़ेमद
खड़ा है, देवताओं के आगे अप्सरा गान करती हैं; सुवर्ण के कमल ल
हुयेहैं। ब्रह्मा के हंस और सारस पक्षी विचरते हैं और देवताओं के नाय
विश्राम करते हैं। फिर लोकपाल, यम, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, वायु औ
अग्नि के स्थान देखे जिनका महाज्वालावत् प्रकाश है। ऐरावत
दांतों में दैत्यों की पंक्ति देखी, देवता देखे जो विमाननपर आरूढ़ भू
पहिनेहुये फिरते हैं और उनके हार मणियों से जड़ेहुये हैं। कहीं सु
विमानों की पंक्ति विचरती हैं; कहीं मन्दारवृक्ष हैं, कहीं कल्पवृक्ष हैं, उ
सुन्दर लता हैं; कहीं गङ्गाका प्रवाह चलता है, उसपर अप्सरागण बै
हैं; कहीं सुगन्धता सहित पवन चलता है; कहीं झरने में से ज
चलता है; कहीं सुन्दर नन्दन वन है; कहीं अप्सरा बैठी हैं कहीं ना
आदिक बैठे हैं और कहीं जिनलोगों ने पुण्य किये हैं वे बैठे सुख भोग
हैं और विमानों पर आरूढ़ हुये फिरतेहैं। कहीं इन्द्र की अप्सरा कामदे
मस्त हैं और जैसे कल्पवृक्ष में पके फल लगते हैं तैसेही रत्न और चिन्
मणि लगे हैं; और कहीं चन्द्रकान्तिमणि स्रवती है। इसप्रकार शुक्रने

से स्वर्ग की रचना देखी, मानों त्रिलोक की रचना यहांहीं है। शुक्र को देखके इन्द्र उठखड़ा हुआ कि, दूसरा भृगु आया है और बड़ेप्रकाश संयुक्त शुक्रकी मूर्ति को प्रणाम किया और हाथ पकड़के अपने पास बैठाके बोला, हे शुक्रजी! आज हमारे धन्यभाग्य हैं जो तुम आये। आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आनेसे सफल, शोभित और निर्मल हुआहै। अब तुम चिरपर्यन्त यहांहीं रहो। जब ऐसे इन्द्र ने कहा तब शुक्रजी शोभित हुये और उसको देखके सुरोंके समूह ने प्रणामकिया कि, भृगुके पुत्र शुक्रजी आये हैं॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणे भार्गवमनोराजवर्णनन्नाम षष्ठस्सर्गः॥६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार शुक्रजी इन्द्र के पास जा बैठे तब अपना जो निजभाव था उसको भुलादिया। वह जो मन्दराचल पर्वतपर अपना शरीर था सो भूलगया और वासना से मनोराज का शरीर दृढ़ होगया। एक मुहूर्त पर्यन्त इन्द्र के पास बैठे रहे परन्तु चित्त उस अप्सरा में रहा। इसके अनन्तर उठ खड़े हुये और स्वर्गको देखने लगे तब देवताओं ने कहा कि, चलो स्वर्गकी रचना देखो। तब शुक्रजी देखते २ जहां वह अप्सरा थी वहां गये। बहुत सी अप्सराओं में वह भी बैठी थी, उसको शुक्रजी ने इस भांति देखा जैसे चन्द्रमा चांदनी को देखे। उसे देख के शुक्र का शरीर द्रवीभूत होकर प्रस्वेद से पूर्ण हुआ, जैसे चन्द्रमा को देखके चन्द्रकान्तिमणि द्रवीभूत होती है; और कामदेव के वाण उसके हृदय में आ लगे उससे व्याकुल होगया। शुक्र को देखके उसका चित्त भी मोहित होगया—जैसे वर्षाकाल की नदी जल से पूर्ण होती है तैसेही परस्पर स्नेह बढ़ा। तब शुक्रजी ने मन से तम रचा उससे सब स्थानों में तम होगया जैसे लोकालोक पर्वत के तटमें तम होता है तैसेही सूर्यका अभाव होगया। तब भूतजात सब अपने अपने स्थानोंमें गये जैसे दिन के अभावहुये पशु पक्षी अपने २ गृह को जाते हैं और वह अप्सरा शुक्र के निकट आई। शुक्रजी श्वेत आसनपर बैठगये और अप्सरा भी जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिने हुये थी चरणों के निकट बैठी और स्नेहसे दोनों कामवश हुये; तब अप्सरा ने मधुरवाणी से कहा

हे नाथ ! मैं निर्बल होकर तुम्हारी शरण आई हूं मुझको कामदेव दह
करता है, तुम रक्षा करो; मैं इससे पूर्ण होगई हूं। स्नेहरूपी रस को व
जानताहै जिसको प्राप्त हुआहै, जिसको रसका स्वाद नहीं आया वह क
जाने। हे साधो! ऐसा सुख त्रिलोकीमें और कोई नहीं जैसा सुख परस्परस्ने
से होता है। अब तुम्हारे चरणों को पाके मैं आनन्दवान् हुई हूं और जै
चन्द्रमा को पाके कमलिनी और चन्द्रमा की किरणों को पाके चक
आनन्दवान् होतेहैं तैसेही मुझको स्पर्श करके आप आनन्द होंगे। ज
इस प्रकार अप्सराने कहा तब दोनों काम के वश होकर क्रीड़ा करनेलगे

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंगमोनामसप्तमस्सर्गः॥७

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार उसको पाके शुक्र ने आप
आनन्दवान् मान, मन्दार और कल्पवृक्ष के नीचे क्रीड़ा की और दिव्यव
भूषण और फूलों की माला पहिनकर वन, बगीचे और किनारों में क्री
करते और चन्द्रमा की किरणों के मार्ग से अमृत पान करते रहे। फि
विद्याधरों के गणों के साथ रह उनके स्थानों और नन्दनवन इत्यादिक
क्रीड़ा करते कैलासपर्वत पर गये और अप्सरा सहित वन कुञ्ज में फि
रहे। फिर लोकालोक पर्वतपर क्रीड़ा की, फिर मन्दराचलपर्वत के कु
में विचर अर्धशतयुगपर्यन्त श्वेतद्वीप में रहे; फिर गन्धर्वों के नगरों में
और फिर इन्द्र के वनमें रहे। इसीप्रकार बत्तीस युग पर्यन्त स्वर्ग में रहे; ज
पुण्य क्षीण हुआ तब भूमिलोक में गिरादियेगये और गिरते २ उनका शरी
टूटगया। जैसे झरनेमें से जल बन्द हो तैसेही शरीर अन्तर्धान होगया
तब उनकी चिन्तासंयुक्त पुर्यष्टक आकाश में निराधार होरही और वासन
रूप दोनों चन्द्रमा की किरणों में जा स्थित हुये। फिर शुक्रने तो किरण
के द्वारा धान्य में आ निवास किया और उस धान्य को दशारण्य ना
ब्राह्मण ने भोजन किया तो वीर्य होकर ब्राह्मणी के गर्भ में जा रहा औ
उस धान्य को मालवदेश के राजा ने भी भोजन किया उसके वीर्यद्वा
वह अप्सरा उसकी स्त्री के उदर में जा स्थित हुई निदान दशारण्य ब्राह्म
के गृह में शुक्र पुत्र हुआ और मालवदेश के राजा के यहां अप्स

पुत्री हुई। क्रम से जब षोड़शवर्ष की हुई तो महादेव की पूजाकर यह प्रार्थना की कि, हे देव! मुझको पूर्व के भर्ता की प्राप्ति हो इस प्रकार वह नित्य पूजन करे और वर मांगे; निदान वहां वह यौवनवान् हुआ यहां यह यौवनवती हुई तब राजा ने यज्ञ का आरम्भ किया और उसमें सब राजा और ब्राह्मण आये। दशारण्य ब्राह्मण भी पुत्रसहित वहां आया तब उस पूर्वजन्म के भर्ता को देखकर स्नेह से राजपुत्री के नेत्रों से जल चलने लगा और उसके कण्ठमें फूलकी माला डालके उसे अपना भर्ता किया। राजा यह देखके आश्चर्यमान हुआ और निश्चय किया कि, भला हुआ। फिर क्रमसे विवाह किया और पुत्री और जामातृ को राज्य देके आप वनमें तप करने के लिये चलागया। यहां ये पुरुष और स्त्री मालवदेश का राज्य करनेलगे और चिरकालतक राज्य करते रहे। निदान दोनों वृद्ध हुये और उनका शरीर जर्जरीभूत होगया तब उसको वैराग्य हुआ कि, स्त्री महादुःख स्वरूप है पर उसे सामान्य वैराग्य हुआ था इससे जर्जरीभूत अङ्गमें सेवनेसे तो अशक्त हुआ परन्तु तृष्णा निवृत्त न हुई। निदान मृतक हुआ और बान्धवों ने जलादिया तब ज्ञान की प्राप्ति विना महाअन्धकूप मोह में जा पड़े। हे रामजी! मृत्यु मूर्च्छा के अन्तर उसको परलोक भासिआया और वहां कर्म के अनुसार सुख दुःख भोगके अङ्ग वङ्ग देश में धीवर हुआ और अपने धीवरकर्म करता रहा। फिर जब वृद्ध अवस्था आई तब शरीर में वैराग्य हुआ कि, यह संसार महादुःख रूप है। ऐसे जानके सूर्य भगवान् का तप करनेलगा और जब मृतक हुआ तब तप के वश से सूर्यवंश में राजा होकर भावना के वश से कुछ ज्ञानवान् हुआ। इस जन्म में वह योगकरने और वेद पढ़नेलगा और योग की भावना से जब शरीर छूटा तब बड़ा गुरु हुआ और सबको उपदेश करनेलगा, मन्त्र सिद्धकिया और वेदमें बहुत परिपक्व हुआ। मन्त्रके वश से वहविद्याधर हुआ और एककल्पपर्यन्त विद्याधर रहा जब कल्प का अन्त हुआ तबशरीर अन्तर्धान होगया और पवनरूपी शरीर वासना सहित होरहा। जब ब्रह्मा की रात्रि क्षय हुई; दिन हुआ और ब्रह्मा ने सृष्टि रची

तब वह एक मुनीश्वरके गृहमें पुत्र हुआ और वहां उसने बड़ा तपकिया
वह सुमेरु पर्वतपर जाकर स्थित हुआ और एक मन्वन्तर पर्यन्त वह
रहा। जब इकहत्तर चौयुगी बीतीं तब वह भोगों के वश हरिणी का पु
हुआ और मनुष्य के आकार से वहां रहा और पुत्र के स्नेह से मोह क
प्राप्तहो निरन्तर यही चिन्तना करनेलगा कि, मेरे पुत्रको बहुत धन, गुण
आयुर्दा, बल हो। इसकारण तपके भ्रष्ट होनेसे अपने धर्म से विर
हुआ; आयुष्य क्षीणहुई और मृत्युरूप सर्प ने ग्रासलिया और तपकी अभि
लाषा से शरीर छूटा इसकारण भोग की चिन्तासंयुक्त मद्रदेश के राजा
गृह में उत्पन्न हुआ; फिर उस देश का राजा हुआ और चिरपर्यन्त राज
भोग के वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ और शरीर जर्जरीभूत होगया। व
तप की अभिलाषा में उसका शरीर छूटा उससे तपेश्वर के गृह में पु
हुआ और सन्ताप से रहित होकर गङ्गाजी के किनारे पर तप करनेलगा
हे रामजी! इसप्रकार मन के फुरने से शुक्रने अनेक शरीर भोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने विविधजन्म
वर्णनन्नाम अष्टमस्सर्गः॥ ८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार शुक्र मन से भ्रमता फिरा
भृगु के पास जो उसका शरीर पड़ाथा सो निर्जीव हुआ; पुर्यष्टक निक
गई थी और पवन और धूप से शरीर जर्जरीभूत होगया जैसे मूल
काटा वृक्ष गिरपड़ता है, तैसे शरीर गिरपड़ा। चञ्चल मन भोग की तृष्ण
से वहां गयाथा। जैसे हरिण वन में भ्रमता है और चक्रपर चढ़ा बास
भ्रमता है; तैसेही उसने भ्रम से भ्रमान्तर देखा पर जब मुनीश्वर के गृ
में जन्मलिया तब चित्त में विश्राम हुआ और गङ्गा के तटपर तप कर
लगा। निदान मन्दराचल पर्वतवाला शरीर निरस होगया; अस्थि च
मात्र शेष रहगया और लोहू सूखगया। जब शरीर के रन्ध्रमार्ग से पव
चले तब बांसुरीवत् शब्द हो; मानो चेष्टा को त्यागके शरीर आनन्दवा
हुआ है। जब बड़ा पवनचले तब भूमि में लोटने लगे; नेत्र आदिक ज
रन्ध्रथे सो गर्तवत् होगये और मुख फैलगया—मानो अपने पूर्वस्वभावक

देखके हँसताहै। जब वर्षाकाल आवे तब वह शरीर जल से पूर्ण होजावे और जल उसमें प्रवेशकरके रन्ध्रोंके मार्ग से निकले—जैसे झरनेसे निकलता है और जब उष्णकाल आवे तब महाकाष्ठ की नाईं धूपसे सूख जावे निदान वह शरीर वन में मौनरूप होकर स्थित रहा। और पशु पक्षियों ने भी उस शरीर को नाश न किया। उसका एकतो यह कारण था कि, राग द्वेष से रहित पुण्य आश्रम था—और दूसरे भृगुजी महातपस्वी तेजवान् के निकट कोई आ न सका था। इसकारण उस देह को कोई नष्ट न करसका। यहां तो शरीर की यह दशा हुई और वहां शुक्र पवन के शरीर से चेष्टा करतारहा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरवर्णनंनाम नवमस्सर्गः॥९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सहस्र वर्ष अर्थात् भूमिलोक के तीनलाख और साठ सहस्र वर्ष बीते तब भगवान् भृगुजी समाधि से उतरे तो उन्हें शुक्र का शरीर दृष्टि न आया। जब भलेप्रकार नेत्र फैलाकर देखा तब मालूम हुआ कि, उसका शरीर कृश होके गिरपड़ा है। यह दशा देख उन्होंने जाना कि, काल ने इसको भक्षण किया है और धूप, वायु और मेघ से शरीर जर्जरीभूत होगयाहै, नेत्र गढ़ेरूप होगये हैं; शरीर में कीड़े पड़गयेहैं और जीवों ने उसमें आलय बनाये हैं। घुराण अर्थात् कुसवारी और मक्खियां उसमें आती जाती हैं; श्वेत दांत निकल आये हैं—मानों शरीर की दशा को देखके हँसते हैं और मुख और ग्रीवा महाभयानकरूप, खपर श्वेत और नासिका और श्रवणस्थान सब जर्जरीभूत होगये हैं। उस शरीर की यह दशा देखके भृगुजी उठ खड़े हुये और क्रोधवान् होकर कहनेलगे कि, काल ने क्या समझा जो मेरे पुत्र को मारा। शुक्र परमतपस्वी और सृष्टिपर्यन्त रहनेवाला था सो विना काल काल ने मेरे पुत्र को क्यों मारा, यह कौन रीति है? मैं काल को शाप देकर भस्म करूँगा। तब कालकारूप काल अद्भुत शरीर धरकर आया। उसके षट्मुख, षट्भुजा; हाथ में खड्ग, त्रिशूल और फांसी और कानों में मोती पहिने हुये; मुखसे ज्वाला निकलती थीं; महाश्याम शरीर, अग्निवत् जिह्वा और त्रिशूल के अग्र से अग्नि की लाटें निकलती थीं।

जैसे प्रलयकाल की अग्नि से धूम निकलता है तैसेही उसका श्या
शरीर और बड़े पहाड़ की नाईं उग्ररूप था और जहां वह चरण रख
था वहां पृथ्वी और पहाड़ कांपने लगते थे। निदान भृगुजी महाप्रल
के समुद्रवत् क्रोध से पूर्ण थे उनसे कहने लगा; हे मुनीश्वर! जो मर्या
और परावर परमात्मा के वेत्ता हैं वे क्रोध नहीं करते और जो कोई क्रो
करे तौभी वे मोह के वश होकर क्रोधवान् नहीं होते। तुम कारण वि
क्यों मोहित हो क्रोध को प्राप्त हुये हो? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हो औ
हम नीति के पालक हैं। तुम हमारे पूजने योग्य हो—यही नीति
इच्छा है और तप के बलसे तुम क्षोभ मतकरो, तुम्हारे शाप से मैं भ
भी नहीं होता। प्रलयकाल की अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं करस
तो तुम्हारे शाप से मैं कब भस्म होसक्नाहूं। हे मुनीश्वर! मैं तो अने
ब्रह्माण्ड भक्षण करगयाहूं; और कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र मै
ग्रास लिये हैं; तुम्हारा शाप मुझको क्या करसक्ना है? जैसे आदि नी
ईश्वर ने रची है तैसेही स्थित है। हम सबके भोक्ना हुये हैं और तु
ऋषि हमारे भोगहुये हैं, यही आदि नीति है। हे मुनीश्वर! अ
स्वभाव से ऊर्ध्व को जाता है और जल स्वभाव से अधको जाता
भोक्ना को भोग प्राप्त होताहै और सब सृष्टि काल के मुख में प्राप्त होती
आदि परमात्मा की नीति ऐसेही हुई है और जैसे रची है तैसेही स्थित
पर जो निष्कलङ्क ज्ञानदृष्टि से देखिये तो न कोई कर्ता है, न भोक्ना
न कारणहै, न कार्य है एक अद्वैतसत्ताही है और जो अज्ञान कलङ्क
से देखिये तो कर्ता भोक्ना अनेकप्रकार के भ्रम भासते हैं। हे ब्राह्मण! क
भोक्ना आदिक भ्रम असम्यक् ज्ञान से होता है; जब सम्यक् ज्ञान होता
तब कर्ता, कार्य और भोक्ना कोई नहीं रहता। जैसे वृक्ष में पुष्प स्वभ
से उपज आते हैं और स्वभाव से ही नष्ट होजाते हैं; तैसेही भूत प्रा
सृष्टि में स्वाभाविक फुर आते हैं और फिर स्वाभाविक रीति से ही न
होजाते हैं। ब्रह्मा उत्पन्न करताहै और फिर नष्ट भी करता है। जैसे चन्द्र
का प्रतिबिम्ब जलके हिलने से हिलता भासता है और ठहरने से ठह

भासताहै तैसेही मन के फुरने से आत्मा में कर्तव्य भोक्तव्य भासता है वास्तव में कुछ नहीं; सब मिथ्या है जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासताहै तैसेही आत्मामें कर्तव्य भोक्तव्य भ्रमसे भासताहै। इससे क्रोध मत करो; यह दुष्कर्म आपदा का कारण है। हे मुनीश्वर! मैं तुमको यह वचन अपनी विभूति और अभिमान से नहीं कहता। यह स्वतः ईश्वर की नीति है और हम उसमें स्थित हैं। जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने प्रकृति आचार में विचरते हैं और अभिमान नहीं करते। जो कर्तव्य के वेत्ता हैं वे बाहर से प्रकृत आचार करते हैं और हृदय से सुषुप्ति की नाईं स्थित रहते हैं। वह ज्ञान दृष्टि, धैर्य और उदार दृष्टि कहांगई जो शास्त्र में प्रसिद्ध है? तुम क्यों अन्धे की नाईं मोहमार्ग में मोहित होतेहो? हे साधो! तुमतो त्रिकालदर्शी हो, अविचार से मूर्ख की नाईं जगत् यन्त्र में क्यों मोहको प्राप्त होतेहो? तुम्हारा पुत्र अपने कर्मोंके फल को प्राप्त हुआहै और तुम मूर्ख की नाईं मुझको शापदिया चाहतेहो। हे मुनीश्वर! इस लोक में सब जीवों के दो२ शरीर हैं—एक मनरूप और दूसरा अधिभूतरूप। अधिभूतरूप जड़ और अत्यन्त विनाशी है और जहां इसको मन प्रेरता है वहां चलाजाता है—आपसे कुछ कर नहीं सक्ता। जैसे सारथी भला होता है तो रथ को भले स्थान को लेजाताहै और जो सारथी भला नहीं होता तो रथको दुःखके स्थानमें लेजाताहै; तैसेही यदिजो मन भला होता है तो उत्तम लोक में जाताहै और जो दुष्ट होताहै तो नीच स्थान में जाताहै। जिसको मन असत् करताहै सो असत् भासताहै और जिसको मन सत् करता है वह सत् भासता है। जैसे मिट्टी की सेना बालकबनाते और फिर भङ्ग करते हैं; कभी सत् करते, कभी असत् करते हैं और जैसे करते हैं तैसेही देखते हैं; तैसेही मन की कल्पना है। हे साधो! चित्तरूपी पुरुषहै; जो चित्त करता है वह होता है और जो चित्त नहीं करता वह नहीं होता। यह जो फुरना है कि, यह देह है, ये नेत्रहैं, ये अङ्गहैं इत्यादिक सब मनरूप हैं। जीवभी मन का नाम है और मन का होना जीव है। वही मन की वृत्ति जब निश्चयरूप होती है तब उस

का नाम बुद्धि होता है; जब अहंरूप धारती है तब उसका नाम अहं
होता है और जब देह को स्मरण करती है तब उसका नाम चित्त ह
है। इसमे पृथ्वीरूपी शरीर कोई नहीं; मनही दृढ़ भावना से शरीर
होता है और वही आधिभौतिक हो भासता है और जब शरीर
भावना को त्यागता है तब चित्त परमपद को प्राप्त होता है। जो
जगत् है वह मन के फुरने में स्थित है; जैसा मनफुरता है तैसाही
हो भासता है। तुम्हारे पुत्र शुकने भी मन के फुरने से अनेक स्थान
हैं। जब तुम समाधि में स्थित थे तब वह विश्वाची अप्सरा के पीछे
से चला गया और स्वर्ग में जा पहुँचा। फिर देवता होकर मन्दारवृक्ष
अप्सरा के साथ विचरने लगा और फिर पारिजात तमाल आदि
और नन्दन वन में विचरता रहा। इसी प्रकार बत्तीस युग पर्यन्त
श्वाची अप्सरा के साथ लोकपालों के स्थान इत्यादि में विचरता रहा
जैसे भँवरा कमल को सेवता है तैसेही तीव्र संवेग से भोग भोगता र
जब पुण्य क्षीण हुआ तब वहांसे इस भाँति गिरा जैसे पकाफल वृक्ष
गिरता है। तब देवताका शरीर आकाशमार्ग में अन्तर्धान होगया
भूमिलोक में आपड़ा। फिर धान में आकर ब्राह्मण के वीर्यद्वारा ब्राह्म
का पुत्र हुआ; फिर मालवदेश का राज्यकिया और फिर धीवर का ज
पाया। फिर सूर्यवंशी राजा हुआ, फिर विद्याधर हुआ और कल्पप
विद्याधरों में विद्यमान रहा और फिर विन्ध्याचल पर्वतमें गैब होकर
देश में धीवर हुआ। फिर तरङ्गीत देश में राजा हुआ, फिर क्रान्तदेश
हरिण हुआ और वन में विचरा और फिर विद्यावान् गुरु हुआ। नि
श्रीमान् विद्याधर हुआ और कुण्डलादिक भूषणों से संपन्न बड़ा ऐश्व
वान् गन्धर्वों का मुनिनायक हुआ और कल्पपर्यन्त वहां रहा। जबप्रल
होनेलगा तब पूर्व के सबलोक भस्म होगये-जैसे अग्नि में पतङ्ग भ
होते हैं-तब तुम्हारा पुत्र निराधार और निराकार वासना से आकाशम
में भ्रमतारहा। जैसे आलय बिना पक्षी रहता है तैसेही वह रहा और
ब्रह्मा की राति व्यतीत हुई और सृष्टि की रचना बनी तब वह सत

में ब्राह्मण का बालक वसुदेवनाम हो गङ्गा के तटपर तप करनेलगा। अब उसे आठसौ वर्ष तप करते बीते हैं; जो तुम भी ज्ञानदृष्टि से देखोगे तो सब वृत्तान्त तुमको भास आवेगा। इससे देखो कि, इसीप्रकार है अथवा किसी और प्रकार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्यन्नामदशमस्सर्गः॥१०॥

काल बोले, हे मुनीश्वर! ऐसी गङ्गा के तटपर जिसमें महातरङ्ग उछलते और झनकार शब्द होते हैं तुम्हारा पुत्र तप करता है। शिरपर उसके बड़ी जटा हैं और सर्व इन्द्रियों के भ्रम को उसने जीता है। जो तुमको उसके मन के विस्तार देखने की इच्छाहै तो इननेत्रों को मूंदकर ज्ञान के नेत्रों से देखो। हे रामजी! जब इस प्रकार जगत्के ईश्वर काल ने, जिसकी समदृष्टि है, कहा; तब मुनीश्वर ने नेत्रों को मूंदकर, जैसे कोई अपनी बुद्धि में प्रतिबिम्ब देखे ज्ञाननेत्रों से एक मुहूर्त में अपने पुत्र का सब वृत्तान्त देखा और फिर मन्दराचल पर्वत पर जो भृगुशरीर पड़ा था उसमें प्रवेशकर अन्तवाहक शरीर से अपने अग्रभाग में काल भगवान् को देखकर पुत्र को गङ्गा के तट पर देखा। यह दशा देख वह आश्चर्य को प्राप्त हुआ और विकारदृष्टि को त्यागकर निर्मलभाव से वचन कहे। हे भगवन्! तीनों कालके ज्ञाता ईश्वर! हम बालक हैं; इसीसे निर्दोष हैं। तुम सरीखे बुद्धिमान् और तीन काल अमलदर्शी हैं। हे भगवन्! ईश्वर की माया महाआश्चर्यरूप है जो जीवों को अनेक भ्रम दिखाती है और बुद्धिमान् को भी मोह करती है तो मूर्खों की क्या बात है? तुम सब कुछ जानते हो; जीवों की सब वार्त्ता तुम्हारे अन्तर्गतहै। जैसी जीवों के मन की वृत्ति होती है उसके अनुसार वे भ्रमते हैं। वह मन की वृत्ति सब तुम्हारे अन्तर्गत फुरती है। जैसे इन्द्रजाली अपनी बाजी का वेत्ता होताहै तैसेही तुम इनसबों के वेत्ता हो। हे भगवन्! मैंने भ्रम को प्राप्त होकर क्रोध इसकारण से किया कि, मेरे पुत्रकी मृत्यु न थी, वह चिरञ्जीवी था और उसको मैं मृतक हुआ देखके भ्रम को प्राप्त हुआ। हमारा क्रोध आपदा का कारण नहीं था क्योंकि, जब मैंने पुत्रका शरीर निर्जीव

देखा तब कहा कि, अकारण मृतक हुआ इस कारण क्रोधहुआ। क्रोध भी नीतिरूप है अर्थात् जो क्रोधका स्थान हो वहां क्रोध चाहिये। मैंने संसार की गति विचारके क्रोध नहीं किया; अर्थात् पुत्र की अवस्था देखके क्रोध नहीं किया; निर्जीव शरीर को देखके क्रोध किया; इसीसे यह क्रोध आपदा का कारण नहीं। अयुक्ति कारण से जो क्रोध होताहै वह आपदा का कारण है और युक्ति से जो क्रोध है वह सम्पदा का कारण है यह कर्त्तव्य संसार की सत्ता में स्थित है। यह नीति है कि, जबतक जीव है तबतक जगत्क्रम है। जैसे जबतक अग्नि है तबतक उष्णता भी है। जो कर्त्तव्य है वह करना है और जो त्यागने योग्य है वह त्यागना है। यह नीति जगत् में स्थित है। जो हेयोपादेय नहीं जानता उसको त्यागना योग्य है। इससे मैंने पुत्र की अकालमृत्यु देखके क्रोध किया था परन्तु विचार करके जब तुमने स्मरण कराया तब मैंने विचार करके देखा कि, मेरा पुत्र अनेक भ्रम पाकर अब गङ्गा के तटपर तप करता है। हे भगवन्! तुमने तो कहा कि, सब जीवों के दो २ शरीर हैं—एक मनोमय और दूसरा आधिभौतिक; पर मैंतो यह मानता हूं कि केवल मनहीं एक शरीर है; दूसरा कोई नहीं। मनहीं का किया सफल होता है; शरीर का नहीं होता। काल बोले; हे मुनीश्वर! तुमने यथार्थ कहा; शरीर एक मनहीं है। जैसे घट को कुलाल रचता है, तैसेही मन देह रचता है। जो मन शरीर से रहित निराकार होता है तो क्षण में आकार को रच लेता है। जैसे बालक परछाहीं में वैताल को भ्रम से रचता है। मन में जो फुरनसत्ता है वह स्वप्नभ्रम दिखाती है और उसमें बड़े आकार और गन्धर्व नगर भासि आते हैं पर वह मनहीं की सत्ताहै स्थूल दृष्टि से जीवों को दो शरीर भासते हैं बोधवान् को तीनों जगत् मनरूप भासते हैं और सब मन से रचे हैं। जब भेदवासना होती है तब असत्रूप जगत् नाना प्रकार हो भासताहै। जैसे असम्यक् दृष्टिसे दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही सम्यक्दर्शी को एक चन्द्रमावत् सब शान्तरूप आत्मा ही भासता है और भेदभावना से घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते

हैं कि, मैं दुर्बल हूं व मोटा हूं; सुखी हूं व दुःखी हूं; यह जगत् है, यह कालहै, इत्यादिक सो संसार वासनामात्र है। जब मन शरीर की वासना को त्यागकर परमार्थ की ओर आता है तब भ्रम को नहीं प्राप्त होता। हे मुनीश्वर! समुद्र से तरङ्ग उठकर ऊर्ध्व को जाताहै, जो वह जाने मैं तरङ्ग होता हूं तो मूर्ख है—यही अज्ञानदृष्टि है। ऊर्ध्व को जावेगा तब जानेगा मैं ऊर्ध्व को गयाहूं, नीचे जावेगा तब जानेगा मैं पाताल को गया हूं, यह कल्पनाही अज्ञान है, वास्तव नहीं। वास्तव दृष्टि यह है जो अध हो अथवा ऊर्ध्व हो परन्तु आपको जलरूप जाने। तैसेही जो पुरुष परिच्छिन्न देहादिक में अहं प्रतीत करताहै सो अनेक भ्रम, देखताहै; सम्यक्दर्शी सब आत्मरूप जानता है। सर्व जीव आत्मरूप समुद्रके तरङ्गहैं, अज्ञान से भिन्न हैं और ज्ञान से वहीरूप है। आत्मरूपी समुद्र सम, स्वच्छ, शुद्धआदि रूप, शीतल, अविनाशी और विस्तृत अपनी महिमा में स्थित है और सदा आनन्दरूप है। जैसे कोई जल में स्थित हो और तटपर पहाड़ में अग्नि लगी हो तो उस अग्नि का प्रतिबिम्ब जल में देख वह कहे कि, मैं दग्ध होताहूं। जैसे भ्रम से उसको ज्वलनता भासती है तैसेही जीव को आभास रूप जगत् दुःखदायक भासता है। जैसे तट के वृक्ष, पर्वतादि पदार्थ जल में नानाप्रकार प्रतिबिम्बवत् भासते हैं तैसेही आभासरूप जगत् को जीव नानारूप मानते हैं। जैसे एक समुद्र में नाना तरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्मा में अनेक आकार जगत्भासता है; वास्तव में द्वैत कुछ नहीं सर्व शक्तिरूप ब्रह्मसत्ताही है उसीसे विचित्ररूप चञ्चल भासता है पर वह एकरूप अपने आपमें स्थित है। ब्रह्म में जगत् फुरता है और उसीमें लीन होताहै। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और फिर उसीमें लीन होते हैं, कुछ भेद नहीं, पूर्ण में पूर्ण ही स्थित है जैसे जल से तरङ्ग और ईश्वर से जगत् और पत्र, डाल, फूल, फल, वृक्षरूप हैं तैसेही सब जगत् आत्मारूप है और वह आत्मा अनेक शक्तिरूप है। जैसे एक पुरुष अनेक कर्म का कर्त्ता होता है और जैसा कर्म करता है तैसेही संग को पाता है अर्थात् पाठ करने से पाठक और पाक करने से पाचक और जाप करने

से जापक आदिक अनेक नाम धारता है; तैसेही एक आत्मा अ
शक्ति धारता है। जैसे जिस आकार की परछाहीं पड़ती है तैसाही आक
भासता है और एक मेघ में अनेक रङ्गसहित इन्द्रधनुष भासता है; तैसे
यह अनेक भ्रम पाता है। हे साधो! सब जगत् ब्रह्मा से फुरा है और
जड़ भासते हैं वे भी चैतन्य सत्तासे फुरे हैं। जैसे मकड़ी अपने मुख
जाला निकालकर आपही ग्रास लेती है तैसेही चैतन्य से जड़ उत्प
होके फिर लीन होजाते हैं। चैतन्य जीव से सुषुप्ति जड़ता उपजती
और फिर उसी में निवृत्त होती है। इससे अपनी इच्छा से यह पु
बन्धवान् होताहै और अपनी इच्छासेही मुक्त होताहै। जब बहिर्मुख दे
दिक अभिमानसे मिलताहै तब आपको बन्धवान् करता है—जैसे घु
आपही गृह रचके बन्धवान् होती है और जब पुरुषार्थ करके अन्तर्मु
होताहै तब मुक्तिपाता है। जैसे अपने हाथके बलसे बन्धन को तोड़
कोई बली निकल जाता है। हे साधो! ईश्वर की विचित्ररूप शक्ति
जैसी शक्ति फुरती है तैसाही रूप देखाती है। जैसे ओस आकाश
उपजती है और उसी को ढांपलेती है तैसेही आत्मा में जो इच्छाश
उपजती है वही आवरण करलेती है और उसीमें तन्मयरूप होजाती है
वास्तव में जीव को बन्धन और मोक्ष नहीं है; बन्ध और मोक्ष दो
शब्द भ्रान्तिमात्र हैं। मैं नहीं जानता कि, बन्ध और मोक्ष लोक
कहांसे आये हैं। आत्मा को न बन्धन है और न मोक्ष है; ऐसे सत
को असत्यरूप ने ग्रास कर लिया है जो कहताहै कि, मैं दुःखी व सु
हूं, दुबला हूं व मोटा हूं इत्यादिक माया महाआश्चर्यरूप है जिसने जग
को मोहित किया है। हे मुनीश्वर! जब चित्तसंवित् कलनारूप होता
अर्थात् दृश्य से मिलके स्फूर्त्तिरूप होताहै तब कुसवारी की नाईं आप
आपको बन्धन करता है और जब दृश्य से रहित अन्तर्मुख होता है त
शुद्ध मोक्षरूप भासता है। बन्ध और मुक्ति दोनों मनकी शक्ति हैं; जैसा
मन फुरताहै तैसा २ रूप भासता है। अनेकशक्ति आत्मासे अनन्यरू
है, सब आत्मासे उपजाहै और आत्मामें ही स्थितहै। जैसे समुद्रमें तर

उपजते हैं और उसी में स्थित होकर लीन होजाते हैं और चन्द्रमासे किरणें उदय होकर भिन्न भासतीं पर फिर उसी में लीन होतीहैं; तैसेही जीव उपजकर लीन होजाते हैं। परमात्मारूपी महासमुद्रहै, चेतनतारूपी उसमें जलहै जिससे जीवरूपी अनेक तरङ्ग उपजते हैं और उसीमें स्थित होकर फिर लीन होजाते हैं। कोई तरङ्ग ब्रह्मारूप, कोई विष्णु, कोई रुद्र होकर प्रकाशतेहैं और कोई लहर प्रमादसे रहित यम, कुबेर, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, मनुष्य, देवता, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होकर उपजतेहैं औरफिर लीन हो जाते हैं। कोई स्थित होकर चिरकाल पर्यन्त रहते हैं— जैसे ब्रह्मादिक; कोई उपजकर और कुछ काल रहकर विध्वंस होजाते हैं— जैसे देवता, मनुष्यादिक और कोई कीट, सर्प आदिक फुरते हैं और चिरकाल भी रहते हैं और अल्पकाल में भी नष्ट होजाते हैं। कोई ब्रह्मादिक उपजकर अप्रमादी रहतेहैं और कोई प्रमादी होजाते हैं और तुच्छ शरीर होते हैं यह संसार स्वप्न आरम्भ है और दृढ़होकर भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारावर्त्तवर्णनन्नामैकादशस्सर्गः ११॥

काल बोले, हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्यादिक आकार ब्रह्म से अभिन्नरूप हैं और यह सत् है। जब मिथ्या संकल्प से जीव कलङ्कित होता है तब जानता है कि, "मैं ब्रह्म नहीं"। इस निश्चय को पाके मोहित होताहै और मोहित हुआ अधो को चला जाता है। यद्यपि वह ब्रह्म से अभिन्नरूपहै और उसमें स्थित है तो भी भावना के वश से आपको भिन्न जानके मोह को प्राप्त होता है। शुद्ध ब्रह्म में जो संवित् का उल्लेख होता है वही कलङ्कितरूप कर्म का बीज है; उससे आगे विस्तार को पावताहै जैसे जल जिस २ बीज से मिलता है उसी रस को प्राप्त होता है तैसेही संवित् का फुरना जैसे कर्म से मिलता है तैसी गति को प्राप्त होता है संकल्प से कलङ्कित हुआ अनेक दुःख पाता है। यह प्रमादरूप कर्म कञ्जके बीजसा है जिसको जो मुट्ठीभरभर बोता है सो अपने दुःख का कारण है और यह जगत् आत्मरूप समुद्र की लहर है जो विस्तार से फुरती है और कोई ऊर्ध्व को जाती है और कोई अध को जाती है फिर लीन होजाती है।

ब्रह्मा आदि तृण पर्यन्त इन सबका यही धर्म है जैसे पवन का स्पन्द
है तैसेही इनका भी है पर उनमें कोई निर्मल पूजनेयोग्य ब्रह्मा, वि
रुद्रादिक हैं कुछ मोह संयुक्त हैं—जैसे देवता, मनुष्य, सर्प कोई अन
मोह में स्थित हैं—जैसे पर्वत, वृक्षादिक; कोई अज्ञान से मूढ़ हैं—
कृमि, कीटादिक योनि ये दूरसे दूर चलेगये हैं। जैसे जलके प्रवाह से त
चला जाता है तैसेही देवता, मनुष्य, सर्पादिक कितने भ्रमवान् भी होते
और कोई तट के निकट आके फिर बहजाते हैं अर्थात् सत्सङ्ग
सत्शास्त्रों को पाके फिर माया के व्यवहार में बहजाते हैं। और यम
चूहा उनको काटता है। एक अल्प मोह को प्राप्त होकर फिर ब्रह्मसमु
लीन हुये हैं; कोई अन्तर्गत ब्रह्म समुद्रको जानके स्थित हुये हैं और
अज्ञान से तरे हैं; कोई अनेक कोटिजन्म में प्राप्त होते हैं और कोई अध
ऊर्ध्वको चलेजाते हैं। और फिर ऊर्ध्वसे अधको चले आते हैं। इसीप्र
प्रमाद से जीव अनेकयोनि दुःख भोगते हैं। जब आत्मज्ञान होता है
आपदा से छूट के शान्तिमान् होते हैं॥

इति श्रीयो० स्थितिप्रकरणे उत्पत्तिविस्तारवर्णनन्नाम द्वादशस्सर्गः॥१

काल बोले, हे साधो! ये जितने जगत् भूतजाति विस्तार हैं वे
आत्मरूप समुद्र के तरङ्ग हैं—एकही अनेक विचित्र विस्तार को प्राप्त हु
हैं। जैसे वसन्त ऋतु में एकही रस अनेक प्रकार के फल फूलोंको धा
है। इन जीवों में जिसने मन को जीतकर सर्वात्मा ब्रह्म का दर्शन कि
है वह जीवनमुक्त हुआ है। मनुष्य, देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्वादि
सब भ्रमते हैं; इनसे इतर स्थावर मूढ़ अवस्था में हैं उनकी क्या बात कर
है। लोकों में तीनप्रकार के जीव हैं—एक अज्ञानी जो महामूढ़ हैं; दू
जिज्ञासी हैं औरतीसरे ज्ञानवान्। जो मूढ़ हैं उनको शास्त्र केश्रवण
विचार में कुछ रुचि नहीं होती और जो जिज्ञासी हैं उनके निमित्तज्ञानवा
ने शास्त्र रचे हैं। जिस २ मार्ग से वे प्रबुध आत्मा हुये हैं उस २ प्रका
उन्हों ने शास्त्र रचे हैं और उससे और जीव भी मोक्षभागी होते हैं।
मुनीश्वर! सत्शास्त्र जो ज्ञानवानों ने रचे हैं उनको जब निष्पाप पु

विचारता है तब उसको निर्मल बोध उपजकर मोह निवृत्त होता है और जब निर्मलबुद्धि होती है तब जैसे सूर्य के प्रकाश से तम नष्ट होता है तैसेही सत्शास्त्र के अभ्यास से मोह नष्ट होता है। जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे आत्मा के प्रमाद और विषय की तृष्णा से मोह को प्राप्त होते हैं। जैसे अँधेरी रात्रि हो और ऊपर से कुहिरा भी गिरता हो तब तमसे तम होता है; तैसे ही मूढ़ मोह से मोह को प्राप्त होते हैं और अपने संकल्प से आपही दुःखी होते हैं। जैसे बालक अपनी परछाईं में वैताल कल्पकर आपही दुःखी होता है। इससे जितने भूतजात हैं उन सबके सुख दुःख का कारण मन-रूपी शरीर है; जैसे वह फुरता है तैसी गति को प्राप्त होताहै। मांसमय शरीर का किया कुछ सफल नहीं होता और असत् मांस आदिक का मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है वह मनके संकल्प से रचा है—वास्तव में कुछ नहीं। संकल्प की दृढ़ता से जो आधिभौतिक भासने लगा है वह स्वप्न शरीरकी नाईं है। मनरूपी शरीरसे जो तेरे पुत्र ने किया है उसी गतिको वह प्राप्त हुआ है। इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं है। हे मुनीश्वर! अपनी वासनाके अनुसार जैसा कोई कर्म करताहै तैसेही फल को प्राप्त होताहै। मांस शरीर से कुछ नहीं होता। जैसी २ तीव्र भावना से तेरे पुत्र का मन फुरता गया है तैसी २ गति वह पाता गया है। बहुत कहने से क्या है, उठो अब वहीं चलो जहां वह ब्राह्मण का पुत्र होकर गङ्गाके तट पर तप करने लगा है। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब काल भगवान् ने कहा तब दोनों जगत्की गति को हँसके उठ खड़ेहुये और हाथ से हाथ पकड़के कहने लगे कि, ईश्वर की नीति आश्चर्यरूप है जो जीवों को बड़े भ्रम दिखाती है। जैसे उदयाचल पर्वत से सूर्य उदय होकर आकाशमार्ग में चलता है तैसेही प्रकाश की निधि उदार आत्मा दोनों चले। इस प्रकार जब वशिष्ठ जी ने रामजीसे कहा तब सूर्य अस्तहुआ और सर्व सभा अपने २ स्थान को गई। दिन हुये फिर अपने २ आसनपर आन बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृगुआसनन्नाम त्रयोदशस्सर्गः॥१३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! काल और भृगुजी दोनों मन्दरा
पर्वत से भूमि पर उतरे और देवताओं के महासुन्दर स्थानों को लांघ
वहां गये जहां ब्राह्मण शरीर से गङ्गा के किनारे शुक्र समाधि में ल
था। उसका मनरूपी मृग अचल होकर विश्राम को प्राप्त हुआ था।
चिरकाल का थका चिरकाल पर्यन्त विश्राम करता है तैसेही उसने विश्
पाया। वह अनेक जन्मों की चिन्तना में भटकता २ अब तप में ल
था और राग द्वेष से रहित होकर परमानन्दपद में स्थित था। उस
देख के काल ने बड़े शब्द से कहा, हे भृगो ! देख यह समाधि में स्थि
है अब इसे जगाइये। तब उसकी कलना फुरनेसे और बाहर शब्द से;
मेघ के शब्द से मोर जागे; तैसेही शुक्रजी जागे और अर्धोन्मीलित
खोल के काल और भृगु को अपने आगे देखा पर पहिंचाना नहीं। उ
देखा कि, दोनों के श्याम आकार और बड़े प्रकाशरूप हैं—मानों साक्ष
विष्णु और सदाशिवजी हैं। उन्हें देख वह उठ खड़ा हुआ और प्रीतिपू
चरणवन्दना और नम्रतासहित आदर करके कहा कि, मेरे बड़े भ
हैं जो प्रभु के चरण इस स्थान में आये वहां एक शिला पड़ी थी उस
वे दोनों बैठगये तब वसुदेव नाम शुक्र, जिसका तप के संयोग से
सातातप नाम हुआ था उस शान्त हृदय तपसी ने अगम वचन क
और भृगु से कहे, वह बोला, हे प्रभु ! मैं तुम्हारे दर्शन से शान्तिमान् हु
हूं। तुम सूर्य और चन्द्रमा इकट्ठे मेरे आश्रम में आये हो और तुम
आने से मेरे मन का मोह नष्ट होगया जो शास्त्रों और तपसे भी नि
होना कठिनहै। हे साधो ! जैसा सुख महापुरुषों के दर्शन से होत
वैसा किसी ऐश्वर्य और अमृत की वर्षा से भी नहीं होता। तुम ज्ञान
सूर्य और चन्द्रमा हो। हे ऋषीश्वरो ! तुमने हमारा स्थान पवित्र कि
और मैं शान्तात्मा हुआ। तुम कौन हो जो प्रकाशरूप, उदार आ
मेरे स्थानपर आये हो ? जब इस प्रकार जन्मान्तर के पुत्र ने भृगुजी
पूछा तब भृगुजी ने कहा; हे साधो ! तू आपको स्मरणकर कि, कौन
अज्ञानी तो नहीं तू तो प्रबोध आत्मा है। जब इस प्रकार भृगुजी ने क

तब नेत्र मूंद कर शुक्र ध्यान में लगा और एक मुहूर्त्त में अपना सब वृत्तान्त देखके नेत्र खोले और विस्मय होकर कहने लगा कि, ईश्वर की गति विचित्ररूप है; इसके वश होकर मैंने बड़े भ्रम देखे हैं और जगत्-रूपी चक्रपर आरूढ़ हुआ मैं अनन्तजन्म भ्रमा हूं। उन सबको स्मरण करके मैं आश्चर्यवान् होता हूं कि, मैंने बहुत दुःख और अनेक अवस्था भोगी हैं। स्वर्ग और मन्दार, कल्पवृक्ष, सुमेरु, कैलास आदिक वनकुञ्जों में मैं रहा और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मैंने नहीं पाया; ऐसा कोई कार्य नहीं जो मैंने नहीं किया और ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक-स्वर्ग नहीं जो मैंने नहीं देखा। जो कुछ जाननेयोग्य है वह क्या है? अब मैं आत्मतत्त्व में विश्रामवान् हुआ हूं और संकल्प भ्रम मेरा नष्ट होगया है। अब आप वहां चलिये जहां मन्दराचलपर्वत पर मेरा शरीर पड़ाहै। हे भगवन्! अब मुझको कुछ इच्छा नहीं है। यद्यपि हेयोपादेय मुझको कुछ नहीं रहा तथापि नीति की रचना देखके कहता हूं। जो बोधवान् हैं वह प्रकृत आचार में विचरते हैं, आगे जैसी इच्छा हो तैसे कीजिये। बोधवान् उसी आचार को अङ्गीकार करते हैं। इससे अपने प्रकृत आचारको ग्रहण करके व्यवहार में विचरे॥

इति श्रीयो०स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मान्तरवर्णनन्नाम चतुर्द्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचार करके तीनों आकाश मार्ग को चले और शीघ्रही मेघमण्डल को उल्लंघ के सिद्धों के मार्ग से मन्दराचल पर्वत पर स्वर्ण की कन्दरा में पहुँचे और पूर्व शरीर को देख शुक्र ने कहा; हे तात! मेरे पूर्व शरीर को देखो, जिसे तुमने बहुत पालन किया था। जो शरीर कपूरसुगन्ध से शोभितथा और फूलों की शय्यापर शयन करता था, वह अब माटी में लपटा पड़ा है और सूख गया है। जिस शरीर को देख के देवस्त्रियां मोहित होती थीं और कण्ठ में मुक्त माला ऐसी शोभित थीं मानों तारों की पंक्ति हैं वह शरीर अब पृथ्वी पर गिरपड़ा है। नन्दन वन में इसने अनेकभोग भोगे हैं और आत्मरूप जान के इसको मैं पुष्ट करता था वह अब मुझको भयानक भासता है।

जो शरीर देवाङ्गनाओं से मिलता और रागवान् होता था वह अब
की चिन्ता में सूखगया है। जिन २ विलासों को चाहता था उनको
करता था और अब वही चिता से रहित महाअभागी हुआ धूप से सू
गया है और महाविकराल भयानक सा भासता है। जिसको मैं आत्म
जानता था; जिसमें अहंकार के विलास करताथा और जिसमें फूल कम
पड़ते और तारागण प्रकाशते थे उसमें अब चींटियां फिरती हैं। जोशर
द्रव स्वर्णवत् सुन्दर प्रकाशरूप था वह अब धूपसे सूखा भयानक भास
है और सब गुण इसको छोड़ गये हैं—मानों विरक्त आत्मा हुआ
विषय से मुक्त निर्विकल्पसमाधि में स्थित हुआ है। हे शरीर! तू अह
तन को प्राप्तहुआ है; अब तेरे में कोई क्षोभ नहीं रहा। अब चित्तरूपी वैत
तेरेमें शान्त होगया है और आने जाने से रहित विश्रामवान् हुआ
सब कल्पना तेरी नष्ट हुई हैं और सुख से सोया है। चित्तरूपी मर्कट
रहित शरीररूपी वृक्ष ठहर गया है और सब अनर्थ से रहित पहाड़
नाईं अचल हुआ है। यह देह अब सर्व दुःख से रहित परमानन्द
स्थित है। हे साधो! सब अनर्थों का कारण चित्त है। जबतक चि
शान्तिमान् नहीं होता तबतक जीव को आनन्द नहीं मिलता। ज
अमन शक्तिपद को प्राप्त होता है तब महा आधि व्याधि जगत् के दुः
को तरके विगत परमानन्द को प्राप्त होताहै। रामजी ने पूछा, हे भगव
सर्व धर्मों के वेत्ता भृगु का जो शुक्र पुत्र था उसने तो अनेक शरीर धरे थे औ
फिर २ भोग भोगे थे तो भृगु से जो शरीर उत्पन्न था तिसको देख बहुत शो
क्यों किया और देहों का चिन्तन क्यों न किया? इसका क्या कार
है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुक्र की संवेदन कलना जो जीवभ
को प्राप्त हुई थी सो कर्मात्मक होकर भृगु से उपजी। सुनो; आ
परमात्मतत्त्व से चित्तकला फुरकर भूताकाश को प्राप्त हुई और व
वातकला में स्थित होकर प्राण, अपान के मार्ग से भृगु के हृदय
प्रवेश करगई और वीर्य के स्थान को प्राप्त होकर गर्भमार्ग से उत्पन्न
क्रम करके वड़ी हुई जिससे विद्या और गुण सम्पन्न शुक्र का शर

हुआ। उस शरीर को जो उसने चिरकाल सेवन किया था इससे उसका शोच किया। यद्यपि वह वीतराग और निरिच्छित था तौ भी चिरकाल जो अभ्यास किया था वही फुर आया। हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी व्यवहार दोनों का तुल्य होता है परन्तु शक्ति अशक्ति का भेद है। ज्ञानवान् असंसक्त निर्लेप रहता है और अज्ञानी क्रियामें बन्धवान् होता है। ज्ञानवान् मोक्षरूप है और अज्ञानी दरिद्री है। जैसे वन में जाल से पक्षी फँसता है तैसेही अज्ञानी लोकव्यवहार में बन्धवान् होताहै। व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है तैसेही अज्ञानी करता है। जो वासनारहित है वह निर्बन्ध है; वासना सहित बन्ध है इससे वासनामात्र भेद है। जबतक शरीर है तबतक सुख दुःख भी होताहै परन्तु ज्ञानवान् दोनों में शान्तबुद्धि रहता है और अज्ञानी हर्ष शोक से तपायमान होता है। जैसे थम्भे का प्रतिबिम्ब जलके हिलनेसे थम्भ हिलता भासता है परन्तु स्वरूपमें स्थितही है तैसेही अज्ञान में सुख दुःख से सुखी दुःखी भासता है परन्तु स्वरूप ज्यों का त्यों है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जल के हिलनेसे हिलता भासताहै परन्तु स्वरूपसे ज्यों का त्यों है तैसेही ज्ञानवान् इन्द्रियों से सुखी दुःखी भासता है पर स्वरूप में ज्यों का त्यों है। अज्ञानी बाहर से क्रिया का त्याग करता है तौ भी बन्ध रहता है और ज्ञानवान् क्रिया करता है तौ भी मोक्षरूप है। अन्तःकरण में जो अनात्मधर्म में बन्धवान् है वह बाहर कर्मइन्द्रिय से मुक्त है तौ भी बन्धन में है और जो अन्तःकरण से मुक्त है वह कर्मइन्द्रियसे बन्धन भासताहै तौभी मुक्तरूपहै। जो सब क्रीड़ा को त्याग बैठा है और हृदय में जगत् की सत्यता रखता है वह चाहे कुछ करे वा न करे तौभी बन्धन में है और जो बाहर चाहे जैसा व्यवहार करता है पर हृदय से अद्वैत ज्ञान में है तो वह मुक्तरूप है—उसको कर्मबन्धन नहीं करता। इससे, हे रामजी! सबकार्य करो पर अन्तःकरण से शून्य रहकर सर्व एषणा से रहित आत्मपद में स्थित होजाओ और अपने प्रकृतव्यवहार को करो। यह संसाररूपी समुद्र है जिसमें आधि व्याधि और अहं ममतारूपी गढ़ाहै जो उसमें गिरताहै वह ऊर्ध्व से अधको जाताहै। इससे

संसार के भाव में मत स्थित हो और शुद्ध बुद्ध आत्मस्वभाव में स्थित हो। जो ब्रह्मशुद्ध, सर्वात्मा, निर्विकार, निराकार आत्मपद में स्थित हैं उनको नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवनन्नाम पञ्चदशस्सर्गः १५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब शुक्र ने शरीर का वर्णन किया और विकरालरूप देखके उसमें त्याग बुद्धि की तब काल भगवान् शुक्र के वचन को न मान के गम्भीर वाणी से बोले; हे शुक्र! तू इस तपरूपी शरीर को त्यागकर भृगु के पुत्र का जो शरीर है उसको अङ्गीकार कर। जैसे राजा देशदेशान्तर को भ्रमता २ अपने नगर में आता है तैसेही तूभी इस शरीर में प्रवेशकर क्योंकि; भार्गवतन से तुझे असुरोंका गुरु होनाहै। यह आदि परमात्मा की नीति है; महाकल्पपर्यन्त तेरी आयुर्बल है। जब महाकल्पका अन्त होगा तब भार्गवतन नष्ट होगा और फिर तुझको शरीरका ग्रहण न होगा। जैसे रस सूखेसे पुष्प गिरपड़ता है तैसेही प्रारब्ध वेगके पूर्ण हुयेसे तेरा शरीर गिर पड़ेगा और शरीरके होते जीवन्मुक्तपद को प्राप्त हुआ प्राकृत आचार में विचरेगा। इससे इस शरीर को त्यागकर भार्गव शरीर में प्रवेशकर। अब हम जाते हैं, तुम दोनों का कल्याण हो और तुमको वाञ्छित फलमिलें। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! काल भगवान् ऐसे कहकर और दोनोंपर पुष्प डालकर अन्तर्द्धान होगये। तब वह तपसी नीतिको विचारने लगा कि; क्या होना है। विचारकर देखा तो विदित हुआ कि, जैसे काल भगवान् ने कहा है तैसेही होना है। ऐसे विचार के महाकृशरूप जो शरीर था उसमें प्रवेश किया और तपस्वी ब्राह्मण का देह त्याग दिया। तब उस शरीरकी शोभा जाती रही और कम्पकम्प के पृथ्वीपर गिरपड़ा। जैसे मूल के काटेसे बेलि गिर पड़ती है तैसेही वह देह गिरा और शुक्रदेह जीवकला संयुक्त हो आया। तब भृगुजी उस कृश देहको जीवकला संयुक्त देखके उठखड़े हुये और हाथमें जलका कमण्डलु ले मन्त्रविद्या से जो पुष्टिशक्ति है पाठकर पुत्रके शरीरपर जल डाला और उसके पड़ने से शरीर की सब नाड़ियां पुष्ट होगईं। जैसे वसन्तऋतु में

कमलिनी प्रफुल्लित होती हैं तैसेही उसका शरीर प्रफुल्लित हो आया और श्वास आने जाने लगे। तब शुक्र पिता के सन्मुख गया और जैसे मेघ जल से पूर्ण होकर पर्वत के आगे नमता है तैसेही विधिसंयुक्त नमस्कार करके शिर नवाया और स्नेहसे नेत्रों में जल चलनेलगा। तब पुत्र को देखके भृगुजी ने उसे कण्ठ लगाया कि, यह मेरा पुत्र है। ऐसे स्नेह से पूर्ण होगया। हे रामजी ! जबतक देह है तबतक देह के धर्म फुरआते हैं। इसी प्रकार भृगु ज्ञानी को भी ममता स्नेह फुर आया तो और की क्या बात है ? पिता और पुत्र दोनों बैठगये और एकमुहूर्त्त पर्यन्त कथा वार्ता करते रहे। फिर उठकर उन्होंने उस तपस्वी शरीर को जलाया क्योंकि, बुद्धिमान् शास्त्राचार में स्थित होते हैं। इसके अनन्तर जिनका वपु तपसे प्रकाशता है और जिनकी श्यामकान्ति है ऐसे जीवन्मुक्त उदारात्मा होकर वहां रहे और समय पाकरके शुक्रजी दैत्यों का गुरु होगा और भृगुजी समाधि में स्थित होंगे। इससे जो सब विकारसे रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत्गुरु हैं वह सबके पूजने योग्य हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मान्तरवर्णनन्नाम षोडशस्सर्गः॥ १६॥

रामजी बोले, हे भगवन् ! जैसे भृगु के पुत्र को यह प्रतिमा फुरती गई और सिद्ध होती गई तैसीही और जीवों को क्यों नहीं सिद्ध होती ? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी ! शुक्र का जो ब्रह्मतत्त्व से फुरना हुआ वही भार्गव जन्म हुआ और जन्म से कलङ्कित नहीं हुआ वह सर्व एषणासे रहित शुद्ध चैतन्य था। निर्मलहृदय को जैसी स्फूर्ति होती है तैसेही सिद्धि होजाती है और मलिन हृदयवान् का संकल्प शीघ्रही सिद्ध नहीं होता। जैसे भृगुके पुत्रको मनोराज हुआ और भ्रमता फिरा तैसेही सबही स्वरूप के प्रमाद से भ्रमते हैं। जबतक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता तबतक शान्ति प्राप्त नहीं होती। यह मैंने भृगुके पुत्रका वृत्तान्त मनोराजकी दृढ़ता केलिये तुमको सुनाया है। जैसे बीजही अंकुर, फूल, फल अनेकभाव को प्राप्त होता है तैसेही सब भूतजात को मन का भ्रमना अनेक भ्रम को प्राप्त

करता है । जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब मनके फुरनेक
रूप है; मिथ्याभ्रम से नानात्व भासता है और कुछ नहीं है एक ए
प्रति ऐसा भ्रम है और सब संकल्पमात्र है; न कुछ उदय होता है औ
न अस्त होता; सब मिथ्यारूप मायामात्र है । जैसे स्वप्नपुर और संकल
नगर भासता है तैसेही परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं पर कुछ नहीं
और तैसेही यह जाग्रत्भ्रम भी अज्ञान से दृष्टि आता है । भूत, पिशा
आदिक जितने जीव हैं उनका भी संकल्पमात्र शरीर है; जैसे उनक
सुख दुःखों का भोग होता है तैसेही तुम हम को भी होता है । जैसे य
जगत् है तैसेही अनन्त जगत् बसते हैं और एक दूसरे को नहीं जानता
जैसे एक स्थान में बहुत पुरुष शयन करते हों तो उनको मनोराज औ
स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञात होता है तैसेही यह जगत् है पर वास्तव में कु
नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थितहै । जो इस जगत् को सत् जानत
है उसका पुरुषार्थ नष्ट होता है जो वस्तु भ्रान्ति से भासती है उसका सम्यक
ज्ञान से अभाव होजाताहै । यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्नाहै । चित्तरूप
हस्तीको बन्धनहै और चित्तसत्तासे जगत् सत् भासताहै और जगत् सत्तासे
चित्त है । एक के नाशहुये से दोनों का नाश होजाता है । जो जगत्क
सत्भाव नष्ट होता है तब चित्त नहीं रहता और जब चित्त उपशम होत
है तब जगत् शान्त होता है । इस प्रकार एक के नाश हुये दोनोंका नाश
होता है । दोनों का नाश आत्म विचार से होताहै । जैसे उज्ज्वल वस्त्र प
केशरका रङ्ग शीघ्रही चढ़जाताहै, मलीन वस्त्रपर नहीं चढ़ता; तैसेही जिसक
निर्मल हृदय होताहै उसको विचार उपजताहै । हृदय तब निर्मल होता है
जब शास्त्र के अनुसार क्रिया करताहै । हे रामजी ! एक एक जीवके हृदय
में अपनी २ सृष्टि है । पर मलीन चित्तसे एकको दूसरा नहीं जानता; जब
चित्त शुद्ध होताहै तब और की सृष्टिको भी जान लेताहै । जैसे शुद्ध धातु
परस्पर मिलजाती है । जब दृढ़ अभ्यास होताहै तब चिरपर्यन्त सब कुछ
भासने लगताहै क्योंकि; सबका अधिष्ठाता एक आत्माहै उसमें स्थितहोने
से सबका ज्ञान होताहै । रामजी ने पूछा, हे भगवन् ! शुकको प्रतिभामात्र

आभास हुआ था उस में देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ़ होकर कैसे भासे? वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! शुक्र ने अपने अनुभवरूपी भण्डार में मन से जगत् देखा। जैसे मोर के अण्डे से अनेकरङ्ग निकलते हैं तैसेही उसको अपने हृदय में भ्रम भासित हुआ। जैसे बीजसे पत्र, टास, फूल, फल निकलते हैं तैसेही जीव जीव को अपने २ अनुभव में संसार खण्ड फुरते हैं। यहां स्वप्न दृष्टान्त प्रत्यक्ष है। जैसे एक एक के स्वप्ने में जगत् होता है तैसेही यह जगत् है। दीर्घ स्वप्ना जाग्रत् हो भासता है और जैसा दृढ़ होता है तैसाही भासनेलगता है। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सृष्टि के समूह परस्पर मिलते कैसे हैं और नहीं कैसे मिलते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मलीन चित्त परस्पर नहीं मिलता; शुद्ध मिलता है—जैसे शुद्ध धातु मिलजाती है। सुषुप्तिरूप आत्मा से सब फुरते हैं सो तन्मयरूप हैं; जिसको उसमें विश्राम होता है सो ज्ञानदृष्टि से सबसे मिलजाता है। जैसे जल से जल मिलजाता है तैसेही वह सबसे मिलकर सबको जानता है; और नहीं जानता॥

इति श्रीयो० स्थितिप्र० मनोराजसम्मीलनवर्णनन्नामसप्तदशस्सर्गः॥१७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ संसारखण्ड हैं उन सबका बीजरूप आत्माहै और सब आत्माहीका आभास है। आभास के उदय-अस्त होने में आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है; अपने स्वभाव के त्याग से रहित है; सर्व जीवों का अपना आप वास्तवरूपहै और सुषुप्तिकी नाईं स्फूर्ण है। उसी सत्तामें जीव फुरते हैं तब स्वप्नवत् जगत् भ्रम देखते हैं। जीव जीव प्रति अपनी २ सृष्टि स्थितहै; जो पुरुष उलटके आत्मपरायण होताहै वह आत्मपद में प्राप्त होता है। जिस पुरुष को आत्मब्रह्म से एकता हुई है उसको परस्पर और की सृष्टि भासती है। अन्तःकरण में सृष्टि होती है सो उसका अन्तःकरण मिलता है और उस अन्तःकरण जीवकला के मिलेसे परस्पर सृष्टि भास आती है सबका अपना आप सन्मात्र सत्ता है, उसमें सब सृष्टि स्थित होती है। जैसे कपूरका पर्वतहो तो उसके अणु २ में सुगन्ध होती है और सर्व अणु सुगन्धपर्वत में एकता होती है; तैसेही

सब जीवों का अधिष्ठान आत्मसत्ता है। जैसे सब नदियों के जल क
अधिष्ठान समुद्र है तैसेही सब जीवों का अधिष्ठान आत्मा है। सृष्टि क
परस्पर मिलती है और कहीं भिन्न २ स्थित है। जहां चेतनमात्र सत्ता
एकताहै वहां चित्तकी वृत्ति जिसके साथ मिलनी चाहे उसको मिलजा
है पर मलीन चित्तवाला नहीं मिलसक्ता। एकएक जीव में सहस्रोंसृ
परस्पर गुप्तरूप होती हैं। जहां जैसा फुरना दृढ़ होताहै वहां वैसाही भास
है; जहां मनका फुरना कोमल होता है सो सफल नहीं होता और ज
दृढ़ होता है सो भासने लगता है। हे रामजी! जब देह की भावना मि
जाती है तो प्राण पवनही स्थित करनेसे चित्त की वृत्ति स्वभाव में स्थि
होतीहै और तब और के चित्त की चेष्टा अपने चित्त में फुरआती है औ
जबतक चित्त मलीन होताहै और देहकी भावना को नहीं त्यागता त
तक किसी पदार्थ से एकता नहीं होती। जिसका चित्त निर्मल होता
उसको जैसे और के चित्त का ज्ञान होआता है तैसेही और सृष्टि में मिल
की भी शक्ति होती है; अशुद्ध को नहीं होती। सर्वजीवों की तीन अवस्
होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। यह तीनोंही अवस्था आत्मामें जीवि
का लक्षणहै। जैसे मृगतृष्णा की नदीके तरङ्ग सूर्यकी किरणों में हैं वास्त
में उनका अभाव है तैसेही जीव को आत्मा में प्रमाद है उससे ती
अवस्थाओं में भटकता है। जब चित्तकला तुरिया में स्थित होती है त
जीवन्मुक्त होताहै आत्मसत्ता स्वभाव में स्थितहुये से आत्मा से एक
को प्राप्त होताहै और सबजीव से सुहृद्भाव होताहै। जब अज्ञानी पु
सुषुप्ति आत्मसत्ता से जागता है अर्थात् संसार को चितवता है तब संसा
को प्राप्त होता है वह संसार में और संसार उसमें, इस प्रकार प्रमाद कर
अनेक सृष्टि देखता है। जैसे केलेके थम्भसे पत्रका समूह निकल आता
तैसेही वह सृष्टिसे सृष्टिको देखताहै, शान्ति नहीं पाता और जब उलट
अपने स्वभाव में स्थित होता है तब नानात्वभाव मिटजाता और शान्
रूप होताहै—जैसे केलेके भीतर शीतल होता है। हे रामजी! जगत्
समूह भासते हैं तौभी आत्मा से द्वैत नहीं। जैसे केलेके भीतर पत्रसे भि

कुछ नहीं निकलता तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न नहीं। जैसे बीजही फूलभाव को प्राप्त होता है और फूलसे फिर बीज होता है तैसेही ब्रह्म से मन होता है और बुद्धि से ब्रह्म होता है। जीव का कारण रसहै आत्मा में कारण-कार्यभाव कुछ नहीं बनता वह तो अद्वैत अचिन्त्यरूप है। आदि परमात्मा अकारणरूप है, वही बिचारने योग्य है और से क्या प्रयोजन है? बीज जब अपनेभाव को त्यागता है तब फूलभाव को प्राप्त होता है और ब्रह्मसत्ता अपने स्वभाव को कदाचित् नहीं त्यागती। बीज परिणामसे आकाशरूप है आत्मा अकृत्रिम, निराकार और अच्युतरूप है; इस कारण आत्मा बीज की नाईं भी नहीं कहाजासक्ता। आकाश से आकाश नहीं उपजता और अभिन्नरूप है; न कोई उपजा है, न किसी को उपजाया है केवल ब्रह्म आकाश अपने आप में स्थित है। जब द्रष्टा पुरुष को देखताहै तब आपको नहीं देखसक्ता क्योंकि, जब मनोराज का परिणाम जगत् में जाता है तब विद्यमान वस्तु की सँभाल नहींरहती। देहादिक में आत्म-अभिमान होताहै। जो पुरुष आत्मसत्ता को देखता है उसको जगत्भाव नहीं रहता और जो जगत्को देखताहै उसको आत्मसत्ता नहीं भासती। जैसे जो मृगतृष्णा की नदी को झूठ जानता है उसको जलभाव नहीं रहता और जो जल जानता है उसको अस्तबुद्धि नहीं होती। आकाश की नाईं पूर्ण पुरुष द्रष्टा है वह जब इस दृश्य की ओर जाताहै तब आप को नहीं देखसक्ता। आकाशकी नाईं ब्रह्मसत्ता सबठौर पूर्णहै सो अज्ञानी को नहीं भासती, उसे जो दृश्य का अत्यन्त भाव है वही भासताहै, अनुभव का भासना दूर होगया है। हे रामजी! स्थूलपदार्थ के आगे पटल आता है तब वह नहीं भासता तो जो सूक्ष्म निराकार द्रष्टा पुरुष है उसके आगे आवरण आवे तब वह कैसे भासे? जो द्रष्टा पुरुष है वह अपनेही भाव में स्थित है दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता, दृश्यभास-ताहै तब द्रष्टा नहीं दीखता और दृश्य कुछ वस्तु है नहीं। इससे द्रष्टा एक परमात्मा ही अपने आपमें स्थित है, जो आत्मरूप सर्वशक्तिमान् देव है। जैसा फ़ुरना उसमें होताहै वैसाही शीघ्र भास आता है। जैसे वसन्तऋतु में

एकरस अनेकरूपों को धरताहै और उससे टास, फल, फूल होते हैं तैसेह
एक आत्मसत्ता अनेकजीव देह होके भासती है। जैसे अपनेही भीतर अ
नेक स्वप्नभ्रम देखता है तैसेही अहंआदिक जगत् दृश्य भ्रम को अनुभ
प्राप्तही होता है और स्वरूप से और कुछ नहीं हुआ। जैसे एक बीज
भीतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते हैं और उसमें और बीज होता
बीज के भीतर और वृक्ष और उसके भीतर और बीज होता है इसीप्रक
एक बीजके भीतर अनेक वृक्ष होते हैं; तैसेही एक आत्मा में और अने
चिद्अणु फुरते हैं; उनके भीतर सृष्टि होती है और फिर उन सृष्टियोंके भीत
चिद्अणु, फिर चिद्अणु के भीतर सृष्टि इसीप्रकार अनेक सृष्टि ब्रह्माण्ड
उनकी संख्या कुछ कही नहीं जाती व सब अपने आप से फुरते हैं औ
आपही स्वादलेताहै। जैसे तिलमें तेलहै तैसेही चिद्अणु में आकाश, पव
आदिक अनेक सृष्टि स्थित हैं। आकाश में पवन, अग्नि में जल, सर्व भूत
में पृथ्वी सृष्टि स्थित हैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो चित्त से सत्ता रहि
हो; जहां चित्त है वहां उसका आभासरूप द्रष्टा भी स्थित है। जैसे डब
में लौंग होते हैं तो उनके नष्ट हुये डब्बा नहीं होता। जैसा २ उस
फुरना होता है तैसाही तैसा स्थित होता है। सबका अधिष्ठानरूप आत्म
है; जैसे कमल को पूर्ण करनेवाला जल है उससे सब विस्फूर्जित हो
और प्रकाशते हैं तैसेही सब नष्टों को सत्ता देनेवाला और आश्रयरू
आत्मतत्त्व है। यह जगत् दीर्घस्वप्नरूप अपने अनुभव से उदय हुआ
सो बाह्यरूप होकर भासताहै; उस स्वप्न से और स्वप्नान्तर होताहै उसक
आगे और स्वप्न होताहै इसी प्रकार सृष्टि की स्थितिहुई है। जैसे एक
बीज से अनेक वृक्ष होते हैं तैसेही एक चिद्अणु में अनेक सृष्टि स्थिति हैं
जैसे जल में अनेक तरङ्ग भासते हैं तैसेही आत्म अनुभव में अनेक जगत
भासते हैं और अभिन्नरूप हैं। इससे द्वैतभ्रम को तुम त्यागदो; न कोई देश
है, न कालक्रियाहै केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है।
जैसे आकाशमें आकाश स्थितहै तैसेही आत्मसत्ता अपने आप में स्थित
है। ब्रह्मा से कीटपर्यन्त जो जगत् भासताहै सो एक परमात्मा ही अपने

आपमें किंचनरूप होताहै। जैसे एक रससत्ताही कहीं फल और सुगन्ध सहित भासती है और कहीं काष्ठरूपको प्राप्त होतीहै तैसेही एक परमात्मसत्ता कहीं चैतन्य और कहीं जड़रूप होकर दिखाई देती है। जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है वही सबका बीजरूप है और उसी के भीतर सब जगत् स्थित है। पर जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको नानारूप भासता है। जैसे कोई जल में डूबे और फिर निकले; फिर डूबे, फिर निकले और जैसे स्वप्न में और स्वप्न होताहै; तैसेही प्रमाददोष से भ्रम से भ्रमान्तर नाना प्रकार के जगत् जीव देखता है। जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं है क्योंकि; जगत् कुछ है नहीं आत्मा ही जगत् सा हो भासता है। जैसे विचाररहित को सुवर्ण में भूषणबुद्धि होती है और विचार किये से भूषणबुद्धि नष्ट होजाती है, सुवर्णही भासताहै; तैसेही जो विचार से रहित है उसको यह जगत् पदार्थ भासते हैं कि; यह मैंहूं, यह जगत् है, यह उपजा है और यह लीन होताहै; और जिसको सत्सङ्ग और शास्त्र के संयोग से विचार उपजा है उसको दिनदिनप्रति भोग की तृष्णा घटती जातीहै और आत्मविचार दृढ़ होता जाताहै। जैसे किसीको तप आता हो तो औषध करके निवृत्त होजाता है और दो लक्षण उसमें प्रत्यक्ष होते हैं; एक तो जो तृषा निवृत्त होजाती है, दूसरे शरीर से तपन निवृत्त होजाती है और शीतलता प्रकट होती है तैसेही ज्यों २ विवेक दृढ़ होताहै त्यों २ इन्द्रियों को जीतताहै; सन्तोष से हृदय शीतल होता है और सर्व आत्मा ही भासता है। यह विवेक का फल है। हे रामजी ! जैसे अग्नि के लिखे चित्र से कुछ कार्य नहीं सिद्ध होता तैसेही निश्चय से रहित वचन का विवेक दुःख को निवृत्त नहीं करता और शान्ति प्राप्त नहीं होती। जैसे जब पवन चलताहै तब पत्र और वृक्ष हिलते हैं और उसका लक्षण भासता है पर वाणीसे कहिये तो नहीं हिलते तैसेही जब विवेक हृदय में आता है तब भोग की तृष्णा घट जाती है; मुखके कहने से तृष्णा घटती नहीं। जैसे अमृतका लिखा चित्र पान करनेसे अमर होनेका कार्य नहीं करता; चित्रकी लिखी अग्नि शीत नहीं निवृत्त करती और स्त्री के चित्र के स्पर्श

से सन्तान उपजनेका कार्य नहीं होता; तैसेही मुखका विवेक वाणीवि
है और भोग की तृष्णाको निवृत्त करके शान्ति को नहीं प्राप्त करता। जै
चित्र देखनेमात्र ही होताहै तैसेही वह विवेक वाग्विलास है। हे रामज
प्रथम जब विवेक आता है तब राग द्वेष को नाश करताहै और ब्रह्मलो
पर्यन्त जो कुछ विषय भोगरूप हैं उनसे तृष्णा और वैरभाव को न
करता है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होता है तैसेही विवे
उदय हुये अज्ञान नष्ट होजाता है और पावनपद की प्राप्ति होती है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपदवर्णनन्नाम अष्टादशस्सर्गः १८

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! सर्वजीवों का बीज परमात्मा है। और व
सर्व ओर से आकाश की नाईं स्थित है। उसके फुरने का नाम जीव
और उस जीव के भीतर जगत् है। उसके आगे और नाना प्रकार
रचनाहै पर वास्तव में चिद्घन जीव के रूप से भीतर स्थित हुआहै इस
सब जीव चिद्घनरूप हैं। जैसे केलेके थम्भमें पत्र होते हैं तैसेही आत्म
सत्ता के भीतर जीव स्थित हैं। जैसे शरीर के भीतर कीट होते हैं तैसे
आत्मा के भीतर जीवराशि हैं और जैसे प्रस्वेद से जूं और लीख आदि
जीव उपजते हैं और दूसरे पदार्थ में कीट उपज आतेहैं तैसेही आत्मा
चित्तकलाके फुरने से जीवके समूह फुर आते हैं। फिर जीव जैसी २ सिद्धि
निमित्त यत्न उपासना करते हैं तैसी २ गति पाते हैं। जो देवताकी उपासन
करते हैं वह देवताको प्राप्तहोते हैं और यज्ञके उपासक यज्ञको प्राप्तहोते हैं
इसी प्रकार जिसकी जो उपासना करते हैं उसीको वे प्राप्त होते हैं। ब्रह्म
उपासक ब्रह्मकोही प्राप्त होते हैं। इससे जो अतुच्छपद है उस महत्पद क
तुम आश्रयकरो। जैसे शुक्र जब दृश्यके ओर लगा तब उसने अनेकप्रका
के दृश्य भ्रमको देखा और जब शुद्धबुद्धि की ओर आया तब निर्मलबोध
को प्राप्तहुआ तैसेही जिसकी कोई उपासना करताहै उसीको वह प्राप्तहोता
है; अन्य को नहीं प्राप्त होता। रामजीने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत् और
स्वप्नका भेदकहिये कि, जाग्रत् क्याहै और स्वप्न क्या है? वशिष्ठजी बोले;
हे रामजी! स्थिर प्रतीतिका नाम जाग्रत्है अस्थिर प्रतीतिका नाम स्वप्नहै।

जो चिरकाल रहताहै उसका नाम स्थिरहै और जो अल्पकाल रहे उसका नाम अस्थिर है अर्थात् दीर्घकाल प्रतीति का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल का नाम स्वप्न है। इनमें कोई विशेष भेद नहीं है, दोनों का अनुभव सम होता है। शरीर के भीतर स्थित्त होकर जो शरीरको जिवाताहै उसका नामजीव है। वह तेज और बीजरूप है। जीव धातु है यह सब उसके नाम हैं। जब जीवधातु स्पन्दरूप होताहै तब वह जीवित के रन्ध्रों में फैलता है; मन, वाणी और देहसे सब व्यवहार होता है और रन्ध्र खुल जाते हैं तब उसको जाग्रत् कहते हैं। जब चित्तकला जाग्रत् व्यवहारमें स्पष्टरूप होतीहै और भीतर होकर फुरतीहै तब उसके भीतर जगत् भ्रम भासने लगताहै, वह स्वप्न कहाताहै। अब सुषुप्ति का क्रम सुनो। मन, वाणी और शरीरसे जहां कोई क्षोभ नहीं और स्वच्छवृत्ति जीवधातु भीतर स्थित है; हृदयकोश में प्राणवायु से क्षोभ नहीं होता और नाड़ी रस से पूर्ण होती हैं उस मार्ग से प्राण आनेजाने से रहित होते हैं और क्षोभ से रहित सम वायुचलता है उसका नाम सुषुप्तिहै। जैसे वायुसे रहित एकान्त गृह में दीपक उज्ज्वल प्रकाशता है तैसे ही वहां संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है। जैसे तिलों में तेल स्थित होताहै तैसेही जीव संवित् कलनासे जो कलता है सो उस काल में अपने आप में स्थित होता है। जैसे बरफ़ में शीतलता और घृतमें चिकनाई होती है तैसेही वहां संवित्सत्ता स्थित होती है; उसका नाम सषुप्ति अवस्था है जड़रूप उस सुषुप्ति अवस्था से जागकर दृश्यभावको न प्राप्त हो और निर्विकल्प प्रकाश में स्थित हो सो ज्ञानरूप तुरीयाहै। तब वह व्यवहारकरे तोभी जीवन्मुक्त है; वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में बन्धवान् नहीं होता। हे रामजी! आत्मसत्ता से फुरना होकर स्वरूप विस्मरण होजाता है और फुरना दृढ़ होकर स्थित होता है इसी का नाम जाग्रत् है। स्वरूप से प्रमाद दोष करके फुरे और जो जगत् भासे उसको सतरूप जाने और यह प्रतीति थोड़े काल रहकर फिर निवृत्त होजावे इसका नाम स्वप्न है। दृश्य के फुरने का अभाव होजावे और अज्ञातवृत्ति जड़तारूप रहै उसका नाम सुषुप्ति है। अनुभव में ज्ञान

स्थित रहै और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति का व्यवहार हो पर निश्चय में इ
का सद्भाव रञ्चक भी न हो केवल ज्ञानमें अहं प्रतीतिहो और वृत्ति उससे चल
यमान न हो उसका नाम तुरीयापदहै। उसमें स्थित हुआ जीवन्मुक्त होता
जाग्रत्स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंमें जीव स्थित होतेहैं। जब नाड़ी अन्न
रस से पूर्ण होजाती हैं और प्राणवायु हृदयनाम्नी नाड़ीमें नहीं आता
चित्तसंवित् अक्षोभरूप सुषुप्ति होता है। जब अन्न उस नाड़ी से पचता
और प्राणवायु चलने लगता है तब चित्तसंवित् क्षोभरूप फुरने लगता
और उस फुरने से अपने भीतर हो बड़े जगत् भ्रम देखता है; जैसे बीज
वृक्ष होता है। जब वायु का रस नाड़ी में बहुत होताहै तब चित्त स
आकाशमें उड़ना, वायु, अँधेरी आदिक पदार्थोंको देखताहै; जब कफका
नाड़ीमें अधिक होताहै तब फूल, बेल, बावलियां, जल, मेघ, बगीचे आदि
पदार्थ भासतेहैं और जब पित्त की अधिकता होती है तब उष्णरूप अग्नि
रक्त, वस्त्र आदिक भासनेलगते हैं। इस प्रकार वासना के अनुसार जगत्
देखताहै और जैसी २ भावना दृढ़ होतीहै तैसाही पदार्थ दृढ़हो भासता
जब पवन क्षोभायमान होता है तब चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वारके बा
निकलकर रूपादिक का अनुभव करता है। चिरपर्यन्त सत् जानने
नाम जाग्रत्है। वासना के अनुसार मनरूपी शरीरसे जीव नेत्र, जिह्वादि
विना जो रूप रसादिकका अनुभव होताहै उसका नाम स्वप्नहै पर स्व
से न कोई स्वप्नाहै, न जाग्रत् है और न सुषुप्ति है; केवल सत्ता अपने आ
में स्थितहै; उसी के फुरनेका नाम जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति है। चिरका
फुरने का नाम जाग्रत् है और अल्पकाल फुरनेका नाम स्वप्ना है सो के
प्रतीति का भेद है वास्तव में कुछ भेद नहीं और जो वास्तव में भेद
हुआ तो जगत् स्वप्नरूप हुआ। इससे यही भावना दृढ़करो कि, जग
असत्रूप स्वप्नवत् है इसमें सत्भावना करनी दुःखका कारणहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयारूप
वर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥ १६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! यह मैंने तुमको मन का रूप निरू

करके दिखाया है और अवस्थाओं का निरूपण भी इसी निमित्त किया है; और प्रयोजन कुछ नहीं। इससे जैसा निश्चय चित्त में होता है तैसा ही हो भासता है। जैसे अग्नि में लोहा डालिये तो अग्निरूप होजाता है तैसेही मन जिस पदार्थ से लगता है उसीका रूप होजाताहै। भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मनहीं से होते हैं; न कोई सत् है, न असत् है केवल मनकी चपलता से सब फुरते हैं। मनके मोहसे ही जगत् भासता है और मन के नष्ट हुये से नष्ट होजाता है। जो मलीन मन है सो अपने फुरने से जगत् को रचता है। यह मनहीं पुरुष है इसको तुम अशुभमार्ग में न लगाना। जब मनको जीतोगे तब सब जगत् में तुम्हारी जय होगी। मन के जीते से सब जगत् जीताजाता है और तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है। जो शरीर का नाम पुरुष होता तो शुक्र का शरीर पड़ा था, वह दूसरा शरीर न रचता पर उसका शरीर तो वहां पड़ारहा और मन और शरीरों को रचता फिरा; इससे शरीर का नाम पुरुष नहीं मनहीं का नाम पुरुष है। शरीर चित्त का किया होताहै, शरीरका किया चित्त नहीं होता। जिस ओर चित्त जा लगता है उसी पदार्थ की प्राप्ति होती है; इसमें संशय नहीं। इससे यह अतितुच्छ पद है। आत्मसत्ता का चित्त में सदा अभ्यास करो और भ्रम को त्यागदो। जब मन दृश्य की ओर संसरता है तब अनेक जन्म के दुःखों को प्राप्तहोता है और जब आत्मा की ओर इसका प्रवाह होताहै तब परमपद को प्राप्त होता है। इससे दृश्यभ्रम को त्याग के आत्मपद में स्थित करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपा० समाप्तिवर्णनन्नाम-विंशतितमस्सर्गः॥ २०॥

रामजी ने पूछा; हे भगवन्! सर्व धर्मों के वेत्ता! जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके फैल जाताहै तैसेही मेरे हृदय में एक बड़ा संशय उत्पन्न होकर फैलगया है कि, देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित नित्य, निर्मल, विस्तृत और निरामय आत्मसत्ता में मलीन संवित् मन नामक कहांसे आया और कैसे स्थित हुआ? जिस से भिन्न कुछ वस्तु नहीं है

और न आगे होगी उसमें कलङ्कता कहांसे आई? वशिष्ठजी बोले, रामजी! तुमने भला प्रश्न किया। अब तुम्हारी बुद्धि मोक्षभागी हुई जैसे नन्दनवन के कल्पवृक्ष में कलामञ्जरी लगती है तैसेही तुम्हारी बु पूर्व अपर के विचार से जागी है। अब तुम उस पद को प्राप्तहोगे जि पद को शुक आदिक प्राप्तहुये हैं। तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं सिद्धा काल में दूंगा और उस काल में तुमको आत्मपद हस्तामलकवत् भासेग हे रामजी! सिद्धान्त का प्रश्नोत्तर सिद्धान्तकाल में सोहता है अ जिज्ञासु का प्रश्नोत्तर जिज्ञासुकाल में सोहता है। जैसे वर्षाकाल में म की वाणी शोभती है और शरद्कालमें हंस की वाणी शोभती है अ जैसे वर्षा काल के नष्टहुये स्वाभाविकही आकाश की नीलता भास है और वर्षाकाल में मेघ की घटा शोभती है तैसेही प्रश्नोत्तरभी हैं। जै समय हो तैसाही शोभता है। हे रामजी! मैं तुमको मन का स्वर अनेक प्रकार के दृष्टान्तों और युक्तियों से कहूंगा और जिस प्रकार य निवृत्त होता है वह भी क्रम से बहुत प्रकार कहूंगा। मनकी शान्ति उपाय जो वेदों ने निर्णय किये हैं और शास्त्रकारों ने कहे हैं उनके लक्ष तुम सुनो। चञ्चल मन जैसा जैसा भाव अङ्गीकार करताहै तैसाही तैसा स होकर भासनेलगता है। जैसे पवन जैसी सुगन्ध से मिलता है तैसाही उसक स्वभाव होजाता है और जैसे जल जिस रङ्ग से मिलता है तैसाही रू हो भासता है तैसेही मन जिस पदार्थ से मिलता है उसका रूप होजाताहै मनसे रहित जो शरीर से क्रिया करता है उसका फल कुछ नहीं होत और मनसे करताहै उसका पूर्ण फल होताहै। जिस ओर मन जाता उसी ओर शरीर भी लगजाता है। बुद्धि इन्द्रिय जो मनरूपहैं वे यदि क्षो को प्राप्त हों और देह इन्द्रिय स्थिर हों तौभी कार्य होता है पर यदि म क्षोभित न हो और कर्मेन्द्रिय क्षोभन हों तो कार्य नहीं होता। जैसे धूल क्षोभायमान हो तो पवन विना आकाश को उड़ नहीं सक्ती और पवन क्षोभायमान हो तो चाहे जैसी धूल स्थित हो उसको उड़ा लेजातीहै; तैसे ही देह पड़ारहताहै मन अपने फुरनेसे स्वप्न में अनेक अवस्था को प्रा

होता है और जाग्रत् में भी जिस ओर मन फुरता है देह को भी वहांही लेजाता है। इससे सब कार्यों का बीज मनहीं है और मनसेही सब कर्म होतेहैं। मन और कर्म परस्पर अभिन्नरूप हैं। जैसे फूल और सुगन्ध अभिन्नरूप हैं तैसेही मन और कर्म हैं। जिस कर्म का अभ्यास मन में दृढ़ होता है उसीकी शाखा फैलती हैं; उसी फल को प्राप्त होता है और उसी स्वाद का अनुभव करता है। जिस २ भाव को चित्त ग्रहण करता है उसी २ भाव को प्राप्त होताहै और उसीको कल्पनारूप मानता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पदार्थ हैं; उनमें जिसकी दृढ़भावना मन करता है उसीको सिद्ध करता है। कपिलदेव ने सब शास्त्र अपने मनकी सत्ताही से बनाये हैं। उसने निर्णय किया है कि, प्रकृत अर्थात् माया के दो स्वभाव हैं—एक अनुलोम परिणाम और दूसरा प्रतिलोम परिणाम। जब प्रतिलोम परिणाम होता है तब दृश्यभाव प्राप्त होता है और अनुलोम परिणाम से अन्तर्मुख आत्माकी ओर आताहै। आत्मा शुद्धरूप है इससे आत्मा की ओर अनुलोमपरिणाम ही मोक्षका कारण है और कोई उपाय नहीं। वेदान्तवादियों ने यह निश्चय किया है कि, यह सर्व ब्रह्महीहै। शम, दम आदिक से जब मन सम्पन्न होता है तब यह निश्चय धारण होताहै कि; सर्व ब्रह्म है। उनके चित्त में यही निश्चय है। ब्रह्मज्ञान के सिवा और किसी यत्न से मोक्ष नहीं होती विज्ञानवादी कहते हैं कि, जबतक बुद्धि फुरती है तबतक संसारहै और जब यह अपने स्वभाव में फुरती है तब उस काल में स्वरूप स्थित होताहै। जब वह काल आवेगा तब मोक्ष की प्राप्ति होगी। अर्हन्तजो से बड़े हैं उनको अपने निश्चयानुसार भासता है। मीमांसा, पातञ्जल, वैशेषिक और न्यायादिक शास्त्रकार अपनी २ बुद्धि से जैसा २ निश्चय धरते हैं तैसाही तैसा उनको भासता है; स्वरूप में न कोई मत है और न शास्त्र है। सबका कारण मन है, मन को ही अङ्गीकार करके सब मत हूये हैं। न नींब कड़ुआ है, न मधु मीठा है; न अग्नि उष्ण है और न चन्द्रमा शीतल है; जैसा २ जिसके मन में निश्चय होताहै तैसाही तैसा उसको भासताहै। किसीको नींब प्यारी होती

है और मधु कटु लगता है। नींब के कीट को मधु नहीं रुचता तो क्य मधु कटुक होगया ? विरहिणी स्त्री को चन्द्रमा अग्निवत् भासताहै औ चकोर अग्नि को भक्षण करलेता है निदान जैसी २ भावना पदार्थ होती है तैसाही तैसा हो भासता है। सब जगत् भावनामात्र है; जि पुरुष को दृश्य में भावना है वह अनेक दुःख और भ्रम देखता है औ जिसको शम दमादिक साधन से अकृत्रिमपद की प्राप्ति होती है औ मन तदाकार हुआ है वह शान्तिमान् होता है दूसरा उस सुख को नह प्राप्त होता है। हे रामजी ! यह जगत् दृश्य तुम्हारे मन के स्मरण स्थित हुआ है सो तुच्छरूप है। इसको मन से त्यागकरो। ये सुख दुः आदिक महाभ्रम देनेवाले हैं और यह संसार अपवित्र और असत् तथ मोहरूप महाभय का कारण है। आभास मायामात्र और अविद्यारूपहै इसकी भावना भय का कारण है। जब जगत् के साथ संवित् की तन्म यता होती है तब उसका नाम कर्म बुद्धीश्वर कहते हैं। जब द्रष्टा क दृश्य से संयोग होता है तब बड़े मोह को प्राप्त होता है; दृश्य से मिल भ्रम से अनात्म में आत्माभिमान करताहै और देहादिकको अपना आ जानताहै। संसाररूप मद से जीव उन्मत्त होजाता है और स्वरूप क सँभाल इसको नहीं रहती—इसी का नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं जो दृश्य से मिला है उसका कल्याण नहीं होता और जिसके आगे म का पटल है उसको स्वरूपका भान नहीं होता। जैसे सूर्य के आगे ज मेघ का आवरण आता है तब वह नहीं भासता; तैसेही मन के आवर से आत्मा नहीं भासता। इससे मनरूपी आवरण को दूर करो। मन क रूप फुरना है; उसको संकल्प कहते हैं। जो जो संकल्प फुरें उनको त्या करो; असंकल्प होनेसे मन नष्ट होजावेगा। हे रामजी ! जब तुम स भाव और सर्वपदार्थों में असङ्ग होगे तब द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होगा औ उससे तुमको निर्विकल्प चिदात्मा की प्राप्ति होगी जहां न जगत् क सत्ता है, न सुखहै और न दुःख है केवल केवली भाव है जो अपने आप प्रकाशता है। जब संसार की भावना तुम्हारे हृदय से उठजावेगी त

तुम निर्मल स्वरूप में स्थित होगे और तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजावेगा। जैसे रस्सी के सम्यक् ज्ञान से सर्पभ्रम नष्ट होजाता है तैसेही चिदात्मा के सम्यक्ज्ञान से जगत्भ्रम नष्ट होजावेगा। इससे तुम दृश्यभावना को त्याग के चिदात्मा की भावना करो; जैसी भावना होती है तैसे हो भासता है। यदि प्रथम भावना को त्यागके और भावना करता है तो प्रथम का अभाव होजाताहै। जैसे दिन हुयेसे रात्रि का अभाव होजाता है तैसेही आत्मभावना से दृश्यभावना का अभाव होजाता है। जैसे लोहे को लोहा काटता है तैसेही भावना को भावना काटती है। इससे अतुच्छ निरुपाधि और निःसंशय पद का आश्रय करो। जब उसकी भावना दृढ़ होगी तब तुम भ्रम से रहित सिद्धपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! तुम्हारा आत्मस्वरूप है; तुम बुद्धि आदिक की कल्पना मत करो। जैसे बालकसे कहिये कि, शून्यमें सिंह है तो वह भयवान् होताहै तैसेही जब शून्यशरीरादिकों में विचारसे बुद्धि नहीं आती और यह मैं हूं, 'यह और है' इत्यादिक जो कल्पना होती हैं सो ऐसी हैं जैसे बालकको अपनी परछाहीं में वैताल कल्पना होती है। जोकि अपनी कल्पना के वशसे भाव, अभाव, शुभ, अशुभ क्षण २ प्राप्त होते हैं और कोई सत्रूप कोई असत्रूप, भासते हैं। जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसा भासताहै; परस्त्रीमें जब काम बुद्धि होती है तब स्पर्श से स्त्रीवत् आनन्ददायक होती है और जो उसी स्त्री में माताकी भावना करता है तो उससे कामबुद्धि जाती रहती है। इस से देखो जैसी २ भावना होती है तैसाही तैसा हो भासताहै। भावना के अनुसार फल होता है और तत्काल उसी आकार को देखता है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं और ऐसा कोई नहीं जो असत् नहीं। जैसा २ किसी का निर्णय किया है तैसाही तैसा उसको भासता है। इससे इस संसार की भावनाको त्यागके स्वरूपमें स्थित हो। हे रामजी! मणि में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको मणि दूर नहीं करसक्ती पर तुम तो मणिवत् जड़ नहीं हो; तुम चैतन्यरूप आत्मा हो, तुम्हारेमें जो दृश्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तुम उसको त्यागकरो। जो संकल्प दृश्य का उठे

उसको असत्‌रूप जानके त्यागदो और प्रकृत व्यवहार जो प्राप्त हों उ
करो और मणि की नाईं भीतर से रञ्जत ते रहित होरहो। जैसे मणि
प्रतिबिम्ब बहिर्दृष्टि आता है और भीतर रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही बहि
व्यवहार तुम्हारे में भासे पर हृदय में राग द्वेष स्पर्श न करे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणेविज्ञानवादोनामैकविंशतितमस्सर्गः

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव को सन्तों के संग और
शास्त्रों के विचार से विचार उपजता है तब दूसरी ओर से वृत्ति नि
होती है और संसार का मनन भी निवृत्त होजाताहै तब विवेकरूपी बु
उदय होती है और संसार दृश्यकी त्याग बुद्धि होती है। तथा द्रष्टा आ
में अङ्गीकार बुद्धि होती है। द्रष्टा पुरुष प्रकट होता है और दृश्य अदृश्य
को प्राप्त होता है अर्थात् द्रष्टा के लक्ष से दृश्य को असत्‌रूप जान
है। जब यह पुरुष ज्ञान ज्ञेय होता है तब परमतत्त्व में जागता है
संसार की ओर से घन सुषुप्ति, मृतक की नाईं होजाताहै और संसार
ओर से वैराग्य, भोग में अभोग और रस में निरसबुद्धि उपजती
जब ऐसी बुद्धि होती है तब मन अपनी सत्ता को त्यागकर आत्म
होता है। जैसे बरफ़ का पुतला सूर्य के तेज से जल रूप होजाता
तैसे ही जब मन में संसार की सत्यता होती है तब उस फुरने से
भागी होता है। जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है तब मन गल
आत्मरूप होजाता है जैसे जबतक मरुस्थल में धूप होती है तबत
वहांसे मृगतृष्णा की नदी नष्ट नहीं होती और जब वर्षा होतीहै तब
होजाती है तैसे ही जबतक संसार की सत्यता होती है तब तक
नष्ट नहीं होता और जब ज्ञान की वर्षा होती है तब दृश्यसहित
नष्ट होजाता है। हे रामजी! संसाररूपी वासना के जाल में जीवरू
पक्षी फँसे हैं; जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतरे तब जीव निर्बन्ध हो
जैसे मलीनजल निर्मल होता है तैसे ही वैराग्य के वश से जीव
स्वभाव निर्मल हो जाता है। जब जीव निराग निरुपाधि के संग औ
राग, द्वेष और मोह से रहित होता है तब जैसे पिंजरे के टूटे प

निर्बन्ध होता है तैसे ही जीव निर्बन्ध होजाता है सन्देह दुर्मति शान्त होजाती है जगत्भ्रम नष्ट होजाता है और हृदय पूर्ण होजाता है। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसे ही ज्ञानवान् शोभता है, सबमे उत्तम सौन्दर्यता को प्राप्त होता है और उसका उदय अस्त रागद्वेष नष्ट होजाता; सर्व समताभाव वर्त्तता है और न्यूनता और विशेषताभाव नष्ट होजाता है। जैसे पवन से रहित सोमसमुद्र अचल होताहै तैसेही असङ्ग पुरुष मूकजड़ अन्धकर्म की वासना से रहित अचल होजाता है और वह सब चेतन प्रकाश देखताहै; उसकी बुद्धि विवेक से प्रफुल्लित होजाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं तैसे ही वह पुरुष पूर्णिमाके चन्द्रमावत् परम लक्ष्मी से शोभताहै। बहुत कहने से क्या है ज्ञानज्ञेय पुरुष आकाशवत् होजाता है; वह न उदय होता है और न अस्त होता है। विचार करके जिसने आत्मतत्त्व को जानाहै वह उस पद को प्राप्त होता है जहां ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं और सबही उसपर प्रसन्न होतेहैं। प्रकट आकार उसका भासताहै पर हृदय अहंकार से रहित है और विकल्प के समूह उसको नहीं खींचसक्के–जैसे जल के अभाव जाननेवालेको मृगतृष्णाकी नदी नहीं खींचसक्की। हे रामजी! आविर्भाव और तिरोभावरूप जो संसार है उसको रमणीयरूप जानके ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देह के नाश में वह अपना नाश नहीं मानता और उपजने में उपजना नहीं मानता। जैसे घट उपजे से आकाश नहीं उपजता क्योंकि, आगे सिद्धहै और घटके अभावसे आकाशका अभाव नहीं होता, तैसेही देहके उपजे से आत्मा नहीं उपजता और देहके नष्टहुये नष्ट नहीं होता। जब ऐसा विवेक उदय होताहै तब वासनाका जल नष्ट होजाता है और कोई भ्रम नहीं रहता। जैसे मृगतृष्णाकी नदीका ज्ञानसे अभाव होजाता है। जबतक जीवको यह विचार नहीं उपजता कि, मैं कौनहूं, और जगत् क्याहै, तबतक संसाररूपी अन्धकार रहताहै। जो पुरुष ऐसे जानताहै कि, 'संसार भ्रम मिथ्या उदयहुआहै' और 'परम आपदाका कारण देह अनारूप है' आत्मासे यह जगत् भिन्न नहीं और सब आत्मसत्ताकरके स्थित

है वही यथार्थ देखताहै। सब चैतन्यसत्ताहै; मैं अनन्त चिदाकाशरूपहूं
देश, काल, वस्तुके परिच्छेद से रहित हूं और आधि, व्याधि, भय, उ
जरा, मरण, जन्म आदिक संयुक्त देश में नहीं; ऐसे जो देखता है,
यथार्थ देखता है। बाल के अग्र का लक्षभाग करिये और फिर एक भाग
कोटिभाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है; ऐसे जो देखता है; वही य
देखताहै। मैं सर्वशक्तिमान् अनन्त आत्मा हूं; सर्वपदार्थों में स्थित
अद्वैत चिदादित्य हूं; ऐसे जो देखताहै वही यथार्थ देखताहै। अध ऊर्ध्व
और सबमें मैं व्यापा हूं, मुझसे भिन्न द्वैत कुछ नहीं; ऐसे जो देखता है
यथार्थ देखताहै। जैसे तागे में माला के दाने पिरोये होते हैं तैसे ही
मुझसे पिरोये हैं, ऐसे जो देखताहै वही यथार्थ देखता है। न मैं हूं, न
जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है; सत् असत् के मध्य में जो एक
प्रकाशक है और त्रिलोकी में जो एक है वही मैं एक अविनाशी पुरुष
जैसे समुद्र में तरङ्ग फुरते हैं और लीन होजाते हैं तैसे ही मेरे में ज
फुरतेहैं और लीन होतेहैं। अथवा प्रथम अहं है, तब दृश्य जगत् हो
सो न मैं हूं, न जगत् है केवल एक आत्मसत्ता है। अहं और
उसमें कोई नहीं ऐसे जो देखता है सो यथार्थ देखता है। दृश्य से र
मैं चैतन्यरूप भैरव अपार हूं और मैं ही जगत् जाल को पूर्ण कर
हूं। जो पुरुष ज्ञानवान् हैं वे सुख दुःख और भाव-अभाव में चलाय
नहीं होते, वे केवल ब्रह्मरूप में स्थित हैं और जगत् के भाव-अभाव
रहित अनाभास सन्मात्ररूप हैं। जो हेयोपादेयबुद्धि से रहित आकाश
सर्वात्मभावमें स्थित हुआहै उसको जगत् का कोई पदार्थ अपने वश
करसक्ता; वह महात्मा पुरुष महेश्वर, तमप्रकाश से रहित, सब कल्पन
से मुक्त, सम और स्वच्छरूप है और उदय अस्त से रहित समवृत्त है।
ऐसी परमबोध अनन्त सत्ता में स्थित है उसको मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयो॰स्थिति॰अनुत्तमविश्रामवर्णनन्नामद्वाविंशतितमस्सर्गः

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसने उत्तम पदका आश्रय कियाहै
जीवन्मुक्त पुरुष का कुम्हार के चक्र की नाईं प्रारब्ध शेष रहाहै। वह

शरीररूपी नगर में राज्य करता है और लेपायमान नहीं होता। उसको भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। जैसे इन्द्र का वन सुखरूप है तैसे ही उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है। शरीर के सुख से वह सुखी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता, अपने स्वरूप में स्थित रहता है। रामजीने पूछा, हे महामुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है; उसमें रहके योगिराज क्या करता है और सुख कैसे भोगता है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानी का शरीररूपी नगर रमणीय होता है और सर्वगुणसंयुक्त ज्ञानवानों को अनन्त आनन्द विलास दिखाता है; जैसे सूर्य प्रकाश को उदय करता है। उस शरीररूपी नगर में गांठें ईंटें हैं; रुधिर और मांस गारा है; अस्थि थम्भे हैं; किवाट पट हैं; रोम वनस्पति हैं उदर खाईं है; छाती चौक है; नव द्वार हैं और उन में नेत्र झरोखे हैं; उन द्वारों से त्रिलोकी का प्रकाश होता है; हाथ गली हैं, जिनसे लेता देता है; मुख बड़ी कन्दरा है; ग्रीवा और शीश बड़े मन्दिर हैं और रेखा माला हैं जो भिन्न २ लगी हुई हैं; नाड़ी विभाग करने के स्थान हैं और प्राणवायु आदिक से नाड़ी में जीव विचरते हैं; चिन्तामणिरूपी आत्मा में श्रेष्ठ बुद्धिरूपी स्त्री रहती है जिसने इन्द्रियरूपी वानर बांध रक्खे हैं; और जिसके हास्य में महासुन्दर फूल हैं। ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान् को महासुख का निमित्त है और सौभाग्य सुन्दररूप है। उस शरीर के सुखदुःख से ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता। हे रामजी! जो अज्ञानी हैं उनको शरीररूपी नगर अनन्त दुःख का भण्डार है क्योंकि, अज्ञानसे वे शरीर के नष्ट हुये आपको नष्ट हुआ मानते हैं और ज्ञानवान् इसके नाश हुए अपना नाश नहीं मानते। वे जबतक रहते हैं तबतक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको ग्रहण करते हैं; वे इष्टरूप होके भासते हैं और शरीररूपी नगर में भ्रमसे रहित निष्कण्टक राज्य करते हैं। वे लोभसे रहित हैं इस कारण शत्रु कुछ नहीं लेते और उनको अपने स्थान में आने नहीं देते। वे शत्रु काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान देशहैं, उनमें वे आप प्रवेश नहीं करते और अपने देश में उनको आने नहीं

देते; सावधानही रहते हैं। उनके देश उदारता, धीरज, सन्तोष, वैरा
समता, मैत्रता, मुदिता और उपेक्षा हैं; उनमें अज्ञान नहीं प्रवेश क
पाता और आप ध्यानरूपी नगर में रहता है; सत्यता और एकता दो
स्त्रियों को साथ रखता है और उनसे सदा शोभायमान रहता है।
चन्द्रमा चित्रा और विशाखा दोनों स्त्रियों से शोभता है तैसेही ज्ञान
सत्यता और एकतासे शोभता है। वह मनरूपी घोड़े पर आरूढ़ ह
और विचाररूपी लगाम उसके लगाकर जीव ब्रह्मकी एकतारूपी स
तीर्थ में स्नान करने जाताहै जिससे सदा आनन्दवान् रहता है
भोग और मोक्ष दोनोंसे सम्पन्न होता है। जैसे इन्द्र अपने पुर में शोभ
है तैसेही ज्ञानवान् देह में शोभता है और जैसे घट के फूटेसे आकाश
कुछ न्यूनता नहीं होती तैसेही देहके नाश हुये ज्ञानी की कुछ ह
नहीं होती वह ज्योंका त्योंहीं रहता है। यद्यपि उसके देह होती है तौ
वह उससे स्पर्श नहीं करता-जैसे घट से आकाश स्पर्श नहीं करता
सर्व क्रिया को कर्त्ता भोक्ता है परन्तु किसीमें लिप्त नहीं होता, सदा
रस भगवान् आत्मदेव में रहता है। जब वह विमान पर आरूढ़ ह
शरीररूपी नगर में विचरता है तब मैत्री रूपी नेत्रों से सबको देखता
मैत्रीभाव उसमें सदा रहता है और सत्यता और एकता सदा उसके
हैं उससे शोभता है और सदा आनन्दवान् विचरता है। वह जीवों
दुःखरूपी आरे से कटते देखता है जैसे कोई पहाड़ पर चढ़के पृथ्वी
लोगों को जलता देखे और आप आनन्दवान् हो; तैसे वह ज्ञान
जीवों को दुःखी देखता है और आप आनन्दवान् है। उसकी दृष्टि में
सदा अद्वैतरूप है और आत्मानन्द की अपेक्षा से अनात्म धर्म को दु
देखता है उसके निश्चय में जगत्जीव कोई नहीं और वह चारों प्रयो
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णता को प्राप्त होताहै। किसीओर से उस
न्यूनता नहीं; वह सर्व सम्पदा सम्पन्न विराजमान होता है। जैसे पू
मासी का चन्द्रमा न्यूनता से रहित विराजता है तैसेही यद्यपि वह भो
को सेवता है तौभी उसको वे दुःखदायक नहीं होते। जैसे कालकूट

को सदाशिव ने पानकिया था परन्तु उनको वह दुःखदायक न हुआ; तैसेही वह भी समर्थ है। जैसे चोरको जानके जब उसे अपने वशवर्ती किया तबमित्रभाव होजाताहै तैसेही भोग उसको दुःख नहीं देते। जब जीव भोगों को जानताहै कि, ये कुछ वस्तु नहीं हैं तब वे सुख के कारण होते हैं और जबतक इनको सत् जानके आसक्त होता है तबतक दुःखके कारण होते हैं। हे रामजी! जैसे यात्रामें अनेक स्त्री, पुरुष मिलते हैं और परस्पर इकट्ठे बैठते और चलते फिरते हैं परन्तु आपस में आसक्त नहीं होते-आगे पीछे चले जाते हैं-तैसेही ज्ञानवान् संसार के पदार्थों में चित्त को नहीं लगाते। जैसे कोई कासिद किसी देश में जाताहै और मार्ग में कोई सुन्दर रमणीय स्थान दृष्टि आते और कोई मलीन कष्ट के स्थान भासते हैं परन्तु वह राग द्वेष किसी में नहीं करता, जैसे तैसे देखता चलाजाता है, तैसेही ज्ञानवान् भोगक्रिया में राग द्वेष से बन्धवान् नहीं होता। उसके सर्वसंशय सम्यक्ज्ञान से शान्त होजाते हैं, कोई आश्चर्य पदार्थ उसको नहीं देखाईदेते; उसके वासना के समूह नष्ट होजाते हैं, चक्रवर्ती राजा की नाईं शोभताहै और परिपूर्ण होके स्थित होताहै। जैसे क्षीरसमुद्र अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता तैसेही ज्ञानी अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता। हे रामजी! इन जीवों को भोग की इच्छाही दीन करती है जिससे वे आत्मपद से गिरते हैं और अनात्म में प्राप्त हो कृपण होजाते हैं। उनको देखके उत्तम आत्मपद आलम्बी हँसते हैं कि, ये मिथ्या दीनभाव को प्राप्तहुये हैं। जैसे कोई स्वामी होकर स्त्रीके वश हो और स्त्री स्वामी की नाईं हो तो उसको देखके लोग हँसतेहैं; तैसेही ज्ञानवान् भोगकी तृष्णावाले को दीन देखके हँसते हैं। चञ्चल मनहीं परमसिद्धान्त सुख से जीवों को गिराता है; इससे तुम मनरूपी हस्ती को विचाररूपी कुन्देसे वश करो तब सिद्धपद को प्राप्तहोगे। जिसका मन विषयोंकी ओर धावताहै वह संसार-रूपी विषका बीज बोताहै। इससे प्रथम इसमनको ताड़न करो तब शान्ति की प्राप्तिहोगी। जो मानी होताहै और कोई उसका मान करताहै तो वह उपकार कुछ नहीं मानता पर जब प्रथम उसको ताड़न करके थोड़े ही

उपकार कियेसे प्रसन्न होताहै। जैसे धान्य जलसे पूर्ण होतेहैं तब ज
सींचने से उनमें उपकार नहीं होता और जो ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप
तप्त होते हैं तो थोड़ा जल सींचने से भी उनको अमृतवत् होता है,
ही जो प्रथम मन का सन्मान करिये तो मित्रभाव नहीं होता और
ताड़न करके पीछे सन्मान कीजिये तो उपकार मानके मित्र
रक्खेगा। ताड़न करना विषय से संयम करना है जब संयम क
निर्वाण हो तब यह सन्मान करना चाहिये कि, संसार के पदार्थ
बर्त्तना। तब वह शत्रुभाव को त्याग के मित्र होजाता है, जैसे वर्षा
में जब नदी जल से पूर्ण होती है तब उसमें जल का उपकार नहीं ह
पर शरद्काल में जल का उपकार होता है। जैसे राजा को और
का राज्य प्राप्त हो तो वह कुछ प्रसन्न नहीं होता पर यदि प्रथम
बन्दीखाने में डालिये और फिर थोड़ा ग्रास दीजिये तो उससे भी प्र
होता है; तैसे ही जब प्रथम मन को ताड़न कीजिये तब थोड़े सन्म
से भी सुखदायक होता है। इससे तुम हाथ से हाथ दबा के; दांतों से द
मिलाके और अंग से अंग रोकके इन्द्रियों को जीत लो। मनुष्य
हृदय में मनरूपी सर्प कुण्डल मारके बैठा है और कल्पनारूपी विष
पूर्ण है। जिसने उसको मर्द्दन किया है उसको मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे शरीरनगरवर्णनन्नाम
त्रयोविंशातितमस्सर्गः॥ २३ ॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे रामजी! अज्ञानी जीव महानरक को प्र
होता है। आशारूपी बाण की शलाका उसको लगती है और इन्द्रि
रूपी शत्रु मारते हैं। इन्द्रियां दुष्ट बड़ी कृतघ्न हैं; जिस देह के आश्र
रहती हैं उसको शोक और इच्छा से पूर्ण करती हैं। ये महादुष्ट अ
दुःखदायक भण्डार हैं; इनको तुम जीतो। इन्द्रियां और मनरूपी ची
पक्षी हैं, जब इनको विषयभोग नहीं होते तब ऊर्ध्व को उड़ते हैं अ
जब विषय प्राप्त होते हैं तब नीचे को आ गिरते हैं। जिस पुरुष
विवेकरूपी जाल से इनको बांधा है उसको ये भोजन नहीं करसक्ते जैसे

पाषाण के कमल को हाथी भोजन नहीं कर सक्ता। हे रामजी! ये भोग आपातरमणीय और अत्यन्त विरसहैं; जो पुरुष इनमें रमण करता है वह नरक को प्राप्त होगा और जो पुरुष ज्ञानके धन से सम्पन्नहै और देहरूपी देश में रहताहै वह परम शोभा पाताहै और आनन्दवान् होताहै क्योंकि; बड़े ऐश्वर्य से उसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं। हे रामजी! सुवर्ण के मन्दिर में रहने से ऐसा सुख नहीं मिलता जैसा निरवासनिक ज्ञानवान् को होताहै। जिस पुरुष ने इन्द्रियों और असत्‌रूपी शत्रु को जीता है वह परम शोभा से शोभता है—जैसे हिमऋतु को जीत के वसन्तऋतु में मञ्जरी शोभती हैं। जिस पुरुष के चित्त का गर्व नष्टहुआ है और जिसने इन्द्रियरूपीशत्रु जीते हैं उसकी भोगवासना नष्ट होजाती हैं—जैसे शीतकाल में पद्मिनियां नष्ट होजाती हैं। हे रामजी! वासनारूपी वैताल निशाचर तबतक विचरते हैं जबतक एकतत्त्वका दृढ़ अभ्यास करके मनको नहीं जीतते; जब विवेकरूपी सूर्य उदय होताहै तब अन्धकार नष्ट होजाता है। जब विवेक से मनुष्य मनको वश करताहै तब इन्द्रियां भृत्य (टहलुये) होजाती हैं, मनरूपी सब मित्र होजातेहैं और आप राजा होके स्वरूपराज को भोगता है। हे रामजी! विवेकी की इन्द्रियां पतिव्रता स्त्रीवत् होजाती हैं; मन सीताकी नाईं पालना करनेवाला होताहै और चित्त सुहृद्‌होजाता है। जब निश्चयवान् पुरुष सत्‌शास्त्र को विचारताहै तब परमसिद्धान्त को प्राप्त होताहै और मन अपने मननभाव को त्यागके शान्तरूप पितावत् प्रतिपालक होजाताहै। इससे तुम मनको विवेक से वशकरो। मनरूपी मणिको आत्मविचार शिला से घिसो; वैराग जलसे उज्ज्वल करो और अभ्यासरूपी छेदकरके विवेकरूपी तागेसे पिरोय कण्ठमें पहिनो तो शोभा देती है। जन्मरूपी वृक्षको विवेकरूपी कुदाड़ा काटडालताहै और मनरूपी शत्रुको विवेकरूपी मित्र नष्ट करता है और सदा शुभकर्म कराताहै और विषयके परिणामिक दुःख को निकट नहीं आनेदेता। इससे मनको वश करनाही आनन्दका कारणहै। जबतक मन वश नहीं होता तबतक दुःख देता है और जब वश होता है तब सुखदायक होताहै। हे रामजी!

मनरूपी मणि भोग की तृष्णा से कलङ्कितहुई है; जब विवेकरूपी ज
इसको शुद्धकरे तब शोभायमान् होगी। यह संसार महाभयका देनेवा
है। अल्प विवेकवान् पुरुष भी मायारूपी संसार में गिरपड़ते हैं; तुम अ
जीवोंकी नाईं इसमें मत गिरो। यह संसार मायारूप है और अनेक
की ज़ंजीर संयुक्त है। महामोहरूपी कुहिरे से जीव अन्धे होगये हैं; इ
तुम विवेकपद का आश्रय करके बोध से सत् का अवलोकन करो अ
इन्द्रियों से वैरागरूपी नौकासे संसारसमुद्र को तरजावो। शरीर भी अ
है और इसमें सुख और दुःखभी असत् हैं। तुम दाम, व्याल और कट
नाईं मत हो पर भीम, भास और दटकी स्थिति को ग्रहण करके विशो
हो। 'अहं' 'ममादिक' निश्चय वृथाहै; उसको त्यागके तत्पदका आश्र
करो। चलते, बैठते, खाते, पीते, मनमें मनन का अभाव हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनन्नाम
चतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप संसारताप के दूर करनेवाले
यह आपने क्या कहा? इसको खोलकर कहो कि, दाम, व्याल और क
की नाईं कैसे और भीम, भास, दट की स्थिति कैसेहै? जैसे वर्षाकाल
मेघ तपन को दूर करतेहैं और मोर को शब्द करके जगाते हैं तैसे
तुम अपनी कृपा से जगावो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम इस
नाईं स्थित हो, पीछे जो इष्ट हो उसमें विचरना। पाताल में सम्बर
एक दैत्यराजा माया और सर्व आश्चर्यरूप मन के मोहनेवाला था।
दैत्य ने अपनी माया से आकाश में एक नगर रचा और उसमें ब
दैत्यों के मन्दिर, सूर्य, चन्द्रमा और अनन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न दैत्य अ
रत्नों की स्त्रियां रचीं; जो गान करती थीं और जिन्हों ने देवताओं
स्त्रियां भी जीतीं। उसने वृक्ष बनाये जिनमें चन्द्रवत् फल लगे और श
पीत रत्नों की कमलिनी और सुवर्णके हंस सारस और कमल सुवर्ण
वृक्षों की बड़ी शाखोंपर बैठेहुये बनाये और कञ्जके वृक्ष जिनमें कमल
के फूल लगाये और रत्नों से जड़ेहुये सुन्दर स्थान, बरफ़ की नाईं शी

बगीचे, वनस्थान चन्दन के रचे। इन्द्रका नन्दनवन किन्तु उससे विशेष और सर्वऋतु के फूल लगाये; उनमें दैत्यों की स्त्रियां क्रीड़ा करती थीं और बड़े ऐश्वर्य रचे थे। विष्णु और सदाशिव के सदृश ऐश्वर्य संयुक्त उसने अपना नगर किया और बड़े प्रकाश संयुक्त रत्न के तारागण रचे। जब रात्रि हो तब वे चन्द्रमा के साथ उदय हों और पुतलियां गान करें। मायाके हाथी ऐसे रचे जो इन्द्रके ऐरावत को जीतलेवें। इसीप्रकार त्रिलोकी की विभूति से उत्तम विभूति उसने रची और भीतर बाहर सर्व सम्पदाओं से पूर्ण किया। सब दैत्य मण्डलेश्वर वन्दना करतेथे, आप सब दैत्यों का राजा शासन करनेवाला हुआ और सब उसकी आज्ञा में चलते थे। बड़ी भुजावाले दैत्य उस नगर में विश्राम करते थे निदान जब सम्बर दैत्य शयनकरे अथवा देशान्तर में जाय तब अवकाश देखके देवताओं के नायक उसकी सेना को मारजावें और नगर लूटलेजावें। तब सम्बर ने रक्षाकरनेवाले सेनापति रचे पर समय देखके देवता उनको भी मारगये। सम्बर ने यह सुनके बड़ा कोप किया और जीमें ठाना कि, इनको मारूं। ऐसे विचारके वह अमरापुरी पर चढ़ गया और देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वत में भवानीशंकर के पास अथवा वन कुञ्ज और समुद्र में जाछिपे। जैसे प्रलयकाल में सब दिशा शून्य होजाती हैं तैसेही स्वर्ग शून्य होगया। तब दैत्यराज अमरपुरी को शून्य देखके और भी कोपवान् हुआ और उसमें अग्नि लगाकर लोकपालों के सब पुर जला दिये और देवताओं को ढूंढ़ता रहा परन्तु वे कहीं न दीखे—जैसे पापी पुण्य को देखें और वे कहीं दृष्ट न आवें तैसेही उसे देवता कहीं दृष्ट न आये। तब सम्बर ने कुपित होके ऐसे बड़े बली तीन राक्षस सेना की रक्षा के निमित्त माया से रचे कि वे मानों काल की मूर्त्ति थे और उनके बड़े आकार ऐसे हिलते थे मानों पंखों से संयुक्त पर्वत हिलते हैं—उन्हीं के नाम दाम, व्याल, कट हैं वे अपने हाथों में कल्पवृक्ष की नाईं बड़े २ शस्त्र और भुजा लिये यथाप्राप्त कर्म में लगे रहें। उन को धर्म और कर्म का अभाव था क्योंकि; पूर्व वासना कर्म उनको न था और निर्विकल्प

चिन्मात्र उनका स्वरूप था। वे अपने स्थूल शरीर के स्वभाव सत्ता में
न थे और अनात्मभाव को भी नहीं प्राप्तभये थे। एक स्पन्दमात्र कर्म
चेतना उनमें थी। वही कर्म का बीज चित्त कलना स्पन्दरूप हुई थी
मननात्मकशस्त्रप्रहार को रचे थे और उसी को बड़े करते परन्तु हृद
स्थवासना उनको कोई न फुरती थी केवल अवकाशमात्र स्वभावसे
की क्रिया हो। जैसे अर्धसुषुप्त बालक अपने अङ्ग को स्वाभाविक हिल
है तैसेही वह वासना विना चेष्टाकरें। वे गिरना और गिराना कु
जानते थे और न यही जानतेथे कि, हम किसी को मारते हैं अथवा
मरते हैं। वे न भागना जानें और न जानें कि, हम जीते हैं व मरते
जीतहार को वे कुछ न जानें केवल शस्त्र का प्रहारकरें। जैसे यन्त्री
पुतली तागेपर चेष्टा विना संवेदन करती है तैसेही दाम, व्याल और
चेष्टाकरें। वे ऐसे महाबली थे कि, जिनके प्रहारसे पहाड़ भी चूर्णहो ज
उनको देखके सम्बर प्रसन्नहुआ कि, ये सेना की रक्षा को बड़े बली हैं
इनका नाशभी उनसे न होगा क्योंकि; इनको इष्ट-अनिष्ट कुछ नहीं
जिनको इष्ट अनिष्टका ज्ञान और वासना नहीं है उनका नाश कैसे
और वे कैसे भागें जैसे देवता के हाथी बड़े बली होके भी सुमेरुको
उखाड़ सके तैसेही देवता बड़े बली भी हैं परन्तु इनको न मारसकेंगे
बड़े बली रक्षक हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कट उत्पत्तिवर्णनन्ना
पञ्चविंशतितमस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले कि; हे रामजी! इस प्रकार जब निर्णय करके स
ने दाम, व्याल, कट स्थापनकिये तो जब देवताओं की सेना भूतल
आतीथी और सम्बर चढ़ता था तब वे भागजाते थे। निदान सम्बर
सेना को देखके देवता भी समुद्र और पहाड़ से उछल के निकल दो
बड़ीसेनासहित युद्ध करनेलगे। जैसे प्रलयकाल के समुद्र क्षोभते हैं
सब जलमय होजाता है तैसेही देवता और दैत्य सब ओर से पूर्ण हो
और बड़े बाणों से युद्ध करनेलगे। शंखध्वनि करके जो शस्त्र चलते

उनसे शब्द हों और अग्नि निकले और तारों की नाईं चमत्कार हो। शरीरों से शिर कटें और धड़ कांप२ के गिरपड़ें और दोनों ओर से शस्त्र चलें पर दाम, व्याल, कट न भागें, मारतेही जावें; जिनके प्रहार से पहाड़ चूर्ण हों। सब दिशाओं में शस्त्र पूर्ण होगये और रुधिर के ऐसे प्रवाह चले कि, उनमें देवता दैत्य मरेहुये बहतेजावें और महाप्रलय की नाईं भय उदय हुआ। एक२ अस्त्र ऐसा चले जिससे शस्त्रों की नदियां निकल पड़ें। कोई अग्निरूप; कोई मेघरूप और कोई तमरूप अस्त्र चलावें; दूसरे प्रकाशरूप; कोई निद्रारूप; कोई प्रबोधरूप; कोई सर्परूप और कोई गरुड़रूप अस्त्र चलावे। इस प्रकार वे परस्पर युद्ध करें और ब्रह्मास्त्र चलावें और शिला की वर्षाकरें। सब पृथ्वी रक्त और मांससे पूर्णहोगई और अनेकजीवों के धड़ और शीश गिरपड़े। जैसे वृक्षसे फल गिरते हैं तैसेही देवता और दैत्य गिरे और बड़ा घोर युद्ध हुआ। बहुतसे गन्धर्व, किन्नर और देवता नष्टहुये और दैत्य भी बहुत मारेगये परन्तु दैत्यों कीही कुछ जीतरही। इसप्रकार मायावी सम्बरकी सेना और देवताओंका युद्धहुआ। जैसे वर्षाकाल में आकाश में मेघघटा पूर्ण होजाती है तैसेही देवता और दैत्योंकी सेना इकट्ठी होगई और दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण होगये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटसंग्रामवर्णनन्नाम षड्विंशतितमस्सर्गः॥ २६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार घोरसंग्राम हुआ कि, देवता और दैत्यों के शरीर ऐसे गिरे जैसे पंख टूटेसे पर्वत गिरते हैं। रुधिर के प्रवाह चलते थे और बड़े शब्द होतेथे जिससे आकाश और पृथ्वी पूर्ण होगई। दामने देवताओं के समूहों को घेरलिया और व्याल ने पकड़के पहाड़ में पीस डाला। कट ने देवताओं के समूह चूर्ण किये; उनके स्थान तोड़डाले और बड़ा क्रूर संग्राम किया। देवताओं का हाथी जो मद से मस्त था वह ताड़नसे क्षीण होगया तो वहां से भयभीतहोकर भागा और देवता भी भागे। जैसे मध्याह्नके सूर्य का बड़ा प्रकाश होता है तैसेही दैत्य प्रकाशवान् हुये और जैसे बाँधके टूटने से जल का प्रवाह तीक्ष्ण वेगसे

चलता है तैसेही देवता तीक्ष्ण वेग से भागे। जल के प्रवाहवत् मर्या
छूट गई और दाम, व्याल, कट की सेना जीतगई। तब तो वे देवता
के पीछे लगके मारतेजावें। निदान जैसे काष्ठसे रहित अग्नि अन्तर्द्धा
होजाती है तैसेही बलवान् देवता बल से हीन होकर अन्तर्द्धान हो
और दैत्य उनको ढूंढ़ते फिरे परन्तु जैसे जाल से निकले पक्षी अ
बन्धन से छूटे मृग हाथ नहीं आते तैसेही देवता भी हाथ न आये
दाम, व्याल, कट तीनों सेनासहित पाताल में अपने स्वामी सम्बर
पास उसकी प्रसन्नता के लिये आये। जब देवताओंने सुना कि, दै
पाताल में गये हैं तब वे विचार करनेलगे कि, किसीप्रकार इनसे ईश
हमारी रक्षाकरे। ऐसी चिन्ता से आतुर हुये देवताओं को देख ब्रह्मा
जिनका अमिततेज है और सुन्दर रक्त वस्त्र पहिने हैं देवताओं के नि
आये और जैसे संध्याकाल में रक्त वर्ण बादल में चन्द्रमा शोभताहै तैसे
प्रकाशवान् ब्रह्माजी को देखके इन्द्रादिक देवताओं ने प्रणाम किया अ
सम्बर दैत्य की शत्रुता से कहा कि, हे त्रिलोकीके ईश्वर! हम आप
शरण आये हैं; हमारी रक्षा करो। सम्बर दैत्य ने हमको बहुत दुःख दि
है और उसके सेनापति दाम, व्याल, कट जो बड़े दैत्य हैं किसी प्रक
हमसे नहीं मारेजाते। उन्होंने हमारी सेना बहुत चूर्ण की है इसनिमि
आप इनके मारने का उपाय हमसे कहिये। तब संपूर्ण जगत् पर द
करनेवाले ब्रह्माजी ने शान्तिके कारण वचन कहे। हे अमरेश! ये दै
अभी तो नष्ट न होंगे, जब इनको अहंकार उपजेगा तब ये मरेंगे अ
तुमहीं इनको जीतोगे। मैंने इनकी भविष्यत् देखी है; ये दैत्य युद्ध
भागना नहीं जानते और मरने, मारने का ज्ञान भी इनको नहीं है ये सम
दैत्यकी मायासे रचेहैं इनका नाश कैसेहो।।जिसको 'अहं' 'मम'का अभिमा
हो उसीका नाश भी होताहै परये तो 'अहं' 'ममादिक' शत्रुओं कोजानते
नहीं इनका नाश कदाचित् न होगा। जब इनको अहंकार उपजेगा त
इनका नाश होगा इसलिये अहंकार उपजाने का उपाय मैं तुमसे कहताहू
तुम उनके साथ युद्ध करतेरहो और इस प्रकार युद्ध करो कि, कभी उन

सम्मुखरहो, कभी दाहिने रहो, कभी बायें रहो और कभी भागजावो। इस प्रकार जब तुम बारम्बार करोगे तब उनके युद्ध के अभ्यासवश से अहंकार का अंकुर उपजेगा और जब अहंकार का चमत्कार हृदय में उपजा तब उसका प्रतिबिम्ब भी देखेंगे जिससे यह वासनाभी फुर आवेगी कि; हम यह हैं, हमको यह कर्त्तव्य है, यह ग्रहण करने योग्य है और यह त्यागने योग्य है। तब वे आपको दाम, व्याल, कट जानेंगे और तुम उनको वश करलोगे और तुम्हारी जय होगी। जैसे जाल में फँसा हुआ पक्षी वश होता है तैसेही वे भी अहंकार करके वश होंगे अभी वश नहीं होते। वे तो सुख दुःखसे रहित बड़े धैर्यवान् हैं अभी उनका जीतना कठिन है। हे साधो ! जो पुरुष वासना की तांतसे बँधे हुये हैं और कीट के कार्यके वश हैं वे इस लोक में वश होजाते हैं औरजो बुद्धिमान् पुरुष निर्वासनिक हैं और जिनकी सर्वत्र असंशक्त बुद्धि है, जो किसी में बन्धवान् नहीं होते और इष्ट अनिष्ट में समभाव रहते हैं वे किसी से जीते नहीं जाते। जिनके हृदय में वासना है वे इसी रस्सीसे बँधे हुये हैं। जिनकी देह में अभिमान है वे चाहो सर्वशास्त्रों के वेत्ताभी हों तोभी उनको एक बालक भी जीतलेवे सब आपदाओं के पात्र हैं। यह देहमात्र परिच्छिन्नरूप है, जो पुरुष उसे अपना जानता है और उसमें भावती भावना करता है वह कदाचित् सर्वज्ञ हो तौभी कृपणता को प्राप्त होता है—उसमें उदारता कहांहै। सबका अपना स्वरूप अनन्त आत्मा अप्रमेय है; जिसको देहादिक में आत्माभिमान हुआ है उसने आपको आपही दीन किया है। जबतक आत्मतत्त्वसे भिन्न त्रिलोकी में कुछ भी सत् भासता है तबतक उपादेय बुद्धि होतीहै और भावनासे बँधा रहताहै।संसार में सत् भावना करनी अनन्त दुःखका कारणहै और संसार में असत्बुद्धि सुख का कारणहै। हे साधो ! जबतक दाम, व्याल, कट को जगत् के पदार्थों में आस्थभाव नहीं होती तबतक तुम उनको, जैसे मक्खी वायु को नहीं जीतसक्ती तैसेही न जीतसकोगे। जिसको देहमें अहंभावना और जगत् में सतबुद्धि होती है वहजीवहै और वही दीनताको प्राप्तहोताहै। वह चाहे

कैसा बली हो उसको जीतना सुगम है क्योंकि, वह तो तुच्छ कृपण
जिसके अन्तःकरण में वासना नहीं है और मक्षिकावत् है तौ भी सुमेर
नाईं गरिष्ठ होजाता है। हे देवताओ! जो वासना संयुक्त है वह परम
णताको प्राप्त होताहै—वही गुणी गुणोंसे बँधजाताहै। जैसे माला के द
में छिद्र होताहै तो तागे से पिरोयाजाताहै और जो छिद्रसे रहितहै वहपिर
नहीं जाता तैसे ही जिसका हृदय वासना से बिंधगया है उसके हृदय
गुण अवगुण प्रवेश करते हैं और जो निर्बंध है उसके भीतर प्रवेश न
करते। इससे जिस प्रकार 'अहं' 'इदं' आदिक वासना दाम, व्याल,
के भीतर उपजे वही उपाय करो तब तुम्हारी जय होगी। जिस २
अनिष्ट के भाव अभाव को जीव प्राप्त होते हैं वही तृष्णारूपी कञ्ज
वृक्ष है, उसी से आपदा को प्राप्त होते हैं। इससे रहित आपदा का अभ
होजाता है। जो वासनारूपी तांत से बँधेहुये हैं वह अनेक जन्म दु
पावेंगे; जो बलवान् और सर्वज्ञ कुल का बड़ा है वह भी जो तृष्णासंयु
है तो बांधा है। जैसे सिंह जंजीर से पिंजड़े में बँधा है तो उसका ब
और बड़ाई किसी काम नहीं आती तैसे ही जो तृष्णा से बँधा है
तुच्छ है। जिसको देहमात्र में अहंभाव है और जिसके हृदय में तृष
उत्पन्न होती है वह पुरुष ऐसा है जैसा पंख तागे से बँधा हो और उसक
बालक भी खींचले। यम भी उसी को वश करता और जो निर्वासनि
पुरुष है उसको कोई नहीं मारसक्ता—जैसे आकाश में उड़ते पक्षी को को
नहीं पकड़सक्ता। इससे शस्त्रयुद्ध को त्यागो और उनको वासना उ
जाओ, तब वे वश होंगे। हे इन्द्र! जिसको 'अहं' 'मम' 'इदं' आदि
वासना नहीं है और रागद्वेष से जिसका अन्तःकरण क्षोभवान् नहीं होत
उसको शस्त्र और अस्त्र से कोई नहीं जीतसक्ता। इससे दाम, व्याल, क
को और किसी उपायसे न जीत सकोगे। युद्ध के अभ्याससे जब उनक
अहंकार उपजाओगे तब,वह तुम्हारे वश होंगे। हे साधो! ये तो सम्ब
दैत्य के रचेहुये यन्त्रपुरुष हैं, इनके हृदय में कोई वासना नहीं है, जै
उसने रचे हैं तैसेही ये निर्वासनिक पुरुषहैं। जब इनको युद्ध का अभ्या

कराओगे तब इनको अहंकार वासना उपज आवेगी। यह तुमको मैंने वश करने की परमयुक्ति कही है। जबतक उनके अन्तःकरण में वासना नहीं फुरती तबतक तुमसे वे अजीत हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्याने ब्रह्मवाक्यवर्णनन्नाम सप्तविंशतितमस्सर्गः॥ २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजके और शब्द करके लीन होता है तैसेही ब्रह्मा कहके जब अन्तर्द्धान होगये तब देवता अपनी वाञ्छित दिशाओं को गये और कई दिन अपने स्थान में रहे। फिर अपने कल्याण के निमित्त उनके नाश करने को उठके युद्ध को चले, प्रथम उन्होंने शंख बजाये जिनसे प्रलयकाल के मेघों के गर्जने के समान शब्द से सब स्थान पूर्ण होगये निदान पाताल छिद्र से शब्द सुनके दैत्य निकले और आकाशमार्ग से देवता आये और युद्ध होने लगा। बर्छी, बाण, मुद्गर, मुसल, गदा, चक्र, वज्र, पहाड़, वृक्ष, सर्प, अग्नि आदिक शस्त्र अस्त्र परस्पर चलने लगे और ऐसे शस्त्र अस्त्र के प्रवाह चले कि, देश प्रदेश में पहाड़ों और वृक्षोंकी नदियां चलीं। चक्र, मुसल, त्रिशूल आदिक शस्त्र ऐसे चले जैसे गङ्गा का प्रवाह चलता है। देवताओं और दैत्यों के समूह नष्ट होगये अङ्ग फटगये, शीश भुजा कटगये और जैसे समुद्र के उछलने से पृथ्वी जल से पूर्ण होजाती है तैसेही रुधिर से पृथ्वी पूर्ण होगई और आकाश दिशा में अग्नि का तेज ऐसा बढ़गया जैसे प्रलयकाल में द्वादशसूर्य का तेज होता है। बड़े पहाड़ों की वर्षा होने लगी और रुधिर के प्रवाह में पहाड़ ऐसे भ्रमते फिरते थे जैसे समुद्र में तरङ्ग और भँवर फिरते हैं। हे रामजी! ऐसा युद्ध हुआ कि, क्षण में पहाड़ और शस्त्र के प्रवाह; क्षण में सर्प; क्षण में गरुड़ दीखें और अप्सरागण अन्तरिक्ष में भासें; क्षणमें जलमय हो जावें; क्षण में सबस्थान अग्नि से पूर्ण होजावें, क्षण में सूर्य का प्रकाश भासे और क्षण में सर्व ओर से अन्धकार भासे। निदान महाभयानक युद्ध होनेलगा। दैत्य आकाश में उड़ २ के युद्ध करें और देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावें

और जैसे पंख से रहित पहाड़ गिरते हैं तैसे ही दैत्यों के अनेक स
गिरके भूमिलोक में आपड़े और उनमें किसी का शिर, किसी की भु
और किसी के हाथ पैर कटे हैं। वृक्षों और पहाड़ों के समान उ
शरीर गिर २ पड़े और अनेक संकट को देवता और दैत्य प्राप्त हुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनन्नामाष्टा-
विंशतितमस्सर्गः॥ २८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवताओं का धैर्य नष्ट होगया और यु
त्यागके अन्तर्द्धान हुये और पैंतीस वर्ष के उपरान्त फिर युद्ध करनेल
कभी पांच वा सात; कभी आठ दिनके उपरान्त युद्ध करते थे और फिर
जाते थे ऐसे विचारकर छल से वे उनसे युद्ध करें, कभी दाम, व्याल, कट
निकट जावें; कभी दाहिने, कभी बायें, कभी आगे और कभी पीछे दौड़नेल
और इधरउधर देखके मारनेलगे। इस प्रकार जब देवताओं ने बहुतउप
किया तब युद्ध के अभ्यास से दाम, व्याल, कट भी देवताओं के
दौड़ने लगे और इधर उधर देखने लगे और अपने देहादिक में उन
अहंकार फुरआया। हे रामजी! जैसे निकटतासे दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़
है दूर का नहीं पड़ता, तैसेही अतिशय अभ्यास से अहंकार फुरआता
अन्यथा नहीं फुरता। जब अहंकार उनको फुरा तब पदार्थकी वासना
फुरआई और फिर यह फुरा कि, हम दाम, व्याल, कट हैं, किसीप्रकार जी
रहें; इसइच्छा से वे दीनभाव को प्राप्तहुये और भय पानेलगे कि, इसप्रक
हमारा नाश होगा; इसप्रकार हमारी रक्षा होगी; वही उपायकरें जिससे ह
जीते रहें। इस प्रकार आशाकी फांस में बँधेहुये वे दीनभाव को प्राप्त
और आपको देहमात्रमें आस्था करनेलगे कि, देहरूपी लता हमारी स्थि
रहे; हम सुखी हों, इस वासना संयुक्त हो और पूर्वका धैर्य त्यागके
जाननेलगे कि, यह हमारे शत्रु नाशकर्त्ता हैं, इनसे किसीप्रकार बचें
उनका धैर्य नष्टहोगया और जैसे जल विना कमलकी शोभा जाती रह
है तैसेही इनकी शोभा जाती रही; खाने पीने की वासना फुरआई अ
संसार की भयानक गति को प्राप्तहुये। तब वे आश्रय लेकर युद्ध क

लगे और ढाल आदिक आगे रक्खें। वे अहंकारसे ऐसे भयभीत हुये कि, ये हमको मारतेहैं, हम इनको मारते हैं। इस चिन्तामें इन सबके हृदय फँसगये और शनैः शनैः युद्ध करने लगे। जब देवता शस्त्र चलावें तब वे बचजावें और भयभीत होकर भागें। अहंकारके उदय होने से उनके मस्तकपर आपदा ने चरण रक्खा और वे महादीन होगये और ऐसे होगये कि, यदि कोई उनके आगे पड़े तौभी उसको न मारसकें। जैसे काष्ठ से रहित अग्नि क्षीर को नहीं भक्षण करती तैसेही वे निर्बल हो गये। उनके अङ्ग काटे जावें तो वे भाग जावें और जैसे समान शूर युद्ध करतेहैं तैसेही युद्ध करने लगे। हे रामजी! कहांतक कहूं वे मरनेसे डरने लगे और युद्ध न करसके तब देवता वज्र आदिक से उनको प्रहार करने लगे जिनसे वे चूर्ण होगये और भयभीत होकर भागे। निदान दैत्यों की सब सेना भागी और जो २ देश देशान्तर से आये थे वह भी सब भागे; कोई किसी देश को, कोई किसी देश को, पहाड़, कन्दरा और जल में चले गये और जहां २ स्थान देखा वहां २ चलेगये। निदान जब दैत्य भयभीत होकर हारे और देवताओं की जीतहुई तो दैत्य भाग के पाताल में जा छिपे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटोपाख्यानेऽसुर-हननन्नामएकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब देवता प्रसन्न हुये और देवताओं का भय पाके दाम, व्याल, कट पाताल में गये और सम्बर से भी डरे। सम्बर प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि का रूप था उसका भय कर दाम, व्याल, कट सातवें पातालमें गये और दैत्योंके मण्डलको छेदके जहां यमकिंकर रहते हैं उसमें कुकुहानाम होकर जारहे। नरकरूपी समुद्र के आपालक यमकिंकरों ने दया करके इनको बैठाया और जैसे पापी को चिन्ता प्राप्त होती है तैसेही इनको स्त्रियां प्राप्त हुईं उनके साथ सातवें पाताल में रहे। फिर इनके पुत्रपौत्रादिक बड़ी सन्तान हुईं और उन्होंने सहस्र वर्ष वहां व्यतीत किये। वहां उनको यह वासना दृढ़ होगई कि, 'यह मैंहूं' 'यह मेरी स्त्री है' और पुत्र कलत्र बांधवों में बहुत स्नेह होगया। एक काल

में वहां अपनी इच्छा से धर्मराज नरक के कुछ काम के लिये आया
उसको देखके सब किंकर उठ खड़े हुये और प्रणामकिया पर दाम, व्या
कट ने जो उसकी बड़ाई न जानते थे उसे किंकर समान जानके प्र
न किया। तब यमराज ने क्रोध किया और समझा कि, ये दुष्ट
हैं इनको शासना देनी चाहिये। इस प्रकार विचार करके यमने किंक
सैन की कि, इनको परिवार संयुक्त अग्नि की खाई में डालदो यह सु
रुदन करने और पुकारने लगे पर इनको उन्होंने डालदिया और
वार संयुक्त नरक की अग्नि में वे ऐसे जले जैसे दावाग्निमें पत्रेल
फूल, फल संयुक्त वृक्ष जलजाता है। तब मलीन वासना से वे कान्तर
राजा के धीवर हुये और जीवोंकी हिंसा करते रहे। जब धीवर कर
छूटा तब हाथी हुये; फिर चील हुये; फिर बगुले हुये; फिर तिरगते
में धीवर हुये और फिर बर्बरदेशमें मच्छर हुये और मगध देश मे
हुये। हे रामजी! इस प्रकार दाम, व्याल, कट; तीनों ने वासन
अनेक जन्म पाये और फिर काश्मीरदेश में एक ताल है उसमें त
मच्छर हुयेहैं। वनमें अग्नि लगी थी इस लिये उसका जल भी सूख
है, अल्पजल उष्णरहा है उसमें रहते हैं और वही जल पान करते
मरते हैं, न जीते हैं, जिनकी जो सम्पदा है उसको भी नहीं भोग
चिन्ता से जलते हैं। हे रामजी! अज्ञानसे जीव अनेकबार जन्मते
हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटतेहैं और जलके भँवर में
भ्रमता है तैसेही वासना से भ्रमसे वे फिरें। अब तक उनको शा
नहीं प्राप्त हुई। अहंकार वासना महादुःख का कारण है; इसके त
से सुख है अन्यथा सुख कदाचित् नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटजन्मान्तर-
वर्णनन्नामत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रबोध के निमित्त मैंने तुम
दाम, व्याल, कट का न्याय कहा है; उनकी नाईं तुम मत हो
अविवेकी का निश्चय ऐसाहै कि, अनेक आपदा को प्राप्त करत

और अनन्त दुःख भुगाता है; कहां सम्बर दैत्य की सेना के नाथ और देवतों के नाशकर्त्ता और कहां तप्तजल के मच्छ हो जर्जरीभाव को प्राप्त हुये; कहां वह धैर्य और बल जिससे देवताओं को नाश करना और भगाना और आप चलायमान न होना और कहां कान्तदेश के राजा के किंकर धीवर होना! कहां वह निरहंकारचित्त, शान्ति, उदारता और धैर्य और कहां वासना से मिथ्या अहंकार से संयुक्त होना। इतने दुःख और आपदा केवल अहंकार से हुये। अहंकार से संसाररूपी विष की मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढ़ती है। संसाररूपी वृक्ष का बीज अहंकार है। जबतक अहंकार है तबतक अनेक दुःख और आपदा प्राप्त होती हैं; इससे तुम अहंकार को यत्न करके मार्जन करो। मार्जन करना यह है कि, अहंवृत्ति को असत्रूप जानो कि, 'मैं कुछ नहीं'। इस मार्जनसे सुखी होगे। हे रामजी! आत्मरूपी अमृत का चन्द्रमा है और शीतल और शान्तरूप उसका अंग है; अहंकाररूपी मेघ से वह अदृष्ट हुआ नहीं भासता। जब विवेकरूपी पवन चले तब अहंकार बादल नष्ट हो और आत्मारूपी चन्द्रमा प्रत्यक्ष भासे। जब अहंकाररूपी पिशाच उपजा तब तो दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाओं को भोगते हैं। अबतक वे काश्मीर के ताल में मच्छरूप से पड़े हैं और सिवालके भोजन करने को यत्न करते हैं; जो अहंकार न होता तो इतनी आपदा क्यों पाते? रामजी बोले, हे भगवन्! सत्का अभाव नहीं होता और असत्का भाव नहीं होता। असत् दाम, व्याल, कट सत् कैसे हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार है कि, जो सत् नहीं सो किसी को कभी कुछ भान नहीं होता परन्तु कोई सत् असत् को प्राप्त हुआ देखता है और कोई असत् को नहीं हुआ देखता है-जो स्थित हुआ है। इसी तुम्हारे कहने से मैं युक्तिसे तुमको प्रबोध करूंगा। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! हम, तुम जो ये सब हैं वे सत्यरूपहैं और दामादिक मायामात्र असत्रूप थे वे सत् कैसे हुये, यह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे दामादिक मायारूप मृगतृष्णा के जलवत् असत् से स्थित हुये थे तैसेही तुम, हम, देवता, दानव सम्पूर्ण

संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है वास्तव में कुछ नहीं। स्वप्ने में जो अपना मरना भासता है वह असतरूप है तैसेही हम, आदिक यह जगत् असत्‌रूप है। जैसे स्वप्ने में जो अपने मरे बा आन मिलते हैं और प्रत्यक्ष चर्चा करते भासते हैं वे असत्‌रूप हो तैसेही यह जगत् भी असत्‌रूपहै। हे रामजी! ये मेरे वचन मूढ़ को वि भून नहीं, उनको नहीं शोभते क्योंकि; उनके हृदय में संसार का स दृढ़ होगया है और अभ्यास विना इस निश्चय का अभाव नहीं हो जैसा निश्चय किसीके हृदय में दृढ़ होरहाहै वह दृढ़ अभ्यास के विना कदाचित् दूर नहीं होता। जिसको यह निश्चय है कि, जगत है वह मूर्ख उन्मत्त है और जिसके हृदय में जगत् का सद्भाव नहीं वह ज्ञानवान् है, उसे केवल ब्रह्मसत्ता का भान होताहै और अज्ञानी जगत् सत् भासता है। अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी नहीं जानता ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता। जैसे मदमत्त के निश् को अमत्त नहीं जानता और अमत्त के निश्चय को मत्त नहीं जान तैसेही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जैसे प्रक और अन्धकार और धूप और छाया इकट्ठी नहीं होतीं तैसेही ज्ञानी अज्ञानी का निश्चय इकट्ठा नहीं होता। जिसके चित्त में जो निश्चय उसको जब वही अभ्यास और यत्न करके दूर करे तब दूर होताहै अन्य नहीं होता। ज्ञानी भी अज्ञानी के निश्चय को दूर नहीं करसक्ता; मृतक की जीवकला को मनुष्य ग्रहण नहीं करसक्के कि, उसके निश् में क्या है? जो ज्ञानवान् है उसके निश्चयमें सर्वब्रह्म का भान होता और उसे जगत् द्वैत नहीं भासता और उसी को मेरे वचन शोभते आत्मअनुभव सर्वदा सत्‌रूप है और सब असत् पदार्थ हैं। ये वचन प्र के विषय हैं और उसीको शोभते हैं। अज्ञानी को जगत् सत् भासता इससे ब्रह्मवाणी उसको शोभा नहीं देती। ज्ञानी को यह निश्चय होता कि, जगत् रञ्चकमात्र भी सत्य नहीं, एक ब्रह्मही परमसत्तास्वरूप है। अनुभव बोधवान् का है, उसके निश्चय को कोई दूर नहीं करसक्ता कि

परमात्मासे व्यतिरेक कुछ नहीं। जैसे सुवर्णमें भूषणभाव नहीं तैसेही आत्मा में सृष्टिभाव नहीं। अज्ञानी को पञ्चभूत से व्यतिरेक कुछ नहीं भासता, जैसे सुवर्ण में भूषण नाममात्र है तैसेही वह आपको नाममात्र जानता है, सम्यक्दर्शी को इससे विपरीत भासता है। जो पुरुष होके कहे, 'मैं घट हूं' तो जैसे यह निश्चय उन्मत्त है तैसेही हम तुम आदिक भी असत्‌रूप हैं; सत् वही है जो शुद्ध, संवित्‌बोध, आकाश, निरंजन, सर्वगत, शान्तरूप, उदय व अस्त से रहितहै। जैसे नेत्र दूषणवाले को आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही अज्ञानी को जगत् सत्‌रूप भासता है। आत्मसत्ता में जैसा जैसा किसीको निश्चय होगया है तैसाही तत्काल हो भासता है, वास्तव में जैसे दामादिक थे तैसेही तुम हम आदिक जगत् हैं और अनन्त चेतन आकाश सर्वगत निराकार में स्फूर्ति है वही देहाकार हो भासती है। जैसे संवित् का किंचन दामादिक निश्चय से आकारवान् हो भासे तैसेही हम तुम भी फुरनेमात्र हैं और संवेदन के फुरनेहीसे स्थितहुये हैं। जैसे स्वप्न-नगर और मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही हम तुम आदिक जगत् आत्मरूप भासते हैं। प्रबुध को सब चिदाकाश ही भासताहै और सब मृगतृष्णा और स्वप्ननगरवत् भासता है। जो आत्मा की ओर जागे हैं और जगत् की ओर सोये हैं वे मोक्षरूप हैं; और जो आत्मा की ओर से सोये और जगत् की ओर जागे हैं वे अज्ञानी बन्धरूप हैं। पर वास्तव में न कोई सोये हैं, न जागे हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश जगत्‌रूप होके भासता है। निर्वाणसत्ता ही जगत् लक्ष्मी होकर स्थित हुई है और जगत् निर्वाणरूपहै—दोनों एक वस्तु के पर्याय हैं। जैसे तरु और विटप एकही वस्तु के दो नाम हैं तैसेही ब्रह्म और जगत् एकही वस्तु के पर्याय हैं। जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं और हैं नहीं केवल आकाशही है तैसे ही अज्ञानी को ब्रह्ममें जो जगत् भासते हैं वे हैं नहीं ब्रह्मही है। जैसे नेत्र में तिमिररोगवाले को जो तरवरे भासतेहैं वे तरवरे नेत्ररोग से भिन्न नहीं तैसेही अज्ञानी को अपना आप ही अन्यत्‌रूप चिदाकाश स्थान में भासता है, वह चिदाकाश सर्व ओर

के विचारद्वारा निर्वासनिक हुआ है और जो संसार निरूपण श
का, जिसका प्रकाशरूप शब्दहै, आश्रय करता है यह संसार के प
को शुभरूप जानता है; इससे नीचे गिरता है—जैसे कोई गढ़े को ज
रूप जान के स्नान के निमित्त जावे और गिर पड़े। हे रामजी! अ
अनुभवरूपी प्रसिद्धमार्ग में जो प्राप्त हुये हैं उनका नाश नहीं होत
सुख से स्वच्छन्द चलेजाते हैं—जैसे पथिक सूधेमार्ग में चलाजात
ब्रह्मनिरूपकशास्त्र निर्वेदमार्ग है और संसारनिरूपकशास्त्र दुःखद
मार्ग हैं। यह जगत् असतरूप और भ्रान्तिमात्र है; जिसकी बुद्धि इ
है कि, ये पदार्थ और ये सुख मुझको प्राप्त हों वे इस प्रकार संसारके
की तृष्णा करते हैं और वे अभागी हैं और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उ
जगत् घास और तृण की नाईं तुच्छ भासता है। जिस पुरुष के हृद
परमात्माका चमत्कार हुआहै वह इस ब्रह्माण्ड खण्ड लोक और लोकप
को तृणवत् देखता है। जैसे जीव आपदाको त्यागता है तैसे ही उ
हृदय में ऐश्वर्यभी आपदारूप त्यागने योग्य है। इससे हृदय से नि
यात्मक तत्त्व में रहो और बाहर जैसा अपना आचार है तैसा क
आचार का व्यतिक्रम न करना क्योंकि व्यतिक्रम करने से शुभ क
भी अशुभ होजाता है—जैसे राहु दैत्य ने अमृत पान करने का यत्न कि
था पर व्यतिक्रम से शरीर कटा। इससे शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्य
का कारण है। सन्तजनों की सङ्गति और सत्शास्त्रों के विचार से
प्रकाश प्राप्तहोता है। जो पुरुष इनको सेवताहै वह मोह अन्धकूप में न
गिरता। हे रामजी! वैराग्य, धैर्य, सन्तोष, उदारता आदिक गुण जि
हृदय में प्रवेश करते हैं वह पुरुष परमसम्पदावान् होता है और आ
को नष्ट करता है। जो पुरुष शुभगुणों से सन्तुष्ट है और सत् शास्त्र के अ
रागमें रागहै और जिसे सत् की वासनाहै वही पुरुष है; और सब पशु
जिसमें वैराग्य, सन्तोष, धैर्य आदिगुणोंसे चाँदनी फैलती है और हृदय
आकाश में विवेकरूपी चन्द्रमा प्रकाशता है वह पुरुष शरीर नहीं म
क्षीरसमुद्र है; उसके हृदय में विष्णु विराजते हैं। जो कुछ उसको भोग

था वह उसने भोगा और जो कुछ देखना था वह देखा फिर उसे भोगने और देखने की तृष्णा नहीं रहती। जिस पुरुष का यथाक्रम और यथाशास्त्र आचार और निश्चय है उसको भोग की तृष्णा निवृत्त होजाती है और उस पुरुषके गुण आकाशमें सिद्ध, देवता और अप्सरा गान करते हैं और वही मृत्युसे तरता है भोग के तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते। हे रामजी! जिन पुरुषों के गुण चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और सिद्ध और अप्सरा जिनका गान करते हैं वेही पुरुष जीते हैं और सब मृतक हैं। इससे तुम परम पुरुषार्थ का आश्रय करो तब परमसिद्धता को प्राप्त होगे। वह कौन वस्तु है जो शास्त्र अनुसार अनुद्वेग होकर पुरुषार्थ कियेसे प्राप्त न हो? कोई वस्तु क्यों न हो अवश्यमेव प्राप्त होती है यदि चिरकाल व्यतीत होजावे और सिद्धि न हो तो भी उद्वेग न करे तो वह फल परिपक्क होकर प्राप्त होगा—जैसे वृक्ष से जब परिपक्क होके फल उतरता है तब अधिक मिष्ट और सुखदायक होता है। यथा शास्त्रव्यवहार करनेवाला उस पद को प्राप्त होता है जहां शोक, भय और यत्न सब नष्ट होजाते हैं और शान्तिमान् होता है। हे रामजी! मूर्खजीवों की नाईं संसारकूप में मत गिरो! यह संसार मिथ्या है। तुम उदार आत्मा हो; उठखड़े हो और अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो और इस शास्त्र को विचारो। जैसे शूर रण में प्राण निकलने लगे तो भी नहीं भागता और शस्त्र को पकड़के युद्ध करता है कि, अमरपद प्राप्त हो; तैसेही संसाररूपी रण में शस्त्र पुरुषार्थ है; यही पुरुषार्थ करो और शास्त्र को विचारो कि, कर्त्तव्य क्या है। जो विचार से रहित है वह दुर्भागी दीनता और अशुभ को प्राप्त करनेवाला है। महामोहरूपी घन निद्रा को त्याग करके जागो और पुरुषार्थ को अङ्गीकार करो जो जरा-मृत के शान्ति का कारण है और जो कुछ अर्थ है वह सब अनर्थरूप है; भोग सब रोग के समान हैं और सम्पदा सब आपदारूप हैं, ये सब त्यागने योग्य हैं। इस लिये सत्मार्ग को अङ्गीकार करके अपने प्राकृत आचार में बिचरो और शास्त्र और लोकमर्यादा के अनुसार व्यवहार करो क्योंकि, शास्त्र के अनुसार कर्म का करना सुखदायक होता है।

जिस पुरुष का शास्त्र के अनुसार व्यवहार है उसका संसारदुःख नष्ट
जाता है और आयुर्बल, यश, गुण और लक्ष्मी की वृद्धि होती है।
वसन्तऋतु की मञ्जरी प्रफुल्लित होती है तैसेही वह प्रफुल्लित होताहै

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटोपाख्याने
देशाचारवर्णनन्नाम द्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वदुःखका देनेवाला और सर्व सुख
फल, सब ठौर, सब काल में, सबको अपने कर्म के अनुसार होता
एक दिन नन्दीगण ने एक सरोवर पर जाके सदाशिव का आरा
किया और सदाशिव प्रसन्न हुये तो उसने मृत्यु को जीता, प्रथम न
था सो नन्दीगण नाम हुआ और मित्र, बांधव सबको सुख देनेव
अपने स्वभाव से यत्न करके हुआ। शास्त्र के अनुसार यत्न करने से दै
क्रम से देवताओं को जो सब से उत्कृष्ट हैं मारते हैं। मरुत राजा के
में संवृत नामक एक महाऋषि आया और उसने देवता, दैत्य, मनु
आदिक अपनी सृष्टि अपने पुरुषार्थ से रची-मानों दूसरा ब्रह्मा था अ
विश्वामित्र ने बारम्बार तप किया और तप की अधिकता और अपने
शुद्धाचार से राजर्षिसे ब्रह्मर्षि हुये। हे रामजी! उपमन्युनाम एक दुर्भा
ब्राह्मण था और उसको अपने गृहमें भोजनकी सामा न प्राप्त होती थ
निदान एक दिन उसने एक गृहस्थ के घर पिताके साथ दूध, चावल औ
शर्करासहित भोजन किया और अपने गृहमें आ पितासे कहनेलगा मुझ
वही भोजन दो जो खाया था। पिता ने सांवेंके चावल और आटेका
घोलके दिया और जब उसने भोजन किया तब वैसा स्वाद न लगा;
फिर पितासे बोला कि, मुझको वही भोजन दो जो वहां खाया था। पित
कहा, हे पुत्र! वह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिव के पास है; जो
देवें तो हम खावें। तब वह ब्राह्मण सदाशिव की उपासना करनेलगा औ
ऐसा तप किया कि, शरीर अस्थिमात्र होरहा और रक्त मांस सब सूखगया
तब शिवजी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा, हे ब्राह्मण! जो तु
को इच्छा है वह वर मांगो। ब्राह्मण ने कहा दूध और चावल दो

तब सदाशिव ने कहा दूध और चावल क्या कुछ और मांग पर जो तूने कहा है तो यही भोजन कियाकर। तब उसको वही भोजन प्राप्त हुआ और शिवजी ने कहा जब तू चिन्तन करेगा तब मैं दर्शनदूंगा। हे रामजी! यहभी अपना पुरुषार्थ हुआ। त्रिलोकी की पालना करने-वाले विष्णु को भी काल तृण की नाईं मर्दन करताहै पर उस काल को श्वेत ने उद्यम करके जीताहै और सावित्री का भर्त्ता मृतक हुआथा पर वह पतिव्रता थी उसने स्तुति और नमस्कार करके यम को प्रसन्नकिया और भर्त्ता को परलोक से ले आई- यह भी अपनाही पुरुषार्थ है। श्वेत नाम एक ऋषीश्वर था उसने अपने पुरुषार्थ से काल को जीतके मृत्यु-ञ्जय नाम पाया। इससे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यमकिये से प्राप्त न हो। अपने पुरुषप्रयत्न का त्याग करना न चाहिये; इससे सुख, फल और सर्वकी प्राप्ति होती है। जो अविनाशी सुखकी इच्छा हो तो आत्मबोध का अभ्यासकरो। और जो कुछ संसार के सुख हैं वे दुःख से मिलेहुये हैं और आत्मसुख सब दुःख का नाशकर्त्ता है किसी दुःख से नहीं मिला वास्तव कहिये तो सम असम सर्व ब्रह्मही है पर तौभी सम परम कल्याण का कर्त्ता है। इससे अभिमान का त्याग करके सम का आश्रय करो और निरन्तर बुद्धि से विचारकरो। जब यत्न करके सन्तों का संग करोगे तब परमपद को प्राप्त होगे। हे रामजी! संसारसमुद्र के पार करने को ऐसा समर्थ कोई तप नहीं और न तीर्थ है। सामान्यशास्त्रोंसे भी नहीं तरसक्ता, केवल सन्तजनों के सेवने से भवसागर से सुख से तरता है। जिस पुरुष के लोभ, मोह, क्रोध आदिक विकार दिन २ प्रति क्षीण होते जाते हैं और यथाशास्त्र जिसके कर्म हैं ऐसे पुरुष को सन्त और आचार्य कहते हैं। उसकी संगति संसार के पापकर्मों से निवृत्त करती है और शुभ में लगाती है। आत्मवेत्ता पुरुष की संगति से बुद्धि में संसार का अत्यन्त अभाव हो जाता है। जब दृश्य का अत्यन्त अभाव हुआ तब आत्मा शेष रहता है। इस क्रमसे जीव का जीवन भाव निवृत्त होजाता है और बोध तत्त्व शेष रहता है। जगत् न उपजता है,

न आगे होगा और न अब वर्त्तमान में है। इस प्रकार मैंने तुमसे अ
युक्ति से कहा है और कहूंगा। ज्ञानवान् को सर्वदा ऐसाही मन ह
है। अचल चिदात्मा में चञ्चलचित्त फुरा है और उसीने जगत् आ
रचा है। जैसे २ वह फुरताहै तैसेही तैसे भासताहै और वास्तवमें
नहीं। जैसे सूर्य और किरणों में कुछ भेद नहीं। तैसेही जगत्
आत्मामें कुछ भेद नहीं। अहंरूप आत्मा में आपको न जानन
आत्माकाश में मेघरूपी मलीनता है। जब परमार्थ में अहंभाव
जानेगा तब अनात्म में अहंभाव लीन होजावेगा और तभी चिदा
से जीवकी अत्यन्त एकता होती है। जैसे घट के फूटे से घटाकाश
महाकाश से एकता होती है। निश्चय करके जानो कि, अहंआदिक ह
वास्तव में कुछ नहीं है विचार किये से नहीं रहता। जैसे बालककी
छाहीं में पिशाच भासताहै सो भ्रान्तिमात्र होताहै तैसेही यह जगत् भ्र
सिद्ध है, अपनी कल्पना से भासता है और दुःखदायक होताहै पर वि
कियेसे नष्ट होजाता है। हे रामजी ! आत्मरूपी चन्द्रमा सदा प्रका
है और अहंकाररूपी बादल उसके आगे आताहै उससे परमार्थ बुद्धि
कमलिनी विकाश को नहीं प्राप्त होती; इससे विवेकरूपी वा
उसको नष्टकरो। नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त
आदिक सब अहंकार से फुरते हैं। हृदयरूपी आकाश में अहंका
मेघ जबतक गरजता और वर्षा करता है तबतक तृष्णारूपी क
मञ्जरी बढ़ती जाती है। जबतक अहंकाररूपी बादल आत्मारूपी सू
आक्रमण करता है तबतक जड़ता और अन्धकार है और प्रकाश
नहीं होता। अहंकार वृक्ष की अनन्तशाखा फैलती हैं। 'अहं'
आदिक विस्तार अनेक अर्थों को प्राप्त करताहै। जो कुछ संसार में
दुःख आदिक प्राप्त होता है वह सब अहंकार से प्राप्त होता है। संसा
चक्र की अहंकार नाभि है जिससे भ्रमता है और 'अहं' 'मम' रूपी
से अनेक जन्मरूपी वृक्षकी परंपरा उदय और क्षय होती है और
नष्ट नहीं होती। इससे यत्न करके इसका नाश करो। जबतक अहं

रूपी अन्धकार है तबतक चिन्तारूपी पिशाचिनी विचरती है और अहंकाररूपी पिशाच ने जिसको ग्रहण किया है उस नीचपुरुष को मन्त्र तन्त्र भी दीनतासे छुड़ा नहींसके। रामजीने पूछा, हे भगवन्! निर्मल चिन्मात्र आत्मसत्ता जो अपने आप में स्थित है उसमें अहंकाररूपी मलीनता कहां से प्रतिबिम्बित हुई? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! अहंकार चमत्कार जो भासता है वह वास्तव धर्म नहीं, मिथ्या है, वासना भ्रम से हुआ है और पुरुष प्रयत्न करके नष्ट होजाताहै न मैं हूं, न मेरा कोई है, 'अहं' 'मम' में कुछ सार नहीं। जब अहंकार शान्तहोगा तब दुःख भी कोई न रहैगा। जब ऐसी भावना का निश्चय दृढ़ होगा तब अहंकार नष्ट होजावेगा। आत्मा में अहं कोई नहीं, दृश्य में सारे हैं। इस प्रकार जब फुरना शान्त हुआ तब अहंकार भी नष्ट होजावेगा और जब अहंकार नष्ट हुआ तब हे योपादेय बुद्धि भी शान्त होजावेगी और समता आदिक प्रसन्नता उदयहोगी। अहंकार की प्रवृत्तिही दुःख का कारण है। रामजी ने पूछा, हे प्रभो! अहंकार का रूप क्या है; त्याग कैसे होता है; शरीरसे रहित कब होता है और इसके त्यागसे क्या फल होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहंकार तीनप्रकार का है। दो प्रकार का श्रेष्ठ अहंकार अङ्गीकार करने योग्य है और तीसरा त्यागने योग्य है। इसका त्याग शरीर सहित होता है। 'यह सब दृश्य मैंहींहूं और परमात्मा अद्वैतरूप हूं मुझसे भिन्न कुछ नहीं, यह निश्चय परम अहंकार का है और मोक्ष देनेवाला है-बन्धन का कारण नहीं; इसमें जीवन्मुक्त विचरते हैं। यह अहंकारभी मैंने तुमको उपदेश के निमित्त कल्पके कहा है वास्तव में यहभी नहीं है केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता है। दूसरा अहंकार यह है कि 'मैं सबसे व्यतिरेकहूं और बाल के अग्रभाग का सौवांभाग सूक्ष्महूं;' ऐसा निश्चय भी जीवन्मुक्ति का है और मोक्षदायक है-बन्धन का कारण नहीं। यह अहंकार भी मैंने तुमसे कल्पके कहाहै, वास्तव में यह कहना भी नहीं है। तीसरा अहंकार यह है कि, हाथ, पांवआदि इतनामात्र आपको जानना; इसमें जिसका निश्चय है वह तुच्छ है और अपने

बन्धन का कारण है। इसको त्यागकरो, यह दुष्टरूप परम शत्रु है; इसमें जो जीव मरते हैं वे परमार्थ की ओर नहीं आते। यह अहंकाररूपी चतुर शत्रु बड़ाबली है और नानाप्रकार के जन्म और मानसी दुःख काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिक का देनेवाला है। यह सब जीवोंको नीच करता है और संकट में डालता है। इस दुष्ट अहंकारके त्यागके पीछे जो शेष रहताहै वह आत्मभगवान् मुक्तरूप सत्ता है। हे रामजी! लोक में जो वपु की अहंकार भावना है कि, 'मैं यह हूं;' 'इतनाहूं;' यही दुःख का कारण है। इसको महापुरुषों ने त्यागकिया है; वे जानते हैं कि, हम देह नहीं हैं; शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हैं। प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुमको कहे हैं वह अङ्गीकार करने योग्य और मोक्षदायक हैं और तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है क्योंकि; दुःख का कारण है। इसी अहंकार को ग्रहण करके दाम, व्याल, कट आपदा को प्राप्तहुये जो महाभयदायक है और कहनेमें नहीं आती और जिन्होंने भोगी है उनको क्या कहना है; वह जानतेही हैं। रामजीने पूछा, हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो आपने कहा है उसका त्यागकिये से पुरुष का क्या भाव रहता है और उसको क्या विशेषता प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव अनात्मा के अहंकार को त्यागकरता है तब परमपद को प्राप्तहोता। जितना २ वह त्याग करता है उतनाही उतना दुःख से मुक्त होता है; इससे इसको त्याग करके आनन्दवान् हो। इसको त्याग के महापुरुष शोभता है। जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊंचे पद को प्राप्त होगे। सर्वकाल सर्वयत्न करके दुष्ट अहंकार को नष्ट करो; परमानन्द बोधके आगे आवरण यही है, इसके त्यागसे बोधवान् होते हैं। जब यह अहंकार निवृत्त होताहै तब शरीर पुण्यरूपी होजाता है और परमसार के आश्रय को प्राप्त होता है। यही परमपद है। जब मनुष्य स्थूल अहंकार का त्याग करताहै तब सर्व व्यवहार चेष्टा में आनन्दवान् होताहै। जिस पुरुष का अहंकार शान्तहुआ है उसको भोग और रोग दोनों स्वाद नहीं देते-जैसे अमृत से जो तृप्तहुआ है उसको खट्टा और मीठा दोनों स्वाद नहीं

देते अर्थात् रागद्वेष से चलायमान नहीं होता एकरस रहता है। जिसका अनात्मा में अहंभाव नष्टहुआ है उसको भोगों में राग नहीं होता और तृष्णा, राग, द्वेष नष्ट होजाता है। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही अपने दृढ़ पुरुषार्थ से जिसके हृदय से अहंकार का अनुसंधान नष्ट होता है वह संसारसमुद्र को तरजाता है। इससे यही निश्चय धारणकरो कि, 'न मैं हूं' 'न कोई मेरा है;' अथवा, सर्व 'मैंही हूं' 'मुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं' यह निश्चय जब दृढ़होगा तब संसार की द्वैतभावना मिटजावेगी और केवल आत्मतत्त्व का सर्वदा भान होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटोपाख्यानंनाम त्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब दाम, व्याल, कट युद्ध करते २ भाग गये तब सम्बरके नगर की जो अवस्था हुई सो सुनो। पहाड़ के समान नगर में जब सम्बर की जितनी कुछ सेना थी वह सब नष्ट होगई तब देवता जीतकर अपने २ स्थानों में जा बैठे और सम्बरभी क्षोभ को पाके बैठरहा। जब कुछ वर्ष व्यतीत हुये तब देवताओं के मारनेके निमित्त सम्बर फिर युक्ति विचारनेलगा कि, दामादिक जो माया से रचे थे सो मूर्ख और बलवान् थे परन्तु मिथ्या अहंकार का बीज अज्ञान उनको था इससे उनको मिथ्या अहंकार आनफुरा जिससे वे नष्ट हुये और भागे। अब मैं ऐसे योद्धा रचूं जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् और निरहंकार हों और जिनको कदाचित् अहंकार न उत्पन्न हो तो उनको कोई जीत भी न सकेगा और वे सब देवताओं की सेना मारेंगे। हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन करके सम्बर ने माया से इसभांति दैत्य रचे जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रचलेवे सर्वज्ञ, विद्याके वेत्ता और बीतराग आत्मा थे और यथाप्राप्त काम करतेथे। उनको आत्मभावका निश्चयथा और आत्मरूप उत्तमपुरुष उपजे। भीम, भास और दट उनके नाम थे। वे तीनों सम्पूर्ण जगत् को तृणवत् जानते थे और परमपवित्र उनके हृदय थे। वे गरजने और महाबल से शब्द करनेलगे जिससे आकाश पूर्ण होगया। तब इन्द्रादिक

देवता स्वर्ग में शब्द सुनके बड़ीसेना संगलेकर आये और यह बड़े बली भी बिजलीवत् चमत्कार करनेलगे। दोनों ओरसे युद्ध होनेलगे और शस्त्रों की नदियोंका प्रवाहचला पर भीम, भास, दट धैर्य से खड़ेरहे। कभी कोई शस्त्र का प्रहार लगे तब युद्ध के अभ्यास से देह का मोह आनफुरे पर फिर विचारमें सावधान हों कि, हम तो अशरीर हैं और चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं; हमारे संग शरीर कहां है। जब जब मोहआवे तबतब ऐसेविचार करें और जरा मरण उनको कुछ न भासे वे निर्भय होकर वासना की जाल से मुक्तहुये शत्रु को मारते और युद्धकार्य करते थे और हेयोपादेय से रहित समदृष्टि हो युद्धकार्य को करतेरहे निदान दृढ़युद्धहुआ तब देवताओं की सेना मारी गई और जो कुछ शेषरहे सो भीम, भास, दटके भय से भागे। जैसे जल पर्वतसे उतरता है और तीक्ष्ण वेग से चलता है तैसेही देवता तीक्ष्ण वेग से भागे और क्षीरसमुद्र में विष्णु भगवान्‌की शरण में गये। उनको देखके विष्णु-भगवान् ने कहा कि, तुम यहां ठहरो मैं उनको युद्ध करके मार आताहूं। ऐसे कहकर विष्णु भगवान् सुदर्शनचक्र लेकर सम्बर की ओर आये उनका और सम्बरका बड़ा युद्धहुआ—मानो अकाल प्रलय आयाहै। बड़े बड़े पर्वत उछलनेलगे और युद्ध होनेलगा तब सम्बर भागा और महा-प्रकाशरूप सुदर्शनचक्र से विष्णुजी ने उसको मारलिया। सम्बर शरीर को त्याग के विष्णुपुरी को प्राप्त हुआ और विष्णु भगवान् ने भीम, भास, दट के अन्तःपुर्यष्टक में प्रवेश किया और उनकी चित्तकला जो प्राण से मिश्रित थी उसको असत् किया। जैसे पवन दीपक को निर्वाण करता है तैसेही उनकी पुर्यष्टक फुरने से निर्वाण हुई। आगे वे जीवन्मुक्त थे सो अब विदेहमुक्त हुये। हे रामजी! वे भीम, भास, दट निर्वासनिक थे इस कारण दीपकवत् निर्वाण होगये। जो वासना संयुक्त है वह बन्धवान् जो निर्वासनिक है वह मुक्तरूप है। तुम भी विवेकसे निर्वासनिक हो। जब यह निश्चय होताहै कि, सब जगत् असत्‌रूप है तब वासना नहीं फुरती; इससे यथार्थ देखना कि, किसी जगत् के पदार्थ में आसक्त बुद्धि न हो।

वासना और चित्त एकही वस्तु के नाम हैं; सर्वपदार्थों के शब्द और अर्थ चित्त में स्थितहैं। जब सत्का अवलोकन सम्यक्ज्ञान होगा तब यह लय हो जावेगा और परमपद शेष रहेगा। जो चित्त वासना संयुक्त है उसमें अनेकपदार्थकी तृष्णाहोती है। जो मुक्तहै उसेही मुक्त कहते हैं और नाना प्रकार के घट पटादिक आकार चित्तफुरने से अनेकता को प्राप्त होते हैं। जैसे परछाहीं से वैतालभ्रम होताहै तैसेही नानात्वभ्रम चित्त में भासता है। हे रामजी! जैसी जैसी वासना को लेकर चित्त स्थित होता है तैसाही आकार निश्चय होकर भासता है। दाम, व्याल, कटका रूप चित्तके परिणामसे विपर्यय होगया था तुमको भीम, भास, दटका निश्चय हो; दाम, व्याल, कट का निश्चय न हो। हे रामजी! यह वृत्तान्त मुझसे पूर्व में ब्रह्माजी ने कहा था वही मैंने अब तुमसे कहाहै। इससंसार में कोई बिरला सुखी है; दुःखदशा में अनेक हैं जब तुम इससंसार की भावना त्यागोगे तब देहादिक में बन्धवान् न होगे और व्यवहारमें भी आशक्तता न होगी॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटोपाख्यान-समाप्तिवर्णनन्नाम चतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्या से संसार की ओर जो मन सम्मुख हुआ है उसको जिस पुरुष ने जीता है वही सुखी और शूरमा है और उसही की जय है। यह संसार सर्व उपद्रव का देनेवाला है। इसका उपाय यही है कि अपने मन को वश करे। यह मेरा शास्त्र सर्वज्ञान से युक्त है; इसको सुनके आप को विचारे। कि, यह जगत् क्या है? ऐसे विचारकर भोग से उपरान्त होना और सत्स्वरूप आत्मा का अभ्यास करना। जो कुछ भोगइच्छा है वह बन्धन का कारण है, इसके त्यागने का नाम मोक्ष कहते हैं और सर्वशास्त्र का विस्तार है। जो विषयभोग हैं उनको विष और अग्नि की नाईं जाने। जैसे विष और अग्नि नाश का कारण हैं तैसेही विषयभोग भी नाश का कारण हैं। ऐसे जानके इनका त्याग करे और बारम्बार यही विचारकरे कि, विषयभोग विषकी नाईं है। ऐसे विचारके जब विषयों को चित्तसे त्यागोगे तब सेवते हुये भी ये दुःख-

दायक न होंगे। जैसे मन्त्रशक्तिसम्पन्न को सर्प दुःखदायक नहीं होता तैसेही त्यागी को भोग दुःखदायक नहीं होते। इससे संसारको सत् जान के वासना फुरती है सो दुःख का कारण है—जैसे पृथ्वी में जो बीज बोया जाता है सोही उगता है; कटुक से कटुक उपजता है, मिष्ट से मिष्ट उपजताहै; तैसेही जिसकी बुद्धि में संसार के भोग वासनारूपी बीजहै उससे दुःख की परम्परा उत्पन्न होती है और जिसकी बुद्धि में शान्ति की शुभ वासना गर्भित होती है उससे शुभगुण, वैराग्य, धैर्य, उदारता और शान्तिरूप उत्पन्न होते हैं। जब शुभवासना का अनुसन्धान होगा तब मन बुद्धि निर्मलभाव को प्राप्त होगी और जब मन निर्मल हुआ तब शनैः शनैः अज्ञान नष्ट होजावेगा और सज्जनता बुद्धि होगी। जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला बढ़तीजाती है। जब इन शुभगुणोंकी परम्परा स्थित होती है तब विवेक उत्पन्न होता है और उसके प्रकाश से हृदय का मोहरूपी तम नष्ट होजाता है तब धैर्य और उदारता की वृद्धि होती है। जब सत्संग और सत्शास्त्र के अभ्यासद्वारा शुभगुण उदय होते हैं तब महा आनन्दका कारण शीतल शान्तरूप प्रकट होता है। जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की कान्ति आनन्ददायक शीतलता फैलती है तैसेही सत्संगरूपी वृक्ष का फल प्राप्त होताहै। हे रामजी! सत्संगरूपी वृक्षसे विवेकरूपी फल उत्पन्न होता है और उस विवेकरूपी फल से समतारूपी अमृत स्रवता है, उससे मन निर्द्वन्द्व और सर्वकामना से रहित निरुपद्रव होता है। मनकी चपलता शोक और अनर्थ का कारण है, मन के अचल हुये सब शान्त होजाता है। शास्त्र के अर्थ धारने से सन्देह नष्ट होजाते हैं और नानाप्रकार की कल्पना जाल शान्त होजाती है। इससे जीवन्मुक्त अलेप होता है; संसार का कोई क्षोभ उसको स्पर्श नहीं करता और वह निरिच्छित, निरुपास्थित, निर्लेप, निर्दुःख होता है। शोकसे रहित हुआ चित्त जड़ग्रन्थि से मुक्त और परमानन्दरूप होता है। तृष्णारूपी सूत्र के जाल से जो पुरुष निकलगया है वही शूरमा है और जिस पुरुषने तृष्णा नष्ट नहीं की वह अनेक जन्म दुःख में भ्रमता है। जब तृष्णा घटती है

तब मनभी सूक्ष्म होजाता है और जब भोग की तृष्णा नष्ट होती है तब मनभी नष्ट होजाताहै। हे रामजी! जैसे भले नौकर स्वामीके निमित्त रण में शरीर को तृणवत् त्यागते हैं और उससे स्वामी की जय होती है पर जो दुष्ट हैं वे नहीं त्यागते उससे दुःख होते हैं; तैसेही मन का उदय होना जीवों को दुःख का कारण है और मन का नष्ट होना सुखदायक है। ज्ञानवान् का मन नष्ट होजाताहै; अज्ञानी का मन वृद्धि होताहै। सम्पूर्ण जगत् चक्र मनोमात्र है; यह पर्वत, मण्डल, स्थावर, जङ्गमरूप जो कुछ जगत् है वह सब मनरूप है। मन किसको कहतेहैं सो सुनो चिन्मात्र शुद्धकला में जो चित्तकला का फुरना हुआ है वही संवेदन संकल्प विकल्प से मिलकर मलीन हुआहै और स्वरूप विस्मरण होगयाहै; उसी का नाम मन है। वही मन वासना से संसारभागी होताहै। जब चित्त संवेदन दृश्य से मिलता है तब उससे तन्मय होकर चित् संवित् का नाम जीव होता है और वही जीव दृश्य वर्ग से मिलके संसारदशा में चला जाताहै और अनेक विस्तारको प्राप्त होताहै आत्मपुरुष परब्रह्म संसारी नहीं; वह न रुधिरहै, न मांस है और न शरीरहै। शरीरादिक सर्वजड़ रूपहैं, आत्मा चेतन आकाशवत् अलेप है। यदि शरीर को भिन्न भिन्न कर देखिये तो रुधिर, मांस, अस्थि से भिन्न कुछ नहीं निकलता। जैसे केलेके वृक्षको खोलकर देखिये तो पत्र से भिन्न कुछ नहीं तैसेही मनही जीवहै और जीवही मनहै; मनसे भिन्न आकार कोई नहीं वही सर्वविकार भावको प्राप्त होताहै। हे रामजी! जीवके बन्धनका कारण अपनी कल्पना है। जैसे कुसवारी अपने यत्न से आपही बन्धन को प्राप्त होती है तैसेही मनुष्य अपनी वासना से आपही संसार बन्धन में फँसता है इससे तुम भोग की वासना मनसे दूर करो; संसार का बीज वासनाही है। जिस वासना संयुक्त दिनमें विचरता है तैसाही स्वप्न भी होता है जैसी जैसी वासना होती है तैसाही पुण्य पाप के अनुसार परलोक भासता है अपनेही वासना से जगत् भास आताहै। जैसे अन्न जिस द्रव्यसे मिलता है तैसाही भासता है अर्थात् मिष्ट से मिष्ट; खट्टे से खट्टा; कटुक से कटुक

होताहै तैसेही जैसी वासना जिसके हृदय में दृढ़ होती है तैसेही हो भासता है। जैसे बड़े पुण्यवान् को स्वप्नेमें अपनी मूर्त्ति इन्द्रकी भासती है; नीचको नीचही भासती है और भूतके सङ्गी को भूतादिक भासआते हैं तैसेही वासनाके अनुसार परलोक भासआताहै। जब मनमें निर्मलभाव स्थित होताहै तब मनकी कल्पना और पापवासना मिटजाती है और जब मन में मलीन वासना बढ़ती है तब निर्मलता नहीं भासती वही रूप फल प्राप्त होता है। इससे तुम दुर्वासना कलङ्क को त्यागके पूर्णमासी के चन्द्रमावत् विराजमान हो। यह संसार भ्रान्तिमात्र है सत्रूप नहीं। अज्ञान करके भेद विकार भासते हैं; वास्तव में न कोई बन्ध है, न मोक्ष है और न कोई बन्ध करनेवाला है; सब इन्द्रजाली की नाईं मिथ्या भ्रम भासते हैं। जैसे गन्धर्व नगर; मृगतृष्णा का जल और आकाशमें दूसरा चन्द्रमा भासताहै वह असत्रूप है; तैसेही यह जगत् असत्रूपहै। जीवोंको अज्ञानसे ऐसा निश्चय होरहा कि, मैं अनन्त आत्मा नहीं हूं–नीचहूं–जब इस निश्चयका अभाव हो और निश्चय करके आपको अनन्त आत्मा जाने प्रथम इसका अभ्यासकरे–तब हृदयमें स्थिति हो। इस निश्चय से उस नीच निश्चय का अभाव होजाताहै। सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है, उससे अतिरिक्त जिसको देहादिक भावना हुई है उसको लोक में बन्धन होताहै और अपने संकल्प से आपही शुक की नाईं बन्धन में आताहै। जिसको स्वरूप में भावना होती है उसको मोक्ष भासता है। आत्मसत्ता मोक्ष और बन्ध दोनों से रहित है। एक और अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है। जब मन निर्मल होता है तब इस प्रकार भासताहै और किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होता और जब मन इस भावसे रहित अमन होताहै तब ब्रह्मसत्ता को देखताहै अन्यथा नहीं देखता। जब वैराग्य और अभ्यासरूपी जलसे मन को निर्मलभाव होता है तब ब्रह्मज्ञानरूपी रङ्ग चढ़ताहै और सर्व आत्माही भासता है और जब सर्वात्मभावना होती है तब ग्रहण और त्याग की वृत्ति नष्ट होजाती है और बन्धमोक्ष भी नहीं रहता। जब मन के कषाय परिपक्व होतेहैं अर्थात् भोग

ी सूक्ष्म वासना से मुक्त होता है और सत्शास्त्र के विचार से क्रम से
ुद्धि में वैराग्य उपजता है तब परमबोध को प्राप्त होताहै और कमल की
ाईं बुद्धि खिल आतीहै। मनसेही सर्व पदार्थ रचेहैं जब उससे मिलकर
द्रूप होजाता है उसका नाम असम्यक्ज्ञान है और जब सम्यक् दृष्टि
ोती है तब उसका तत्काल नाश करताहै जब भीतर बाहर दृश्य को
याग करताहै और मन सत्भाव में स्थित होता है तब परमपद को प्राप्त
ुआ कहाताहै। हे रामजी! ये द्रष्टा और दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं वे असत्
ैं। उन असत् के साथ तन्मय होजाना यह मन का रूप है जो पदार्थ
आदि अन्त में न हो और मध्य में भासे उसको असत्रूप जानिये; सो
वह दृश्य आदि में भी नहीं उपजा और अन्त में भी नहीं रहता, मध्य में
जो भासता है वह असत्रूप है। अज्ञान से जिनको यह सत् भासता है
उनको दुःख की प्राप्ति है। आत्मभावना विना दुःख निवृत्त नहीं होता।
जब दृश्य में आत्मभावना होती है तब दृश्यभी मोक्षदायक होजाताहै।
जल और है, तरङ्ग और है; यह अज्ञानी का निश्चय है। जल और तरङ्ग
एकही रूप है; यह ज्ञानी का निश्चय है। नाना रूप जगत् अज्ञानी को
भासताहै उससे दुःख पाताहै और ग्रहण और त्यागकी बुद्धि में भटकताहै।
ज्ञानी को सर्व आत्मा भासता है और भेदभावनासे रहित अन्तर्मुख सुखी
होता है। हे रामजी! नानात्व मनके फुरनेसे रचाहै और मनका रूप है।
अपने संकल्प बलका नाम मनहै सो असत्रूपहै। जो असत् विनाशीरूप
है उसको सत् मानने से क्लेश होताहै। जैसे किसीका बान्धव परदेश से
आता है और उसको वह नहीं पहिंचानता दृष्टि आता है और उसमें राग
नहीं होता पर जब उसमें अपने की भावना करता है तब रागभी होताहै;
वैसेही जब आत्मा में अहं प्रतीति होती है और देहादिक में नहीं होती
तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते और जब देहादिक में भावना
होतीहै तब स्पर्श करते हैं। हे रामजी! जब शिवतत्त्वका ज्ञान हो तब कोई
दुःख नहीं रहता वह शिव द्रष्टा और दृश्य के मध्य में व्यापक है, उसमें
स्थित होकर मन शान्त होजाता है। जैसे वायु से रहित धूल नहीं उड़ती

तैसेही मनके शान्तहुये धूलरूपीदेह होजाती है और फिर संसाररूपी कुहिरा नहीं रहता। जब वर्षाऋतुरूपी वासना क्षीण होजाती है तब जाना नहीं जाता कि, जड़तारूपी बेल कहां गई। जब अज्ञानरूपी मेघ शान्त होता है तब तृष्णारूपी बेल सूखजाती है और हृदयरूपी पवन से मोहरूपी कुहिरा नष्ट होजाताहै। जैसे प्रातःकालहुये रात्रि नष्ट होजाती है। अज्ञानरूपी मेघ के क्षीण हुये देहाभिमानरूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि, कहां गई। जबतक अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तबतक संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं और जब अहंकाररूपी मेघ नष्ट होजाताहै तब परम निर्मल चिदाकाश आत्मारूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है। जब मोहरूपी वर्षाकाल का अभाव होता है तब ज्ञानरूपी शरत्काल में दिशा निर्मल होजाती हैं और आत्मारूपी चन्द्रमा शीतल चांदनी से प्रकाशता है जो सर्व सम्पदा का देने और परमानन्द की प्राप्ति करनेवाला है। जब प्रथम शुभगुणों से विवेकरूपी बीज संचित होता है तब शुभ मन सर्व सम्पदा का देनेवाला परमानन्द अतिसफल भूमि को प्राप्त होताहै। उस विवेकी पुरुष को वन, पर्वत, चतुर्दशभुवन सर्व आत्माही भासता है और वह निर्मल से निर्मल और शीतल से शीतल भावना में भासता है हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान् है और फटिकमणिवत् उज्ज्वल स्वच्छ जल से पूर्ण है उसमें धैर्य और उदारतारूपी कमल विराजतेहैं और उस हृदयकमल पर अहंकाररूपी भँवरा विचरता है वह जब नष्ट होजाता है तो फिर नहीं उपजता। वह पुरुष निरपेक्ष, सर्वश्रेष्ठ, निर्वासनिक, शान्तमन अपने देहरूपी नगर में विराजमान ईश्वर होताहै। जिसको आत्मप्रकाश उदयहुआ है उस बोधवान् का मन अत्यन्त गल जाता है, भय आदिक विकार नष्ट होजाते हैं और देहरूपी नगर में विगतज्वर होके विराजमान् होता है॥

इति श्रीयोग०स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनन्नाम पञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः ३५॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आत्मा तो चेतनरूप विश्व से अतीतहै उस चिदात्मा में विश्व कैसे उत्पन्न हुआ? बोधकी वृद्धिके निमित्त फिर मुझसे कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सोम जल में तरङ्ग

अव्यक्तरूप होते हैं परन्तु त्रिकालदर्शी को उनका सद्भाव नहीं भासता और उनका रूप दृष्टमात्र होता है तैसेही आत्मा में जगत् संकल्पमात्र होता है। जैसे आकाश सर्वगत है परन्तु सूक्ष्मभाव से नहीं दीखता तैसे ही आत्मा निरंश, निराकार, सर्वगत और सर्वव्यापक है परन्तु लखा नहीं जाता अव्यक्त और अच्युतरूप है; उस आत्मा में जगत् ऐसे है जैसे कोई थम्भमणिरूप हो और उसमें शिल्पी कल्पनाकरे कि इतनी पुतलियां इसमें हैं। सो वह क्या हैं; कुछ नहीं केवल शिल्पीके मन में फुरती हैं तैसे ही यह जगत् आत्मा में मनरूपी शिल्पी ने कल्पा है सो आत्मा के आधार है और आत्माके आश्रय आत्मा में स्थित है और आत्मा कदाचित् उससे स्पर्श नहीं करता। जैसे मेघ आकाश के आश्रय आकाश में स्थित है परन्तु आकाश उससे स्पर्श नहीं करता तैसेही आत्मास्पर्श है और सर्वत्र पूर्ण है परन्तु पुर्यष्टकरूप हृदय में भासता है। जैसे सूर्य का प्रकाश सब ठौर व्यापक है। परन्तु जल में प्रतिबिम्बित होता है और पृथ्वी, काष्ठ इत्यादि में प्रतिबिम्बित नहीं होता तैसेही आत्मा का देह इन्द्रिय और प्राण में प्रतिबिम्बित नहीं होता हृदय पुर्यष्टक में भासता है। वह आत्मा सर्व संकल्प और संग से रहित स्वरूप है, उसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेश के निमित्त चैतन्य, अविनाशी, आत्मा, ब्रह्मादिक कहते हैं पर आकाश से भी सूक्ष्म निर्मल है। आत्मा आभास से जगत्रूप हो भासता है, जगत् कुछ और वस्तु नहीं है। जैसे जल द्रवता से तरङ्गरूप हो भासता है परन्तु तरङ्ग कुछ भिन्न वस्तु नहीं है; तैसेही आत्मा से व्यतिरेक जगत् नहीं; चैतन सत्ताही चैत्यता फुरने से जगत्रूप हो भासती है। जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको तो एक आत्मा ही भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार जगत् भासता है। जगत् कुछ वस्तु नहीं है केवल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है; अनुभव स्वभावसे प्रकाशता है और सूर्यादिक सबको प्रकाशनेवाला है। सब स्वादों का स्वाद वही है और सबभाव उसी से सिद्धही हैं। वह सत्ता उदय, अस्त और चलने, अचलनेसे रहितहै; वह न लेताहै, न देताहै, अपने आप में स्थित है। जैसे

अग्नि का समूह लाटरूप और जलका समूह तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है और जीव अपने संवेदन फुरने से नानाप्रकार के संकल्प से विपर्ययरूप देखता है कि; यह पदार्थ है, यह मैं हूं; यह और है इत्यादिक पर जब अपने आपको जानताहै तब अज्ञानभ्रम नष्ट होजाता है। जैसे वृक्ष में बीजसत्ता परिणाम से आकार के आश्चर्य से बढ़ताजाताहै, तैसेही आत्मसत्ता में चित्त संवेदन फुरताहै। फुरना जो आत्मसत्ता के आश्रय विस्तार को प्राप्त होता है सो संकल्परूप है और उसमें जगत् की दृढ़ता है; जैसे संवेदन फुरता है तैसेही स्थित होताहै। उसमें नीति है कि, जो पदार्थ जिस प्रकार हो सो तैसेही स्थितहै अन्यथा नहीं होता। जैसे वसन्तऋतु में रस अतिविस्तार पाता है; कार्त्तिक में धान उपजते हैं; हिमऋतु में जल पाषाणरूप होजाता है; अग्नि उष्ण है; बरफ शीतलहै इत्यादिक जितने पदार्थ रचे हैं वैसेही वे सब महाप्रलय पर्यन्त स्थित हैं; अन्यथा भावको नहीं प्राप्तहोते। जगत् में चतुर्दशप्रकार के भूतजात हैं पर उनमें जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होताहै वेही शान्तरूप आत्मा पाके आनन्दमान होते हैं और जिनको प्रमाद है वे भटकते और जन्म मरण को प्राप्त होते हैं। जैसे २ कर्म वे करते हैं तैसी २ गति पाते हैं और आवागमन में भटकते २ यम के मुख में जा पड़ते हैं। जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लय होजाते हैं तैसेही जन्म जन्म उपजते हैं मरते जाते हैं। उन्मत्त की नाईं प्रमादी भ्रमते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनन्नाम-
षट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३६॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! इस प्रकार जगत् की स्थिति है सो सर्व चञ्चल आकार और विपरिणामरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्ग चञ्चलरूप हैं तैसेही जगत् की गति चञ्चल है आत्मा से जगत् स्वतः उपजता है, किसी कारण से नहीं होता; और पीछे कारण कार्यभाव होजाता है और वही चित्त में दृढ़ हो भासता है; आत्मा में यह कोई नहीं। जैसे जल से तरङ्ग स्वाभाविक उठकर लय होजाते हैं, तैसेही आत्मा से स्वाभाविक

जगत् उपज के लय होते हैं। जैसे ग्रीष्मऋतु में तपन से मरुस्थल जल की नाईं स्पष्ट भासता है पर जल कुछ भी नहीं है और जैसे मद से मत्त पुरुष आपको और का और जानता है, तैसेही ये पुरुष आत्मरूप हैं चित्तसे आपको देवता, मनुष्य आदिक शरीर जानते और कहते हैं। हे रामजी! यह जगत् आत्मा में न सत् है, न असत् है; जैसे सुवर्ण में भूषण हैं तैसेही मूढ़जीव आपको आकार मानते हैं। इससे तुम दृश्य को त्याग के द्रष्टा में स्थित हो और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक सबको जानता है उसी को आत्मब्रह्म जानो; वह सर्व में पूर्ण-स्थित, स्वच्छ और निर्मल है। आत्मसत्ता में एकद्वैत कल्पना कुछ नहीं। जबतक आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु भासती है तबतक वासना उसकी ओर धावती है। हे रामजी! आत्मा से व्यतिरेक कुछ सिद्ध नहीं होता तो किसकी वाञ्छा करे; किसका अनुसन्धान करे और किसका ग्रहण, त्याग करे? आत्मा को ईप्सित, अनीप्सित, इष्ट, अनिष्ट आदिक कोई विकार विकल्प स्पर्श नहीं करता और कर्त्ता, कारण, कर्म तीनों की एकता है न कोई आधार है, न आधेय है; द्वैत कल्पना का असंभव है और अहं-त्वं आदिक कुछ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है। ऐसे जानके सर्वदा निर्द्वन्द्व होकर सर्व सन्ताप से रहित कार्य में प्रवृत्त होजाओ। पूर्व जो तुमने कुछकिया और नहीं किया उस करने और न करने से तुमको क्या सिद्ध हुआ और पाने योग्य कौन पद पाया और भूत की गिनती में क्या बात है? तुम आपको हृदय में अकर्त्ता भावना करो और बाहर से इन्द्रियों से जगत् के कार्य करो; जब स्थिरतारूपी समुद्र में तुम्हारी वृत्ति धैर्यवान् होगी तब शान्तात्मा होगे पर दृश्य जगत् में तो दूर से दूर भी गये हृदय में शान्ति नहीं होती। जहां चाहे वहां जावे और चाहे जैसे पदार्थ पानेका यत्न करे पर उसके पाये से भी शान्ति प्राप्त न होगी। जगत के सर्व दृश्यपदार्थ त्यागकर जो शेष अपना स्वरूप रहता है वही चिदात्मा है। उसमें स्थित हुये से शान्ति प्राप्त होगी॥

इति श्रीयो॰स्थितिप्रकरणे शान्त्युपदेशकरणन्नाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ३७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार जो ज्ञानी पुरुष हैं उनमें कर्तव्य भाव भी दृष्टि आताहै और हिंसादिक तामसी कर्म भी करते हैं तौभी स्वरूप के ज्ञान से वे अकर्ताही हैं उन्होंने कदाचित् कुछ नहीं किया और जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे जैसा कर्म करते हैं वैसाही फल भोगते हैं। मनमें सत्यजानके जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छा करता है सो फुरना वासनारूप होताहै उसी सद्भाव फुरनेका नाम कर्तव्य है और उसी चेष्टा से फलकी प्राप्ति होती है। जिस पदार्थ को सत् जानके वासना फुरती है उसका अनुभव होता है; शरीर करे अथवा न करे पर जैसी वासना मन में दृढ़ होती है वह शुभहो अथवा अशुभ उसी के अनुसार दृश्य भासिआताहै। शुभसे स्वर्ग भासता है और अशुभ से नरक भासता है। जिस पुरुष को आत्माका अज्ञान है यद्यपि वह प्रत्यक्ष अकर्ता है तौ भी अनेक कर्म के फलको अनुभव करताहै और जो ज्ञानवान् हैं उनके हृदयमें पदार्थोंका सद्भाव और वासना दोनों नहीं होतीं क्योंकि उनमें कर्तव्य का अभाव है। यद्यपि वे करते हैं तौ भी कर्तव्य के फलको नहीं प्राप्तहोते। और संसारको असत्य जानते हैं; केवल शरीर का स्पन्दमात्र उनका कर्म है, हृदयमें बन्धवान् नहीं होते। पूर्व के प्रारब्ध से सुख दुःख फल उनको प्राप्त भी होताहै परन्तु वे आत्मा से भिन्न उसको नहीं जानते; वे सर्व ब्रह्मही देखते हैं और जो अज्ञानी हैं वे अवयव के स्पन्द में आपको कर्ता मानते हैं और उसके अनुसार सुख दुःख भोगते और मोह को प्राप्त होते हैं। जिनका मन अनात्मभाव में मग्न है वे अकर्ताहुये भी कर्ता होते हैं और मन से रहित केवल शरीर से किया कर्म किया भी न किया है। इससे मन हीं कर्ता है शरीर कुछ नहीं करता। यह जब जगत् मन से उपजा है, मनरूप है और मनहीं में स्थित है जिसका मन अमनभाव को प्राप्त हुआ है उसको सब शान्तरूप है। जैसे तीक्ष्ण धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है और जब वर्षा होती है तब शान्त होजाती है; तैसेही जब आत्मज्ञान होता है तब यह सब जगत् शान्त होजाता है और संसार के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते। न वह चञ्चल है, न सत्य है और न असत्य है, सर्व विकार से रहित शान्तरूप है।

वह संसारकी वासनामें नहीं डूबता पर अज्ञानी डूबता है क्योंकि उसका मन संसारभ्रम में मग्न रहता और सदा पदार्थों की तृष्णा करता है। ज्ञानी नहीं करता। हे रामजी! और दृष्टान्त सुनो कि, अज्ञानी के अकर्तव्य में भी कर्तव्य है और ज्ञानी के कर्तव्य में भी अकर्तव्य है। जैसे कोई पुरुष शय्यापर सोया हो और स्वप्न में गिरके दुःख पावे तो वह अकर्तव्य में कर्तव्य हुआ और जैसे समाधि में स्थित होकर गढ़े में गिरा है पर उसको सर्व शान्तरूप है, यह कर्तव्य में भी अकर्तव्य हुआ क्योंकि; शय्या पर सोया था उसका मन चलता था इससे अकर्तव्य में उसको कर्तव्य हुआ और दुःख का अनुभव करनेलगा और दूसरे को सुख का अनुभव हुआ। इससे यह निश्चय हुआ कि, जैसा मन होता है तैसीही सिद्धता प्राप्त होती है। तुमभी असंसक्त होकर कर्म करो तब अकर्ता हो रहोगे। जो कुछ जगत् भासता है वह आत्मा से व्यतिरेक नहीं। जिसको यह निश्चय होता है उस ज्ञानवान् को सुख दुःख स्पर्श नहीं करते; उसे आधार, आधेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता जब ऐसे निश्चय होता है कि, मैं देह नहीं, सब पदार्थों से व्यतिरेक और बाल के अग्रके सौवें भाग से भी सूक्ष्म हूं अथवा जो कुछ दृश्य जगत् है सो सर्व मैंहीं हूं, सर्व तत्त्व का प्रकाशक और सर्वव्यापी हूं; इस निश्चय से उसको सुख दुःख का क्षोभ नहीं होता और विगतज्वर होकर स्थित होता है। यद्यपि दुःख और संकट ज्ञानवान् को भी आ प्राप्त होतेहैं तो भी उसको नहीं भासता; वह परमानन्द से आनन्दवान् लीलामात्र विचरता है। जैसे चन्द्रमाकी चांदनी शीतल प्रकाशित होती है तैसेही वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होताहै; उसको न चिन्ता होती है, न कोई दुःखहै। वह शान्तरूप कर्मका कर्ता भीहै पर अकर्ता है क्योंकि, मन से सदा अलेप रहता है। हे रामजी! हस्त, पादादिक इन्द्रियोंसे करने का नाम कर्म नहीं, मनके करने का नाम कर्म है। मनहीं सब कर्मों का कर्ता है। अहं त्वं सब भाव सब लोकोंका बीज, सर्व गत मन है। जब मन नाश हो तब सब कर्म नष्ट होजाते हैं और सब दुःख मिटजाते हैं। जैसे बालक मन से नगर

रचे और फिर लीन करले तो उसको उपजाने और लीन करने में हर्ष शोक कुछ नहीं होता तैसेही परमार्थदर्शी को किसी कर्म का लेप नहीं होता; वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता और उसमें कर्तव्य, भोक्तव्य, सुख, दुःख, अज्ञानी मोह से अध्यारोप करते हैं और कुछ नहीं। ज्ञानवान् को बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख, कुछ नहीं भासता क्योंकि, वह तो असंसक्त मनहै। जिसका मन आसक्तहै उसको नानादृश्य भासताहै और ज्ञानवान् को केवल आत्मसत्ता जो एक द्वैत कलना से रहित है भासती है। जैसे जल से तरङ्ग भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न नहीं। न कोई बन्ध है, न कोई मोक्ष है और न कोई बाँधने योग्यहै; अज्ञानदृष्टि से दुःखहै, बोध से लीन होजाते हैं। बन्ध और मोक्ष संकल्पसे कल्पित मिथ्यारूपहैं। तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अंहकारको त्यागके आत्मा में निश्चय करो और धीरज बुद्धिमान् होकर प्रकृत आचार को करो। तब तुम्हें कुछ स्पर्श न करेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्र० मोक्षोपदेशोनाम अष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥३८॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सच्चिदानन्द, अद्वैत, निर्विकारादिक गुणों से सम्पन्न ब्रह्मतत्त्व में अविद्यमान विचित्र जगत् अविद्या कहां से आया? वशिष्ठजी बोले, हे राजपुत्र! यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूपहै और ब्रह्मसत्ता सर्व शक्ति है; इस कारण दृश्यरूप हो रहा है और सत्य, असत्य, एक, अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है जैसे जल में जल उल्लासरूप नाना प्रकार के तरङ्ग, बुद्बुदे, आवृत्त आकार हो भासता है तैसेही चिद्घन में चिद्घन सर्व शक्ति और सर्वरूप होकर फुरता है। कहीं कर्मरूप, कहीं वाणीरूप, कहीं गुणरूप, कहीं मनरूप और कहीं भरण, पोषण और नाश का कारण होता है। सब पदार्थों का बीज उत्पन्नकर्ता ब्रह्मसत्ताहै; जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजकर उसीमें लय होजाते हैं तैसेही सबपदार्थ उपजकर ब्रह्म में लय होते हैं। रामजी ने फिर पूछा कि, हे भगवन्! आपके वचन का उच्चार प्रकटहै तो भी कठिन और अति गम्भीर है; इनका तोल नहीं पाया जाता और इनका यथार्थभाव मैं पा नहीं सक्ता। कहां मन संयुक्त

षट्इन्द्रियोंकी वृत्तियों से और सब पदार्थ की रचना से रहित स्वरूप और कहां जगत्? जो पदार्थ जिससे उपजता है वह उसी का रूप होताहै। जैसे दीपक से उपजा दीपक, मनुष्य से मनुष्य और अग्नि से अग्नि होताहै; इसी प्रकार कारण से जो कार्य उपजता है सो भी उसी के सदृश होताहै। तैसेही जो निर्विकार आत्मा से जगत् उपजा है वह भी निर्विकार होना चाहिये पर वह तो ऐसे नहीं; आत्मा निर्विकार और शान्तिरूप है और जगत् विकारी और दुःखरूप है; उससे कलङ्करूप जगत् कैसे उपजा? इतना कह बाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार रामजी ने कहा तब ब्रह्मऋषि वशिष्ठजी बोले कि, हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूपहै पर नाना प्रकार मलीनरूप जो भासताहै सो मलीनता नहीं है। जैसे तरङ्ग के समूह समुद्र में फुरते हैं सो मलीनता धूल नहीं हैं, वही रूप है; तैसेही आत्मा में जगत् कुछ कलङ्क नहीं है वही रूप है। जैसे अग्नि में उष्णता अग्निरूप है तैसेही आत्मा में जगत् आत्मारूप है, भिन्न नहीं। रामजी ने फिर पूछा कि, हे ब्रह्मन्! निर्दुःख और निर्धर्म से जो यह दुःखरूप जगत् उपजाहै यही कलङ्क है। आपके वचन आकाशरूप हैं और मुझे स्पष्ट नहीं भासते। मैं इसको नहीं जानसक्ता। तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी ने विचारा कि, परम प्रकाश को अभी इसकी बुद्धि नहीं प्राप्तहुई; कुछ निर्मल हुई है और पदार्थ भूमिका को जानता है परन्तु परमार्थ वेत्ता नहीं हुआ। जिसको परमार्थ बोध प्राप्त होताहै और जिसका मन शान्त होताहै; वह ज्ञाता ज्ञेय पुरुष मोक्ष उपाय की वाणी के पार प्राप्त होता है और संसाररूपी अविद्या मल उसको नहीं भासता। वह केवल अद्वैत सत्ता देखता है। जबतक मैं और उपदेश रामजी को न करूंगा तबतक इसको विश्राम न होगा। जो अर्द्ध प्रबुद्ध है उसको सब ब्रह्म ही कहना नहीं शोभता क्योंकि, उसका चित्त भोगों से सर्वथा व्यतिरेक नहीं हुआ। सर्व ब्रह्मके वचन सुनके वह भोगों में आसक्त होगा जो नाशका कारण है। जिसको परमदृष्टि प्राप्त हुई है उसको भोग की इच्छा नहीं उपजती। इससे सर्वब्रह्म का कहना रामजी को सिद्धान्त काल में शोभेगा। गुरु को

शिष्य के प्रति प्रथम सर्वब्रह्म कहना नहीं बनता। प्रथम शम दम आदिक गुणों से शिष्य को शुद्ध करे, फिर सर्वब्रह्म शुद्ध तू है ऐसे उपदेश करे तो उससे वह जग उठताहै। जो अज्ञानी अर्द्धप्रबुद्धहै उसको ऐसा उपदेश करनेवाला गुरु उसको महानरकमें डालताहै। जो प्रबुद्धहै उसको भोगकी इच्छा क्षीण होजातीहै और वह निष्काम पुरुषहै इससे उसको अविद्यारूपी मल नहींरहता और उसको उपदेश करनेकी आवश्यकता नहीं। इसप्रकार विचार कर अज्ञानरूपी तम के नाशकर्ता और ज्ञान के सूर्य भगवान् वशिष्ठजी ने रामजी के प्रति कहा। वशिष्ठजी बोले, हे राघव! कलनारूप कलङ्क ब्रह्ममें है वा नहीं है, यह मैं तुमसे सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जानोगे। ब्रह्मसत्ता सब शक्तिरूप, सर्वव्यापक और सर्वगत है और सब उसी में रचे हैं। जैसे इन्द्रजाली विचित्र शक्ति से अनेकरूप रचता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्यकर दिखाताहै तैसे ही आत्मा मायावी परम इन्द्रजाली अघटन घटना है अर्थात् जो न बने उसको भी बनाता है। वह अपनी शक्ति से पहाड़ को गढ़ा करता है; वल्ली में पाषाण लगाता है और पाषाणमें बेल लगाता है। वनकी पृथ्वी को आकाश करता है और आकाश को पृथ्वी करता है; और आकाश में वन लगाता है—जैसे आकाश में गन्धर्वनगर भासता है, वन को आकाश करता है—जैसे पुरुष की छाया आकाश होजाती है और आकाश को पृथ्वीभाव प्राप्त करता है—जैसे रत्न की कन्दरा पृथ्वी पर हो और उसमें आकाश का प्रतिबिम्ब पड़े। हे रामजी! यह विचित्ररूप दृश्य जो तुमसे कहा है सो शुद्ध व्यक्ततत्त्व—अचैत्य—चिन्मात्र में जो चेतनता का लक्षण जानना है उसीसे रचाहै और कैसा रचाहै कि, वही चित्त संवेदन फुरने से जगत्रूप हो भासता है। उसमें सबप्रकार और सर्वरूप वही है जो एकरूप अविद्यमान है तो हर्ष, शोक और आश्चर्य किसका मानिये? यह अन्यथा कोई नहीं, सब एकरूप है। इसी कारण हम को समता भाव रहता है और हर्ष, शोक, आश्चर्य और मोह नहीं प्राप्त होता। ममता और चपलता आदिक विकार हमको कोई नहीं होता

और ऐसे हम कदाचित् जानतेही नहीं। देश, काल, वस्तु जगत् अवसान को प्राप्त हो भासते हैं और उनका विपर्यय होना भी भासता है पर वह अपने स्वभाव में स्थित है क्योंकि; यह दृश्य उनको अपने स्वरूपका आभास फुरता भासता है। जो कुछ दृश्य प्रपञ्चहै वह सत्य चित्त संवित् की स्पन्द कला से फुरता है और नाना प्रकार देश, काल, क्रिया और द्रव्य होकर भासताहै। उसको आत्मसत्ता किसी यत्नसे नहीं रचती बल्कि स्वाभाविकही फुरने से फुरते हैं। जैसे समुद्र तरङ्गों को किसी यत्न से नहीं उपजाता और लीन करता स्वाभाविक ही चमत्कार फुरता और लीन होताहै; तैसेही आत्मा में स्वाभाविकही सृष्टि फुरती है और लय होती है। जैसे समुद्र और तरङ्ग में कुछ भेद नहीं तैसेही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं-वही रूप है। जैसे दूध घृतरूप है घट पृथ्वी रूप है और रेशम तांतरूप है तैसेही जगत् आत्मरूप है। जैसे वट धान्य वृक्षरूप हो भासता है और समुद्र तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मा जगतरूप हो भासता है। हे रामजी! इन दृष्टान्तों का एक अङ्ग लेना; कारण कार्य भाव न लेना क्योंकि, आत्मा में न कोई करता है, न कोई भोक्ता है और न कोई विनाश होता है केवल आत्मतत्त्व, साक्षी, निरामय और अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ता में स्थित है। यह जगत् आत्मा का प्रकाश है; जैसे दीपक और सूर्यका प्रकाश। जैसे पुष्प का स्वभाव सुगन्ध है तैसेही आत्मा का स्वभाव जगत् है; किसी कारण कार्य से नहीं हुआ। जगत् आत्मा का स्वभाव आभासरूप है और आत्मा से कुछ भिन्न नहीं हुआ। जैसे पवन का स्वभाव स्पन्दरूपहै और जब निस्पन्द होता है तब नहीं भासता तैसेही आत्मामें संवेदन फुरताहै तब जगतहो भासताहै और जब लय होताहै तब जगत् नहीं भासता। जगत् कुछ नहींहै न सत्है और न असत् है। कहीं प्रकट भासता है और कहीं अप्रकट भासता है और नाना प्रकार का विचित्ररूप भासता है। जैसे वन में पुष्प का रस होताहै पर उनके उपजने और नष्ट होनेसे न वन उपजता है और न नष्ट होता है तैसेही आत्मसत्ता जगत् के उपजने और नष्ट होनेसे रहित है वास्तव में

उपजा कुछ नहीं इससे आत्माही अपने आप में स्थित है पर असम्यक् ज्ञान से जगत् भासता है और अनन्त शाखाओं से फैल रहाहै इसलिये इसको ज्ञापनरूपी कुठार से काटो तब सुखी होगे। जगत्रूपी वृक्ष का असम्यक्ज्ञान बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल है और आशारूपी बल्ली से वेष्टित है; दुःखरूपी उसकी शाखा हैं, भोग और जरारूपी फल हैं और तृष्णारूपी लता से घिरे हुये भासते हैं। ऐसे संसाररूपी वृक्ष को आत्मविवेकरूपी कुठारसे यत्न करके काटकर मुक्त हो। जैसे गजपति अपने बल से बन्धन तोड़के सुखचित्त विचरताहै तैसेही तुमभी निर्बन्ध होकर विचरो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकताप्रतिपादनन्नाम एकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३६ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ये जो जीव हैं वे ब्रह्म से कैसे उत्पन्न हुये और कितने हुये हैं, मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! जैसी विचित्रता से ये उपजते, नाश होते, बढ़ते और स्थित होते हैं वह क्रम सुनो। हे निष्पाप, राम! शुद्ध ब्रह्मतत्त्व की वृत्ति जो चेतन शक्ति है सो निर्मल है; जब वह स्फुरणरूप होती है तब कलनारूप घनभाव को प्राप्त होती है और संकल्परूप धारण करती है; और फिर तन्मय होकर मनरूप होती है। वह मन संकल्पमात्र से जगत् को रचता है और विस्तारभाव को प्राप्त करताहै। जैसे गन्धर्बनगर विस्तार को प्राप्त होता है तैसेही मन से जगत् विस्तार होता है। ब्रह्मदृष्टि को त्याग के जो जगत् रचताहै सो सब आत्मसत्ता का चमत्कार है। हमको तो सब आकाशरूप भासताहै पर दूरदर्शी को जगत् भासता है। जैसे चित्त संवित्में संकल्प फुरता है तैसाही रूप होता है। प्रथम ब्रह्मा का संकल्प फुरा है इस लिये उस चित्त संवित् ने आपको ब्रह्मारूप देखा और ब्रह्मारूप होकर जब जगत् को कल्पा तब प्रजापति होकर चतुर्दश प्रकार के भूत जात उत्पन्न किये; वास्तव में सब ज्ञप्तिरूप हैं। उसके फुरने से जो जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है। वास्तव में शरीर कुछ नहीं संकल्पमात्र है स्वप्न नगरवत् भ्रान्तिसे भासते हैं। उस भ्रान्तिरूप जगत् में जो जीव हुए हैं

और कोई मोह से संयुक्त है, कोई अज्ञानी है, कोई मध्यस्थित है और कोई ज्ञानी उपदेष्टा है जो कुछ भूत जात हैं वे सब आधिव्याधि दुःख से दीन हुए हैं। उनमें कोई ज्ञानवान् सात्त्विकी हैं और कोई राजसी सात्त्विकी हैं। जो शान्तात्मा पुरुष हैं उनको संसारके दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते वे सदा ब्रह्म में स्थित हैं। हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूतजात कहे हैं सो ब्रह्म, शान्त, अमृतरूप, सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यस्वरूप, अनन्तात्मा और आधिव्याधि दुःख से रहित निर्भ्रम है। जैसे अनन्त सोमजल के किसी स्थान में तरंग फुरते हैं तैसेही परमब्रह्म सत्ता के किसी स्थान में जगत्-प्रपञ्च फुरता है। फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मतत्त्व तो अनन्त, निराकार, निरवयवरूप है उसका एक अंश एक स्थान कैसे हुआ? निरवयव में अवयवक्रम कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस करके उपजे हैं अथवा उससे उपजे हैं यह जो कारण और उपादान है वह भ्रान्तिमात्र है। यह शास्त्र रचना व्यवहार के निमित्त कही है परमार्थ में कुछ नहीं है अवयवसे जो देशादिक कल्पनाहै वह क्रमसे नहीं उपजी; उदय और अस्त पर्यन्त दृष्टिमात्र भी होती है पर कल्पनामात्र है। वह कल्पना भी आत्मरूप है। आत्मासे रहित कल्पना भी न कुछ वस्तु है न हुई है और न कुछ होगी। उसमें जो शब्द, अर्थ आदिक युक्ति है वह व्यवहार के निमित्त है परमार्थ में कुछ नहीं शब्द अर्थमात्र जगत्कलना उसकरके उपजी है और उससे उपजी है यह द्वितीय कल्पना भी नहीं यह तो तन्मय शान्तरूप आत्माही और कुछ नहीं। जैसे अग्निसे अग्नि की लाटें फुरती हैं सो अग्निरूप हैं; और 'उससे उपजी' और 'उस करके उपजी' यह कल्पना अग्निमें कोई नहीं, अग्नि ही अग्नि है; तैसेही जन और जनक अर्थात् कार्य और कारणभेद आत्मा में कोई नहीं। कार्य कारणभाव कल्पनामात्र है; जहां अधिकता और ऊनता होती है वहां कारण कार्यभाव होताहै कि, यह अधिक कारणहै और वह कार्य है। भिन्न२ कारण कार्य शब्द बनता भी है और जहां भेद होताहै वहां भेद कल्पना भी हो पर एक अद्वैत में शब्द कैसे हो और शब्दका अर्थ कैसे हो? जैसे अग्नि

और अग्निकी शिखा में भेद नहीं होता तैसेही कारण कार्यभाव आत्मामें कोई नहीं–शब्दअर्थ कल्पनामात्र है। जहां प्रतियोगी, व्यवच्छेद और संख्या भ्रमहोताहै वहां द्वैत और नानात्व होताहै। जैसे चैतनका प्रतियोगी जड़ और जड़ का प्रतियोगी चैतन है; व्यवच्छेद अर्थात् परिच्छिन्न वह है जैसे घट में आकाश होता है और संख्या यह है कि जैसे जीव और ईश्वर। यह शब्द अर्थ द्वैतकल्पना में होते हैं और जहां एक अद्वैत आत्माही है वहां शब्द अर्थ कोई नहीं। जैसे समुद्र में तरंग बुद्बुदे सबही जल हैं और जल से कुछ भिन्न नहीं, तैसेही शब्द और अर्थकल्पना ब्रह्म है। जो बोधवान् पुरुष हैं उनको सब ब्रह्मही भासता है; चित्त भी ब्रह्म है, मनभी ब्रह्म है और ज्ञान, शब्द, अर्थ ब्रह्मही है, ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं और उससे जो भिन्न भासता है वह मिथ्याज्ञान का विकल्प है जैसे अग्नि और अग्नि की लाटों की कल्पना भ्रान्तिमात्र है तैसेही आत्मा में जगत् की भिन्नकल्पना असत्रूपहै। जो ज्ञान से रहित है उसकी दृष्टिदोप से सत्य हो भासती है। इससे सर्वब्रह्म है, ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं। निश्चय करके परमार्थब्रह्मसे सबब्रह्महीं है। सिद्धान्तकाल में तुमको यही दृष्टि उपजेगी। यह जो सिद्धान्तपिञ्जर मैंने तुमसे कहाहै उसपर उदाहरण कहूंगा कि, यह क्रम अविद्याका कुछभी नहीं; अज्ञानके नाशहुये अत्यन्त असत् जानोगे। जैसे तमसे रस्सी में सर्प भासताहै और जब प्रकाश उदय होता है तब ज्योंका त्यों भासताहै और सर्पभ्रम नष्ट होजाताहै; तैसेही अज्ञान दृष्टि से जगत् भासताहै। जब शुद्ध विचारसे भ्रान्ति नष्ट होगी तब निर्मल प्रकाश सत्ता तुमको भासेगी इसमें संशय नहीं। यह निश्चितार्थ है॥

इति श्रीयोग०स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनन्नाम चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४०॥

रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपके ये वचन क्षीरसमुद्र के तरङ्गवत् उज्ज्वल; तीनों तापों के नाशकर्ता; हृदयके मल दूर करनेको निर्मलरूप और अज्ञानरूपी तमके नाशकर्त्ता प्रकाशरूप हैं और गम्भीरहैं; मैं उनकी तोल नहीं पासक्ता एकक्षण में मैं संशय से अन्धकार को प्राप्त होताहूं और एकक्षण में निःसंशयरूप प्रकाश को प्राप्त होताहूं जैसे चपलरूप मेघसे सूर्य

का प्रकाश कभी भासता और कभी घिरजाताहै। इससे मेरा संशय दूर करो कि, अप्रमेयरूप आत्मानन्द सत्ता प्रकाशरूप और असत्यभाव से रहित साररूप है तो उस अद्वैततत्त्व में कल्पना कहां से आई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ मैंने तुमसे कहाहै वह यथार्थ है और जैसे कहा है तैसेही है। यह वचन असमर्थ भी नहीं क्योंकि, जिसके हृदयमें ठहरें उसको आत्मपद में प्राप्त करें; विरूपभी नहीं है क्योंकि, इनका रूपफल प्रकटहै जिसके धारण से संसार के सब दुःख मिटजाते हैं और पूर्वापर विरोध भी नहीं है कि, प्रथम कुछ और कहा और पीछे कुछ और कहा। जो कुछ मैंने कहाहै सो यथार्थ कहाहै परन्तु ज्ञानदृष्टिसे जब तुम्हारा हृदय निर्मलहोगा और विस्तृत बोधसत्ता हृदयमें प्रकाशेगी तब तुम मेरे वचन के तात्पर्यको हृदय में जानोगे। तुमको जो मैं उपदेश करता हूं सो वाच्य वाचक शास्त्र के सम्बन्ध जतानेके निमित्त करताहूं। जब इन युक्त वचनों से तुम जानोगे तब तुम्हें अद्वैतसत्ता निर्मल भासेगी और जो कुछ वाच्य-वाचक शब्द अर्थरचना है उसको त्याग करोगे। ज्ञानवान्को सदा परमार्थ अद्वैत सत्ता भासती है। आत्मामें इच्छादिक कल्पना कुछ नहीं; निर्दुःख निर्द्वन्द्व है और जगत्रूप होकर स्थितहुआ है। इसप्रकार मैं तुमको विचित्र युक्ति से कहूंगा। जबतक सिद्धान्त उपदेशका आकाश है तबतक आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती। जब आत्मबोध होगा तब आपही जानोगे। अज्ञानरूपी तम वाक्विस्तार विना शान्त नहीं होता। इसकारण मैं तुमको अनेकयुक्ति से कहूंगा। तबतक सिद्धान्त उपदेश का अवकाशहै। हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता के आश्रय जो संवेदना भास फुरताहै उसीका नाम अविद्याहै। वह दो रूप रखती है—एक उत्तम और दूसरा मलीन। जो स्पन्दकला अविद्याके नाश निमित्त प्रवर्त्तती है वह उत्तमहै और विद्याभी उसीका नामहै और सबदुःख नाश करती है और जो संसार की ओर फुरती है वह अविद्या है अर्थात् आत्मा की ओर फुरती है सो विद्याहै और दृश्यकीओर जो फुरती है वह अविद्या है पर दोनों स्पंदरूप हैं। इससे अविद्या से अविद्या का नाश करो। जैसे ब्रह्मअस्त्रसे ब्रह्मअस्त्र शान्त होताहै; विषको विष नाश

करता है और शत्रु को शत्रु मारताहै; तैसेही अविद्या से अविद्या नाश होतीहै। इसीप्रकार तुमभी इसको नाश करो तब सुखदायक होगे। विचार से जब इसका नाश होताहै तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई; जैसे दीपक से अन्धकार देखिये तो नहीं दीखता कि, कहां गया। बड़ा आश्चर्य है कि, जीव का ज्ञान इसने ढांपलियाहै आत्मसत्ता सदा अनुभव और उदयरूप है पर अज्ञानी जीव को नहीं भासती। जबतक अविद्या नहीं जानी तबतक फुरती है और जब जानी तब नहीं जानता कि, कहां गई इससे भ्रममात्र सिद्ध है। बड़ा आश्चर्य है कि, माया ने संसार को बांध रक्खा है और सत्यकी नाईं प्राप्तहुई है पर असत्यहै। बुद्धिमानोंको भी यह नाशकर छोड़ती है तो और जीवों का क्या कहना है। निरन्तर अभेदरूप आत्मा में अविद्या भेद कल्पना कोई नहीं; जिस पुरुष ने संसार माया को ज्यों का त्यों जाना है वही पुरुषोत्तम है। जिसको यह भावना हुई है कि अविद्या परमार्थ से कुछ नहीं असत्यरूप है सो ज्ञानवान् है। जो कुछ जानने योग्य है वह उसने जाना है-इसमें संशय नहीं। जबतक तुम स्वरूप में न जागो तबतक मेरे वचन में आसक्तबुद्धि करो और निश्चय धारो कि, अविद्या नाशरूप है और है नहीं। जो कुछ जगत्दृश्य भासता है वह मन का मनन असत्रूप है जिसको यह निश्चय हुआ है वही पुरुष मोक्षभागी है। यह जो मनका फुरनारूप जगत् दृश्यभाव को प्राप्त हुआ है वह सब ब्रह्मरूप है। जिसके हृदय में यह निश्चय स्थित है वही पुरुष मोक्षभागी है और जिसको चराचर जगत में दृढ़ भावना है वह बन्धभागी है-जैसे पक्षी जाल में बन्धायमान होता है। हे रामजी ! संपूर्ण जीव इस संसारकी सत्यदृष्टि से बांधे हुये हैं। सब जगत् स्वप्न भ्रान्तिरूप है पर उसमें जिसको असत् बुद्धि है अथवा सतब्रह्म बुद्धि है वह अशक्त होकर संसारदुःख में नहीं डूबता और जिसको अनात्मधर्म देहादिकमें भावनाहै और स्वरूप में आत्मबोध नहीं वह हर्ष-शोक आपदा को प्राप्त होता है जिसको स्वरूप में स्वरूप बोधहै और अनात्म धर्मका त्याग है उसको संसार अविद्या नहीं रहती

और दुःख विकार स्पर्श नहीं कर सक्ता। जैसे जल में धूल नहीं उड़ती तैसेही उस महात्मा पुरुष के चित्त में दुःख उदय नहीं होते। ज्ञानवान् पुरुषके हृदय में जगत् के शब्द अर्थ का रङ्ग नहीं चढ़ता। जैसे सूत विना वस्त्र नहीं होता—पट तन्तुही रूप है तैसेही आत्मा विना जगत् नहीं होता—जगत् आत्मारूप है। जैसे जानके जो व्यवहार में वर्तता है वह पुरुष मानसी दुःख को नहीं प्राप्त होता और जो अविद्या से संसार में भटकता है वह आत्मतत्त्व को नहीं पासक्ता और विद्यमान भी उसको नहीं भासता। केवल आत्मज्ञान से अविद्या का नाश होता है; जिसको आत्मज्ञान हुआ है वह अविद्यारूपी नदी को तरजाता है। आत्मसत्ताके प्राप्त हुये अविद्या क्षीण होजाती है; जिनको अविद्यारूपी संसार के पदार्थ की इच्छा उदय होती है वे अविद्यारूपी नदी में बह जाते हैं। हे रामजी! यह अविद्या बड़े मोह और भ्रम देती है। जब यह दृढ़ होकर स्थित होती है तब तत्पद को घेर लेती है; इससे तुम यह न विचारो कि, अविद्या कहां से उपजी है और कौन इसका कारण है यही विचारो कि, यह नाश कैसे होती है। इसके क्षयका उद्यम करो; जब यह नष्ट होगी तब इसकी उत्पत्ति भी जान लोगे कि, इसप्रकार उपजी है और यह इसका स्वरूप है; यह कारणहै और यह कार्य है। हे रामजी! अविद्या वास्तव में कुछ है नहीं, अविचार सिद्ध है और विचारदृष्टि से नष्ट होजाती है, तब जानी नहीं जाती कि, कहां गई पर जब स्वरूप विस्मरण होता है तब उपजकर दृढ़ होजाती है और फिर दुःख देती है। इससे बल करके इसका नाश करो। बड़े २ शूरमा हुये हैं पर उनको भी अविद्या ने व्याकुल किया है; ऐसा बुद्धिमान् कोई नहीं जिसको अविद्या ने व्याकुल नहीं किया। अविद्या सर्वरोगों का मूल है; यत्न करके इसकी औषध करो कि, जिससे जन्म-रूप कुहिरा न प्राप्त हो। जो कुछ आपदा है उसकी यह अधिष्ठाता सखी है अज्ञानरूपी वृक्ष की बेलि है और अनर्थरूपी अर्थ की जननी है। ऐसी अविद्यारूपी मलीनता को दूर करो जो मोह, भय, आपदा और दुःख की देनेवाली है और हृदय में मोह उपजाकर जीवों को व्याकुल करती

है। अज्ञान चेष्टा से इसकी वृद्धि होती है जब अविद्यारूपी संसार समुद्रसे पार होगे तब शान्ति होगी ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनन्नामएक-
चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्यारूपी रोग को काटकर जब शान्तरूप स्थित होते हैं और विचाररूपी नेत्र से देखते हैं तब यह नष्ट होजाती है। इस विस्तृत व्याधि की औषध सुनो, जीव जगत् का विस्तार मैं तुमसे कहता हूं। सात्त्विक, राजस आदिक मनकी वृत्ति विचारने के लिये मैं प्रवर्त्तता था। जो तत्त्व अमृत और ब्रह्मस्वरूप है वह सर्वव्यापी, निरामय, चैतन्यप्रकाश, अनन्त और आदि अन्त से रहित निर्भ्रम है। जब वह चैतन्यप्रकाश स्पन्दरूप हो फुरता है तब दीपकवत् तेज प्रकाश चैतनरूप चित्तकला जगत् को चेतने लगता है—तब जगत् फुरता है। जैसे सोमजल समुद्र में द्रवता से तरङ्ग होता है सो जल से भिन्न नहीं है तैसेही सर्वात्मा से भिन्न किसी कलाका रूप कुछ नहीं—यह स्पन्दरूप भी अभेद है। जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसेही आत्मा में चित्तशक्ति है; जैसे नदी में वायु के संयोग से तरङ्ग उठते हैं तैसेही आत्मा में चित्तकला दृश्य जगत् होता है बल्कि, ऐसे भी नहीं; आत्मा अद्वैत है, स्वतः उसमें चित्तकला होआती है। जैसे वायु में स्वाभाविक स्पन्द होता है। स्पन्द और निस्पन्द दोनों वायु के रूप हैं पर जब स्पन्द होता है तब भासता है। और निस्पन्द होता है तब अलक्ष होजाता है तैसेही चित्तकला फुरती है तब लक्ष में आती है और निस्पन्द हुई अलक्ष होती है तब शब्द को गम नहीं होती। स्पन्द से जगत्भाव को प्राप्त होती है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और चक्र फुरते हैं तैसेही चैतन में चित्तकला फुरती है। जैसे आकश में मुक्तमाल भासतीहै सो है नहीं तैसेही आत्मामें वास्तव कुछ है नहीं परस्पन्दभावसे कुछ भूषित दूषित हो भासतीहै। आत्मासे भिन्न कुछ नहीं परन्तु भिन्नकी नाईं भासतीहै। जैसे प्रकाशकी लक्ष्मी कोटि रवि सम स्थित होतीहै तैसेही आत्मा में चित्तशक्ति है और देश, काल, क्रिया

और द्रव्य को जैसे जैसे चेतती है तैसेही तैसे हो भासती है। फिर नाम-संज्ञा होती है और अपने स्वरूप को विस्मरण करके दृश्य से तन्मय होती है तौ भी स्वरूप से व्यतिरेक नहीं होती परन्तु व्यतिरेक की नाईं भावना होती है। जैसे समुद्र से तरङ्ग और सुवर्ण से भूषण भिन्न नहीं तैसेही आत्मा से चित्तशक्ति भिन्न नहीं; परन्तु अपने अनन्त स्वभाव को विस्मरण करके देश, काल, क्रिया, द्रव्य को नहीं मानती, संकल्पके धारनेसेही कल्पना भाव को प्राप्त होतीहै और विकल्प कलनासे क्षेत्रज्ञरूप होती है। शरीर का नाम क्षेत्र है और शरीर को भीतर बाहर जानने से क्षेत्रज्ञ नाम होता है। वह क्षेत्रज्ञ चित्तकला अहंभाव की वासना करती है और उस अहंकार से आत्मा से भिन्नरूप धरती है। फिर अहंकार में निश्चय कलना होती है उसका नाम बुद्धि होता है। अहंभाव से जब निश्चय संकल्प कलना होती है उसका नाम मन होता है; वही चित्-कला मनभाव को प्राप्त होती है। जब मन में घन विकल्प उठते हैं तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की भावना से इन्द्रियां फुर आती हैं और फिर हाथ, पांव, प्राण संयुक्त देह भासि आता है। इस प्रकार जगत् से देह को पाकर जीव जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है; वासना में बँधा हुआ दुःख के समूह को पाता है; कर्म से चिन्तामें दीन रहता है और जैसे कर्म करता है तैसेही आकार धरता है। जैसे समय पाके फल परिपक्वता को प्राप्त होता है तैसेही स्वरूप के प्रमाद से जीव दृश्यभाव को प्राप्तहोता है; आपको कारण, कार्य मान के अहंभाव को प्राप्त होताहै; निश्चय वृत्ति से बुद्धिभाव को प्राप्त होता है और संकल्प संयुक्त मनभावको प्राप्त होताहै। वही मन तब देह और इन्द्रियांरूप होकर स्थित होताहै और अपना अनन्तरूप भूल जाता है और परिच्छिन्नभाव को ग्रहण करके प्रतियोग और व्यवच्छेदभाव भासता है और तभी इच्छा, मोहादिक शक्ति को प्राप्त होता है। जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं तैसेही सब आपदा और दुःख आय प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अहंकार अपनी रचना से आपही बन्धवान् होता है; जैसे कुसवारी अपने स्थान को रचकर आपही

बन्धवान् होती है। बड़ा खेदहै कि, मन आपही संकल्प से दृश्यको रचता है और फिर उसी देह में आस्था करताहै, जिससे आपही दुःखी होताहै; भीतर से तपता रहता है और आपको बन्धायमानकर संसार जङ्गल में अविद्यारूप आशाको लेके फिरताहै। अपने ही संकल्पकलना से तन्मात्रा देह हुईहै और उसमें अहंप्रतीति होती है। जैसे जलमें तरङ्ग होते हैं तैसेही देहादिक उदय हुये हैं और उनसे बँधाहुआ जीव दुःखित होताहै; जैसे सिंह ज़ंजीर से बांधा जावे। एकस्वरूप है वही फुरने के वश से नानाभाव को प्राप्तहुआ है; कहीं मन, कहीं बुद्धि, कहीं अहंकार, कहीं ज्ञान, कहीं क्रिया, कहीं पुर्यष्टक, कहीं प्रकृति, कहीं माया, कहीं कर्म, कहीं विद्या, कहीं अविद्या और कहीं इच्छा कहाता है। हे रामजी! इसीप्रकार जीव अपने चित्त से भ्रममें प्राप्तहुआहै और तृष्णारूपी शोकरोगसे दुःख पाताहै। तुम यत्नकरके इससे तरो। जरा मरण आदिक विकार और संसार की भावना ही जीव को नष्ट करती है। यह भला है, ग्रहण कीजिये; यह बुरा है, त्यागकरने योग्य है; इसी संकल्प-विकल्प में ग्रसा अविद्याके रङ्ग से रञ्जित हुआ है; इच्छा करने से इसका रूप सकुचगया है और कर्मरूपी अंकुर से संसार-रूपी वृक्ष बढ़गया है जिससे अपना वास्तवस्वरूप विस्मरण हुआ है और कलना से आपको मलीन जान कर अविद्या के संयोग से नरक भोगता है और संसार भावनारूपी पर्वत के नीचे दबकर आत्मपद की ओर नहीं उठ सक्ता। संसाररूपी विषका वृक्ष जरा मरणरूपी शाखा से बढ़गया है और आशारूपी फांस से बांधे हुये जीव भटककर चिन्तारूपी अग्नि में जलते हैं और क्रोधरूपी सर्प ने जीवों का चर्वण किया है जिससे अपनी वास्तवता विस्मरण होगईहै। जैसे अपने यूथसमूह से भूला हरिण शोक से दुःखी होता है; पतङ्ग दीपक की शिखा में जल मरता है और मूल से काटा कमल विरूप होताहै तैसेही आशा से क्षुद्रहुआ मूर्ख बड़ा दुःख पाताहै। जैसे कोई मूढ़ विष को सुखरूप जानके भक्षण करे तो दुःख पाताहै तैसेही इसको भोग में मित्रबुद्धि हुई है परन्तु वह इसका परमशत्रु है, इसको उन्मत्त करके मूर्च्छा करता और बड़ा दुःख देता है। जैसे बांधा

हुआ पक्षी पिंजरे में दुःख पाता है तैसेही यह दुःख पाता है। इससे इसको काटो। यह जगत्जाल असत् और गन्धर्बनगरवत् शून्य है और इसकी इच्छा अनर्थ का कारण है; तुम इस संसार समुद्र में मत डूबो। जैसे हाथी कीचड़ से अपने बलसे निकलताहै तैसेही अपना उद्धार करो। संसाररूपी गढ़े में मनरूपी बेल गिराहै जिससे अङ्गजीर्ण होगये हैं। अभ्यास और वैराग्य के बल से इसको निकाल के अपना उद्धार करो। जिस पुरुष को अपने मनपर भी दया नहीं उपजती कि, संसार दुःख से निकले; वह मनुष्य का आकार है परन्तु राक्षस है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवतत्त्ववर्णनन्नाम द्विचत्वारिं-शत्तमस्सर्गः॥ ४२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी। इस प्रकार जो जीव परमात्मा से फुरकर संसारभावना करते हैं उनकी संख्या कुछ नहीं कही जाती; कोई पूर्व उपजे हैं, कोई अपूर्व उपजे हैं और कोई अबतक उपजते हैं। जैसे फुरनेसे जलके कणके प्रकट होते हैं तैसेही ब्रह्मसत्तासे जीव फुरते हैं पर अपनी वासनासे बांधे हुये भटकते हैं और विवश होकर नानाप्रकार की दशा को प्राप्तहोते हैं; चिन्तासे दीन होजाते हैं और दशों दिशा जल थलमें भ्रमते हैं। जैसे समुद्रमें तरङ्ग उपजते हैं और नष्ट होते हैं तैसेही जीव जन्म और मरण पातेहैं। किसीका प्रथम जन्म हुआ है, किसीके सौ जन्म होचुके हैं; कोई असंख्यजन्म पाचुके हैं; कोई आगे होंगे कोई होकर मिटगये हैं और कोई अनेक कल्पपर्यन्त अज्ञान से भटकेंगे। कोई अब जरा में स्थित हैं; कोई यौवन में स्थित हैं; कोई मोहसे नष्ट हुये हैं; कोई अल्पवय होकर स्थित हैं; कोई अनन्त आनन्दी हुये हैं; कोई सूर्यवत् उदितरूप हैं; कोई किन्नर हैं; कोई विद्याधर हैं; और कोई सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्ष, वैताल और सर्पहैं। कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण कहातेहैं और कोई कान्त, चाण्डाल आदिकहैं। कोई तृण, औषध, पत्र, फूल, मूल को प्राप्तहुये हैं और कोई लता, गुच्छे, पाषाण, शिखर हुये हैं। कोई कदम्बवृक्ष, ताल और तमाल हैं और कोई मण्डलेश्वर चक्रवर्ती

हुये भ्रमते हैं। कोई मुनीश्वर मौनपद में स्थित हैं; कोई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिक रूप हैं। कोई सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ, बैल आदिक पशुयोनि में हैं और कोई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगुलादिक पक्षी हैं। कोई कमल कली, कुमुद, सुगन्धादिक हैं और कोई आपदा से दुःखी हैं। कोई सम्पदावान् हैं, कोई स्वर्ग और कोई नरक में स्थित हैं। कोई नक्षत्र चक्र हैं, कोई आकाश में वायु हैं, कोई सूर्य की किरणों में और कोई चन्द्रमा की किरणों में रस लेते हैं। कोई जीवन्मुक्त हैं, कोई अज्ञान से भ्रमते हैं; कोई कल्याण भागी चिरपर्यन्त भोग को भोगते हैं; कोई परमात्मा में प्रणमीगये हैं। कोई अल्पकाल और कोई शीघ्रही आत्मतत्त्वमें लय हुये हैं; कोई चिरकाल में जीवन्मुक्त होवेंगे; कोई मूढ़ दुर्भावना करते अनात्मा में भ्रमते हैं; कोई मृतक होकर इस जगत में जन्मते हैं; कोई और जगत् में जा स्थित होते हैं और कोई न यहां और न वहां उपजते हैं केवल आत्मतत्त्वमें लयहोते हैं। कोई मन्दराचल, सुमेरु आदि पर्वत होकर स्थित होते हैं; कोई क्षीरसमुद्र, घृतसमुद्र,इक्षुरस, जल आदिक समुद्र हुये हैं। कोई नदियां, तड़ाग, वापिकादि भये हैं; कोई स्त्रियां, कोई पुरुष और कोई नपुंसकरूप हुये हैं। कोई मूढ़, कोई प्रबुध, कोई अत्यन्त मूढ़हुये हैं; कोई ज्ञानी, कोई अज्ञानी, कोई विषयतप्त और कोई समाधि में स्थित हैं। इसी प्रकार जीव अपनी वासना से बांधे हुये भ्रमते हैं और संसारभावनासे जगत् में कभी अध और कभी ऊर्ध्वको जाकर काम, क्रोधादिक दुःख की पीड़ा पाते हैं। वे कर्म और आशारूपी फांसी से बांधेहुये हैं और अनेक देह को उठाये फिरते हैं। जैसे भारवाही भारको उठाते हैं तैसेही कोई मनुष्य शरीरसे फिर मनुष्य शरीरको धारते हैं; कोई वृक्षसे वृक्ष होते हैं और कोई और से और शरीर धारते हैं। इसी प्रकार आत्मरूप को भुलाकर जो देहसे मिलेहुये वासनारूप कर्म करते हैं वे उनके अनुसार अध ऊर्ध्वपन्थ में भ्रमते हैं। जिनको आत्मबोध हुआहै वे पुरुष कल्याणरूप हैं और सब दुःखी मायारूप संसारमें मोहित हुये हैं। यह संसार रचना इन्द्रजालकी नाईं है; जबतक जीव अपने आनन्दस्वरूप

को नहीं पाता और साक्षात्कार नहीं होता तबतक संसारभ्रम में भ्रमता है और जिस पुरुष ने अपने स्वरूप को जाना है और जीवकी नाईं त्याग नहीं किया और बारम्बार संसार के पदार्थों से रहित आत्मा की ओर धावता है वह समय पाकर आत्मपद को प्राप्त होगा और फिर जन्म न पावेगा। कोई जीव अनेक जन्म भोगके ज्ञान से अथवा तप से ब्रह्मा के लोक को प्राप्त होते हैं तब परमपद पाते हैं; कोई सहस्र जन्म भोग भोग-कर फिर संसार में प्राप्त होते हैं; कोई बुद्धिमान् विवेक को भी प्राप्त होते हैं और फिर संसार में गिरते हैं अर्थात् मोक्षज्ञान को पाके फिर संसारी होते हैं; कोई इन्द्रपद पाकर तुच्छ बुद्धि से फिर तिर्यक् पशुयोनि पाते हैं और फिर मनुष्याकार धारते हैं; कोई महाबुद्धिमान् ब्रह्मपद से उपजकर उसी जन्म में ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं; कोई अनेक जन्म में और कोई थोड़े जन्म में प्राप्त होते हैं। कितने एक जन्म से और ब्रह्माण्ड को प्राप्त होते हैं; कोई इसी में देवता से पशु जन्म पाते हैं; कोई पशु से देवता होजाते हैं और कोई नाग होजाते हैं। निदान जैसी २ वासना होती है तैसाही रूप होजाता है। जैसे यह जगत् विस्ताररूप है तैसेही अनेक जगत् हैं; कोई समानरूप है, कोई विलक्षण आकार है; कोई हुये हैं, कोई होवेंगे; विचित्ररूप सृष्टि उपजती है और मिटती है और कोई गन्धर्व भाव, कोई यक्ष, देवता आदिक भाव को प्राप्त हुये हैं। जैसे जीव इस जगत् में व्यवहार करते हैं तैसेही और जगतों में भी व्यवहार करते हैं पर आकार विलक्षण हैं और अपने स्वभाव के वश हुये जन्म मरण पाते हैं। जैसे समुद्रसे तरङ्ग उपजते हैं और मिटजाते हैं तैसेही सृष्टि की प्रवृत्ति, उत्पत्ति और लय होतीहै। जब संवित् स्पन्द होते हैं तब उपजते हैं और जब निस्पन्द होते हैं तब लय होते हैं। जैसे दीपक का प्रकाश लय होता है; सूर्यसे किरणें निकलती हैं, तप्त लोहे और अग्नि से चिनगारी निकलती हैं; काल में ऋतु निकलती हैं; पुष्प से सुगन्ध प्रकट होती है और समुद्र से तरङ्ग उपजते और फिर लय होते हैं तैसेही आत्मसत्ता से जीव उपजते हैं और लय होते हैं। जितने जीव हैं वे सब समय पाके अपने पद में लय

होंगे और स्वरूप में इनका उपजना, स्थित, बन्धन, नष्ट होना मिथ्या है। त्रिलोकीरूप महामाया के मोह से उपजते हैं और समुद्र के तरङ्ग की नाईं नाश होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थावर्णनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४३ ॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जीव इस क्रमसे आत्मस्वरूप में स्थित है फिर अस्थि, मांस से पूर्ण देहपिंजर इनको कैसे प्राप्त हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने प्रथम तुमको अनेक प्रकार से कहा है पर तुम अब तक जाग्रत् नहीं हुये। पूर्वापरके विचार करनेवाली तुम्हारी बुद्धि कहां गई? जो कुछ शरीरादिक स्थावर-जङ्गम जगत् दृष्टि आता है वह सब आभासमात्र है और स्वप्न की नाईं उठा है पर दीर्घ स्वप्न है और मिथ्या भ्रम से भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है और भ्रमने से पर्वत भ्रमते भासते हैं; तैसेही जगत् अज्ञान से भासता है। जिन पुरुषों की अज्ञाननिद्रा नष्ट हुई है और निश्चय से संसारवासना लग गई है वे प्रबुद्धचित्त हैं। संसार को वे स्वप्नरूप देखते हैं और स्वरूपभाव से कुछ नहीं देखते अपने ही स्वभाव में संसार कल्पित है। जीव संसार मोक्ष से प्रथम सर्वदा सत्‌रूप देखते हैं और उनकी संसारभावना असत् नहीं होती। वे जगत्आकार सर्वदा अपने भीतर कल्पते हैं और जीव के अनेक आकार चपलरूप क्षणभङ्ग होते हैं। जैसे जल में तरङ्ग चञ्चलरूप होतेहैं, बीजमें अंकुर रहता है और उसीके भीतर पत्र, फूल और फल होते हैं तैसेही कल्पनारूपी देह मनके फुरने में रहती है। हे रामजी! देह न हो परन्तु जहां मन फुरता है वहां ही देह रच लेता है। जैसे स्वप्न में मनोराज देह रच लेता है तैसेही यह देह और जगत् भी भ्रम से रचा हुआ है। जैसे चक्रपर चढ़ाया मृत्तिका का पिण्ड घटरूप होजाता है तैसे ही मन के फुरने से देह बनता है। सब देह मन के फुरने में स्थित है और जो कुछ जगत् भासता है वह सब संकल्पमात्र है। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्‌रूप होता है तैसेही यह जगत् असत्य है। जैसे बालक को

अपनी परछाहीं में वैताल भासता है तैसेही जीव को अपने फुरने से देहादिक भासते हैं। हे रामजी! सृष्टि के आदि में जो शरीर उत्पन्न हुये हैं वे आभासमात्र संकल्प से उपजे हैं। प्रथम ब्रह्मा पद्म में स्थित हुये और उन्होंने संकल्प के क्रम से संकल्पपुर की नाईं विस्तार किया सो सब मायामात्र है। माया की घनता से यह जगत् भासता है—स्वरूप में कुछ नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरने को पाकर ब्रह्मपद को प्राप्त हुआ वह ब्रह्मा कैसे हुआ है और कैसे स्थित है वह मुझसे क्रम से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहु, रामजी! प्रथम जिसप्रकार ब्रह्मा ने शरीर को पाकर ग्रहण किया है उसको सुनकर स्थिति भी जानोगे। देश काल आदिक के परिच्छेदसे रहित आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है। वह अपनी लीलाशक्तिसे देश, काल, क्रिया कलितरूप हुआहै और उससे जीवके इतने नाम हुये हैं वासनासे तद्रूप हुई चित्तकला चपलरूप मन हुआ और वह दृश्यकलना के सन्मुख हुई। प्रथम उसी चित्तकला ने मानसी शक्ति होकर आकाश की भावना की और स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है उसके सम्मुख हुई। जैसे नूतन बालक प्रकट होता है तैसेही आकाश पोलरूप फुरआया। फिर स्पर्श बीजके सन्मुख हुई तब पवन फुर आया। जब शब्द, स्पर्श, आकाश और पवन का संघर्षण हुआ तब मन के तन्मय होने से अग्नि उपजा और बड़ा प्रकाश हुआ। फिर रस तन्मात्रा की भावना की तब शीतल भावना से जल फुर आया जैसे अति उष्णता से स्वेद निकल आता है। फिर गन्ध तन्मात्रा की भावना की उससे घ्राण इन्द्रिय निकली; स्थूल की भावना से जल चक्र पृथ्वी होकर स्थित हुये और आकाश में बड़ा प्रकाश हुआ। अहंकार की कला से युक्त और बुद्धिरूपी बीजसे समुचितरूप हुई और अष्टम जीवसत्ता हुई। इन अष्ट का नाम पुर्यष्टक हुआ और वही देहरूपी कमलका भँवरा हुआ। उस आत्मसत्तामें तीव्र भावना करके उस चित्तसत्ता ने बड़ा स्थूल वपु देखा। जैसे बीज से वृक्ष फूल होने से रस प्रणमता है तैसेही निर्मल आकाश में वृत्तिस्पन्द अस्पन्दरूप हुई है। जैसे भूषण बनाने के

निमित्त सांचे में स्वर्ण आदिक धातु डालते हैं तो वह भूषणरूप हो जाती है तैसेही ब्रह्माजी ने अपनी चैतन्य संवेदन मनरूपी संवित् में तीव्र भावना की उससे स्थूलता को प्राप्त हुये। स्वतः यह दृश्य का रूप फुरना क्रम से हुआ कि, ऊर्ध्व शीश है, मध्य उदर है, अधः पाद है, चारों दिशा हाथ हैं और मध्य में उदर धर्म है। जैसे नूतन बालक प्रकट होता है और महा उज्ज्वल प्रकाशज्वाला की लाटों के समान उसके अङ्ग होते हैं तैसेही ब्रह्मा का शरीर उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार वासना और कल्पित मन से शरीर उत्पन्न कर लिया है। आदि ब्रह्मा का प्रकाश ही शरीर हुआ है जो सदा ज्ञानरूप, संपूर्ण ऐश्वर्य, शक्ति, तेज और उदारता से सम्पन्न स्थित है। इसप्रकार ब्रह्माजी सब जीवों का अधिपति द्रव स्वर्णवत् कान्ति परम आकाश से उपजकर आकाररूप स्थित हुआ और अपनी लीला के निमित्त अपने निवास का गृह रचा। हे रामजी! कभी ब्रह्माजी परम आकाशमें रहते हैं; कभी कल्पान्तर महाभास्कर अग्नि में रहते हैं और कभी विष्णुजी के नाभिकमल में रहते हैं। इसी भांति अनेकप्रकार के आसन रचकर कभी कहीं, कभी कहीं स्थित होते हैं और लीला करते हैं। जब परम तत्त्व से प्रथम वह इसप्रकार फुरते हैं तब अपने साथ शरीर देखते हैं; जैसे बालक निद्रा से जागकर अपने साथ शरीर देखते हैं--जिसमें बाण के प्रवाहसदृश प्राण अपान जाते आते हैं-तब पञ्चतत्त्व जो द्रव्य हैं उनको रचते हैं। इस शरीरमें बत्तीस दांत, तीन थम्भ; पांच देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, नवद्वार; दो जङ्घ स्थल; दो पांव; दो भुजा; बीस अँगुली; बीस नख; एक मुख और दो नेत्रहैं। कभी अपनी इच्छा से अनेक भुजा और अनेक नेत्र कर लेता है और मांस कहगिल की है। ऐसा शरीर चित्तरूपी पक्षी का घर है; कामदेव भोगने का स्थान है; वासनारूपी पिशाचिनी का गृह है; जीवरूपी सिंह की कन्दरा है और अभिमानरूपी हस्ती का वन है। इस प्रकार ब्रह्माजी ने शरीर को देखा और बड़े उत्तम कान्तिमान् शरीर को देखकर ब्रह्माजी जो त्रिकालदर्शी हैं चिन्तवन करनेलगे कि, इसके आदि क्या हुआ

है और अब हम क्या करना है, तो उन्होंने क्या देखा कि, जो आगे भूत का सर्ग वेदसंयुक्त व्यतीत हुआ है ऐसे अनेक सर्ग हुये हैं। उनके सब धर्म स्मरण करके देखा और वाङ्मय भगवती और वेद का स्मरण किया और सर्वसृष्टि के धर्म, गुण, विकार, उत्पत्ति, स्थिति, बढ़ना, परिणाम, क्षीण और नाश को स्मृतिशक्ति में देखा जैसे योगेश्वर अपना और और का अनुभव करता है और चित्तशक्ति में स्थित होकर स्मृतिशक्तिसे देख लेता है तैसेही ब्रह्माजी ने दिव्यनेत्र से अनुभव किया। फिर इच्छा हुई कि; विचित्ररूप प्रजा को उत्पन्न करूं। ऐसे विचारकर प्रजा को उत्पन्न किया और जैसे गन्धर्वनगर तत्काल होजाता है तैसेही सृष्टि होगई है। धर्म,अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ उनके साधन रचे और फिर उनमें विधि निषेध रचे कि यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है; उनके अनुसार फलकी रचना की और शुभ अशुभ विचित्रता रची। हे रामजी ! इस प्रकार फुरने से सृष्टि हुईहै और फुरने की दृढ़ता से ही स्थित है। उसमें तीन काल, क्रिया, द्रव्य,कर्म, धर्म रचे हैं। जैसे नीति रची है तैसे ही स्थित है। जैसे वसन्त ऋतु में पुष्प उत्पन्न होते हैं तैसेही ब्रह्मा के मन ने सृष्टि रची है। यह विचित्ररूप रचना का विलास चित्ररूप ब्रह्मा के चित्त में कल्पित है;कालमें उत्पन्न हुई है और कालही से स्थित है। स्वरूपमें न कुछ उपजा है और न कुछ नष्ट होता है। जैसे स्वप्नसृष्टि होती है तैसेही यह संसाररचना है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारप्रतिपादनन्नाम
चतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जो उपजा है वह कुछ नहीं उपजा और न स्थित है—शून्य आकाशरूप है और मन के फुरने से सृष्टि भासती है। बड़े देश, काल, क्रिया संयुक्त जो ब्रह्माण्ड दृष्टि आता है उसने परमार्थ में कुछ भी स्थान नहीं रोका, स्वप्नपुरवत् संकल्पमात्र है और आधार विना चित्र है। जैसे मूर्ति का चित्र आधार विना मिथ्या होता है तैसेही यह जगत् बड़ा भासता है पर मिथ्या है, असत्य तमरूप है और आकाश में चित्र की नाईं है। जैसे स्वप्ने में भासरूप जगत्

भासता है वह असत्‌रूप है तैसेही यह शरीरादिक जगत् मन के फुरने से भासताहै—मन का फुरनाही इसका कारण है। जैसे नेत्र का कारण प्रकाश है तैसेही जगत् का कारण चित्त है। सब जगत् आकाशमात्र है और घट, पट, गढ़ा आदिक क्रम सहित भी असत्‌रूप है। जैसे जल में जो चक्रावर्त्त भासते हैं वे असत्यरूप हैं तैसेही पर्वतादिक जगत असत्यरूप हैं; अपने निवास के निमित्त मनने यह शरीर रचा है। जैसे कुसवारी अपने निवास के निमित्त गृह रचती है और आपही बन्धन में आती है तैसेही मन शरीरादिक को रचकर आपही दुःखी होताहै। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो संकल्प से रहित सिद्ध हो और मन के यत्न से सिद्ध न हो, कठिन क्रूर पदार्थ भी मन से सिद्ध होताहै। परमात्मा जो देव है वह सर्वशक्तिमान् है, मन भी उसीकी शक्ति है, वह कौन पदार्थ है जो मन से सिद्ध न हो; मन से सब कुछ बन जाता है क्योंकि; जो कुछ पदार्थ हैं उनमें सत्ता परमात्मा की है—उससे कुछ भिन्न नहीं। इससे परमात्मा देव में सबकुछ सम्भव है। आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होकर उदय हुई है। उस भावना के अनुसार उसने आपको ब्रह्मा का शरीर देखा और उसने कलना-रूप देवता; दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जङ्गमरूप जगत् रचा है और संकल्प में स्थित है। जबतक उसका संकल्प है तबतक तैसेही स्थित है। जब संकल्प मिट जावेगा तब सृष्टि भी नष्ट होजावेगी। जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही जगत् भी होजावेगा क्योंकि, आकाशवत् सबही कलनामात्र है और दीर्घ स्वप्नवत् स्थित है। वास्तव में न कोई उपजा है, न मरता है। परमार्थ से तो ऐसे हैं और अज्ञान से सब पदार्थ विकार संयुक्त भासते हैं। न कोई वृद्धि है, न कोई नष्ट होता है उसमें और विकार कैसे मानिये? जैसे पत्र की रेखाके उपजने और नाश होने में वन को कुछ अधिकता और न्यूनता नहीं होती तैसेही शरीर के उपजने और नष्ट होनेमें आत्मा को लाभ हानि कुछ नहीं। सब जगत् दृश्य-भ्रान्ति से भासता है। ज्ञानदृष्टि से देखो अज्ञानीवत् क्यों मोहित होते हो? जैसे मृगतृष्णा का जल प्रत्यक्ष भासता है तो भी मिथ्या भ्रममात्र होता है

तैसेही ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब भ्रान्तिमात्र है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही मिथ्या ज्ञान से जगत् भासता है। जैसे नौका पर बैठेको तट के वृक्ष, स्थान चलते दृष्टि आते हैं तैसेही भ्रमदृष्टि से जगत् भासता है। इस जगत् को तुम इन्द्रजालवत् जानो; यह देह पिंजर है और मन के मनन से असत्यरूपही सत्य की नाईं स्थित हुआ है। जगत् द्वैत नहीं है माया से रची ब्रह्मसत्ता ही ज्योंकी त्यों स्थित है और शरीरादिक कैसे किसकी नाईं स्थित कहिये। पर्वत तृणादिक जो जगत्आडम्बर है वह भ्रान्तिमात्र मनकी भावनासे दृढ़ हो भासता है और असत्यही सत्यरूप हो स्थित हुआ है। हे रामजी! यह प्रपञ्च नाना प्रकार की रचनासंयुक्त भासता है पर भीतर से तुच्छ है। इसकी तृष्णा त्याग के सुखी हो; जैसे स्वप्न में बड़े आडम्बर भासते हैं सो भ्रान्तिमात्र असत्यरूप हैं वास्तव में कुछ नहीं तैसेही यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्ना है, चित्त से कल्पित है और देखने में बड़ा विस्ताररूप भासता है विचार करके ग्रहण करिये तो कुछ हाथ नहीं आता। जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में कुछ नहीं मिलती और कुसवारी को अपना रचा गृह बन्धन करता है तैसेही अपना रचा जगत् मन को दुःख देता है; इससे इसको त्यागकरो। जिस पुरुष ने इसको असत्य जाना है वह जगत् की भावना फिर नहीं करता। जैसे मृगतृष्णा के जल को जिसने असत्य जाना है वह पान के निमित्त नहीं धावता और जैसे अपने मन की कल्पी स्त्री से बुद्धिमान् राग नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों में राग नहीं करता और जो अज्ञानीहै वह राग करके बन्धायमान होताहै। जैसे स्वप्नमें असत्य स्त्री से चेष्टा करता है तैसेही अज्ञानी असत्य जगत् को सत्य जानके चेष्टा करता है; बुद्धिमान् सत्य मानकर नहीं करता। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही मन के मोह से जगत् भासता है और भयदायक होता है पर सब भावनामात्र है। जैसे जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब चञ्चल भासता है और उसके ग्रहण की इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान् नहीं करता है; तैसेही जगत् के पदार्थों की इच्छा अज्ञानी करते हैं ज्ञानवान् नहीं करते।

हे रामजी ! यह मैंने परमगुणों का समूह तुमको उपदेश किया है। इसकी भावना करके तुम सुखी होगे। जो मूर्ख इन वचनों को त्याग के दृश्य की ओर सुखरूप जानके लगते हैं वे ऐसे हैं जैसे कोई शीत से दुःखी हो और प्रत्यक्ष अग्नि को त्यागकर जल में प्रतिबिम्बित अग्नि का आश्रय करे और उससे जाड़ा निवृत्त किया चाहे तो वह मूढ़ है। तैसेही आत्मविचार को त्यागके जो जगत् के पदार्थों की सुख के निमित्त इच्छा करते हैं वे मूढ़ हैं। सब जगत् असत्यरूप है और मन के मनन से रचा है। जैसे स्वप्न में चित्त से नगर भासता है तो यदि वह नगर जलता भासे तो पुरुष कदाचित् नहीं जलता तैसेही जगत् के नाश हुये आत्मा नाश नहीं होता। वह उपजने, बढ़ने, घटने और नाश होने से रहित है। जैसे बालक अपनी क्रीड़ा के निमित्त हाथी घोड़ा नगर रच लेताहै और समेट छोड़ता है तो वह उपजने मिटने में ज्योंका त्यों है और जैसे बाजीगर बाजी को फैलाता है और फिर लय करता है तो उत्पत्ति लय में बाजीगर ज्योंका त्यों है तैसेही आत्मा जगत् की उत्पत्ति लय में ज्योंका त्यों है उसका कुछ कदाचित् नष्ट नहीं होता। जो सब सत्य है तो किसीका कुछ नाश नहीं होता इसकारण जगत् में हर्ष शोक करना योग्य नहीं और जो सब असत् है तौभी नाश किसीका न हुआ और दुःख भी किसी को न हुआ। सत्य असत्य दोनोंप्रकार हर्ष शोक नहीं होता। स्वरूप में किसी का नाश नहीं और सब जगत् ब्रह्मरूप है तो दुःख सुख कहां है ? ब्रह्मसत्ता में कुछ द्वैत जगत् बना नहीं, सब जगत् प्रत्यक्ष जो अनन्वय होताहै तौभी असत्रूपहै। उस असत्रूप संसार में ज्ञानवान्को ग्रहण करने योग्य कोई पदार्थ नहीं और सब जगत् में ब्रह्मतत्त्व है—कुछ भिन्न नहीं तो त्रिलोकी में तो इसी पदार्थ के ग्रहण त्याग की इच्छा कीजिये। जगत् सत्यरूप हो अथवा असत्य ज्ञानवान् को सुख दुःख कोई नहीं। तृतीय भ्रान्ति दृष्टि अज्ञानी को दुःख दायक होती है। जो वस्तु आदि अन्तमें असत्य है उसे मध्य में भी असत्य जानिये और उसके पीछे जो शेष रहता है वह सत्यरूप है जिससे असत्य भी सिद्ध होता है। जिन की बालबुद्धि मोहसे आवृत है वे जगत के

पदार्थों की इच्छा करते हैं–बुद्धिमान् नहीं करते। बालक को जगत् विस्ताररूप भासता है; उससे वे अपना प्रयोजन चाहते हैं और सुखदुःख भोगते हैं। तुम बालक मत हो, जगत् अनित्य है, इसकी आस्था त्यागकर सत्यात्मा में स्थित हो। जो आप संयुक्त सम्पूर्ण जगत् असत्‌रूप जानो तौभी विषाद कुछ नहीं और जो आप संयुक्त सब सत्य जानो तौभी इस दृष्टिसे हर्ष शोक नहीं। ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं। आप संयुक्त सब असत्यरूप जानोगे तो दुःख न होगा बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सब सभा नमस्कार करके अपने २ स्थान को गई और सूर्य की किरणों के निकलतेही फिर अपने अपने आसन पर आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थउपदेशयोगोनाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धन, स्त्री आदि नष्ट होजावें तो इन्द्रजाल की बाजीवत् देखिये। इससे भी शोक का अवसर नहीं होता। जो क्षण में दृष्टि आये और फिर नष्ट होगये उनका शोक करना व्यर्थ है। जैसे गन्धर्बनगर जो रत्नमणि से भूषित किया हो अथवा दुःख से दूषित किया हो उसमें हर्ष शोक का स्थान कहां है; तैसेही अविद्या से रचे पुत्र, स्त्री, धनादिक के सुखदुःख का क्रम कहां है? जो पुत्र, धनादिक बढ़े तौभी हर्ष करना व्यर्थ है क्योंकि, मृगतृष्णा का जल बढ़ाभी अर्थ सिद्ध नहीं करता; तैसेही धन, दारादिक बढ़े तो हर्षकहां है; शोकवानही रहता है? वह कौन पुरुष है जो मोहमाया के बढ़े शान्तिमान् हो? वह तो दुःखदायकही है। जो मूढ़ हैं वे भोगों को देखके हर्षवान् होते हैं और अधिकसे अधिक चाहतेहैं और बुद्धिमानोंको उन भोगोंसे वैराग्य उपजता है। जिनको आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ और भोगों को अन्तवन्त नहीं जानते उनको भोग की तृष्णा बढ़ती है और जो बुद्धिमान् हैं वे भोगों को आदि से अन्तवन्त जानते हैं और दुःखरूप जानकर उसकी इच्छा नहीं करते। इससे हे राघव! ज्ञानवान् की नाईं व्यवहारों में बिचरो। जो

नष्ट हो सो हो और जो प्राप्त हो सो हो उसमें हर्ष शोक न करना। उसक
यथाशास्त्र हर्ष शोक से रहित भोगो और जो न प्राप्त हो उसकी इच्छा न
करो। यह पण्डितों का लक्षण है। हे रामजी! यह संसार दुःखरूप भोग
से आया है, इसमें मोह को प्राप्त न होना; जैसे ज्ञानवान् विचरते हैं तैं
ही विचरना मूढ़वत् नहीं विचरना। यह संसार आडम्बर अज्ञान से र
है; जो इसको ज्योंकात्यों नहीं देखते वे कुबुद्धि नष्ट होतेहैं संसार के जि
जिन पदार्थों की इच्छा होतीहै वे सब बन्धन के कारणहैं और उनमें जीव
डूबजाता है। जो बुद्धिमान् हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते
और जिसने निश्चय से जगत् को असत्यरूप जाना है वह किसी पदार्थ
में बन्धवान् नहीं होता; अविद्यारूप पदार्थ उसको खेद नहीं देते और
वस्तुबुद्धि से वह खैंच नहीं सक्ताहै। जिसकी बुद्धि में यह निश्चय हुआ
कि, सर्व मैं हूं वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। हे रामजी! शुद्ध
तत्त्व जो सत्य असत्य जगत् के मध्यभाव में है उसका हृदय से आश्रय
करो और जो भीतर बाहर जगत् दृश्य पदार्थ हैं उनको मत ग्रहण करो।
इनकी आस्था त्यागकरके परमपद को प्राप्त होकर अतिविस्तृत स्वच्छ
रूप आत्मा में स्थित हो और रागद्वेष से रहित सब कार्य करो। जैसे
आकाश सब पदार्थों में व्यापक और निर्लेप है तैसेही सब कार्य करते भी
निर्लेप हो। जिस पुरुष को पदार्थों में न इच्छा है, न अनिच्छा है और
जो कर्मों में स्वाभाविक स्थित है उसको कर्म का स्पर्श नहीं होता वह
कमलवत् सदा निर्लेप रहता है। देखना, सुनना आदिक व्यवहार इन्द्रियों
से होताहै; इससे तुम इन्द्रियों से व्यवहार करो अथवा न करो परन्तु इन
में निरिच्छित रहो और अभिमान से रहित होकर आत्मतत्त्व में स्थित
हो। इन्द्रियों के अर्थ का सार जो अहंकार है जब यह हृदय में न फुरेगा
तबतुम योग्यपदको प्राप्त होगे और राग द्वेषसे रहित संसारसमुद्र को तर
जावोगे। जब इन्द्रियों के राग द्वेष से रहित हो तब मुक्ति की इच्छा न
करे, तौ भी मुक्तिरूप है। हे रामजी! इसदेह से आपको व्यतिरेक जान
कर जो उत्तम आत्मपद है उसमें स्थित होजावो तब तुम्हारा ऐसा परम

यश होगा जैसे पुष्पसे सुगन्ध प्रकट होती है। इस संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जलहै उसमें जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी नावपर चढ़तेहैं वे तरजाते हैंऔर जो नहीं चढ़ते वे डूबजातेहैं। यह बोध मैंने तुमसे क्षुरधारकी नाईं तीक्ष्ण कहाहै। यह अविद्याका काटनेवाला है इसको विचारकर आत्मतत्त्वमें स्थित हो। जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्व को जान कर व्यवहारमें विचरतेहैं तैसेही तुमभी बिचरो, अज्ञानीकी नाईं न बिचरना। जैसे जीवन्मुक्त पुरुष का नित्य तृप्तका आचारहै उसको तुमभी अङ्गीकार करना, भोगमें दीन न होना और मूढ़के आचारवत् आचार न करना। जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुषहैं वे न कुछ ग्रहण करते, न त्याग करते हैं और न किसी की वाञ्छा करते हैं। वे जैसा व्यवहार प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है उसीमें बिचरते हैं और राग द्वेष किसी में नहीं करते। बड़ा ऐश्वर्य हो; बड़े गुण हों; लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूति हो तो भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते। महा शून्य वन में वे खेदवान् नहीं होते और देवताका सुन्दर वन विद्यमान हो तो उससे हर्षवान् नहीं होते उन्हें न किसीसे इच्छा है, न त्याग है; जैसी अवस्था आन प्राप्तहो रागद्वेषसे रहित उसी में बिचरते हैं। जैसे सूर्य समभाव से लीन बिचरता है तैसेही वे अभिमान से रहित देहरूपी पृथ्वी में बिचरतेहैं। अब तुम भी विवेक को प्राप्त होजावो, बोध के बल में स्थित हो और किसी पदार्थकी ओर दृष्टि न करो। निर्वैर, निर्मनदृष्टिको ले विचरो और समभाव में सम उत्तमभाव पृथ्वी में स्थित होकर संसारकी इच्छा दूर से त्यागकर यथाव्यवहारमें बिचरो और परमशान्तरूप रहो। वाल्मीकिजी बोले कि, जब इसप्रकार निर्मल वाणी से वशिष्ठजीने कहा तब रामजीका निर्मल चित्त अमृत से शीतल और पूर्ण हुआ। जैसे पूर्णमासीका चन्द्रमा अमृत से शीतल पूर्ण होता है तैसेही रामजी शान्त होकर पूर्ण हुये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थबोधयोगोनाम षट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४६॥

रामजी बोले, हे भगवन्! आप सर्वधर्म और वेदवेदान्त के पारज्ञ आपके शुद्ध, उदार, विरक्तरूप, कोमल और उचित वचनों से मैं

स्वस्थ हुआ हूं और उन अमृतरूपी वचनों को पानकर मैं तृप्त नहीं होता। हे भगवन्! आप राजस-सात्त्विक जगत् कहने लगे थे सो कुछ संक्षेप से कहा था कि, उसमें अवकाश पाकर आपने ब्रह्माजी की उत्पत्ति कही उसमें मुझको यह संदेह उत्पन्न हुआ कि, कहीं ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से कही है कहीं आकाश से कही, कहीं अण्ड से कही और कहीं जल से कही है सो विचित्ररूप शास्त्र ने कैसे कहा। आप सब संशय के नाशकर्ता हैं कृपा करके शीघ्र मुझको उत्तर दीजिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कई लक्ष ब्रह्मा और अनेक विष्णु और रुद्र हुये हैं और अब भी अनेक ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार के व्यवहार संयुक्त प्रस्तुत हैं। कितने तुल्य होते हैं; कितने बड़े छोटे काल स्वप्न जगत् की नाईं उत्पन्न होते हैं; कितने बीते हैं और कितने आगे होंगे उनमें से तुमने एक ब्रह्मा की उत्पत्ति पूछी है सो सुनो यह भी अनेक प्रकार के होते हैं; कभी सृष्टि सदाशिव से उत्पन्न होती है, कभी ब्रह्मा से; कभी विष्णु से और कभी मुनीश्वर रचलेते हैं। कभी ब्रह्मा कमल से उपजते हैं; कभी जल से; कभी पवन से और कभी अण्डे से उपजे हैं। कभी किसी ब्रह्माण्ड में इन्द्र त्रिनेत्र होते; कभी विष्णु होते हैं और कभी सदाशिव होते हैं। कभी सृष्टि में पर्वत उपजते हैं और कभी मनुष्यों से और कभी वृक्षों से पूर्ण होती है। सृष्टि की उत्पत्ति अनेक प्रकार होती है, किसी ब्रह्माण्ड में मृत्यु का भय होता है, कभी पाषाणमय होती है, कभी मांसमय होती है और कभी सुवर्णमय होती है। कई सृष्टियों में चतुर्दश लोक हैं; किसी सृष्टि में कई लोक हुये हैं और किसी सृष्टिमें ब्रह्मा नहीं हुये। इसीप्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्व में फुरी हैं और फिर लय हुई हैं। जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लय होते हैं तैसे ही आत्मा में अनेक सृष्टि उपजकर लय होजाती हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदी भासती है और पुष्प में सुगन्ध होती है तैसे परमात्मा में जगत् है। जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु भासते हैं और उनकी संख्या नहीं कहीजाती यदि कोई ऐसा समर्थ भी हो कि, उन

संख्या करे परन्तु ब्रह्मतत्त्व में जो सृष्टि फुरती हैं उनकी संख्या वह भी न कर सकेगा। जैसे वर्षाऋतु में गांनिये के क्षेत्र में मच्छर होते हैं और नष्ट होजाते हैं तैसेही आत्मा में सृष्टि उपजकर नष्ट होजाती है। वह काल नहीं जाना जाता जिस काल में सृष्टि का उपजना हुआ है। आत्मतत्त्व में नित्य ही सृष्टि का उपजना और लय होना है। जैसे समुद्र में पूर्वापर तरङ्ग फुरते हैं उनका अन्त नहीं इसी प्रकार सृष्टि का आदि और अन्त कुछ नहीं जाना जाता। देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक कितने उपजकर लय हुये हैं और कितने आगे होंगे। जैसे यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा से रचागया है तैसेही अनेक ब्रह्माण्ड होगये हैं और जैसे अनेक घटिका एक वर्षमें व्यतीत होती हैं तैसे बीते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग होते हैं तैसेही ब्रह्मतत्त्व में असंख्य जगत् होते हैं। कितनी सृष्टि हो बीती हैं, कितनी अब हैं और कितनी आगे होंगी जैसे मृत्तिका में घट होता है; वृक्ष में अनेक पत्र होते हैं फिर मिट जाते हैं और जैसे जबतक समुद्र में जल है तबतक तरङ्ग—आवर्त्त निवृत्त नहीं होते उपजते और लय होते हैं तैसेही ब्रह्म चिदाकाश है। त्रिलोकी जगत् उपज २ कर उसी में लय होते हैं। जब-तक अपने स्वरूप का प्रमाद है तबतक विकारसंयुक्त जगत् है और बड़े विस्तार से भासता है। जब आत्मस्वरूप देखोगे तब कोई विकार न भासेगा। जबतक आत्मदृष्टि से नहीं देखा तबतक आभास गति में उपंजते और मिटते हैं पर न सत्य कहे जा सक्के हैं। और न असत्य कहे जासक्के हैं। वास्तव में ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, समुद्र में तरङ्ग की नाईं अभेद है; अविद्या से भिन्न होकर भासते हैं और विचार किये से निवृत्त होजाते हैं। चर अचररूप जगत् जो नाना प्रकार की चेष्टा संयुक्त अनन्त सर्वेश्वर आत्मा में फुरते हैं सो उससे भिन्न नहीं जैसे शाखा और फूल, फल वृक्ष से भिन्न नहीं और भिन्नं भासते हैं तौ भी अभिन्न हैं; तैसेही आत्मा से जगत् भिन्न भासते हैं तौ भी भिन्न नहीं आत्मरूप हैं। हे रामजी! मैंने जो तुमसे चतुर्दशभुवनसंयुक्त सृष्टि कही हैं उनमें कोई अल्प कनिष्ठरूपहै और कोई बड़ी है पर सब परमात्मा आकाशमें उपजती

हैं और वहीरूप है। ब्रह्म तत्त्वसे कभी प्रथम ब्रह्म आकाश उपजताहै और प्रतिष्ठा पाता है फिर उससे ब्रह्मा उपजता है और उसका नाम आकाशजा होताहै। कभी प्रथम पवन उपजता है और प्रतिष्ठित होताहै फिर उससे ब्रह्मा उपजता सो वायुजा कहाता है। कभी प्रथम जल उत्पन्न होता है उससे ब्रह्मा उपजकर जलजा नाम होताहै और कभी प्रथम पृथ्वी उत्पन्न होके विस्तारभाव को प्राप्त होती है और उससे ब्रह्मा उपजता है और पार्थिवजा उसका नाम होता है एवम् अग्नि से उपजता है तब अग्निजा नाम पाता है। हे रामजी! यह पञ्चभूत से जो ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई वह तुमसे कही। जब चारतत्त्व पूर्ण होते हैं और पञ्चमतत्त्व सबसे बढ़ता है तब उससे प्रजापति उपजकर अपने जगत् को रचताहै और कभी ब्रह्मतत्त्व से आपही फुरआता है। जैसे पुष्पसे सुगन्ध फुर आती है तैसेही ब्रह्माजी उपजकर पुरुषभावना से पुरुषरूप स्थित होताहै और उसका नाम स्वयंभू होता है। कभी पुरुष जो विष्णुदेव है उसकी पीठि से उपजता है; कभी नेत्र से प्रकट होता है और कभी नाभि से उत्पन्न होता है तब प्रजापति, नेत्रजा, पद्मजा नाम होताहै। वास्तव में सब मायामात्र है और स्वप्नवत् मिथ्यारूप हो सत्य हो भासता है। जैसे मनोराज की सृष्टि भास आती है तैसेही यह जगतहै और जैसे नदी में तरङ्ग अभिन्नरूप फुरते हैं तैसेही आत्मा में अभेद जगत् फुरताहै वास्तव में दूसरा कुछ नहीं है जब शुद्धसत्ताका आभास संवेदन फुरताहै तब वही जगत्रूप हो भासताहै। जैसे बालक के मनोराजमें सृष्टि फुरती है सो वास्तवमें कुछ नहीं होती तैसेही यहहै। कभी शुद्ध आकाश में मननकला फुरती है उससे सुवर्ण का अण्ड उपजता है और अण्ड से ब्रह्मा उपजआता है और कभी पुरुष विष्णुदेव जल में वीर्य डालता है उससे पद्म उपजताहै और उसी पद्मसे ब्रह्मा प्रकट होते हैं और कभी सूर्य से फुर आते हैं। इसीप्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपद से उपजती है और फिर लय होजाती है। तुम्हारे दिखाने के निमित्त मैंने अनेक प्रकार की उत्पत्ति कही है पर वह सब मनके फुरनेमात्र है और कुछ नहीं। हे रामजी! तुम्हारे प्रबोध के निमित्त मैंने सृष्टि का क्रम कहा है पर इसका

रूप मनोमात्र है, उपज२ कर लय होजाताहै। फिर२ दुःख, सुख; अज्ञान, ज्ञान; बन्ध-मोक्ष होते हैं और मिट जाते हैं। जैसे दीपक का प्रकाश उपजकर नष्ट होजाता है तैसेही देह उपजकर नष्ट होजाते हैं। काल की ऊनता और विशेषता यहीहै कि, कोई चिरकाल पर्यन्त रहताहै और कोई शीघ्रही नष्ट होजाता है परन्तु सबही विनाशरूप हैं ब्रह्मासे आदि कीट पर्यन्त जो कुछ आकार भासता है वह काल के भेद को त्यागकर देखो कि, सब नाशरूप हैं। कभी सत्ययुग, कभी त्रेतायुग, कभी द्वापर और कभी कलियुग फिर फिर आते और जाते हैं। इसी प्रकार काल का चक्र भ्रमता है। मन्वन्तर का आरम्भ होता है और कालकी परम्परा व्यतीत होती है। जैसे प्रातःकाल में फिर प्रातःकाल आता है तैसेही जगत् की वही २ गति है अन्धकार से प्रकाश होता है और जगत् ब्रह्मतत्त्व से स्फुरणरूप होकर फिर लीन होता है। जैसे तप्त लोहे से चिनगारें उड़ती हैं सो लोहे में ही होती हैं तैसेही यह सब भाव चिदाकाश से उपजता है और चिदाकाश में ही स्थित है। कभी अव्यक्त रूप होता है और कभी प्रकट होता है। जैसे समुद्र में तरङ्ग और वृक्ष में पत्र होते हैं तैसेही आत्मा में जगत् है और जैसे नेत्रदूषण से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं तैसेही चित्त के फुरनेसे आत्मा में जगत् भासते हैं और उसी में स्थित और लय होते हैं। जैसे चन्द्रमा की किरणें उत्पन्न और स्थित होकर लय होती हैं तैसेही आत्मा में जगत् है सो स्वरूप से कहीं आरम्भ नहीं हुआ मनके फुरने से भासता है। हे रामजी! आत्मा सर्वशक्ति है जो शक्ति उससे फुरती है वह उसीका रूप हो भासती है। सब जगत् असत्यरूप है जिसके चित्त में महाप्रलय की नाईं असत्य का निश्चय है वह पुरुष फिर संसारी नहीं होता। स्वरूप में लगा रहताहै। ऐसे महामती ज्ञानवान् की दृष्टि में सर्वब्रह्म का निश्चय होता है। हमको यही निश्चय है कि, संसार नहीं सर्व ब्रह्मतत्त्वही है और सदा विद्यमान है। अज्ञानकी दृष्टि में जगत् निरन्तर सत्यरूप है और संसार उसको विद्यमान है सो फिर२ उपजकर नष्ट होताहै। स्वरूप उपजने विनशने

से भी नष्ट नहीं होता परन्तु अज्ञानी जगत् को असत्य नहीं जानते सदा स्थित जानते हैं उससे नष्ट होते हैं। जगत् के सब पदार्थ विनाशरूप हैं परन्तु दृश्य से जगत् असत्य नहीं भासता। जिन पदार्थों की सत्यता दृढ़ होगई है वे नाशरूप हैं—कुछ न रहेगा। कोई पदार्थ सत्य भासता है, कोई असत्य भासता है, इस जगत् में ऐसा कौन पदार्थ है जो कलनारूप करने से विस्ताररूप ब्रह्म में न बने। यह जगत् महाप्रलय में नष्ट होजाता है और फिर उत्पन्न होता है। जन्म और मरण होता है और सुख, दुख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत सब फिर २ उपज आते हैं। जैसे सूर्य की प्रभा उदय अस्त को प्राप्त होती रहती है तैसे ही सृष्टि उदय अस्त होती भासती है। देवता और दैत्य लोकान्तर क्रम होते हैं और स्वर्ग, मोक्ष, इन्द्र, चन्द्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि आदिक लोकपाल फिर २ होते हैं। सुमेरु आदिक स्थान फुर आते हैं और तमरूप हस्ति के भेदने को सूर्यरूप केशरीसिंह उपज आते हैं। स्वर्ग, इन्द्र, अप्सरागण अमृत से होआते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, क्रिया, कर्म, शुभ, अशुभरूप होआतेहैं और यज्ञ, दान, होम आदिक सर्व क्रियासंयुक्त संसारी जीव होते हैं। शुभ कर्म करनेवाले स्वर्ग में बिचरते हैं और सुख भोगते हैं पर पुण्य के क्षीण हुये गिरादिये जाते हैं और मृत्युलोक में आते हैं। इस प्रकार कर्म करते, उपजते और नष्ट होते हैं। स्वर्गरूपी कमल में इन्द्ररूपी भँवरे हैं जो स्वर्गकमल की सुगन्ध को लेने आते हैं। जितना पुण्यकर्म क्रिया होती है उतने काल सुख भोगकर नष्ट होजाते हैं और सत्ययुग आदिक युग और सर्व देश, काल, क्रिया, द्रव्य, जीव उपजआते हैं। जैसे कुलाल चक्र से बासन बनाता है तैसेही चित्तकला फुरने से जगत्के अनेक पदार्थ उत्पन्न करती है। जीवसंयुक्त सुन्दर स्थान होतेहैं और फिर नष्ट होजातेहैं। असत्यमात्र जगत्जाल जीव से रहित शून्य मसान होजाता है और कुलाचल पर्वत के आकारवत् मेघ जल की वर्षा करते हैं उसमें जीव बुद्बुदेरूप होकर स्थित होते हैं। द्वादश सूर्याग्नि उदय होते हैं, शेषनाग के मुख से अग्नि

निकलती है उससे सब जगत् दग्ध होजाताहै और फिर अग्नि की ज्वाला शान्त होजाती है एक शून्य आकाश ही शेष रहताहै। और रात्रि होजाती है। जब रात्रि का भोग होचुकता है तब फिर जीव जीर्ण देह से संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रच लेता है। इस प्रकार शून्य आकाश में मन जगत् को रचता है। जैसे शून्य स्थान में गन्धर्व माया से नगर रच लेता है तैसे ही जगत्को मन रचलेताहै और फिर प्रलय होजाताहै। इसप्रकार जगत्गण उपजकर महाप्रलय में नष्ट होते हैं और ब्रह्मा के दिन क्षय हुये फिर जब ब्रह्मा का दिन होता है तब फिर रचलेता है फिर महाप्रलय में ब्रह्मादिक सब अन्तर्धान होजाते हैं। इसीप्रकार प्रलय महाप्रलय होके अनेक जगत्-गण व्यतीत होते हैं और महादीर्घ मायारूपी कालचक्र फिरताहै उसमें मैं तुमको सत्य और असत्य क्या कहूं? सब भ्रान्तरूप दाशुर के आख्यानवत् है और कल्पनामात्र रचित चक्र वास्तव में शून्य आकाशरूप है और बड़े आरम्भ संयुक्त विस्ताररूप भासताहै पर असत्यरूप है। जैसे भ्रमसे दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही यह जगत् मूढ़ के हृदय में सत्य भासता है। तुम मूढ़ न होना, ज्ञानवान्वत् विचारकर जगत् को असत्य जानना॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगत्सत्यासत्यनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनका भोग और ऐश्वर्य में चित्त खिंचा है वे नानाप्रकार के राजस, तामस और सात्त्विक कर्म बड़े आरम्भ से करते हैं। पर वे मूढ़ आत्मा शान्ति नहीं पाते, जब वे भोग की तृष्णा से रहित हों तब आत्मा को देखें। जिस पुरुष को इन्द्रियां वश नहीं कर सक्तीं वह आत्मा को हाथ में बेलफलवत् प्रत्यक्ष देखता है और जिस पुरुष ने विचार करके अहंकाररूपी मलीन शरीर का त्याग किया है उसका शरीर जगत्रूप होजाता है। जैसे सर्प कञ्चुकी को त्यागता है और नवतन पाता है तैसेही मिथ्या शरीर को त्यागकर आत्मविचार से वह आत्म शरीर को पाता है। ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं वे जगत् के पदार्थों में आसक्त भासते हैं पर जन्म मरण नहीं पाते। जैसे

अग्नि से भूना बीज खेत में नहीं उपजता तैसेही ज्ञानवान् फिर जन्म नहीं पाता। जिस अज्ञानी की भोगों में आसक्त बुद्धि है वह मन और शरीर के दुःख से दुःखी होकर बारम्बार जन्म और मरण पाता है। जैसे दिन होता है और फिर रात्रि होती है तैसे ही वह जन्म मरण पाता है। इससे तुम अज्ञानी की नाईं न होना। व्यवहारचेष्टा जैसे अज्ञानी की होती है तैसेही करो परन्तु हृदय से भोगादिक की ओर चित्त न लगाकर आत्मपरायण हो। रामजीने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि, संसारचक्र दासुर के आख्यानवत् है, कल्पना करके रचित है और उसका आकार वास्तव में शून्य है यह आपने क्या कहा? इसको प्रकट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायारूप जगत् मैंने वर्णन के निमित्त तुमसे कहा है और दासुर के प्रसंग से कुछ प्रयोजन न था परन्तु तुमने पूछा है तो अब सुनो। हे रामजी! इस सृष्टि में मगध नाम एक देश है जो बड़े २ कदम्बों, वनस्पतियों और तालों से विचित्ररूप पंखों सहित मनके मोहनेवाला अनेक वृक्षों और फूलों फलों से पूर्ण है जिनपर कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं। उस नगर में एक परमधर्मात्मा तपसी दासुर नाम हुआ जो वनमें जाकर कदम्बवृक्षपर बैठके तप करता था। रामजीने पूछा, हे भगवन्! वह ऋषीश्वर तपसी वनमें किस निमित्त आया था और कदम्ब वृक्षपर किस निमित्त बैठा वह कारण कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सरलोमा नाम ऋशीश्वर उसका पिता मानो दूसरा ब्रह्मा उस पर्वत पर रहता था। उसके गृह में दासुर नाम पुत्र हुआ—जैसे बृहस्पतिके गृह में कच हो निदान दासुरसंयुक्त उसने वन में चिरकाल व्यतीत किया और युग के क्षीण हुये देह का त्यागकर स्वर्गलोक में गया—जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाश में उड़ता है। तब उस वन में दासुर अकेला रहगया और पिता के वियोग से ऐसे रुदन करनेलगा जैसे हथिनी वियोग से कुरलाती है और जैसे हिम ऋतु में कमलकी शोभा नष्ट होजाती है तैसेही दीन होगया। वहाँ अदृष्ट शरीर वनदेवी थी उसने दया करके आकाशवाणी की कि, हे ऋषिपुत्र!

अज्ञानी की नाईं क्या रुदन करता है? यह सर्व संसार असतरूप है। तू इससंसार को देखता नहीं कि, यह नाशरूप और महाचञ्चल है; सब काल उत्पन्न और विनाश होताहै और कोई पदार्थ स्थित नहीं रहता। ब्रह्मा से आदि कीटपर्यन्त जो कुछ जगत् तुझको भासता है वह सब नाशरूप है—इसमें कुछ संदेह नहीं। इससे तू पिता के मरने का विलाप मत कर। यह बात अवश्य इसीप्रकार है कि, जो उत्पन्नहुआ है वह नष्ट होगा, स्थिर कोई न रहेगा—जैसे सूर्य उदय होकर अस्त होताहै। हे रामजी! जब इसी प्रकार शरीरदेवीकी वाणी दासुरने सुनी तो धैर्यवान् हुआ और जैसे मेघ का शब्द सुनकर मोर प्रसन्न होताहै तैसे शान्तिमान्होकर यथाशास्त्र पिता की सब क्रिया की। इसके अनन्तर सिद्धता के निमित्त तत्पद का उद्यम किया परन्तु अज्ञात हृदय था। ऐसा श्रोत्रिय होकर तप के निमित्त उठ विचार किया कि, कोई पवित्रस्थान हो वहाँ जाकर तप करूं। निदान देखता २ पृथ्वी के किसी स्थान में चित्त विश्रान्तवान् न हुआ सब पृथ्वी उसको अशुद्ध ही दीखी कहीं कोई विघ्न भासे और कहीं कोई विघ्न दृष्टिगोचर हो। निदान उसने विचार किया कि, और स्थान तो सब अशुद्ध हैं परन्तु वृक्ष की शाखा पर बैठकर तप करूं। ऐसा कोई उपाय हो जो वृक्ष की शाखाके अग्रभागमें मैं स्थितिपाऊं। ऐसी चिन्तना करके उसने अग्नि जलाई और अपने मुख का मांस काट २ कर होमनेलगा। तब देवता का मुख जो अग्नि है उसने विचारा कि, ब्राह्मण का मांस मेरे मुख में न आवे और बड़े प्रकाश से देह धरकर ब्राह्मण के निकट आया और कहा, हे ब्राह्मणकुमार! जो कुछ तुझको वाञ्छित वर है वह मांग। जैसे कोई भण्डार को खोलकर मणि लेताहै तैसेही तू मुझसे वर ले तब दासुर ने पुष्प, धूप, सुगन्ध आदिक से अग्नि का पूजन किया और प्रसन्न होकर कहा, हे भगवन्! प्राणाहुती के पवन शरीर से मैंने तप करने के निमित्त उद्यम किया है सो और कोई शुद्ध स्थान मुझको नहीं भासता है इस लिये मैं चाहता हूं कि, इस वृक्ष की अग्र शिखा में स्थित होने की मुझको शक्ति हो और यहां बैठकर मैं तप करूं। यही वर मुझको दो तब

अग्निदेव ने कहा ऐसेही हो । इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्धान हो गया जैसे संध्याकाल के मेघ अन्तर्धान हो जाते हैं । तब वर पाके ब्राह्मणकुमार ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से प्रसन्न होता है और जैसे चन्द्रमा के प्रकाश को पाकर कमलिनी शोभित होती है तैसेही वर पाके वह शोभित हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं-नामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार वर को पाकर दासुर कदम्ब वृक्ष की टास पर जो अद्भुत और बड़ा सुन्दर था और जिसका पत्र आकाशमें लगता था जा बैठा तो उसने दिशा का चञ्चलरूप कौतुक देखा कि, दृश्यरूप मानों चञ्चल पुतली है, श्याम आकाश उसका शीशहै, श्याम-केशही प्रकाशरूप है, पाताल उसके चरण हैं, मेघरूपी वस्त्र है और पुष्पवत् गौर अङ्ग है । ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र के तास जिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरने से चलती है, मोहरूपी शरीर है, वनस्पति रोम हैं, सूर्य चन्द्रमा उसके कुण्डल हैं, पर्वत कड़े हैं, पवन प्राणवायु है, दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता उसका पित्त है और चन्द्रमा कफ है । ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने अवलोकनं नामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ४९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिस वृक्ष के ऊपर स्थित होकर वह तप करने लगा उसका नाम कदम्ब तपासुर हुआ । एक क्षण उसने दिशा को देख वहां से वृत्ति को खींचा और पद्मासन बांधकर मन को एकाग्र किया । दासुर परमार्थपद से अज्ञात था इसलिये फल की कृप-णता से कर्मान्तर में स्थित था और फल की ओर उसका मन था । मन से उसने यज्ञ का आरम्भ किया और जो कुछ सामग्री की विधि थी वह सब यथाशास्त्र मनसेही की और दशवर्ष मन में व्यतीत किये । उसने सब देवताओं का पूजन किया और गोमेध, अश्वमेध, नरमेध

सब यथाविधि संयुक्त मन से किये और ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी। इस प्रकार समय पाकर उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और विस्तीर्ण निर्मलचित्त में स्थित हुआ। जो बलात्कार से उसके हृदय में ज्ञान प्रकाशित होकर आत्मा के आगे मलीन वासना का जो आवरण था सो नष्ट होगया और जैसे शरत्काल में तड़ाग निर्मल होताहै तैसेही उस मुनीश्वर का चित्त संकल्प से रहित हुआ। एक दिन उसने एक वन-देवी को जिसके बड़े विशाल नेत्र, चपलरूप, पुष्पों की नाईं दांत और रति के समान महासुन्दर शरीर था काम के मद से पूर्ण मनके हरनेवाली अग्रभाग में देखी कि, नम्र होकर देखती है मुनीश्वर ने उससे कहा, हे कमलनयनि! तू कौन है? कैसी तू शोभितरूप है और इन पुष्पों से संयुक्त लता में किस निमित्त आई है? तब कामदेव के मोहनेवाली गौरी बोली, हे मुनीश्वर! जो पदार्थ इस पृथ्वी में बड़े कष्ट से प्राप्त होता है वह महापुरुषों की कृपा से सुगमता से मिलता है। हम इस वन के देवता लीला करते फिरते हैं और जिस निमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हूं वह सुनो। हे मुनीश्वर! पिछले दिन चैत्र शुक्ल त्रयोदशी थी; उस दिन इन्द्र के नन्दनवन में उत्साह हुआ था। सब वनदेवियां एकत्र होकर त्रिलोकी से आईं और सब पुत्रों संयुक्त पुष्पों से बड़े विलास क्रीड़ा करती थीं पर मैं अपुत्र थी इस कारण मैं दुःखित हुई और उस दुःख के दूर करने के लिये तुम्हारे पास आई हूं तुम अर्थ के सिद्ध कर्ता हो और बड़े वृक्ष पर स्थित हो। मैं अनाथ पुत्र की वाञ्छा कर तुम्हारे निकट आई हूं, इससे मुझको पुत्र दो और जो न दोगे तो मैं अग्नि जलाकर जल मरूंगी और इस प्रकार पुत्रका दुःखदाह निवृत्त करूंगी हे रामजी! जब इस प्रकार वनदेवी ने कहा तब मुनीश्वर हँसे और दया करके हाथ में पुष्प दिया और कहा, हे सुन्दरि! जा तेरे एक मास के उपरांत पूजने योग्य और महासुन्दर पुत्र होगा परन्तु तूने जो इच्छाधारी थी कि, जो पुत्र न प्राप्त होगा तो जलमरूंगी, इससे अज्ञानी पुत्र होगा पर यत्न से उसको ज्ञान प्राप्त होगा। जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब

प्रसन्न होकर वनदेवी ने कहा, हे मुनीश्वर! मैं यहां रहकर तुम्हारी टहल करूंगी। परन्तु मुनीश्वर ने उसका त्याग किया और कहा, हे सुन्दरि! तू अपने स्थान में जा रह। तब वह वनदेवियों में जा रही और समय पाके उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह दश वर्ष का बालक हुआ तब वह उसे मुनीश्वर के निकट ले आई और पुत्रसंयुक्त प्रणाम करके पुत्र को मुनीश्वर के आगे रखकर कहा, हे भगवन्! यह कल्याणमूर्त्ति बालक तुम हम दोनों का पुत्र है। इसको मैंने सम्पूर्ण विद्या सिखाकर परिपक्व किया है और अब वह सर्वका वेत्ता हुआहै परन्तु केवल ज्ञान इसे प्राप्त नहीं हुआ जिससे इस संसारयन्त्र में फिर दुःख पावेगा इसलिये आप कृपाकरके इसको ज्ञान उपदेश करो। हे प्रभो! ऐसा कौन कुलीनहै जो अपने पुत्रको मूर्ख रखना चाहे। हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब मुनीश्वर बोले तुम उसको यहां छोड़जावो। तब वह देवी उसको छोड़कर चलीगई, बालक पिताके पास रहा और बड़े यत्नसे उसको ज्ञानकी प्राप्तिहुई। मुनीश्वर ने नानाप्रकार के उक्त आख्यान, इतिहास और अपने दृष्टान्त कल्प कर चिरपर्यन्त पुत्रको जगाया और वेद वेदान्तका निश्चय अनुद्वेग होकर उपदेश किया। विस्तारपूर्वक कथा के क्रम जो अनुभव और बड़े गूढ़ अर्थ हैं वे भी कहे और जो अपने अनुभववश से प्रत्यक्ष था सो भी बल करके उपदेश किया कि, जिससे वह जगा और शान्त आत्मा हुआ। तब तो जैसे मेघ के शब्द से मोर प्रसन्न होता है तैसेही वह बालक प्रसन्न हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरसुतबोधनं नाम पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसी समय में भी कैलासवाहिनी गङ्गाजी के स्नान के निमित्त अदृष्ट शरीरसंयुक्त आकाश की वीथी में सप्तर्षियों के मण्डल से चलाजाता था जिस वृक्ष पर वह बैठा था जब उसके पीछे मैं आया तो कुछ शब्द सुना कि, उस वृक्ष के ऊपर छिद्र से शब्द होता है। मूंदे कमल से भँवरे के शब्दवत् कोई इस प्रकार कहता है कि, हे पुत्र! सुन। मैं तुझसे वस्तु के निरूपण के निमित्त एक आश्चर्यमय

आख्यान कहता हूं। महापराक्रमी और त्रिलोक में प्रसिद्ध स्वेतथनामी एक राजा है जो बड़ा लक्ष्मीवान् जगत् की रचनाक्रम करता है। सब मुनि जो जगत् में बड़े नायक हैं वे भी उत्तम चूड़ामणि करके उसको शीश में धरते हैं और वह असंख्य कर्म और नाना प्रकार के आश्चर्य व्यवहार करता है। उस महात्मा पुरुष को त्रिलोकी में किसी ने वश नहीं किया; सहस्रों उसके आरम्भ हैं और सुख और दुःख देनेवाला है। उसके आरम्भ की संख्या कुछ नहीं कही जाती—जैसे समुद्र के कलोल तरङ्गों की कुछ संख्या नहीं कही जाती तैसेही उसके आरम्भ हैं—और उसका पराक्रम किसी शस्त्र, अस्त्र और अग्नि से नष्ट नहीं होता। जैसे आकाश को मुष्टि प्रहार से तोड़ नहीं सक्ती तैसेही वह है। उसकी विस्तृत भुजा हैं और लीला करके आरम्भ रचता है। उसके आरम्भ को कोई दूर नहीं करसक्ता; इन्द्र, विष्णु और सदाशिव भी समर्थ नहीं हैं। हे महाबाहो! उसके तीन देह हैं जो दिशाको भररहे हैं। उन तीनों देहों से वह जगत् में उत्तम, अधम, मध्यम करके फैल रहा है और बड़े विस्ताररूपी आकाश से उत्पन्न हुआ है और वहांही शरीर में स्थित हुआ है। जैसे आकाश का पक्षी आकाश में रहता है और जैसे पवन आकाश में है ऐसेही वह पुरुष जगत् में फैल रहा है। उस परम आकाश में उसने बगीचेसंयुक्त एक स्थान अपनी क्रीड़ा के निमित्त रचा है और पर्वत के शिखर में मोती की बेलें रची हैं। उसमें सात बावलियों से वह स्थान शोभता है और दो दीपक उसमें रचे हैं जो तेल और बाती विना प्रकाशते हैं और शीत और उष्णरूप हैं, कभी अध को और कभी ऊर्ध्व को नगर में भ्रमते हैं। उसने मूर्खवराङ्क गण भी रचे हैं, कोई ऊर्ध्व में स्थित है कोई मध्य में और कोई अध में स्थित है। कोई दीर्घकाल में नष्ट होते हैं, कोई शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, कोई वस्त्रों से आच्छादित हैं और कोई वस्त्ररहित हैं। उस नगर में उसने नवद्वार स्थान किये हैं और उसमें निरन्तर बहुत से वृक्ष रोपे हैं। उसने पञ्चद्वीप देखने निमित्त किये हैं और तीन स्तम्भ रचना किये हैं, जिनमें और छोटे स्तम्भ भी हैं। मूल में के स्तम्भों पर लेपन किया है

और पादतल से संकुल किये हैं निदान महामाया से उस राजाने वह नगर रचाहै और नगर की रक्षा निमित्त सेना रची है। एक नीति देखने वाले यक्ष हैं, विवरकगण से वे चलते नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं। उन शरीरों से वह सब ठौरों में विचरताहै; यक्ष सब ठौरों में समीप रहताहै और लीला करके एक स्थान को त्याग कर और स्थान में जाकर चेष्टा करता है। कभी इच्छा होती है तब चञ्चल चित्त से भविष्यत् पुरको रचकर उसमें स्थित होताहै और कभी भय से वेष्टित हुआ वहां से उठ आता है और वेग करके गन्धर्वनगर रचता फिरता है। जब इच्छा करता है कि, मैं उपजूं तब उपज आता है और जब इच्छा करता है कि, मैं मरजाऊं तब मरजाता है। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं और फिर लय होजाते हैं उसी प्रकार वह राजा बड़े व्यवहार करता है और बारम्बार रचना करके कभी आपही रुदन करनेलगताहै कि, मैं क्या करूं; मैं अज्ञानी दुःखी हूं; और चित्तसे आतुर होताहै और कभी ऐसे विचार करके उदयहोकर बड़ा स्थूल होजाता है—जैसे वर्षाकाल की नदी बढ़ती है तैसेही बढ़कर आपको सुखी मानता है और विस्तार पाकर चलता फिरताहै और बड़े प्रकाशसे प्रकाशता है उस महीपतिकी बड़ी महिमा है और उचितरूप होकर नगरमें स्थितहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्वेतथवैभववर्णनं नामैक-
पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५१ ॥

हे रामजी ! जब इस प्रकार दासुर ने कहा तब पुत्र ने प्रश्न किया कि, हे भगवन् ! वह स्वेतथ राजा कौन है कि, जगत् में जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है और उसने कौन नगर रचा है जो भविष्यत्नगर में रहता है? रहना तो वर्त्तमान में होता है भविष्यत् में कैसे रहता है ? यह विरुद्ध अर्थ कैसे है ? इन वचनों से मेरी बुद्धि मोहित हुई है। दासुर बोले, हे पुत्र ! मैं तुझसे यथार्थ कहता हूं तू सुन; जिसके जाने से संसारचक्र को ज्योंका त्यों देखेगा कि, यह वास्तव में क्या है। यह संसार आरम्भ सत्य विस्तारसंयुक्त भासता है तो भी असत्यरूप है कुछ हुआ नहीं। जैसे यह संसार स्थित है तैसे मैं तुझसे कहता हूं। यह आख्यान मैंने

तुमसे जगत् निरूपण के निमित्त कहा है। हे पुत्र! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है उससे जो संकल्प उठा है उस संकल्प का नाम स्वेतथहै। वह आपही उपजताहै और आपही लीन होजाताहै। सब जगत् उसका रूप है जो बड़े विस्तार संयुक्त भासता है और उसके उपजने से जगत् उपजता और नष्ट होनेसे नष्ट होताहै। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक सब उसके अवयव हैं। जैसे वृक्ष के अङ्गटास होते हैं और पर्वत के अङ्ग शिखर होते हैं तैसेही उसके अङ्ग शून्य आकाशमें हैं उससे यह जगत्रूपी नगर रचा है। प्रतिभास के अनुसन्धान से वही चित्तकला विरञ्चिपद को प्राप्त हुई है। चतुर्दश स्थान जो कहे हैं वे विस्तार संयुक्त चतुर्दश लोक हैं और वन, बगीचे, उपवन संयुक्त पर्वत महाचल, मन्दराचल, सुमेरु आदिक क्रीड़ाके स्थान हैं। उष्ण शीत जो दो दीपक तेल बाती विना कहे हैं वे सूर्य और चन्द्रमा हैं जो जगत्रूपी नगर में अध ऊर्ध्व को प्रकाशने हैं। सूर्य की किरणों का जो प्रकाश है वही मानों मोती के तरङ्ग फुरते हैं और क्षीर जल आदि जो सात समुद्र हैं वे बावलियां हैं। उसमें जीव व्यवहार करते, लेते, देते, अध-ऊर्ध्व को जाते हैं—पुण्यसे स्वर्गलोक में जाते हैं और पाप से नरक में चले जाते हैं। जगत् में संकल्प से जो क्रीड़ा के निमित्त उसने विवरगण रचे हैं वे देह हैं; कोई देवता होकर ऊर्ध्व स्वर्ग में रहते हैं, कोई मनुष्य होकर मध्यलोक में रहते हैं और कोई दैत्य होकर नागलोक आदिक पातालमें रहते हैं। पवनरूपी प्रवाह से समस्त यन्त्र चलते फिरते हैं, अस्थिरूपी उनमें लकड़ियां हैं और रक्त-मांस से लेपन किये हैं। कोई दीर्घकाल में और कोई शीघ्रही नष्ट होजाते हैं। शीश पर केश श्याम वस्त्र हैं और करण, नासिका, नेत्र, जिह्वा और मूत्र पुरीष के स्थान, लिङ्गइन्द्रिय और गुदा ये नवद्वार हैं जिनसे निरन्तर पवन चलता है। शीत उष्णरूप प्रान अपान हैं, नासिका आदिक उसके झरोखे हैं; भुजारूप गलियां हैं; और पञ्चदीपक पञ्चइन्द्रियां हैं। हे महाबुद्धिमन्! ये सर्व संकल्परूपी माया से रचे हैं; अहंकाररूपी यक्ष है; महाभय का स्थान यह अहंकार से होताहै और देहरूपी विवरगण अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते हैं वे असत्यरूप

हैं परन्तु सत्य होकर इसके साथ क्रीड़ा करते हैं। जैसे भाण्ड में बिलाव, बांबी में सर्प और बांस में मोती हैं तैसेही देह में अहंकार है जो क्षण में उदय होता है और क्षण में शान्त हो जाता है। दीपकवत् देहरूपी गृह में संकल्प उठता है, जैसे समुद्र में तरङ्ग उठते हैं और भविष्यत् नगर भासता है। सुन, अपना जो कोई स्वार्थ चितवता है कि, यह कार्य इस प्रकार करूंगा और फलाने दिन इस देश में जाऊंगा तो जैसे चितवता है तैसे ही भासिआता है और उसमें जा प्राप्त होता है। जबतक दुर्वासना है तबतक अनेक दुःख होते हैं और यह दुष्ट मन अहंकार से स्थूल हो जाता है और संकल्प से रहित हुये शीघ्रही इसका नाश होताहै। जब तू संकल्प नाश करेगा तब शीघ्रही कल्याण पावेगा। अपना संकल्प उठकर आपही को दुःखदायक होता है—जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैतालकल्पना होती है और आपही भय पाता है तैसेही अपना संकल्प अनन्त दुःखदायक होता है, उससे सुख कोई नहीं पाता। सम्पूर्ण जगत् विस्तार संकल्प से होता है और आत्मा की सत्ता से बढ़ता और फिर नष्ट हो जाता है—विचार किये से नहीं रहता। जैसे सायंकाल में धूप का अभाव हो जाता है और प्रकाश उदय हुये तम का अभाव हो जाता है तैसेही विचार से संकल्प आपही नष्ट हो जाते हैं। मन आपही क्रिया करता है और आपही दुःख पाता है और रुदन करने लगता है—जैसे वानर काष्ठ के यन्त्र की कील को हिलाकर फँसता है और दुःख पाता है; तैसेही अपनाही संकल्प आपको दुःखदायक होता है। संकल्प से कल्पित विषय का आनन्द जब जीव को प्राप्त होता है तब वह ऊंची ग्रीवा करके हर्षवान् होता है—जैसे किसी वृक्ष के फल ऊँट के मुख में आ लगें और वह ऊंची ग्रीवा करके विचरे तैसेही अज्ञानी जीव विषय की प्राप्ति में ऊंची ग्रीवा करके हर्षवान होते हैं। क्षण में जीव को विषय की प्राप्ति उपजती है और विशेष करके इष्ट की—प्राप्ति में बढ़ते हैं पर जब कोई दुःख होता है तब वह प्रीति की प्रसन्नता उठ जाती है और क्षण में विकारी होता है और क्षण में प्रसन्न होकर वस्तुगुण की प्राप्ति में हर्षवान् होता है। शुभ

संकल्प से शुभ को देखता और अशुभ संकल्प से अशुभ को देखता है। शुभ से निर्मल होता है और अशुभ से मलीन होता है; आगे जैसे तेरी इच्छा हो तैसे कर। स्वेतथ के जो मैंने तुमसे तीन शरीर कहे थे—उत्तम, मध्यम और अधम वे सात्त्विक, राजस, तामस यही तीन गुण तीन देह हैं। येही सबके कारण जगत् में स्थित हैं; जब तामसी संकल्प से मिलता है तब नीचरूप पाप चेष्टा कर्म करके महाकृपणता को प्राप्त होता है और मृतक होकर कृमि और कीट योनि में जन्म पाता है। जब राजसी संकल्प से मिलताहै तब लोकव्यवहार अर्थात् स्त्री, पुत्रादिक के राग से रञ्जित होता है और पापकर्म नहीं करता तो मृतक होकर संसार में मनुष्य शरीर पाता है जब सात्त्विकी भाव में स्थित होता है तब धर्मज्ञान परायण होता है; मोक्षपद की उसको अन्तर्भावना होती है और धर्मज्ञान पाकर चक्रवर्ती राजाकी नाईं स्थित होताहै। जब उन भावोंको त्याग करताहै तब संकल्प भाव नष्ट हो जाता है और अक्षय परम पद शेष रहता है। इससे संसार-दृष्टि को त्याग करके और मन से मन को वश करके भीतर बाहर हो जो दृश्यका अर्थ चित्तमें स्थितहै उस संस्कारको निवृत्तकरके शान्तात्मा हो। हे पुत्र! इस विना और उपाय नहीं। जो तू सहस्रवर्ष दारुण तपकरे अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्ण करे; समुद्र में प्रवेश करे, बड़वाग्नि में प्रवेशकरे; गढ़े में गिरे; खड्गधाराके सन्मुख युद्धकरे अथवा सदाशिव, ब्रह्मा, विष्णु वा बृहस्पति दया करके तुझे उपदेश करें और पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग इत्यादिक और स्थानों में जावे तो भी और उपाय कल्याण के निमित्त कोई नहीं। जैसे संकल्प का उपशम करना उपाय है तैसे जो अनादि, अविनाशी, अविकारी, परमपावन सुखहै वह संकल्पके उपशमसे पाताहै। इससे यत्नसे संकल्पको उपशम करो। जो कुछ भावपदार्थ हैं वे सब संकल्प रूपी तत्त्वसे पिरोये हुयेहैं। जब संकल्परूपी तांत टूटताहै तब नहीं जाना जाता कि, पदार्थ कहांगये। सत्य असत्य सब पदार्थ संकल्पमात्र हैं। जब-तक संकल्पहै तबतक ये भासते हैं और संकल्पके निवृत्तहुये असत्य होजाते हैं। संकल्प से जैसी २ चिन्तना करताहै क्षणमें तैसेही होजाताहै। संसार-

भ्रम संकल्प से उदय हुआ है और संकल्प निवृत्त किये से चित्त अद्वैत के सन्मुख होताहै। सर्व जगत् असत्यरूपहै और माया से रचाहै; जब संकल्प को त्यागकर यथाप्राप्ति में बिचरेगा तब तुझ को खेद कुछ न होगा। असत्य-रूप जगत् के कार्य में दुःखित होना व्यर्थ है; जब आप संयुक्त जगत् को असत्य जानोगे तब दुःखी भी न होगे जबतक जगत् का सद्भान भासता है तबतक दुःख होताहै और जब असत्य जाना तब दुःखभी नहीं रहता। बोधवान् को कोई दुःख भी नहीं भासता; इससे जो नित्यप्राप्त सत्तारूप है उसमें स्थित होकर विकल्पके बड़े समूहोंको त्यागकरो और अद्वैत आत्मा में विश्राम सुख को प्राप्त होकर सुषुप्तिरूप चित्तवृत्ति को धारके बिचरो॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्र० संसारविचारोनाम द्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५२॥

इतना सुन पुत्र ने पूछा, हे भगवन्! संकल्प कैसा है और वह उत्पन्न, वृद्ध और नाश कैसे होता है? दाशुर बोले, हे पुत्र! अनन्त जो आत्म तत्त्व है वह सत्तासमानरूप है; जब वह चेतनसत्ता द्वैत के सन्मुख होती है तब चैतनता का लक्षण जो ज्ञानरूप है वही बीजरूप संवित् उल्लासमात्र सत्ता को पाकर घनभाव को प्राप्त होता है; फुरनाकर आकाश को चेतता है और आकाश को पूर्ण करता है। जैसे जल से मेघ स्पष्ट होता है तैसेही फुरने की दृढ़ता से आकाश होता है। अपना स्वरूप आत्मसत्ता से भिन्न भासता है—यह भावना चित्त में भावित होजाती है। जैसे बीज अंकुरभाव को प्राप्त होता है तैसेही चित्त संवित् संकल्पभाव को प्राप्त होता है। संकल्पही से संकल्प उपजता है और आपही बढ़ता है जिससे सुखी दुःखी होता है। जब अचलरूप से चित्त संवेदन दृश्य की ओर फुरता है तब उस फुरने का नाम संकल्प होता है और स्वरूप से भूलकर जब दृश्य की ओर फुरता है तब संकल्प वृद्ध होता है जो जगत्-जाल रचता है। जो कुछ प्रपञ्च है वह संकल्प का रचा संकल्पमात्र है—जैसे समुद्र जलमात्र होता है, जलसे भिन्न नहीं; तैसेही जगत् भी संकल्प से भिन्न नहीं। आकाशमात्र से भ्रान्तिरूप जगत् फुर आया है—जैसे मृगतृष्णा का जल और आकाश में द्वितीय चन्द्रमा भासता है तैसेही

तुम्हारा उपजना और बढ़ना भ्रममात्र है। जैसे तम का चमत्कार होता है तैसेही यह जगत् मिथ्या संकल्प से उदय हुआ तुझको भासता है। हे पुत्र! तेरा उपजना भी असत्य है और बढ़ना भी असत्य है; जब तू इस प्रकार जानेगा तब इसकी आस्था लीन होजावेगी। 'यह पुरुषहै' 'वहहै' 'मैंहूं' ये सब भाव दुःख सुख से संयुक्त पदार्थ अज्ञान से व्यर्थ भासते हैं। और इनमें आस्था करके हृदयसे तपता रहताहै। 'अहं,' 'त्वं' आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं—जब यह भावना करेगा तब तू पृथ्वी में कल्याणरूप होकर बिचरेगा और फिर संसार को प्राप्त न होगा। अहं त्वं से आदि लेकर जब सब दृश्य की भावना हृदय से जावेगी तब इसका अभाव होजावेगा। हे पुत्र! फल को तोड़कर मर्दन करने में भी कुछ यत्न होताहै परन्तु आप से सिद्ध और भावमात्र संकल्प के त्यागकरने में कुछ यत्न नहीं;फूल के ग्रहणकरने में भी यत्न है क्योंकि हाथ का स्पन्द होताहै पर इसमें जो कुछ भावरूपहै वह है नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्नहै? इससे कुछहै नहीं इस दृश्य प्रपञ्च से विपर्ययभाव करना कि, 'न मैं हूं,' 'न जगत् है,' जिस पुरुष ने इस दृश्य जगत् का सद्भाव संकल्प नाश किया है वह शान्तिरूप होता है। यह संकल्प तो एक निमेष में लीला से जीत लेता है। भावरूप जो आत्मसत्ता है उसमें जब अपना आप उपशम करे तब स्वस्तिक होता है। जो अपने मनके संकल्प से मन संकल्प को छेदेगा वह आत्मतत्त्व में स्थित होगा, इसमें क्या यत्न है। संकल्प के उपशम हुये जगत् उपशम होता है और संसार के सब दुःख मूल से नाश होजाते हैं। संकल्प, मन, बुद्धि, जीव, अहंकार आदिक जो सब नाम हैं सो भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थरूप में कुछ भेद नहीं। जो कुछ दृश्य प्रपञ्चजाल है वह सब संकल्पमात्र है; संकल्प के अभाव हुये कुछ नहीं रहता। इससे संकल्प को हृदय से काटो—आकाश की नाईं जगत् शून्य है; जैसे आकाश में नीलता भ्रान्ति से भासती है तैसेही यह जगत् असत्य विकल्प से उठा है। संकल्प और जगत् दोनों असत्य हैं इससे सब असत्यरूप है। असत्यरूप संकल्पने यह सब सिद्ध किया है

इसकी भावना में आस्था करनी मिथ्या है। जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जाने; वासना किसकी करे और अनिष्ट किसको जाने; तब सब वासना नष्ट हो जाती है और वासना के नष्ट हुये सिद्धि प्राप्त होती है। हे पुत्र! जो यह जगत् सत्य होता तो विचार किये से भी दृष्टि आता सो तो विचार किये से इसका शेष कुछ नहीं रहता। जैसे प्रकाश के देखे से तम दृष्टि नहीं आता तैसेही विचार कर देखे से जगत् सत्य नहीं भासता। इसमें यह अविचार से सिद्ध है; असत्यरूप है और बुद्धि की चपलता से भासता है। जिस पुरुष को जगत्भावना उठ गई है उसको जगत् के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते। निर्णय से जो असत्यरूप जाना उसमें फिर आस्था नहीं उदय होती और जब आस्था गई तब भाव अभाव बुद्धि भी नहीं रहती। संसार के सुख दुःख सब मिथ्या मन के फुरने से रचे हैं और मनोराज के नगरवत् स्थित हुये हैं। भूत, भविष्य, वर्त्तमान जगत् मन की वासना से फुरता है और मानसी शक्ति में स्थित है। वह मन क्षण में बड़ा दीर्घ आकार करता है और क्षण में ऐसा सूक्ष्म आकार धरता है कि, ग्रहण करिये तो ग्रहण नहीं किया जाता। जैसे समुद्र की लहर को ग्रहण करिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसेही मन है। यद्यपि बड़े आकार संयुक्त जगत् भासता है तो भी कुछ वस्तु नहीं है; क्षणभंगुर है और असार वासना से भासता है और वासना के क्षय हुये शान्त होजाता है। जब तुझको वासना फुरे, तब उसी काल में उसको शीघ्रही त्याग कर ऐसी भावनाकर कि, यह दृश्यप्रपञ्च कुछ है नहीं, असत्यरूप है तो वासना नष्ट होजावेगी—इसमें कुछ संदेह नहीं। जो यह संकल्परूप जगत् हो तो इसके त्याग करने में यत्न भी हो पर यह तो असत्य भूत प्रपञ्च है इसका अनर्थ चिकित्सा से तुझको खेद कुछ न देगा। जो है ही नहीं तो उसके त्याग में क्या यत्न है? जो यह संसार मूल सत्य होता तो इसके नाश निमित्त कोई न प्रवर्त्तता पर यह तो सब असत्यरूप है और विचार किये से कुछ नहीं पाया जाता। इससे असत्य अहंकाररूप दृश्य को त्यागकर सत्य आत्मा का अङ्गीकार करो। जैसे

धान से भूसी निकाल कर चावल को अङ्गीकार करते हैं तैसेही यत्न करके सर्व दृश्य को त्याग के आत्मपद में प्राप्त हो। यह परमपुरुषार्थ है और क्रिया किस निमित्त करता है? मलरूप संसार का नाशकर और युक्ति करके जान कि, संसार असत्य कृत्रिमरूप है तो उसके नाश में क्या यत्न है? जैसे तांबे से युक्तिपूर्वक मल दूर होता है तब निर्मल भासता है; तैसे ही युक्ति से दृश्य मल जब दूर हो तब बोध स्वरूप प्राप्त हो इस कारण उद्यमवान् हो। हे पुत्र! यह संसार संकल्प विकल्प से उत्पन्न हुआ है और विचारकर अल्पयत्न से ही निवृत्त होजाता है। देख कि, वह कौन है जो सदा स्थिर रहता है? सब पदार्थ असत्यरूप हैं और देखने २ नष्ट होजाते हैं—जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार का अभाव होजाता है और भ्रान्ति दृष्टि से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है और स्वच्छदृष्टि से अभाव होजाता है तैसेही विचारकरके जगत्भ्रम नष्ट होता है। न यह जगत् तेरा है; न तू इसका है; यह केवल भ्रम से भासता है इससे भ्रम को त्यागकर देख कि, असत्यरूप है। अपनी गुरुत्वता का बड़ा ऐश्वर्य प्रकाश का बिलास है सो तेरे हृदय में मत हो। यह मिथ्या भ्रमरूप है हृदय से उठे तो आपको और जगत् को भी असत्यजान। आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं। जब ऐसे निश्चय करेगा तब जगत्भावना नष्ट हो जावेगी और सर्वात्मा प्रकाश भासेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने जगत्चिकित्सा-
वर्णनंनाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रघुकुलरूपी आकाश के चन्द्रमा रामजी! जब इस प्रकार दासुर ने पुत्र को उपदेश किया तब मैं उसके पीछे आकाश में स्थित था सो कदम्बवृक्ष के अग्रभाग में जा स्थित हुआ—जैसे मेघ वर्षा से रहित तूष्णी होकर पर्वत के शिखर पर जा स्थित होता है तैसे ही मैं भी जा स्थित हुआ। दासुर शूरमा ने जो अज्ञानरूपी शत्रुका नाश कर्त्ता और परम शक्ति से प्रकाशवान् था; तपसे उसकी देह ऐसी होगई थी मानो सुवर्ण का चमत्कार है; मुझको अपने आगे देखा कि, वशिष्ठ मुनि

आये हैं। ऐसे जानकर उसने उठके अर्घ पाद्य से पूजन किया और फिर हम दोनों वृक्ष के पत्र पर बैठ गये। उसने फिर पूजन किया और जब पूजन कर चुका तब हम दोनों कथा का प्रसंग चलाने लगे। और उस चर्चा के वचनों से उसके पुत्र को संसारसमुद्र के पार करने के निमित्त जगाया। फिर मैंने वृक्षकी ओर देखा जो महा सुन्दर फूलों और फलों से शोभायमान था और दासुर की इच्छाद्वारा मृग और पक्षी उसके आश्रय रहते थे। उसके पुत्र को हमने विज्ञान दृष्टिसे रमणीय दृष्टान्त और युक्ति सहित उपदेश किया और नानाप्रकार के विचित्र इतिहासों से उस बालक को जगाया। रात्रि को हम सिद्धांत कथा में लगे रहे और हमको एक मुहूर्त्तवत् रात्रि व्यतीत हुई; जब प्रातःकाल हुआ तब मैं उठ खड़ा हुआ और दासुर अपने पुत्र संयुक्त मेरे साथ चला। जहांतक कदम्ब का आकाशतल था वहांतक वे मेरे संग आये पर मैंने बहुत करके उनको ठहराया और मैं गङ्गाजी की ओर चला और स्नान करके सप्तर्षि के मण्डल में जाय स्थित हुआ। हे रघुनन्दन! यह दासुर का आख्यान मैंने तुमसे कहा है। यह जगत् प्रतिबिम्ब आभास के सदृश है; प्रत्यक्ष भासता है तो भी असत्यरूप है। जगत् के निरूपण निमित्त मैंने यह आख्यान तुमको सुनाया है। यह जगत असत्यरूप है, कुछ वस्तु नहीं बुद्धि से तुझको राग मत हो। जब इस कथा का सिद्धान्त हृदय में धारण कर विचारोगे तब संसाररूपी मल तुमको स्पर्श न करेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! 'यह प्रपञ्च है ही नहीं' ऐसे जानके सब पदार्थों से निराग हो। जो वस्तु है ही नहीं उसकी आस्था करनी क्या है? इस प्रपञ्च के भासने, न भासने से तुमको क्या है? तुम निर्विघ्न होकर आत्म-तत्त्व में स्थित हो और ऐसे जानो कि, जगत है भी और नहीं भी है। इस निश्चय से भी तुम असंग हो जाओ। इस चल अचल दृष्टि आने में तुमको क्या खेद है? हे रामजी! यह जगत् न आदि है, न अनादि

हैं; केवल स्वेतथका जो चित्त संवित् मनरूप था उसके फुरने से इस प्रकार भासता है; वास्तव में कुछ नहीं। यह जगत् किसी कर्ताने नहीं किया और न किसी अकर्ताने किया है केवल आभासरूप है और आभास में कर्ता अकर्ता पद को प्राप्त हुआ है पर अकृत्रिमरूप है और किसी का किया नहीं इससे तुमको इससे सम्बन्ध न हो। यह भावना हृदय में धारो कि, कुछ नहीं है क्यों कि; किसी कर्ता से नहीं उत्पन्न हुआ आत्मा सर्वइन्द्रियों से अतीत जड़की नाईं अकर्तारूप है उसको कर्ता कैसे कहिये। यह कहना नहीं बनता। यह जो जगत्जाल अकस्मात् फुर आया है सो आभासरूप है उसमें आसक्त होना क्या है? यह असत् भ्रान्तिरूप है इसमें आस्था मूढ़बालक करते हैं बुद्धिमान् तो नहीं करते? स्वरूप में जगत् उपजा नहीं और नाश भी नहीं होता; निरन्तर दृष्टि में आता है और अज्ञान से बारम्बार भावना होती है तौ भी कुछ है नहीं असत्रूप है और निरन्तर प्रत्यक्ष नष्ट होता जाता है। तुम विचार करके देखो कि, अवस्था और स्थान कहां जाते हैं और कहां गये हैं? इससे तुम सब इन्द्रियों से अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्तारूप है उसमें स्थित होकर विगतज्वर होजाओ। वास्तव में जगत् कुछ बना नहीं पर आभाससत्ता में बना भासता है। तुम आभाससत्ता में नित्य दृढ़ होजाओ। जैसे हुआ है, तैसे है; भाव अभाव दुःखदशा है। आदर्शरूपी आभास में दीर्घरूप दृश्य स्थित हुआ जैसे हुआ है तैसेहीहै; विपर्यय नहीं होता। हे रामजी! दृश्यधर्म में अपराजितकाल है सो अनन्त है; दृश्य पदार्थ का कुछ अन्त नहीं। जो आत्मविचार से देखिये तो स्वप्नवत् है कुछ है नहीं। जो वास्तवमें ऐसे हो तो उसमें आस्था करके यत्न करना व्यर्थ है। जगत् के पदार्थ नाशरूप हैं इनमें आस्था नहीं बनती क्योंकि; आत्मा सत् है और जगत् असत् है इससे अन्योन्य विलक्षण स्वभाव है—जड़ और चैतन्य का संयोग कुछ नहीं बनता। जगत् के पदार्थ यदि स्थिर मानिये तो नहीं रहते; इस कारण आस्था शोभा नहीं पाती। जैसे जल के तरङ्ग का आश्रय लेकर कोई पार हुआ चाहे तो दुःखपाता है, तैसेही जगत् के

पदार्थों का आश्रय कियेसे जीव दुःखी होताहै। जगत्‌की आस्था करना ही बन्धन है और नाशरूप है। तुम स्थिररूप हो इससे आस्था नहीं संभवती। कहीं जल के तरङ्ग और पर्वत का सम्बन्ध हुआ है? जो तुम ने जगत् को असत्य और आपको सत्य जाना तो भी जगत् के पदार्थों की वाञ्छा नहीं बनती क्योंकि, सत्यकी असत्यकी वाञ्छा नहीं होसक्ती और असत्य की असत्य में भावना करनी क्याहै? जो आप संयुक्त जगत् सत्यजानते हो तो भी वाञ्छा नहीं होसक्ती क्योंकि, सत्य अद्वैत आत्मा है उसके समीप कुछ द्वैत वस्तु नहीं। तुम तो एक अद्वैत हो वाञ्छा किस की करते हो? इससे तुमको किसी पदार्थ की इच्छा अनिच्छा नहीं बनती हेयोपादेय से रहित केवल स्वस्थ होकर अपने आप में स्थित होजाओ। वह आत्मतत्त्व है जो सबका कर्ता और सर्वदा अकर्ता है कदाचित कुछ नहीं करता और उदासीन की नाईं स्थित है। जैसे दीपक सब पदार्थों को प्रकाश करता है और किसी की इच्छा अपने अर्थ के सिद्ध करने के निमित्त नहीं करता—स्वाभाविकही प्रकाशरूप है; तैसेही आत्म-तत्त्व सबका कर्ता है और उसका कर्ता कोई नहीं। जैसे सूर्य सबकी क्रिया को सिद्धकरता है और आप किसी क्रिया के आश्रय नहीं क्योंकि; आपही प्रकाशरूप है; चलता है और कदाचित् चलायमान नहीं होता और जो सूर्य का प्रतिबिम्ब चलता भासता है सो प्रतिबिम्ब का चलना सूर्य में नहीं है; तैसेही तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्ता अचल है उसमें स्थित हो। जितना कुछ जगत् भासता है उसमें बिचरो परन्तु भावना करके उसमें बन्धायमान मत हो, यह असत्‌रूप है। हे रामजी! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से जगत् सत् भासता है तौभी है नहीं। स्वतः चित्त होकर आपको बिचारो और आपमें स्थित हो तब जगत् कुछ न भासेगा। जो प्रत्यक्ष बड़े तेज, बल और वीर्य से सम्पन्न भासता है और अन्तर्धान होगया तो सत्य कैसे कहिये? इस विचार से भी तुमको जगत् की भावना नहीं बनती। जैसे चक्रपर आरूढ़ हुये से सब स्थान भ्रमते दृष्टि आते हैं और स्वप्ननगरभ्रमसे भासता है सो किसी कारण कार्य

से नहीं होता—आभासरूप मन के फुरने से उपज आता है। जैसे कोई जीव अकस्मात् आ निकलता है तो वह मित्रता का भागी नहीं होता और विचार किये विना बुद्धिमान् उसमें रुचि नहीं करते, न वह सुहृदता का पात्र होता है; तैसेही भ्रम से जो जगत् भासा है वह आस्था करके भावना बांधने योग्य नहीं। जैसे चन्द्रमा में उष्णता, सूर्य में शीतलता और मृगतृष्णा की नदी में जल की भावना करनी अयोग्य है तैसेही जगत् में सत्यभावना अयोग्य है। यह संकल्पपुर, स्वप्नगर, द्वितीय चन्द्रमावत् असत्य है; भ्रम करके सत्य भासता है। हे रामजी! हृदय से भाव पदार्थ की आस्था लक्ष्मी को त्याग करो और बाहर लीला करते विचरो पर हृदय से अकर्ता पद में स्थितरहो और सबभावपदार्थों में स्थित पर सब से अतीत हो। आत्मा सब पदार्थों में सर्वदाकाल स्थित है और सब से अतीत है; उसकी सत्ता से जगत् नीति में स्थित है। जैसे दीपक से सबपदार्थ प्रकाशवान् होते हैं पर दीपक इच्छासे रहित प्रकाशता है—उससे सबका क्रिया सिद्ध होती है और जैसे सूर्य आकाश में उदय होता है और उसके प्रकाश से जगत् का व्यवहार होता है; तैसेही अनिच्छित आत्मा की प्रकाशसत्ता से सब जगत् प्रकाशता है। जैसे इच्छा से रहित रत्न का प्रकाश होता है और स्थान में फैल जाता है; तैसेही आत्मदेव की सत्ता से जगत्गण प्रवर्त्तते हैं। वह कर्ता है पर सब इन्द्रियों के विषय से अतीत है इस कारण अकर्ता—अभोक्ता है; सब इन्द्रियों के अन्तर्गत स्थित है इस कारण कर्ता भोक्ता वही है। इस प्रकार दोनों आत्मा में बनते हैं—कर्ता भोक्ता होसक्ता है और अकर्ता अभोक्ता भी है; जिसमें तुम अपना कल्याण जानो उसमें स्थित हो जाओ। हे रामजी! इस प्रकार निश्चय करो कि, सब मैंहींहूं और अकर्ता—अभोक्ता हूं। ऐसी दृढ़भावना से जगत् के कार्य को करते भी कुछ बन्धन न होगा और सब आत्मा कर्तव्य भोक्तव्य से रहित है इस प्रकार निश्चय किये से भोग की वासना निवृत्त होजावेगी और तब चैतनभोग की ओर फिर न चित्त आवेगा। जिसको यह निश्चय है कि, मैंने कदाचित् कुछ किया नहीं और सदा अक्रियरूप हूं, वह भोग

के समूहों की कामना किस निमित्त करेगा और त्याग किसका करेगा? इससे तुम यही निश्चय धरो कि, मैं नित्य अकर्तारूप हूं। जब यह बुद्धि दृढ़ होगी तब परम अमृतरूप समानसत्ता शेष रहेगी। अथवा यही निश्चय धरो कि, सबका कर्ता मैंहीं हूं; मैं महाकर्ता हूं और सबके हृदय में स्थित होकर सब कार्य करता हूं। हे रामजी! यह दोनों निश्चय तुमको कहे हैं जिसमें तुम्हारी इच्छा हो उसमें स्थित हो। जहां यह निश्चय होता है कि, सबका कर्ता मैं हूं और सब जगत्भ्रम भी मैं हूं तब इन पदार्थों के भाव अभाव में राग द्वेष न होगा। जो सब आपही हुआ तो राग द्वेष किसका करे? उसको यह निश्चय होता है कि, यह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगन्धादिक से लीला करता है उसको खेद और उल्लास किसका हो। इससे तुमको जगत् के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्त में सुख दुःख न हो सबका कर्ता मैं हूं तो खेद उल्लास भी मैं करता हूं और जब आत्मा और कर्तव्य की एकता हुई तब खेद उल्लास सब आपही लय हो जाता है और सत्ता समान शेष रहताहै। वही सत्ता भाव पदार्थ में अनुस्यूत होकर स्थित है और उसमें जब चित्त की इच्छा स्थित होती है तब फिर दुःख नहीं पाता। हे रामजी! सबका कर्ता आपको जानो कि, कर्ता पुरुष मैं हूं व अकर्ता जानो कि, मैं कुछ नहीं करता अथवा दोनों निश्चय त्याग कर निस्संकल्प निर्मन हो जाओ तो तुम्हारा जो स्वरूप है वही सत्ता शेष रहेगी। यह जगत्है, यह मैं हूं, यह मेरा है, इस कुत्सितभावना को त्याग करो। इस अभिमान में स्थित न होना; इस देह में अहंकार कालसूत्र नाम करके नरक की प्राप्ति का कारण है, नरक का जाल है; शस्त्र की वर्षा होती है; इन दुःखों से देहाभिमान दुःख-स्थान है अर्थात् अनन्त दुःखदायक है। इससे पुरुष प्रयत्न करके इसका त्याग करो, यह सबके नाश में स्थित है। भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे इससे स्पर्श नहीं करते-जैसे चाण्डाली की गोद में श्वान का मांस हो तो उसके साथ श्रेष्ठपुरुष सङ्ग नहीं करते तैसेही देहाभिमान से स्पर्श न करना-यह महानीच है। यह अहंकाररूपी बादल नेत्रों के आगे पटल है इससे आत्मा नहीं भासता।

जब विचार करके इस पटल को दूर करोगे तब आत्मसत्ता का प्रकाश उदय होगा। जैसे मेघघटा के दूर हुये चन्द्रमा प्रकाशित होता है तैसेही अहंकार के अभाव से आत्मा प्रकाशता है। जब तुम इन निश्चयों में कोई निश्चय धारोगे तब सब दुःखों से रहित शान्तपद को प्राप्त होगे। यह निर्णय सबसे उत्तम है और उत्तमपुरुष इस निश्चय में सदा स्थित हैं। अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनों में कोई निश्चय धारण करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे कर्तव्यविचारोनाम पञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५५॥

रामजी ने पूछा; हे ब्रह्मन्! जो कुछ तुमने सुन्दर वचन कहे हैं वह सत्य हैं। अकर्तारूप, आत्मा, कर्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतों को धारनेवाला, सबका आश्रयभूत और सर्वगत व्यापक, चिन्मात्र, निर्मल-पद, अनुभवरूप देव सर्वभूतों के भीतर स्थित है। हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्म-तत्त्व है वह मेरे हृदय में रमरहा है और आपके वचनों से प्रकाशने लगा है। आपके वचन शीतल और शान्तरूप हैं; तप्तता को मिटाते हैं और जैसे वर्षा से पृथ्वी शीतल होती है तैसेही मेरा हृदय शीतल हुआ है। आत्मा उदासीन की नाईं अनिच्छित स्थितहै कर्तव्य—भोक्तव्य से रहित है, सब जगत् को प्रकाशता है और सब क्रिया उससे सिद्ध होती हैं। इस कारण कर्ता भी वही है और भोक्ता भी वही है परन्तु मुझको कुछ संशय है उसको अपनी वाणी से निवृत्त करो। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश तम को नाश करता है तैसेही आप मेरे संशय को दूर करो। यह सत्य है; यह असत्य है; यह मैं हूं; वह और है इत्यादिक द्वैतकल्पना एक अद्वैत विस्तृत शान्तरूप में कहां से स्थित हुई है? निर्मल में मल कैसे हुआ है? वशिष्ठ-जी बोले; हे रामजी! इस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में कहूंगा अथवा तुम आपही जान लोगे। इस मोक्ष उपाय शास्त्र का सिद्धान्त जब भली प्रकार तुम्हारे हृदय में स्थित होगा तब तुम इस प्रश्न के पात्र होगे अन्यथा योग्य न होगे—उस अवस्थामें अन्यथा प्राप्त नहीं होते। हे रामजी! जैसे सुन्दर स्त्रियों की सुन्दरवाणी से सुन्दर गीत होता है और

उसके अधिकारी यौवनवान् पुरुष होते हैं तैसेही सिद्धान्त अवस्था में मेरे वचन के तुम अधिकारी होगे। जैसे रागमयी कथा बालक के आगे कहनी व्यर्थ होती है तैसेही बोध समय विना उदार कथा कहानी व्यर्थ होती है। जैसे शरत्काल में वृक्ष पत्रसंयुक्त और वसंत ऋतु में पुष्प से शोभता है तैसाही जैसी अवस्था पुरुष की होती है तैसाही उपदेश कहना शोभता है और उपदेश भी तब दृढ़ लगता है जब बुद्धि शुद्ध होती है-मलीन बुद्धि में दृढ़ नहीं होता। जैसे निर्मल वस्त्र पर केसर का रङ्ग शीघ्रही चढ़जाता है और मलीन वस्त्र पर नहीं चढ़ता; तैसेही प्राप्तरूप जो आत्मा है उसका विज्ञान उपदेश सिद्धान्त अवस्थावाले को लगता है जिसको बोधसत्ता प्राप्त होती है। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है-विस्तारसे नहीं कहा पर जो तुम नहीं जानते तौ भी प्रत्यक्ष है। जब तुम आपसे आपको प्राप्त होगे तब आपही इस प्रश्न के उत्तर को जानलोगे-इसमें कुछ संदेह नहीं। सिद्धन्तकाल में जब तुम बोधको प्राप्त होकर स्थित होगे तब मैं भी इस प्रश्न का उत्तर विस्तार से कहूंगा। जब आपसे अपना आप निर्मल करोगे तब अपने आपको जानलोगे। हे रामजी! कर्त्ता और कर्म का विचार जो मैंने तुमको कहा है उसको विचारकर वासना का त्याग करो। जबतक संसार की वासना इस हृदय में होती है तबतक बन्धवान् है और जब वासना दूर होती है तब मुक्ति होती है; इससे तुम वासना को त्यागो और मोक्षके अर्थ जो वासनाहै उसका भी त्याग करो तबसुखी होगे। इस क्रम से वासनाको त्यागकर प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासना का त्याग करो; फिर विषय की वासना का त्याग करो और मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इस निर्मल वासना को अङ्गीकार करो। मैत्री के अर्थ यह हैं कि, सबमें ब्रह्मभाव से द्रोह किसी का न करना। दुःखीपर दया करनी करुणा कहलाती है; धर्मात्मा पुरुष को देखके प्रसन्न होने का नाम मुदिता है और पापी को देखके उदासीन रहना पर निन्दा न करना उपेक्षा कहलाता है। इन चारों प्रकार की वासनाओं से संपन्न हो हृदय से इनका

भी त्याग करके इनका अभिमान न रखना चाहिये यदि बाहर से इनका व्यवहार हो पर हृदय से दृश्य में गुण की वासना त्यागकर चिन्मात्र वासना रखनी चाहिये और पीछे इसको भी मन बुद्धि के साथ मिश्रित त्याग करना तब जिससे वासना त्यागी हैं वह शेष रहेगा तो उसको भी त्याग करना। हे रामजी! चिन्मात्रतत्त्व से कल्पना करके देह, इन्द्रियां, प्राण, तम, प्रकाश, वासनादिक भ्रममात्र भासिआये हैं। जब मूल अर्थात् अहंकारसंयुक्त इनको त्याग करोगे तब आकाशवत् सम स्वच्छ होगे। इस प्रकार सबको त्यागकर पीछे जो तुम्हारा स्वरूप है वह तुष्ट होगा जो हृदय से इस प्रकार त्यागकर स्थित होता है वह पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है; चाहे वह समाधि में रहे; अथवा कर्म करे वा न करे। जिसके हृदय से सब अर्थों की आस्था नष्ट हुई है वह मुक्त और उत्तम उदारचित्त है। उसको करने, न करने में कुछ हानि लाभ नहीं और न समाधि करने में अर्थ है, न तपसे है क्योंकि; उसका मन वासना से रहित हुआ है। हे रामजी! मैंने चिरकाल पर्यन्त अनेकशास्त्र विचारे हैं और उत्तम २ पुरुषों से चर्चा की है परन्तु परस्पर यही निश्चय किया है कि, भली प्रकार वासना का त्याग करे। इससे उत्तम और पद पाने योग्य नहीं। जो कुछ देखने योग्य है वह मैंने सब देखा है और दशों दिशाओं में भ्रमा हूं; कई जन यथार्थदर्शी दृष्ट आये हैं और कितने हेयोपादेयसंयुक्त देखे पर सब यही यत्न करते हैं और इससे भिन्न कुछ नहीं करते। सब ब्रह्माण्ड का राज्य करे अथवा अग्नि और जल में प्रवेश करे पर ऐसे ऐश्वर्य से संपन्न होकर भी आत्मलाभ विना शान्ति नहीं प्राप्त होती। बड़े बुद्धिमान् और शान्त भी वही हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं और वही शूरमें हैं उनको जरा, जन्म और मृत्यु का अभाव है-वह पुरुष उपासना करने योग्य है। हे रामजी! ज्ञानवान् को किसी दृश्य पदार्थ में प्रीति नहीं होती क्योंकि; पृथ्वी आदिक पञ्चभूत ही सब ठौर मिलते हैं-त्रिलोकी में इनसे भिन्न और कोई पदार्थ नहीं तो प्रीति किस विधि हो। युक्ति से ज्ञानवान् संसारसमुद्र को गोपदवत् तरजाते हैं

पर जिन्होंने युक्ति का त्याग किया है उनको सप्तसमुद्र की नाईं संसार होजाता है। जो पुरुष उदारचित्त हैं उनको यह सम्पूर्ण जगत् कदम्ब-वृक्ष के गालवत् होजाता है; उसमें वे त्याग किसका करें और भोग किसका करें। हेयोपादेय से रहित पुरुष को जगत् तुच्छसा भासता है इसकारण जगत् के पदार्थों के निमित्त वह यत्न नहीं करता और जो दुर्बुद्धिजीव होते हैं वे तुच्छ ब्रह्माण्डरूप पृथ्वी पर युद्ध करते हैं, अनेक जीवों का घात करते हैं और ममता में बन्धायमान हैं यह जगत् संकल्प मात्र में नष्ट होजाता है क्षण क्षण में आस्था मे यत्न करना बड़ी मूढ़ता है। सब जगत् आत्मा के एक अंश से कल्पित है; इसकी उपमा तृण समान भी नहीं। इस प्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी को जानकर आत्मवेत्ता किसी पदार्थके हर्ष शोक में बन्धायमान नहीं होते और ग्रहण और त्याग से रहितहैं। सदाशिवके लोकआदि पाताल पर्यन्त जल, रस, देह, राजस, सात्त्विक, तामस संयुक्त जगत् के पदार्थ ज्ञानवान् को प्रसन्न नहीं करसक्के और उसकी इच्छा किसी में नहीं होती क्योंकि, वह तो एक अद्वितीयात्म-भाव को प्राप्तहुआ है; आकाशवत् व्यापक उसकी बुद्धि होती है; अपने आपमें स्थित है और चित्त दृश्य से रहित, अचेतन चिन्मात्र है। शरीर-रूपी जाल जो भयानक कुहिरा है और जिससे जगत् धूसर होरहा है सो तिस पुरुष का शान्त होजाता है और द्वितीय वस्तु का अभाव होता है ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्र है उसके झागके बोयेवत् कुलाचल पर्वत हैं; चैतन-रूपी सूर्य में मृगतृष्णा की नदीरूप जगत् की लक्ष्मी है और ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरङ्ग उठते और लय होते हैं; ऐसे जाननेवाला जो ज्ञानवान् है उसको यह जगत् आनन्ददायक कैसे हो? सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि जो तुमको प्रकाशरूप भासते हैं वे भी घट, काष्ठ आदिकवत् जड़रूप हैं और जिससे यह प्रकाशते हैं वह सबको सिद्धकर्ता आत्मसत्ता है और कोई नहीं। देह जो रुधिर, मांस और अस्थि से बनी है और इन्द्रियों से वेष्टित है; उस देहरूपी डब्बे में चैतन जीवरूपी रत्न बिराजता है; चैतन विना जड़ मुग्धरूप है। हे रामजी! यह जो स्त्री का देह भासता है सो

चर्म की पुतली बनी है; उसको देख के मूढ़ प्रसन्न होता है। जैसे वायु के चलने से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् संसार के पदार्थों से प्रसन्न नहीं होता। ज्ञानवान् उस उत्तम पद में बिराजता है जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमा और सूर्य पाताल में भासते हैं अर्थात् इनका बड़ा प्रकाश भी तुच्छ भासता है। ज्ञानवान् परम उत्तम पद में बिराजते हैं। ये संसारी मूढ़ जीव संसारसमुद्र में सर्प की नाईं बहेजाते हैं। जैसे ये हम को भासते हैं तैसे कहते हैं। इस जगत् में ऐसा भावपदार्थ कोई नहीं जो ज्ञानवान् को राग से रञ्जित करे। जैसे राजा के गृह में महासुन्दर विचित्र-रूप रानियाँ हों तो उसको ग्रामकी मूढ़ नीच स्त्रियां प्रसन्न नहीं कर सक्तीं; तैसेही ये जगत् के भावपदार्थ तत्त्ववेत्ता को प्रसन्न नहीं कर सक्ते और उसके चित्त में प्रवेश नहीं करते। जसे आकाश में मेघ रहते हैं परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करसक्ते तैसेही वे निर्लेप रहते हैं। जैसे सदाशिव महासुन्दर गौरी के नृत्य देखनेवाले और गौरीसंयुक्त हैं उनको वानरी का नृत्य हर्षदायक नहीं होता; तैसे ही ज्ञानवान् को जगत्के पदार्थ हर्षदायक नहीं होते। जैसे जल से पूर्ण कुम्भ में रत्न का प्रतिबिम्ब देखके बुद्धिमान् का चित्त उसे ग्रहण नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् का चित्त जगत् के पदार्थों को नहीं चाहता। यह संसारचक्र जो बड़ा विस्ताररूप भासता है सो असत्यरूप है; उसको देख के ज्ञानवान् कैसे इच्छा करे क्योंकि, यह तो चन्द्रमा के प्रतिबिम्बवत् है। शरीर भी असत्य है; इसकी इच्छा मूढ़ करते हैं—जैसे सेवार को मच्छ भोजन करते हैं और राजहंस नहीं करते तैसेही संसार के विषयों की इच्छा अज्ञानी करते हैं—ज्ञानी नहीं करते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूपवर्णनन्नाम षट्-पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सिद्धान्त जो परम उचित वस्तु है उसकी गाथा बृहस्पति के पुत्र कच ने गाई थी—वह परमपावनरूप है। एक काल में सुमेरु पर्वत के किसी गहन स्थान में देवगुरु का पुत्र कच जा बैठा। अभ्यास के वश से कदाचित् उसको आत्मतत्त्व में विश्रान्ति हुई; उसका

अन्तःकरण सम्यक् ज्ञानरूपी अमृत से पूर्ण हुआ; पञ्चभौतिक जो मलीन दृश्य हैं उनसे विरक्त हुआ और ब्रह्मभाव में अस्फुर होकर रमने लगा। तब उसे ऐसा भासा कि, निराभास आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं-एक अद्वैत ही है; ऐसे देखता हुआ गद्गद वाणी से बोला कि, मैं क्या करूं कहां जाऊं; क्या ग्रहण करूं और किसका त्याग करूं सब विश्व एक आत्मा से पूर्ण हो रहा है? जैसे महाकल्प में सब ओर से जल पूर्ण हो जाता है तैसेही दुःख भी आत्मा है सुख भी आत्मा है और आकाश, दशोदिशा और अहं त्वं आदि सब जगत् आत्मा ही है। बड़ा कष्ट है कि, मैं अपने आपमें नष्ट हुआ बन्धवान् था। देह के भीतर-बाहर, अध-ऊर्ध्व, यहां-वहां सब आत्माही है, आत्मा से कुछ भिन्न नहीं। सब ओर से एक आत्माही स्थित है और सब आत्मा में स्थित है; यह सब मैं हूं और अपने आपमें स्थित हूं। अपने आपमें मैं नहीं समाता अर्थात् आदि अन्त से रहित अनन्त आत्मा हूं। अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी मैंही हूं; जो पदार्थ मैं नहीं वह हैही नहीं और जो कुछ है वह सब विस्तृतरूप मैंही हूं। एक पूर्ण परम आकाश भैरव अर्थात् भर रहा हूं; सब जगत् भी अज्ञानरूप है और समुद्रवत् एक पूर्ण आत्मा स्थित है। वह कल्याणमूर्ति इस प्रकार भावना करता हुआ स्वर्ण के पर्वत के कुञ्ज में स्थित हुआ और ओंकार का उच्चार बड़े स्वर से करने लगा। ओंकार की जो अर्द्धकला है; जिसको अर्द्धमात्रा भी कहते हैं; वह फूल से भी कोमल है उसमें वह स्थित हुआ। वह अर्द्धमात्रा कैसी है कि, न अन्तःस्थित है और न बाहर है; हृदय में भावना करता हुआ उसमें स्थित हुआ और कलनारूपी जो मल था उससे रहित होकर निर्मल हुआ और उसकी चित्त की वृत्ति निरन्तर लीन होगई। जैसे मेघ के नष्ट हुये शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, तैसेही कलङ्कित कलना के दूर हुये से वह निर्मल हुआ। जैसे पर्वत की पुतली अचलरूप होती है तैसेही कच समाधि में स्थित अचल हुआ॥

इति श्रीयोगवा०स्थितिप्र०कचगाथावर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमस्सर्गः॥५७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अङ्गनाओं के शरीरादिक भोग और जगत् के पदार्थों में कुछ सुख नहीं। ज्ञानवानों को ये पदार्थ तुच्छ भासते हैं, वे इनमें आस्था नहीं करते तो फिर किस पदार्थ की इच्छा करें। इन भोग ऐश्वर्य पदार्थों से मूढ़ असाधु संतोष पाते हैं पर जो ज्ञानवान् साधु हैं वे इनमें प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं उनको भोग ही सरस है पर भोग आदि, अन्त और मध्य में दुःखरूप है। जो पुरुष इनमें आस्था करते हैं वे गर्दभ और नीच पशु हैं। हे रामजी! स्त्री रक्त, मांस और अस्थि आदि से पूर्ण है; जो इसको पाकर तोषित होते हैं वे सियार हैं—मनुष्य नहीं। जो ज्ञानवान् हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते। पृथ्वी सर्वमृत्तिका; वृक्ष काष्ठ; देह मांस और पर्वत पाषाणरूप हैं। पाताल अध है और आकाश ऊर्ध्व है सो दिशाओं से व्यापा है सर्वविश्व पञ्चभौतिकरूप है इसमें तो अपूर्व सुख कोई नहीं जिसमें ज्ञानवान् प्रीति करें। इन्द्रियों के पञ्चविषय मोक्ष के हरनेवाले और विवेक मार्ग के रोकनेवाले हैं और जो कुछ जगत्जाल की संपूर्ण विभूति है वह सब दुःखरूप है। प्रथम इनका प्रकाश भासता है पर पीछे कलङ्क को प्राप्त करते हैं। जैसे दीपक प्रथम प्रकाश को दिखाता है और फिर काजल कलङ्कको देता है, तैसेही इन्द्रियों के विषय आगमापायी हैं—इनसे शान्ति नहीं होती। अज्ञानी को स्त्री आदिक पदार्थ रमणीय भासते हैं पर ज्ञानवान् की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती। अज्ञानी को ये स्थिररूप भासते हैं, स्वाद देते और तुष्ट करते हैं पर ज्ञानवान् को असत्य और चलरूप भासते हैं और तुष्टता के कारण नहीं होते। ये विषम भोग हैं विष की नाईं हैं और स्मरणमात्र से भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं और सत्यविचार भूलजाता है। इससे तुम इनको त्याग करके अपने स्वभाव में स्थित होजाओ और ज्ञानवानों की नाईं बिचरो। हे रामजी! जब इस जीव को अनात्म में आत्माभिमान होता है तब असङ्गरूप जगत्जाल भी सत्य हो भासता है। ब्रह्मा को भी वासना के वश से कल्प देह का संयोग होता है। जैसे सुवर्ण का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है और उसकी झलक

कन्धे पर पड़ती है पर कन्धे से सुवर्ण का कुछ संयोग नहीं होता तैसेही ब्रह्मा का संयोग देह से वास्तव कुछ नहीं—कल्पनामात्र देह है। रामजी ने पूछा, हे महामते! आत्मा विरञ्चि के पद को प्राप्त होकर फिर यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं वह क्रम से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुये तब जैसे गर्भ से बालक उपजता है तैसेही उपजकर बारम्बार इस शब्दका उच्चार किया कि, 'ब्रह्म'! 'ब्रह्म'। इसकारण उसको ब्रह्मा कहते हैं। फिर संकल्प जालरूप और कल्पित आकार मन हो आया; उस मनने संकल्पलक्ष्मी फैलाई। प्रथम संकल्प से माया उपजती है; फिर तेज अग्नि के चक्रवत् फुरनेलगा और उससे बड़ा आकार होगया। फिर वह ज्वालाकी नाईं, सुवर्ण लतारूप, बड़ी जटा संयुक्त, प्रकाश को धारे और शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होकर स्थितहुआ और अपने समान आकार बड़े प्रकाशसंयुक्त कला और ज्वालाका मण्डल आकाशके मध्य स्थित हुआ—अग्निरूप और जिसके अग्निही अङ्ग हैं। हे महाबुद्धिमन्, रामजी! इसप्रकार तो ब्रह्मा से सूर्य हुये हैं और दूसरी जो तेज किरणें फुरती हैं वे आकाश में तारागण बिम्ब पर आरूढ़ फिरते हैं। फिर ज्यों ज्यों वह संकल्प करता गया त्यों त्यों तत्काल ही सिद्ध होकर भासने लगा। इसीप्रकार आगे जगत् रचा। जिस प्रकार इस सृष्टि में ब्रह्मा रचता है उसी प्रकार और सृष्टि में रचते हैं। प्रथम प्रजापति, फिर कालकलना, नक्षत्र और तारागण; फिर देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष, नदियाँ, समुद्र, पर्वत सब इसीप्रकार कल्पे और जैसे समुद्र में तरङ्ग कल्पित होते हैं तैसेही सिद्ध रच के उनके कर्म रचे। वे भी शुभसंकल्परूप हैं जैसा संकल्प करें वही सिद्ध होकर भासने लगे। इसी प्रकार फिर भूत और तारागण उत्पन्न किये और उन्होंने और उत्पन्न किये। तब ब्रह्माजी ने वेद उत्पन्न किया और जीवों के नाम, आचार, कर्मवृत्ति बनाये और जगत्मर्यादा के लिये नीतिरूप स्त्री को रचा। इसी प्रकार ब्रह्म की माया ब्रह्मारूप से बड़े शरीर धर रही है। आगे सृष्टि का विस्तार है, लोक और लोकपालों के क्रम किये हैं और सुमेरु और

पृथ्वी के मध्य दशोंदिशा रचकर सुख, मृत्यु, राग, द्वेष प्रकट किये। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजी ने रचा और जैसे उसने रचा है तैसेही स्थित है। यह जो कुछ सम्पूर्ण दृश्य भासता है वह सब मायामात्र है। हे रामजी! इस प्रकार जगत् का क्रम हुआ है। संकल्परूप संसार बड़ा स्थित होकर अज्ञान से भासता है। यह तो संकल्प से रचा है, संकल्प के वश से जगत् की क्रिया फैलाता है; संकल्प वश से दैव-नीति होकर स्थित हुआ है और सब ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है। जब उसका संकल्प निर्वाण होता है तब जगत् भी लय होजाता है। एकसमय ब्रह्माजी पद्मासन धर बैठे थे और विचारने लगे कि, यह जगत्-जाल मन के संकल्प फुरनेमात्र है, मन के फुरने से उपज आता है और नाना प्रकार के विकारसंयुक्त व्यवहार, इन्द्र, उपेन्द्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वी से लेकर सर्व जगत्जाल मायामात्र और बड़ा फैल रहा है इसलिये अब मैं इससे निवृत्त होऊं। ऐसे विचार उन्होंने अनर्थरूप संकल्प को दूर करके, आदि-अन्तरहित अनादिमत परम ब्रह्मस्फार आत्मारूप आत्मतत्त्व में मन लय किया और आनन्दरूप आत्मा होकर अपने आपमें स्थित होकर निर्मल निःहंकार परमतत्त्व को प्राप्त हुये। जैसे कोई व्यवहार से थका हुआ विश्राम करता है तैसेही वह अपने आपसे आत्मतत्त्व में स्थित हुये। जैसे समुद्र अक्षोभ होता है तैसे ही वह अक्षोभ हुये और ध्यान में लगे और फिर जब ध्यान से जगे तो जैसे द्रवता से समुद्र से तरङ्ग फुरआवें तैसेही चित्त के वश से ब्रह्माजी फुरनरूप होगये तब जगत् को देख के फिर चिन्तन करने लगे कि, संसार दुःख, सुखसे संयुक्त अनन्त फांसी से बन्धायमान है और राग, द्वेष, भय, मोह से दूषित है। हे रामजी! इस प्रकार जीवों को देख के ब्रह्माजी को दया उपजी तो अध्यात्मज्ञान से सम्पन्न वेद उपनिषद् और वेदान्त प्रकट किये और बड़े अर्थसंयुक्त नाना प्रकार के शास्त्र रचे। फिर जीवों की मुक्ति के निमित्त पुराण रचे और परमपद जो आपदा से रहित है उसमें स्थित हुआ। जैसे मन्दराचल पर्वत के निकले से क्षीरसमुद्र

शान्त होता है तैसेही शान्तरूप होकर स्थित हुआ और फिर उसीप्रकार जाग के जगत् को देख मर्यादा में लगाया फिर कमलपीठ में स्थित होकर आत्मतत्त्व के ध्यानपरायण हुआ। इसीप्रकार जो कुछ अपने शरीर की मर्यादा ब्रह्माजी ने की है उसी प्रकार नीति के संस्कारपर्यन्त क्रीड़ा करते हैं और कुलाल के चक्रवत् नीति के अनुसार बिचरते हैं। जैसे ताड़ना और वासना से रहित चक्र फिरता है तैसेही वह जन्म मरण से रहित है। उसको शरीर के रखने और त्यागने की कुछ इच्छा नहीं और न कुछ जगत् की स्थिति और न अनस्थिति में इच्छा है। वह किसी पदार्थ के ग्रहण और त्यागकी भावना में आसक्त नहीं होता और सबमें समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है। कभी सब संकल्प से रहित शान्तरूप होरहते हैं और कभी अपनी इच्छा से जगत् रचते हैं परन्तु उनको जगत् के रचने में कुछ भेद नहीं-सर्व पदार्थों की अवस्था में तुलता है। हे रामजी! यह मैंने तुमसे ब्रह्माजी की स्थिति कही है यह परमदशा और भी किसी देवता को उपजे तो उसको समता जानिये क्योंकि, वह शुद्ध सात्त्विकरूप है। सृष्टि के आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व में चित्तकला फुरी है वही मनकला ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है। जब फिर जगत् के स्थिति क्रम में कलना उत्पन्न होती है तब वही ब्रह्मारूप आकाश, पवन को आश्रय लेकर औषध और पत्रों में प्रवेश करती है। कहीं देवताभाव को, कहीं मनुष्यभाव को; कहीं पशुपक्षी तिर्यगादिक भाव में प्राप्त होती है और कहीं चन्द्रमा की किरणद्वारा अन्नादिक औषध में प्राप्त होती है। जैसे भाव को लेकर चित्तकला फुरती है तैसाही भाव शीघ्र उत्पन्न होआता है। कोई उपजकर संसार के संसर्गवश से उसी जन्म के बन्धन से मुक्त होजाते हैं क्योंकि, उन्हें अपने स्वरूप का चमत्कार होता है; कोई अनेक जन्म से मुक्त होते हैं और कोई थोड़े जन्म से मुक्त होते हैं। हे रामजी! इसप्रकार जगत का क्रम है। कोई प्रत्यक्ष, संकट, कर्म, बन्ध, मोक्षरूप उपजते हैं और कोई मिटजाते हैं। इस प्रकार संसार बन्धमोक्षसे पूर्ण है। जब यह कलनामल नष्ट होता है तब संसार

से मुक्त होता है और जबतक कलनामल है तबतक संसार भासता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो, रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी ने निर्मल पद में स्थित होकर सर्ग फैलाया। संसाररूपी कूप में जीव भ्रमते हैं और जीवरूपी टीड़ी तृष्णारूपी रस्सी से बँधे हुये कभी अध और कभी ऊर्ध्वको जाते हैं। जब वासनारूपी रस्सी टूट पड़ती है तब ब्रह्मतत्त्व से उठे ब्रह्मतत्त्व में एकत्र होजाते हैं। ब्रह्मसत्ता से जीव उपजते हैं और फिर ब्रह्मसत्ता में ही लय होते हैं। जैसे समुद्र से मेघ जलकण के धूम्रद्वारा उपजते हैं और फिर वर्षा से उसी में प्रवेश करते हैं; तैसेही जब तन्मात्रा मण्डल से चित्तकला निकलती है तब उसीके साथ जीव एकरूप होजाते हैं। जैसे मन्दारवृक्ष के पुष्प की सुगन्ध वायु से मिलकर एकरूप होजाती है तैसे ही चित्तकला जीवतन्मात्रा से मिलकर प्राणनाम पाती है। इस प्रकार प्राणवायु से आदि तन्मात्रा जीवकला को खैंचने लगता है जैसे बड़े प्रचण्ड दैत्यके समूह देवताओं को खैंचें तैसेही खैंचा हुआ जीव तन्मात्रा से एकरूप होजाता है। जैसे गन्ध और वायु तन्मय होते हैं तैसेही वह प्राण तन्मात्रा जीव के शरीर में वीर्यस्थान में जा प्राप्त होता है और जगत् में उपजकर प्राण प्रत्यक्ष होते हैं। कई धूम्रमार्ग से देहवान् के शरीर में प्रवेश करते हैं और कई मेघ में प्रवेश कर बुन्द मार्ग से औषध में रसरूप होकर स्थित होते हैं और उसको भोजन करनेवाले के भीतर वीर्यरूप होकर स्थित होते हैं। कई और प्राणवायु द्वारा प्रकट होते हैं और चर स्थावररूप होते हैं, कई पवनमार्ग से धान के खेत में चावलरूप स्थित होते हैं और उनको जीव भोजन करते हैं तो वीर्य में प्राप्त होते हैं और नाना प्रकार के रङ्ग भेद से प्राण धर्म उपजते हैं और कोई उपजनेमात्र से जीव की परम्परा तन्मात्रा से वेष्टित जबतक चन्द्रमा उदय नहीं हुआ आकाश में स्थित होते हैं और जब चन्द्रमा उदय होता है तब उसका रस जो शीतल किरणें और श्वेत क्षीरसमुद्रवत् है उसमें जा प्राप्त

होते हैं और उसके अन्तर्गत होकर पत्र औषध में स्थित होते हैं। जैसे कमल पर भँवरे आ स्थित होते हैं तैसेही औषध में जाकर जीव स्थित होते हैं और फल में स्वादरूप होकर स्थित होते हैं। जैसे घुना रससे पूर्ण होता है तैसेही जीव से औषध और फल पूर्ण होजाते हैं। जैसे दूध से स्तन पूर्ण होते हैं तैसेही जीवसे फल पूर्ण होते हैं। जब वे फल परिपक्व होते हैं तो उनको देहधारी भक्षण करते हैं और उसमें जीव वीर्य और जड़ात्मकरूप होकर स्थित होते हैं। वह सुषुप्ति वासना से वेष्टित हुये गर्भ-पिंजरे में जा पड़ते हैं। हे रामजी ! जैसे मृत्तिकामें घटादिक, काष्ठमें अग्नि और दूध में घृत सदा रहता है तैसेही वीर्य में जीव रहता है इस प्रकार परमात्मा महेशरूप से जीव की परम्परा उपजती है। वायु, धूम्र, मेघ, औषध, प्राण, चन्द्रमा की किरणें इत्यादिक अनेक मार्गों से जीव उपजते हैं जो उपजने से आत्मसत्ता से अप्रमादी रहते हैं और जिनको अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और महाउदार व्यवहार-वान् होते हैं और जिनको उपजना विस्मरण होजाता है और फिर उसी शरीर में आत्मा का साक्षात्कार होता है वह सात्त्विकीरूप है और जो उपजकर नाना प्रकार के व्यवहार करते हैं और जिनको स्वरूप विस्मरण होजाता है जन्मकी परम्परा पाकर स्वरूप का साक्षात्कार होता है वे राजस सात्त्विकी कहाते हैं। जिनको अन्तका जन्म आ रहता है उनको जिस प्रकार मोक्ष होता है वह क्रम अब तुमसे कहता हूं। हे रामजी! उपजनेमात्र से जो अप्रमादी हुये हैं वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और वेही ब्रह्मादिक हैं और जो प्रथम जन्म से बोधवान् हुये हैं वे सात्त्विकी हैं और जो कभी किसी जन्म में मोक्ष हुये हैं वे राजसी सात्त्विकी हैं। इससे भिन्न नाना प्रकार के मूढ़, जड़ और तमसंयुक्त स्थावरादिक अनेक हैं। जिन-को आत्मपद प्राप्त हुआ है उनको जो मिलते हैं उनको अन्त का जन्म है। ऐसे पुरुष विचारते हैं कि, मैं कौन हूं और यह जगत् क्या है और इस विचार के क्रम से मोक्षभागी होते हैं वे राजस से सात्त्विकी होते हैं॥

इति श्रीयो० स्थिति० विचारपुरुषनिर्णयो नाम एकोनषष्टितमस्सर्गः॥५६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो राजस से सात्त्विकी होते हैं वे पृथ्वीपर महागुणों से शोभायमान होते हैं और सदा उदितरूप रहते हैं। जैसे आकाश में चन्द्रमा रहता है। वे पुरुष खेद नहीं पाते—जैसे आकाश को मलीनता नहीं स्पर्श करती तैसेही उनको आपदा स्पर्श नहीं करती। जैसे रात्रि के आये से सुवर्ण के कमल नहीं मुँदते; जो कुछ प्रकृति आचार है उसके अनुसार चेष्टा करते हैं और जैसे सूर्य अपने आचार में विचरता है और आचार नहीं करता; तैसेही वे सत्यमार्ग में विचरते हैं और हृदय से पूर्ण शान्तरूप हैं। जैसे चन्द्रमा की कला क्षीण होती है तो भी वह अपनी शीतलता नहीं त्यागता; तैसेही ज्ञानवान् आपदा के प्राप्त हुये भी मलीनता को नहीं प्राप्त होते। वे सर्वदाकाल मैत्री आदिक गुणों से सम्पन्न रहते हैं, और सदा उनसे शोभते हैं। समतारूप जो समरस है उससे वे पूर्ण और शान्तरूप हैं और निरन्तर शुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादा में स्थित रहते हैं। हे रामजी! तुम भी महापुरुषों के मार्ग में सदा चलो और जो मार्ग परमपावन, आपदा से रहित और सात्त्विकी है उसके अनुसार चलो तब आपदा के समुद्र में न डूबोगे। जैसे वे खेद से रहित जगत् में विचरते हैं तैसेही विचरो। जिस क्रमसे राजस से सात्त्विकी मोक्षभागी होता है सो सुनो। प्रथम आर्यभाव को प्राप्त होना अर्थात् यथाशास्त्र सद्व्यवहार करना तो उससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। उस आर्यपद को पाकर सन्तों के साथ मिलकर बारम्बार सत्शास्त्रों को विचारना और जो संसार के अनित्य पदार्थ हैं उनमें प्रीति न करनी। विरक्तता उपजानी और जो त्रिलोकी के पदार्थों के उपजने विनशने में सत्यरूप है बारम्बार उसकी भावना करनी और दूसरी भावना शीघ्रही मिथ्या जानकर त्यागनी। जो कुछ दृश्य जगत् भासता है उसे असम्यक् दृश्य है। निष्फल, नाशरूप और व्यर्थ जानकर भावना त्यागनी और सम्यक्ज्ञान को स्मरण करना। सन्तजन और सत्शास्त्र जो ज्ञान के सहायक हैं उनके साथ मिलके विचार करना कि, मैं कौन हूं और जगत् क्या है?। भलीप्रकार प्रयत्न करके विवेकयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्र का विचार करना और सत्य व्यवहार और

सात्त्विकी कर्म करना और अवज्ञा करके मृत्यु को विस्मरण न करना। जो मृत्यु विस्मरण करके संसार कार्य में लगजाता है वह डूबता है; इससे स्मरण करके सन्मार्ग में लगना और जिस पद में महाउदार और शीतल-चित्त ज्ञानी पुरुष स्थित है उस पद के मार्ग और दर्शन में सदा इच्छा रखनी। जैसे मोर को मेघ की इच्छा रहती है। हे रामजी! अहंकार जो देह में स्थित है यह देह संसार में उपजी है; इसको भली प्रकार विचार करके नाश करो। यह सांसारिक देह, रुधिर, मांस, मज्जा आदिक की बनावट है। जितने भूतजात हैं वे सब चेतनरूपी तागे में मोती परोये हैं; उन भूतों को त्याग करके चिन्मात्रतत्त्व को देखो। चेतनसत्ता सत्य, नित्य और विस्मृतरूप है और शुद्ध, सर्वगत और सर्वभाव उसमें है। वह त्रिलोकी का भूषण आश्रयभूत है जो चेतनआकाश सूर्य में है। वही चेतन पृथ्वी के छिद्र में कीट है जैसे घटाकाश और महाकाश में भेद कुछ नहीं तैसेही शरीर और चेतनमें भेद नहीं। जैसे सब मिरचों में तीक्ष्णता एकही है तैसेही सर्वभूतों में चेतनता एकही अनुस्यूत है—अनुभव से जानता है। उस एक चिन्मात्र में भिन्नता कहां से हो? एक सत्यसत्ता जो निरन्तर चिन्मात्र वस्तुरूप है उसमें जन्म मरण आदिक अज्ञान से भासता है; वास्तव में न कोई उपजाहै और न मरताहै, एक आत्मतत्त्व सदा ज्योंका त्यों स्थितहै। और उसमें जगत् विकार आभासमात्र है; न सत्य है न असत्य है। चित्त के फुरने से भासता है और चित्त के शान्त हुये शान्त हो जाता है। जो जगत् को सत्य मानिये तो अनादि हुआ इससे भी शोक किसीका नहीं बनता और जो जगत् असत्य मानिये तो भी शोक का स्थान नहीं बनता। इससे दृढ़ विचार करके स्थित हो और शोक को त्यागो। तुमको न जन्म है और न मरण है—आकाशवत् निर्मल सम शान्तरूप हो जाओ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नाम षष्टितमस्सर्गः॥६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिमान्हैं वे सत्शास्त्र को विचारें; सन्तजनों का संग करके उनका आचार ग्रहण करें और जो जो दुःख की नाशकर्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि हैं उनको यत्न करके अङ्गीकार करें

तब सन्तजनता प्राप्त होगी। सन्तजन जो विरक्तात्मा हैं उनसे मिलकर जब सत्शास्त्र को विचारे तब परमपद मिलता है। हे रामजी! जो पुरुष सत्शास्त्र का विचारनेवाला है और सन्तजनों का संग तथा वैराग्य अभ्यास आदरसंयुक्त करता है वह तुम्हारी नाईं विज्ञान का पात्र है। तुम तो उदारात्मा हो और धैर्यवान् के जो गुण शुभाचार हैं उनके समुद्र हो निर्दुःख होकर स्थित हो। अब राजसी सात्त्विकी और मननशील हुये हो फिर ऐसे दग्धरूप संसार में दुःख के पात्र न होगे। यह तुम्हारा अन्त का जन्म है जो अपने स्वभाव की ओर धावते हो, अन्तर्मुख यत्न करते हो, निर्मल दृष्टि तुमको प्रकट हुई है और भूत जगत् वस्तु को जानते हो। जैसे सूर्य के प्रकाश से यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है। अब मेरे वचनों की पंक्ति से सर्वमल दूर होजावेंगे—जैसे अग्नि से धातु का मल जल जाता है तैसेही तुम्हारा मल जलजावेगा और निर्मलता से शोभायमान होगे। जैसे मेघ के नष्ट हुये शरत्काल का आकाश शोभता है तैसेही संसार की भावना से मुक्त होकर चिन्ता से रहित निर्मलभाव से शोभोगे। अहं, ममादि कल्पना से मुक्त हुये ही मुक्त हैं इसमें कुछ संशय नहीं। हे रामजी! तुम्हारा जो यह अनुभव उत्तम व्यवहार है उसके अनुसार बिचारोगे तो तुम अशोक पद पावोगे। और कोई इस व्यवहार को वर्तेगा वह भी संसारसमुद्र को अनुभवरूपी बेड़े से तर जावेगा। तुम्हारे तुल्य जिसकी मति होगी वह समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है। जैसे सर्व कान्तिमान् सुन्दरता का पात्र पूर्णमासी का चन्द्रमा होता है। तुम तो अशोकदशा को प्राप्त हुये हो और यथाप्राप्ति में वर्त्तते हो। जब तक देह है तब तक राग द्वेष से रहित स्थितबुद्धि रहो और यथाशास्त्र जो उचित आचार हैं उन्हें वर्त्ता करो पर हृदय में सर्वकल्पना से रहित शीतल चित्त हो—जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतल होता है। हे रामजी! इन सात्त्विक और राजस से—सात्त्विक से भिन्न जो तामसी जीव हैं उनका विचार यहां न करना; ये मूढ़ सियार हैं और मद्यादिक के पीनेवाले हैं, उनके विचार से क्या प्रयोजन है? जो मैंने तुमसे सात्त्विकी जन कहे हैं

उनके सेवन से बुद्धि अन्तके जन्म की होती है और जो तामसी हैं उनको सेवे तो उनकी बुद्धि भी उदार होजाती है। जिस जिस जाति में जीव उपजता है उस जाति के गुण से शीघ्रही संयुक्त होजाता है। पूर्व जो कोई भाव होता है वह जाति के वश से वहां जाता रहताहै और जिस जाति में वह जन्मता है उसके गुणों को जीतने का पुरुषार्थ करता है, तब यत्न से पूर्व के स्वभाव को जीत लेता है। जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रु को जीत लेता है। जो पूर्व संस्कार मलीन है तो धैर्य करके मलीन बुद्धिका उद्धार करे–जैसे मुग्ध पशु गढ़े में फँसजावे और उसको काढ़ लेवे तैसेही बुद्धि को मलीन संस्कार से काढ़िलें। हे रामजी! जो तामस–राजसी जातिहै उसको भी जन्म और कर्म के संस्कारवश से सात्त्विक प्राप्त होता है और वह भी अपने विचार द्वारा सात्त्विक जाति को प्राप्त होता है। पुरुष के भीतर अनुभवरूपी चिन्तामणि है उसमें जो कुछ निवेदन करता है वही रूप हो जाता है। इससे पुरुषार्थ करके अपना उद्धार करो। पुरुषप्रयत्न से पुरुष बड़े गुणों से संपन्न हो मोक्ष पाता है और उसके अन्त का जन्म होता है, फिर जन्म नहीं पाता और अशुभ जाति के कर्म निवृत्त होजाते हैं। ऐसा पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवलोक में कोई नहीं जो यथाशास्त्र प्रयत्न करके न पाइये। हे रामजी! तुम तो बड़े गुणों से संपन्न हो और धैर्य उत्तम वैराग और दृढ़ बुद्धि से संयुक्त हो और उसके पाने को धर्मबुद्धि से वीत शोकरूप हो। तुम्हारे क्रम को जो कोई जीव ग्रहण करेगा वह मूढ़ता से रहित होकर अशोक पद को प्राप्त होगा। अब तुम्हारा अन्त का जन्म है, और बड़े विवेक से संयुक्त हो तुम्हारी बुद्धि में शान्ति के गुण फैल गये हैं और उनसे तुम शोभते हो। सात्त्विक गुण क्रम से सबमें रमरहे हो और संसार की बुद्धि, मोह और चिन्ता तुमको मिथ्या है–तुम अपने स्वस्थस्वरूप में स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे महारामायणे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनं नामैकषष्टितमस्सर्गः॥ ६१॥

इति॥

ॐसच्चिदानन्दाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठे

उपशमप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे साधो ! अब स्थितिप्रकरण के अनन्तर उपशमप्रकरण कहता हूं जिसके जानने से निर्वाणता पावोगे। जब वशिष्ठजी ने इस प्रकार वचन कहे तब सब सभा ऐसी शोभित हुई जैसे शरत्काल के आकाश में तारागण शोभते हैं। वशिष्ठजी के वचन परमानन्द के कारण हैं। ऐसे पावन वचन सुनके सब मौन हो गये और जैसे कमल की पंक्ति कमल की खानि में स्थित हो तैसेही सभा के लोग और राजा स्थित हुये। स्त्रियां जो झरोखों में बैठी थीं उनके महाविलास की चञ्चलता शान्त हो गई और घड़ियालों के शब्द जो गृह में होते थे वे भी शान्त होगये। शीश पर चमर करनेवाले भी मूर्तिवत् अचल होगये और राजा से आदि लेकर जो लोग थे वे कथा के सन्मुख हुये। रामजी बड़े विकाश को प्राप्त हुये—जैसे प्रातःकाल में कमल विकाशमान होता है और वशिष्ठजी की कही वाणी से राजा दशरथ ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे मेघ की वर्षा से मोर प्रसन्न होता है। सबके चञ्चल वानररूपी मन विषय-भोग से रहित ही स्थित हुये और मन्त्री भी सुन के स्थित हो रहे और अपने स्वरूप को जाननेलगे। जैसे चन्द्रमा की कला प्रकाशती है तैसेही आत्मकला प्रकाशित हुई और लक्ष्मण ने अपने लक्षस्वरूप को देखके तीव्रबुद्धि से वशिष्ठजी के उपदेश को जाना। शत्रुघ्न जो शत्रुओं को मारनेवाले थे उनका चित्त अति आनन्द से पूर्ण हुआ और जैसे पूर्ण-मासी का चन्द्रमा स्थित होता है तैसे मन्त्रियों के हृदय में मित्रता होगई और मन शीतल और हृदय प्रफुल्लित हुआ। जैसे सूर्य के उदयहुये कमल तत्काल विकाशमान होता है। और और जो मुनि, राजा और ब्राह्मण स्थित थे उनके रत्नरूपी चित्त स्वच्छ और निर्मल होगये। जब मध्याह्न काल का समय हुआ और बाजे बजकर उनके ऐसे शब्द हुये जैसे प्रलय

काल में मेघों के शब्द होते हैं और उन बड़े शब्दों से मुनीश्वरों का शब्द आच्छादित हो गया—जैसे मेघ के शब्द से कोकिला का शब्द दब जाताहै। तब वशिष्ठजी चुप होगये और एक मुहूर्त्तपर्यन्त शब्द होतारहा। जब घनशब्द शान्त हुआ तब मुनीश्वर ने रामजी से कहा, हे रामजी! जो कुछ आज मुझे कहना था वह मैं कहचुका अब कल फिर कहूंगा। यह सुन सर्वसभा के लोग अपने २ स्थानों को गये और वशिष्ठजी ने राजा से लेकर रामजी आदि से कहा कि, तुमभी अपने २ घर में जावो। सबने चरणवन्दना और नमस्कार किया और जो नभचारी, वनचारी और जलचारी थे उन सबको बिदाकर आप भी अपने २ स्थानों को गये और ब्राह्मण की सुन्दरवाणी को विचारते और अपने २ अधिकार की क्रिया दिनको करते रहे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे पूर्वदिनवर्णनं नाम प्रथमस्सर्गः॥१॥

इतना कहकर फिर बाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार अपने २ स्थानों में सब यथाउचित क्रिया करने लगे। वशिष्ठ, राजा, राघव, मुनि और ब्राह्मणों ने अपने २ स्थानों में स्नान आदिक क्रिया की और गौ, सुवर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन आदिक ब्राह्मणों को यथायोग्य पात्रदान दिये। सुवर्ण और रत्नों से जड़े स्थानों में आकर राजा ने देवताओं का पूजन किया और कोई विष्णु का, और सदाशिव का, कोई अग्नि का और किसीने सूर्य आदिकका पूजन किया। तद-नन्तर पुत्र, पौत्र, सुहृद्, मित्र, बान्धवसंयुक्त नानाप्रकारके उचित भोजन किये। इतनेमें दिनका तीसरा पहर आया तब सबने अपने सम्बन्धियोंसंयुक्त और २ क्रिया की और जब सांझहुई और सूर्य अस्त हुआ तब सायंकालकी विधि की और अघमर्षण गायत्री आदिक का जाप किया और पाठश्रोत्र और पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरों की कही। फिर रात्रि हुई तब स्त्रियों ने शय्या बिछाई और उनपर वे बिराजे पर रामजी विना सबको रात्रि एकमुहूर्तवत् व्यतीत हुई रामजी स्थित होकर वशिष्ठजी के वचन की पं-क्तियों को विचारने लगे कि, जिसका नाम संसार है इसमें भ्रमणे का

पात्र कौन है; नाना प्रकार के भूतजात कहां से आते हैं; कहां जाते हैं; मनका स्वरूप क्या है; शान्ति कैसे होती है; यह माया कहां से उठी है, और कैसे निवृत्त होती है; निवृत्त हुये विशेषता क्या होती है, नष्ट किसकी होती है; अनन्तरूप जो विस्तृत आत्मा है उसमें अहंकार कैसे होता है; मनके क्षय होने और इन्द्रियों के जीतने में मुनीश्वरों ने क्या कहा है और आत्मा के पावने में क्या युक्ति कही है? जीव, चित्त, मन और माया सब ही एकरूप हैं; विस्ताररूप संसार इसने ही रचा है और जैसे तेंदुये ने हाथी को बांधा था और वह कष्ट पाता था तैसे ही असत्‌रूप संसार में बँधकर जो जीव कष्ट पाते हैं उस दुःख के नाश करने के निमित्त कौन औषध है। भोगरूपी मेघमाला में मोहित हुई मेरी बुद्धि मिलित होगई है; इसको मैं किस प्रकार भिन्न करूं। यह तो भोग के साथ तन्मय होगई है और मुझको भोगों के त्यागने की सामर्थ्य भी नहीं; भोगों के त्यागने के विना बड़ी आपदा है और उनके संहारने की भी सामर्थ्य नहीं। बड़ा आश्चर्य है और हमको बड़ा कष्ट प्राप्त हुआ है। आत्मपद की प्राप्ति मनके जीतने से होती है और वेद शास्त्र के कहने का प्रयोजन भी यही है। गुरु के वचनों से भ्रम नष्ट होजाता है—जैसे बालक को परछाहीं में वैताल भासता है—उस भ्रमको जैसे बुद्धिमान् दूर करता है तैसे ही मनरूपी भ्रम को गुरु दूर करते हैं। वह कौन समय होगा कि, मैं शान्ति पाऊंगा और संसारभ्रम नष्ट हो जावेगा। जैसे यौवनवान् स्त्री भर्त्तार को पाके सुख से विश्राम करती है; तैसे ही मेरी बुद्धि आत्मा को पाके कब विश्रामवान् होगी। नाना प्रकार के संसार के आरम्भ मेरे कब शान्त होंगे और कब मैं आदि अन्त से रहित पदमें विश्रान्तवान् होऊंगा। मेरा मन कब पावनरूप होगा और पूर्णमासी के चन्द्रमावत् सम्पूर्ण कला से सम्पन्न होकर स्वच्छ, शीतल और प्रकाशरूप पद में कब स्थित होऊंगा। मैं कब जगत् देख के हँसूंगा और कब मलीन कलना को त्याग के आत्मपद में स्थित होऊंगा। कब मैं मनको संकल्प विकल्प से रहित शान्तरूप देखूंगा—जैसे तरङ्ग से रहित नदी शान्तरूप दीखती है। तृष्णा-

रूपी तरङ्ग से व्याकुल जो संसारसमुद्र है वह मायाजाल से पूर्ण है और राग द्वेषरूपी मच्छों से संयुक्त है, उसको त्याग के मैं वीतज्वर कब होऊंगा। उस उपशम सिद्धिपद को मैं कब पाऊंगा जो बुद्धिमानों ने मूढ़ता को त्याग के पाया है। मैं कब निर्दोष और समदर्शी होऊंगा और अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होगा जिससे सम्पूर्ण अङ्ग मेरे तपते हैं। सब धातु क्षोभरूप होगई हैं और उनसे बड़ा दीर्घ ज्वर हुआ है इससे कब मेरा चित्त शान्तवान् होगा—जैसे वायु विना दीपक शान्त होता है। कब मैं भ्रम त्याग के प्रकाशवान् हूंगा और कब मैं लीला करके इन्द्रियों के दुःखों को तरजाऊंगा। दुर्गन्धरूप देह से मैं कब न्यारा होऊंगा और 'अहं, त्वं' आदिक मिथ्याभ्रम का नाश मैं कब देखूंगा। जिस पद के आगे इन्द्रादिकों का सुख ऐश्वर्य मन्दारादिक वृक्षों की सुगन्ध और नाना प्रकार के भोग तृणवत् भासते हैं वह आत्मसुख हमको कब प्राप्त होगा। वीत राग मुनीश्वर ने जो हमसे ज्ञान की निर्मल दृष्टि कही है उसको पाके मन विश्रामवान् होता है। संसार तो दुःखरूप है मन तू किसका पद पाके विश्रामवान् हुआ है। माता, पिता, पुत्रादिक जो सम्बन्धी हैं उनका पात्र मैं नहीं हूं; इनका पात्र भोगी होता है। बुद्धि तू मेरी बहन है, तू मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातृवत पूर्ण कर कि, तुम हम दोनों दुःख से मुक्त हों। मुनीश्वर के वचनों को विचार के हमारी आपदा नाश होगी, हम भी परमपद को प्राप्त होंगे और तुझको भी शान्ति होगी। हे मेरी बुद्धि! तू ज्यों का त्यों स्मरण कर कि, वशिष्ठजी ने क्या कहा है। प्रथम तो वैराग्य कहा है, फिर मोक्षव्यवहार कहा है; फिर उत्पत्ति प्रकरण कहा है कि, संसार की उत्पत्ति इस क्रम से हुई है और फिर स्थिति प्रकरण कहा है कि, ईश्वर से जगत की स्थिति है और नाना प्रकार के दृष्टान्तों से उसे निरूपण कियाहै। निदान जितने प्रकरण कहे हैं वे ज्ञान विज्ञानसंयुक्त हैं। हे बुद्धे! जिस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा है तैसे तू स्मरण कर और अनेकबार विचार कर। बुद्धि में निश्चय न हो तो वह क्रिया भी निष्फलहै। जैसे शरत्काल का मेघ बड़ा घन भी दृष्टि आता है परन्तु वर्षा से रहित

निष्फल होताहै तैसेही बुद्धि में अनुसंधानसे रहित विचार किया निष्फल होता है। जो बुद्धि में अनुसन्धान कीजिये वह विचार सफल होता है॥

इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे उपदेशानुसारवर्णनंनाम द्वितीयस्सर्गः२॥

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब इस प्रकार बड़े उदार आत्मा रामजीने चित्तसंयुक्त रात्रि व्यतीत की तो कुछ तमसंयुक्त तारागण हुए और दिशा भासने लगीं। प्रातःकाल के नगारे नौबत बजने लगे तब रामजी ऐसे उठे जैसे कमलों की खानि से कमल उठे और भाइयों के साथ प्रातःकाल के सन्ध्यादिक कर्म कर कुछ मनुष्यों के संयुक्त वशिष्ठजी के आश्रम में आये। वशिष्ठजी एकान्त समाधि में स्थित थे उन को दूर से देख रामजी ने नमस्कार सहित चरणवन्दना की और प्रणाम करके हाथ बाँध खड़े रहे। जब दिशा का तम नष्ट हुआ तब राजा और राजपुत्र, ऋषि, ब्राह्मण जैसे ब्रह्मलोक में देवता आवें तैसे आये। वशिष्ठजी का आश्रम जनों से पूर्ण होगया और हाथी, घोड़े, रथ, प्यादा चार प्रकार की सेना से स्थान शोभित हुआ। तब तत्काल वशिष्ठजी समाधि से उतरे और सर्वलोगों ने प्रणाम किया। वशिष्ठजी ने उन सबका प्रणाम आचार-पूर्वक यथायोग्य ग्रहण किया और विश्वामित्र को संग लेकर सबसे आगे चले बाहर निकलकर रथपर आरूढ़ हुये—जैसे पद्म में ब्रह्मा बैठे और दशरथ के गृह को चले। जैसे ब्रह्माजी देवताओं से वेष्टित इन्द्रपुरी को जाते हैं तैसेही वशिष्ठजी बड़ी सेना से वेष्टित दशरथ के गृह आये और जो विस्तृत रमणीय सभा थी उसमें प्रवेश किया जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलों में प्रवेश करे। तब राजा दशरथ ने जो बड़े सिंहासन पर बैठे थे उठकर आगे आ चरणवन्दना की और नम्र होकर चरण चूंबे। वशिष्ठजी सर्वके अग्र होकर शोभित हुये और अनेक मुनि, ऋषि और ब्राह्मण आये। दशरथ से लेकर राजा सर्व मन्त्री और बन्दीजन और रामजी से आदि लेकर राजपुत्र, मण्डलेश्वर; जगत् के अधिष्ठाता और मालव आदि सर्व भृत्य और टहलुये आ यथायोग्य अपने २ आसन पर बैठे और सब की दृष्टि वशिष्ठजी की ओर हुई। बन्दीजन जो स्तुति करते थे और सर्व

लोक जो शब्द करते थे चुप होगये निदान सूर्य उदय हुआ और किरणों ने झुककर झरोखों से प्रवेश किया; कमल खिल आये; पुष्पों से स्थान पूर्ण होगये और उनकी महासुगन्ध फैली झरोखे में स्त्रियां अपनी अपनी चञ्चलता त्यागकर मौन हो बैठीं और चमर करनेवाली मौन होकर शीशपर चमर करने लगीं और सब वशिष्ठजी की महासुन्दर कोमल मधुरवाणी को स्मरणकर आपस में आश्चर्यवान् होने लगे। तब आकाश से राजऋषि, सिद्ध, विद्याधर और मुनि आये और वशिष्ठजी को प्रणाम किया पर गम्भीरता से मुख से न बोले और यथायोग्य आसनपर बैठ गये। पुष्पों की सुगन्धयुक्त वायु चली और अगर चन्दनादि की सभा में बड़ी सुगन्ध फैल गई। भँवरे शब्द करते फिरते थे और कमलों को देखकर प्रसन्न होते थे। रत्न मणि भूषण जो राजा और राजपुत्रों ने पहिने थे उनपर सूर्य की किरणें पड़ने से बड़ा प्रकाश होता था॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सभास्थानवर्णनन्नाम तृतीयस्सर्गः३॥

बाल्मीकिजी बोले कि, उस समय दशरथजी ने वशिष्ठजी से कहा, हे भगवन्! कल के श्रम से आप श्रमित हैं और आपका शरीर गरमी से अति कृश सा होगया है इस निमित्त आपसे कहा है। हे मुनीश्वर! आपने जो आनन्द वचन कहे हैं वे प्रकटरूप हैं और वचनरूपी अमृत की वर्षा से हम आनन्दवान् हुये हैं। हमारे हृदय का तम दूर होकर शीतल चित्त हुआ है—जैसे चन्द्रमा की किरणों से तम और तपन दोनों निवृत्त होते हैं तैसेही आपके वचनों से हम अज्ञानरूपी तम और तपन से रहित हुये हैं। आपके वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनन्द देते हैं और ज्यों २ ग्रहण करिये त्यों २ विशेषरस आनन्द आता है। ये वचन शोकरूपी तप्त को दूर करनेवाले और अमृत की वर्षारूप हैं। आत्मारूपी रत्न को दिखानेवाले परमार्थरूपी दीपक हैं; सन्तजनरूपी वृक्षकी बेलि हैं और दुरिच्छा और दुष्ट आचरण के नाश करनेवाले हैं। जैसे तम को दूर करने और शीतलता करने को शान्तरूप चन्द्रमा है तैसेही सन्तजनरूपी चन्द्रमा की किरणरूपी वचनों से अज्ञानरूपी तम का नाश होता है।

हे मुनीश्वर! तृष्णा और लोभादिक विकार आपकी वाणी से ऐसे नष्ट होगये हैं जैसे शरत्काल का पवन मेघ को नष्ट करता है और आपके वचनों से हम निष्पाप हुये हैं। आत्मदर्शन के निमित्त हम प्रवर्त्तते हैं। आपने हमको परम अञ्जन दिया है उससे हम सचक्षु हुये हैं और संसाररूपी कुहिरा हमारा निवृत्त हुआ है। जैसे कल्पवृक्ष की लता और अमृत का स्नान आनन्द देता है तैसेही उदारबुद्धि की वाणी आनन्ददायक होती है। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, ऐसे वशिष्ठजी से कहकर रामजी की ओर मुख करके दशरथजी ने कहा; हे राघव! जो काल सन्तों की संगति में व्यतीत होता है वही सफल होता है और जो दिन सत्संग विना व्यतीत होता है वह वृथा जाता है। हे कमलनयन, रामजी! तुम फिर वशिष्ठजी से कुछ पूछो तो वे फिर उपदेश करें—वे हमारा कल्याण चाहते हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार राजादशरथ ने कहा तब रामजीकी ओर मुख करके उदार आत्मा वशिष्ठ भगवान् बोले कि, हे राघव! अपने कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा! मैंने जो वचन कहे थे वे तुमको स्मरण आते हैं? उन वाक्यों का अर्थ स्मरण में है और पूर्व और अपर का कुछ विचार किया है? हे महाबोधवन्, महाबाहो! और अज्ञानरूपी शत्रु के नाशकर्तः! सात्त्विक, राजस और तामस गुणों के भेद की उत्पत्ति जो विचित्ररूप है वह मैंने कही है। तुम्हारे चित्त में है सर्व भी वही है, असर्व भी वही है सत्य भी वही है और असत्य भी वही है और सदा शान्त अद्वैतरूप है। यह परमात्मादेव का विस्मृतरूप स्मरण है। जैसे विश्व ईश्वर से उदय हुआ है वह स्मरण है; यह जो देववाणी है इसका पात्र शुद्धचित्त है; अशुद्ध नहीं। हे सत्यबुद्धे, रामजी! अविद्या जो विस्मृतरूप भासती है उसका रूप स्मरण है? अर्थ से शून्य, क्षणभंगुररूप, सम्यक् दर्शन से रहित, निर्जीव है। यह जो कारण के विचारद्वारा मैंने प्रतिपादन किया है वह भलीभांति स्मरण है? और वाक्यों का समूह जो मैंने तुमसे कहा है उनका रात्रि में विचार के हृदय में धारा है? जब पुरुष बारम्बार बिचारते हैं और तात्पर्य हृदय में

धारते हैं तब बड़ा फल पाते हैं और जो अवज्ञा से अर्थ का विस्मरण करते हैं तो फल नहीं पाते। हे रामजी! तुम तो इन वचनों के पात्र हो जैसे उत्तम बांस में मोती फलीभूत होते हैं और में नहीं उपजते; तैसेही जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष हैं उनके हृदय में ये वचन फलीभूत होते हैं। बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब ब्रह्माजी के पुत्र वशिष्ठ जी ने कहा तब महाओजवान् गम्भीर रामजी अवकाश पाके बोले; हे भगवन्! सब धर्मों के वेत्ता आपने जो परमउदार वचन कहे हैं उनसे मैं बोधवान् हुआ हूं और जैसे आप कहते हैं तैसेही सत्य है, अन्यथा नहीं। हे भगवन्! मैंने समस्त रात्रि आपके वाक्यों के विचार में व्यतीत की है। आपतो हृदय के अज्ञानरूपी तम को नाशकर्ता पृथ्वी पर सूर्यरूप विचरते हैं। हे भगवन्! आपने जो व्यतीत दिन में आनन्ददायक, प्रकाशरूपी, रमणीय और पवित्र वचन कहे थे वे मैंने सब अपने हृदय में भलीप्रकार धरे हैं। जैसे समुद्र से नानाप्रकार के रत्न निकलते हैं तैसेही आपके वचन कल्याणकर्ता और बोधवान् हैं अर्थात् सबके सहायक और हृदयगम्य आनन्द का कारण हैं। वह कौन है जो आपकी आज्ञा शिर पर न धरे? जो मुमुक्षु जीव हैं वे सब आपकी आज्ञा शीश पर धरते हैं और अपने कल्याण के निमित्त जानते हैं। हे मुनीश्वर! आपके वचनों से मेरे संशय निवृत्त हुये हैं—जैसे शरत्काल में मेघ और कुहिरा नष्ट हो जाता है और निर्मल आकाश भासता है। यह संसार आपातरमणीय हो भासता है; जबतक पदार्थों का अभाव नहीं होता तबतक सुखदायक भासते हैं और जब विषय पदार्थ इन्द्रियों से दूर होते हैं तब दुःखदायक होजाते हैं आपके वचन ऐसे हैं कि, जिनके आदि में भी यत्न कुछ नहीं, सुगम मधुर आरम्भ है; मध्य में सौभाग्य मधुर है अर्थात् कल्याण करता है और पीछे से अनुत्तमपद को प्राप्त करते हैं जिसके समान और कोई पद नहीं। यह आपके पुण्यरूप वचनों का फलहै और आपके वचनरूपी पुष्प सदा कमल समान खिले हुये निर्मल आनन्द के देनेवाले हैं और उदित फूलहैं, उनका फल हमको प्राप्त होगा। सब शास्त्रों में जो पुण्यरूपी

जत है उसका यह समुद्र है, अब मैं निष्पाप हुआ हूं मुझको उपदेश करो॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे राघववचनंनाम चतुर्थस्सर्गः॥ ४॥

वशिष्ठजी बोले, हे सुन्दरमूर्ते, रामजी! यह उत्तम सिद्धान्त जो उपशमप्रकरण है उसे सुनो, तुम्हारे कल्याण के निमित्त मैं कहता हूं। यह संसार महादीर्घरूप है और जैसे दृढ़थम्भ के आश्रय गृह होता है तैसेही राजसी जीवों का आश्रय संसार मायारूप है। तुम सारिखे जो सात्त्विक में स्थित हैं वे शूरमे हैं; जो वैराग, विवेक आदिक गुणों से सम्पन्न हैं वे लीला करके यत्न विनाही संसार माया को त्याग देते हैं और जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुये हैं और जो राजस और सात्त्विक हैं वे भी उत्तम पुरुष हैं। वे पुरुष जगत् के पूर्व अपूर्व को विचारते हैं। जो सन्तजन और सत्शास्त्रों का संग करता है उसके आचरणपूर्वक वे बिचरते हैं और उससे ईश्वर परमात्मा के देखने की उन्हें बुद्धि उपजती है और दीपकवत् ज्ञानप्रकाश उपजता है। हे रामजी! जबतक मनुष्य अपने विचार से अपना स्वरूप नहीं पहिंचानता तबतक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जो उत्तम कुल, निष्पाप, सात्त्विक-राजसी जीव हैं उन्हीं को विचार उपजता है और उस विचार से वे अपने आपसे आपको पाते हैं। वे दीर्घदर्शी संसार के जो नाना प्रकार के आरम्भ हैं उनको बिचारते हैं और विचार द्वारा आत्मपद पाते हैं और परमानन्द सुख में प्राप्त होते हैं। इससे तुम इसी संसार को बिचारो कि, सत्य क्या है और असत्य क्या है? ऐसे विचार से असत्य का त्याग करो और सत्य का आश्रय करो। जो पदार्थ आदि में न हो और अन्त में भी न रहे उसे मध्य में भी असत्य जानिये। जो आदि, अन्त एकरस है उसको सत्य जानिये और जो आदि अन्त में नाशरूप है उसमें जिसको प्रीति है और उसके राग से जो रञ्जित है वह मूढ़ पशु है; उसको विवेक का रङ्ग नहीं लगता। मनहीं उपजता है और मनहीं बढ़ता है; सम्यक् ज्ञान के उदय हुये मन निर्वाण हो जाता है। मनरूपी संसार है और आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है। रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो कुछ आप कहते हैं वह मैंने जाना कि, यह संसार सर्वभावना

में मनरूप है और जरा मरण आदिक विकार का पात्र भी मनहीं है। उसके तरने का उपाय निश्चय करके कहो। हम सब रघुवंशियों के कुल के अज्ञानरूपी तमको हृदयसे दूर करनेको आप ज्ञानके सूर्य हैं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! प्रथम तो जीव को विचारपूर्वक वैराग कहा है कि, सन्तजनों का संग और सत्शास्त्रों से मन को निर्मल करे। जब मन को निर्मल करेगा तब स्वजनता से सम्पन्न होगा और वैराग उपजेगा। जब वैराग प्राप्त होगा तब ज्ञानवान् गुरु के निकट जावेगा और जब वह उपदेश करेंगे तब ध्यान, अर्चनादि के क्रम से परमपद को प्राप्त होगा। जब निर्मल विचार उपजता है तब अपने आपको आपसे देखताहै-जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने बिम्ब को आपसे देखता है। जबतक विचार रूपी तट का आश्रय नहीं लिया तबतक संसार में तृणवत् भ्रमता है और जब विचार करके ज्यों की त्यों वस्तु जानता है तब सब दुःख मन से नष्ट होजाते हैं। जैसे सोमजल के नीचे रेत जा रहती है तैसेही आधी पीड़ा उसकी रहजाती है फिर उत्पन्न नहीं होता। जैसे जबतक सुवर्ण और राख मिली हुईहै तबतक सोनार संशयमें रहता है और जब सुवर्ण और राख भिन्न होजाती है तब संशय रहित सुवर्णको प्रत्यक्ष देखताहै और तभी निःसंशय होता है; तैसेही अज्ञान से जीवों को मोह उपत्न होता है और देह इन्द्रियोंसे मिलाहुआ संशयमें रहताहै। जब विचारसे भिन्न२ जाने तब मोह नष्ट हो और तभी संशयसे रहित शुद्ध अविनाशी रूप आत्माको देखताहै। विचार कियेसे मोह का अवसर नहीं रहता- जैसे अज्ञान पुरुष चिन्तामणि की क़ीमत नहीं जानसक्ता, जब उसको ज्ञान प्राप्त होता है तब ज्योंका त्यों जानताहै और मोह संशय निवृत्त होजाताहै; तैसेही जीव जबतक आत्मतत्त्व को नहीं जानता तबतक दुःखका भोगी रहताहै और जब ज्योंका त्यों जानता है तब शुद्ध शान्तिको प्राप्त होताहै। हेरामजी ! आत्मा देहसे मिश्रित भासताहै पर वास्तवमें कुछ मिश्रित नहीं; इससे अपने स्वरूप में शीघ्रही स्थित होजावो। निर्मल स्वरूप जो आत्मा है उसको रञ्चकमात्र भी देह से सम्बन्ध नहीं- जैसे सुवर्ण कीचमें मिश्रित भासताहै तौभी सुवर्णको कीचकालेपनहीं-निर्लेप

रहताहै तैसेही जीवको देहसे कुछ सम्बन्ध नहीं निर्लेपही रहता है—आत्मा भिन्न है; देह भिन्नहै। जैसे जल और कमल भिन्न रहते हैं। मैं ऊंची भुजा करके पुकारता हूं, मेरा कहा कोई नहीं मानता कि, संकल्पसे रहित होना परमकल्याण है। यही भावना हृदय में क्यों नहीं करते? जबतक जड़ धर्म है अर्थात् विषयभोगों में आस्था करता है और आत्मतत्त्व से शून्य रहता है तबतक मूढ़ रहता है; जबतक स्वरूप का प्रमाद है तबतक हृदय से संसार का तम और किसी प्रकार दूर नहीं होता। चन्द्रमा उदय हो और अग्निका समूह हो वा द्वादश सूर्य इकट्ठे उदय हों तौभी हृदय-तम रञ्चकमात्र भी दूर नहीं होता और जब स्वरूप को जानकर आत्मा में स्थित हो तब हृदय का तम नष्ट होजावेगा। जैसे सूर्य के उदय हुये जगत् का अन्धकार नष्ट होता है। जबतक आत्मपद का बोध नहीं होता और भोगों में मन तद्रूप है तबतक संसार समुद्र में बहे जावोगे और दुःख का अन्त न आवेगा। जैसे आकाश में धूलि भासती है परन्तु आकाश को धूलि का सम्बन्ध कुछ नहीं और जैसे जलमें कमल भासताहै परन्तु जलसे स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहताहै; तैसेही आत्मा देहसे मिश्रित भासता है परन्तु देहसे आत्मा का कुछ स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहताहै, जैसे सुवर्ण कीच और मलसे अलेप रहताहै। देह जड़है; आत्मा उससे भिन्न है और सुख दुःख का अभिमान आत्मा में भासता है वह भ्रममात्र असत्यरूप है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा और नीलता असत्यरूपहै तैसेही आत्मा में सुख दुःखादि असत्यरूप हैं। सुख दुःख देह को होताहै; सबसे अतीत आत्मा में सुख दुःखका अभावहै। यह अज्ञान करके कल्पित है, देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता; इससे सुख दुःख भी आत्मा में कोई नहीं, सर्वात्मामय शान्तरूप हैं। यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है वह मायामय है; जैसे जल में तरङ्ग और आकाश में तरवरे भासते हैं तैसेही आत्मा में जो जगत् भासता है सो आत्माही है; न एक है, न दो हैं; सब आभासमात्र हैं और मिथ्यादृष्टि आकार भासता है। जैसे मणि का प्रकाश मणिसे भिन्न नहीं और

जैसे अपनी छाया दृष्टि आती है तैसेही आत्मा का प्रकाशरूप जो जगत् भासता है वह सब ब्रह्मरूप है। मैं और हूं, यह जगत् और है; इस भ्रम को त्याग करो; विस्तृतरूप ब्रह्मघनसत्ता में और कोई कल्पना नहीं। जैसे जल में तरङ्ग कुछ भिन्न वस्तु नहीं जलरूपही है; तैसेही सर्वरूप आत्मा एकरूप है, उसमें द्वितीय कल्पना कोई नहीं। जैसे अग्नि में बरफ़ के कणके नहीं होते; तैसेही ब्रह्म में दूसरी वस्तु कुछ नहीं। इससे अपने स्वरूप की आपही भावना करो कि, 'मैं चिन्मात्ररूप हूं' "जगत्जाल सब मेराही स्वरूप है" और मैंहीं विस्तृतरूप हूं। जो कुछ है वह देवही है; न शोक है, न मोह है, न जन्म है, न देह है। ऐसे जानके विगतज्वर होजावो; तुम्हारी स्थिरबुद्धि है और तुम शान्तरूप, श्रेष्ठ, मणिवत् निर्मल हो। हे राघव! तुम निर्द्वन्द्व होकर नित्यस्वरूप में निर्योगक्षेम, आत्मवान्, विशोक होकर स्थित होजावो और सत्यसंकल्प, धैर्यवान्, यथाप्राप्ति में बर्तो। तुम वीतराग, निर्यत्न, निर्मल, वीतकल्मष हो; न देते हो, न लेते हो; ग्रहण त्याग से रहित शान्तरूप हो। विश्वसे अतीत जो पद है उसमें प्राप्त होकर जो पाने योग्य पद है उसको पाकर परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप, सन्ताप से रहित बिचरो। हे रामजी! संकल्पजाल से मुक्त और मायाजाल से रहित अपने आपसे तृप्त और विगतज्वर होजावो। आत्मवेत्ता का शरीर अनन्त है और तुमभी आदि अन्त से रहित पर्वत के शिखरवत् विगतज्वर हो। हे रामजी! तुम अपने आपसे उदार होकर अपने आप आनन्द से आनन्दी होवो। जैसे समुद्र और पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने आनन्द से आनन्दवान् है तैसेही तुम भी आनन्दवान्हो। यह जो प्रपञ्चरचना भासती है सो असत्य है; जो ज्ञानवान् हैं वे असत्य जानकर इसकी ओर नहीं धावते। तुम तो ज्ञानवान् हो असत्य कल्पना त्यागकरके दुःखते रहितहो और नित्य, उदित, शान्तरूप, शुभगुणसंयुक्त उपदेशद्वारा चक्रवर्ती होकर पृथ्वी का राज्य करो, प्रजा की पालना करो और समदृष्टि से बिचरो। बाहर से यथाशास्त्र करो शुभ चेष्टा और राज्य की मर्यादा रक्खो पर हृदयसे निर्लेप रहना। तुमको त्याग और ग्रहण से

कुछ प्रयोजन नहीं और ग्रहण त्याग से समबुद्धि समभाव से राज्य करो ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रथमउपदेशोनाम पञ्चमस्सर्गः॥५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसकी हृदय से वासना नष्ट हुई है वह पुरुष जो कार्यों में बर्तता है तो भी मुक्त है। हमारे मत में बन्धन का कारण वासना है; जिसकी वासना क्षय हुई है वह मुक्तस्वरूप है और जिसकी वासना पदार्थों में सत्य है वह बन्ध में है। कोई पुरुष अपने पुरुषार्थों का आश्रयकर कर्तव्य भी करते हैं और प्रीति करके प्रवर्तते हैं तो वे अपनी वासना से स्वर्ग में जाते हैं और फिर स्वर्ग को त्यागकर दुःख और नरक भोगते हैं। वे अपनी वासना से बांधे हुये पशु आदिक स्थावर योनि को प्राप्त होते हैं और कोई आत्मवेत्ता पुण्यवान् पुरुष मनकी दशा को विचारते हैं और तृष्णारूपी बन्धन को काटकर निर्मल आत्मपद को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष पूर्वजन्म को भोगकर इस जन्म में मुक्त होते हैं वे राजस-सात्त्विकी होते हैं। जिनका यह जन्म अन्त का होता है वे क्रम करके परिपूर्ण पद को प्राप्त होते हैं—जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा क्रम से पूर्णमासी का होता है और सब कलाओं से पूर्ण होता है। जैसे वर्षाकाल में कण्टक वृक्ष की मञ्जरी बढ़ जाती है तैसेही सौभाग्य और लक्ष्मी उनकी बढ़ती जाती है। हे रामजी ! जिनका यह जन्म अन्त का होता है उनमें निर्मल गुण जो वेद ने कहे हैं अर्थात् मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता और आर्यता प्रवेश करते हैं। सब जीवों पर दया करनी मैत्री है हृदय में सदा समताभाव रहना और कोई क्षोभ न उठना मुक्तता कहाता है; सदा प्रसन्न रहना सौम्यता है; यथाशास्त्र आचार करना आर्यता है और ज्ञान का नाम ज्ञातव्यता है। जैसे राजा के अन्तःपुर में श्रेष्ठ अङ्गना आ प्रवेश करती हैं तैसेही जिसको अन्त का यही जन्म है सो राजस-सात्त्विकी है और उसके हृदय में मैत्री आदिक सर्वगुण आ प्रवेश करते हैं। संसारी पुरुष सब कार्यों को करता है परन्तु उसके हृदय में लाभ अलाभ का राग द्वेष नहीं होता और सर्वदाकाल समभाव रहता है। वह न तोषवान् होता है और न शोकवान् होताहै। जैसे सूर्य के उदय हुये तम नष्ट होजाता है

तैसेही आत्मभाव से राग द्वेष नष्ट हो जाते हैं और सर्वगुण सिद्धता को प्राप्त होते हैं। जैसे शरत्काल का आकाश शुद्ध होता है तैसेही वह कोमल और सुन्दर होता है और उसका मधुर आचार होता है; सर्वजीव उसके आचार की वाञ्छा करते हैं और उसको देखके मोहित होजाते हैं। जैसे मेघ की ध्वनि से बगुले आ प्रवेश करते हैं तैसेही उस पुरुष में सब गुण प्रवेश करते हैं और गुणों से पूर्ण होकर वह गुरु की शरण जाता है। तब वह उसे विवेकका उपदेश करताहै और उस विवेकसे वह परमपदमें स्थित होताहै। हे रामजी! जो वैराग्य और विचारसे सम्पन्न चित्तहै वह आत्मदेव को देखताहै, उसको दुःख स्पर्श नहीं करता; वह यथार्थ एक आत्मरूप को देखता है। तुम विचार का आश्रयकरके मनको जगावो; जिसमें मन नहीं मथन है अर्थात् सदा प्रपञ्च दृश्य का मननभाव करता है जो अन्त का जन्मवान् पुरुष है वह मनरूपी मृग को जगाता है। प्रथम तो गुणज्ञान से जगाता है; फिर बड़े गुणों से जगाता है और फिर ज्ञानके सेवन का यत्न करता है उससे जगाता है। वह निर्मल बुद्धि से चित्तरूपी रत्नोंको विचार करताहै; उस विचार से जगत् को आत्मरूप देखताहै और आत्मा के प्रकाश विचार से अविद्या मल नष्ट होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णनं नाम षष्ठस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तुमसे मैंने क्रम कहा सो वह सब जीवों को समान है इससे जो विशेष है वह तुम सुनो। इस जगत् के आरम्भ में जो देहधारी जीव हैं उन जीवों का प्रकाश से मोक्ष होता है। एक उत्तम क्रम है और एक समान क्रम है। जो गुरु के निकट जावे और वह उपदेश करे तो उस उपदेश के धारण से शनैश्शनैः एक जन्म से अथवा अनेक जन्मों से सिद्धता प्राप्त होती है और दूसरा क्रम यही है जो अपने आपसे वह उत्पन्न होता है अर्थात् समझ लेता है। जैसे वृक्ष से फल गिरे और किसी को आ प्राप्त हो तैसेही ज्ञान प्राप्त होता है इसी पर पूर्व का वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं सो तुम सुनो। वह महापुरुषों का वृत्तान्त है शुभ अशुभ गुणों के समूह जिनके नष्ट हुये हैं औ

अकस्मात् फल जिनको प्राप्त हुआ है उनका निर्मल क्रम सुनो ॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठ उपशमप्रकरणे क्रमसूचनानाम सप्तमस्सर्गः ॥ ७ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जिसकी सब सम्पदा उदय हुई थीं और सब आपदा नष्ट हुई थीं; ऐसा एक उदार बुद्धि विदेहनगर का राजा जनकहुआ है। वह बड़ा धैर्यवान् था, अर्थी का अर्थ कल्पवृक्ष की नाईं पूर्ण करे; मित्ररूपी कमलोंको सूर्यवत् प्रफुल्लितकरे; बान्धवरूपी पुष्पोंको वसन्त ऋतुवत् और स्त्रियों को कामदेववत् था। ब्रह्मरूपी चन्द्रमुखी कमल का वह शीतल चन्द्रमा था, दुष्टरूपी तमका नाशकर्ता सूर्य था और स्वजनरूपी रत्नों का समुद्र पृथ्वी में मानो विष्णुमूर्य स्थितहुआ था ऐसा राजा जनक एकसमय लीला करके अपने बाग में जिस में मीठे फल लगे थे और नानाप्रकार के सुन्दर बेलों पर कोकिला शब्द करती थीं इसभाँति गया जैसे नन्दनवन में इन्द्र प्रवेश करे। उस सुन्दरवन में पुष्पों से सुगन्ध फैलरही है। राजा अपने संग के अनुचरों को दूर त्यागकर आप अकेला कुञ्जों में बिचरने लगा। वहाँ शाल्मलीनामक एक वृक्ष था उसके नीचे राजा ने शब्द सुना कि, अदृष्टसिद्ध जो विरक्त चित्त और नित्य पर्वतों में विचरनेवाले हैं आत्मगीता का उच्चार करते हैं जिससे आत्मबोध प्राप्त होता है। उस गीता को राजा ने सुना कि, पहला सिद्ध बोला; यह द्रष्टा जो पुरुष है और दृश्य जो जगत् है उस द्रष्टा और दृश्य के मिलाप में जो बुद्धि में निश्चित आनन्द होता है और इष्ट के संयोग और अनिष्ट के वियोग का जो आनन्द चित्त में दृढ़ होता है वह आनन्द आत्मतत्त्व से उदय होता है। स्पन्दरूप जिस आत्मा आनन्द से लव उठताहै उसकी हम उपासना करते हैं। दूसरा सिद्ध बोला कि, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य को वासना सहित त्याग करो। जो दर्शन से प्रथम प्रकाशरूप है और जिसके प्रकाशते यह तीनों प्रकाशते हैं उस आत्मा की हम उपासना करते हैं। तीसरा सिद्ध बोला जो निराभास, निर्मल और आभासरूप है; जिसमें मनन के भाव का अभाव है; द्वितीय कल्पना का अभाव है और अद्वैतरूप है उसकी हम उपासना करते हैं। चौथा सिद्ध बोला कि, जो

दोनों के मध्य में है और अस्ति नास्ति दोनों के पक्षों से रहित प्रकाश-रूप सत्ता है और सब सूर्य आदिक को भी प्रकाशता है उस आत्मा की हम उपासना करते हैं। पञ्चमसिद्ध बोला कि, जो ईश्वर सकार और हकार है अर्थात् सकार जिसके आदिमें है और हकार जिसके अन्त में है सो अन्त से रहित, आनन्द, अनन्त शिव परमात्मा सर्वजीवों के हृदय में स्थित है और निरन्तर जो अहंरूप होकर उच्चार होता है उस आत्मा की हम उपासना करते हैं। छठासिद्ध बोला कि, हृदय में स्थित जो ईश्वर है उसको त्यागकर जो और देव के पाने की यत्न करते हैं वे पुरुष हाथ में कौस्तुभमणि को त्यागकर और रत्नों की वाञ्छा करते हैं। सातवां सिद्ध बोला कि जो सब आशा त्यागता है उसको फल प्राप्त होता है और आशारूपी विषकी बेल वह मूल संयुक्त नष्ट होजाती है अर्थात् जन्म मरण आदिक दुःख नष्ट होजाते हैं और फिर नहीं उपजते। जो पदार्थों को अत्यन्त विरसरूप जानता है और फिर उनमें आशा बाँधताहै वह दुर्बुद्धि गर्दभ है—मनुष्य नहीं। जहां जहां विषयों की ओर दृष्टि उठती है उनको विवेकसे नष्टकरो—जैसे इन्द्रने वज्रसे पर्वतों को नष्ट किया था। जब इसप्रकार शुद्ध आचरण करोगे तब समभाव को प्राप्त होगे और उससे मन उपशम आत्मपद को प्राप्त होकर अक्षय अविनाशीपद पावेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धगीतावर्णनं नाम अष्टमस्सर्गः॥८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महीपति इस प्रकार सिद्धों की गीता सुनकर जैसे संग्राम में कायर विषाद को प्राप्त होता है तैसेही विषाद को प्राप्त हुआ और सेना संयुक्त अपने गृह में आया। नौकर और सब लोग किनारे खड़े रहे और राजा उनको छोड़कर चौखण्डे पर गया और झरोखे में संसार की चञ्चल गति को इधर उधर देखकर विलाप करने लगा कि, बड़ा कष्ट है कि; मैं भी संसार में लोगों की चञ्चल दशा से आस्था बांध रहा हूं। ये तो सबजीव जड़रूप हैं, चैतन्य कोई नहीं; जैसे और जीव पाषाणरूप हैं तैसेही मैं भी इनमें पाषाण होरहा हूं। काल अन्त से रहित अनन्त है और उसके कुछ अंश में मेरा जीना है—इ

जीने में मैं आस्था कररहा हूं। मुझको धिक्कार है कि, मैं अधम चेतन हूं। ये मेरे मन्त्री और राज्य और जीना सब क्षणभंगुर हैं। ये जो सुख हैं वे दुःखरूप हैं; इनसे रहित मैं किस प्रकार स्थित होऊं–जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं जीवन आदि अन्त में तुच्छरूप हैं और मध्य में पैलवरूप हैं उनमें मैंने क्या मिथ्या आस्था बांधी है–जैसे बालक चित्र के चन्द्रमा को देख चन्द्रमा मानकर आस्था बांधे। यह प्रपञ्चरचना इन्द्रजाल की बाजीवत् है; बड़ा कष्ट है इसमें मैं क्यों मोहित हुआ हूं? जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार और अकृत्रिम है वह इस संसार में रञ्चक भी नहीं; मेरी बुद्धि क्यों नष्ट हुई है। जो पदार्थ दूर हो और उसके पाने का मेरे मन में यत्न हो तो वह निकटही है यह निर्णय करो अथवा अर्थाकार जो संसार के पदार्थ हैं उनकी आस्था मैं त्यागता हूं। ये लोग सब आगमापायी हैं अर्थात् उदय होते और मिटजाते हैं और जल के तरङ्गों के सदृश सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं। जितने सुख दृष्टि आते हैं वे दुःख से मिश्रित हैं उनसे मैंने क्या आस्था बांधी है। सुख कदाचित् दिन, पक्ष, मास, वर्षादिक में आते हैं और दुःख बारम्बार आते हैं; मैं किस सुख से जीने की आस्था बाँधूं? जो बड़े बड़े हुये हैं वे सब नष्ट होगये हैं और स्थिर कोई न रहेगा। मैं बारम्बार विचार कर देखता हूं इससे मैंने जाना है कि, इस जगत् में सत्य पदार्थ कोई नहीं–सब नाशरूप हैं। ऐसा कौन पदार्थ है कि, जिसमें आस्था बांधे? जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् बिराजते हैं सो कुछ दिन पीछे नीचे गिर पड़ेंगे। हे चित्त! बड़ा खेद है तूने किस बड़ाई में आस्था बांधी है। आयुर्बल से बांधा हुआ मैं किस विना कलङ्कित हुआ हूं? ऊंचेपद में स्थित होके भी मैं अध को गिरा हूं। बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्मा हूं और नाश को प्राप्त होता हूं। किस कारण अकस्मात् मुझको मोह आया है और मेरी बुद्धि को इसने उपहत किया है–जैसे सूर्य के आगे मेघ आता है और सूर्य नहीं भासता तैसेही मुझे आत्मा नहीं भासता। भोगों से मेरा क्या है और बाँधवों से मेरा क्या है? इनमें मैं क्यों मोहित हुआ हूं? देह अभिमान से जीव आपही

बन्धायमान होता है। देह में अहंकार ही जरा मरणादिक विकारों का कारण होता है; इससे इनसे मेरा क्या प्रयोजन है। इन अर्थों में क्या बड़ाई है और राज्य में मैं क्यों धैर्य धरके बैठाहूं। ये सब पदार्थ क्षोभ के कारण हैं और ये ज्यों के त्यों रहते हैं। इनमें न मुझको ममता है न संग है—ये सर्व असत्यरूप हैं। संसारके सुख विषरूप हैं और इनमें आस्था करनी मिथ्या है; जो बड़े २ ऐश्वर्यवान् और बड़े पराक्रमीगुणवान् हुयेहैं वे सब परिवारसंयुक्त मरगये हैं तो वर्तमान में क्या धैर्य करना है। कहां वह धन और राज और कहां उस ब्रह्माका जगत्? कई पुरुषों की पंक्ति बीतगई है हमको उनसे क्या विश्वासहै। देवताओं के नायक अनेक इन्द्र नष्ट होगये हैं—जैसे जल में बुद्बुदे उपजकर नष्ट होजाते हैं—तो मैं क्या इस संसार में आस्था बांधकर जीऊंगा। सन्तजन मुझको हँसेंगे; कई ब्रह्मा होगये हैं, कई पर्वत होगये हैं और कई धूल की कणिकावत् राजा होगये हैं तो मुझको इस जीने में क्या धैर्यहै ? संसाररूपी रात्रि में देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्न है; उस भ्रमरूप में जो मैंने आस्था बांधी है इससे मुझको धिकार है। यह, वह और मैं इत्यादिक भ्रम आत्मा में मिथ्या कल्पना उठी है और अज्ञानियों की नाईं मैं स्थित हुआ हूं। अहंकाररूपी पिशाच करके क्षण क्षण में आयुर्बल व्यतीत होती है; देखते हुये भी नहीं दीखती। कालकी सूक्ष्मगति है जो सबको चरण के नीचे धरे है; सदाशिव और विष्णु को जिसने खेलने का गेंद किया है और वह सबको भोजन करता है। इससे मुझको जीने में क्या आस्था बांधनी है ? जितने पदार्थ हैं वे निरन्तर नाश होते हैं; कोई दिनमें, कोई पक्ष में और कोई वर्ष में नाश होजाताहै। जो अविनाशी वस्तु है वह अबतक नहीं देखी वर्षों व्यतीत होगये हैं जीवों की चित्तरूपी नदी में भोगों की तृष्णारूपी तरङ्ग उछलती है; शान्त कदाचित् नहीं होती—जैसे वायु से नदी में तरङ्ग उछलते हैं और सोमतासे रहित होजाते हैं। जिनको चित्तमें भोगोंकी अभिलाषाहै उनको अतुच्छपद दृष्टि नहीं आता और वे कष्टसे कष्ट को प्राप्त होते हैं और उन्हें दुःखसे दुःखान्तर प्राप्त होताहै। अबतक

मैं विरक्त नहीं हुआ इससे मुझको धिक्कार है। जिसका अन्तःकरण नीच है उसने जिस २ वस्तु में कल्याणरूप जान के आस्था बांधी है वह २ नष्ट होती दीखती है। यह शरीर अस्थि-मांस से बना है और आदि अन्त संयुक्त इसका आकार है; मध्य में कुछ रमणीय भासता है परन्तु सब अपवित्र पदार्थों से रचा विना स्वरूप है; स्पर्श करने के भी योग्य नहीं, उससे मुझको क्या प्रयोजन है। जिस २ पदार्थ से लोग आस्था बांधते हैं उस २ में मैं दुःखही देखता हूं और ये जीव ऐसे जड़ मूढ़ हैं कि, सदा इसमें लगे रहतेहैं कि, कल यह पदार्थ मुझको प्राप्तहोगा, अगले दिन यह मिलेगा। दिन दिन पाप करते और खेद पातेहैं तौभी त्याग नहीं करते। बालक अग्निमें पूर्ण मूढ़तासे बिचरतेहैं; यौवन अवस्था कामादि विकार से मिश्रित है और शेष जो वृद्धावस्था है उस में चित्त से दुःखी होताहै तो यह जड़ मूर्ख परमार्थ कार्यको किसकाल में साधेगा। ये सब जगत् के पदार्थ आगमापायी विरस हैं और विषमदशासे दूषित हैं अर्थात् एक भावमें नहीं रहते। सर्व जगत् असाररूप है और सत्यबुद्धि से रहित असत्यरूप है; सार पदार्थ इसमें कोई नहीं। जो राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञ करते हैं वे महाकल्प के किसी अंशकाल में स्वर्ग पाते हैं अधिक तो नहीं भोगते? जो अश्वमेध यज्ञ करता है वह इन्द्र होताहै पर जो ब्रह्माका एकदिन होताहै उसमें चतुर्दश इन्द्र राज्य भोगकर नष्ट होजाते हैं। जब सहस्र चौकड़ी युगों की व्यतीत होती हैं तब ब्रह्मा का एकदिन होताहै ऐसे तीसदिनों का एकमास और द्वादश मास का एक वर्ष होताहै। सौवर्ष ब्रह्मा की आयुर्बलहै उस आयुर्बल को भोगकर ब्रह्माजी भी अन्तर्धान होजाते हैं उसका नाम महाप्रलय है। उस महाप्रलय के अन्त में इसने स्वर्ग भोगकिया तो असार सुख की आस्था क्या योग्य है? ऐसा सुख स्वर्ग में कोई नहीं; न पृथ्वी में है और न पाताल में है जो आपदा और दुःख से मिश्रित न हो। सर्वलोक आपदा संयुक्त हैं और सब दुःखों का मूल चित्त है जो शरीररूपी बांबी में सर्पवत् रहता है और आधिव्याधि बड़े दुःखरूपी विष देता है। यह जब किसी प्रकार निवृत्त हो तब

सुखीहो । इससे सब जीव नीचप्रकृति होरहे हैं; कोई बिरला साधु है जिसके हृदय में चित्तरूपी सर्वभोगों की तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता। ये जगत् के पदार्थ सत्यता के मस्तक पर असत्यता हैं; जो रमणीय भासता है उसके मस्तक पर अरमणीय स्थित हैं और जो सुखरूप है उसके मस्तक पर दुःख स्थितहैं जिसका मैं आश्रय करूं वह दुःख से मिश्रित है; दुःख तो दुःखसे मिश्रित क्याकहिये वहतो आपही दुःखहै और जो सुख सम्पदा है सो आपदा दुःख से मिश्रित है; फिर मैं किसका आश्रय करूं? ये जीव जन्मते और मरते हैं; इनमें कोई बिरलादुःखसे रहित है। ये सुन्दर स्त्रियां जिनके नील कमलवत् नेत्र हैं और परम हास्य विलास आदिक भूषणों से संयुक्त हैं, इनको देखके मुझको हँसी आती है कि; ये तो अस्थि मांस की पुतली हैं और क्षणमात्र इनकी स्थिति है। जिन पुरुषों केनिमेष खोलने से जगत् होता है और उन्मेष मूंदने से जगत् का अभाव होजाता है वेभी नष्टहुये हैं तो हमारी क्या गिनती है? जो पदार्थ बड़े रमणीय भासते हैं वे अस्थित रूप हैं उन पदार्थों की चिन्ता और क्या इच्छा करनी है? नाना प्रकार की सम्पदा प्राप्त होती हैं पर इनमें जब कोई चित्त को आ लगता है तब सब सम्पदा आपदारूप होजाती हैं और जो बड़ी आपदा आ प्राप्त होती है और चित्त में क्षोभ नहीं होता शान्तरूप है तब वेही आपदा सम्पदारूप हैं? इससे यही सिद्ध हुआ कि, सब मनके फुरनेमात्र है। क्षणभंगुररूप मन की वृत्ति अकस्मात् जगत् में इनकी स्थिति भई है और अज्ञान से अहं इसकी कल्पना है उसमें त्याग और ग्रहण की भावना मिथ्या है। क्षीणरूप संसार में सुख आदि अन्तसंयुक्त है। जो सुख जानकर जीव इसकी ओर धावता है वह सुख फिर नष्ट होजाता है—जैसे पतङ्ग दीपकशिखा को सुखरूप जानकर उसकी ओर धावता है तो दग्ध होजाता है तैसेही संसार के सुख ग्रहण करनेवाले तृष्णा से दग्ध हुये हैं। जैसे नरक का अग्नि दग्ध करता है पर वह भी श्रेष्ठ है परन्तु क्षणभंगुर जो संसार के सुख हैं वे महानीच हैं—नष्ट हुये भी दुःख देजाते हैं। और दुःखोंकी सीमा हैं पर जो इससंसारसमुद्रमें गिरतेहैं

वे सुख नहीं पाते। संसार में दुःख स्वाभाविक हैं और दुःख से मिश्रित हैं। मैं भी अज्ञानी की नाईं काष्ठलोष्ठवत् स्थित होरहा हूं और बड़ा खेद है। कि अज्ञानीवत् शमादिक सुख को त्याग करके क्षणभंगुर संसार के सुख के निमित्त यत्न करता हूं। जैसे बरफ़ से अग्नि नहीं उपजती तैसेही संसार से सुख नहीं उपजते; जितने जीव हैं वे जड़ धर्मात्मक हैं संसाररूपी एक वृक्ष है और सहस्रों अंकुर, शाखा, पत्र, फल, फूलों से पूर्ण है। उस संसाररूपी वृक्ष का मूल मन है उसके संकल्परूपी जल से विस्तार को प्राप्त हुआ है और संकल्प के उपशम हुये नष्ट होजाता है। इससे जिसप्रकार यह नष्ट हो वही उपाय मैं करूंगा। संसार में भोग देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं और भीतर से दुःखरूप हैं। मन मर्कटवत् चञ्चलरूप है, उसने यह रचना रची है। जबतक इसको वास्तव में नहीं जाना तबतक चञ्चल है और जब विचार से जानता है तब पदार्थों की रमणीयता सहित मनका अभाव होजाता है; इससे मैं नाशरूप पदार्थों में नहीं रमता। संसार की वृत्ति अनेक फांसियों से मिश्रित है उसमें गिरके जीव फिर उछलते हैं और शान्त कदाचित् नहीं होते। ऐसी संसार की वृत्ति को मैंने चिरकाल पर्य्यन्त भोगा है अब मैं भोग से रहित होकर ब्रह्मही होता हूं। इस संसारमें वारम्बार जन्म मरण होता है और शोकही प्राप्त होताहै इससे अब संसारकी वृत्तिसे रहित हो शोक से रहित होता हूं अब मैं प्रबुद्ध और हर्षवान् हुआ हूं। मैंने अपने चोर आपही देखे हैं। जिसका नाम मन है इसीको मारूंगा। इस मनने मुझको चिरपर्यन्त माराहै। इतने कालपर्यन्त मेरा मनरूपी मोती अबेध रहा था अब मैंने इसको बेधा है अर्थात् आत्मविचार से रहित था सो अब उसको आत्मविचार में लगाया है; और अब यह आत्मज्ञान के योग्य है। मनरूपी एक बरफ़ का कण जड़ता को प्राप्त हुआ था अब विवेकरूपी सूर्य से गलगया है और अब मैं अक्षय शान्ति को प्राप्त हुआ हूं। अनेक प्रकार के वचनों से साधुरूप जो सिद्ध हैं उन्होंने मुझको जगाया है और अब मैं आत्मपद को प्राप्त हुआ हूं। परमानन्द से अब मैं आत्मरूपी चिन्तामणि को पाकर एकान्त सुखी

होकर स्थित होऊंगा। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसे होऊंगा। मनरूपी शत्रु ने मुझको भ्रम दिखाया था वह अब विवेक से नाश किया है और उपशम को प्राप्त हुआ हूं। हे विवेक! तुझको नमस्कार है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकविचारोनाम नवमस्सर्गः॥ ६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब राजा चिन्तन करता था तब एक दासी ने राजा के निकट आकर कहा; हे देव! अब उठिये और दिनका उचित विचार अर्थात् स्नानादिक कीजिये। स्नानशाला में पुष्प, केसर और गङ्गाजल आदि के कलशे लेकर स्त्रियां खड़ी हैं और कमल पुष्प उनमें पड़े हैं जिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र, चमर पड़े हैं, स्नान का समय है। हे देव! पूजन के निमित्त सब सामग्री आई है और रत्न और औषध ले आये हैं। हाथों में ब्राह्मण स्नान करके और पवित्रे डालकर अघमर्षण जाप कररहे हैं और आपके आगमन की राह देखते हैं। हाथों में चमर लेकर सुन्दरकान्ता तुम्हारे सेवनके निमित्त खड़ी हैं और भोजन-शाला में भोजन सिद्ध होरहा है; इससे शीघ्र उठिये और जो कार्य है वह कीजिये; जैसा काल होता है उसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं इसका त्याग नहीं करते। इससे काल व्यतीत न कीजिये। हे रामजी! जब इस प्रकार दासी ने कहा तब राजा ने विचारा कि, संसार की जो विचित्र स्थिति है वह कितेक मात्र है। राजसुखोंसे मुझको कुछ प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुर है; इस सम्पूर्ण मिथ्या आडम्बर को त्याग के मैं एकान्त जा बैठता हूं—जैसे समुद्र तरङ्गों से रहित शान्तरूप होता है तैसेही शान्तरूप होऊंगा। यह जो नाना प्रकार के राजभोग और क्रिया कर्म हैं उनसे अब मैं तृप्त हुआ हूं और सब कर्मों को त्याग कर केवल सुख में स्थित होऊंगा। मेरा चित्त जिन भोगों से चञ्चल था वे भोग तो भ्रमरूप हैं इनसे शान्ति नहीं होती और तृष्णा बढ़ती जाती है। जैसे जल पर सेवाल बढ़ती जाती है और जल को ढांप लेती है तैसेही तृष्णा ढांपलेती

है। अब मैं इसको त्याग करता हूं। हे चित्त! तू जिस २ दशा में गिरा है और जो २ भोग भोगे हैं वे सब मिथ्या हैं; तृप्ति तो किसीसे न हुई? इससे भ्रमरूप भोगों को जब मैं त्यागूंगा तब परमसुखी होऊंगा। बहुत उचित अनुचित भोग बारम्बार भोगे हैं परन्तु तृप्ति कभी न हुई; इससे, हे चित्त! इनको त्याग करके परमपद के आश्रय होजा। जैसे बालक एक को त्यागकर दूसरेको अङ्गीकार करता है तैसेही यत्न विना तूभी कर। जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागेगा और परमपदका आश्रय करेगा तब आनन्दी तृप्ति को प्राप्तहोगा और उसको पाकर फिर संसारी न होगा। हे रामजी! इसप्रकार चिन्तन करके जनक तूष्णी होरहा और मनकी चपलता त्याग करके सोमाकार से स्थित हुआ जैसे—मूर्ति लिखी होती है तैसेही होगया और प्रतिहारी भी भयभीत होकर फिर कुछ न कहसकी। इसके अनन्तर मन की समता के निमित्त फिर राजा ने चिन्तन किया कि, मुझको ग्रहण और त्याग करने योग्य कुछ नहीं है; किसको मैं साधूं और किस वस्तु में मैं धैर्य धारूं; सब पदार्थ नाशरूप हैं मुझको करनेसे क्या प्रयोजन है और न करने से क्या हानि है। जो कुछ कर्तव्य है वह शरीर करताहै निर्मल अचलरूप चेतन न करता है, न भोगता है। इससे मुझको कुछ कर्तव्य नहीं। जो त्याग करूंगा तो शरीर करने से रहित होगा और जो करूंगा तो भी शरीर करेगा, मुझको क्या प्रयोजन है? इससे करने और न करने में मुझको लाभ हानि कुछ नहीं जो कुछ प्राप्त हुआ है उसमें बिचरता हूं अप्राप्त की मैं वाञ्छा नहीं करता और प्राप्त में त्याग नहीं करता अपने स्वरूप में स्थित होकर स्वस्थ होऊंगा और जो कुछ प्राप्त कर्म है वही करताहूं, न कुछ मुझको करने में अर्थ है और न करने में दोष है जो क्रिया हो सो हो करो अथवा न करो और युक्त हो अथवा अयुक्त हो मुझको ग्रहण त्याग करने योग्य कुछ नहीं। इससे जो कुछ प्राप्त करने योग्य कर्म हैं वेही करूंगा कर्मका करना शरीर प्रकृति से होता है; आत्मा को तो कुछ कर्तव्य नहीं, इससे मैं इनमें निस्संग हो रहूंगा। जो निस्पन्द चेष्टा हो तो क्या सिद्ध हुआ और क्या क्रिया। जो मन कामना से रहित

स्थित विगतज्वर हुआ अर्थात् हृदय में राग द्वेष मलीनता न उपजी तो देह से कर्म हो तो भी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्ति में तुलना रहेगी और जो देह से मिलकर मन कर्म करता है तब कर्ता भोक्ताहै और इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेषवान् होताहै। जब मन का मनन उपशम होता है तब कर्तव्य में भी अकर्तव्य है। जैसा निश्चय हृदय में दृढ़ होताहै वही रूप पुरुष का होताहै; जिसके हृदय में अहंकृत नहीं है और बाहर कर्म चेष्टा करता है तो भी उसने कुछ नहीं किया और जिसके हृदय में अहंकृत अभिमान है वह बाहर से अकर्ता भासताहै तो भी अनेक कर्म करताहै। इससे जैसा निश्चय हृदय में दृढ़ होता है तैसाही फल होताहै। जो बाहर कर्ता है परन्तु हृदय में कर्तव्य का अभिमान नहीं रखता न तो वह धैर्यवान् पुरुष अनामय पद को प्राप्त होता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकनिश्चयवर्णनन्नाम दशमस्सर्गः॥ १०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचारके राजा यथाप्राप्त क्रिया के करने को उठ खड़ा हुआ और जो इष्ट अनिष्टकी वासना थी वह चित्त से त्यागदी। जैसे सुषुप्तिरूप पुरुष होताहै तैसेही वह जाग्रत् में होरहा। निदान दिन को यथाशास्त्र क्रिया करे और रात्रिको लीला करके ध्यानमें स्थित हो। मनको समरस कर जब रात्रि क्षीण हुई तब इस प्रकार चित्तको बोध किया कि, हे चञ्चलरूप, चित्त! परमानन्दस्वरूप जो आत्मा है वहक्या तुझको सुखदायक नहीं भासता जो इस मिथ्या संसारसुखकी इच्छा करता है। जब तेरी इच्छा शान्त होजावेगी तब तू सार सुख आत्मपद को प्राप्त होगा। ज्यों २ तू संकल्प लीलासे उठता है त्यों २ संसार जाल विस्तार होताजाता है। इस दुःखरूप संसार से तुझको क्या प्रयोजन है? हे मूर्ख, चित्त! ज्यों २ संकल्प इच्छा करता है त्यों २ संसार का दुःख बढ़ता जाता है। जैसे जल सींचने से वृक्ष की शाखा बढ़ती है तैसेही संसार सुख से अधिक दुःख प्राप्त होता है। ऐसे दुःखरूप भोगोंकी इच्छा क्यों करता है? यह संसार चित्तजाल से उपजाहै; जब तू इसका त्याग

करेगा तब दुःख मिटजावेगा। फुरनेका नाम दुःख है इसके मिटेसे दुःख भी कोई न रहेगा। यह महाचञ्चल संसार देखने में सुन्दर है वास्तव में कुछ नहीं। जो तुझको इससे कुछ सार प्राप्तहो तो इसका आश्रय कर पर यह तो क्षणभंगुर है और दुःख की खानि है; इसकी आस्था त्याग, आत्म-तत्त्वका आश्रयकर और शुद्ध निर्मल होकर जगत् में बिचर, तब तुझको दुःख स्पर्श न करेगा। जगत् स्थित हो अथवा शान्त हो इसके उदय अस्त की वासना से इसके गुण अवगुण में आसक्त मतहो। जो अविद्यमान असत्यरूप हो उसकी आस्था क्या करनी? यह असत्यरूप है और तू सत्यरूप है; असत्य और सत्यसम्बन्धक कैसे हो? मृतक और जीते का कभी सम्बन्ध हुआ है? जो तू कहे कि, चेतनतत्त्व दृश्यरूप है तो दोनों सत्यस्वरूप हैं और विस्तृतरूप आत्मा ही हुआ तो हर्ष विषाद किसका करताहै? इससे तू मूढ़ मत हो; समुद्र की नाईं अक्षोभरूप अपने आपमें स्थित हो और संसार की भावना त्याग करके मान मोह मल को त्याग कर। इसकी इच्छाही दुःख का कारण है; इसको त्याग करके आत्मतत्त्व में स्थित हो तब परिपूर्णपद को प्राप्त होगा। इस लिये बल करके और इसका आश्रय करके चञ्चलता को त्याग॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तानुशास-
नन्नाम एकादशस्सर्गः॥ ११॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचार करके राजा ने सब काम किये और आनन्दवृत्ति में उसका प्रबोधवान् मन मोहको न प्राप्त हुआ। वह इष्ट में हर्षवान् न हो और अनिष्ट में द्वेषवान् न हो केवल सम और स्वच्छ अपने स्वरूप में स्थित हुआ और जगत्में बिचरने लगा; न कुछ त्यागकरे, न कुछ ग्रहणकरे और न कुछ अङ्गीकार करे, केवल वीतशोक होकर सन्तापसे रहित वर्त्तमानमें कार्यकरे और उसके हृदयमें कोई कल्पना स्पर्श न करे—जैसे आकाश को धूलकी मलीनता स्पर्श नहीं करती। मलीनता से रहित अपने स्वरूप के अनुसंधान और सम्यक् ज्ञानके अनन्त प्रकाश में उसका मन निश्चलता को प्राप्त हुआ; मनकी जो

संकल्प वृत्ति थी वह नष्ट हो गई और महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदय में प्रकाशित हुआ। जैसे आकाश में सूर्य प्रकाशता है तैसेही अनन्त आत्मा प्रकट हुआ और सम्पूर्ण पदार्थ उसमें प्रतिबिम्बित देखे। जैसे शुद्धमणि में प्रतिबिम्ब भासता है तैसेही उसने सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में आत्मभूत देखे; इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट विषयों की प्रीति में हर्ष खेद मिट गया और सर्वदा समान हो प्रकृत व्यवहार करके जीवन्मुक्त हो बिचरने लगा। हे रामजी! जनक को ज्ञानकी दृढ़ता हुई उससे लोकों के परावर को जानकर उसने विदेह नगर का राज्य किया और जीवों की पालना में हर्ष विषाद को न प्राप्त हुआ। वह संताप से रहित हो कोई अर्थ उदय हो अथवा अस्त हो जा परन्तु हर्ष शोक कदाचित् न करे और कार्यकर्ता दृष्टि आवे परन्तु हृदय से कुछ न करे। हे रामजी! तैसेही तुमभी कार्य सब करो परन्तु निरन्तर आत्मस्वरूप में स्थितरहो। तुम जीवन्मुक्त वपु हो राजा जनक की सब पदार्थभावना अस्त होगई थी, उसकी सुषुप्तिवत् वृत्ति हुई थी, भविष्यत् की इच्छा नहीं करता था और व्यतीत की चिन्तना करता था जो वर्तमान कार्य प्राप्त हो उसको यथाशास्त्र करे और अपने विचार के वश से उसने पाने योग्य पद पाया और इच्छा कुछ न की। हे रामजी! जीव आत्मपद को तभीतक नहीं प्राप्त होता जबतक हृदय में अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं उपजा; जब अपने आपसे अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागे तब सब दुःख मिटजावे और परमसंपदा को प्राप्त हो। ऐसा पद शास्त्र अर्थ और पुण्य क्रिया से नहीं प्राप्त होता जैसा अपने हृदय में विचार कियेसे होता है। वह पद निर्मल और स्वच्छ है और हृदय की तपन को निवृत्त करता है। बुद्धि के विचाररूपी प्रकाश से हृदय का अज्ञान नष्ट होजाता है; और किसी उपायसे नहीं नष्ट होता। जो बड़ा आपदारूप दुःख तरनेको कठिन है वह अपनी बुद्धि से तरना सुगम होताहै—जैसे जहाज से समुद्र को लंघजाता है। जो बुद्धि से रहित मूर्ख है उसको थोड़ी आपदा भी बड़ा दुःख देती है—जैसे थोड़ा पवन भी तृण को बहुत भ्रमाता है। जो बुद्धिमान्

है उसको बड़ी आपदा भी दुःख नहीं देती—जैसे बड़ा वायुभी पर्वत को चला नहीं सक्ता। इसी कारण प्रथम चाहिये कि, सन्तों का संग और सत्शास्त्रोंका विचार करे और बुद्धि बढ़ावे। जब बुद्धि सत्यमार्ग की ओर बढ़ेगी तब परमबोध प्राप्त होगा—जैसे जलके सींचने और रखनेसे फूलफल प्राप्त होता है तैसेही जब बुद्धि सत्यमार्ग की ओर धाती है तब परमानन्द प्राप्त होता है। जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा पूर्णमासी से बहुत प्रकाशता है; जितने जीव संसार के निमित्त यत्न करते हैं वही यत्न सत्यमार्ग की ओर करें तो दुःख से मुक्त हों और परम संपदा के भण्डार को पावें। संसार रूपी वृक्ष का बीज बुद्धि की मूढ़ता है; इससे मूढ़तासे रहित होना बड़ा लाभ है। स्वर्ग पाताल का राज आदिक जो कुछ पदार्थ प्राप्त होते हैं सो अपने बोधरूपी भण्डार से मिलते हैं। संसाररूपी समुद्र के तरने को अपनी बुद्धिरूपी जहाज़ है और तप तीर्थ आदिक शुभआचार से जहाज़ चलता है। बोधरूपी पुष्प लता के बढ़ाने को दैवीसंपदा जल है उसके बढ़ने से सुन्दर फल प्राप्त होता है। जो बोध से रहित बल ऐश्वर्य से बड़ा भी है उसको तुच्छ में अज्ञान नाशकर डालता है—जैसे बल से रहित सिंह को गीदड़ हरिण भी जीत लेते हैं। इससे जो कुछ प्राप्त होता दृष्टि आता है वह अपने प्रयत्न से होता है। अपनी बोधरूपी चिन्तामणि हृदय में स्थित है उससे विवेकरूपी फल मिलता है—जैसे कल्पलतासे जो मांगिये वह पाते हैं तैसे ही सर्वफल बोध से पाते हैं। जैसे जाननेवाला केवट समुद्र से पार करता है अजान नहीं उतारसक्ता तैसेही सम्यक् बोध संसारसमुद्र से पार करता है और असम्यक् बोध जड़ता में डालता है। जो अल्पभी बुद्धि सत्यमार्ग की ओर होती है तो बड़े संकट दूर करती है—जैसे छोटी बेड़ी भी नदी से उतार देती है हे रामजी! जो पुरुष बोधवान् है उसको संसार के दुःख नहीं बेध सक्ते—जैसे लोह आदिक का कवच पहिने हो तो उसको बाण बेध नहीं सक्ते। बुद्धि से मनुष्य सर्वोत्तमपद को प्राप्त होता है, जिस पद के पाने से हर्ष, विषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती। अहंकाररूपीमेघ जब आत्मारूपी सूर्य के आगे आता है तो मायामलीनता

से आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता। बोधरूपी वायु से जब यह दूर हो तब आत्मारूपी सूर्य ज्यों का त्यों भासता है—जैसे किसान प्रथम हल आदिक से पृथ्वी को शुद्ध करता, फिर बीज बोता है और जब जल सींचता है और नाश करनेवाले पदार्थों से रक्षा करता है तब फल पाता है; तैसे ही जब आर्यवादिगुणों से बुद्धि निर्मल होती है तब शास्त्र का उपदेशरूपी बीज मिलता है और अभ्यास वैराग करके करता है उससे परमपदकी प्राप्ति होतीहै वह अतुलपदहै, उसके समान और कोई नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्राज्ञमहिमावर्णनं नाम
द्वादशस्सर्गः॥ १२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जनक की नाईं अपने आप से आपको विचार करो और पीछे जो विदितवेद पुरुषों ने किया है उसी प्रकार तुमभी निर्वाण होजाओ। जो बुद्धिमान् पुरुष हैं और जिनका यह अन्तका जन्म है वे राजस-सात्त्विकी पुरुष आपही परमपदको प्राप्त होते हैं। जबतक अपने आपसे आत्मदेव प्रसन्न न हो तब तक इन्द्रीरूपी शत्रुओं के जीतने का यत्न करो और जब आत्मदेव जो सर्ववत् परमात्मा ईश्वरोंका भी ईश्वर है प्रसन्न होगा तो आपही स्वयंप्रकाश देखेगा और सर्व दोष दृष्टि क्षीण होजायगी। मोहरूपी बीज को जो मुट्ठी भर भर बोता था और नाना प्रकार की आपदारूपी वर्षा से महामोह की बेलि जो होती दृष्टि आती थी वह सब नष्ट हो जाती है। जब परमात्मा का साक्षात्कार होता है तब भ्रान्तिदृष्टि नहीं आती। हे रामजी! तुम सदा बोध से आत्मपद में स्थित हो, जनकवत् कार्यों का आरम्भ करो और ब्रह्म लक्षवान् होकर जगत् में विचरो तब तुमको खेद कुछ न होगा। जब नित्य आत्मविचार होता है तब परम देव आपही प्रसन्न होता है और उसके साक्षात्कार हुयेसे तुम चञ्चलरूपी संसारीजनों को देखकर जनक की नाईं हँसोगे। हे रामजी! संसार की भय से जो जीव भयभीत हुये हैं उनको अपनी रक्षा करने को अपनाही पुरुषप्रयत्न है और देव अथवा कर्म वा धन, बान्धवों से रक्षा नहीं होती। जो पुरुष

देव को निश्चय करके रहे हैं पर शास्त्रविरुद्ध कर्म करते हैं और संकल्प विकल्प में तत्पर होते हैं वे मध्यबुद्धि हैं उनके मार्ग की ओर तुम न जाना उनकी बुद्धि नाश करती है, तुम परम विवेक का आश्रय करो और अपने आपको आपसे देखो। वैराग्यवान् शुद्ध बुद्धि से संसार समुद्र को तरजाता है। यह मैंने तुमसे जनक का वृत्तान्त कहा है—जैसे आकाश से फल गिरपड़े तैसेही उसको सिद्धों के विचार में ज्ञान की प्राप्ति हुई। यह विचार ज्ञानरूपी वृक्ष की मञ्जरी है। जैसे अपने विचार से राजा जनक को आत्मबोध हुआ तैसेही तुमको भी प्राप्त होगा। जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्य को देखकर प्रसन्न होता है तैसेही इस विचार से तुम्हारा हृदय प्रफुल्लित हो आवेगा और मनका मननभाव जैसे बरफ़ का कणका सूर्य से तप्त हो गलजाता है शान्त होजावेगा। जब अहं त्वं आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यसे क्षीण होजावेगी तब परमात्मा का प्रकाश साक्षात् होगा; भेद कल्पना नष्ट होजावेगी और अनन्त ब्रह्माण्ड में जो व्यापक आत्मतत्त्व है वह प्रकाशित होगा। जैसे अपने विचारसे जनक ने अहंकार वासना का त्याग किया है तैसेही तुम भी विचार करके अहंकार वासनाका त्याग करो। अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होगा और चित्ताकाश निर्मल होगा तब आत्मरूपी सूर्य प्रकाशित होगा। जबतक अहंकाररूपी मेघ आवरण है तबतक आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता। विचाररूपी वायु से जब अंहकाररूपी मेघ नाश हो तब आत्मरूपी सूर्य प्रकट भासेगा। हे रामजी! ऐसे समझो कि, न मैं हूं न कोई। और है; न नास्ति है; न अस्ति है; जब ऐसी भावना दृढ़ होगी तब मन शान्त होजावेगा और हेयोपादेय बुद्धि जो इष्ट पदार्थों में होती है उसमें न डूबोगे। इष्ट अनिष्ट के ग्रहण त्याग में जो भावना होती है यही मन का रूप है और यही बन्धनका कारण है—इससे भिन्न बन्धन कोई नहीं। इससे तुम इन्द्रियों के इष्ट-अनिष्ट में हेयोपादेय बुद्धि मत करो और दोनों के त्यागे से जो शेष रहे उसमें स्थित हो। इष्ट अनिष्ट की भावना उसकी की जाती है जिसको हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती और जबतक हेयोपादेय बुद्धि क्षीण

नहीं होती तबतक समता भाव नहीं उपजता। जैसे मेघके नष्ट हुये बिना चन्द्रमा की चांदनी नहीं भासती तैसेही जबतक पदार्थों में इष्ट अनिष्ट बुद्धि है और मन लोलुप होता है तबतक समता उदय नहीं होती। जबतक युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती तबतक शुद्धसमता और निरसता नहीं उपजती। एक ब्रह्मतत्त्व जो निरामयरूप और नानात्व से रहितहै उसमें युक्त क्या और अयुक्त क्या ? जबतक इच्छा-अनिच्छा और वाञ्छित-अवाञ्छित यह दोनों बातें स्थित हैं अर्थात् फुरते और क्षोभ करते हैं तबतक सौम्यता भाव नहीं होता जो हेयोपादेय बुद्धि में रहित ज्ञानवान् है उस पुरुष को यह शक्ति आ प्राप्त होती है-जैसे राजा के अन्तःपुर में पटरानी स्थित होती हैं। वह शक्ति यह है; भोगों में निरसता, देहाभिमान से रहित निर्भयता, नित्यता, समता, पूर्णआत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा, निरिच्छता, निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना, इष्ट अनिष्ट की प्राप्तिमें समचित्तता, निर्विकल्पता, सदा आनन्द स्वरूप रहना, धैर्य से सदा एकरस रहना, स्वरूप में भिन्नवृत्ति न फुरना, सब जीवों से मैत्रीभाव, सत्यबुद्धि, निश्चयात्मकरूप से तुष्टता, मुदिता और मृदुभाषणा; इतनी शक्ति हेयोपादेय से रहित पुरुष को आ प्राप्त होती हैं। हे रामजी ! संसार के पदार्थों की ओर जो चित्त धावता है उसको वैराग्य से उलटाके खैंचना-जैसे पुल से जल के वेग का निवारण होता है तैसेही जगत् से निवारकर मन को आत्मपद में लगाने से आत्मभाव प्रकाशता है। इससे हृदय से सब वासना का त्याग करो और बाहर से सब क्रिया में रहो। वेग चलो, श्वास लो और सर्वदा, सर्वप्रकार चेष्टा करो, पर सर्वदा सर्व प्रकार की वासना त्याग करो। संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जल है और चिन्तारूपी सिवार है; उस जलमें तृष्णावान् रूपी मच्छ फँसे हैं। यह विचार जो तुम से कहा है उस विचाररूपी शिला से बुद्धि को तीक्ष्ण करो और इसजाल को छेदो तब संसारसे मुक्त होगे। संसाररूपी वृक्ष का मूल बीज मन है। ये वचन जो कहे हैं-उनको हृदय में धरकर धैर्यवान् हो तब आधि व्याधि दुःखों से मुक्त

होंगे। मन से मन को छेदो; जो बीती है उसको स्मरण करो और भविष्यत् की चिन्ता न करो क्योंकि; वह असत्यरूप है और वर्तमान कोभी असत्य जानके उसमें बिचरो। जब मन से संसार का विस्मरण होताहै तब मन में फिर न फुरेगा। मन में असत्यभाव जानके चलो, बैठो, श्वास लो, निश्वास करो, उछलो, सोवो, सब चेष्टा करो परन्तु भीतर सब असत्यरूप जानो तब खेद न होगा। अहं मम रूपी जो मलको त्याग करो प्राप्ति में बिचरो अथवा राज आ प्राप्तहो उसमें बिचरो परन्तु भीतर से इस में आस्था न हो। जैसे आकाश का सब पदार्थों में अन्वय है परन्तु किसीसे स्पर्श नहीं करता तैसेही बाहर कार्य करो परन्तु मन से किसी में बन्धायमान न हो तुम चैतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुष हो; तुम से भिन्न कुछ नहीं और सब में व्यापरहे हो। जिस पुरुष को सदा यही निश्चय रहता है उसको संसार के पदार्थ चलायमान नहीं करसक्के और जिनको संसार में आसक्क भावना है और स्वरूप भूले हैं उनको संसार के पदार्थों से विकार उपजता है और हर्ष, शोक और भय खींचते हैं; उससे वे बांधे हुये हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष राग द्वेष से रहित हैं उनको लोहा, बट्टा, पाषाण और सुवर्ण सब एक समान है। संसार वासना के त्यागने काही नाम मुक्ति है। हे रामजी! जिस पुरुष को स्वरूप में स्थिति हुई है और सुख दुःख में समता है वह जो कुछ करता, भोगता, देता, लेता इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कुछ नहीं करता। वह यथा प्राप्त कार्य में वर्तता है। और उसे अन्तःकरण में इष्ट अनिष्ट की भावना नहीं फुरती और कार्य में राग द्वेषवान् होकर नहीं डूबता। जिसको सदा यह निश्चय रहता है कि, सर्वचिदाकाशरूप है और जो भोगों के मनन से रहित है वह समताभाव को प्राप्त होता है। हे रामजी! मन जड़रूप है और आत्मा चैतनरूप है; उसी चैतन की सत्ता से जीव पदार्थों को ग्रहण करता है इसमें अपनी सत्यता कुछ नहीं। जैसे सिंह के मारेहुये पशु को बिल्ली भी खाने जाती है, उसको अपना बल कुछ नहीं; तैसे ही चैतन के बल से मन दृश्यका आश्रय करता है, आप असत्यरूपहै चैतन की सत्ता पाकर

जीता है; संसार के चिन्तवन को समर्थ होता है और प्रमाद से चिन्ता से तपायमान होता है। यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि; मन जड़है और चैतनरूपी दीपक से प्रकाशित है। चैतन सत्ता से रहित सब समान है और आत्मसत्ता से रहित उठ भी नहीं सक्ता। आत्मसत्ता को भुलाकर जो कुछ करता है उस फुरने को बुद्धिमान् कलना कहते हैं। जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है तब आत्मभाव को प्राप्त होता है और प्रमाद से रहित आत्मरूप होता है। चित्तकला जब चैत्य दृश्य से स्फुर होती है उसका नाम सनातन ब्रह्म होता है और जब चैत्य के साथ मिलती है तब उसका नाम कलना होता है; स्वरूप से कुछ भिन्न नहीं केवल ब्रह्म तत्त्व स्थित है और उसमें भ्रान्ति से मन आदि भासते हैं। जब चेतन सत्ता दृश्य के सन्मुख होती है तब वही कलनारूप होती है और अपने स्वरूप के विस्मरण किये से और संकल्प की ओर धावने से कलना कहाती है। वह आपको परिच्छिन्न जानती है उससे परिच्छिन्न होजाती है और हेयोपादेय धर्मिणी होती है। हे रामजी! चित्तसत्ता अपने ही फुरने से जड़ता को प्राप्त हुई है और जबतक विचार करके न जगावे तबतक स्वरूप में नहीं जागती इसी कारण सत्यत्व शास्त्रों के विचार और वैराग से इन्द्रियों का निग्रह करके अपनी कलना को आप जगाओ। सब जीवों की कलना विज्ञान और सम करके जगाने से ब्रह्म-तत्त्व को प्राप्त होती है और इससे भिन्न मार्ग से भ्रमता रहता है। मोह-रूपी मदिरा से जो पुरुष उन्मत्त होता है वह विषयरूपी गढ़े में गिरता है। सोई हुई कलना आत्मबोध से नहीं जगाते अप्रबोध ही रहते हैं सो चित्त-कलना जड़ रहती है; जो भासती है तौ भी असत्यरूप है। ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो संकल्प से कल्पित न हो; इससे तुम अजड़धर्मा होजाओ। कलना जड़ उपलब्धरूपिणी है और परमार्थसत्ता से विकाशमान होती है-जैसे सूर्य से कमल विकाशमान होता है। जैसे पाषाण की मूर्ति से कहिये कि, तू नृत्यकर तो वह नहीं करती क्योंकि जड़रूप है; तैसेही देह में जो कलना है वह चेतन कार्य

नहीं करसक्ती। जैसे मूर्त्ति का लिखा हुआ राजा गुर गुर शब्द करके युद्ध नहीं करसक्ता और मूर्त्ति का चन्द्रमा औषध पुष्ट नहीं करसक्ता तैसेही कलना जड़रूप कार्य नहीं करसक्ती। जैसे निरवयव अङ्गना से आलिङ्गन नहीं होता; संकल्प के रचे आकाश के वन की छाया के नीचे कोई नहीं बैठता और मृगतृष्णा के जल से कोई तृप्त नहीं होता तैसेही जड़रूप मन क्रिया नहीं करसक्ता। जैसे सूर्य की धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसेही चित्तकलना के फुरने से जगत् भासता है। शरीर में जो स्पन्दशक्ति भासती है वही प्राणशक्ति है और प्राणों सेही बोलता, चलता, बैठता है। ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्त्व है उससे कुछ भिन्न नहीं; जब संकल्पकला फुरती है तब अहं त्वं इत्यादिक कलना से वही रूप होजाता है और जब आत्मा और प्राण का फुरना इकट्ठा होता है अर्थात् प्राणों से चेतन संवित् मिलता है तब उसका नाम जीव होता है। और बुद्धि, चित्त, मन, सब उसी के नाम हैं। सब संज्ञा अज्ञान से कल्पित होती हैं। अज्ञानी को जैसे भासित है, तैसेही उसको है; परमार्थ से कुछ हुआ नहीं; न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है केवल आत्मामात्र अपने आप में स्थित है—द्वैत नहीं। सब जगत् आत्मरूप है और काल क्रिया भी सब आत्मरूप है; आकाश से भी निर्मल, अस्ति, नास्ति, सर्व वही रूप है और द्वितीय फुरनेसे रहित है इस कारण है और नहीं ऐसा स्थित है और सर्वरूप से सत्य है। आत्मा सब पदों से रहित है इस कारण असत्य की नाईं है और अनुभवरूप है इससे सत्य है और सर्वकलना से रहित केवल अनुभवरूप है। ऐसे अनुभव का जहां ज्ञान होता है वहां मन क्षीण होजाता है—जैसे जहां सूर्य का प्रकाश होता है वहां अन्धकार क्षीण होजाता है। जब आत्मसत्ता में संवित् करके इच्छा फुरती है तो वह संकल्प के सन्मुख हुई थोड़ी भी बड़े विस्तार को पाती है; तब चित्तकला को आत्मस्वरूप विस्मरण होजाता है; जन्मों की चेष्टा से जगत् स्मरण होआता है और परमपुरुष को संकल्प से तन्मय होने करके चित्त नाम कहाता है। जब चित्तकला संकल्प से रहित होती है तब

मोक्षरूप होता है। चित्तकला फुरनेका नाम चित्त और मन कहतेहैं और दूसरी वस्तु कोई नहीं। एकतामात्र ही चित्तका रूप है और सम्पूर्ण संसार का बीज मन है। संकल्प के सन्मुख होकरके चेतन संवित् का नाम मन होता है और निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है वह जब संकल्प करके मलीन होती है तब उसको कलना कहते हैं। वही मन जब घटादिक की नाईं परिच्छिन्न भेद को प्राप्त होता है तब क्रियाशक्ति से अर्थात् प्राण और ज्ञानशक्ति से मिलताहै; उस संयोग का नाम संकल्प विकल्पका कर्ता मन होताहै। वही जगत् का बीज है और उसके लीन करने के दो उपाय हैं—एक तत्त्वज्ञान दूसरा प्राणों का रोकना। जब प्राणशक्ति का निरोध होताहै तब मन भी लीन होजाता है और जब सत्य शास्त्रों के द्वारा ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान होताहै तौभी लीन होजाताहै। प्राण किसका नाम है और मन किसको कहते हैं? हृदयकोश से निकल कर जो बाहर जाता है और फिर बाहर से भीतर आताहै वह प्राण है, शरीर बैठा है और वासना से जो देश देशान्तर भ्रमता है उसका नाम मन होताहै; उसको वैराग और योगाभ्यास से वासना से रहित करना और प्राणवायु को स्थित करना ये दोनों उपायहैं। हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होताहै तब मन स्थिर होजाताहै क्योंकि, प्राण और चित्तकला का आपस में वियोग होताहै और जब प्राण स्थित होताहै तब भी मन स्थिर होजाता है क्योंकि; प्राण स्थित हुये चेतनकला से नहीं मिलते तब मन भी स्थित हो जाता है और नहीं रहता। मन चेतनकला और प्राण फुरने विना नहीं रहता। मनकोभी अपनी सत्ताशक्ति कुछ नहीं, स्पन्दरूप जो शक्तिहै वह प्राणोंकी है सो चलरूप जड़ात्मकहै और आमसत्ता चेतनरूपहै और वहअपने आप में स्थितहै। चेतनशक्ति और स्पन्दशक्ति के सम्बन्ध होने से मन उपजा है सो उस मनका उपजना भी मिथ्याहै। इसीका नाम मिथ्याज्ञानहै। हेरामजी! मैंने तुमसे अविद्या जो परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषके देनेवाली है कही है। चित्तशक्ति और स्पन्दशक्ति का सम्बन्ध संकल्प से कल्पित है; जो तुम संकल्प न उठावो तो मनसंज्ञा क्षीण होजावेगी। इससे संसार-

भ्रम से भयवान् मत हो। जब स्पन्दरूप प्राण को चित्तसत्ता चेतती है तब चेतने से मन चित्तरूप को प्राप्त होता है और अपने फुरने से दुःख प्राप्त होता है जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल कल्प कर भयवान् होता है। अखण्डमण्डलाकार जो चेतनसत्ता सर्वगत है उसका सम्बन्ध किस के साथ हो और अखण्डशक्ति उन्निद्ररूप आत्मा को कोई इकट्ठा नहीं करसक्ता इसी कारण सम्बन्ध का अभाव है। जो सम्बन्ध ही नहीं तो मिलना किससे हो और मिलाप न हुआ तो मनकी सिद्धता क्या कहिये? चित्त और स्पन्द की एकता मन कहाती है, मन और कोई वस्तु नहीं। जैसे रथ, घोड़ा, हस्ति, प्यादा इनके सिवा सेना का रूप और कुछ नहीं, तैसेही चित्त स्पन्द के सिवा मन का रूप और कुछ नहीं–इस कारण दुष्टरूप मनके समान तीनों लोकों में कोई नहीं। जब सम्यक्ज्ञान हो तब मृतकरूप मन नष्ट होजाता है मिथ्या अनर्थ का कारण चित्त है इसको मत धरो अर्थात् संकल्प का त्याग करो। हे रामजी! मन का उपजना मिथ्याहै; परमार्थ से नहीं। संकल्प का नाम मन है इस कारण कुछ है नहीं। जैसे मृगतृष्णा की नदी मिथ्या भासती है तैसेही मन मिथ्या है हृदयरूपी मरुस्थल है, चेतनरूप सूर्य है और मन-रूपी मृगतृष्णा का जल भासता है। जब सम्यक्ज्ञान होता है तब इसका अभाव होजाता है। मन जड़ता से निःस्वरूप है और सर्वदा मृतकरूपहै उसी मृतक ने सब लोगों को मृतक किया है। यह बड़ा आश्चर्य है कि, अङ्गभी कुछ नहीं देह भी नहीं और न आधार है, न आधेय है पर जगत् को भक्षण करता है और विना जालके लोगों को फँसाये है। सामग्री से बल, तेज, विभूति, हस्त पदाति रहित लोगों को मारता है; मानों कमल के मारनेसे मस्तक फटजाता है। जो जड़ मूक अधम हैं वे पुरुष ऐसे मानते हैं कि, हम बांधे हैं; मानों पूर्णमासी के चन्द्रमा की किरणों से जलते हैं। जो शूरमा होते हैं वे उसको हनन करते हैं। जो अविद्यमान मन है उसी ने मिथ्या ही जगत् को माराहै और मिथ्या संकल्प से उदय और स्थित हुआ है। ऐसा दुष्ट है जोकि किसीने उस

को देखा नहीं। मैंने तुमसे उसकी शक्ति कही है सो तो बड़ा आश्चर्यरूप विस्तृतरूपहै चञ्चल अस्तरूप चित्त से मैं विस्मित हुआहूं। जो मूर्ख है वह सर्व आपदा का पात्र है कि, मन है नहीं पर उससे वह इतना दुःख पाता है। बड़ा कष्ट है कि सृष्टि मूर्खता से चलीजाती है और सब मन से तपते हैं। यह मैं मानता हूं कि, सर्व जगत् मूढ़रूप है और तृष्णारूपी शस्त्र से कण २ होगयाहै; पैलवरूप है जो कमल से विदारण हुआ है, चन्द्रमा की किरणों से दग्ध होगये हैं; दृष्टिरूपी शस्त्र से बेधे हैं और संकल्परूपी मन से मृतक होगये हैं। वास्तव में कुछ नहीं मिथ्या कल्पना ने नीच कृपण करके लोगों को हनन किया है; इससे वे मूर्ख हैं। मूर्ख हमारे उपदेश योग्य नहीं, उपदेश का अधिकारी जिज्ञासी है। जिसको स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हुआ पर संसार से उपरान्त हुआ है, मोक्ष की इच्छा रखता है और पदपदार्थ का ज्ञाता है वही उपदेश करने योग्य है। पूर्ण ज्ञानवान् को उपदेश नहीं बनता और अज्ञानी मूर्ख को भी नहीं बनता। मूर्ख बीणा की धुनि सुनकर भयवान् होताहै और बान्धव निद्रा में सोया पड़ा है; उसको मृतक जानके भयवान् होता है और स्वप्न में हाथी को देखकर भय से भागता है। इस मन ने अज्ञानियों को वश किया है और भोगों का लव जो तुच्छ सुख है उसके निमित्त जीव अनेक यत्न करते हैं और दुःख पाते हैं। हृदय में स्थित जो अपना स्वरूप है उसको वे नहीं देख सके और प्रमाद से अनेक कष्ट पाते हैं। अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे मननिर्वाणवर्णनं
नाम त्रयोदशस्सर्गः ॥ १३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संसाररूपी समुद्र में राग द्वेषरूपी बड़े कल्लोल उठते हैं और उसमें वे पुरुष बहते हैं जो मन को मूढ़ जड़रूप नहीं जानते। उनको जो आत्मफल है सो नहीं प्राप्त होता। यह विचार और विवेक की वाणी मैंने तुमसे कही है सो तुम सारिखों के योग्य है। जिन मूढ़ जड़ों को मन के जीतने की सामर्थ्य नहीं है उनको यह नहीं

शोभती और वे इन वचनों को नहीं ग्रहण करसक्ते; उनको कहने से क्या
प्रयोजन है? जैसे जन्म के अन्धे को सुन्दर मञ्जरी का वन दिखाइये तो
वह निष्फल होता है क्योंकि, वह देख नहीं सक्ता तैसे ही विवेक वाणी
का उपदेश करना उनको निष्फल होता है। जो मन को जीत नहीं सक्ते
और इन्द्रियों से लोलुप हैं उनको आत्मबोध का उपदेश करना कुछ कार्य
नहीं करता। जैसे कुष्ठ से जिसका शरीर गलगया है उसको नानाप्रकार
की सुगन्ध का उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसे ही मूढ़ को आत्मउप-
देशक बोध सुखदायक नहीं होता। जिसकी इन्द्रियां व्याकुल और
विपर्यय हैं और जो मदिरा से उन्मत्त है उसको धर्म के निर्णय में साक्षी
करना कोई प्रमाण नहीं करता। ऐसा कुबुद्धि कौन है जो श्मशान में
शव की मूर्ति पाकर उससे चर्चा विचार और प्रश्नोत्तर करे? अपने
हृदयरूपी बांबी में मूकजड़ सर्पवत् मन स्थित है जो उसको निकालडाले
वह पुरुष है और जो उसको जीत नहीं सक्ता उस दुर्बुद्धि को उपदेश
करना व्यर्थ है। हे रामजी! मन महातुच्छ है। जो वस्तु कुछ नहीं उस
के जीतने में कठिनता नहीं। जैसे स्वप्नगर निकट होता है और चिर-
पर्यन्त भी स्थित है पर जागकर देखिये तो कुछ नहीं, तैसे ही मन को
जो विचारकर देखिये तो कुछ नहीं जिस पुरुष ने अपने मन को नहीं
जीता वह दुर्बुद्धि है और अमृत को त्यागकर विषपान करता है और मर
जाता है। जो ज्ञानी है वह सदा आत्मा ही देखता है। इन्द्रियां अपने २
धर्म में विचरती हैं प्राण की स्पन्दशक्ति है और परमात्मा की ज्ञानशक्ति
है, इन्द्रियों को अपनी शक्ति है फिर जीव किससे बन्धायमान होता है?
वास्तव में सर्वशक्ति सर्वात्मा है उससे कुछ भिन्न नहीं। यह मन क्या है?
जिसने सब जगत् नीच किया है? हे रामजी! मूढ़ों को देखकर मैं दया
करता और तपता हूं कि ये क्यों खेद पाते हैं? और वह दुःखदायक कौन
है जिससे वे तपते हैं? जैसे उष्ट्र कराटक के वृक्षों की परम्परा को प्राप्त होता
है तैसे ही मूढ़ प्रमाद से दुःखों की परम्परा पाता है। और वह दुर्बुद्धि देह
धरकर मरजाताहै। जैसे समुद्रमें बुद्बुदे उपजकर मिटजाते हैं तैसेही संसार-

समुद्र में उपजकर वह नष्ट हो जाता है; उसका शोक करना क्या है, वह तो तुच्छ और पशु से भी नीच है ? तुम देखो कि, दशो दिशाओं में पशु आदिक होते हैं और मरते हैं उनका शोक कौन करता है ? मच्छरादिक जीव नष्ट होजाते हैं और जलचर जल में जीवों को भक्षण करते हैं उनका विलाप कौन करता है ? आकाशमें पक्षी मृतक होते हैं उनका कौन शोक करताहै ? इसी प्रकार अनेक जीव नाश होते हैं उनका विलाप कुछ नहीं होता; तैसे ही अब जो हैं उनका विलाप न करना क्योंकि, कोई स्थिर न रहेगा सब नाशरूप और तुच्छ हैं। सबका प्रतियोगी कालहै और अनेक जीवों को भोजन करता है। जूं आदिकों को मक्षिका और मच्छर आदिक खाते हैं और मक्षिका मच्छरादिकों को दादुर खाते हैं। मेढ़कों को सर्प; सर्पों को नेवला; नेवले को बिल्ली; बिल्ली को कुत्ते; कुत्तों को भेड़िया; भेड़ियों को सिंह; सिंहों को सरभ और सरभ को मेघ की गर्जना नाश करती है। मेघ को वायु; वायु को पर्वत; पर्वत को इन्द्र का वज्र और इन्द्र के वज्र को विष्णुजी का सुदर्शनचक्र जीतलेताहै और विष्णुभी अवतारों को धरके सुख दुःख जरा मरण संयुक्त होते हैं। इसी प्रकार निरन्तर भूत जाति को काल जीर्ण करता है; परस्पर जीव जीवों को खाते हैं और निरन्तर नाना प्रकार के भूत जात दशोदिशाओं में उपजते हैं। जैसे जल में मच्छ, कच्छ; पृथ्वी में कीट आदि; अन्तरिक्ष में पक्षी; वनवीथी में सिंहादिक; मृगस्थावर में पिपीलिका, दर्दुर, कीटादि; विष्ठा में कृमि और और नाना प्रकारके जीवगण इसीप्रकार निरन्तर उपजते और मिटजाते हैं। कोई हर्षवान् होता है, कोई शोकवान् होता है, कोई रुदन करता है और कोई सुख और दुःख मानते हैं। पापी पापों के दुःख से निरन्तर मरते हैं और सृष्टि में उपजते और नाश होते हैं। जैसे वृक्ष से पत्ते उपजते हैं तैसेही कितने भूत उपजकर नाश होजाते हैं उनकी कुछ गिनती नहीं। जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने आपसे आपपर दयाकरके आपको संसार समुद्र से पार करते हैं। हे रामजी ! और जितने जीव हैं वे पशुवत् हैं मूढ़ों और पशुओं में कुछ भेद नहीं। और उनको हमारी कथा का उपदेश

नहीं । वे पशुधर्मा इस वाणी के योग्य नहीं; देखनेमात्र मनुष्य हैं परन्तु मनुष्य का अर्थ उनसे कुछ सिद्ध नहीं होता । जैसे उजाड़ वन में ठूंठ वृक्ष छाया और फल से रहित किसी को विश्रामदायक नहीं होते तैसेही मूढ़ जीवों से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता । जैसे गले में रस्सी डालकर पशुको जहां खेंचते हैं वहां चले जाते हैं तैसे ही जहां चित्त खेंचता है वे वहीं चले जाते हैं । मूढ़चित्त जीव पशु विषयरूपी कीच में फँसे हैं और उससे बड़ी आपदा को प्राप्त होते हैं । उन मूढ़ों को आपदा में देखके पाषाणभी रुदन करते हैं । जिन मूर्खों ने अपने चित्तको नहीं जीता उनको दुःखोंके समूह प्राप्त होतेहैं और जिन्होंने चित्तको बन्धन से निकालाहै वे संपदावान्हैं; उनके सब दुःख मिटजातेहैं और वे संसारमें फिर नहीं उपजते । इससे अपने चित्त के जीते विना दुःख नष्ट नहीं होते । जो चित्त जीतने से परमसुख न प्राप्त होता तो बुद्धिमान् इसमें न प्रवर्त्तते पर बुद्धिमान् इसके जीतने में प्रवर्त्तते हैं इससे जानिये कि, चित्त भी वश होता है और मनरूपी भ्रम के नष्ट हुये आत्मसुख प्राप्त होता है । हे रामजी ! मन भी कुछ है नहीं मिथ्याभ्रम से कल्पित है । जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैतालबुद्धि होती है और उससे वह भयवान् होता है तैसेही भ्रमरूप मन से नाश मानते हैं । जबतक आत्मसत्ता का विस्मरण है तबतक मूढ़ता है और हृदय में मनरूप सर्प विराजता है; जब अपना विवेकरूपी गरुड़ उदय हो तब वे नष्ट होजाते हैं । अब तुम जागेहो और ज्योंका त्यों जानते हो । हे शत्रुनाशक, रामजी ! अपने ही संकल्प से चित्त बढ़ता है, इसलिये उस संकल्प का शीघ्रही त्याग करो तब चित्त शान्त होगा । जो तुम दृश्यका आश्रय करोगे तो बन्धन होगा और अहंकार आदिक दृश्यका त्याग करोगे तो अचित्त मोक्षवान् होगे । यह गुणों का सम्बन्ध मैंने तुमसे कहाहै कि, दृश्य का आश्रय करना बन्धन है और इससे रहित होना मोक्ष है । आगे जैसे इच्छा हो वैसे करो । इस प्रकार ध्यान करो कि, न मैं हूं और न यह जगत् है । मैं केवल अचलरूप हूं । ऐसे निःसंकल्प हुये से आनन्द चिदाकाश हृदय में आ प्रकाशेगा । आत्मा

और जगत् में जो विभाग कलना आ उदय हुई है वही मल है। इस द्वैतभाव के त्याग किये से जो शेष रहेगा उसमें स्थित हो। आत्मा और जगत् में अन्तर क्या है? द्रष्टा और दृश्य के अन्तर जो दर्शन और अनुभवसत्ता है सर्वदा उसीकी भावना करो और स्वाद और अस्वाद लेनेवाले को त्याग कर उनके मध्य जो स्वादरूप है उसमें स्थित हो। वही आत्मतत्त्व है उसमें तन्मय होजाओ अनुभव जो द्रष्टा और दृश्य है उसके मध्य में जो निरालम्ब साक्षीरूप आत्मा है उसीमें स्थित होजाओ। हे रामजी! संसार भाव अभावरूप है उसकी भावना को त्याग करो और भावरूप आत्मा की भावना करो वही अपना स्वरूप है। प्रपञ्चदृश्य को त्याग किये से जो वस्तु अपना स्वरूप है वही रहेगा–जो परमानन्दस्वरूप है। चित्तभाव को प्राप्त होना अनन्त दुःख है और चित्तरूपी संकल्पही बन्धन है; उस बन्धन को अपने स्वरूप के ज्ञान युक्त बल से काटे तब मुक्ति होगी। जब आत्मा को त्याग कर जगत् में गिरता है तब नाना प्रकार संकल्प विकल्प दुःखों में प्राप्त होता है। जब तुम आत्मा को व्यतिरेक शब्द करोगे तब मन दुःख के समूह संयुक्त प्रकट होगा और व्यतिरेक भावना त्यागने से सब मन के दुःख नष्ट होजावेंगे। यह सर्व आत्मा है–आत्मा से कुछ भिन्न नहीं; जब यह ज्ञान उदय हो तब चैत्य, चित्त और चेतना–तीनों का अभाव होजावेगा। मैं आत्मा नहीं–जीव हूं इसी कल्पना का नाम चित्तहै। इससे अनेक दुःख प्राप्तहोते हैं। जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्माहूं–जीव नहीं; वह सत्य है कुछ भिन्न नहीं इसीका नाम चित्त उपशम है। जब यह निश्चय हुआ कि; सब आत्मतत्त्व है आत्मा से कुछ भिन्न नहीं तब चित्त शान्त होजाता है–इसमें कुछ संशय नहीं। इस प्रकार आत्मबोध करके मन नष्ट होजाताहै। जैसे सूर्य के उदयहुये तम नष्ट होजाता है। मन सब शरीरों के भीतर स्थित है, जबतक रहताहै तबतक जीव को बड़ा भय होता है। यह जो परमार्थयोग मैंने तुमसे कहाहै इससे मनको काटडालो। जब मन का त्यागकरोगे तब भय भी न रहेगा। यह चित्त भ्रममात्र उदयहुआ है। चित्तरूपी वेताल का सम्यक् ज्ञानरूपी मन्त्र

से अभाव होजाता है । हे बलवानों में श्रेष्ठ निष्पाप रामजी ! जब तुम्हारे हृदयरूपी गृह में से चित्तरूपी वैताल निकल जावेगा तब तुम दुःखों से रहित और स्थित होगे और फिर तुम्हें भय उद्वेग कुछ न व्यापेगा । अब तुम मेरे वचनों से वैरागी हुये हो और तुमने मनको जीता है । इसविचार विवेक से चित्त नष्ट और शान्त होजाता है और निर्दुःख आत्मपद को प्राप्त होता है । सब एषणा को त्याग करके शान्तरूप स्थित हो ॥

इतिश्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्र०चित्तचैत्यरूपवर्णनं नामचतुर्दशस्सर्गः १४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार तुम देखो कि, चित्त आप विचित्ररूप है और संसाररूपी बीज की कणिका है । जीवरूपी पक्षी के बंधन का जाल संसार है । जब चित्त संवित् आत्मसत्ता को त्यागता है तब दृश्यभाव को प्राप्त होता है और जब चित्त उपजता है तब कलना-रूप मल धारण करता है वह चित्त बढ़कर मोह उपजता है, मोह से संसार का कारण होता है और तृष्णारूपी विष की बेलि प्रफुल्लित होती है उससे मूर्च्छित होजाता है और आत्मपद की ओर सावधान नहीं होता । ज्यों २ तृष्णा उदय होती है त्यों २ मोह को बढ़ाती है । तृष्णारूपी श्यामरात्रि अनन्त अन्धकार को देती है; परमार्थसत्ता को ढांप लेती है और प्रलय-काल की अग्निवत् जलाती है उसको कोई संहार नहीं सक्ता वह सबको व्याकुल करती है । तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्ग की धारा दृष्टिमात्र कोमल, शीतल और सुन्दर है पर स्पर्श किये से नाश करडालती है और अनेक संकट देती है । जो बड़े असाध्य दुःख हैं व जिनकी प्राप्ति बड़े पापों से होती है वे तृष्णारूपी फूल का फल हैं । तृष्णारूपी कुतिया चित्तरूपी गृह में सदा रहती है; क्षण में बड़े हुलास को प्राप्त होती है और क्षण में शून्यरूप होजाती है और बड़े ऐश्वर्यसंयुक्त हैं । जब मनुष्य को तृष्णा उपजती है तब वह दीन होजाता है । जो देखने में निर्द्धन कृपण भासता है पर हृदय में तृष्णा से रहित है वह बड़ा ऐश्वर्यवान् है । जिसके हृदयछिद्र में तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं पैठी उसके प्राण और शरीर स्थित हैं और उसका हृदय शान्तरूप होताहै । निश्चय जानो कि, जहां तृष्णारूपी

काली रात्रि का अभाव होता है वहां पुण्य बढ़ते हैं–जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा बढ़ता है। हे रामजी! जिस मनुष्यरूपी वृक्ष का तृष्णारूपी घुन ने भोजन किया है उसकी पुण्यरूपी हरियाली नहीं रहती और वह प्रफुल्लित नहीं होता। तृष्णारूपी नदी में अनन्त कलोल आवर्त उठते हैं और तृणवत् बहती है; जीवरूपी खेलने की पुतली है और तृष्णारूपी यन्त्री को भ्रमावती है और सब शरीरों के भीतर तृष्णारूपी तागा है उससे वे पिरोये हैं और तृष्णा से मोहित हुये कष्ट पाते हैं पर नहीं समझते–जैसे हरे तृण से ढँपे हुये गढ़े को देखकर हरिण का बालक चरनेजाता है और गढ़े में गिर पड़ता है। हे रामजी! ऐसा और कोई मनुष्य के कलेजे को नहीं काटसक्ता जैसे तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह और बलरूपी कलेजा निकाल लेती है और उससे वह दीन होजाता है। तृष्णारूप अमङ्गल इन जीवों के हृदय में स्थित होकर नीचता को प्राप्त करती है तृष्णा करके विष्णु भगवान् इन्द्र के हेतु से अल्पमूर्ति धारकर बलि के द्वार गये और जैसे सूर्य नीतिको धरकर आकाश में भ्रमताहै तैसेही तृष्णारूपी ताग से बांधे जीव भ्रमते हैं। तृष्णारूपी सर्पिणी महाविष से पूर्ण होती है और सब जीवों को दुःखदायक है; इससे इसको दूर से त्याग करो। पवन तृष्णा से चलता है; पर्वत तृष्णा से स्थित है; पृथ्वी तृष्णा से जगत् को धरती है और तृष्णा से ही त्रिलोकी वेष्टित है निदान सबलोक तृष्णासे बांधेहुये हैं। रस्सीसे बांधा हुआ छूटताहै परन्तु तृष्णा से बँधा नहीं छूटता तृष्णावान् कदाचित् मुक्त नहीं होता; तृष्णा से रहित मुक्त होता है। इस कारण; हे राघव! तुम तृष्णाका त्याग करो सब जगत् मनके संकल्प में है उस संकल्पसे रहित हो। मनभी कुछ और वस्तु नहीं है युक्तिसे निर्णय करके देखो कि, संकल्प प्रमाद का नाम मनहै। जब इसका नाश हो तब सब तृष्णा नाश होजावे। अहं, त्वं, इदं इत्यादिक चिन्तन मतकरो; यह महामोहमय दृष्टि है; इसको त्याग करके एक अद्वैत आत्मा की भावना करो। अनात्मा में जो आत्मभाव है वह दुःखों का कारण है। इसके त्यागे से ज्ञानवानों में प्रसिद्ध होगे। अहंभावरूपी

अपवित्र भावना है उसको अपने स्वरूप शलाका की भावनारूप से काटडालो। यह भावना पञ्चम भूमिका है; वहां संसार का अभाव है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णावर्णनं नाम पञ्चदशस्सर्गः १५॥

रामजी ने पूछा; हे मुनीश्वर! ये आपके वचन गम्भीर और तोल से रहित हैं। आप कहते हैं कि, अहंकार और तृष्णा मत करो। जो अहंकार त्यागें तो चेष्टा कैसे होगी? तब तो देहका भी त्याग होजावेगा। जैसे वृक्ष थम्भ के आश्रय होते हैं। स्थम्भ के नाश हुये वृक्ष नहीं रहते तैसेही देह को अहंकार धारण कर रहा है; उससे रहित देह गिरजावेगी, इससे मैं अहंकार को त्याग करके कैसे जीता रहूंगा? यह अर्थ मुझको निश्चय करके कहिये क्योंकि, आप कहनेवालोंमें श्रेष्ठहैं। वशिष्ठजी बोले, हे कमलनयन, रामजी! सर्व ज्ञानवानों ने वासना का त्याग किया है सो दो प्रकार का है। एकका नाम ध्येयत्याग है और दूसरे का नाम नेयत्याग है। मैं यह पदार्थरूप हूं; मैं इनसे जीता हूं; इन विना मैं नहीं जीता और मेरे सिवा यह भी कुछ नहीं, यह जो हृदय में निश्चय है उसको त्याग करके मैं बिचारता भया हूं कि न मैं पदार्थ हूं और न मेरे पदार्थ हैं। ऐसी भावना करनेवाले जो पुरुष हैं उनका अन्तःकरण आत्मप्रकाश से शीतल होजाता है और वे जो कुछ क्रिया करते हैं वह लीलामात्र है। जिस पुरुष ने निश्चय करके वासना का त्याग किया है वह सर्व क्रियाओं में सर्व आत्मा जानता है। उसको कुछ बन्धन का कारण नहीं होता; उसके हृदय में सर्व वासना का त्याग है और बाहर इन्द्रियों से चेष्टा करता है। जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है उसने जो वासना का त्याग किया है उस वासना के त्याग का नाम ध्येयत्याग है और जिस पुरुषने मनसंयुक्त देह वासना का त्याग किया है और उस वासना का भी त्याग किया है वह नेयत्याग है। नेयवासना के त्याग से विदेहमुक्त कहाता है। जिस पुरुष ने देहाभिमान का त्याग किया है; संसार की वासना लीला से त्याग की है और स्वरूप में स्थित होकर क्रिया भी करता है वह जीवन्मुक्त कहाता है। जिसकी सब वासना

नाश हुई है और भीतर बाहर की चेष्टा से रहित हुआ है अर्थात् हृदय का संकल्प और बाहर की क्रिया त्यागी है उसका नाम नेयत्याग है– वह विदेहमुक्त जानो। जिसने ध्येयवासना का त्याग कियाहै और लीला करके कर्ताहुआ स्थितहै वह जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष जनकवत् है। जिसने नेयवासना त्यागी है और उपशमरूप होगया है वह विदेहमुक्त होकर परमतत्त्व में स्थित है। परात्पर जिसको कहते हैं वही होता है। हे राघव! इन दोनों समपदत्यागों में स्थित हुये ब्रह्मपद को प्राप्त होता है। वे विगत सन्ताप उत्तमपुरुष दोनों मुक्तस्वरूप हैं और निर्मल पद में स्थित होते हैं। एक की देह स्फुरणरूप होती है और दूसरे की अस्फुर होती है। वह विदेहमुक्तरूप देह में स्थित होता है और क्रिया करता सन्ताप से रहित जीवन्मुक्त ज्ञान को धरता है और फिर दूसरी देह त्याग के विदेहपद में स्थित होता है; उसके साथ वासना और देह दोनों नहीं भासते। इससे विदेहमुक्त कहाता है। जीवन्मुक्त के हृदय में वासना का त्याग है और बाहर क्रिया करता है। जैसे समय से सुख दुःख प्राप्त होता है तैसेही वह निरन्तर राग द्वेष से रहित प्रवर्त्तता है और सुख में हर्ष नहीं दुःख में शोक नहीं करता वह जीवन्मुक्त कहाता है। जिस पुरुष ने संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थों की इच्छा त्यागी है सो सब कार्य में सुषुप्ति की नाईं अचल वृत्ति है, वह जीवन्मुक्त कहाता है। हेयोपादेय, मैं और मेरा इत्यादि सब कलना जिसके हृदय से क्षीण होगई हैं वह जीवन्मुक्त कहाता है जिसकी वृत्ति सम्पूर्ण पदार्थों से सुषुप्ति की नाईं होगई है; जिसका चित्त सदा जाग्रत् है और जो कलना क्रियासंयुक्त भी दृष्टि आता परन्तु हृदय से आकाशवत् निर्मल है वह जीवन्मुक्त पूजने योग्य है। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य भगवान् अस्त हुये; सभा के सब लोग स्नान के निमित्त परस्पर नमस्कार करके उठे और रात्रि व्यतीत करके सूर्य के उदय साथ परस्पर नमस्कार करके यथायोग्य अपने २ आसन पर आ बैठे॥

इति श्रीयो०उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशोनामषोडशस्सर्गः १६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष विदेहमुक्त है वह हमारी वाणी का विषय नहीं; इससे तुम जीवन्मुक्त का ही लक्षण सुनो। जो कुछ प्रकृत कर्म है उसको जो करता है परन्तु तृष्णा और अहंकार से रहित है और निरहंकार होकर बिचरता है वह जीवन्मुक्त है। दृश्य पदार्थों में जिसकी दृढ़ भावना है वह तृष्णा से सदा दुखी रहता है और संसार के दृढ़ बन्धन से बन्ध कहाता है और जिसने निश्चय करके हृदय से संकल्प का त्याग किया है और बाहर से सब व्यवहार करता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है। जो बाहर जगत् में बड़े आरम्भ करता है और इच्छा संयुक्त दृष्टि आता है पर हृदय में सब अर्थों की वासना और तृष्णा से रहित है वह मुक्त कहाता है। जिस पुरुष को भोगों की तृष्णा मिटगई है और वर्तमान में निरन्तर बिचरता है वह निर्दुःख निष्कलङ्क कहाता है। हे महाबुद्धिमन्! जिसके हृदय में इदं अहंकार निश्चय है और जो उसको धारकर संसार की भावना करता है उसको तृष्णारूप ज़ंजीर से बांधा और कलना से कलङ्कित जानो। इससे तुम, मैं और मेरा; सत और असत्य बुद्धि संसार के पदार्थों का त्याग करो और जो परमउदार पद है सर्वदा काल उसमें स्थित होजाओ। बन्ध, मुक्त, सत्य, असत्य की कल्पना को त्याग के समुद्रवत् अक्षोभचित्त स्थित हो; न तुम पदार्थजाल हो; न यह तुम्हारे हैं; असत्यरूप जानके इनका विकल्प त्यागो। यह जगत् भ्रान्तिमात्र है और इसकी तृष्णा भी भ्रान्तिमात्र है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्र तुम सत्यस्वरूप हो और तृष्णा मिथ्यारूप है। तुम्हारा और इसका क्या संग है? हे रामजी! जीव को चार प्रकार का निश्चय होता है और वह बड़े आकार को प्राप्त होता है। चरणों से लेकर मस्तकपर्यन्त शरीर में आत्मबुद्धि होना और माता पिता से उत्पन्न हुआ जानना; यह निश्चय बन्धनरूप है और असम्यक् दर्शन भ्रान्ति से होता है। यह प्रथम निश्चय है। द्वितीय निश्चय यह है कि, मैं सबभावों और पदार्थों से अतीत हूं; बाल के अग्र से भी सूक्ष्म हूं और साक्षीभूत सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म हूं। यह निश्चय शान्तिरूप मोक्ष को

उपजाता है। जो कुछ जगत्जाल है वह सब पदार्थों में मैं हीं हूं और आत्मारूप मैं अविनाशी हूं। यह तीसरा निश्चय है; यह भी मोक्षदायक है। चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्य हूं और जगत् भी असत्य है; इनसे रहित आकाश की नाईं सन्मात्र है। यह भी मोक्ष का कारण है। हे रामजी! ये चार प्रकार के निश्चय जो मैंने तुमसे कहे हैं उनमें से प्रथम निश्चय बन्धन का कारण है और बाक़ी तीनों मोक्ष के कारण हैं और वे शुद्धभावना से उपजते हैं। जो प्रथम निश्चयवान् है वह तृष्णारूप सुगन्ध से संसार में भ्रमता है और बाक़ी तीनों भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुष की हैं। जिसको यह निश्चय है कि, सर्व जगत् में आत्मस्वरूप हूं उसको तृष्णा और राग द्वेष फिर नहीं दुःख देते। अध, ऊर्ध्व, मध्य में आत्मा ही व्यापा है और सब मैं हीं हूं, मुझसे कुछ भिन्न नहीं है; जिसके हृदय में यह निश्चय है वह संसार के पदार्थों में बन्धायमान नहीं होता। शून्य प्रकृति माया, ब्रह्म, शिव, पुरुष, ईश्वर सब जिसके नाम हैं वह विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है। सदा सर्वदा एक अद्वैत आत्मा मैं हूं, द्वैतभ्रम चित्त में नहीं है और सदा विद्यमान सत्ता व्यापक रूप हूं। ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त जो कुछ जगत्जाल है वह सर्व परिपूर्ण आत्मतत्त्व भररहा है—जैसे समुद्र में तरङ्ग और बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं तैसेही सर्व जगत्जाल आत्मरूप ही है। सत्यस्वरूप आत्मा से द्वैत कुछ वस्तु नहीं है जैसे बुद्बुदे और तरङ्ग कुछ समुद्र से भिन्न नहीं हैं और भूषण स्वर्ण से भिन्न नहीं होते तैसेही आत्मसत्ता से कोई पदार्थ भिन्न नहीं। द्वैत और अद्वैत जो जगत्रचना में भेद है वह परमात्मा पुरुष की स्फुरण शक्ति है और वही द्वैत और अद्वैतरूप होकर भासता है। यह अपना है, यह और का है; यह भेद जो सर्वदा सब में रहता है और पदार्थों के उपजने और मिटने में सुख दुःख भासता है उनका मत ग्रहण करो; भावरूप अद्वैत आत्मसत्ता का आश्रय करो और भ्रमद्वैत को त्याग करके अद्वैत पूर्णसत्ता होजाओ; संसार के जो कुछ भेद भासते हैं उनको मत ग्रहण करो इस भूमिकाकी भावना जो भेदरूप है वह दुःखदायी जानो

जैसे अन्धहस्ती नदी में गिरताहै और फिर उछलता है तैसेही तुम पदार्थों में मत गिरो। तुम पूर्णस्वरूप हो; महात्मा पुरुष के राग द्वेष कुछ सम्भव नहीं होते। सर्वगत आत्मा एक, अद्वैत, निरन्तर, उदयरूप और सर्वव्यापक है। एक और द्वैतसे रहित भी है; सर्वरूपभी वही है और निष्किञ्चनरूप भी वही है। न मैं हूं, न यह जगत्‌है, सब अविद्यारूपहै; ऐसे चिन्तन करो और सबका त्याग करो। अथवा ऐसे बिचारो कि, ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैं हीं हूं। तुम्हारा स्वरूप सर्व का प्रकाशक, अजर, अमर, निर्विकार, निष्प्रिय, निराकार और परम अमृतरूप है और निष्कलङ्क जीवशक्ति का जीवनरूप और सर्व कलना से रहित कारण का कारण है। निरन्तर उद्योग ईश्वर विस्तृतरूपहै और अनुभवस्वरूप सब अनुभव का बीज है। अपना आप आत्मपद उचित स्वरूप ब्रह्म, मैं और मेरा भाव से रहितहै। इससे अहं और इदं कलना को त्याग करके अपने हृदय में यह निश्चय करो और यथाप्राप्त क्रिया करो। तुम तो अहङ्कार से रहित शान्तरूप हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाउपदेशोनामसप्तदशस्सर्गः१७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है उन महात्मा पुरुषों का यह स्वभाव है कि, असम्यक् दृष्टि और देहाभिमान से नहीं रहते पर लीला से जगत् के कार्यों में बिचरते हैं और जीवन्मुक्त शान्तस्वरूप हैं। जगत् की गति आदि, अन्त, मध्य में विरस और नाशरूप है इससे वे शान्तरूप हैं और सब प्रकार अपना कार्य करते हैं। सब वृत्तियों में स्थित होकर उन्होंने हृदयसे ध्येयवासना त्यागी है; निरालम्ब तत्त्व का आश्रय लिया है और सर्व में उद्वेग से रहित सर्व अर्थ में सन्तुष्टरूप हैं। विवेकरूपी वन में वे सदा बिचरते हैं; बोधरूपी बाग़ीचे में स्थित हैं और सबसे अतीतपदका अवलम्बन किया है। उनका अन्तःकरण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतलभया है; संसार के पदार्थों से वे कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होते और उद्वेग और असन्तुष्टत्व दोनों से रहित हैं। वे संसार में कदाचित् दुःखी नहीं होते। वे चाहे शत्रुओं के मध्य में होकर युद्ध करें अथवा दया वा बड़े भयानक कर्म करते दृष्ट आवें तौ भी

जीवन्मुक्त हैं। संसार में वे दुःखी नहीं होते और न किसी पदार्थ में आनन्दवान् होते हैं; न किसी में कष्टवान् होते हैं न किसी पदार्थ की इच्छा करते हैं और न शोक करते हैं; मौन में स्थित यथाप्राप्त कार्य करते हैं और संसार में दुःख से रहित सुखी होते हैं। जो कोई पूछता है तो वे यथाक्रम ज्यों का त्यों कहते हैं और पूछे विना मूकजड़ वृक्षवत् होरहते हैं। इच्छा अनिच्छा से मुक्त संसार में दुःखी नहीं होते और सबसे हित करके और कोमल उचित वाणी से बोलते हैं। वे यज्ञादि कर्म भी करते हैं परन्तु संसारी कार्य में नहीं डूबते। हे रामजी! जीवन्मुक्तपुरुष युक्त अयुक्त नाना प्रकार की उग्रदशा संयुक्त जगत् की वृत्ति को हाथ में बेल-फलवत् जानता है परन्तु परमपद में आरूढ़ होकर जगत् की गति देखता रहता है और अपना अन्तःकरण शीतल और जीवों को तप्त देखता है। वह स्वरूप में कुछ द्वैत नहीं देखता है परन्तु व्यवहार की अपेक्षा से उसकी महिमा कही है। हे राघव! जिन्होंने चित्त जीता है और परमात्मा देखा है उन महात्मा पुरुषों की स्वभाव वृत्ति मैंने तुम से कही है और जो मूढ़ हैं और जिन्होंने अपना चित्त नहीं जीता और भोगरूपी कीचमें मग्न हैं; ऐसे गर्दभों के लक्षण हमसे नहीं कहते बनते। उनको उन्मत्त कहिये उन्मत्त इस प्रकार होतेहैं कि, महानरककी ज्वाला स्त्री है और वे उस उष्णनरक अग्नि के इन्धन हैं उसी में जलते हैं और नाना प्रकार के अर्थों के निमित्त अनर्थ उत्पन्न करते हैं। भोगों की अनर्थरूप दीनता से उनके चित्त हत हुये हैं और संसारके आरम्भ से दुःखी होते हैं नाना प्रकार के कर्म जो वे करते हैं उनके फल हृदय में धारते हैं और उन कर्मों के अनुसार सुख दुःख भोगतेहैं। ऐसे जो भोग लम्पट हैं उनके लक्षण हम नहीं कहसके। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुषों की दृष्टि पूर्व जो कही है उसीका तुम आश्रय करो। हृदय से ध्येयवासना को त्यागो और जीवन्मुक्त होकर जगत् में बिचरो। हृदय की संपूर्ण इच्छा त्यागके वीतराग और निर्वासनिक होरहो। बाहर सब आचारवान् होकर लोगों में बिचरो और सर्वदिशा और अवस्था का भलीप्रकार विचारकर उनमें

जो अतुच्छ पद हों उनका आश्रय करो पर भीतर सर्व पदार्थोंसे निरस और बाहर इच्छा के संमुख हो। भीतर शीतल रहो और बाहर तपायमान हो; बाहर से सबकार्यों का आरम्भ करो और हृदय से सब आरम्भ से विवर्जित होरहो। हे रामजी! अब तुम ज्ञानवान् हुयेहो और सब पदार्थों की भावना का तुम्हें अभाव हुआ है; जैसे इच्छा हो तैसे विचरो। जब इन्द्रियों का इष्टपदार्थ होआवे तब कृत्रिम हर्षवान् होना और दुःख आय प्राप्त हो तब कृत्रिम शोक करना। क्रिया का आरम्भ करना और हृदय में सारभूत रहना अर्थात् बाहर क्रिया करो पर भीतर अहंकार से रहित आकाशवत् निर्मल रहो। कार्यकलना से रहित होकर जगत् में विचरो और आशारूप फांसी से मुक्त होकर इष्ट अनिष्टसे हृदय में सम रहो और बाहर कार्य करते लोगों में बिचरो। इस चैतन पुरुष को वास्तव में न बन्ध है और न मोक्ष है; मिथ्या इन्द्रजालवत् बन्ध मोक्ष संसार का वर्तना है। सबजगत् भ्रान्तिमात्र है पर प्रमाद से जगत् भासता है। जैसे तीक्ष्ण धूप से मरुस्थल में जल भासता है तैसेही अज्ञान से जगत् भासता है। आत्मा अबन्ध और सर्वव्यापकरूप है, उसे बन्ध कैसे हो और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे कहिये। आत्मतत्त्व के अज्ञान से जगत् भासता है और तत्त्वज्ञान से लीन होजाता है—जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के जाने से सर्प लीन होजाताहै। हे रामजी! तुम तो ज्ञानवान् हुये हो और अपनी सूक्ष्मबुद्धि से निरहंकार हुये हो अब आकाश की नाईं निर्मल स्थित हो रहो। जो तुम असत्यरूप हो तो संपूर्ण मित्र भ्रातभी तैसेही हैं उनकी ममता को त्याग करो क्योंकि, जो आपी कुछ न हुआ तो भावना किसकी करेगा और जो तुम सत्यस्वरूप हो तो अत्यन्त सत्य आत्मा की भावना से दृश्य जगत् की भावना से रहित हो। यह जो अहं मम भोगवासना जगत् में है वह प्रमाद से भासती है और अहं मम और बान्धवों का शुभकर्म आदिकजो जगत्जाल भासता है इनसे आत्मा का कुछ संयोग नहीं तुम क्यों शोकवान् होते हो? तुम आत्मतत्त्व की भावना करो; तुम्हारा सम्बन्ध किसी से नहीं—यह प्रपञ्च

भ्रममात्र है। जो निराकार अजन्मा पुरुष हो उसको पुत्र बान्धव दुःखसुख का क्रम कैसे हो? तुम स्वतः,अजन्मा,निराकार,निर्विकार हो तुम्हारा सम्बन्ध किसीसे नहीं तुम इनका शोक काहेको करते हो? शोक करने का स्थान वह होता है जो नाशरूप हो सो न तो कोई जन्मता है और न मरताहै और जो जन्म मरण भी मानिये तो आत्मा उसको सत्ता देनेवाला है जो इस शरीर के आगे और पीछे भी होगा। आगे जो तुम्हारे बड़े बुद्धिमान्, सात्त्विकी और गुणवान् अनेक बान्धव व्यतीत हुये हैं उनका शोक क्यों नहीं करते? जैसे वे थे तैसेही तो ये भी हैं? जो प्रथम थे वे अबभी हैं। तुम शान्तरूप हो; इससे मोह को क्यों प्राप्त होते हो जो सत्यस्वरूप है उसका न कोई शत्रु है और न वह नाश होता है। जो तुम ऐसे मानते हो कि, मैं अबहूं आगे न हूंगा तौभी वृथा शोक क्यों करते हो? तुम्हारा संशय तो नष्ट हुआ है; अपनी प्रकृति में हर्ष शोक से रहित होकर विचरो और संसार के सुख दुःख में समभाव रहो। परमात्मा व्यापकरूप सर्वत्र स्थित है और उससे कुछ भिन्न नहीं। तुम आत्मा आनन्द आकाशवत् स्वच्छ विस्तृत और नित्य शुद्ध प्रकाशरूप हो जगत् के पदार्थों के निमित्त क्यों शरीर सुखाते हो? सर्व पदार्थ जाति में एक आत्मा व्यापक है—जैसे मोती की माला में एक तागा व्यापक होता है तैसेही आत्मा अनुस्यूत है; ज्ञानवानों को सदा ऐसेही भासता है और अज्ञानियों को ऐसे नहीं भासता। इससे ज्ञानवान् होकर तुम सुखी रहो। यह जो संसरणरूप संसार भासता है वह प्रमाद से सारभूत होगया है। तुम तो ज्ञानवान् और शान्तबुद्धि हो। दृश्य भ्रममात्र संसार का क्या रूप है? भ्रम और स्वप्नमात्र से कुछ भिन्न नहीं। स्वप्न में जो क्रम और जो वस्तु है; सब मिथ्याही है तैसेही यह संसार है। सर्वशक्त जो सर्वात्मा है उसमें जो भ्रममात्रशक्ति है उससे यह संसारमाया उठी है, सो सत्य नहीं है। वास्तव में पूछो तो केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है। जैसे सूर्य प्रकाशता है तो उसको न किसी से विरोध है और न किसी से स्नेह है, तैसेही वह सर्वरूप, सर्वत्र, सर्वदा सर्वका ईश्वर है। उस सत्ता का आभास संवेदन

स्फूर्ति है और उससे नानारूप जगत् भासता है और भिन्न भिन्नरूप निरन्तर ही उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते हैं तैसेही देहधारी जैसी वासना करता है उसके अनुसार जगत् में उपजकर बिचरता और चक्र की नाईं भ्रमता है। स्वर्ग में स्थित जीव नरक में जाते हैं और जो नरक में स्थित हैं वे स्वर्ग में जाते हैं; योनि से योन्यन्तर और द्वीप से द्वीपान्तर जाते हैं और अज्ञान से धैर्यवान् कृपणता को प्राप्त होता है और कृपण धैर्य को प्राप्त होता है। इसी प्रकार भूत उछलते और गिरते हैं और अज्ञान से अनेक भ्रम में प्राप्त होते हैं पर आत्मसत्ता एकरूप, स्थित, स्थिर, स्वच्छ और अपने आपमें अचल है और दुःख, भ्रम उसमें कोई नहीं। जैसे अग्नि में बर्फ़ का कणका नहीं पायाजाता तैसेही जो आत्मसत्ता में स्थित है उसको दुःख क्लेश कोई नहीं होता। उसका हृदय जो शीतल रहता है सो आत्मसत्ता की बड़ाई है। संसार की यही दशा है कि जो बड़े २ ऐश्वर्य से सम्पन्न दृष्टि आते थे वे कितनेक दिन पीछे नष्ट होते देखे हैं। तुम और मैं इत्यादिक भावना आत्मा में मिथ्याभ्रम से भासती हैं। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसेही ये बान्धव हैं, ये अन्य हैं यह मैं हूं इत्यादिक मिथ्यादृष्टि तुम्हारी अब नष्ट हुई है। संसार की जो विचारदृष्टि है जिससे जीव नष्ट होते हैं उसे मूल से काटकर तुम जगत् में क्रिया करो। जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसार में बिचरते हैं तैसेही बिचरो—भारवाहककी नाईं भ्रम में न पड़ना। जहां नाश करनेवाली वासना उठे वहां यह विचार करो कि, यह पदार्थ मिथ्या है तब वह वासना शान्त होजावेगी। यह बन्ध है, यह मोक्षहै, यह पदार्थ नित्यहै इत्यादिक गिनती लघुचित्त में उठती हैं, उदारचित्त में नहीं उठतीं। उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनके आचरण के बिचारने में देहदृष्टि नष्ट होजावेगी। ऐसे बिचारो कि, जहां मैं नहीं वहां कोई पदार्थ नहीं और ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो मेरा नहीं; इस विचार से देहदृष्टि तुम्हारी नष्ट होजावेगी। ऐसे ज्ञानवान् पुरुष संसार के किसी पदार्थ से उद्वेगवान् नहीं होते और किसी पदार्थ के अभावहुये आतुर भी नहीं होते। वे चिदाकाशरूप

सबको मत्य और स्थितरूप देखते हैं; आकाश की नाईं आत्मा को व्यापक देखते हैं और भाई, बान्धव भूतजात को अत्यन्त असत्यरूप देखते हैं। नानाप्रकार के अनेकजन्मों में भ्रम से अनेकबान्धव होगये हैं–वास्तव में त्रिलोकी और बान्धवों में भी बान्धव वही है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनंनामाष्टादशस्सर्गः १८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रसंगपर एक पुरातन इतिहास है जो बड़े भाई ने छोटे भाई से कहा है सो सुनो। इसी जम्बूद्वीप के किसी स्थान में महेन्द्रनाम एक पर्वत है वहां कल्पवृक्ष था और उसकी छाया के नीचे देवता और किन्नर आकर विश्राम करते थे उस पर्वत के बड़े शिखर बहुत ऊंचे थे और ब्रह्मलोक पर्यन्त गये थे जिनपर देवता सामवेद की ध्वनि करते थे। किसी ओर जल से पूर्ण बड़े मेघ बिचरते थे, कहीं पुष्प से पूर्ण लता थीं, कहीं जल के झरने बहते थे और कन्दरा के साथ उछलते मानों समुद्र के तरङ्ग उठते थे, कहीं पक्षी शब्द करते थे, कहीं कन्दरा में सिंह गर्जते थे, कहीं कलर और कदम्ब वृक्ष लगेथे, कहीं अप्सरागण बिचरती थीं, कहीं गङ्गा का प्रवाह चला जाता था और किसी स्थान में महासुन्दर रमणीय रत्नमणि बिराजते थे। वहां गङ्गा के तटपर एक उग्र तपस्वी स्त्रीसंयुक्त तप करता था और उसके महासुन्दर दो पुत्र थे। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तो पुण्यक नामक पुत्र ज्ञानवान् हुआ पर पावन अर्धप्रबुद्ध और लोलुप अवस्था में रहा। जब कालचक्र के फिरते हुये कई वर्ष व्यतीत हुये तो उस दीर्घतपस्वी का शरीर जर्जरीभूत होगया और उसने शरीरकी क्षणभंगुर अवस्था देखकर चित्तकी वृत्ति देहसे विरक्त अर्थात् विदेह होनेकी इच्छाकी। निदान दीर्घतपा की पुर्यष्टका कलनारूप शरीर को त्यागती भई और जैसे सर्प कञ्चुकी को त्याग दे तैसेही पर्वतकी कन्दरा में जो आश्रय था उसमें उसने शरीर को उतारदिया और कलनासे रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्ता स्वरूप में स्थित हुआ और राग द्वेष से रहित जो पद है उसमें प्राप्त हुआ। जैसे धूम्र आकाश में जा स्थितहो तैसेही चिदाकाश में स्थित हुआ। तब मुनीश्वर की स्त्रीने भर्ता का शरीर प्राणों से

रहित देखा और जैसे दण्ड से कमल काटा हो तैसेही चित्त विना शरीर देखती भई। निदान चिरपर्यन्त योगकर्म कर उसने अपना शरीर प्राण और पवन को वश करके त्याग दिया और जैसे भवँरा कमलिनी को त्यागे तैसेही शरीर त्यागकर भर्ताके पद को प्राप्त हुई। जैसे आकाश में चन्द्रमा अस्त होताहै और उसकी प्रभा उसके पीछे अदृष्ट होती है तैसेही दीर्घतपा की स्त्री दीर्घतपा के पीछे अदृष्ट हुई। जब दोनों विदेहमुक्त हुये तब पुण्य जो बड़ा पुत्र था उनके दैहिककर्म में सावधान होकर कर्म करनेलगा पर पावन माता पिता विना दुःख को प्राप्त हो शोक करके उसका चित व्याकुल होगया और वनकुञ्जों में भ्रमनेलगा। पुण्य जो माता पिता की देहादिक क्रिया करताथा जहां पावन शोक से विलाप करताथा आया और भाई को शोकसंयुक्त देखकर पुण्य ने कहा; हे भाई! शोक क्यों करतेहो जो वर्षाकाल के मेघवत् आंशुओं का प्रवाह चलाजाता है? हे बुद्धिमन्! तुम किसका शोक करतेहो? तुम्हारे पिता और माता तो आत्मपदको प्राप्त हुये हैं जो मोक्षपद है। वही सर्वजीवों का स्थान है और ज्ञानवानों का स्वरूप है यद्यपि सबका अपना आप स्वरूप एकै है पर तौभी ज्ञानवान् को इस प्रकार भासता है और अज्ञानी को ऐसे नहीं भासता। वे तो ज्ञानवान् थे और अपने स्वरूप में प्राप्त हुये हैं उनका शोक तुम किस निमित्त करते हो? यह क्या भावना तुमने बांधा है? संसार में जो शोक मोक्षदायक है वह तू नहीं करता और जो शोक करने योग्य नहीं वह करता है। न वह तेरी माता थी; न वह तेरा पिता था और न तू उनका पुत्रहै; कई तेरे माता पिता होगये हैं और कई पुत्र होगये हैं; असंख्यबार तू उनका पुत्र हुआ है और असंख्य पुत्र उन्होंने उत्पन्न किये हैं और अनेक पुत्र, मित्र, बान्धवों के समूह तेरे जन्म २ के बीत गये हैं। जैसे ऋतु २ में बड़े वृक्षों की शाखाओं में फल होते और नष्ट होजाते हैं तैसेही जन्म होते हैं; तू काहेको पिता माता के स्नेह में शोक करता है? जो तेरे सहस्रों माता पिता होकर बीतगये हैं उनका शोक काहेको नहीं करता? जो तू इस जन्म के बान्धवों का शोक करता है तो उनका भी शोककर?

हे महाभाग ! जो प्रपञ्च तुझको दृष्ट आताहै वह जाग्रत्भ्रम है; परमार्थ में न कोई जगत् है, न कोई मित्र है और न कोई बान्धव है। जैसे मरुस्थल में बड़ी नदी भासती है परन्तु उसमें जलका एक बूंद भी नहीं होता तैसेही वास्तव में जगत् कुछ नहीं। बड़े२ लक्ष्मीवान् जो छत्र चामरों से सम्पन्न शोभते हैं वे विपर्यय होंगे क्योंकि, यह लक्ष्मी तो चञ्चलस्वरूप है कोई दिनों में अभाव होजाती है। हे भाई ! तू परमार्थ दृष्टि से विचार देख, न तू है और न जगत् है; यह दृश्य भ्रान्तिरूप है इसको हृदय से त्याग। इसी मायादृष्टि से बार २ उपजता और बिनशता है। यह जगत् अपने संकल्पसे उपजा है, इसमें सत्पदार्थ कोई नहीं। अज्ञानरूपी मरुस्थल में जगत्रूपी नदी है और उसमें शुभ अशुभरूपी तरङ्ग उपजते और फिर नष्टहोजातेहैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधवर्णनंनामैकोनविंशतितमस्सर्गः॥ १९॥

पुण्य बोले; हे भाई ! कई माता और कई पिता हो होकर मिट गये हैं। जैसे वायु से धूल के कणके उड़ते हैं तैसेही बान्धव हैं; न कोई मित्र है; और न कोई शत्रु है सम्पूर्ण जगत् भ्रान्तिरूप है और उसमें जैसी भावना फुरती है; तैसेही हो भासती है बान्धव, मित्र, पुत्र आदिकों में जो स्नेह होता है सो मोहसे कल्पित है और अपने मन से माता पितादिक संज्ञा कल्पी है। जगत्प्रपञ्च में जैसी संज्ञा कल्पता है तैसेही हो भासती है; जहां बान्धव की भावना होती है वहां बान्धव भासता है और जहां और की भावना होती है वहां और ही हो भासता है। जो अमृत में विष की भावना होती है तो अमृत भी विष होजाता है सो कुछ अमृत में विष नहीं भावनारूप भासता है; तैसेही न कोई बान्धव है और न कोई शत्रु है, सर्वदा काल विद्यमान एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है उसमें अपने और और की कल्पना कोई नहीं और जो कुछ देहादि हैं वे रक्त मांसादि के समूहसे रचे हैं उनमें अहंसत्ता कौन है और अहंकार, चित्त, बुद्धि और मन कौन है ? परमार्थदृष्टि से यह तो कुछ नहीं है, विचार किये से न तू है, न मैं हूं, यह सब मिथ्या ज्ञान से भासते हैं। एकअनन्त चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है उसमें

तेरी माता कौन है और पिता कौन है, यह सर्व मिथ्याभ्रम से भासता है, वास्तवमें कुछ नहीं। शरीर से देखिये तो जो कुछ शरीरहै वह पञ्चतत्त्वों से रचा जड़रूप है, उसमें चैतन्य एकरूपहै और अपना और पराया कौन है। इस भ्रमदृष्टि को त्यागके तत्त्व का विचार करो; मिथ्याभावना करके माता पिता के निमित्त क्यों शोकवान् हुये हो ? जो सम्यक्दृष्टि का आश्रयकरके उस स्नेह का शोक करते हो तो और जन्मों के बान्धव और मित्रों का शोक क्यों नहीं करते ? अनेक पुष्पों और लताओं में तू मृगपुत्र हुआ था, उस जन्म के तेरे अनेक मित्र बान्धव थे उनका शोक क्यों नहीं करता ? अनेक कमलों संयुक्त तालाब में हाथी बिचरते थे वहां तू हाथी का पुत्र था; उन हस्ति बान्धवों का शोक क्यों नहीं करता ? एक बड़े वन में वृक्ष लगे थे और तेरे साथ फल पत्र हुये थे और अनेक वृक्ष तेरे बान्धव थे, उनका शोक क्यों नहीं करता ? फिर नदी तालाब में तुम मच्छ हुये थे और उसमें मच्छयोनि के बान्धव थे; उनका शोक क्यों नहीं करता ? दशार्णव देश में तू काक और वानर हुआ, तुषार्णदेश में तू राजपुत्र हुआ और फिर वनकाक हुआ, बङ्गदेश में तू हाथी हुआ त्रिराजदेश में तू गर्दभ हुआ; मालवदेश में सर्प और वृक्ष हुआ और बङ्गदेश में गृद्ध हुआ, मालवदेश के पर्वत में पुष्पलता हुआ और मन्दराचल पर्वत में गीदड़ हुआ; कोशलदेश में ब्राह्मण हुआ; बङ्गदेश में तीतर हुआ; तुषारदेश में घोड़ा हुआ; कीट अवस्था में हाथी हुआ; एक नीच ग्राम में बछरा हुआ और पन्द्रह महीने वहां रहा, एक वनमें तड़ाग था वहां कमलपुष्प में भ्रमरा हुआ और जम्बूद्वीप में तू अनेकबार उत्पन्न हुआ है। हे भाई ! इस प्रकार वासनापूर्वक वृत्तान्त मैंने कहा है। जैसी तेरी वासना हुई है तैसे तूने जन्म पाये हैं। मैं सूक्ष्म और निर्मल-बुद्धि से देखता हूं कि, ज्ञान विना तूने अनेक जन्म पाये हैं। उन जन्मों को जानके तू किस २ बान्धव का शोक करेगा और किसका स्नेह करेगा ? जैसे वे बान्धव थे तैसेही यह भी जानले। मेरे भी अनेक बान्धव हुये हैं; जिन २ में मैंने जन्म पाया है और जो २ बीत गये हैं तैसेही

सब मेरे स्मरण में आते हैं और अब मुझको अद्वैत ज्ञान हुआ है। हे भाई! त्रिगगदेश में मैं तोता हुआ; तड़ाग के तटपर हंस हुआ; पक्षियों में काक हुआ; बेल हुआ; बङ्गदेश में वृक्ष हुआ; इस वन पर्वत में बड़ा उष्ट्र होकर बिचरा; पौंड्रदेश में राजा हुआ और सह्याचल पर्वत की कन्दरा में भेड़िया हुआ जहां तू मेरा बड़ा भाई था। फिर मैं दश वर्ष मृग होकर रहा; पांच महीने तेरा भाई होकर मृग रहा सो तेरा बड़ा भ्राता हूं। इस प्रकार ज्ञान से रहित वासना कर्म के अनुसार कितने जन्मों में हम भ्रमते फिरे हैं। मैंने तुझ से सब कहा है और सब मुझको स्मरण है। इस प्रकार जगत्जाल की स्थिति मैंने तुझ से कही है। तेरे और मेरे अनेक जन्म के माता, पिता, भाई और मित्र हुये हैं उनका शोक तू क्यों नहीं करता? यह संसार दुःख सुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारण सबको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होजाओ। यह सब प्रपञ्च भ्रान्तिरूप है; इनकी वासना त्याग जब अहंकार वासना को त्याग करे तब उस पद को प्राप्त होगे जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं। इससे, हे भाई! यह जो जीवभाव अर्थात् जन्म, मरण, ऊर्ध्व जाना और फिर गिरना व्यवहार है उसमें बुद्धिमान् शोकवान् नहीं होते; वे दुःख की निवृत्ति के अर्थ अपना स्वरूप स्मरण करते हैं जो भाव, अभाव और जरा मरण विना नित्य शुद्ध परमानन्द हैं। तू उसको स्मरणकर, और मूढ़ मत हो; तुझको न सुख है, न दुःख है; न जन्म है, न मरण है; न माता है, न पिता है; तू तो एक अद्वैतरूप आत्मा है और किसी से सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि; कुछ भिन्न नहीं है, हे साधो! यह जो नाना प्रकार का संसार विषय-संयुक्त यन्त्र है इसको अज्ञानरूप नटुआ ग्रहण करता है और इष्ट अनिष्ट से बन्धायमान होता है। जो आत्मदर्शी पुरुष हैं उनको कुछ क्रिया स्पर्श नहीं करती; वे केवल सुखरूप हैं और जो अज्ञानी हैं वे देह इन्द्रियों के गुणों में तद्रूप होजाते हैं और इष्ट अनिष्ट से सुखदुःख के भोक्ता होते हैं। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे देखनेवाले साक्षीभूत होते हैं; करते हुये भी अकर्तारूप हैं और इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष से रहित हैं। जैसे

दर्पण में प्रतिबिम्ब आपड़ता है परन्तु दर्पण भले बुरे रङ्ग से रञ्जित नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् राग द्वेष से रञ्जित नहीं होता। सब इच्छा और भय कलना से रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है और पुत्र, कलत्र, बान्धवों के स्नेह से रहित है और उसका हृदय कमल सर्व इच्छा और अहं मम से रहित अपने स्वरूप में सन्तुष्टवान् होता है। इससे मिथ्या देहादिकों की भावना को त्यागकर अपने नित्य, शुद्ध, शान्त और परमानन्दस्वरूप में तू भी स्थित हो। तू तो परब्रह्म और निर्मलरूप है॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधोनाम त्रिंशतितमस्सर्गः ३०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार पुण्य ने पावन से बोध उपदेश किया तब पावन बोधवान् हुआ। तब दोनों ज्ञान के पारगामी और निरिच्छित आनन्दित पुरुष होकर चिरकाल पर्यन्त बिचरते रहे और फिर दोनों विदेहमुक्त निर्वाण पद को प्राप्त हुये। जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही प्रारब्ध कर्म के क्षीण हुये दोनों विदेहमुक्त हुये। हे रामजी! इसी प्रकार तू भी जान। जैसे वे मित्र, बान्धव, धनादिक के स्नेह से रहित होकर बिचरे तैसेही तुम भी स्नेह से रहित होकर बिचरो और जैसे उन्होंने विचार किया था तैसेही तुम भी करो। इस मिथ्यारूप संसार में किसकी इच्छा करे और किसका त्याग करे; ऐसे विचारकर अनन्त इच्छा और तृष्णा का त्याग करना, यही औषध है; तृष्णा की इच्छा का पालना औषध नहीं क्योंकि; पालने से पूर्ण कदाचित् नहीं होती। जो कुछ जगत् है वह चित्त से उत्पन्न हुआ है और चित्त के नष्ट हुये संसार दुःख नष्ट होजाता है। जैसे काष्ठ के पानेसे अग्नि बढ़ता जाता है और काष्ठ से रहित शान्त होजाता है तैसेही चित्त की चिन्तना से जगत् विस्तार पाता है और चिन्तना से रहित शान्त होजाता है। हे रामजी! ध्येय वासनावान् त्यागरूपी रथपर आरूढ़ होकर रहो, करुणा दया और उदारता संयुक्त होकर लोगों में बिचरो और इष्ट अनिष्टमें राग द्वेषसे रहितहो। यह ब्रह्मस्थिति मैंने तुमसे कही। निष्काम, निर्दोष और स्वस्थरूप को पाकर फिर मोह को नहीं प्राप्त होता। परम

आकाशही इसका हृदयमात्र विवेकहै और बुद्धिइसकी सखीहै जिनकेनिकट विवेक और बुद्धि है वे परमव्यवहार करते भी संकट को नहीं प्राप्त होते; इससे तुम परम विवेक और बुद्धि का संग लेकर जगत् में बिचरोगे तब संकट और दुःख से मोहित न होगे। नाना प्रकार के दुःख, संकट, स्नेह आदिक विकाररूप जो समुद्र है उसके तरने के निमित्त एक अपना धैर्य-रूपी बेड़ा है और कोई उपाय नहीं सो धैर्य क्या है—दृश्य जगत् से वैराग्य और सत् शास्त्र का विचार। इन श्रेष्ठ गुणों के अभ्यास से आत्मपद की प्राप्ति होती है। वह आत्मपद त्रिलोकी के ऐश्वर्यरूपी रत्नों का भण्डार है। जो त्रिलोकी के ऐश्वर्य से भी नहीं प्राप्त होता वह वैराग्य, विचार, अभ्यास और चित्त के स्थिर करने से होता है। जब तक मनुष्य जगत कोष में उपजता है और मन तृष्णारूपी ताप से रहित नहीं होता तबतक कष्ट है और जब आत्मविवेक से मन पूर्ण होता है तब सब जगत अमृत-रूप भासता है। जैसे जूती के पहिरने से सब पृथ्वी चर्म से वेष्टितसी हो जाती है तैसे ही पूर्णपद इच्छा और तृष्णा के त्यागने से पाता है। जैसे शरद्काल का आकाश मेघों से रहित निर्मल होता है तैसे ही इच्छा से रहित पुरुष निर्मल होता है। जिन पुरुषों के हृदय में आशा फुरती है उनके वश हुये चित्त शून्य होजाता है और जैसे अगस्त्य मुनि ने समुद्र को पान किया था तब समुद्र जल से रहित होगया था तैसे ही आत्मजल से रहित समुद्रवत् चित्त शून्य होजाता है। जिस पुरुष के चित्तरूपी वृक्ष में तृष्णारूपी चञ्चल मर्कटी रहती है उसको वह स्थिर होने नहीं देती और सदा शोभायमान होतीहै और जिसका चित्त तृष्णा से रहित है उस पुरुष को तीनों जगत् कमल की कली के समान होजाते हैं, योजनों के समूह गोपदवत् सुगम होजाते हैं और महाकल्प अर्ध निमेषवत् हो जाता है। हे रामजी! चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी ऐसा शीतल नहीं और केले का वृक्ष और चन्दन भी ऐसा शीतल नहीं जैसा शीतलचित्त तृष्णा से रहित होता है। पूर्णमासी का चन्द्रमा और क्षीरसमुद्र भी ऐसा सुन्दर नहीं और लक्ष्मी का मुख भी ऐसा नहीं जैसा इच्छा से रहित मन शोभायमान

होजाता है। जैसे चन्द्रमा की प्रभा को मेघ ढांप लेता है और शुद्धस्थानों को अपवित्र लेपन मलीन करता है तैसे ही अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषों को मलीन करती है। चित्तरूपी वृक्ष के बड़े २ टास दिशा विदिशा में फैल रहे हैं सो आशारूप हैं, जब विवेकरूपी कुल्हाड़े से उनको काटेंगे तब अचित पद की प्राप्ति होगी और तभी एक स्थानरूपी चित्त रहेगा अविवेक और अधैर्य तृष्णा शाखा संयुक्त हैं उनकी अनेक शाखा फिर होंगी इसलिये आत्मधैर्य को धरो कि, चित्त की वृद्धि न हो। उत्तम धैर्य करके जब चित्त नष्ट होजावेगा तब अविनाशी पद प्राप्त होगा। हे रामजी! उत्तम हृदय क्षेत्र में जब चित्त की स्थिति होतीहै तब आशारूपी दृश्य नहीं उपजने देती केवल ब्रह्मरूप शेष रहताहै। जब तुम्हारा चित्त वृत्ति से रहित अचितरूप होगा तब मोक्षरूप विस्तृतपद प्राप्त होगा। चित्तरूपी उलूक पक्षी की तृष्णारूपी स्त्री है। ऐसा पक्षी जहां बिचरता है तहां अमङ्गल फैलाता है। जहां उलूक पक्षी बिचरते हैं वहां उजाड़ होता है विवेकादि जिससे रहित होगये हैं ऐसे चित्त की वृत्ति से तुम रहित होरहो। ऐसे हो कर विचरोगे तब अचिन्त्यपद को प्राप्त होगे। जैसी जैसी वृत्ति फुरती है तैसाही तैसा रूप जीव होजाता है; इस कारण चित्त उपशम के निमित्त तुम वही वृत्ति धरो जिससे आत्मपद की प्राप्ति हो। हे महात्मापुरुष! जिस को संसार के पदार्थों की इच्छा और ईर्षणा उपशम हुई है और जो भाव अभाव से मुक्त हुआ है वह उत्तमपद पाताहै और जिसका चित्त आशा-रूपी फांसी से बांधा है वह मुक्त कैसे हो? आशा संयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता और सदा बन्धायमान रहता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशोनामैक-
विंशतितमस्सर्गः॥ २१ ॥

वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको बुद्धि से बिचारो। रामजी बोले; हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता! तुम्हारे प्रसाद से जो कुछ जानने योग्यथा वह मैंने जाना; पानेयोग्य पदपाया और निर्मल पद में विश्राम किया भ्रमरूपी मेघ से रहित शरत्काल के आकाश-

वत् मेरा चित्त निर्मल हुआ है; मोहरूपी अहंकार नष्ट होगया है; अमृत से हृदय पूर्णमासी के चन्द्रवत् शीतल हुआ है और संशयरूपी मेघ नष्ट होगयाहै परन्तु आपके वचनरूपी अमृतको पान करता मैं तृप्त नहीं होता। जिस प्रकार बलि को विज्ञानबुद्धि भेद प्राप्त हुआ है, बोध की वृद्धि के निमित्त वह मुझसे ज्यों का त्यों कहिये। नम्रभूत शिष्यप्रति कहते हुये बड़े खेद नहीं मानते। वशिष्ठजी बोले; हे राघव! बलिका जो उत्तम वृत्तान्त है वह मैं कहताहूं सुनो; उसमे निरन्तर बोध प्राप्त होगा। हे रामजी! इस जगत्के नीचे पातालहै। वह स्थान महाक्षीरसमुद्रकी नाईं सुन्दर उज्ज्वल है और वहां कहीं महासुन्दर नागकन्या बिराजती हैं; कहीं विषधर सर्प जिनके सहस्रशीश हैं बिराजते हैं; कहीं दैत्यों के पुत्र रहते और कटकट शब्द करते हैं; कहीं सुन्दर सुख के स्थान हैं; कहीं जीवों के परम्परा समूह नरकों में जलते हैं और कहीं दुर्गन्ध के स्थान हैं। सात पाताल हैं उन सबमें जीव स्थित हैं कहीं रत्नों से खचित स्थान हैं; कहीं कपिलदेवजी, जिनके चरण कमलों पर देवता और दैत्य शीश धरते हैं, बिराजते हैं और कहीं रत्नों के सुगन्धित बाग लगे हैं। ऐसी दो भुजाओं से पाली हुई पृथ्वी में दानवों में श्रेष्ठ विरोचन का पुत्र राजा बलि रहता था जिसने सर्वदेवताओं और विद्याधरों और किन्नरों को लीला करके जीता था और त्रिलोकी अपने वश कर छोड़ी थी। सब देवताओं का राजा इन्द्र उसके चरण सेवन की वाञ्छा करता है; त्रिलोकी में जो जाति २ के रत्न हैं वे सब उसके विद्यमान रहते हैं और सब शरीरों की रक्षा करने और भावना के धर्मों के धरनेवाले विष्णुदेव द्वारपाल हैं। ऐरावत हाथी जिसके गण्डस्थलसे मद झरता है उसकी वाणी सुन ऐसा भयवान् होता है जैसे मोर की वाणी सुनकर सर्प भयवान् होता है उसका ऐसा तेज था जैसे सप्तसमुद्रों का जल कुहीड़ शोष लेती है और जैसे प्रलयकाल के द्वादश सूर्यों से समुद्र सूखने लगता है। उसने ऐसे यज्ञ करे जिसके क्षीर घृत की आहुतिका धुआं मेघ बादल होकर पर्वतों पर बिराजा। जिस की दृढ़ दृष्टि देखकर कुलाचल पर्वत भी नम्रीभूत होता था। जैसे फूलों

पूर्णलता नमती है तैसेही लीला करके उसने भुवन को विस्तार सहित ता और त्रिलोकी को जीतकर दश कोटि वर्ष पर्यन्त राजा बलि राज्य ता रहा। राजा बलि ने युगों के समूह व्यतीत हुये देखे थे और अनेक ता और दैत्य भी उपजते मिटते अनेक बार देखे थे। त्रिलोकी के नेक भोग भी उसने भोगे थे निदान उनसे उद्वेग पाकर सुमेरु के शिखर एक ऊंचे झरोखे में अकेला जा बैठा और संसार की स्थिति की न्तना करनेलगा कि, इस बड़े चक्रवर्ती राज्यसे मुझको क्या प्रयोजन ? यद्यपि त्रिलोकी का राज्य बड़ा है तौ भी इसमें आश्चर्य क्या है। समें मैं चिरकाल भोग भोगता रहा हूं परन्तु शान्ति न हुई। ये भोग पजकर फिर नष्ट होजाते हैं, इन भोगों से मुझे शान्ति सुख प्राप्त नहीं आ पर बारम्बार मैं वही कर्म और वही व्यवहार करताहूं और दिन ात्रि वही क्रिया करने में लज्जा भी नहीं आती। वही स्त्री आलिङ्गन रती, फिर भोजन करना; पुष्पों की शय्यापर शयन करना और क्रीड़ा रनी; ये कर्म बड़ों को लज्जा के कारण हैं। वही निरस व्यवहार फिर रना जो एक बार निरस हुआ और उस काल में तृप्त करता है; फिर ारम्बार दिन २ करते हैं। यह मैं मानता हूं कि, यह काम बुद्धिमानों ो हँसने योग्य और लज्जा का कारण है। जीवों के चित्त में वृथा संकल्प िकल्प उठते हैं—जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिटते हैं तैसेही यह कल्प और इच्छा जाल जो उठते और मिटते हैं सो उन्मत्त की नाईं ीवों की चेष्टा है। यह तो हँसी करने योग्य बालकों की लीला है और ूर्खता से अनर्थ फैलाती है। इसमें जो कुछ बड़ा उदार फल हो वह मैं नहीं देखता बल्कि इसमें भोगों से भिन्नकार्य कुछ नहीं मिलता इस लिये जो कुछ इससे रमणीय और अविनाशी हो उसको शीघ्रही चिन्तन करूं। ऐसे विचार कर कहने लगा कि, मैंने प्रथम भगवान् विरोचन से पूछा था। मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्व का ज्ञाता था और सर्वलोकों में याथा। उससे मैंने प्रश्न किया था कि, हे भगवन्, महात्मन्! जहां ब दुःखों और सुखों का अन्त होजाता है और सर्वभ्रम शान्त होजाता

है वह कौन स्थान है? वह पद मुझसे कहिये जहां मनका मोह नाश होजाता है; सर्वइच्छा से मुक्त होताहै और रागद्वेषसे रहित जिसमें सर्वदा विश्राम होता है फिर कुछ क्षोभ नहीं रहता। हे तात! वह कौन पद है जिसके पाये से और कुछ पाना नहीं रहता और जिसके देखे से और कुछ देखना नहीं रहता? यद्यपि जगत् के अत्यन्त भोग पदार्थ हैं तौभी सुख दायक नहीं भासते हैं क्योंकि; क्षोभ करते हैं और उनसे योगीश्वरों के मन भी मोहित होकर गिर पड़ते हैं। हे तात! जो सुख सुन्दर विस्तीर्ण आनन्दहै वह मुझसे कहिये। उसमें स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे विरोचनवर्णनं नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः॥ २२॥

विरोचन बोले, हे पुत्र! एक अतिविस्तीर्ण विपुल देश है उसमें अनेक सहस्र त्रिलोकियां भासती हैं। वहां समुद्र, जल, धारा, पर्वत, वन, तीर्थ, नदियां, तालाव, पृथ्वी, आकाश, नन्दनवन, पवन, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्यलोक, देश, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, कमलों की शोभा, काष्ठ, तृण, चर, अचर, दिशा, ऊर्ध्व, अध, मध्य, प्रकाश, तम, अहं, विष्णु, इन्द्र, रुद्रादिक नहीं हैं; केवल एकही है—जो महान्ता नानाप्रकार प्रकाश को धरनेवाला है; सबका कर्ता, सर्वव्यापक है और सर्वरूप तूष्णींभाव से स्थित है। उसने सब मन्त्रियों सहित एक मन्त्री संकल्प किया। वह मन्त्री जो न बने उसको शीघ्रही बनालेता है और जो बने उसको न बनाने का भी समर्थ है वह आपसे कुछ नहीं भोगता और सब जाननेको समर्थ है। केवल राजाके अर्थ वह सर्व कार्य का कर्ता है। यद्यपि वह आप अज्ञ है तौ भी राजा के बल से तनुता से ज्ञाता और कार्य करता है। यह सब कार्यों को करता है और उसका राजा एकता में केवल अपने आप में स्थित है। बलिने पूछा, हे प्रभो! आधि-व्याधि दुःखों रहित जो प्रकाशवान् है वह देश कौन है, उसकी प्राप्ति किस साधन से होती है और आगे किसने पाया है? ऐसा मन्त्री कौन है और वह महाबली राजा कौन है जो जगत् जाल संयुक्त हमने भी नहीं जीता?

हे देव! यह अपूर्व आख्यान तुमने कहा है जो आगे मैंने नहीं सुना था। मेरे हृदय आकाश में संशयरूपी बादल उदय हुआ है सो वचनरूपी पवन से निवृत्त करो। विरोचन बोले, हे पुत्र! उस देश का मन्त्री भगवान् और अनेक कल्प के देवता और असुरगणों से वश नहीं होता; सहस्रनेत्र जो इन्द्र हैं उनके वश भी नहीं होता; यम, कुबेर उसे वश कर नहीं सके और देवता और असुरों से भी जीता नहीं जाता। मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक खड्ग उस पर चलाये कुण्ठित होजाते हैं—जैसे पाषाण पर चलाये से कमल कुण्ठित होजाते हैं। वह मन्त्री अस्त्र और शस्त्र से वश नहीं होता और बड़े युद्धकर्मों से भी नहीं पाया जाता। देवता और दैत्य सबको उसने वश किया है; विष्णु पर्यन्त देवता और हिरण्यकशिपु आदिक असुर उसने डाल दिये हैं। जैसे प्रलयकाल का पवन सुमेरु के कल्पवृक्ष को गिरा देता है। प्रमाद से इस त्रिलोकी को वशकर चक्रवर्ती राजावत् वह स्थित है और सुर असुरों के समूह उससे भासते हैं। यद्यपि वह गुह्य और गुणहीन है तो भी दुर्मति, दुष्ट अहंकार और क्रोध उससे उदय होते हैं। देवता और दैत्यों के समूह फिर फिर उपजाता है सो इसकी क्रीड़ा है। ऐसा मन्त्रों से संयुक्त मन्त्री है। हे पुत्र! जब उसके राजा को वश कीजिये तब उसके मन्त्री को वश करना सुगम होता है। राजा को वश किये विना मन्त्री वश नहीं होता; कभी भीतर रहता है कभी बाहर जाता है। जिस काल में राजा की इच्छा होती है कि मन्त्री अपने को जीते तब यत्न विना जीत लेताहै। वह ऐसा बली मल्ल है जिससे तीनों जगत् उल्लासको प्राप्तहुयेहैं वह मन्त्री मानों सूर्य है जिसके उदय हुये से त्रिलोकीरूपी कमलों की खानि विकाश को प्राप्त होती है और जिसके लयहुये से जगत्रूपी कमल लय होजाते हैं। हे पुत्र! यदि उसके जीतने की तुझको शक्ति है तब तो तू पराक्रमवान् है और यदि मोह से रहित एकत्र बुद्धि हो उससे एकको जीतसकेगा तब तू धैर्यवान् है और तेरी सुन्दर वृत्ति है क्योंकि; उस जीतने से जो नहीं जीता उस पर जीत पाताहै और जो उसको नहीं जीता पर और और लोक सब जीतेहैं तौभी

जीते अजीत होजावेंगे। इस कारण जो तू अनन्तसुख चाहता है तो जो नित्य अविनाशी है उसके जीतने के निमित्त यत्न से स्थित हो और बड़े कष्ट और चेष्टा करके भी उसको वशकर। देवता, दैत्य, यक्ष, मनुष्य, महासर्प और किन्नरों संयुक्त अतिबली हैं तौ भी सर्व ओर से यत्न करने से वश होते हैं। इससे उसको वश कर॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तान्त विरोचन-
गाथानाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः॥ २३॥

बलिने पूछा, हे भगवन्! किस उपाय से वह जीता जाता है और ऐसा महावीर्यवान् मन्त्री कौन है और राजा कौन है? यह वृत्तान्त सब मुझसे शीघ्रही कहिये कि, उपाय करूं। विरोचन बोले, हे पुत्र! स्थित हुआ भी त्यागने योग्य है। ऐसा मन्त्री जिस उपाय से जीतिये सो भली प्रकार कहताहूं तू सुन। उस युक्ति के ग्रहण किये से शीघ्रही वश होता है; युक्ति विना वश नहीं होता। जैसे बालक को युक्ति से वश करते हैं तैसे ही जो पुरुष युक्ति से उस मन्त्री को वश करता है उसको राजा का दर्शन होता है। और उससे परमपद पाता है। जब राजा का दर्शन होता है तब मन्त्री वश होजाता है और उस मन्त्री के वश किये से फिर राजा का दर्शन होता है। जबतक राजा को न देखा तबतक मन्त्री वश नहीं होता और जबतक मन्त्री को वश नहीं किया तबतक राजा का दर्शन नहीं होता। राजा के देखे विना मन्त्री का जीतना कठिन है और मन्त्री के जीते विना राजा को देखना कठिनहै। इसकारण दोनों का इकट्ठा अभ्यासकर। राजा का दर्शन और मन्त्री का जीतना अपने पुरुष प्रयत्न और शनैः शनैः अभ्यास से होता है और दोनों के सम्पादन से मनुष्य शुभता को प्राप्त होता है। जब तू अभ्यास करेगा तब उस देश को प्राप्त होगा; यह अभ्यास का फल है। हे दैत्यराज! जब उसको पावेगा तब रञ्चक भी शोक तुझको न रहेगा और सब यत्नों से शान्त होकर नित्य प्रफुल्लित और प्रसन्न रहेगा। जो साधु जन हैं वे सर्वसंशय से रहित उस देश में स्थित होते हैं। हे पुत्र! सुन, वह देश अब मैं तुझसे

कट करके कहता हूं। देश नाम मोक्ष का है जहां सर्वदुःख नष्ट होजाते
और राजा उस देश का आत्म भगवान् है जो सर्वपदों से अतीत है।
स महाराजा ने मन्त्री मनको किया है सो मन परिणाम को पाकर सर्व
ोर से विश्वरूप हुआ है। जैसे मृत्तिका का पिण्ड घटभाव को प्राप्त
आ है और जैसे धूम्र बादल को धरता है तैसेही मनने विश्वरूप धरा है।
स मन को जीतेसे सब सुख विश्वके जीतपाताहै। मनका जीतना
ठिनहै परन्तु युक्ति से वश होता है। बलिने पूछा, हे भगवन्! उस
न के वश करने की युक्ति मुझ से कहिये। विरोचन बोले, हे पुत्र!
ब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के रसकी सर्वदा सर्वओर से आस्था
यागनी अर्थात् नाशवन्त और भ्रमरूप जानना, यही मन के जीतने
ी परम युक्ति है। मनरूपी हाथी विषयरूपी मद से मस्त है वह इस
ुक्ति से शीघ्रही दमन होजाता है। यह युक्ति कठिनहै और अतिदुःख
प्राप्त होती है परन्तु अभ्यास से सुखेनही प्राप्त होजाती है। क्रम से
भ्यास किये से और विरक्तता से यह युक्ति सर्वओर से प्रकट होती
—जैसे रसवान् पृथ्वी से लता उपजती हैं तैसेही जो २ शठ जीव हैं वे
स की वाञ्छा करते हैं परन्तु अभ्यास विना उन्हें नहीं प्राप्त होती और
भ्यासवान् को प्रकट होती है। इससे तुमभी अभ्यास सहित युक्ति का
ाश्रय करो। जबतक विषयों से विरक्तता नहीं उपजती तबतक संसार
री वन के दुःखों में भ्रमता है पर विषयोंसे विरक्तता अभ्यास विना
िसीको नहीं प्राप्त होती। जैसे अभ्यास विना नहीं पहुंचता तैसेही जब
ात्मा ध्येय को पुरुष निरन्तर धरता है तब अभ्यासवान् की वृत्ति विषयों में
प्रतीत होती है। जैसे जल के अभ्याससे बेल को सींचते हैं तब लता वृद्धि
ोती है; ऐसेही पुरुषार्थ से सब कार्यों की प्राप्ति होती है; भिन्न नहीं होता।
ह निश्चय किया है कि जो क्रिया आपसे आप करिये उसका फल
वश्य प्राप्त होता है। वही लोगों में देव कहाता है। जो अवश्य होना
उसकी जो नीति है वह दूर नहीं होती उसेही देवशब्द कहिये वा
ीति कहिये पर अपनेही पुरुषार्थ का फल पाता है—जैसे मरुस्थल में

भ्रम से जल भासता है और सम्यक्ज्ञान से भ्रम निवृत्त होजाताहै। इस देव और नीति को अपने पुरुषार्थ से जीतो। जैसा पुरुषार्थ से संकल्प दृढ़ करता है तैसाही भासता है। जैसे आकाश को नीलता ग्रहण करती है पर वह नीलता कुछ है नहीं; तैसेही सुख दुःख देनेवाला और कोई नहीं; जैसा संकल्प करताहै तैसाही हो भासता है और जैसी नीति होती है तैसाही संकल्प करताहै उसी नीति से मिलकर कदाचित् कर्म करताहै तो उससे इस जगत्कोश में जीव शरीर धारकर फिरताहै—जैसे आकाश में पवन फिरता है पर वह कदाचित् नीति से और कदाचित् नीति से रहित फिरता है; तैसेही दोनों सीढ़ियां मन में होती हैं। आकाशरूपी मन में नीति अनीतिरूपी वायु फिरताहै इस कारण, जबतक मन है तबतक नीति है और देव है। मन से रहित न नीति है, न देव है; मन के अस्त हुये जो है वही रहता है; तैसेही जीवपुरुष से पुरुषार्थ कर जैसा संकल्प इस लोक में दृढ़ होता है सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता। हे पुत्र! अपने पुरुषार्थ विना यहां कुछ सिद्ध नहीं होता; इससे परम पुरुषार्थ करके विषयसे विरक्त हो। जबतक विरक्तता नहीं उपजती तबतक परम सुख के देनेवाली मोक्षपदवी और संसारभय का नाशकर्त्ता नहीं प्राप्त होता। जबतक विषयों में मोहकारण प्राप्ति है तबतक संसार दशा डोलायमान करती है; दुःखदायक होती है और सर्प की नाईं विष फैलाती है; अभ्यास किये विना निवृत्त नहीं होती। फिर बलिने पूछा कि, हे सब असुरों के ईश्वर! चित्त में भोगों से विरक्तता कैसे स्थित होती है; जो जीवों को दीर्घजीनेका कारणहै? विरोचन बोले; हे पुत्र! जैसे शरत्काल की महालता में फूल से फल परिपक्व होता है तैसेही आत्मावलोकन करनेवाले पुरुष को भोगों में विरक्तता प्रकट होती है। आत्मा के देखने से विषयोंकी प्रीति निवृत्त होजाती है और हृदय में स्थिति प्राप्त होती है। जैसे कमलों के उदर में सुन्दरशोभा स्थित होती है तैसेही बीजलक्ष्मी स्थित होती है। इससे सूक्ष्मबुद्धि विचारवेत्ता ने आत्मदेव को देखकर विषयों की प्रीति की है उसे सब ओरसे निवारो।

थम दिन के दो भाग भोग कर्म देह के कार्य करो; एक भाग शास्त्रों का श्रवण विचार करो और एक भाग गुरुकी सेवा टहल करो। जब कुछ विचार संयुक्त मनहो तब दो भाग वैराग्य संयुक्त शास्त्रों को विचारो और दो भाग ध्यान और गुरुके पूजन में रहो। इस क्रम से जीव ज्ञानकथा के योग्य होताहै और क्रम से निर्मल भाव को ग्रहण करता है; तब शनैशनैः उत्तमपद को भावना होती है। इसप्रकार शास्त्रों के अर्थ विचार में चित्तरूपी बालक को परचावो। जब परमात्मा में ज्ञान प्राप्त होताहै तब कर्मफांसी से छूटजाता है। जैसे चन्द्रमा के उदयहुये चन्द्रकान्तमणि द्रवीभूत होताहै तैसेही वह शीतल हो विराजताहै। बुद्धि के विचार से सर्वदा शम और आत्मदृष्टि देखनी और तृष्णा का बन्धन त्यागना यह परस्पर कारणहै। परमात्मा के देखनेसे तृष्णा दूर होजाती है और तृष्णाके त्यागसे आत्मा का दर्शन होता है। जैसे नौकाको केवट लेजाता है और नौका केवट को लेजाती है तैसेही परमात्मा का दर्शन होता है और भोगों का त्याग होता है। पर ब्रह्म में जो अनन्त विश्रान्ति नित्य उदय होती है सो मोक्षरूप आनन्द उदय होता है उसका अभाव कदाचित् नहीं होता। जीवों को आनन्द आत्मविश्रान्तिके सिवा न तपोंसे प्राप्त होता न दानोंसे प्राप्त होता है और न तीर्थों से प्राप्त होता है। जब आत्मस्वभाव का दर्शन होता है तब भोगों से विरक्तता उपजती है पर आत्मस्वभाव का दर्शन अपने यत्न विना और किसी युक्ति से नहीं प्राप्त होता है। हे पुत्र! भोगों के त्याग करने और परमार्थ दर्शनके यत्न करने से ब्रह्मपदमें विश्रान्त और परमानन्द मोक्षको प्राप्त होता है। ब्रह्मा से आदि काष्ठपर्यन्त को इस जगत् में ऐसा आनन्द कोई नहीं जैसा परमात्मा में स्थित हुयेसे है। इससे तुम पुरुष प्रयत्न का आश्रय करो और दैव को दूर से त्यागो। इस मार्ग के रोंकनेवाले भोग हैं, उनकी निन्दा बुद्धिमान् करते हैं। जब भोगों की निन्दा दृढ़ होती है तब विचार उपजता है—जैसे वर्षाकाल गयेसे शरत्काल की सर्व दिशा निर्मल होजाती हैं तैसेही भोगों की निन्दा से विचार और विचार से भोगों की निन्दा परस्पर होती हैं जैसे समुद्र की

अग्नि से धूम्र उदय होता है और बादलरूप हो वर्षाकर फिर समुद्र को पूर्ण करता है और जैसे मित्र आप से परस्पर कार्य सिद्ध करदेताहै। इससे प्रथम तो देवका अनादर करो और पुरुष प्रयत्नकरके दांतों से दांतों को पीसकर भोगों की प्रीति त्यागो और फिर पुरुषार्थ से प्रथम अविरोध उपजावो और उसे अपने गुणवान् जन्म और कल्याणमूर्तिको अर्पण करो और भोगों से असंग होकर उनकी निन्दा करो तब विचार उपजेगा। फिर शास्त्रज्ञान को संग्रह करो तब परमपदकी प्राप्ति होगी। हे दैत्यराज! समय पाकर जब तू विषयों से विरक्तचित्त होगा तब विचार के वशसे परमपद पावेगा। अपने आपमें जो पावनपद है उसमें तब तू भलीप्रकार अत्यन्त विश्राम पावेगा। और फिर कल्पना दुःखमें न गिरेगा। अङ्ग और देशाचार के कर्म से अल्पधन उपजाना फिर निन्दा से उसे साधू के संगलगाना। उनके संगसे वैराग्य और विचार संयुक्तहुये तुझको आत्मलाभ होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमस्सर्गः॥ २४॥

बलि ने विचार किया कि, इसप्रकार मुझसे पूर्व पिताने कहा था। अब मैं स्मृति दृष्टिसे प्रसन्न हुआ हूं और भोगों से विरक्तता उपजी है कि, इसलिये शान्त और सम, निर्मल, अमृतरूपी, शीतल सुखमें स्थित होऊं। धन एकत्र होताहै और नाश होजाताहै फिर आशा उपजती है और फिर धन से पूर्ण होताहै; फिर स्त्रियोंकी वाञ्छा उपजती है और फिर उन्हें अङ्गीकार करताहै। अब मैं विभूति की स्थिति से खेदवान् हुआहूं। अहो आश्चर्य है कि, इसरमणीय पृथ्वी से अब मैं सम शीतलचित्त होताहूं और दुःख सुखसे रहित सर्वशान्ति को प्राप्त होता हूं। जैसे चन्द्रमा के मण्डल में स्थित हुआ समशीतल होताहै तैसे ही भीतरसे मैं हर्षवान् और शीतलहोताहूं। दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्य से रहित हो अब मैं अक्षोभ हूंगा। यह सब मनरूपी बालक की दिन दिन प्रति कला है। प्रथम मैं स्त्री से चिढ़ता था फिरमोह से मेरी प्रीति बढ़गई थी; जो कुछ दृष्टि से देखने योग्य था वह मैंने देखा है; जो कुछ भोगने योग्य था वह चिरकालपर्यन्त अखण्ड भोगा है और

सर्वभूतजातों को वश कर रहा हूं पर उससे क्या शोभनीक हुआ। फिर २ उनमें वही चेष्टा से और और देखे, इससे चित्त अपूर्व पदार्थ को नहीं देखता फिर २ जगत् के वही पदार्थ हैं। इससे अपनी बुद्धि से इनका निश्चय त्यागकर पूर्णसमुद्रवत् अपने आपसे आपमें स्वच्छ, स्वस्थ और स्थित हूं। पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग में, जो स्त्री और रत्न, पन्नगादिक सार हैं वे भी तुच्छ हैं, समय पाकर उन्हें कालग्रस लेता है। इतने काल पर्यन्त मैं बालकथा और जो तुच्छ पदार्थ मन के रचेहुये हैं उनकी इच्छा से दुःखकर देवतों के साथ द्वेष करता था। उनके दुःखों के त्यागने से क्या माहात्म्य का अनर्थ होगा? बड़ा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थ में अर्थबुद्धि की थी; अज्ञानरूपी मद से मतवाला था और चञ्चल तृष्णा से इस जगत् में क्या नहीं किया। जो कार्य पीछे ताप बढ़ाते हैं वही मैंने किये हैं पर अब पूर्व तुच्छ चिन्ता से मुझको क्या है। वर्तमान चिकित्सा पुरुषार्थ से सुफल होगा। जैसे समुद्र मथने से अमृत प्रकट भया है तैसेही अपरमितरूप आत्मा की भावना से अब सब ओर से सुख होगा। मैं कौन हूं; और आत्मा के दर्शन की युक्ति गुरु से पूछूंगा। इस लिये अब मैं अज्ञान के नाशनिमित्त शुक्र भगवान् का चिन्तन करूं; वह जो प्रसन्न होकर उपदेश करेगा उससे अनन्त विभव अपने आपमें आपसे स्थित होगा और निष्काम पुरुषों का उपदेश मेरे हृदय में फैलेगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिचिन्तासिद्धान्तोपदेशं नाम पञ्चविंशस्सर्गः॥ २५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन करके बलि ने नेत्रों को मूंदा और शुक्रजी जिनका आकाश में मन्दिर है और जो सर्वत्र पूर्ण चिन्मात्र तत्त्व के ध्यान में स्थित हैं आवाहनरूप ध्यान किया; और शुक्रजी ने जाना कि, हमारे शिष्य बलि ने हमारा ध्यान किया है। तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपनी देह वहां ले आये जहां रत्न के झरोखे में बलि बैठा था और बलि उज्ज्वल और प्रभारूप गुरुको देखकर उठा और जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्य को देखकर प्रफुल्लित होते हैं तैसेही उसका चित्त

प्रफुल्लित होगया। तब उसने रत्न अर्घ्य पुष्पों से चरणवन्दना की और रत्नों से अर्घ दिया और बड़े सिंहासन पर बैठाकर कहा, हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में जो प्रतिभा उठती है वह स्थिर होकर मुझको प्रश्न में लगाती है। अब मैं उन भोगों से जो मोह के देनेवाले हैं विरक्त हुआ हूं और तत्त्वज्ञान की इच्छा करता हूं जिससे महामोह निवृत्त हो। इस ब्रह्माण्ड में स्थिर वस्तु कौन है और उसका कितना प्रमाणहै? इन्द्र क्या है और अहं क्या है? मैं कौन हूं? तुम कौन हो और यह लोक क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर कृपाकरके कहिये। शुक्र बोले, हे दैत्यराज! बहुत कहने से क्या है; मैं आकाश में जाना चाहता हूं इससे सबका सार संक्षेप से मैं तुमसे कहता हूं सो सुनो। जो चेतन तत्त्व और विस्तृतरूप है वह सब चेतनमात्र है और चेतन ही प्रमाण है। तू भी चेतनस्वरूप है, मैं भी चेतन हूं और यह लोक भी चेतनरूप है। यही सबका सार है। इस निश्चय को हृदय में दृढ़कर धारोगे तब निर्मल निश्चयात्मकबुद्धि से अपने को आपसे देखोगे और उससे विश्रान्तिमान् होगे। हे राजन्! यदि तुम कल्याणमूर्ति हो तो इसी कहने से सब सिद्धान्त को प्राप्त होगे और सबको सार जो चिदात्मा है उसको पावोगे और यदि कल्याणमूर्ति नहीं हो तो फिर कहनाभी निरर्थक होताहै। चेतन को जो चैत्यकला का सम्बन्धहै वही बन्धनहै। इससे जो मुक्त है वही मुक्त है। आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चैत्यकलना से रहितहै। यह सब सिद्धान्तोंका संग्रहहै। हे राजन्! इस निश्चय को धारो और निर्मलबुद्धि से अपने आपसे आपको देखो; यही आत्मपद की प्राप्ति है। सप्तऋषियों से देवताओं का कोई कार्य है उस निमित्त मैं अब आकाश जाताहूं। जब तक यह देह है तब तक मुक्तबुद्धि को यथाप्राप्त कार्य त्यागने से योग्य नहीं। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे कहकर शुक्र बड़े वेगसे आकाश में चले और जैसे समुद्र से तरङ्ग उठकर लीन होजावें तैसे ही शुक्रजी अन्तर्धान होगये॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपदेशोनाम षड्विंशस्सर्गः॥२६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवता और दैत्यों के पूजने योग्य शुक्र

के गये से बलवानों में श्रेष्ठ बलि मनमें विचारने लगा कि, भगवान् शुक्र जी यह क्या कह गये कि, त्रिलोकी चिन्मात्ररूपहै; मैंभी चेतनहूं, दिशा भी चेतनरूपहैं; परमार्थ से आदि जो सत्स्वरूपहै वहभी चेतन उससे भिन्न नहीं; यह जो सूर्य है उसमें चेतन होने से ही सूर्यत्वभाव भासता है और यह जो भूमि है उसको चेतन न चेते तो इसमें भूमित्व भाव नहीं। यह जो दशोंदिशा हैं यदि इनको चेतन न चेते तो दिशा में दिशात्वभाव न रहे; पर्वतमें पर्वतताभी चेतन विना नहीं; इस जगत्में जगत्भाव; आकाशमें आकाशता; शरीर में लक्षणभी चेतन विना न पाइयेगा; इन्द्रियां भी चेतन हैं; मनभी चेतन है; भीतर बाहर सब चेतन है और चिदात्माही अहं त्वं भावरूप होकर स्थित है। चेतन मैं हूं; सब इन्द्रियों संयुक्त विषयों का स्पर्श मैं करताहूं और कदाचित् कुछ नहीं किया। काष्ठ लोष्ठतुल्य शरीर से मेरा क्या है? मैं तो सम्पूर्ण जगत् में आत्मा चेतन हूं और आकाश में भी एक मैं आत्माहूं। सूर्य और भूत, पिञ्जर, देवता, दैत्य और स्थावर-जङ्गम सबका चेतन आत्मा एक अद्वैत चेतन है और द्वैतकलना नहीं। बस यदि इस लोक में द्वैत का असम्भव है तो शत्रु कौन है और मित्र किसको कहिये? जिस शरीर का नाम बलि है उसका शिर काटा तो आत्मा का क्या काटा? सबलोगों में आत्मा पूर्ण है पर जब चित्त दुःख चेतता है तब दुःखी होता है चेतने विना दुःख नहीं पाता। इसकारण जो दुःखदायक भाव-अभाव पदार्थ भासते हैं वे सर्व आत्मरूप हैं, चेतन तत्त्व से भिन्न कुछ नहीं। सब ओरसे आत्मा पूर्ण है, आत्मा से भिन्न जगत् का कुछ व्यवहार नहीं। न कोई दुःखहै; न कोई रोगहै; न मन है; नमनकी वृत्ति है; एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मतत्त्व है और विकल्प कलना कोई नहीं। सब ओरसे चेतन स्वरूप, व्यापक, नित्य आनन्द, अद्वैत, सबसे अतीत और अंशांशीभाव से रहित चेतनसत्ता व्यापक है। चेतन आदिक नाम से भी मैं रहितहूं वे चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहार के निमित्त कल्पे हैं। चेतन जो आत्मा की स्फुरणशक्ति है वही विस्तारमें जगत्रूप होकर भासती है; द्रष्टा, दर्शनसे मुक्त केवल अद्वैतरूप है और

प्रकाश प्रकाशकभाव से रहित निराभास द्रष्टा परमेश्वर रूप हूं। न मैं कर्ता हूं और न मैं भोक्ता हूं; मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप कलना कलङ्क से रहित हूं। इनसे परे हूं और यह स्वरूपभी मैं हूं। यह मेरेमें आभासमात्र है और मैं उदित नित्य और आभास से भी रहित एक प्रकाशरूप हूं। स्वरूप होनेसे मेरा चित्त दृश्य के राग से रहित मुक्तरूप है। प्रत्यक्ष चेतन जो मेरा स्वरूप है उसको नमस्कार है। चित्त दृश्य से रहित है और युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाशस्वरूप मैं हूं, मुझको नमस्कार है। मैं चित्तसे रहित चेतन हूं; सब ओर से शान्तरूप हूं; फुरनेसे रहित हूं और आकाश की नाईं अनन्त सूक्ष्म से सूक्ष्म; दुःख सुख से मुक्त और संवेदन से रहित असंवेदनरूप हूं। मैं चैत्यसे रहित चेतन हूं, जगत् के भाव अभाव पदार्थ मुझको नहीं छेदसके। अथवा यह जगत् के पदार्थ छेदते हैं वह भी मुझसे भिन्न नहीं क्योंकि, छेद मैं हूं और छेदनेवाला मैं हूं। स्वभावभूत वस्तु से वस्तु ग्रहण होती है अथवा नहीं होती तौभी किससे किसका नाश हो; मैं सर्वदा, सर्वप्रकार सर्व शक्तिरूप हूं; संकल्प विकल्प से अब क्या है। मैं एकही चेतन अजड़रूप होकर प्रकाशता हूं। जो कुछ जगत्जाल है वह सब मैंही हूं मुझसे भिन्न कुछ नहीं। इतना कहि वशिष्ठजी बोले; हे रामजी! जब इस प्रकार तत्त्व के वेत्ता राजा बलि ने विचारा तब ओंकार की अर्धमात्रा तुरीयापद की भावना से ध्यान में स्थित हुआ और उसके संकल्प भली प्रकार शान्त होगये। वह सब कलना और चित्त चैत्य से रहित निःसंग होकर स्थित हुआ और ध्याता जो है अहंकार; ध्यान जो है मन की वृत्ति और ध्येय जिसको ध्याता था तीनों से रहित हुआ और मनसे सब वासना नष्ट होगईं। जैसे वायु से रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है तैसेही बलि शान्तरूप पद को प्राप्त हुआ और रत्नों के झरोखेमें बैठे दीर्घकाल बीतगया। जैसे स्तम्भमें पुतली हो तैसे ही सर्व एषणा से रहित वह समाधि में स्थित रहा और सब क्षोभ, दुःख, विघ्न से रहित निर्मल चित्त, शरत्काल के आकाशवत् होरहा॥

इति श्रीयो० उपशमप्र० बलिविश्रान्तिवर्णनं नाम सप्तविंशस्सर्गः॥ २७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार दैत्यराज बहुतकाल र्यन्त समाधि में बैठा रहा तब बान्धव, मित्र, टहलुये, मन्त्री रत्नों के झरोखे में देखने चले कि, राजा को क्या हुआ। ऐसा विचार कर उन्होंने किवाड़ों को खोला और ऊपर चढ़े। यक्ष, विद्याधर और नाग एक ओर खड़ेरहे और रम्भा और तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथों में चमर ले खड़ी हुईं और नदियां, समुद्र, पर्वत आदिक मूर्ति धारकर और रत्न आदिक भेंट लेकर सब प्रणाम के निमित्त खड़ेहुये और त्रिलोकी के उदरवर्ती जो कुछ थे वे सब आये पर राजा बलि ध्यान में ऐसा स्थित था मानो चित्र की मूर्ति लिखी है और पर्वतवत् स्थित है। उसको देखकर सब दैत्यों ने प्रणाम किया; कोई उसे देख कर शोकवान् हुये, कोई आश्चर्यवान्, कोई आनन्दवान् हुये और कोई भय को प्राप्त हुये। तब मन्त्री विचारने लगे कि राजाकी क्या दशाहुई है। इसलिये उसने शुक्रजी का ध्यान किया और भार्गवमुनि झरोखे में आये। उनको देखकर दैत्य-गणों ने पूजन किया और बड़े सिंहासन पर गुरुको बैठाया बलिको ध्यान स्थित देखकर शुक्रजी अतिप्रसन्न हुये कि, जो पद मैंने उपदेश किया था, उसमें इसने विश्राम पायाहै इसका भ्रम अब नष्टहुआहै और क्षीरसमुद्रवत् प्रकाश है। ऐसे देखकर शुक्रजी ने कहा बड़ा आश्चर्य है कि, दैत्यराज ने विचार करके निर्मल आत्मप्रकाश पाया है। अब भगवान् सिद्ध हुआ है और अपने स्वरूप में जो सब दुःखोंसे रहित पद है उसमें यह स्थित हुआ है और चिन्ता भ्रम इसका क्षीण हुआ है। अब इसको मत जगाओ। यह आत्मज्ञान को प्राप्तहुआ है और यत्न और क्लेश इसका दूर होगया है। जैसे सूर्यके उदयहुये अन्धकार नष्ट हो जाताहै। अब मैं इसको नहीं जगाता यह आपही दिव्यवर्ष में जागेगा क्योंकि, प्रारब्ध अंकुर इसके रहताहै और उठकर अपना राजकार्य करेगा। अब तुम इसको मत जगाओ, अपने राजकार्य में जा लगो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इसप्रकार शुक्रजी ने कहा तब सब सुनकर सूखे वृक्ष की मञ्जरी ऐसे होगये और शुक्रजी अन्तर्द्धान होगये दैत्य भी अपने राजा विरोचनकी सभा में जाकर अपने२

व्यवहार में लगे और खेचर, भूचर और पातालवासी अपने २ स्थान में गये और देवता, दिशा, पर्वत, समुद्र, नाग, किन्नर, गन्धर्व सब अपने २ व्यवहार में जा लगे ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे बलविज्ञानप्राप्ति-
नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः ॥ २८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हुये तब दैत्यराज समाधि से उतरे; नौबत नगारे बाजनेलगे; देवता और दैत्य बड़े जय जय शब्द करने लगे नगरवासी देखकर बड़े प्रसन्न हुये और जैसे सूर्य के उदय हुये कमल खिल आते हैं तैसेही खिल आये। जब तक दैत्य न आये थे तबतक राजा ने विचारा कि, बड़ा आश्चर्य है कि, परमपद जो ऐसी रमणीय, शान्तरूप और शीतल पदवी है उसमें स्थित होकर मैंने परम विश्राम पाया है। इससे फिर उसी पदका आश्रय करूं और उसीमें स्थित होऊं राज्य विभूति से मेरा क्या प्रयोजन है ऐसा आनन्द शीतल चन्द्रमा के मण्डल में भी नहीं होता जैसा अनुभव में स्थित हुये से पाया जाता है। हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन कर वह फिर समाधि करने लगा कि, जिससे गलित मन हो। तब दैत्यों की सेना, मन्त्री, भृत्य, बान्धवों ने आनकर उनको घेर लिया और जैसे चन्द्रमा को मेघ घेर लेता है तैसेही घेर करके प्रणाम करने लगे। बलिराज ने मन में विचारा कि, मुझको त्यागने और ग्रहण करने योग्य क्या है; त्याग उसका करना चाहिये जो अनिष्ट और दुःखदायक हो और ग्रहण उसका कीजिये जो आगे न हो पर आत्मा से व्यतिरेक कुछ नहीं उसमें ग्रहण और त्याग किसका करूं। मोक्ष की इच्छा भी मैं किस कारण करूं क्योंकि; जो बन्ध होता है तो मोक्ष की इच्छा करता है सो जब बन्धही नहीं तो मोक्ष की इच्छा कैसे हो? यह बन्ध और मोक्ष बालकों को क्रीड़ा कही है वास्तव में न बन्ध है, न मोक्ष है। यह कल्पना भी मूढ़ता में है सो मूढ़ता तो मेरी नष्ट हुई है; अब मुझको ध्यान विलास से क्या प्रयोजन है और ध्यान से क्या है। अब मुझको न परमतत्त्व की

च्छा है और न कुछ ध्यान से प्रयोजन है अर्थात न विदेह मुक्तकी इच्छा
है, न जगत्में स्थित रहनेकी इच्छाहै; न मैं मरताहूं; न जीताहूं; न सत्यहूं;
न असत्य हूं; न सम हूं; न विषम हूं; न कोई मेराहै और न कोई और है;
अद्वैतरूप मैं एक आत्मा हूं सो मुझको नमस्कार है। इस राजक्रिया में
मैं स्थित हूं तौ भी आत्मपद कार्य में स्थित हूं; और सदा शीतल हूं।
ध्यानदिशा से मुझको सिद्धता नहीं और न राजकार्य विभूति से कुछ
सिद्ध होना है। इससे राजकार्य से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं; मैं आकाश-
वत्ही रहताहूं। मैं न कुछ इच्छा करूंगा, न राज्य करूंगा तौ भी मेरा
कुछ सिद्ध नहीं होता इससे जो कुछ प्रकृत आचार है उसीको मैं करूं।
बन्धनका कारण अज्ञान है सो तो नष्ट हुआ है अब कोई क्रिया मुझको
बन्धनरूप नहीं। हे रामजी! इसी प्रकार निर्णयकरके बलि ने दैत्योंकी
ओर देखा तब देवता और दैत्योंने शीश से प्रणाम किया और राजा ने
दृष्टि करके उनकी प्रणाम वन्दना अङ्गीकार की। तब राजा बलि ने ध्येय-
वासना को मनसे त्याग किया और राज्य के कार्य करनेलगा। ब्राह्मण,
देवता और गुरुका पूर्ववत् पूजन किया, जो कोई अर्थी और मित्र, बान्धव,
टहलुये थे उनका अर्थ पूर्ण किया; स्त्रियों को नानाप्रकार के वस्त्र आभूषण
दिये और जो दण्ड देने योग्य थे उनको दण्ड दिया। फिर उसने यज्ञ का
आरम्भ करके सुरगणों का पूजन किया और शुक्रजी से आदि ले मुख्य२
देवता यज्ञ कराने के निमित्त बैठे। फिर विष्णु भगवान्ने इन्द्रके अर्थ सिद्ध
करनेके निमित्त छल करके बलि राजा को वञ्चित करलिया और बांधकर
पाताल में स्थित किया। वह आगे इन्द्र होगा अब जीवन्मुक्त, स्वस्थवपु,
सदा ध्यानस्थित और एषणा से रहित पुरुष पाताल में है। हे रामजी!
जीवन्मुक्त पुरुष राजा बलि सम्पदा और आपदा में समचित्त बिचरता है;
वह सम्पदा में हर्ष नहीं करता और आपदा में शोक नहीं करता। अनेक
जीवोंको उपजना और लय होना बलि ने देखाहै; दश करोड़ वर्ष पर्यन्त
तीनों लोकों का कार्य किया और बड़े विषय भोग भोगे हैं। अन्त में भोगों
को विरस जानकर उसका मन विरस हुआ, विचार किये से तृष्णा नष्ट

होगई और मन उपशमहुआ। हेयोपादेय की नानाप्रकार की चेष्टा बलिने देखीं पर पदार्थों के भाव अभाव में मन शान्ति को न प्राप्त हुआ। अब भोगों की अभिलाषा त्याग आत्मारामी हो नित्य स्वरूप में स्थित पाताल में बिराजताहै। हे रामजी! इस बलि को फिर इसजगत् का इन्द्र होनाहै और सम्पूर्ण जगत् का कार्य करना है वह अनेक वर्ष आज्ञा चलावेगा परन्तु इन्द्रपद को पाकर भी तुष्टवान् न होगा और अपने ऐश्वर्य पद के गिरनेसे खेदवान् भी न होगा और सब पदार्थों और विभूतियों के उदय और अस्त में अमर होगा। यह बलि की विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तान्त कहाहै। इसी दृष्टि का आश्रय करके तुम भी स्थित हो और बलि की नाईं अपने विवेक से नित्य तृप्ति आत्मनिश्चय को धारो कि, सर्व मैं हीं हूं। इस निश्चयसे निर्द्वन्द्व और परमपद प्राप्त होगा। हे रामजी! दश करोड़ वर्ष तीनलोकों का राज्य बलि ने भोगा और अन्त में विरक्त हुआ तैसेही तुम भी भोगों से विरक्त होजाओ। ये भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागकर परमपद में प्राप्त होजाओ। यह जो दृश्य प्रपञ्च नानाप्रकार के विकार संयुक्त भासता है वह न कोई तेराहै और न तू किसीका है। जैसे पर्वत और शिलामें बड़ाभेद है तैसे ही जिस पुरुष का मन संसार की ओर धावता है वह मन की वृत्तिमें डूबता है। जब तुम मन को हृदय में धरोगे तब सब जगत् का प्रकाश होगा। तुम आत्मस्वरूप हो तो अपना क्या और पराया क्या—यह सब मिथ्या कल्पना है। तुम सबके आदि पुरुषोत्तम हो, तुमहीं साकाररूप पदार्थ और तुमहीं सब ओर पूर्ण और सब जगत् में चेतनरूप हो। और स्थावर—जङ्गम जगत् सब तुम में पिरोया है—जैसे सूत में माला के दाने पिरोये हैं। तुम नित्य शुद्ध, उदित, बोधस्वरूप और भ्रान्ति से रहितहो। जन्म आदिक सर्व रोग के नाश निमित्त आत्मविचार करके बलात्कार से भोगों का त्यागकर सर्व के भोक्ता होजाओ। तुम केवल स्वरूप जगत् के नाथ हो और चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित हो। सर्व जगत् तुम्हारे प्रकाश से प्रकाशता है और सुख दुःख की कल्पना तुम्हारे में कोई नहीं। तुम तो शुद्ध, सर्वात्मा और सर्वप्रकाशक हो; इष्ट अनिष्ट को त्याग करके

केवल अपने स्वरूप में स्थित हो। इष्ट अनिष्ट के त्याग से निरन्तर सत्यता उदय होती है उस सत्यता को हृदय में धार फिर जन्म मरण भी नहीं आता। जिस २ पदार्थ में मन लगे उससे निकालकर आत्मतत्त्व में लगाओ। जब इस प्रकार तुम दृढ़ अभ्यास करोगे तब मन जो उन्मत्त हाथी है वह बांधा जावेगा और तभी सर्व सिद्धान्त के परमसार को प्राप्त होगे। हे रामजी! तुम मूढ़ों की नाईं मत हो। क्योंकि, मूढ़ जीव सब चेष्टा मिथ्या ही करता है मिथ्या चेष्टा से जिनकी बुद्धि नष्ट हुई है और अविद्यारूपी धूर्त से बिके हैं उनके तुल्य न होना। यह जगत् अणुमात्र भी कुछ नहीं है। पर बड़ा विस्ताररूपी जो दृष्ट आता है सो निर्णय से देखा है कि, मूढ़ता से भासित हुआ है। मूढ़ता परम दुःखरूप है, इससे अधिक दुःख कोई नहीं। आत्मारूपी सूर्य के आगे आवरणकर्ता जो अज्ञानरूपी मेघ है उसको विवेकरूपी पवन से नाश करो तब आत्मा का साक्षात्कारहोगा। आत्मविचारके अभ्यास और विषयोंसे वैराग्यविना आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। वेदरूप वेदान्तशास्त्र जो दृष्टान्त और तर्कयुक्त हैं उनसे भी अपने विचार विना साक्षात्कार नहीं होता। आत्मविचार और पुरुषार्थ से आत्मा की प्रसन्नता होती है और बुद्धि की निर्मलता और बोध से प्राप्त होती है। इससे संकल्प विकल्प से रहित होकर चेतनतत्त्व में स्थित होजाओ। विस्तृत और व्यापकरूप आत्मतत्त्व की स्थिति मेरे वचनों से ग्रहण करके सब संकल्प तुम्हारे लीन होगये हैं; संवेदनरूपी भ्रम शान्त हुआ है और संसार कौतुकरूपी कुहिरा तुम्हारा नष्ट हुआ है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ २९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब तुम विज्ञानप्राप्ति के निमित्त और क्रम सुनो जैसे दैत्य असुर प्रह्लाद को आत्मा की सिद्धता हुई तैसे तुमभी होजाओ। पाताल में एक हिरण्यकशिपु दैत्य महाबलिष्ठ हुआ है जिसने इन्द्र भगाये थे और विष्णुजी के सम उसका पराक्रम था। सम्पूर्ण भुवन उसने वशकर छोड़े थे और सर्व देवता और दैत्यों को वश करके जगत्

का कार्य करता था। वह दैत्यों और तीनों भुवनों का ईश्वर हुआ और समय पाकर कई पुत्र उत्पन्न किये—जैसे बसन्त ऋतु अंकुर उत्पन्न करती है। उसके पुत्रों में बड़ा पुत्र प्रह्लाद सबसे अधिक प्रकाशवान् हुआ और तिस पुत्र से हिरण्यकशिपु ऐसा शोभित हुआ जैसे सर्व सुन्दर लता से बसन्तऋतु शोभित है। जैसे प्रलय काल में सूर्य सब लोकों को तपाता है तैसे ही वह सबको तपानेलगा। जब दुष्ट क्रीड़ा से देवताओं को दैत्य दुःख देने लगे तब सब देवता मिलकर विष्णु की शरण गये और बिनती की कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है इसका नाश करो और हमारी रक्षा करो। बारम्बार दुखावने से महापुरुष भी क्रोधवान् होजातेहैं। हे रामजी! जब इस प्रकार देवताओं ने प्रार्थना की तब विष्णुदेव ने कहा अब तुम जाओ मैं उसको पुत्र के हेतु से मारूंगा। ऐसे कहकर विष्णु भगवान् अन्तर्धान होगये और हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्य की शिक्षा प्रह्लाद को देने लगा परन्तु वह ग्रहण न करे और बहुत प्रकार ताड़ना भी दे तौ भी उसकी शिक्षा को प्रह्लाद अङ्गीकार न करे। वह ईश्वर विष्णुजी की आराधना में रहता था इस कारण ताड़ना का दुःख प्रह्लाद को कुछ न हो। तब दैत्य अपने हाथ में खड्ग लेकर कहनेलगा कि, हे दुष्ट! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है? मेरे सिवा ईश्वर और कौन है? प्रह्लाद ने कहा मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है। तब हिरण्यकशिपु ने कहा इस खम्भे में कहां है? जो है तो दिखादे और यदि न दिखावेगा तो तुझको मारूंगा। तब सर्वव्यापक विष्णु खम्भे से भासने लगे और बड़े शब्द होने लगे। फिर उस खम्भे को फोड़कर बड़ी भुजा और तीक्ष्ण नखों के संयुक्त महाभयानकरूप से विष्णु भगवान् ने नरसिंहरूप प्रकट करके हिरण्यकशिपु को नखों से विदारण किया और ऐसा कोपवान् रूप धरा जिससे दैत्यों के स्थान जलने लगे और दृष्टि से मानों पर्वत चूर्ण होते थे। दैत्यों के कई समूह मारे गये कई भागे और बहुत से दिशाविदिशा को दौड़ गये—जैसे वायुके मारे मच्छर उड़ जातेहैं और कुछ पाताल छिद्रमें नाश होगये। निदान प्रलयकालवत् स्थान शून्य होगये मानों अकाल प्रलय

आयाहै और दैत्यों को नाश करके फिर विष्णुदेव अन्तर्धान होगये। कुछ दैत्य बान्धव और टहलुये जो रहेथे वे प्रह्लादके निकट मुख कुम्हिलाये हुये आये-जैसे जलसे रहित कमल होताहै और भाई, बान्धव मिलकर प्रह्लादको समझानेलगे। प्रह्लादने सबसे मिलकर पिताकाशोच किया और फिर उठकर सब कर्म किये। निदान संशयसंयुक्त सबदैत्यबैठे और विचारकरके शोकवान् हुये और सब सूखकर चित्र की पुतलीवत् होगये। जैसे दग्धवृक्ष सूखकर रससे रहित होजाता है तैसेही हिरण्यकशिपु बिना दैत्य शोकवान् और महादुःखी हुये ॥

इति श्रीयो०उपशमप्रकरणे हिरण्यकशिपुवधोनाम त्रिंशत्तमस्सर्गः ३०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब हिरण्यकशिपु के मारने से दैत्य बहुत दुःखी हुये तब प्रह्लाद ने मौन होकर विचारा कि, पाताल में सब दैत्य मिलकर चिन्तासंयुक्त बैठे हैं। उनसे जाकर प्रह्लाद ने कहा कि, अब अपनी रक्षा के निमित्त कौन उपाय कीजियेगा, हमारे दैत्यों के नाशकरनेवाले विष्णु बड़े बली हैं; जिनके नख तीक्ष्ण खड्गकी धारवत् हैं। जैसे सिंह मृगों को मारता है तैसे वे हमको मारते हैं और पाताल में दैत्य शान्तिमान् कदाचित् नहीं होनेपाते। जब दैत्य वर्धमान होते हैं तब विष्णु आ उन्हें नाश करते हैं और जैसे कमलों पर पर्वत आ पड़े तैसे उन्हें चूर्ण करते हैं। बड़े आकाश गौरवशब्द करनेवाले दैत्य उपज २ नष्ट होजाते हैं-जैसे जल में तरङ्ग उपज २ नष्ट होजाते हैं। भीतर बाहर वह हमको बड़ा कष्ट देता है। हमारा शत्रु बड़ा दृढ़ और बड़ा अपूर्वतम आ बढ़ा है; हमारा हृदय तम से पूर्ण होगया है और सम्पदा नष्ट होगई है। जो देवता हमारे पिता से चूर्ण हुये थे उनका बल अब हमसे अधिक होगया है और वे हमारी स्त्रियों को वश कर ले गये हैं-जैसे मृग को व्याध ले जाता है। वे हमारा सब धन भी ले गये हैं। और हम दीन होरहे हैं। जैसे जल बिना कमल कुम्हिला जाता है तैसेही हमभी बान्धव बिनाहुये हैं। हमारे घरों में धूल उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलकर सञ्चित किये थे वे शून्य होगये और हमारे स्थानों में जो बड़े कल्पवृक्ष

लगे थे वे उखाड़कर नन्दनवन में लगाये हैं। नरसिंहजी की सहायता से देवताओंने ऐसा बल पाया है। हमारे वृक्ष और स्थान नरसिंहजी ने जला दिये हैं जिन देवताओं की स्त्रियों के मुख दैत्य देखते थे, उन सब दैत्यों की स्त्रियों के मुख अब देवता देखते हैं। जिस सुमेरु पर्वत पर कल्प और मन्दारवृक्ष विराजते थे वे स्थान अब शून्य होगये, वहां धूल उड़ती है और सुमेरु दुर्लभ होगया है। जो दैत्योंकी स्त्रियां अपने स्थानों में बैठी थीं वे अब देवाङ्गनाओं के शिर पर चमर करती हैं और वे हास विलास करती हैं; यह बड़ा कष्ट है। हमको आपदा ने दीन किया है। हे दैत्यो! हमको और उपाय कोई दृष्टि नहीं आता जब उसही विष्णु की शरण में जावें तब सुखी होऊंगा वह कैसा पुरुष है, जिसके दो भुजारूपी वृक्षों की छाया में देवता विश्राम करते हैं और जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता तैसेही जो पुरुष विष्णु की शरण जाता है वह तपायमान नहीं होता। तुम देखते हो कि, जो देवाङ्गना असुरों की स्त्रियोंकी पूजन करती थीं वे अब अपने को पुजानेलगी हैं और हम दैत्यों की स्त्रियों के मुख कुम्हिला गये हैं। जैसे बरफ़ की वर्षा से कमल सूख जाता है तैसेही हमारे मण्डप टूट गये हैं और नीलमणि के खम्भे गिरपड़े हैं। दैत्यसेना जो आपदा के समुद्र में डूबती थी उसके रक्षा करने को हमारे पितादि बड़े समर्थ थे और डूबने न देते थे। जैसे क्षीरसमुद्र में मन्दराचल को कच्छपरूप ने डूबने न दिया था हमारे पितादि जो बड़े २ बली रक्षा करनेवाले थे उनको विष्णुजी ने मारके चूर्ण किया—जैसे प्रलयकाल का पवन पर्वतों को चूर्ण करता है। ऐसे मधुसूदन की गति अति विषम है वे दैत्यों की भुजारूपी दण्ड के काटनेवाले कुठार हैं, उनकी सहायता से इन्द्रादिक देवता दैत्य सेना को जीतने और मारनेलगे हैं—जैसे बालक को वानर मारें। इस पुण्डरीकाक्ष विष्णु को जीतना कठिन है। जो वे शस्त्रों विना हों तौ भी हमारे शस्त्र इनको छेद नहीं सक्ते और वज्र भी छेद नहीं सक्ता। वे महापराक्रमी हैं, उन्होंने युद्ध का बड़ा अभ्यास किया है और पर्वतों के साथ युद्ध करते

रहे हैं। हमारा पिता जो बड़ा बली था और जिसने त्रिलोकीके राजा और सब देवता वश किये थे उसको भी इसने मारडाला तो हमारा मारना कौन कठिनहै। यह महाबली है इसको हम नहीं जीत सके; इसलिये एक उपाय मैं तुमसे कहता हूं उससे विष्णु प्रकट वश होंगे। उपाय यहहै कि, विष्णु जो सर्वात्मा, सबका प्रकाशक और सबका कारण है उसकी हम शरणहों; और हमारी कोई गति आश्रय नहीं। हे दैत्यो! उससे अधिक इस त्रिलोकी में कोई नहीं; जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्ता वही देवताहै। उसके ध्यान में लगो और एक निमेषभी उसके ध्यानसे न उतरो। मैं भी उसके ध्यान में लगता हूं। वह नारायण अजन्मा पुरुष है और मैं सदा उसके परायण हूं और सबप्रकार नारायण मैंहूं। 'ओंनमोनारायणाय;' यह मन्त्र सब अर्थों को सिद्ध करता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करतेहुये हमारे हृदय में स्फुरणरूप होगा। वह हरि सबका आत्माहै पृथ्वीभी हरि है, यह सब जगतभी हरिहै, मैं भी हरिहूं, आकाशभी हरि है और सबका आत्मा भी हरि है। अविष्णु होकर जो विष्णुका पूजन करते हैं वे पूजनेका फल नहीं पाते और जो विष्णु होकर विष्णु का पूजन करते हैं वे परम उत्तम फल पाते हैं। इससे मैं विष्णुरूपहोकर स्थितहोताहूं। मैं अनन्त आत्मा आकाश गरुड़पर आरूढ़ हूं और सुवर्ण के भूषण पहिरेहूं मेरे हाथरूप वृक्षपर जीवरूप सब पक्षी विश्राम पाते हैं। यह मेरी चतुर्भुजा हैं। जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन किया था तब यह परस्पर घसे हैं और यह मेरे पार्षद हैं, सुन्दर चमर जिनके हाथों में है, इनको मैंने क्षीरसमुद्र से उपजाया है। त्रिलोकीरूपी वृक्ष की यह सुन्दर मञ्जरी जो महाधवल मन के हरनेवाली है। यह मेरे पार्षदों में माया है जिसने अनन्त जगत्जाल निरन्तर उत्पत्ति, प्रलय किया है और इन्द्रजालकी विलासिनी है। यह मेरे पार्षदों में जो शक्ति है इन्होंने लीला करके त्रिलोकीखण्ड वश किया है। जैसे कल्पवृक्ष लता फूलती है तैसेही मेरे पार्षदों में यह फूलती है शीत उष्ण मेरे दो नेत्रहैं जो सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशते हैं और चन्द्रमा और सूर्य उनकेनामहैं यह मेरा नीलकमल और महासुन्दर श्याम मेघवत् देह महाप्रकाशरूप

है। यह मेरे हाथ में पाञ्चजन्य शंख जिसकी स्फुरणरूप ध्वनि है क्षीर समुद्र से निकला है। यह नाभिकमल है जिससे ब्रह्मा उत्पन्न हुये और इसमें निवास करते हैं-जैसे भ्रमरा कमल में निवास करता है। यह मेरे हाथ में कौमोदकी गदा है जो सुमेरु के शिखरवत् रत्नों की बनी हुई है और दैत्यदानवों के नाश करनेवाली है। यह मेरे हाथों में महाप्रकाश रूप सुदर्शनचक्र है। जिसका तेज ज्वाला के पुञ्जवत् है और साधु को सुख देनेवाला है। यह मेरे हाथों में अग्नि के समूहवाला कुठार है सो दैत्यरूपी वृक्षों को काटनेवाला है और साधुओं को आनन्ददायक है। यह मेरे हाथमें शार्ङ्गधनुषहै, इसकी महाप्रकाशवत् ध्वनि है। यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं यह वैजयन्ती माला है और कौस्तुभमणि मेरे कण्ठ में है। ऐसा मैं विष्णुदेव हूं। अनन्त जगत् जो उत्पत्ति और लय होगये हैं सबोंका धारनेवाला हूं। यह पृथ्वी मेरे चरण हैं, आकाश मेरा शीश है, तीनों लोक मेरा वपु है, दशोंदिशा मेरे वक्षस्थल हैं और मैं साक्षात् विष्णु हूं। नील मेघवत् मेरी कान्तिहै; गरुड़पर आरूढ़, शंख, चक्र, गदा, पद्म का धारनेवाला हूं। जिसका चित्त दुष्ट है वह हमको देखकर भाग जाता है। यह सुन्दर, शीतल चन्द्रमावत् मेरी कान्ति है और पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारी हूं। लक्ष्मी मेरे वक्षस्थल में है और अच्युतरूपी विष्णु मैं हूं। वह कौनहै जो मेरे साथ विरोध करसके ? मैं त्रिलोकी जलासक्ता हूं; जो मेरे साथ युद्ध करने को सन्मुख आवे उसको अप और तेज नाश का कारण है। जैसे अग्नि में पतङ्ग जलमरते हैं तैसेही मेरा तेज है। मेरी दृष्टि कोई सह नहीं सक्ता। मैं विष्णु ईश्वर हूँ, ब्रह्म; इन्द्र और यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं और तृण काष्ठ स्थावर जङ्गम जो कुछ जाल है सबके भीतर व्यापकरूप हूं। त्रिलोकी में मैं प्रकाशरूप अजन्मा और भयनाशकर्ता हूं। ऐसे मेरे स्वरूप को मेरा नमस्कार है॥

इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे प्रह्लादविज्ञाननाम एकत्रिंशत्तमस्सर्गः॥३१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार प्रह्लाद ने अपना नारायणस्वरूप करके ध्यान किया। फिर पूजनके निमित्त वैष्णवों का चिन्तन किया और

मन में विष्णुजी की दूसरी मूर्ति जो गरुड़ पर आरूढ़ और चार शक्ति-अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से सम्पन्न चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारणकिये श्याम रङ्ग है; चन्द्रमा और सूर्य जिसके सुन्दर नेत्रहैं और हाथ में शार्ङ्गधनुष है; धारणकरके परिवार संयुक्त भली प्रकार धूप दीप और नाना प्रकार के विचित्र वस्त्र और भूषणों सहित पूजन किया और अर्घ दिया। चन्दन का लेपन, धूप, दीप, नाना प्रकार के भूषणों सहित पिस्ता, खजूर, बदाम आदिक मेवों से; भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य चतुरप्रकार के भोजन कराये। फिर अपना आप विष्णुको अर्पण किया और परम भक्ति को प्राप्तहुआ। जिसप्रकार मन से पूजनकिया उसी प्रकार अन्तःपुर में विष्णुकी मूर्ति देखकर पूजा। इसी प्रकार दिन प्रति दिन विष्णु का पूजन किया और जिस प्रकार प्रह्लाद मन की चिन्तन से पूजा करे उसी प्रकार और दैत्य भी मानसी पूजाकरें। उनको प्रह्लादने सिखाया और उस पुर में सब दैत्य कल्याणमूर्ति विष्णुभक्त होगये। जैसा राजा होताहै तैसीही उसकी प्रजा होती है इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। यह वार्ता देवलोक में प्रकटहुई कि, दैत्यों ने विष्णुका द्वेष त्याग किया है और भक्त हुयेहैं। तब देवता आश्चर्यको प्राप्तहुये और इन्द्रादिक अमरगण विचारने लगे कि, यह क्या हुआ जो दैत्योंने विष्णु की भक्ति ग्रहण की और इनको यह प्राप्त कैसे हुई। ऐसे आश्चर्यवान् होकर क्षीरसमुद्र के दैत्यों की वार्ता करनेके निमित्त वे विष्णुके निकटगये और कहा, हे भगवन्! यह आपने क्या माया फैलाई कि, जो दैत्य सर्वदा विरोध करतेथे वे अब तुम्हारे साथ तन्मयरूप होरहे हैं; कहां वह दुर्वृत्ति पर्वतको चूर्ण करनेवाले दैत्य और कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेकजन्मोंसे भी दुर्लभहै। हे जनार्दन! तुम्हारी भक्ति कहां और उनकी वृत्ति कहां। यह तो अपूर्ववार्ताहुई है। जैसे समय विना पुष्पों की माला नहीं शोभती तैसेही पात्र विना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती और यह हमको सुखदायक नहीं भासती। जैसा जैसा कोई होताहै तैसेही तैसे स्थानमें शोभताहै। जैसे कांच में महामणि नहीं शोभती तैसेही दैत्यों में तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती। जैसा गुण किसी में होता है तैसीही पंक्ति

में वह शोभता है और में स्थित हुआ नहीं शोभता है। जो सुदेश नहीं होता तो दुःखदायक होताहै जैसे अङ्गों में वज्र दुःखदायक होताहै। जैसा गुणवान् हो तैसा पदार्थ जब प्राप्त होता है तो वह शोभा पाताहै विपर्यय हो तब शोभा नहींपाता। जैसे कमलिनी जल में शोभती है, मरुस्थल में नहीं शोभती तैसे ही कहां वह अधर्म नीचजन भयानक कर्म करनेवाले और कहां तुम्हारी आश्चर्य भक्ति। जैसे कमलिनी पृथ्वी पर नहीं शोभती तैसेही तुम्हारी भक्ति दैत्यों में नहीं शोभती और तैसेही भक्ति हमको उनमें सुखदायक नहीं भासती ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्यानेविविध व्यतिरेको नामद्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ॥ ३२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बड़े शब्द से देवता कहने लगे तब माधव आकर बोले; हे देवगण! तुम शोक मत करो। प्रह्लाद मेराभक्त है; इसका यह अन्त का जन्म है, और अब मोक्षको प्राप्तहोकर फिर जन्म न पावेगा। हे देवगण! गुणवान् के गुणों को त्यागकर द्वेष ग्रहण करना अनर्थरूप होताहै और जो प्रथम गुणोंसे रहित निर्गुणहो और फिर उनको त्यागकर गुण ग्रहणकरे और शास्त्रमार्ग में बिचरे तो यह सुखदायक होताहै। प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होगी। अब तुम अपने स्थानोंमें जाओ, प्रह्लाद मेरा भक्तहै। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर भगवान् क्षीरसमुद्रमें अन्तर्धानहोगये देवता नमस्कार करके अपने२ स्थानों में गये और प्रह्लाद से द्वेषभावना त्याग की। प्रह्लाद दिन प्रति दिन अपने घर में जनार्दन की मनसा, वाचा और कर्मणा से भक्ति करनेलगा और समय पाकर दैत्योंमें बड़ी भक्तिहोगई। तब उन्हें परमविवेक प्राप्तहुआ और विषय भोग से वैराग्यवान् हुये। वे बिषयों से प्रीति न करें; सुन्दर स्त्रियों से न रमें; दृश्य में उनकी प्रीति न उपजे और यह भोग जो रोगरूपहै उनमें उनका चित्त विश्राम न पावे और रागभी न करें परन्तु मुक्त कर्ता जो आत्मबोधहै सो उन्हें प्राप्त न हुआ वे मुक्तफलके निकट आ स्थित हुये और भोगों की अभिलाष त्यागकर निर्मल होगये पर परमसमाधि

को न प्राप्त हुये चित्त अवस्था में डोलायमान होरहे। तब श्याममूर्ति विष्णुदेव प्रह्लाद की वृत्ति विचारकर पाताल में उसके गृह पूजा के स्थान में महाप्रकाश सुन्दररूप से प्रकटे और उनको देखकर प्रह्लाद ने विशेष पूजा की और प्रेम से गद्गद हो कहा हे ईश्वर! त्रिलोकी में सुन्दरमूर्ति, सब के धारनेवाले, सब कलङ्कों के हरनेवाले, प्रकाशस्वरूप, अशरणों के शरण, अजन्म। और अच्युत मैं तुम्हारी शरण हूं। हे नीलोत्पल और कमलोंके पर्वत, श्यामरूप, असंग चित्तसे धरनेवाले! मैं तुम्हारी शरणहूं। हे निर्मलरूप, केलेवत् कोमलअङ्ग और श्वेत कमल की नाईं श्वेतशंख हाथमें धारणकिये! तुम्हारे नाभिकमल में भँवरेरूप ब्रह्मा स्थित हो वेदका उच्चाररूपी गुरु गुरु शब्द करते हैं और हृदयकमल में बिराजनेवाले जलके ईश्वररूप में तुम्हारी शरण हूं! जिसके श्वेतनख तारागणवत् प्रकाशरूप; हँसता मुखचन्द्रमा के मण्डलवत्, हृदयमणि सबका प्रकाशक और शरत्-कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप! मैं तेरी शरणहूं। हे त्रिभुवनरूपी कमलिनियों के प्रकाशनेवाले चन्द्रमा! मोहरूपी अन्धकार के नाशकर्ता, सूर्य! अजड़, चिदात्मा, सम्पूर्ण जगत् के कष्ट हरनेवाले! मैं तुम्हारी शरण हूं। हे नूतनविकसितरूप कमलपुष्पों से भूषित अङ्ग और स्वर्णवत् पीताम्बरधारी महासुन्दरस्वरूप! मैं तेरी शरण हूं। हे ईश्वर! लीलाकरके सृष्टिके उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले और परमशक्ति शङ्करयोगवत् दृढ़देह! मैं तेरी शरण हूं। हे दामिनीवत् प्रकाशरूप सबको संहारकर जल में बालकरूप धर वटके नीचे शयन करनेवाले। मैं तेरी शरणहूं हे देवतारूप कमलों के प्रकाश करनेवाले सूर्यमण्डल; दैत्यपुत्ररूपी कमलिनियों के तुषाररूपी बरफ़ जलानेवाले और हृदयरूपी कमलों के आश्रयभूत! मैं तेरी शरण हूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकारजब अनेकगुणों से आठश्लोक प्रह्लाद ने कहे तब विष्णुजी ने प्रह्लाद से कहा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाष्टकानन्तरनारायणागमनं नाम त्रयस्त्रिंशतितमस्सर्गः॥ ३३॥

श्रीभगवान्जी बोले, हे गुणनिधि; दैत्यकुल के शिरोमणि! जो तुझको

वाञ्छित फल है सो मांगो और जन्मदुःख के शान्ति निमित्त वर मांगो प्रह्लाद बोले, हे सर्व संकल्प के फलदायक और सर्वलोकों में व्यापकरूप! जो वस्तु दुर्लभतर है वह शीघ्र ही मुझसे कहिये और दीजिये। श्रीभगवान्‌जी बोले, हे पुत्र! सब भ्रम के नाश करनेवाले और परम फलरूप ब्रह्म से विश्रान्ति होती है और वह जिस आत्मविवेक की समता से प्राप्त होती है वही आत्मविवेक तुझको होगा। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दैत्येन्द्र से कहकर विष्णु अन्तर्द्धान होगये। फिर प्रह्लाद ने पुष्पाञ्जली दी और पूजाकरके श्रेष्ठ आसन बिछा उसपर आप पद्मासन धरके बैठा और विधिसंयुक्त उत्तम शास्त्रों का पाठ करने लगा। जब पाठ करके निश्चिन्त हुआ तब विचारनेलगा कि विष्णु ने मुझसे क्या कहा था, उन्होंने कहाथा कि, तुझको विवेक होगा। इस लिये संसारसमुद्र तरनेके निमित्त शीघ्रही विचार करूं। इससंसार आडम्बर में मैं कौनहूं जो बोलता हूं; नर और यह जगत् तो मैं नहीं; यह तो असत्य उपजा है और जड़रूप पवन से स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होऊं? यह देह भी मैं नहीं, क्योंकि, यह तो क्षण २ में काल से लीन होता है और जड़रूप है। श्रवणरूपी जड़ भी मैं नहीं क्योंकि, जो शब्द सुनते हैं वह शून्य से उपजा है। त्वचा इन्द्रिय भी मैं नहीं इसका क्षण २ में विनाश स्वभाव है। प्राप्त हुआ अथवा न हुआ; यह इष्ट है, यह अनिष्ट है; इन्द्रिय आप जड़ है पर इसके जाननेवाला चेतनतत्त्व है और चेतन के प्रमादसे ये विषय उपलब्ध होते हैं। इस से न मैं त्वचा इन्द्रिय हूं और न स्पर्श विषय है; यह जड़ात्मक है। यह जो चञ्चलरूपी तुच्छ जिह्वा इन्द्रिय है और जिस के अग्र में अल्प जल अणु स्थित है वही रसग्रहण करता है; वह रस भी आत्मसत्ता करके लब्धरूप होता है आप जड़ है; इससे यह जड़रूप जिह्वा और रस मैं नहीं येजो विनाशरूप नेत्र दृश्य के दर्शन में लीन हैं सो मैं नहीं और न मैं इनका विषयरूप हूं, ये जड़ हैं। यह जो नासिका पृथ्वी का अंश है सो केवल आत्मा के आधार है यह आप जड़ है पर इसका जाननेवाला चेतन है; सो न मैं नासिका हूं, न गन्धि हूं; मैं अहं मम से और मनके मनन से रहित शान्तरूप

हूं और ये पञ्च इन्द्रियां मेरेमें नहीं, मैं शुद्ध चेतनरूप कलना कलङ्कसे और चित्त से रहित चिन्मात्र और सर्वका प्रकाशक सबके भीतर बाहर व्यापक और निःसंकल्प निर्मल शान्तरूप हूं। आश्चर्य है कि अब मुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है। प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत मेरे अनुभव चेतन से स्थित है। सूर्य, घट, पटादिक सब पदार्थ मैं प्रकाशता हूं। जैसे दीपक से उत्तम तेज भासे तैसेही चेतन अनुभव से इन्द्रियों की वृत्ति स्फुरणरूप होती है। जैसे तेज से चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं तैसेही सर्वज्ञ अनुभव सत्ता से मनकी मननरूप शक्ति फुरती है। जैसे सूर्य के तेज से मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदी फुरती है तैसेही अनुभव सत्ता से पदार्थ भासते हैं। जैसे दीपक में शुक्लादि रङ्ग भासते हैं, तैसेही इन पदार्थों में अहं आदिक पदार्थ भासते हैं वह जाग्रद्वत सब पदार्थों का प्रकाशक है, सबको अनुभव से भासता है और सबके भीतर आत्मभाव से स्थित है। जैसे बीज में अंकुर स्थित होता है तैसेही चेतनरूप दीपक के प्रकाश से विकल्परूपी पदार्थों की शक्ति भासती है। उष्णरूपी सूर्य, शीतलरूपी चन्द्रमा, घनरूपी पर्वत, द्रवतारूपी जल है और इसी प्रकार अनुभव सत्ता से सकल पदार्थ प्रकट होते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से घट-पटादिक होते हैं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र ये सबके कारणरूप जगत् में स्थित हैं और इनका कारण अनुभव तत्त्व आदि अन्त से रहित और सब कारणों का कारण है। जैसे बरफ से शीतलता उपजती है तैसेही अनुभव से जगत् उदय होता है चित्त, चैत्य, दृश्य, दर्शन कलना से रहित प्रकाशरूप सत्ता मेरा आत्मा मुझको नमस्कार है। इसीसे सर्वभूत उत्पन्न और स्थित होकर फिर लय होते हैं सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रय-भूत आत्मा है। जो इस चित्तसे अन्तःकरण कल्पितरूप हो जाता है। वही होता है। आत्मा से रहित सत्य भी असत्य होजाता है। जो चेतन संवित् में कल्पितरूप होता है सो ही पदार्थ अपने स्वरूप को पाता है और जो चित्तसंवित् में कल्पितरूप नहीं होता सो सत्य भी असत्यरूप होजाता है। ये जो घट, पटादि पदार्थों के समूह भासते हैं वे विस्तृतरूप

चिदाकाश दर्पण में प्रतिबिम्बित हैं और अनुभव सत्ता सर्व भूतों का आदर्शरूप है। जिनका चित्त नष्ट होजाता है उन सन्त पुरुषों को ऐसे दृढ़भाव प्राप्त हैं और वे परम आकाशरूप आत्मा में अभ्यास से तन्मय होजाते हैं? अनुभवसत्ता पदार्थों के वृद्ध होने से वृद्ध नहीं होती और नष्ट होने से नष्ट नहीं होती। पदार्थों के भाव अभाव में सत्ता सामान्य ज्यों की त्यों है जैसे सूर्य के प्रतिबिम्ब में घट सत्य हो अथवा असत्य हो सूर्य ज्यों का त्यों है। संसाररूप नाना प्रकार की विचित्र रचना ऐसे आत्मा में स्थित है। जैसे विचित्र गुच्छों के संयुक्त वृक्षों की पंक्ति की विचित्र रचना पर्वत पर स्थित होती है तैसे ही संसाररूप दृश्य नाना प्रकार की मञ्जरी को धरनेवाला आत्मसत्ता वृक्ष है जितने भूतगण त्रिलोकी उदर में बर्तते हैं वे सब आत्मा से अभिन्नरूप हैं ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सर्व का प्रकाशक आत्मा है। वह अनुभवसत्ता आदि अन्त से रहित है; जिसका सर्वरूप आकारहै और स्थावर जङ्गम सर्व जगत भूत जात अन्तर अनुभवरूप स्थित है वह एक अनुभव आत्मा मैं हूं; द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हूं और सहस्रनेत्र सहस्रहस्त मेरे हैं। मैंहीं चिदाकाशरूप हूं; सूर्य देहसे आकाश में बिचरताहूं और पवन देहसे बहता वायु वाहनपर आरूढ़ हूं। मैं विष्णुरूप शंख, चक्र, गदा, पद्म के धरनेवाला हूं; सर्व सौभाग्य देखनेवाला हूं, और सब दैत्यों को भगाता और नाशकर्ता मैं हीं हूं। मैं नाभिकमल से उत्पन्न हुआ हूं; पद्मासन से निर्विकल्प समाधि में स्थितरूप ब्रह्मा हूं और मनवृत्तिरूप को प्राप्त हुआ। मैंनेही त्रिनेत्र आकार लिया है; गौरी मेरी अर्द्धाङ्गना हैं और सृष्टि के अन्त में सबको मैं हीं संहार करता हूं। जैसे कोई अपने अङ्गों को संकोच ले तैसेही मैं संहार करता हूं। त्रिलोकीरूपी मढ़ी की इन्द्ररूप होकर मैं पालना करता हूं और कर्मों के अनुसार जैसा कोई तप करे तैसा फल देता हूं। तृणबल्लि में गुच्छे और रस होकर मैं स्थित हूं; मैं हीं उत्पत्तिकर्ता और चेतनरूप हूं और लीला के निमित्त जगत् आडम्बर विस्ताररूप मैंनेही किया है, जैसे मृत्तिका के खिलौने बालक रचलेताहै।

मेरे में सर्व कर्म अर्पण करने से सर्व शान्ति प्राप्त होती है और मुझसे रहित कुछ वस्तु नहीं; मैं सत्ता स्वरूप आदर्शहूं, सब पदार्थ मेरे में प्रतिबिम्बित होतेहैं, तब यह असत्यरूप भी सत्यता को प्राप्त होताहै–इससे मुझसे भिन्न कुछ नहीं। पुष्पों में सुगन्ध, पत्रों में सुन्दरता, पुरुषों में अनुभव और स्थावर जङ्गमरूप जो जगत् दृष्ट आता है वह सर्व मैं हूं। मैं सब संकल्प से रहित परम चैतन्य हूं और अहं त्वं आदिक से परेहूं, जल में रसशक्ति, अग्नि में उष्णता और बरफ़ में शीतलता मैं ही हूं। जैसे काष्ठ में अग्नि तैसेही सर्व में स्थितहूं, सब पदार्थों में मैं परमात्मा व्यापक हूं और सबको अपनी इच्छा से उपजाताहूं। जैसे दूधमें घृतशक्ति, जल में रसशक्ति और सूर्य में प्रकाश शक्ति है तैसेही मैं चेतनस्वरूप सब पदार्थों में स्थितहूं। त्रिकालका जगत् सब मेरेमें स्थितहै और मैं चित्त के उपचार फुरने से रहित शुद्धस्वरूप और सबका भरण और पीनेवाला और वैराग्यराज होकर स्थित भया हूं। त्रिलोकी का राज्य मुझको अपूर्व प्राप्तहुआ है, जो शस्त्रों और देवों के दल विना निरक्षित विस्तृतहै। बड़ा आश्चर्य है कि मैं इतना बड़ा विस्तृतरूपहूं और अपने आप में नहीं समाता, जैसे कल्पान्तर के वायुसे उछलासमुद्र आपमें नहीं समाता। मैं अनन्तरूपआत्मा अपनी इच्छासे आप प्रकाशता हूं। जैसे क्षीरसमुद्र अपनी उज्ज्वलता से शोभता है तैसेही मैं भी अपने आपसे शोभताहूं। यह जगत्रूपी मटकी महाअल्परूप है–जैसे बिल में हाथी नहीं समाता तैसे ही मैं अपने आप में विस्तृतरूपसे जगत् में नहीं समाता। मैं कोटि ब्रह्माण्डमें व्यापक हूं और ब्रह्मलोक से परे जो तत्त्वोंका अन्त आता है उससे भी परे मैं अनन्तरूप हूं। यह मैं हूं, यह मैं नहीं, यह निर्बलता मेरे में तुच्छरूप है; मैं तो आदि अन्तसे रहित चेतन आकाशहूं और मेरे में परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी। मैं, तू, यह, वह आदिक मिथ्या भ्रमहै। देह क्या, पर क्या और अपर क्या; मैं तो सर्वव्यापक चेतन तत्त्वहूं। मेरे पितामह बड़े नीचबुद्धिथे जो ऐसे ऐश्वर्यको त्यागकर तुच्छ ऐश्वर्यमें खचित हुये थे कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्ता ब्रह्मवपु और कहां वह संसारभ्रम का राज अनित्यरूप सुख भोग दुःखदायक। अनन्त सुख,

परम उपशम स्वभाव, शुद्धचेतन दृष्टि अब मेरेमें हुईहै। सब भावपदार्थोंमें चैत्यसे रहित मैं चेतन आत्मा स्थित हूं। अब मुझको नमस्कारहै क्योंकि मेरी जय हुई है और जीर्णरूप संसारभ्रम से निकला हूं। इससे मेरी जीत पाई है, पानेयोग्य आत्मपद पाया है और जीवित सार्थक हुआ है। ऐसा उत्तम समराज चक्रवर्तीमें भी नहीं रमता ये जीव निरन्तर बोध को त्याग कर दुःखरूपी कार्यों में रमते हैं। काष्ठ, जल और मृत्तिका से संयुक्त जो पृथ्वी है उसको पाकर जो मुलायमानहुयेहैं उनको धिक्कारहै; वे कीट हैं। यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है, अविद्या से उपजे हैं और अविद्यारूप इनका बढ़ना है। इनमें क्या गुण है जिस निमित्त यत्न करते हैं? इस जगत्रूपी मढ़ी में कई वर्ष हिरण्यकशिपु ने राजसुख भोगा परन्तु उपशम जो शान्तिसुख है उनको न प्राप्त हुआ। उसने एक जगत्का राज किया है परन्तु जो सौ जगतों का राजसुख हो तौ भी अनास्वाद है इससे वह जो समतारूप आत्मानन्द है सो नहीं प्राप्त होता। जब उस आत्मानन्द के स्वाद का यत्न हो तब प्राप्त हो, अन्यथा नहीं होता। जिस पुरुष को बड़े ऐश्वर्य और इन्द्रियों के सुख प्राप्त हुये हैं पर समतासुख से रहित है तो जानिये कि, उसको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं मिला और जिनको कुछ ऐश्वर्य और सुख नहीं प्राप्त हुआ पर समता सुख संयुक्त है उनको सब कुछ प्राप्त हुआ जानिये। वे परम अमृत से संपन्न हैं और अखण्डित सुख जो आत्मा है उस परमसुख को प्राप्त हुये हैं और आनन्दरूप हैं। जो अखण्डपद को त्यागकर परिच्छिन्नता को प्राप्त है वह मूढ़है और जो पण्डित और ज्ञानवान् है वह परिच्छिन्नता में प्रीति नहीं करता। जैसे ऊंट दूसरे पदार्थों को त्यागकर कण्टकों के पास धावता है और दूसरा पशु नहीं जाता तैसे ही मूढ़ विना ऐसा कौन है जो आत्मसुखको त्याग कर जले हुये राजसुख में रमै और अमृत को त्यागकर कण्टक और नीम का पान करे। मेरे पितामह और और जो बड़े सब मूढ़ हुये हैं वे इसपरम अमृतरूप दृष्टि को त्यागकर राजकण्टक में प्रीतिमान् हुये हैं। कहां फूल फलादिक से संयुक्त नन्दनवन की भूमिका और कहां जले हुये मरुस्थल

की भूमिका। तैसे ही कहां यह शान्तरूप बोधदृष्टि और कहां भोगों में आत्मबुद्धि। इससे ऐसा पदार्थ त्रिलोकी में कोई नहीं जिसकी मैं इच्छा करूं। सब चेतनस्वरूप है और अनुभव कर्ता चेतनतत्त्व स्वच्छसमभाव और निर्विकार, सर्वदा, सर्व में, सर्व ओर से स्थित है। यह जैसे है तैसा पाया जाता है—ज्ञानवान् को प्रत्यक्ष है। सूर्य में प्रकाश, चन्द्रमा में अमृत स्रवन, ब्रह्मा में महत्, इन्द्र में त्रिलोकपालन, विष्णुजी में सब ओर से पूर्ण लक्ष्मीशक्ति है, शीघ्र मन कर्ता शक्ति मन की है, बलवान् शक्ति पवन में, दाहक अग्नि में, रसशक्ति जल में है और मौन से महातप की सिद्धता शक्ति और बृहस्पति विद्या देवताओं में विमानों पर आरूढ़ हो कर आकाशमार्ग गमन करने की शक्ति है। पर्वतों में स्थिरता, वसन्त ऋतु में पुष्प, सब काल मेघों की शान्तशक्ति, पक्षों में ममत्वशक्ति, आकाश में निर्लेपता, बरफ़ में शीतलता, ज्येष्ठ आषाढ़ में तप्त इत्यादिक देश, काल क्रियारूप नाना प्रकार के आकार विकार जो त्रिकाल के उदर में स्थित हैं सो सर्वशक्ति, स्वच्छ, निर्विकार कलनारूप कलङ्क से रहित चेतन की है सो इस प्रकार हो भासती है और वही आत्मतत्त्व समपदार्थ जाति में व्यापक हुआ है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व ओर से समान उदय होता है तैसे ही वह सर्व देश पदार्थों का भण्डार और सर्व का आश्रयभूत है; त्रिकाल उसी में कलितरूप होते हैं। जैसे अनुभव उसमें होता है तैसाही तत्काल हो भासता है। जैसे २ चेतनतत्त्व में देश, काल और क्रिया द्रव्य का फुरना होता है तैसाही तैसा भासता है। आत्मा में त्रिकालों की सम प्रतिभा फुरी है, उसमें फिर अनन्तकाल की प्रतिभा हुईहै और शुद्ध चेतनतत्त्व में सर्व ओर से पूर्ण है। त्रिकाल के स्मरण में दृश्यसंयुक्त भासता है तो चेतनतत्त्व शेष रहता है और इसको त्रिकाल का ज्ञान होता है। मधुर, कटुक आदिक भिन्न २ से एक समता भासती है। जैसे मधुरता पान करनेवाले जीवों को मधुरता भासती है और को नहीं भासती तैसेही सर्व जो संकल्पकलना है सबको भोगता है। सूक्ष्म चेतन सत्तास्वरूप सर्वपदार्थों का अधिष्ठान है उससे अनागत होकर द्वैत जगत्

जैसे रस स्वाद है, पुष्पों में सुगन्ध और तिलों में तेल है तैसेही वह देव परमात्मा देहों में स्थित है तोभी अविचार के वश से नहीं जाना जाता; जैसे चिरकाल उपरान्त आया बान्धव अपने आगे आन स्थित हो तो भी उसको नहीं पहिंचाना जाता। जब विचार उदय होता है तब ऐसे आत्मा परमेश्वर को जानलेता है। जैसे किसी प्रियतम बान्धव के पाये से आनन्द उदय होता है तैसेही आत्मा देवके साक्षात्कार हुयेसे परमआनन्द उदय होता है और सब बान्धवपन नष्ट होजाता है; जितनी कुछ दुष्ट चेष्टा है उसका अभाव होजाता है, सब ओरसे बन्धन फांस टूटजाती है; सब शत्रुक्षय होजाते हैं और आशा फिर नहीं फुरती—जैसे पर्वत को चूहा तोड़ नहीं सक्ता। ऐसे देव के देखेसे सब कुछ देखना होता है और सुनेसे सब कुछ सुनना होता है; उसके स्पर्श किये से सब जगत् का स्पर्श होता है और उसकी स्थिति से सर्व जगत् स्थित भासता है। यह जो जाग्रत् है सो संसार की ओरसे स्वप्न है; उसी जाग्रत् से अज्ञान नष्ट होजाता है और जितनी आपदा हैं उनका कष्ट दूर हो जाता है। आत्मा के प्राप्त हुये आत्मा-मय होजाता है। और वह विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है। जगत् की स्थिति में भोगों से राग उठा है, सब ओर से आत्मतत्त्व का प्रकाश भासता है और भीतर शान्तरूप सबको अनुभव करनेवाला सब देहों में मैं स्थित हूं। जैसे मिरचों में तीक्ष्णता स्थित है तैसेही सब जगत् के भीतर बाहर मैं व्यापरहा हूं। जो कुछ जगत् के पदार्थ भासने हैं उन सब में ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है; आकाश में शून्यता; वायु में स्पन्दता; तेज में प्रकाश; जल में रस; पृथ्वी में कठोरता; चन्द्रमा में शीतलतारूप वही है और सब जगत् में अनुस्यूत एक आत्मतत्त्व ही व्यापरहा है। जैसे बरफ़ में श्वेतता; और पुष्पों में गन्ध है तैसेही सब देहों में आत्मा व्यापक है। जैसे सर्वगत काल है और सर्वव्यापक आकाश है तैसेही सब जगत् में आत्मा व्यापक है। जैसे राजा की प्रभुता सबमें होती है तैसेही मुझसे भिन्न और कोई कलना नहीं है। जैसे धूलि को पकड़ के आकाश को स्पर्श नहीं करसक्के; कमलों को जल स्पर्श नहीं करता और पाषाण को

स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता तैसेही मेरे साथ किसीका सम्बन्ध नहीं स्पर्श करता। सुख-दुःखका सम्बन्ध देह को होता है यदि देह चिरकाल रहे अथवा अबहीं नष्ट हो तो मुझको लाभ हानि कुछ नहीं। जैसे दीपककी प्रभा रज्जु से नहीं बांधी जाती तैसेही आत्मा किसी से बांधा नहीं जाता; सब पदार्थों के ग्रहण में अबन्धरूप है। जैसे आकाश किसीसे बांधा नहीं जाता और मन किसीसे रोंका नहीं जाता तैसेही परमात्मा को देह इन्द्रिय का सम्बन्ध वास्तव में नहीं होता। यदि शरीर के टुकड़े होजावें तोभी आत्मा का नाश नहीं होता—जैसे घट फूटे से दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता परन्तु आकाश कहीं नहीं जाता वह ज्योंका त्योंही रहता है तैसेही देह के नाश हुये प्राणकला निकल जाती है आत्मा का कुछ नाश नहीं होता और पिशाच की नाईं उदय होकर भासता है। जिसका नाम मन है उस मन से जगत् भासित हुआ है और उसीमें जड़ शरीर के नाश का निश्चय हुआ है, हमारा क्या नाश होता है? जिसके मन से दुःख सुख से वासना नाश होती है सो भोगोंसे निवृत्ति सुख सम्पन्न होता है और ग्रहण करते भोग से और इन्द्रिय के अज्ञान से मूढ़ दुःख पाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है कि, आत्मा के अज्ञान से मूढ़ दुःख पाता है। अब मैंने आत्मतत्त्व देखा है, उससे मेरा भ्रम शान्त होगया है और कुछभी किसीसे मुझको क्षोभ नहीं अब मुझे न कुछ भोगों के ग्रहण करने की इच्छा है और न त्याग की वाञ्छा है; जो जावे सो जावे और जो प्राप्त हो सो हो, न मुझको देहादि के सुख की अपेक्षा है; न दुःख के निवृत्ति की अपेक्षा है सुख दुःख आवे और जावे मैं एकरस चिदानन्दस्वरूप हूं जिस देह में वासना करने से नाना प्रकारकी वासना उपजती है वह देह भ्रम मेरा नष्ट होगया है, यह वासना नहीं फुरती। इतने कालपर्यन्त मुझको अज्ञानरूपी शत्रु ने नाश किया था अब मैंने आपको जाना है और अब इसको मैं चूर्ण करता हूं। इस शरीररूपी वृक्ष में अहंकाररूपी पिशाच था सो मैंने परमबोधरूपी मन्त्र से दूर किया है इससे पवित्र हुआ हूं और प्रफुल्लित वृक्षवत् शोभता हूं। मोहरूपी दृष्टि मेरी शान्त हुई है, दुःख

सब नष्ट हुये हैं और विवेकरूपी धन मुझको प्राप्त हुआ है। अब मैं परम ईश्वररूप होकर स्थित हुआ हूं। जो कुछ जानने योग्य था सो मैंने जाना है और जो कुछ देखने योग्य था वह देखा है। अब मैं उस पद को प्राप्त हुआ हूं जिसके पायेसे कुछ पानेयोग्य नहीं रहता। अब मैंने आत्मतत्त्व को देखा है; विषयरूपी सर्प मुझको त्यागगया है; मोहरूपी कुहिरा नष्ट होगया है; इच्छारूपी मृगतृष्णा शान्त होगई और रागद्वेषरूपी धूलि से रहित सब ओरसे निर्मल हुआ हूं। अब मैं उपशमरूपी वृक्ष से शीतल हुआ हूं और सब ओरसे विस्तृतरूप को प्राप्त हुआ हूं। अब मैंने सबसे उचित परमात्म देव परमार्थ को ज्ञान और विचार से पाया है और प्रकट देखा है। अधोगति का कारण जो अहंकार है उसको मैंने दूर से त्याग दिया है और अपना स्वभावरूप जो आत्मभगवान् सनातन ब्रह्म है सो जो अहंकार के वश से विस्मरण हुआ था उसे अब चिरकाल करके देखा है। इन्द्रियरूपी गढ़े में मैं गिरा था और रागद्वेषरूपी सर्प से दुःख पाकर मृत्यु को प्राप्त हुआ था। मृत्यु की भूमिका टोये विना तृष्णारूपी करंजुये की कुञ्जोंमें मैं भ्रमता रहा जहां कामरूपी कोयल के शब्द होते थे और जन्मरूपी कूप में दुःख पाता था। सुख के पाने की आशा में डूबा; वासनारूपी जाल में फँसा; दुःखरूपी दावाग्निमें जला और आशारूपी फाँसीसे बँधा हुआ मैं कईबार जन्ममरण को प्राप्त हुआ था क्योंकि अहंकार के वश हुये जन्म मृत्यु को प्राप्त होताही है—जैसे रात्रि में पिशाच दिखाई दे और अधीरताको प्राप्त करे तैसेही मुझको अहंकार ने किया था सो अब परमात्मरूप की मुझको तुमने प्रेरणा की है और अपनी शक्ति विष्णुरूप धारकर विवेक उपदेश किया और जगाया है। हे देव, ईश्वर! तुम्हारे बोध से अहंकाररूपी राक्षस नष्ट हुआहै। हे विभो! अब मैं उसको नहीं देखता जैसे दीपकसे तम नहीं भासता। अहंकाररूपी जो यक्ष था और मन में जो वासना थी वह सब नष्ट हुई है। अब मैं नहीं जानता कि, वे कहां गये—जैसे दीपक निर्वाण होता है तब नहीं जानाजाता कि, प्रकाश कहां गया। हे ईश्वर! तुम्हारे दर्शन से मेरा अहंभाव नष्ट हुआ

है। जैसे सूर्य के उदय हुये चोरभय मिट जाता है तैसेही देहरूपी रात्रि में अहंकाररूपी पिशाच उठा था वह अब नष्ट हुआ है और अब मैं परमस्वस्थ हुआ हूं। जैसे वानरों से रहित वृक्ष स्वस्थ होता है तैसेही मैं परमनिर्वाण को प्राप्त हुआ हूं। अब मैं सम और शान्त बोध में जागा हूं और चिर पर्यन्त चोरों से जो घिरा था सो अब छूटा हूं। अब मेरा हृदय शीतल हुआ है और आशारूपी मृगतृष्णा शान्त होगई है। जैसे जल से पर्वत की तपना मिटे और वर्षा से शीतलता को प्राप्त हो तैसे ही विवेकरूपी विचार से अहंकाररूपी तपना दूर होगई है। अब मोह कहां और दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां और नरक कहां; बन्ध कहां और मुक्त कहां। अहंकारके होनेसे पदार्थ भासते हैं अहंकारके गये इनका अभाव होजाता है। जैसे मूर्ति दीवारपर लिखी जाती है आकाश पर नहीं लिखी जाती तैसेही अहंकार संयुक्त जो चेतन है वह नहीं शोभता; अहंकारसे ही सुख दुःखादिक का पात्र होता है। जैसे मलीनवस्त्र पर केशर का रङ्ग नहीं शोभता तैसेही उसमें ज्ञान नहीं शोभता। जब अहंकाररूपी मेघका अभाव हो तब तृष्णारूपी कुहिरा भी नहीं रहता और शरत्काल के आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है। निरहंकाररूपी जल में प्रसन्नतारूपी कमलों से शोभता है। हे आत्मा! तुझको नमस्कार है। इन्द्रियांरूपी तेंदुये और चित्तरूपी बड़वाग्नि, दोनों जिसमे नष्ट भये हैं ऐसे आत्मारूपी समुद्र आत्मा को नमस्कार है; जिससे अहंकार मेघ दूर हुआ है और दावाग्नि शान्त हुई है। ऐसा जो आत्मानन्दरूपी पर्वत है उस आनन्द के आश्रय मैंने विश्राम पाया है। हे देव! तुझको नमस्कार है। जिसमें आनन्दरूपी कमल प्रफुल्लित हैं और जिससे चित्तरूपी तरङ्ग शान्त हुआ है ऐसा जो मानसरोवर में आत्मा हूं उसको नमस्कार है। आत्मारूपी हंस में संवित्-रूपी पंख हैं और हृदयरूपी कमलों से पूर्ण मानसरोवर पर विश्राम करने वाले को नमस्कारहै। कालरूपी कलना से रहित निष्कलङ्क;सदा उदित-रूप, सब ओर से पूर्ण और शान्तआत्मा तुझको नमस्कारहै मैं सदा उदित, शीतल हृदय का तम दूर करता, और सर्वव्यापक हूं परन्तु अज्ञान से

अदृष्ट हुआ था सो उस चेतन सूर्य को नमस्कार है। मन के मन से जो उपजे थे वह अब शान्त हुये हैं और मन को मन से और अहं को अहं से छेद के जो शेष रहे सो ही मेरी जय है। भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं उनको आत्मभाव से तृष्णा को अतृष्णा के छेदे से, अनात्मा को आत्मविचार के नष्ट किये से और ज्ञानसे ज्ञेयको जानेसे मैं निरहंकार पदको प्राप्त हुआ हूं और भाव अभाव क्रिया नष्ट होगई है। मैं अब केवल स्वास्थित हूं और निर्भय, निरहंकार, निर्मन, निष्पन्द, शुद्धात्मा हूं। मेरा शरीर जीव की नाईं स्थित है, लीला करके मन ने अहंकार को जीता है; परम उपशम को प्राप्त हुआ हूं और परमशान्ति मुझको प्राप्त हुई है मोहरूपी वैताल और अहंकाररूपी राक्षस नष्टहुये हैं; वासनारूपी कुत्सित भूमिका से मुक्त और विगतज्वर हुआ हूं और तृष्णारूपी रस्सीसे जो बँधा हुआ देह पिंजरा था और उसमें अहंकाररूपी पक्षी फँसा था सो तृष्णारूपी रस्सी विवेकरूपी कतरनी से काटी है। अब जाना नहीं जाता कि, शरीररूपी पिंजरे से अहंकाररूपी पक्षी कहां निकल गया। अज्ञानरूपी वृक्ष में अहंकाररूपी पक्षी रहता था उसके जाननेसे जाना नहीं जाता कि, कहां गया? दुराशारूपी दुर्मति ने धूमर किया था; भोगरूपी भस्म ने शुद्ध दृष्टि दूर की थी और वासना से हम मृतक होगये थे। इतने कालमें मैं चित्तकी भूमिकामें मिथ्या अहंकारको प्राप्त हुआ था अब मैं उपजा हूं आजही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है; अहंकाररूपी महामेघ नष्ट हुआ है और उसमें तृष्णारूपी समता थी वह नष्ट हुई है। अब मैं निर्मल आकाशवत् शोभता हूं; अब मैंने आत्मा भगवान् देखा है और अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं और अनुभवरूप सदा प्राप्त है। प्रभुता के समूह के आगे अज्ञान अल्परूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मलाभचिन्तनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३५॥

प्रह्लाद बोले, हे महात्मा पुरुष! तुझको नमस्कार है। तू सर्व्वभेद से अतीत आत्मा चिरकाल में मुझको स्मरण आया है और तेरे मिलने से मेरा कल्याण हुआ है। हे भगवन्! तुमको देखकर सब ओर से नमस्कार

करताहूं और हृदय से तुझको आलिङ्गन करूंगा। त्रिलोकी में तुझसे अन्य बान्धव कोई नहीं। तू सबसे सुखदायक है और सबका तूही संहार करता और रक्षा करता है और देने और लेनेवाला भी तू ही है। अब तू क्या करेगा और कहां जावेगा? तूने अपनी सत्ता से विश्व को पूर्ण किया है और विश्वरूप भी तूही है। अब सब ओर से मैं तुझको देखता हूं और तूही नित्यरूप सर्वत्र है। तेरे और मेरे में अनेक जन्मका अन्तर पड़ा था पर अब कल्याण हुआ जो तुझको देखा है। तू अत्यन्त निकट है और परम बान्धवरूप है—तुझको नमस्कार है। तू सबका कृत-कृत्यस्वरूप कर्त्ता हर्त्ता है और संसार तेरी नृत्य है। हे नित्य, निर्मल-स्वरूप! तुझको नमस्कार है। शंख, चक्र, गदा और पद्मके धारनेवाले विष्णु और अर्धचन्द्रमा के धारनेवाले सदाशिवरूप तुझको नमस्कार है। हे सहस्रनेत्र, इन्द्र! तुझको नमस्कार है। पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्या का सम्बन्ध तूही है। तेरे में कुछ भेद नहीं तो तुम्हारे हमारे में भेद कैसे हो? जैसे समुद्र और तरङ्गों का संयोग अभेद है तैसेही तेरा और मेरा संयोग अभेद है। तूही अनन्त और विचित्ररूप है और भाव अभावरूप जगत् के धरनेवाली नीति है—जो जगत् की मर्याद करती है। हे द्रष्टा-रूप! तुझको नमस्कार है। हे सर्वज्ञ! सर्वस्वभावरूप आत्मादेव! जन्म प्रति जन्म में बहुत दुःख मार्ग में बिचरा हूं और तेरी माया से चिरकाल दग्ध हुआ हूं। हे देवेश! देशलोक मैंने अनन्त देखे हैं और दृष्टान्त द्रष्टा भी अनेक देखा है परन्तु किसीसे तृप्त न हुआ। जगत् को जिस ओर देखूं उसी ओर से काष्ठ, पाषाण, जल, मृत्तिका, आकाश दृष्ट आता था अब तुझ विना कुछ और दृष्ट नहीं आता अब वाञ्छा किसकी करूं जब तुझको देखा है और उपलब्धस्वरूप को प्राप्त हुआ हूं। तुझको नमस्कार है। नेत्रों की श्यामता में जो पुतलीरूप स्थित है और रूप को देखता है वह साक्षीभूत भीतर कैसे नहीं देखना? जो त्वचा में स्पर्श करता है और शीत उष्णादिक को जानता है ऐसा सर्व अङ्गों में व्यापक अनुभवकर्ता है—जैसे तिलों में तेल व्यापक होता है। उसको अनुभव

कोई नहीं करता। जो शब्द श्रवण इन्द्रिय के भीतर ग्रहण करता है उस शब्दशक्ति का जो जाननेवाली सत्ता है और जिसमें शब्दशक्ति का विचार होता है इससे रोम खड़े हो आते हैं सो सत्ता दूर कैसे हो? जो जिह्वा के अग्र में रस स्वाद को ग्रहण करता है उस रस के अनुभव करनेवाली सत्ता दूर कैसे हो? नासा में जो ग्रहणशक्ति है उसको गन्ध आती है उसको अनुभव करनेवाली अलेप सत्ता है सो सन्मुख कैसे न हो? वेद, वेदान्त, मतसिद्धान्त, पुराण और गीता से जो जानने योग्य आत्मा है उसको जब जाना तब विश्राम कैसे न हो? वह तो परावर परमात्मा पुरुष है। जिन भोगों की मैं तृष्णा करता था वह भोग विद्यमान रमणीय हैं तोभी तेरे दर्शन से रस नहीं देते। हे स्वच्छरूप, निर्मलप्रकाश! तू सूर्यभाव होकर प्रकट हुआ है और तेरी सत्ता से चन्द्रमा शीतल हुआ है; तेरी सत्ता से पृथ्वी स्थित है; तेरी सत्ता से देवता आकाश मार्ग में बिचरते हैं और तेरी सत्ता से आकाश में आकाशभाव है। मेरी अहंता तेरे में तत्त्व को प्राप्त हुई है; तेरे और मेरे में भेद कुछ नहीं। तुझे और मुझे नमस्कार है। मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, निर्विकार और देश, काल पदार्थ के छेद से रहित हूं। मन जब क्षोभको प्राप्त होता है तब इन्द्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है और प्राण, अपानशक्ति जब उल्लासको प्राप्त होती है तब देहरूपी यन्त्र बहता है उस यन्त्र में चर्म अस्थि आदिक लकड़ियां और रस्सी हैं; इन्द्रियरूपी घोड़े हैं और मनरूपी सारथी चलानेवाला है। उस देहरूपी रथ में मैं चेतनरूप स्थित हूं परन्तु मैं किसीमें आस्था नहीं करता। देह रहे अथवा गिरे मुझको कुछ इच्छा नहीं; मैं अब आत्मलाभ को प्राप्त हुआ हूं और चिरकाल पर उपशमको प्राप्त हुआ हूं। जैसे कल्पके अन्त में जगत् शान्ति को प्राप्त होता है तैसेही दीर्घ संसारमार्ग में मैं चिरकालतक भ्रमता २ अब विश्राम को प्राप्त हुआ हूं। जैसे कल्प के अन्त में वायु चलता २ रहजाता है। हे सर्वरूपात्मा! तुझको नमस्कार है—जो तुझको और मुझको इस प्रकार जानते हैं। हे देव! सम्पूर्ण जगत्जाल जो विस्तृतरूप है उसका तुमने कदाचित् स्पर्श नहीं किया—तुम्हारी जय है।

जैसे पुष्पों में गन्ध और तिलों में तेल रहता है तैसे ही तुम सब देहों में रहते हो। तुम सर्व जगत् के प्रकाशक दीप हो। उत्पत्ति और प्रलयकर्ता और सदा अकर्तारूप हो तेरी जयहै तेरे परमाणु चिद्अणुमें यह विस्ताररूप जगत् स्थितहै जैसे वटबीजमें वृक्ष होताहै; फिर औरमें और होताहै तैसेही चिद्अणुमें जगत् है। जैसे आकाश में एक बादल के अनेक आकार दृष्ट आते हैं तैसेही चित्तकला फुरने से अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं। इस संसार के जो क्षणभंगुररूप पदार्थ हैं इनकी अभावना किये से अब भाव अभाव से रहित भावको देखताहूं मुझे अब यह निश्चय हुआहै कि, मान, मद, क्रोध और कलुषता, कठोरता आदिक विकारों में महापुरुष नहीं डूबते पर जिनकी नीच प्रकृतिहै वे इनदोषों और अवगुणों में डूबते हैं। पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीचअवस्था थी उसको स्मरणकरके अब मैं हँसताहूं कि, मैं कौन था और क्या जानता था। हे मेरे आत्मा! मैं उस पदको प्राप्त हुआथा जहां चिन्तारूपी अग्निकी ज्वाला थी और दग्धहुये जीर्णसंसार के आरम्भ थे पर अब देहरूपी नगर में स्फाररूपी मनोरथ की जय है और अब दुःख ग्रहणकर नहीं सक्के। जहां दुष्ट इन्द्रियांरूपी घोड़े और मनरूपी हाथी जाता था उस भोगरूपी शत्रु को अब चारों ओरसे भक्षण किया है और निष्कण्टक राजा चक्रवर्ती हुआहूं। तू परमसूर्य है और परम आकाश में तेरा मार्ग है; उदय अस्त से रहित तू नित्य प्रकाशरूपहै और सबके भीतर बाहर प्रकाशता है। अब मैं भोगों को लीलारूप देखता हूं–जैसे कामी कामिनी को देखे परन्तु इच्छा से रहित हो तैसेही तू ग्रहण करता है। नेत्ररूपी झरोखे में बैठकर तू रूप विषय को ग्रहण करताहै और अपनी शक्ति से इसीप्रकार सब इन्द्रियों में वही रूप धारकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयों को ग्रहण करताहै। ब्रह्मकोटर में जो देश हैं उनमें प्राण अपान शक्तिसे तूही बिचरता है ब्रह्मपुरी में जाताहै और क्षण में फिर आताहै और सब जगत् देहों में तूही बिचरता है। देहरूपी पुष्पों में तू सुगन्धहै; देहरूपीचन्द्रमा में तू अमृतहै; देहरूपी वृक्षमें तू रसहै और देहरूपी बरफ़में तू शीतलता है। दूधमें घृत, काष्ठ में अग्नि, उत्तम स्वादों में स्वाद;

तेजमें प्रकाश और सर्व असर्व अर्थकर्ता पूर्ण तूही है और सर्व जगत् का प्रकाशक भी तूही है। वायु में स्पन्द, मन में मुदित और अग्नि में तेज तुझीसे सिद्ध है; प्रकाश में प्रकाश तू है और सब पदार्थों को सिद्धकर्ता दीपक तू है पर लीन हुये से जाना नहीं जाता कि, कहांगया। संसार में जितने पदार्थ और अहं त्वं आदिक शब्दहैं वे ऐसे हैं जैसे सुवर्ण में भूषण होतेहैं सो उसने अपनी लीलाके निमित्त किये हैं और आपही प्रसन्नहोता है। जैसे मन्द वायु से खराड २ हुये बादल के हाथी आदिक आकार हो भासते हैं तैसेही तू भौतिक दृष्टि से भिन्न २ रूप भासता है। हे देव! ब्रह्माण्डरूपी मोती में तू निरिच्छित व्यापक है भूतोंरूपी जो अन्नका तू खेत है और चेतनरूपी रससे बढ़नेवाला है। तू अस्त की नाईं स्थित है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से रहित अव्यक्तरूप है और सर्वपदार्थों का प्रकाशक है। जो पदार्थ शोभा संयुक्त विद्यमान होताहै पर यदि तेरी अवस्था उसमें नहीं होती तो वह अस्त होता है- जैसे सुन्दर स्त्री भूषणों सहित अन्धे के आगे स्थित हो तो वह अस्तभूत होती है तैसेही विद्यमान पदार्थ हो और तू न कल्पे तो अस्त होजाता है। जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब होताहै उसको देखकर अपनी सुन्दरता विना कोई प्रसन्न नहीं होता। हे आत्मा! तेरे संकल्प विना देह त्रुटित हो काष्ठलोष्टवत् होती है। जब पुर्यष्टक शरीर से अदृष्ट होती है तबसुख दुःख आदिक क्रम नष्ट होजाताहै और किसी का ज्ञान नहीं होता -जैसे तम में कोई पदार्थ दृष्टि नहीं आता। तेरे देखने से सुख दुःख आदिक स्थित होते हैं-जैसे सूर्य की दृष्टि से प्रातःकाल शुक्लवर्ण से प्रकाश आता है। जब अपने स्वरूप को प्राप्त होता है तब अज्ञानरूप सर्वविकार नष्ट होजाते हैं-जैसे प्रकाश से अन्धकार नष्ट होता है तो पदार्थ ज्यों का त्यों भासता है तैसेही अज्ञान के नष्ट हुये से आत्मा ज्यों का त्यों भासता है। यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेसे सुख दुःखकी लक्ष्मी उपज आती है और तेरे अभाव हुये से सर्वनष्ट होजाता है। स्वरूप से तू अनामयरूप है और क्षणभंगुर देह में जो मन ने आस्था की है सो महासूक्ष्म अणु निमेष के लक्षभाग ऐसा सूक्ष्म है सुख दुःखादिक

की भावना करके अनीश्वरता को प्राप्त हुआ है। तेरे प्रमाद से फुरनरूप होता है और तेरे देखने से सर्व लीन होजाता है। यह जो पुर्यष्टक तेरा रूप है उसके देखने से क्षीण पदार्थजात भासि आते हैं-जैसे नेत्रों के खोलने से रूप भासता है और अन्तर्धान मनके मरने से सर्वनष्ट होजाता है और फिर किसी से ग्रहण नहीं होता। जो वस्तु क्षणभंगुर है उससे कुछ कार्य सिद्ध नहीं होता-जैसे बिजली के प्रकाश से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता तैसेही अन्तर्धान होने से देह से कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। जो उपजकर तत्काल नष्ट होजाता है उससे क्या कार्य सिद्ध हो? देहादिक जड़ और नाशवन्त हैं और जो सबको प्रकाशता है वह सदा निर्विकार सच्चिदानन्दरूप है। सुख दुःखआदिक अज्ञानी के चित्त को स्पर्श करते हैं और जिसका सम चित्त है उसको स्पर्श नहीं करते। हे देव! ये जो सुख दुःख आदिक अविवेक के आश्रय हैं सो अविवेक नष्ट होगया है। तू निरीह निरंश निराकार है और सत्य असत्य से परे भैरवरूप परमात्मा तेरी सदा जय है। तू सर्वशास्त्रों का असि पद है। तू जात अजातरूप सदा जय है; तेरे नाश और अविनाशरूप की जय है और तेरे भाव और अभावरूप की जय है और जीतने और न जीतने योग्य तेरी जय है। मायाहुलास और उपशान्ति को प्राप्त हुआ है तुझको नमस्कार है। हे निर्दोष! तेरे में स्थित होने से मेरे राग द्वेष मिटगये हैं। अब बन्ध कहां और मोक्ष कहां और आपदा, सम्पदा और भाव-अभाव कहां। अब मेरे सर्वविकार शान्तहुये हैं और सम समाधि में स्थित हुआ हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने संस्तवननाम-
षट्त्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार चिन्तनकर महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानन्द समाधि में ऐसे स्थित हुआ जैसे मूर्ति का पर्वत हो। जब बहुतकाल अपने भुवन में सुमेरुवत् समाधि में स्थितरहा तब दैत्य उसको जगानेलगे परन्तु वह न जागा-जैसे समय बिना बीज अंकुर नहीं लेता-और पांचसहस्र वर्ष समाधि में व्यतीत भये पर शरीर

उसी प्रकार पुष्ट रहा। दैत्यों के नगर में शान्ति होगई और वह परमानन्द आत्मा को प्राप्त हुआ; निरानन्द जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रह गया और कलना सब मिटगई। इतना काल जब इस प्रकार व्यतीत हुआ तब रसातलमण्डल में राजभय दूर होगया और छोटे को बड़ा भक्षण करनेलगा। निदान दैत्यमण्डली की विपर्यय दशा होगई और निर्बल को बलवान् मारके लूट ले गये। तब अनेक मल्ल मिलकर प्रह्लाद को जगानेलगे पर तौ भी वह न जागा—जैसे सूर्यमुखी कमल को रात्रि में भँवरे गुञ्जार करें और तौ भी वह प्रफुल्लित नहीं होता मुँदाही रहता है। संवित्कला जो चित् धातु है सो उसके भीतर फुर्ती न भासती थी जैसे मूर्तिका लीला सूर्यप्रकाश से रहित होता है तैसेही उसे देखकर दैत्य उद्वेगवान् हुये और जहां किसी को सुखदायक देश स्थान मिला वहां जारहे; मर्यादा सब दूर होगई मत्सर होनेलगा और पुरुष स्त्रियां रुदन करने और शोकवान् होने लगे। कोई मारे जावें, कोई लूटे जावें और कोई व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले होगये। सब दैत्यलापरायण हुये, बान्धव नष्ट होगये और उपद्रव उत्पन्न होने लगे। दिशा के मुख अग्निरूप होगये देवता आन दिखाई देनेलगे और दैत्य निर्बल को बाँधि ले जानेलगे। दैत्यमूल भूमि से रहित निर्लक्ष्मी उजाड़ से होगये और दैत्यपुर में अनीति अकाण्ड उपद्रव हुआ। जैसे कल्प के अन्त में जीव दुःख पाते हैं तैसेही दैत्य दुःख पाने लगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे दैत्यपुरीप्रभञ्जनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब दैत्यपुरी की दशा हुई तब सम्पूर्ण जगत्जाल के क्रम पालनेवाले विष्णुदेव, जो क्षीरसमुद्र में शेषनाग की शय्या पर शयन करनेवाले हैं, चतुर्मास वर्षा काल की निद्रा से जागे और बुद्धि के नेत्रों से जगत् की मर्यादा विचारी तो देखा कि, पाताल में प्रह्लाद दैत्य समाधि में पद्मासन बाँधकर स्थित हुआ है और सृष्टि दैत्यों से रहित हुई है। बड़ा कष्ट है कि, अब देवता जीतने

की इच्छा से रहित होकर आत्मपद में स्थित होजावेंगे और जब देवता और दैत्यों का विरोध रहता है तब जीतने के निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्य नष्ट होवें। अब सब देवता निर्द्वन्द्वरूप होकर परमपद को प्राप्त होवेंगे। जैसे रससे रहित बेलि सूख जाती है तैसेही अभिमान और इच्छा से रहित देवता जगत् की ओर से सूखकर आत्मपद को प्राप्त होंगे। जब देवताओं के समूह शान्ति को प्राप्त होंगे तब पृथ्वी में यज्ञ तपादिक उत्तम क्रिया निष्फल होजावेंगी न कोई करेगा, न किसी को प्राप्त होगा और जब पृथ्वीलोक से शुभक्रिया नष्ट हुई तब लोक भी नष्ट होजावेंगे, अकाण्ड प्रलय प्रसंग होगा और सब मर्यादा क्रम जगत् का नष्ट होजावेगा। जैसे धूप से बरफ़ नष्ट होता है तैसेही जगत् क्रम सब नष्ट होवेगा इसके नष्ट हुये भी मुझको कुछ नहीं परन्तु मैंने अपनी लीला रची है सो सब नष्ट होजावेगी तब मैं भी इस शरीर को त्याग कर परमपद में स्थित हूंगा और अकाण्डीही जगत् उपशम को प्राप्तहोगा। इससे इसमें मैं कल्याण नहीं देखता। जो दैत्यों के उद्वेग से रहित देवताभी शान्त होजावेंगे तो तपक्रिया नष्ट होजावेगी और जीव दुःखी होकर नष्ट होजावेंगे। इससे मैं जगतकर्म को स्थापनकरूं कि, परमेश्वर की नीति इसी प्रकार है। अब रसातल को जाऊं और जगत् की मर्यादा ज्यों की त्यों स्थापन करूं पर जो मैं प्रह्लाद से भिन्न पाताल का राज्य करूंगा तो वह देवताओं का शत्रु होगा इससे ऐसे भी न करूंगा। प्रह्लाद का यह अन्त का जन्म है और परम पावन देह है और कल्प पर्यन्त रहेगी। यह ईश्वर की नीति है सो ज्यों की त्यों है; इससे मैं जाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद को जगाऊं कि अब वह जागकर जीवन्मुक्त हुआ है दैत्योंका राज्यकरे। जैसे मणि मल से रहित प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है तैसेही प्रह्लाद भी इच्छासे रहित होकर प्रवर्त्ते। इस प्रकार सृष्टि देवता दैत्यों से संयुक्त रहेगी और परस्पर इनका द्वेष न होगा और मेरी क्रीड़ा लीला और इच्छा होगी। यद्यपि सृष्टि का होना न होना मुझको तुल्य है तौभी जो नीति है वह जैसे स्थित है तैसेही रहे। जो

वस्तु भाव में तुल्य हो उसका नाश और स्थित में प्रयत्नकरना कुबुद्धि है; आकाश के हननके यत्न के तुल्य है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे भगवान्चित्तविवेको-
नामाष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः॥ ३८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन कर सर्वात्मा विष्णुदेव अपने परिवार सहित क्षीरसमुद्रसे चले-जैसे मेघघटा एकत्र होकर चले-और आकर प्रह्लाद के नगर को प्राप्त हुये। वह नगर मानो दूसरा इन्द्रलोक था और प्रह्लाद के मन्दिर में देखा कि, निकट दैत्य थे वे विष्णुजी को दूर से देखकर भागगये-जैसे सूर्य से उलूकादिक भागजावें तब जो मुख्य दैत्य थे उनके साथ विष्णुजी ने दैत्यपुरी में प्रवेश किया-जैसे तारासंयुक्त चन्द्रमा आकाश में प्रवेश करता है तैसेही विष्णुजी गरुड़ पर आरूढ़ लक्ष्मी साथ चमरकरतीं और अनेक ऋषि, देव, सहित प्रह्लाद के गृह आये। आतेही विष्णुजी ने कहा, हे महात्मापुरुष! जाग! जाग! ऐसे कहकर पाञ्चजन्य शंख बजाया जिससे महाशब्द हुआ। फिर उस प्रह्लाद के कानों के साथ लगाया और जैसे प्रलयकाल में इकट्ठा मेघ का शब्द हो तैसेही बड़े शब्द को सुनकर दैत्य पृथ्वी पर गिर गिरपड़े। निदान शनैःशनैः दैत्येन्द्र को जगाया और प्राणशक्ति जो ब्रह्मरन्ध्र में थी वहां से विष्णुजी ने उठाई और वह शरीर में प्रवेश कर गई। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्य की प्रभा वनमें प्रवेश करजाती है तैसे नवद्वारों से प्रवेश करगई। तब प्राणरूपी दर्पण में चित्तसंवित् प्रतिबिम्बित होकर चैतन्य मुखत्व हुई और मनभाव को प्राप्त हुई और तब जैसे प्रातःकाल में कमल खिलआते हैं तैसेही उसके नेत्र प्रफुल्लित हो आये और प्राण औ अपान नाड़ी में छिद्रों के मार्ग विचरनेलगे। जैसे वायु से कमल स्फुरनेलगते हैं तैसेही मन और प्राणशक्ति से अङ्गफुरने लगे और जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे उससे वह जगा और उसने जाना कि, मुझ को विष्णु भगवान् ने जगाया है और जैसे मेघ का शब्द सुनकर मोर प्रसन्न होता है तैसे वह प्रसन्न हुआ और मन में दृढ़

स्मृति होआई। तब त्रिलोकी के ईश्वर विष्णुदेव ने, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्मा से कहाथा कहा कि, हे साधु! तू अपनी महालक्ष्मी को स्मरणकर कि, तू कौन है। समय विना देहके त्यागने की इच्छा क्या की थी। जो ग्रहण त्याग के संकल्प से रहित पुरुष हैं उनको भाव अभाव के होने में क्या प्रयोजन है? उठकर अपने आचार में सावधान हो, तेरा यह शरीर कल्पपर्यन्त रहेगा और नष्ट नहीं होगा। इस नीति को ज्योंकी त्यों मैं जानता हूं। हे आनन्दित! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्य में स्थित हो। हे क्षीणमन! गतउद्वेग तेरा देह कल्पपर्यन्त रहेगा और फिर कल्प के अन्त में तू शरीर त्यागकर अपनी महिमा में स्थित होगा—जैसे घट के फूटेसे घटाकाश महाकाश को प्राप्त होता है। अब तू निर्मलदृष्टिको प्राप्त हुआ है; लोकों का पारावार तू ने देखा है और अब तू जीवन्मुक्त विलासी हुआ है। हे साधु! द्वादश सूर्य जो प्रलयकाल में तपते हैं उदय नहीं हुये तो तू क्यों शरीर त्यागता है; उन्मत्त पवन जो त्रिलोकी की भस्म उड़ानेवाला वह तो नहीं चला है और देवताओंके विमान उससे नहीं गिरे तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है? सबलोगों के शरीर सूखे वृक्ष की मञ्जरीवत् नहीं सूखे; पुष्कर मेघ और वह बिजली फुरने नहीं लगी पर्वत तो युद्ध करके परस्पर नहीं गिरनेलगे, अबतक मैं भूतों को खेंचने नहीं लगा लोकों में विचरताहूं। यह अर्थ है, यह मैं हूं, यह पर्वत है, ये भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है, तू देह मत त्याग; देह को धारेरह। हे साधो! जो जीव अज्ञानयोग से शिथिल हुआ है अर्थात् जिसकी देह में आत्म अभिमान है कि, मैं और मम से व्याकुल रहता है और दुःखों से जीर्ण होता है उसको मरना शोभता है। जिसको तृष्णा जलाती है और हृदय में संसारभावना जीर्ण करती है और जिसके मन रूपी वन में चित्तरूपी लता दुःख सुखरूपी पुष्पों से प्रफुल्लित है और उदय होती है उसको मरना श्रेष्ठ है। जो पुरुष अपनी देहमें आधि व्याधि दुःखों से जलता है और जिसके हृदय में काम क्रोधरूपी सर्प फुरते हैं और देहरूपी सूखा वृक्ष निष्फल है और चित्त चञ्चल है ऐसी देह के

त्यागनेको लोक में मरना कहतेहैं; स्वरूपमें नाश किसी का नहीं होता। क्या ज्ञानी का हो क्या अज्ञानी का हो। हे साधो। जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्व के अवलोकन से उपरान्त नहीं होती ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है और जिसका हृदय राग द्वेषसे रहित शीतल हुआ है और दृश्यवर्ग को साक्षीभूत होकर देखता है उसका जीना श्रेष्ठ है। जो पुरुष सम्यक् ज्ञानद्वारा हेयोपादेय से रहित है और चेतनतत्त्व में तद्रूप चित्त हुआ है; जिसने संकल्प मल से रहित चित्त को आत्मपद में लगाया है और जिस पुरुष को जगत के इष्ट-अनिष्ट पदार्थ समान भासते हैं और शान्तचित्त हुआ लीलावत् जगत् के कार्य करता है; जो इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में राग द्वेष नहीं करता, जिसे ग्रहण त्याग की बुद्धि उदय नहीं होती और जिसके श्रवण और दर्शन किये से औरों को आनन्द उपजता है उसका जीना शोभता है। जिसके उदय हुए से जीवों के हृदय कमल प्रफुल्लित होते हैं उसका चिरजीना प्रकाशवान् शोभता है और वही पूर्णमासी के चन्द्रमावत् सफल प्रकाशता है—नीच नहीं शोभते॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने नारायणवनोपन्यासयोगोनामैकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ३९॥

श्रीभगवान् बोले, हे साधो! यह जो देहसंग दृष्टि आती है उसका नाम जीना कहते हैं और इस देह को त्यागकर और देह में प्राप्त होनेका नाम मरना है। हे बुद्धिमन्! इन दोनों पक्षों से अब तू मुक्त है; तुझको मरना क्या है और जीना क्या है—दोनों भ्रममात्रहैं। इसअर्थ के दिखाने के निमित्त मैं ने तुझ से मरना और जीना कहा है कि, गुणवानों का जीना श्रेष्ठहै और मूढ़ोंका मरना श्रेष्ठहै पर तू न जीताहै, न मरेगा। देहके होते भी तू विदेह है और तेरे आकाश की नाईं अङ्ग हैं। जैसे आकाश में वायु नित्य चलता है परन्तु उससे आकाश निर्लेप रहताहै तैसे ही तू देहमें निर्लेप रहेगा। देह, इन्द्रियां, मन आदिक की क्रिया सब तुझसे होती हैं, सबका कर्त्ता और सत्ता देनेवाला तू ही है और स्वरूप से सदा अकर्ता है। जैसे वृक्ष की उँचाईका कारण आकाशहै तैसे ही तेरे में कर्तव्यहै। तू अब

जागा है, तू ने वस्तु ज्यों की त्यों जानी है और तू अस्ति नास्ति सर्व का आत्मा है। यह परिच्छिन्नरूप जो देह है सो अज्ञानी का निश्चयहै और यह केवल दुःखों का कारण है। तू तो सर्वप्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाशहै, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है और तुझको देह अदेह क्या और ग्रहण और त्याग क्या। जो तत्त्वदर्शी पुरुष हैं उनका भावपदार्थ उदय हो अथवा लीन हो और प्रलयकाल का पवन चले तो भी उसको चला नहीं सक्ता और जिसका मन भाव अभावसे रहितहै वह जो पर्वत के ऊपर पर्वत पड़े और चूर्ण हो और कल्पकी अग्नि में जलने लगे तौ भी अपने आप में स्थित है—चलायमान नहीं होता। सब भूत स्थित होवें; इकट्ठे नष्ट होजावें अथवा वृद्ध होवें वह सदा अपने आपमें स्थितहै इस देहके नष्ट हुये नाश नहीं होता और विरोधी हुए प्राप्त नहीं होता। इस देह में जो परमेश्वर आत्मा स्थित है वह मैं हूँ। मेरा अनात्माभ्रम नष्ट होगया है और ग्रहण त्याग मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती। जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है उसका संकल्पभ्रम नष्ट हो जाता है और जो प्रबुद्ध पुरुष है वह सब क्रिया करता भी अकर्तापद को प्राप्त होताहै। वह सर्व अर्थों में अकर्ता, अभोक्ता रहता है और जगत् के किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शान्त होताहै तब आत्मपद शेष रहताहै। इस निश्चयकी दृढ़ता को बुद्धिमान् और मुक्त कहते हैं। प्रबुद्ध पुरुष चिन्मात्रस्वरूप है और सबको अपने वश करके स्थितहै; वह ग्रहण किसका करे और त्याग किसका करे। ग्राह्य और ग्राहक शब्द भाव अविद्या है और देह इन्द्रियोंसे होताहै सो ग्रहण करना क्या और त्याग करना क्या? जब ग्राह्य-ग्राहक भाव हृदयसे दूर हुआ उसीका नाम मुक्त है। जिसको ऐसी स्थिति उदय होती है वह परमार्थसत्ता में सदा स्थित रहताहै और वह पुरुषों में पुरुषोत्तम सुषुप्त की नाईं स्थित है; उसके अङ्गों की चेष्टा बोधको प्राप्त हुई है। परम विश्रान्तिमान् निर्वासनिक पुरुषों की वासना भी जगत् में स्थित दृष्टि आती है और अर्द्ध सुषुप्तकी नाईं चेष्टा करतेहैं पर वे सब जगत् में आत्मा देखते हैं। वे आत्मविषयिणी बुद्धि से सुख में हर्षवान् नहीं होते और दुःख में भी

शोकवान् नहीं होते एकरस आत्मपद में स्थित रहते हैं। नित्यप्रबुद्ध पुरुष कार्यमात्र को ग्रहण करता है पर जैसे इच्छा से रहित दर्पण प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है तैसे ही भली बुरी भावना उसको स्पर्श नहीं करती। वह आत्मपद में जाग्रत् है और संसार की ओर से सोया है और सुषुप्तिरूप है। जैसे पालने में सोया हुआ बालक स्वाभाविक अङ्ग हिलाता है तैसे ही उसका हृदय सुषुप्तिरूप है और व्यवहार करता है। हे पुत्र! तू अजात परमपद को प्राप्त हुआ है। तू इस देह से ब्रह्मा का एक दिन भोगेगा और इस राजलक्ष्मी को भोगकर फिर अच्युत परमपद को प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उप० प्र० प्रह्लादबोधो नाम चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥४०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अद्भुत जिसका दर्शन है ऐसे जगत्रूपी रत्नों के डब्बे विष्णुदेवने जब शीतल वाणी से इस प्रकार कहा तब प्रह्लाद ने नेत्रों को खोलकर धैर्य सहित कोमल वचन और मननभाव को ग्रहण करके देखा और चर्मदृष्टि से बाहर देखा कि, बड़ा कल्याण हुआ है। परमेश्वर अपना आपस्वरूप अनन्त आत्मा है और सर्वसंकल्प से रहित आकाशवत् निर्मल है। अब मुझको न शोक है, न मोह है और न वैराग से देहत्याग की चिन्ता है। जो कुछ कार्य भयदायक होता है सो एक आत्मा के विद्यमान रहते शोक कहां; नाश कहां; देहरूपी संसार कहां; संसार की स्थिति कहां, भय कहां और अभयता कहां; मैं यथा इच्छित अपने आपमें स्थित हूँ। इस प्रकार मैं निर्मल विस्तृतरूप केवल पावन में स्थित हूँ और संसारबन्धन को त्यागकर विरक्त हुआ हूं। जो अप्रबुद्ध मूढ़ हैं उनकी बुद्धिमें हर्ष, शोक, चिन्ता, विकार सदा रहता है। वे देहके भाव में सुख मानते हैं और अभाव में दुःखी होते हैं। यह चिन्तारूपी विष की पंक्ति मूढ़ोंको लेपायमान होती है। यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है; यह त्यागने योग्य है; इस प्रकार मूर्खों के चित्त की अवस्था डोलायमान होती है पण्डितों की नहीं होती। मैं भिन्न हूं और वह भिन्न है यह अज्ञान से अन्धवासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान नहीं रहती जैसे सूर्य की किरणोंसे रात्रि दूर रहती है तैसेही यह वासना दूर रहती है। यह त्याग

और यह ग्रहण कीजिये सो मिथ्या चित्त का भ्रमहै और उन्मत्त अज्ञानी के हृदय में होताहै; ज्ञानवान् के हृदयमें यह भ्रम उदय नहीं होताहै। हे कमल-नयन! सर्व तूही है और विस्तृत आत्मरूप है। हेयोपादेय और द्वैतभाव कल्पना कहां है? यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ता का आभासहै। सत्य असत्यरूप जगत् में ग्रहण त्याग किसका कीजिये। केवल अपने स्वभाव से द्रष्टा और दृश्यका विचार किया है उसमें मैं प्रथम क्षीण विश्रान्तवान् हुआ था अब भाव अभाव जगत् के पदार्थों से मुक्त हुआहूं और हेयोपा-देय से रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है और समभावको प्राप्त हुआ हूं। अब मुझको संशय कुछ नहीं रहा, जो कुछ करता हूं वह आत्मा से करता हूं। त्रिलोकी में तबतक तू पूजने योग्यहै जबतक उन्मत्त नहीं हुआ इससे मैं आदरसंयुक्त पूजन करता हूं तुम ग्रहण करो। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दैत्यराज ने कहकर क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले विष्णु को श्रेष्ठ सुमेरु की मणिसे पूजा और फिर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदिक शस्त्रों का पूजन करके गरुड़ की पूजा की और फिर देवता और विद्याधरों की पूजा की। इस प्रकार भगवान् के आत्मस्वरूप का हृदय में ध्यान रखके परिवार संयुक्त पूजन किया, तब लक्ष्मीपति बोले; हे दैत्ये-श्वर! तू उठकर सिंहासन पर बैठ, मैं तुझको अपने हाथ से अभिषेक करताहूं और पाञ्चजन्य शंख बजाता हूं उसका शब्द सुनकर सब सिद्ध और देवता आकर तेरा मङ्गल करेंगे। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर विष्णुजी ने दैत्य को इस भांति सिंहासन पर बैठाया जैसे सुमेरु पर मेघ आबैठे और फिर क्षीरसमुद्र और गङ्गादि तीर्थों का जल मँगाके पाञ्चजन्य शंख बजाया जिसके शब्द से सब सिद्धगण, ऋषि, ब्राह्मण, विद्याधर, देवता और मुनियोंके समूह आये और सबने स्तुति की। इस प्रकार अभिषेक देकर मधुसूदन बोले, हे निष्पाप! जब तक सुमेरु के धरनेवाली पृथ्वी और सूर्य चन्द्रमा का मण्डल है तबतक तू इष्ट अनिष्ट में समबुद्धि; वीतराग और क्रोध से रहित होकर राजभोग और राज्य की पालना कर। तुझको पूर्ण भूमिका प्राप्त हुई है उसमें स्थित

होकर जैसे प्राप्तहो तैसेही हर्ष शोक और उद्वेग से रहित होकर बिचरो। हेयोपादेय से रहित हो। तू बन्धवान् न होगा। संसार की स्थिति तू ने सब देखी है और सबको जानता है अब मैं तुझको क्या उपदेश करूं। तू राग द्वेष से रहित होकर राज भोग, अब दैत्यों का रुधिर धाती पर न पड़ेगा अर्थात् देवताओं के साथ विरोध न होगा। आज से देवता और दैत्यों का संग्राम गया। जैसे मन्दराचल से रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् हुआ था तैसेही सब जगत् स्वस्थ रहेगा। मोहरूपी तम तेरे हृदय से दूर हुआ है और सदा प्रकाशस्वरूप लक्ष्मी हुई है और अनन्त विलासों को राजलक्ष्मी से भोगता आत्मपद में स्थितरह ॥

इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेकोनामैकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ४१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर पुण्डरीकाक्ष परिवार संयुक्त चले मानो दूसरी संसार की रचना दैत्य के मन्दिर से चली है। तिस पीछे प्रह्लाद ने पुष्पाञ्जलि दी और क्रमसे क्षीरसमुद्र में पहुँचे और देवताओं को बिदा करके आप शेषनाग के आसन पर जैसे श्वेतकमल पर भँवरा बैठे तैसे स्वस्थ होकर बैठे। हे रामजी! यह दृष्टि अज्ञान के सम्पूर्ण मल के नाश करनेवाली है। प्रह्लाद को बोध की प्राप्ति की जो अवस्था मैंने तुमसे कही है वह चन्द्रमा के मण्डलवत् शीतल है। जो मनुष्य बड़ापापी हो और इसको विचारे तो वह भी शीघ्रही परमपद को प्राप्त हो और जो पाप से रहित है उसकी क्या वार्त्ता कहिये केवल सम्यक् विचार करके पाप नष्ट होजाताहै। वह कौन है जो इन वाक्यों को विचार के परमपद को न प्राप्तहो। हे रामजी! अज्ञानरूप पाप इसके विचार से नष्ट होजाते हैं और पापों का कारण जो अज्ञानहै उसका नाश करनेवाला यह विचार है-इससे विचार का त्याग कदाचित् न करो। यह जो प्रह्लाद की सिद्धता कही है इसको जो मनुष्य विचारे उसके अनेक जन्मों के पाप नष्ट होजावें इसमें कुछ संशय नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! प्रह्लाद का मन तो परमपद में लगगया था पाञ्चजन्य शब्द से उसको विष्णुजी ने कैसे जगाया? वशिष्ठजी बोले, हे निष्पाप, रामजी! लोक में मुक्ति

दो प्रकार की है एक सदेह और दूसरी विदेह, उनका भिन्न भिन्न विभाग सुन। जिस पुरुष की बुद्धि देहादिकों से असंशक्ति है और जिसको ग्रहण त्याग की इच्छा नहीं और निरहंकार हुआ चेष्टा करता है उसको तुम सदेह मुक्त जानो और देहादिक सब नष्ट होजावें फिर न जन्म धारण करे उसको विदेह मुक्त जानो। वह उस पद को प्राप्त होता है जो अदृश्यरूप है। अज्ञानी की वासना कच्चे बीजकी नाईं है जो जन्मरूपी अंकुर को प्राप्त करती है और ज्ञानवान् मुक्त की वासना भूनेबीज की नाईं जो जन्म-रूपी अंकुर से रहित होती है। विदेहमुक्त की वासना का अंकुर दृष्टि नहीं आता जीवन्मुक्त पुरुष के हृदय में शुद्ध वासना होती है और पावनरूप परम उदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यान में है और संसार की ओर से सुषुप्ति की नाईं शान्तरूप है। सहस्र वर्ष का अन्त होजावे और शुद्ध वासना का बीज हृदय में हो तो वह पुरुष समाधि से जागेगा—वह जीवन्मुक्त है। इससे प्रह्लाद के हृदय में शुद्धवासना थी उससे पाञ्चजन्य शंख के शब्द से वह जागा। विष्णुजी सब भूतों के आत्मा हैं जैसे जिसकी इच्छा फुरती है तैसेही तत्काल होता है और वे सर्वज्ञ और सबके कारण हैं। जब विष्णु ने चिन्तना की तब प्रह्लाद जागा। आप अकारण है कोई इसका कारण नहीं यही सब भूतों का कारण है सृष्टि की स्थिति निमित्त आत्मापुरुष ने विष्णुवपु धारा है और आत्मा के देखनेही से विष्णुजीका दर्शन होता है और विष्णुकी आराधनासे शीघ्र ही आत्मा का दर्शन होता है। आत्मा के देखने के निमित्त तुमभी इसी दृष्टि का आश्रय करो। तुम विराट्रूप हो, इसी दृष्टिसे शीघ्रही आत्मपद की प्राप्ति होगी। यह वर्षाकालकी नदीवत् संसार असार बादल है सो विचाररूपी सूर्य के देखे विना जड़ता दिखाता है। विष्णुरूप जो आत्मा है उसकी प्रसन्नता से बुद्धिमान् को यह भास्वररूप माया नहीं बेधती। जैसे यक्ष माया यन्त्रमन्त्रवाले को नहीं बेधसक्की तैसेही आत्मा की इच्छासे यह संसार माया घनता को प्राप्त होती है और आत्माकी इच्छासे निवृत्त होती है। यह संसारमाया ईश्वर की इच्छा से वृद्ध होती है—जैसे

अग्नि की ज्वाला वायु से वृद्ध होती है और वायुही से नष्ट होती है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्थावर्णनन्नाम द्विचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४२ ॥

इतना सुनकर रामजी ने पूछा, हे भगवन्, सब धर्मों के वेत्ता! आपके वचन परम शुद्ध और कल्याणस्वरूप हैं जिनको सुनकर मैं आनन्दवान् हुआ हूं—जैसे चन्द्रमा की किरणों से औषध पुष्ट होती है-और आपके वचनों के सुनने को, जो पावन और कोमल हैं, जिसकी वाञ्छा है वह पुरुष जैसे पुष्पों की माला से सुन्दर छाती शोभती है तैसेही शोभता है। हे गुरुजी! आप कहते हैं कि, सब कार्य अपने पुरुष प्रयत्न से सिद्ध होते हैं; जो ऐसे है तो प्रह्लाद माधव के वर बिन क्यों जागा—जब विष्णुने वर दिया तब उसको ज्ञान प्राप्त हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! प्रह्लाद को जो कुछ प्राप्त हुआ वह पुरुषार्थ से प्राप्त हुआ; पुरुषार्थ बिन कुछ प्राप्त नहीं होता। जैसे तिलों और तेल में कुछ भेद नहीं तैसेही विष्णु भगवान् और आत्मा में कुछ भेद नहीं। जो विष्णु है वह आत्मा है और जो आत्मा है वह विष्णु है; विष्णु और आत्मा दोनों एक वस्तु के नाम हैं जैसे विटप और पादप दोनों एक वृक्ष के नाम हैं। प्रह्लाद ने जो प्रथम अपने आपसे अपनी प्रेमशक्ति विष्णुभक्ति में लगाई सो आत्मशक्ति से लगाई; आत्मा से आपही वर पाया और आपही विचारकर अपने मनको जीता। कदाचित् आत्मा में आपही अपनी शक्ति से जागता है अथवा विष्णुशक्ति से जागता है। हे रामजी! प्रह्लाद चिरपर्यन्त आराधना करता प्रतापवान् हुआ। विचार से रहित को विष्णु भी ज्ञान नहीं देसक्ता। आत्मा के साक्षात्कार में मुख्य कारण अपने पुरुषार्थ से उपजा विचार है और गौणकारण वर आदिक हैं; इससे तू मुख्य कारण का आश्रय कर। प्रथम पांचों इन्द्रियों को वश कर और चित्त को आत्मविचार में लगा। जो कुछ किसीको प्राप्त होता है वह अपने पुरुषार्थ से होता है; पुरुषार्थ विना नहीं होता। अपने पुरुषार्थ प्रयत्न से इन्द्रियरूपी पर्वत को लांघे तो फिर संसारसमुद्र से तरजावे और

तब परमपद की प्राप्ति हो। जो पुरुष यत्न बिना जनार्दन मुक्ति दें तो मृगपक्षियों को क्यों दर्शन देकर उद्धार नहीं करता जो गुरु अपने पुरुषार्थ बिना उद्धार करते तो अज्ञानी अविचारी ऊंट, बैल आदिक पशुओं को क्यों नहीं करजाते। इससे विष्णु, गुरु इत्यादि और किसीके पाने की इच्छा बुद्धिमान् नहीं करते हैं। अपने मनके स्वस्थ किये विना परम सिद्धता की प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते। जिन्होंने वैराग्य और अभ्यास से इन्द्रियरूपी शत्रु वश किये हैं वे अपने आपसे उसको पाते हैं और किसीसे नहीं पाते। हे रामजी! आपसे अपनी आराधना और अर्चना करो; आपसे आप को देखो और आपसे आपमें स्थितरहो। शास्त्रविचार से रहित मूढ़ोंकी प्रकृति के स्थिति के निमित्त वैष्णव भक्ति कल्पी है प्रथम जो अभ्यास यत्न का सुख कहा है उससे जो रहित पुरुष है उसको गौणपूजा का क्रम कहा है क्योंकि; उसने इन्द्रियों को वश नहीं किया और जिसने इन्द्रियों को वश किया उसको भेदपूजा से क्या प्रयोजन है। विचार और उपशम विना भी विष्णुभक्ति सिद्ध नहीं होती और जब विचार और उपशम संयुक्त हुआ तब कमल और पाषाण से क्या प्रयोजन है। इससे विचार संयुक्त होकर आत्मा का आराधन करो; उसकी सिद्धता से तुम सिद्ध होगे जिसने उसको सिद्ध नहीं किया वह वन का गर्दभ है जो प्राणी विष्णु के आगे प्रार्थना करते हैं वे अपने चित्त के आगे क्यों नहीं करते? सब जीवों के भीतर विष्णुजी स्थित हैं उनको त्यागकर जो बाहर के विष्णुपरायण होजाते हैं वे बुद्धिमान् नहीं। हृदय-गुफा में जो चेतनतत्त्व स्थित है वह ईश्वर का मुख्य सनातन वपु है और शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथ में है वह आत्मा का गौणवपु है। जो मुख्य को त्याग कर गौण की ओर धावते हैं वे विद्यमान अमृत को त्याग कर जो साधन से सिद्ध हो उसकी प्राप्ति निमित्त यत्न करते हैं। हे रामजी! मनरूपी हाथी को जिस पुरुष ने आत्मविवेक से वश नहीं किया उस अविवेकी चित्त को रागद्वेष ठहरने नहीं देते। जिसके हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म है उस ईश्वर की जो अर्चना करते हैं वे कष्ट

तपस्या से पूजन करते हैं; उनका चित्त समय पाकर निर्मलभाव, अभ्यास और वैराग्य को प्राप्त होता है । नित्य अभ्याससे भी चित्त निर्मल होताहै तो आत्मफलको प्राप्त होताहै; चित्त निर्मल विना आत्मफलको प्राप्त नहीं होता और जब चित्त निर्मल हुआ तब वैराग्य और अभ्यासवान् होकर आत्मफल का भोगी होताहै—जैसे बोया बीज समय पाकर फल देताहै तैसेही क्रमकरके फल होताहै । हे रामजी ! विष्णुपूजाका क्रम भी निमित्तमात्रहै । आत्मतत्त्व के अभ्यासरूपी शाखा से फल प्राप्त होताहै और जो सबसे उत्तम परम संपदाका अर्थहै वह अपने मनके निग्रहसे सिद्धहोताहै। अपने मनका निग्रह करना ही बीजहै जो चेतनरूपी क्षेत्रसे प्रफुल्लित होकर फलदायक होताहै । संपूर्ण पृथ्वी की निधि और शिलामात्र बड़ी २ मणिकी होवें तौ भी मनके निग्रह के समान नहीं । जैसा दुःख का नाशकर्ता और बड़ा पदार्थ मन को निग्रह है वैसा और कोई नहीं । जब तक जीव अनेक जन्म पाताहै तबतक अनउपशम मनरूपी मत्स्य संसारसमुद्र में भ्रमाता है । हे रामजी ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश को चिरकालपर्यन्त पूजता रहे पर यदि मन उपशम और विचार संयुक्त न हुआ तो देवता कृपालु हों तौ भी उसको संसारसमुद्र से नहीं तार सक्ते । यह जो भास्वर आकार जगत् के पदार्थ भासते हैं उनको इन्द्रियों से त्याग कीजिये तब जन्मके अभावका कारण जानिये । विषयोंकी चिन्तना से रहित होकर, निरामय और सब दुःखोंसे रहित आत्मसुखमें स्थित हो और जो सत्तामात्र तत्त्व और सबका साररूपहै उसका स्वाद लेकर मनरूपी नदीके पारहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रान्तिवर्णनं नामात्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह संसाररूप नाम्नी माया अनन्त है और किसी प्रकार इसका अन्त नहीं आता । जब चित्त वश हो तब यह निवृत्त होजाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती । जितना जगत् देखने और सुनने में आताहै वह सब मायामात्र है और मायारूप जगत्के भ्रमसे भासता है । इस पर एक पूर्व इतिहास हुआ है सो तुम सुनो । हे रामजी!

इस पृथ्वी पर कोसलनाम एक देश है जो सुमेरु पर्वतवत् रत्नों से पूर्ण है और जो २ उत्तम पदार्थ हैं वे सब उस देश में हैं वहां गाधिनाम एक ब्राह्मण जो वेदों में प्रवीण—मानो वेद की मूर्ति था—रहता था बाल्यावस्था से वह वैराग्यादिक गुणों से प्रकाशित भुवनवत् शोभता था। एक समय वह कुछ कार्य मन में धरके तप करने के निमित्त वन में गया और उस वन में एक कमलों से पूर्ण ताल देख कण्ठपर्यन्त जल में खड़ा होकर तप करने लगा। आठ मास पर्यन्त दिन रात्रि जब जल में खड़ा रहा तो उसके दृढ़ तप को देखकर विष्णु प्रसन्न हुये और जहां वह ब्राह्मण तप करता था वहां, ज्येष्ठ आषाढ़ की तपी पृथ्वी पर मेघवत आकर कहा, हे ब्राह्मण! जल से बाहर निकल और जो कुछ वाञ्छित फल है वह मांग तब गाधि ने कहा, कि हे भगवन्! असंख्य जीवों के हृदयरूपी कमल के छिद्र में आप भँवरे हैं और त्रिलोकीरूपी कमलों के आप तड़ाग हैं आप ऐसे ईश्वर को मेरा नमस्कार है। हे भगवन्! यही इच्छा मुझको है कि, आपकी आश्चर्यरूप माया को, जिससे यह जगत् रचा है, किसी प्रकार देखूँ। तब विष्णुजी ने कहा, हे ब्राह्मण! तुम माया देखोगे और देखकर फिर त्याग भी दोगे। ऐसे कहकर जब विष्णु अन्तर्धान होगए तब ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ और जल से निकला जैसे निर्धनपुरुष धन पाकर आनन्दवान् होता है तैसेही वह ब्राह्मण वर पाकर आनन्दवान् हुआ। चलते बैठते उसकी सुरति विष्णु के वर की ओर लगी रहे और यही विचारे कि, मैं माया कब देखूँगा। एक कालमें उसी तालाब पर वह स्नान करनेलगा और डुबकी मार मन में अघमर्षणमन्त्र जपने लगा (अघमर्षण पापोंके नाशकरनेवाले मंत्रको कहतेहैं) उस मन्त्रको जपते २ जब उसका चित्त विपर्यय होकर निकलगया तब उसको कृष्ण मन्त्र भूल गया और आपको फिर अपने गृह में स्थित देखा। फिर उसने आपको मृतक हुआ देखा और देखा कि, सब कुटुम्ब के लोग रुदन करते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी जाती रही है जैसे टूटे कमलों की शोभा जाती रहती है। जैसे पवन के ठहरे से वृक्ष अचल होजाते हैं तैसे ही अङ्ग अचल

होगया और होठ फटकर विरस होगए मानो अपने जीनेको हँसते हैं। माता गाधिको पकड़े बैठी रही और सब परिवारवाले ऐसे इकट्ठे हुये जैसे वृक्षपर पक्षी आन इकट्ठे होते हैं और जैसे पुलके टूटे जल चलता है तैसेही रुदन करते हैं फिर बान्धवलोग कहनेलगे कि, अब यह अमङ्गलरूप है, इसको जलाना चाहिये। ऐसे कहकर उसे सब जलाने ले चले और चितामें डालके जलादिया और फिर अपने गृह में आकर क्रियाकर्म किया। हे रामजी! उसके उपरान्त वह ब्राह्मण एकदेश में चाण्डाल हुआ। उस देश में एक चाण्डालों का ग्राम था वहां उसने एक चाण्डाली के गर्भ में, श्वान की विष्ठा में कृमिवत् प्रवेश हुये देखा और समय पाकर गर्भ से बाहर निकला—जैसे पका फल वृक्ष से गिरता है, तो वहां वह बहुत सुन्दर बालक जन्मा और चाण्डाली इससे प्रीति करनेलगी। इस प्रकार दिन२ बढ़ने लगा जैसे छोटा वृक्ष बढ़जाता है। निदान वह बारह वर्ष का होके फिर सोलह वर्ष का हुआ तब श्वानों को साथ लेकर वन में जावे और मृगों को मारे और इसीप्रकार बहुत स्थानों में विचरे। फिर उसका विवाह हुआ तब उसने यौवन अवस्था को यौवन में व्यतीत किया और बहुत बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर जब वृद्धहोकर शरीर जर्जरीभूत होगया तो तृणों की कुटी बनाकर बाहर जा रहा—जैसे मुनीश्वर रहते हैं। दैववशात् वहां दुर्भिक्ष पड़ा और इसके बान्धव क्षुधा से मरने लगे तब वहां से अकेला निकला और बहुतेरे स्थान लांघता हुआ क्रान्त देश में पहुँचा। उस सुन्दर देश का राजा मरगया था और उसके मन्त्रियों ने एक बड़े हाथी को इस निमित्त छोड़ा था कि, जो कोई पुरुष इसके मुखसे लगे उसको राजा कीजिये यह राजमार्ग में चला जाता था उस हाथीको देखा कि, बहुतसुन्दर चरणों से सुमेरुपर्वतवत् चला आता है। जब निकट आया तब उसने इसको शीश पर ऐसे चढ़ालिया जैसे सूर्य को सुमेरु शीश पर बैठाले। इसके हाथी पर आरूढ़ होतेही नगारे और तुरियां बजनेलगे और बड़े शब्द होनेलगे—मानो प्रलयकाल के मेघ गर्जते हैं; भाट आदिक आन कर स्तुति करनेलगे और हाथी पर बैठे से इसके मुख की शोभा औरही

होगई । निदान सेना सहित राजा ऐसा शोभायमान हुआ जैसे तारों में चन्द्रमा शोभता है और अन्तःपुर में जाकर रानियों में बैठा और सब रानियां और सहेलियां इसके निकट आईं और इससे मिलनेलगीं । सहेलियों ने स्नान कराके, नाना प्रकार के हीरे, मोती, भूषण और सुन्दर वस्त्र पहिराये । निदान सब प्रकार सुशोभित होकर राज्य करनेलगा और सब स्थान और सब देशों में इसकी आज्ञा चलनेलगी और सबलोग इससे भय पावें । वहां वह बड़े तेज और लक्ष्मी से सम्पन्न हुआ और तेजवान् होकर ऐसे बिचरनेलगा जैसे वनमें सिंह बिचरता है और हाथी पर चढ़कर शिकार खेलने जाता था । वहां उसका नाम गावल हुआ ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे गावलोपाख्यानचाण्डालनाम-
चतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार लक्ष्मी पाकर वह आनन्दवान् हुआ और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभताहै तैसेही शोभित हुआ । जब आठवर्षपर्यन्त इस प्रकार राज्य किया तब एक दिन उसके मन में संकल्प फुरा कि, मुझको वस्त्र और भूषणों के पहिरने से क्या है और इनकी सुन्दरता क्या है; मैं तो राजाधिराज हूं और अपने तेजसे तेजस्वी शोभायमान हूं । हे रामजी ! ऐसे विचारकर उसने भूषण उतार डाले; शुद्ध श्याम मूर्ति होकर स्थित हुआ और जैसे प्रातःकाल में तारागणों से रहित श्याम आकाश होता है तैसेही होकर फिर अपनी चाण्डाल अवस्था के वस्त्र पहिन अकेला निकलकर बाहर डेवढ़ीपर जा खड़ाहुआ । निदान उस देश के बड़े चाण्डाल जिनको यह दुर्भिक्ष से छोड़ आया था उस मार्ग में आ निकले; उनमें एक चाण्डाल तन्त्री हाथमें लिये आता था उसने राजा को देखकर पहिचाना और श्यामपर्वतवत् राजा के सन्मुख आकर कहा; हे भाई ! इतने काल तू कहां था ? हमको छोड़कर यहां आकर सुख भोगने लगा है ? हे भाई ! यहां के राजा ने तुझको सुखी किया होगा क्योंकि; तू गाता भला है ? राजा को राग प्यारा होता है और तू कोकिला की नाईं गाता है इस कारण प्रसन्न होकर उसने तुझे बहुत धन दिया होगा

अथवा किसी और धनी ने तुझसे प्रसन्न होकर मन्दिर और धन दिया होगा। हे रामजी! इसप्रकार वह चाण्डाल मुख से कहता और भुजा फैलाता इसके सन्मुख चला और यह नेत्रों और हाथों से उसको संकेत करे, कि चुपरह पर वह चाण्डाल कुछ न समझे सन्मुख होकर चलाही आवे। ज्यों ज्यों वह पास आता था त्यों त्यों राजाकी कान्ति घटती जाती थी कि, इतने में झरोखों में से सहेलियोंने देखा और देखकर विचार किया कि यह राजा चाण्डाल है। ऐसे विचार कर वे महाशोक को प्राप्त हुईं और कहनेलगीं कि, हमको बड़ा पाप हुआ कि, इसके साथ हमने स्पर्श और भोजन किया। इस शोक से सबकी कान्ति नष्ट होगई जैसे बरफ़ पड़नेसे कमलपंक्ति की कान्ति जाती रहती है; और जैसे वन में अग्नि लगने से वृक्षों की कान्ति जाती रहती है तैसेही उनकी कान्ति जाती रही। सब नगरवासी भी यह सुनकर शोकवान् हुये और हाय २ शब्द करनेलगे। जब वह चाण्डाल राजा अपने अन्तःपुर में आया तो उसको देख करके सब भागे और निकट कोई न आता था। जैसे पर्वत में अग्नि लगे तो वहां से पशु पक्षी भागजाते हैं तैसेही चाण्डाल राजा के निकट कोई न आवे। उस देश में जो बुद्धिमान् पण्डित थे उन्होंने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ हुआ जो हम इतने कालतक चाण्डाल राजा से जिये। हमको बड़ा पाप लगा है इसलिये इस पाप का और पुरश्चरण कोई नहीं, हम सबही चिता बनाके अग्नि में प्रवेश कर जल मरेंगे तब यह पाप निवृत्त होगा। हे रामजी! ब्राह्मण और क्षत्रियों ने यह विचार करके चिता बना पुत्र, कलत्र और बान्धवों को छोड़कर चिता में प्रवेश करनेलगे और जैसे दीपक में पतङ्ग प्रवेश करें तैसेही जलने लगे। जैसे आकाश में तारे दृष्ट आवें तैसेही चिता का अनेक चमत्कार दृष्ट आता था और धुवें से अन्धकार होगया। कोई धर्मात्मा मनुष्य अपनी इच्छा से जलें और जो अपनी इच्छासे न जलें उनको और ले जलावें। चाण्डालराजा ने विचारा कि, मुझ एक के निमित्त इतने नगरवासी व्यर्थ जलते हैं; इससंसार में उसका जीना श्रेष्ठहै जिसमें

शोभा उत्पत्ति हो और जिसके जीने से पाप की उत्पत्ति हो उसका मरना श्रेष्ठ है। हे रामजी! ऐसे विचार कर उस राजा ने भी चिता बनाई और जैसे दीपकमें पतङ्ग प्रवेश करताहै तैसेही प्रवेश करगया। जब अग्निका तेज शरीर में लगा तब गाधि का शरीर जो तलाव में डुबकी लगाये था कांपा और जलसे बाहर शीश निकाला परन्तु सावधान न हुआ। इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि, जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे राजप्रध्वंसवर्णनन्नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इतना भ्रम उसने दो मुहूर्त में देखा और अर्धघटी पर्यन्त उसे कुछ बोध न हुआ पर उसके उपरान्त बोधवान् हुआ और उस संसारभ्रम से रहित हुआ। जैसे मद्यपी नशे के क्षीणहुये बोधवान् हो तैसाही वह बोधवान् हुआ और बाहर निकलकर विचारनेलगा कि, मुझको कुछ भ्रमसा हुआहै। कहां वह मेरा गृहमें मरना, फिर चाण्डालके गृह में जन्मलेना, फिर कुटुम्ब में रहना और फिर राज्य करना। बड़ा भ्रम मुझको हुआ है। हे रामजी! ऐसे विचारकर फिर उसने सन्ध्यादिक कर्म किये और इस भ्रम को फिर फिर स्मरण करके आश्चर्यवान् हो पर यह जानसके कि, भगवान् का वर पाकर मैंने यह माया देखी है। जब कुछ काल व्यतीतहुआ तब एकक्षुधार्थी दुर्बल ब्राह्मण थकाहुआ इसके आश्रम पर आया—मानो ब्रह्मा के आश्रमपर दुर्वासा ऋषि आये—तब गाधिने उस ब्राह्मण को आदर संयुक्त बैठाया और फल फूल इकट्ठे करके जैसे वसन्त ऋतु में फल फूल से वृक्ष पूर्ण होता है तैसेही उसको पूर्ण किया। वह ब्राह्मण कई दिन वहां रहा। संध्यादिक कर्म और मन्त्र जाप दोनों इकट्ठे करें और रात्रि को पत्रों की शय्या बनाकर शयन करें। एक रात्रि के समय शय्यापर बैठे दोनों चर्चा वार्त्ता करते थे कि, प्रसङ्ग पाकर गाधि ने पूछा हे ब्राह्मण! तेरा शरीर जो ऐसा कृश और थका हुआ है इसका क्या कारण है? उसने कहा हे साधो! जो कुछ तूने पूछा है सो मैं कहता

हूं, हम सत्यवादी हैं—जैसे वृत्तान्त हुआ है सो तू सुन। एक कालमें मैं देशान्तर फिरता फिरता उत्तर दिशा की ओर गया और कान्तदेश में जा पहुंचा और वहां रहने लगा। वहां के गृहस्थ भली प्रकार मेरी टहल करें और उनके भले भोजन और वस्त्रों से मैं प्रसन्न हो रसस्वाद से मेरा चित्त मोहगया। एक दिन मेरे मुख से यह शब्द निकला कि, यहां के लोग बहुत श्रद्धावान् और दयावान् हैं तब जो लोग पास बैठे थे कहने लगे, हे साधो! आगे यहां दया धर्म बहुत था अब कुछ कम होगया है। तब मैंने पूछा कि, क्यों? तब उन्हों ने कहा कि, इस देश का राजा मृतक हुआ तब एक चाण्डाल राजा हुआ था। प्रथम किसी ने न जाना और वह आठवर्ष पर्यन्त राज्य करता रहा। जब उस की वार्ता प्रकट हुई कि, यह चाण्डाल है तब देश के रहनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय चिता बना करके जल मरे और फिर राजा भी जल मरा। ऐसा पाप इस देश में हुआ है इस कारण दया धर्म कुछ कम होगया है। हे ब्राह्मण! जब मैंने इस प्रकार नगरवासियों से सुना तब मैं बहुत शोकवान् हुआ और वहां से यह विचारता चला कि, हाय हाय मैं बड़े पापी देश में रहा हूं। ऐसे विचारकर मैं प्रयागादि तीर्थों पर चला और तीर्थ करके कृच्छ्र और चान्द्रा-यण व्रत करे अर्थात् कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास घटाता जाऊं और जब अमावास्या आवे तब निराहार रहूं और जब शुक्लपक्ष आवे तब एक एक ग्रास बढ़ाता जाऊं और पूर्णमासी के चन्द्रमा के कला से बढ़ाना और कला के घटना इस प्रकार मैंने तीन कृच्छ्र चान्द्रायण किये हैं वहां से चलते आश्रम पर आकर व्रत खोला है। हे साधो! इस निमित्त मेरा शरीर कृश और निर्बल हुआ। हे रामजी! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने कहा तब गाधि विस्मय को प्राप्त हुआ कि, मैं जानता था कि, मुझको भ्रम ऐसा होगया है सो इसने प्रत्यक्ष वार्त्ता कह सुनाई। ऐसे विचारकर फिर गाधि ने पूछा और फिर उसने ऐसेही कहा तब सुनकर आश्चर्यवान् हुआ। जब रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य उदय हुआ तब सन्ध्या आदिक कर्म किये और फिर एकान्त में विचारनेलगा कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है और

ब्राह्मण ने सत्य कैसे देखा; इससे अब उस देश को चलकर देखूं जहां मुझको चाण्डाल का शरीर हुआ था। हे रामजी ! इस प्रकार विचारकर मनोराज के भ्रम को देखने को गाधि ब्राह्मण चला और चलता चलता उस देश में जा पहुंचा। जैसे ऊंट कांटों को ढूंढ़ना कण्टकों के वन में जाता है तैसेही यह जब चाण्डालोंके स्थानों को प्राप्त हुआ तब चाण्डालों के स्थान देखे और जहां अपना स्थान था उसको देखा और अपनी खेती लगाने का स्थान देखा कि, कुछ बेड़ खड़ी है और कुछ गिरगई है और पशु के हाड़ चर्म जो अपने हाथ से डाले थे वे प्रत्यक्ष देखे और आश्चर्यवान् हुआ कि, हे देव ! क्या आश्चर्य है कि, चित्त का भ्रम मैंने प्रत्यक्ष देखा। जो बालक अवस्था में क्रीड़ा करने के और भोजन और मद्य पीने के और पात्र इत्यादिक जो खानपान भोग के स्थान थे वह प्रत्यक्ष देखे और महावैराग्य को प्राप्त हुआ। ग्रामवासी मनुष्यों से भी पूछा कि, हे साधो ! यहां एक चाण्डाल बड़े श्यामशरीरवाला हुआ था तुमको भी कुछ स्मरण है ? हे रामजी ! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने पूछा तब ग्रामवासियों ने कहा; हे ब्राह्मण ! यहां एक कटजल नाम चाण्डाल क्रम करके बड़ा हुआ, फिर उसका विवाह हुआ और बेटे बेटी परिवार सहित बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर जब वृद्ध हुआ तो दैव संयोग से अकेला कहीं चलागया और जाता २ कान्तदेश में वहां के राजा के मरने के कारण वहां का राज इसको मिला और आठवर्ष पर्यन्त राज करता रहा। जब नगरवासियों ने सुना कि, यह चाण्डाल है तब वह बहुत शोकवान् हुये और चिता बनाकर जल मरे। इस प्रकार सुनकर गाधि बहुत आश्चर्यवान् हुआ और एकसे सुनकर और से पूछा उसने भी इसी प्रकार कहा। ऐसे बारम्बार लोगोंसे पूछते रहा और एक मास वहां रह फिर आगे चला और नदियां, पहाड़, देश, हिमालय पर्वतों की उत्तरदिशा कान्तदेशमें पहुँचा। जिन स्थानोंका वृत्तान्त सुना था सो सबही देखे। जहां सुन्दर स्त्रियां थीं और जहां चमर झूलतेथे उनको प्रत्यक्ष देखा। फिर नगरवासियोंसे पूछा कि, यहां कोई चाण्डाल राजा भी हुआ है; तुमको कुछ स्मरण है तो

मुझसे कहो ? नगरवासियोंने कहा, हे साधो ! यहां का राजा मरगया था और मन्त्रियों ने एक हाथी छोड़ा था कि, जो कोई मनुष्य इस हाथी के संमुख आवे उसको राजा करें। जब वह हाथी चला तब उसके संमुख एक चाण्डाल आया और हाथी ने जब उस चाण्डाल को शीश पर चढ़ा लिया तब और विचार किसीने न किया और उसको राजतिलक दिया। आठवर्ष पर्यन्त वह राज करता रहा पीछे जब उसके बान्धव आये और उससे चर्चा करने लगे तब सहेलियों ने ऊपर से देखा कि, यह चाण्डाल है। ऐसे देख उन्होंने उसका त्याग किया और विचारवान् लोग जो उसके साथ चेष्टा करते थे वे उसे चाण्डाल जानकर जल मरे और वह राजा भी आपको धिक्कार कर जलमरा। अब उसको बारहवर्ष मृत्यु पाये व्यतीत हुये हैं। हे रामजी ! इस प्रकार सुनके गाधि ब्राह्मण आश्चर्य को प्राप्त हुआ कि, कहां मैं जल में स्थित था और कहां इतनी अवस्था देखी। ऐसे विचार करता था कि, इतने में पूर्वका वृत्तान्त स्मरण आया कि यह आश्चर्य भगवान् की माया है। मैंने वर मांगा था इस माया से इतना भ्रम देखा है। यह आश्चर्य है कि, यहां दो मुहूर्त बीते हैं और वहां स्वप्नभ्रम की नाईं इतना काल मुझको भासित हुआ और सत्यसा स्थित हुआ है सो बड़ा आश्चर्य है। इससे संशय निवृत्त करने के निमित्त फिर उन विष्णुजी का ध्यानकरूं जिनकी माया से मैंने इतना भ्रम देखा है और कोई इस संशय को दूर नहीं करसक्ता। हे रामजी ! इस प्रकार विचारकर गाधि ब्राह्मण फिर पहाड़ की कन्दरा में जाकर तप करने लगा और केवल एक अञ्जली जलपान करे और कुछ भोजन न करे। इस प्रकार डेढ़वर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब त्रिलोकी के नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर उसके निकट आये और कहा, हे ब्राह्मण ! मेरी माया को देख जो जगत्जाल की रचनेवाली है। अब और क्या इच्छा करता है ? हे रामजी ! जब विष्णु भगवान् ने ऐसे कहा तब ब्राह्मण इस प्रकार बोला जैसे मेघको देखकर पपीहा बोलता है। हे भगवन् ! तेरी माया तो मैंने देखी परन्तु एक संशय मुझको है कि,-यह जो स्वप्नभ्रम

की नाईं मैंने देखा इसमें काल की विषमता कैसे हुई कि, यहां दो मुहूर्त व्यतीत हुये हैं और वहां चिरकालपर्यन्त भ्रमता रहा और उन झूठे पदार्थों को जाग्रत् में प्रत्यक्ष कैसे देखा? श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! और कुछ नहीं तेरे चित्त ही का भ्रम है। जिसके चित्त में तत्त्व की अदृष्टता है उसको यह चित्तभ्रम होता है। और वह क्या भ्रम था, जितना कुछ जगत् प्रत्यक्ष देखता है वह तेरे मन में स्थित है। पृथ्वी आदिक तत्त्व कोई नहीं; जैसे बीज के भीतर फूल, फल, पत्र होते हैं तैसेही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश जो पांचभौतिक हैं वह सब विस्तार चित्त में स्थित है। जैसे वृक्ष का विस्तार बीज में दृष्टि नहीं आता पर जब बोया हुआ उगता है तब विस्तार से दृष्टि आता है; तैसेही जब चित्त ज्ञान में लीन होता है तब जगत् नहीं भासता और जब स्पन्दरूप होता है तब बड़े विस्तारसंयुक्त भासता है। हे ब्राह्मण! जो कुछ जगत् देखता है वह सब चित्त का भ्रम है। जैसे एक कुलाल घटादिक बासन उत्पन्न करता है तैसेही एक चित्तही अनेक भ्रमरूप पदार्थों को उत्पन्न करता है और जो चित्त वासना से रहित है उससे भ्रमरूप पदार्थ कोई नहीं उपजता। इससे चित्त को स्थित कर। हे ब्राह्मण! इस चित्त में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं। जो तुझको चाण्डाल अवस्था का अनुभव हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य हुआ और तू कहता है कि, मैंने बड़ी आश्चर्यरूप माया देखी है सो उसको ही माया कहता है। अब जो तुझको विद्यमान भासता है वह सब भी माया है। जो तुझको अपने गृह में अनुभव हुआ था और चाण्डाल के गृह में जन्म लिया, कुटुम्बी हुआ और राज किया, फिर चिता में जला, फिर अतिथि ब्राह्मण से मिला, फिर जाकर सब स्थान देखे सो भी माया थी। जैसे इतना भ्रम तूने माया से देखा तैसेही यह फैलाव भी सब माया है। हे साधो! जैसे स्वप्न में नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं और जैसे मदिरापान करनेवाले को सब पदार्थ भ्रमते दिखते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रम से भासता है। जैसे नौका पर बैठेको तटवृक्ष भ्रमते भासते हैं तैसेही यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है और

चित्त के स्थित किये से जगत् भ्रम नष्ट होजावेगा—अन्यथा निवृत्त न होवेगा। जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटने से वृक्ष नाश नहीं होता जब मूल से काटिये तब नाश होजाता है तैसेही जब जगत् भ्रम का मूल चित्तही नष्ट होजावेगा तब संपूर्ण भ्रम निवृत्त होजावेगा यह चित्तका नाश होना क्या है? चित्त की चैत्यता जो दृश्य की ओर धावती है वही जगत् का बीज है; जब यही चैत्यता दृश्य की ओर फुरने से रहित हो तब जगत्भ्रम भी मिट जावेगा और जगत् की ओर फुरना तब मिटे जब जगत् को मायामात्र जानोगे। हे साधो! यह सब जगत् मायामात्र है, कोई पदार्थ सत्य नहीं। जैसे वह भ्रम मायामात्र भासित है तैसे ही यह भी सब मायामात्र जानो। इससे इस भ्रम को त्यागकर अपने ब्राह्मण के कर्म करो। हे रामजी! इस प्रकार कहकर जब विष्णुदेव उठ खड़े हुये तब गाधि और और ऋषीश्वर जो वहां थे उन्होंने विष्णुकी पूजा की और विष्णु क्षीरसमुद्र को गये तब वह ब्राह्मण फिर उसी भ्रम को देखने चला। निदान वह फिर क्रान्तदेश में गया और उसको देखकर आश्चर्यवान् हुआ विष्णु मायामय कहाते हैं जो कुछ मैंने भ्रम में देखा था सोई प्रत्यक्ष देखता हूं। ऐसे विचारकर फिर कहा कि, जो इस संशय को और कोई दूर नहीं करसक्ता इससे फिर मैं विष्णुकी आराधना करूंगा। हे रामजी! इस प्रकार विचार कर गाधि फिर पहाड़ की कन्दरा में जाकर तप करनेलगा तब थोड़ेकाल में विष्णु भगवान् प्रसन्न होकर आये और जैसे मेघ मोर से कहे तैसेही ब्राह्मण से बोले; हे ब्राह्मण! अब क्या चाहता है? तब गाधि ने कहा; हे भगवन्! तुम कहते हो सब भ्रममात्र है और यह तो प्रत्यक्ष भासता है। जो भ्रम होता है सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता और मैंने फिर वह स्थान देखे और थोड़ेकाल से बहुतकाल देखने का मुझको संशय है सो दूर करो। हे रामजी! जब इस प्रकार गाधिने कहा तब भगवान् ने कहा, हे ब्राह्मण! जो कुछ तुझको यह भासता है वह सब मायामात्र है और जिस प्रकार तुझको यह भासता है वह सब मायामात्र है। जिस प्रकार तुझको यह अनुभव हुआ है वह सुन;

हे ब्राह्मण! कण्टकजल नाम चाण्डाल एक चाण्डाल के गृहमें उत्पन्न हुआ था और क्रम से बड़ा होकर बड़ा कुटुम्बी हुआ। फिर वहां दुर्भिक्ष पड़ा तब उस देश को त्यागकर क्रान्त देश का राजा हुआ। फिर लोगों ने सुना तब सबही अग्नि में जले और वह चाण्डाल आपभी अग्नि में जला। वह कण्टकजल चाण्डाल और था, यह अवस्था उसकी हुई थी और वही प्रतिभा तुझको आन फुरी है। जैसी अवस्था उसकी हुई थी सो तेरे चित्त में आन फुरी इस कारण तूने जाना कि, यह अवस्था मैंने देखी है। हे साधो! अकस्मात् ऐसे भी होता है कि, और की प्रतिभा और को फुर आती है। कहीं अन्यथा भी होती है, कहीं एक ऐसीभी होती है; इस भ्रम का अन्त लेना नहीं बनता क्योंकि यह चित्त के फुरने से होता है। जब चित्त आत्मपद में स्थित होताहै तब जगत्भ्रम निवृत्त होजाताहै। काल की विषमता भी होतीहै--जैसे जाग्रत्की दोघड़ी में अनेक वर्षों का स्वप्न देखता है तैसेही यह सब चित्त का भ्रम जान। तू इस भ्रम को न देख; चित्त को स्थिर करके अपने ब्राह्मण का आचार कर। हे रामजी! ऐसे कहकर विष्णु गुप्त होगये परन्तु ब्राह्मण का संशय दूर न हुआ। वह मन में विचारे कि, और की प्रतिभा मुझको कैसे हुई यह तो मैंने प्रत्यक्ष भोगी है और जाकर देखी है यह और की वार्त्ता कैसे हो। जो आंखों से नहीं देखी होती उसका अनुभव भी नहीं होता और मैंने तो प्रत्यक्ष अनुभव किया है। ऐसे २ विचार कर फिर वही स्थान देखे और आश्चर्यवान् हुआ फिर विचार किया कि, यह मुझको बड़ा संशय है इसके दूर करने का उपाय भगवान् से पूछूं। हे रामजी! ऐसे चिन्तनकर फिर तप करने लगा और जब कुछ काल पहाड़ की कन्दरा में तप करते बीता तब फिर विष्णु ने आकर कहा, हे ब्राह्मण! अब तेरी क्या इच्छा है? ऐसे जब विष्णु ने कहा तब गाधि ब्राह्मण बोला, हे भगवन्! तुम कहते हो कि, यह और की प्रतिभा तुझको फुर आई है और अपनी होकर भासती है और कालकी विषमता भी भासती है। यह संशय जिस प्रकार मेरे चित्तसे दूरहो सो उपाय कहो।

और मेरा प्रयोजन कुछ नहीं है केवल यह भ्रम निवृत्त करो। श्रीभगवान् बोले, हे ब्राह्मण! यह जगत् सब मेरी माया से रचा है इससे मैं तुझसे सत्य क्या कहूं और असत्य क्या कहूं। जो कुछ तुझको भासता है वह सब मायामात्र है और चित्त के भ्रम से भासता है। उस चाण्डाल की अवस्था तेरे चित्त में भासि आई थी। जैसे किसी को भ्रम से रस्सी में सर्प भासे इसी प्रकार औरों को भी रस्सी में सर्प भासता है तैसेही प्रतिभा तुझको भासि आई है। काल का रूप आकार कुछ नहीं पर काल भी तुझको एक पदार्थ की नाईं फुर आया है। चित्त में पदार्थ काल से भासते हैं और काल पदार्थों से भासता है। अन्योन्य घटबन्ध जो भासता है सो स्वप्न की नाईं है—जैसे जाग्रत् के एक मुहूर्त में स्वप्न के अनन्तकाल का अनुभव होताहै। यह चित्त का फुरना जैसे २ फुरता है तैसे २ हो भासता है; रोगी को थोड़ा काल भी बहुत भासताहै और भोगी को बहुत कालभी थोड़ा भासता है। हे साधो! जो नहीं भोगा होता उसका भी अनुभव होता है। जैसे त्रिकालदर्शी को भविष्यत् वृत्तान्त भी वर्त्तमान की नाईं भासता है; तैसेही तुझको भी अनुभव हुआ है। एक ऐसे भी होताहै कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण होजाता है। यह सब माया रूप चित्त का भ्रम है। जबतक चित्त आत्मपद में स्थित नहीं हुआ तब तक अनेक भ्रम भासतेहैं और जब चित्त स्थित होताहै तब भ्रम मिट जाता है और तब केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्व ही भासताहै जैसे सम्यक् मन्त्र का पाठकर गढ़ेका मेघ नष्ट होजाताहै—असम्यक् मन्त्र से नाश नहीं होता तैसेही तेरा चित्त अबतक वश नहीं हुआ। चित्त को आत्मपद में लगाने से सब भ्रम निवृत्त होजावेगा। अहं त्वं आदिक जो कुछ शब्द हैं वे अज्ञानी के चित्त में दृढ़ होते हैं; ज्ञानवान् इनमें नहीं फँसता। हे साधो! जो कुछ जगत् है सो अज्ञान से भासता है और आत्मज्ञान हुये से नाश होजाता है। जैसे जल में तुम्बी नहीं डूबती तैसेही अहं त्वं आदिक शब्दों में ज्ञानवान् नहीं डूबता। सर्वशब्द चित्त में वर्तते हैं सो ज्ञानी का चित्त अचित्तपद को प्राप्त होता है इससे तू दशवर्ष पर्यन्त तप में स्थित हो तब

तेरा हृदय शुद्ध होगा। जब चित्तपद प्राप्त होगा तब सब संकल्प से रहित आत्मपद तुझको प्राप्त होगा और जब आत्मपद प्राप्त होगा तब सब संशय जगत्भ्रम मिटजावेगा। हे रामजी! ऐसे कहकर जब त्रिलोकी के नाथ विष्णु अन्तर्धान होगये तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मन में धरकर तप करने लगा और मन के संसरने को स्थित कर दशवर्ष पर्यन्त समाधि में चित्त को स्थित किया। जब ऐसे परम तप किया तब उसे शुद्धचिदानन्द आत्मा का साक्षात्कार हुआ। फिर शान्तवान् होकर विचारा और जो कुछ राग द्वेष आदिक विकार हैं उनसे रहित होकर शान्तिको प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधप्राप्तिवर्णनं नामषट्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह गाधिका आख्यान मैंने तुझसे माया की विषमता जतानेके निमित्त कहाहै कि, परमात्मा की माया मोहको देनेवाली है और विस्तृतरूप और दुर्गम है। जो आत्मतत्त्व का भूला है उसको यह आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है। तू देख कि, दो मुहूर्त कहां और इतना काल कहां? चाण्डाल और राजभ्रम को जो वर्षों पर्यन्त देखता रहा। भ्रम से भासना और प्रत्यक्ष देखना यह सब माया की विषमता है सो असत्रूप भ्रम है और जो दृढ़ होकर प्रसिद्ध भासित होता है इससे आश्चर्यरूप परमात्मा की माया है जबतक बोध नहीं होता तबतक यह अनेकभ्रम दिखाती है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह माया संसारचक्र है उसका बड़ा तीक्ष्णवेग है और सब अङ्गों को छेदनेवाला है; जिससे यह चक्र रुके और इस भ्रम से छूटूं वही उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मायामय संसारचक्र है उसका नाभिस्थान चित्त है। जब चित्त वश हो तब संसारचक्र का वेग रोका जावे; और किसीप्रकार नहीं रोका जाता। हे रामजी! इस वार्त्ता को तू भली प्रकार जानताहै। हे निष्पाप! जब चक्र की नाभि रोकी जाती है तब चक्र स्थित होजाता है—रोके विना स्थित नहीं होता। संसाररूपी चक्रकी चित्तरूपी नाभि को जब रोकते हैं तब यह चक्रभी स्थित होजाताहै—रोके विना यह भी स्थित नहीं होता। जब चित्त

को स्थित करोगे तब जगत्भ्रम निवृत्त होजावेगा और जब चित्त स्थित होताहै तब परब्रह्म प्राप्त होताहै। तब जो कुछ करनाथा सो किया होताहै और कृतकृत्य होताहै और जो कुछ प्राप्त होनाथा सो प्राप्त होताहै—फिर कुछ पाना नहीं रहता। इससे जो कुछ तप, ध्यान, तीर्थ, दान आदिक उपायहैं उन सबको त्यागकर चित्तके स्थित करने का उपाय करो। सन्तों के सङ्ग और ब्रह्मविद् शास्त्रों के विचारसे चित्त आत्मपदमें स्थित होगा। जो कुछ सन्तों और शास्त्रों ने कहाहै उसका वारंवार अभ्यास करना और संसार मृगतृष्णा के जल और स्वप्नवत् जानकर इससे वैराग्य करना। इन दोनों उपायोंसे चित्त स्थित होगा और आत्मपदकी प्राप्ति होगी और किसी उपाय से आत्मपद की प्राप्ति न होवेगी। हे रामजी! बोलने चालने का बर्जन नहीं; बोलिये, दान दीजिये अथवा लीजिये परन्तु भीतर चित्तको मत लगाओ इनका साक्षी जाननेवाला जो अनुभव आकाश है उसकी ओर वृत्ति हो। युद्ध करना हो तौभी करिये परन्तु वृत्ति साक्षीही की ओर हो और उसीको अपना रूप जानिये और स्थित होइये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; ये जो पांच विषय इन्द्रियों के हैं इनको अङ्गीकार कीजिये परन्तु इनके जाननेवाले साक्षी में स्थित रहिये। तेरा निजस्वरूप वही चिदाकाश है; जब उसका अभ्यास वारंवार करियेगा तब चित्त स्थित होगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी। हे रामजी! जबतक चित्त आत्मपद में स्थित नहीं होता तबतक जगत्भ्रम भी निवृत्त नहीं होता। इस चित्तके संयोगसे चेतन का नाम जीव है। जैसे घट के संयोगसे आकाश को घटाकाश कहते हैं पर जब घट टूटजाता है तब महाकाशही रहता है; तैसेही जब चित्त का नाश होगा तब यह जीव चिदाकाशही होगा। यह जगत् भी चित्त में स्थित है; चित्त के अभाव हुये जगत्भ्रम शान्त हो जावेगा। हे रामजी! जबतक चित्तहै तबतक संसारभी है; जैसे जबतक मेघहै तबतक बूंदेंभी हैं और जब मेघ नष्ट होजावेगा तब बूंदेंभी न रहेंगी जैसे जबतक चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं तबतक चन्द्रमा के मण्डल में तुषार है तैसेही जबतक चित्त है तबतक संसारभ्रम है। जैसे

मांस का स्थान श्मशान होता है और वहां पक्षी भी होता है; और ठौर इकट्ठे नहीं होता; तैसेही जहां चित्तहै वहां रागद्वेषादिक विकार भी होते हैं और जहां चित्तका अभाव है वहां विकार का भी अभाव है। हे रामजी। जैसे पिशाच आदिक की चेष्टा रात्रि में होती है, दिन में नहीं होती; तैसेही राग, द्वेष, भय, इच्छा आदिक विकार चित्त में होते हैं। जहां चित्त नहीं वहां विकार भी नहीं— जैसे अग्नि विना उष्णता नहीं होती; शीतलता विना बरफ नहीं होती; सूर्य विना प्रकाश नहीं होता और जल विना तरङ्ग नहीं होवे तैसेही चित्त विना जगत्भ्रम नहीं होता। हे रामजी! शान्ति भी इसी का नाम है और शिवता भी वही है; सर्वज्ञता भी वही है जो चित्त नष्ट हो, आत्मा भी वही है और तृप्तता भी वही है पर जो चित्त नष्ट नहीं हुआ तो इतने पदों में कोई भी नहीं है। हे रामजी! चित्त से रहित चेतन चेतन कहाता है और अमनशक्ति भी वही है; जबतक सब कलना से रहित बोध नहीं होता तबतक नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं और जब वस्तुका बोध हुआ तब एक अद्वैत आत्मसत्ता भासती है। हे रामजी! ज्ञानसंवित् की ओर वृत्ति रखना; जगत् की ओर न रखना और जाग्रत् की ओर न जाना। जाग्रत् के जाननेवाले की ओर जाना स्वप्न और सुषुप्ति की ओर न जाना। भीतर के जाननेवाली जो साक्षी सत्ता है उसकी ओर वृत्ति रखनाही चित्त के स्थित करने का परम उपाय है। सन्तों के संग और शास्त्रों से निर्णय किये अर्थ का जब अभ्यास हो तब चित्त नष्ट हो और जो अभ्यास न हो तौभी सन्तों का संग और सतशास्त्रों को सुनकर बल कीजिये तो सहजही चमत्कार हो आवेगा। मनको मन से मथिये तो ज्ञानरूपी अग्नि निकलेगी जो आशारूपी फांसी को जला डालेगी। जबतक चित्त आत्मपद से विमुख है तबतक संसारभ्रम देखता है पर जब आत्मपद में स्थित होता है तब सब क्षोभ मिट जातेहैं जब तुमको आत्मपद का साक्षात्कार होगा तब कालकूट विष भी अमृत समान होजावेगा और विष का जो विषभाव मारना है सो न रहेगा। जीव जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब संसार का कारण मोह मिटजाता है और

जब निर्मल निरंश आत्मसंवित् से गिरता है तब संसार का कारण मोह आन प्राप्त होता है। जब निरंश निर्मल आत्म संवित् में स्थित होता है तब संसारसमुद्र से तरजाता है। जितने तेज ईश्वर बलवान् हैं उन सबों से तत्त्ववेत्ता उत्तम है; उसके आगे सब लघु होजाता है और उस पुरुष को संसार के किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती क्योंकि उसका चित्त सत्यपद को प्राप्त होता है। इससे चित्त को स्थित करो तब वर्तमानकाल भी भविष्यत्काल की नाईं होजावेगा और जैसे भविष्यत्काल का राग-द्वेष नहीं स्पर्श करता तैसेही वर्तमानकाल का राग द्वेष भी स्पर्श न करेगा। हे रामजी! आत्मा परम आनन्दरूप है, उसके पायेसे विषभी अमृतके समान होजाता है। जिस पुरुष को आत्मपद में स्थिति हुई है वह सबसे उत्तम है जैसे मेरु पर्वत के निकट हाथी तुच्छ भासता है तैसेही उसके निकट त्रिलोकी के पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं वह ऐसे दिव्य तेज को प्राप्त होता है जिसको सूर्य भी नहीं प्रकाश कर सक्ता वह परम प्रकाश-रूप सब कलना से रहित अद्वैततत्त्व है। हे रामजी! उस आत्मतत्त्व में स्थित हो रहो जिस पुरुष ने ऐसे स्वरूप को पाया है उसने सब कुछ पाया है और जिसने ऐसे स्वरूप को नहीं पाया उसने कुछ नहीं पाया। हमको ज्ञान की वार्त्ता करते ज्ञानवान् को देखकर कुछ लज्जा नहीं आती और जो उस ज्ञानस्वरूप की वार्त्ता से विमुख है यद्यपि वह महाबाहु हो तौभी गर्दभवत् है। जो बड़े ऐश्वर्य से संपन्न है और आत्मपद से विमुख है उसको तू विष्ठा के कीट सेभी नीच जान। जीना उनको श्रेष्ठ है जो आत्मपद के निमित्त यत्न करते हैं और जीना उनका वृथा है जो संसार के निमित्त यत्न करते हैं वे देखनेमात्र तो चैतन्य हैं परन्तु शव की नाईं हैं। जो तत्त्ववेता हुये हैं वे अपने प्रकाश से प्रकाशते हैं और जिनको शरीर में अभिमान है वे मृतक समान हैं। हे रामजी! इस जीव को चित्तने दीन किया है। ज्यों ज्यों चित्त बड़ा होता है त्यों त्यों इसको दुःख होता है और जिसका चित्त क्षीण हुआ है उसका कल्याण हुआ है। जब आत्मभाव अनात्म में दृढ़ होता है और भोगों की तृष्णा होती है तब

चित्त बड़ा होजाता है और आत्मपद से दूर पड़ता है। जैसे बड़े मेघ के आवरण से सूर्य नहीं भासता तैसेही अनात्मा अभिमानसे आत्मा नहीं भासता। जब भोगों की तृष्णा निवृत्त होजाती है तब चित्त क्षीण होजाता है। जैसे वसन्त ऋतु के गये से पत्र कृश होजाते हैं तैसेही भोगवासना के अभाव से चित्त कृश होजाता है। हे रामजी! चित्तरूपी सर्प दुर्वासनारूपी दुर्गन्ध, भोगरूपी वायु और शरीर में दृढ़ आस्थारूपी मृत्तिका स्थान से बड़ा होजाता है; और उन पदार्थों से जब बड़ा हुआ तब मोहरूपी विष से जीव को मारता है। हे रामजी! ऐसे दुष्टरूपी सर्प को जब मारे तब कल्याण हो। देह में जो आत्म अभिमान होगया है, भोगों की तृष्णा फुरती है और मोहरूपी विष चढ़गया है; इससे यदि विचाररूपी गरुड़ मन्त्र का चिन्तन करता रहे तौ विष उतर जावे इसके सिवाय और उपाय विष उतरने का कोई नहीं। हे रामजी! अनात्मा में आत्माभिमान और पुत्र, दारा आदिकमें ममत्व से चित्त बड़ा होजाता है और अहंकाररूपी विकार, ममतारूपी कीड़ा और यह मेरा इत्यादि भावना से चित्त कठिन होजाता है। चित्तरूपी विषका वृक्ष है जो देहरूपी भूमि पर लगाहै; संकल्प विकल्प इसके टास हैं; दुर्वासनारूपी पत्रहैं और सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं; अहंकाररूपीकर्म जलहै उसके सींचने से बढ़ता है और काम भोगरूपी पुष्प हैं। चिन्तारूपी बड़ी बेल को जब विचार और वैराग्यरूपी कुठार से काटे तब शान्ति हो—अन्यथा शान्ति न होगी। हे रामजी! चित्तरूपी एक हाथी है उसने शरीररूपी तालाब में स्थित होकर शुभ वासनारूपी जल को मलीन करडाला है और धर्म, सन्तोष, वैराग्यरूपी कमल को तृष्णारूपी शुण्ड से तोड़डाला है। उसको तुम आत्मविचाररूपी नेत्रों से देख नखों से छेदो। हे रामजी! जैसे कौवा अपवित्र पदार्थों को भोजन करके सर्वदा काँ काँ करता है तैसेही चित्त देहरूपी अपवित्र गृह में बैठा सर्वदा भोगों की ओर धावता है; उनके रस को ग्रहण करता है और मौन कभी नहीं रहता। दुर्वासना से वह काक की नाईं कृष्णरूप है—जैसे काक के एकही नेत्र होता है तैसेही

चित्त एक विषयों की ओर धावता है। ऐसे अमङ्गलरूपी कौवे को विचाररूपी धनुष से मारो तब सुखी होगे। चित्तरूपी चील पखेरू है जो भोगरूपी मांस के निमित्त सब ओर भ्रमता है। जहां अमङ्गलरूपी चील आता है वहां से विभूति का अभाव होजाता है। वह अभिमानरूपी मांस की ओर ऊंचा होकर देखता है और नम्रभाव नहीं होता। ऐसा जो अमङ्गलरूपी चित्त चील है उसको जब नाश करो तब शान्तिमान् होगे। जैसे पिशाच जिसको लगता है वह खेदवान् होता है और शब्द करता है; तैसेही इसको चित्तरूपी पिशाच लगा है और तृष्णारूपी पिशाचिनी के साथ शब्द करता है उसको निकालो जो आत्मा से भिन्न अभिमान करता है। ऐसे चित्तरूपी पिशाच को वैराग्यरूपी मन्त्र से दूर करो तब स्वभावसत्ता को प्राप्त होगे। यह चित्तरूपी वानर महाचञ्चल है और सदा भटकता रहता है; कभी किसी पदार्थ में धावता है—जैसे वानर जिस वृक्ष पर बैठता है उसको ठहरने नहीं देता। हे रामजी! चित्तरूपी रस्सी से सम्पूर्ण जगत् कर्ता, कर्म, क्रियारूपी गांठ करके बँधा है। जैसे एक जंजीर के साथ अनेक बन्धवान् बधते हैं और एक तागे के साथ अनेक दाने पिरोयेजाते हैं तैसेही एक चित्त से सब देहधारी बांधे हैं। उस रस्सीको असंगशस्त्रसे काटे तब सुखी हो। हे रामजी! चित्तरूपी अजगर सर्प भोगों की तृष्णारूपी विष से पूर्ण है और उसने फुंकार के साथ बड़े बड़े लोक जलाये हैं और शम, दम, धैर्यरूपी सब कमल जलगये हैं। इस दुष्टको और कोई नहीं मारसक्ता; जब विचाररूपी गरुड़ उपजे तब इसको नष्टकरे और जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हो तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होगी। हे रामजी! यह चित्त शस्त्रों से काटा नहीं जाता; न अग्नि से जलता है और न किसी दूसरे उपाय से नाश होता है, केवल साधु के संग और सत्शास्त्रों के विचार और अभ्यास से नाश होता है। हे रामजी! यह चित्तरूपी गढ़े का मेघ बड़ा दुःखदायक है, भोगों की तृष्णारूपी बिजली इसमें चमकती है और जहां वर्षा इसकी होती है वहां बोधरूपी क्षेत्र और शमदमरूपी कमलों को नाश करती है। जब विचाररूपी मन्त्र हो तब शान्त

हो। हे रामजी! चित्त की चपलता को असंकल्पसे त्यागो। जैसे ब्रह्मास्त्र से ब्रह्मास्त्र छिद्ता है तैसेही मन से मन को छेदो अर्थात् अन्तर्मुखी कर स्थित करो। जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होगा तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभसे रहित होगा। शुद्ध बोध से मन को जीतो और यह जगत् जो तृण से भी तुच्छ है उससे पार होजाओ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं नाम सप्त चत्वारिंशत्तमस्सर्गः॥ ४७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन की वृत्तिही इष्ट व अनिष्ट को ग्रहण करती है और खड्ग की धारावत् तीक्ष्ण है; इसमें तुम प्रीति मतकरो बल्कि इसको मिथ्या जानकर त्यागकरो। हे रामजी! बोधरूपी बेलि जो शुभक्षेत्र और शुभकाल से प्राप्त हुई है उसको विवेकरूपी जल से सींचो तब परमपद की प्राप्ति हो। हे रामजी! जबतक शरीर मलिनता को प्राप्त नहीं हुआ और जबतक पृथ्वी पर नहीं गिरा तबतक बुद्धि को उदार करके संसार से मुक्त हो। मैंने जो वचन तुझसे कहे हैं उनको तुमने जाना है, अब इनका दृढ़ अभ्यास करो तब दृश्यभ्रम निवृत्त होजावेगा। हे रामजी! यह पञ्चभौतिक शरीर जो तुमको भासताहै सो तुम्हारा रूप नहीं है; तुमतो शुद्ध चेतनरूप हो। शुद्धबोधसे विचार करके पञ्चभौतिक अनात्म अभिमान को त्यागो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! किस क्रम और किस प्रकार से इसका अभिमान त्यागकर उद्दालक सुखी हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पूर्व में जैसे उद्दालक भूतों के समूह को विचार करके परमपद को प्राप्त हुआ है सो तुम सुनो। हे रामजी! जगत्रूपी जीर्णघर के वायव्यकोण में एकदेशहै जो पर्वत और तमालादिक वृक्षों से पूर्णहै और महा मणियोंका स्थानहै। उस स्थान में उद्दालक नाम एक बुद्धिमान् ब्राह्मण मान करने के योग्य विद्यमान था परन्तु अर्धप्रबुद्ध था क्योंकि; परमपद को उसने न पाया था। वह ब्राह्मण यौवनअवस्था के पूर्वही शुभेच्छा से शास्त्रोक्त यम, नियम और तप को साधने लगा तब उसके चित्त में यह विचार उत्पन्न हुआ कि, हे देव! जिसके पायेसे फिर कुछ

पाने योग्य न रहे; जिस पद में विश्राम पायेसे फिर शोक न हो और जिसके पाये से फिर जन्म से बन्धन न हो ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होगा? कब मैं मन के मनन भाव को त्यागकर विश्रान्तिमान् हूंगा—जैसे मेघ भ्रमने को त्यागकर पहाड़के शिखर में विश्रान्ति करता है—और कब चित्त की दृश्यरूप वासना मिटेगी जैसे तरङ्ग से रहित समुद्र शान्तिमान् होताहै तैसेही कब मैं मन के सकल्प विकल्प से रहित शान्तिमान् हूंगा? तृष्णारूपी नदीको बोधरूपी बेड़ी और सत्संग और सत्शास्त्ररूपी मल्लाह से कब तरूंगा, चित्तरूपी हाथी जो अभिमानरूपी मद से उन्मत्त है उसको विवेकरूपी अंकुश से कब मारूंगा और ज्ञानरूपी सूर्य से अज्ञानरूपी अन्धकार कब नष्ट करूंगा? हे देव! सब आरम्भों को त्यागकर मैं अलेप और अकर्ता कब होऊंगा? जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसेही मुझको कर्म कब स्पर्श न करेंगे? मेरा परमार्थरूपी भास्वर वपु कब उदय होगा जिससे मैं जगत् की गति को हँसूंगा, हृदय में सन्तोष पाऊंगा और पूर्णबोध विराट् आत्मा की नाईं होऊंगा? वह समय कब होगा कि, मुझ जन्मों के अन्धेको ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त होगा, जिससे मैं परमबोध पद को देखूंगा? वह समय कब होगा जब मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायु से रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वत में स्थित होकर शान्तिमान् होगा? अज्ञानदशा कब जावेगी और ज्ञानदशा कब प्राप्त होगी? अब वह समय कब होगा कि, मन और काया प्रकृतियों को देख कर हँसूंगा? वह समय कब होगा जब जगत् के कर्मों को बालक की चेष्टावत् मिथ्या जानूंगा और जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं होजावेगा। वह समय कब होगा जब मुझको पत्थर की शिलावत् निर्विकल्प समाधि लगेगी और शरीररूपी वृक्ष में पक्षी आलय करेंगे और निस्संग होकर छातीपर आनबैठेंगे? हे देव! वह समय कब होगा जब इष्ट-अनिष्ट विषय की प्राप्ति मे मेरे चित्त की वृत्ति चलायमान न होगी और विराट् की नाईं सर्वात्मा होऊंगा? वह समय कब होवेगा जब मेरा सम असम आकार शान्त होजावेगा और सब अर्थोंसे निरिच्छितरूप मैं होजाऊंगा?

कब मैं उपशम को प्राप्त होऊंगा—जैसे मन्दराचल से रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है—और कब मैं अपना चेतन वपु पाकर शरीर को अशरीरवत् देखूंगा ? कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होगी और कब मेरे भीतर बाहर की सब कलना शान्त होजावेंगी और सम्पूर्ण चिन्मात्रही का मुझे भान होगा ? मैं ग्रहण त्याग से रहित कब संतोष पाऊंगा और अपने स्वप्रकाश में स्थित होकर संसाररूपी नदी के जरामरणरूपी तरङ्गों से कब रहित होऊंगा और अपने स्वभाव में कब स्थित होऊंगा, हे रामजी ! ऐसे विचारकर उद्दालक चित्त को ध्यान में लगाने लगा परन्तु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकलजावे पर स्थित न हो। तब वह फिर ध्यान में लगावे और फिर वह भोगों की ओर निकल जावे। जैसे वानर नहीं ठहरता तैसेही चित्त न ठहरे। जब उसने बाहर विषयोंको त्यागकर चित्त को अन्तर्मुख किया तब भीतरजो दृष्टि आई तो भी विषयों को चिन्तने लगा निर्विकल्प न हो और जब रोकरक्खे तब सुषुप्ति में लीन होजावे। सुषुप्ति और लय जो निद्रा है उसही में चित्त रहता है। तब वह वहां से उठकर और स्थान को चला—जैसे सूर्य सुमेरु की प्रदक्षिणा को चलताहै और गन्धमादन पर्वत की क कन्दरा में स्थित हुआ जो फूलोंके संयुक्त सुन्दर और पशुपक्षी मृगों से रहित एकान्त स्थान था और जो देवताको भी देखना कठिन था। वहां अत्यन्त प्रकाश भी न था और अत्यन्त तम भी न था; न अत्यन्त उष्ण था और न शीत जैसे मधुर कार्त्तिक मास होता है तैसे ही वह निर्भय एकान्त स्थान था। जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकान्तरूप होती है तैसे ही उसपर्वत में कुटी बना और उस कुटी में तमाल पत्र और कमलों का आसनकर और ऊपर मृगछाला बिछाकर वह बैठा और सब कामनाका त्यागकिया। जैसे ब्रह्माजी जगत्को उपजाकर छोड़ बैठे तैसेही वह सब कलना को त्याग बैठा और विचार करनेलगा कि, अरे मूर्खमन ! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है और इतने काल तू जगत् में भटकता रहा पर कहीं तुझको शान्ति न हुई क्योंकि; वृथा धावता रहा। हे मूर्खमन ! उपशम को त्यागकर भोगों की ओर धावता

है सो अमृतको त्यागकर विष का बीज बोताहै, यह सब तेरी चेष्टा दुःखों के निमित्तहै। जैसे कुशवारी अपना घर बनाकर आपही को बन्धन करती है तैसेही तू भी आपको आप संकल्प उठाकर बन्धन करता है। अब तू संकल्प के संसरने को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो कि, तुझको शान्ति हो। हे मन! जिह्वा के साथ मिलकर जो तू शब्द करता है वह दर्दुर के शब्दवत् व्यर्थ है। कानों के साथ मिलकर सुनताहै तब शुभ अशुभ वाक्य ग्रहणकरके मृग की नाईं नष्ट होताहै; त्वचा के साथ मिलकर जो तू स्पर्श की इच्छा करता है सो हाथी की नाईं नाश होता है; रसना के स्वाद की इच्छा से मछली की नाईं नाश होता है और गन्ध लेने की इच्छा से भँवरे की नाईं नाश होजावेगा। जैसे भँवरा सुगन्ध के निमित्त फूलमें फँस मरता है तैसे तू फँस मरेगा और सुन्दर स्त्रियों की वाञ्छा से पतङ्ग की नाईं जल मरेगा। हे मूर्खमन! जो एक इन्द्रिय का भी स्वाद लेते हैं वे नाश होते हैं तू तो पञ्चविषयका सेवनेवालाहै क्या तेरा नाश न होगा। इससे तू इनकी इच्छा त्याग कि तुझको शान्ति हो। जो इन भोगों की इच्छा न त्यागेगा तो मैं ही तुझको त्यागूंगा। तू तो मिथ्या असत्यरूप है तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है। विचार कर मैं तेरा त्याग करता हूं। हे मूर्खमन! जो तू देह में अहं अहं करता है सो तेरा अहं किस परमार्थ का है। अंगुष्ठ से लेकर मस्तक पर्यन्त अहं वस्तु कुछ नहीं। यह शरीर तो अस्थि, मांस और रक्त का थैला है; यह तो अहंरूप नहीं और श्वास वायुरूप और पोल आकाश रूप है। यह पञ्चतत्त्वों का जो शरीर बना है उसमें अहंरूप वस्तु तो कुछ नहीं है। हे मूर्खमन! तू अहं अहं क्यों करता है? यह जो तू कहता है कि, मैं देखता हूं, मैं सुनताहूं, मैं सूंघता हूं, मैं स्पर्श करता हूं, मैं स्वाद लेता हूं और इनके इष्ट-अनिष्ट में राग द्वेष से जलता है सो वृथा कष्ट पाता है। रूप को नेत्र ग्रहण करते हैं; नेत्र रूप से उत्पन्न हुये हैं और तेज का अंश उनमें स्थित है जो अपने विषय को ग्रहण करता है; इनके साथ मिलकर तू क्यों तपायमान होता है? शब्द आकाश में उत्पन्न हुआ है और आकाश का अंश

श्रवण में स्थित है जो अपने गुण शब्द को ग्रहण करता है; इसके साथ मिलकर तू क्यों राग द्वेष कर तपायमान होता है? स्पर्श इन्द्रिय वायु से उत्पन्न भया है और वायु का अंश त्वचा में स्थित है वही स्पर्श का ग्रहण करता है; उससे मिलकर तू क्यों राग द्वेष से तपायमान होता है? रसना इन्द्रिय जलसे उत्पन्न हुई है और जलका अंश जिह्वाहै जो अग्रभाग में स्थित है वही रस को ग्रहण करती है; इससे मिल तू क्यों वृथा तपायमान होता है? और घ्राण इन्द्रिय गन्ध से उपजी है और पृथ्वी का अंश घ्राण में स्थित है वही गन्ध को ग्रहण करता है; उससे मिलकर तू क्यों वृथा राग द्वेषवान् होता है? हे मूर्खमन! इन्द्रियां तो अपने २ विषय को ग्रहण करती हैं पर तू क्यों इनमें अभिमान करता है कि, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, मैं सूंघता हूं, मैं स्पर्श करता हूं और रस लेता हूं। यह इन्द्रियां तो सब आत्मभर हैं अर्थात् अपने विषय को ग्रहण करती हैं और के विषय को ग्रहण नहीं करतीं कि, नेत्र देखते हैं श्रवण नहीं करते और कान सुनते हैं देखते नहीं इत्यादिक। सब इन्द्रियां अपना धर्म किसीको देतीं भी नहीं और न किसीका लेती हैं। वे अपने धर्म में स्थित हैं और विषयों को ग्रहण कर इनको राग द्वेष कुछ नहीं होता। इनको ग्रहण करने की वासना भी कुछ नहीं होती और तू ऐसा मूर्ख है कि, औरों के धर्म आपमें मान कर राग द्वेष से जलता है। जो तूभी राग द्वेष से रहित होकर चेष्टा करे तो तुझको दुःख कुछ न हो। जो वासना सहित कर्म करता है वह बन्धन का कारण होताहै; वासना विना कुछ दुःख नहीं होता। तू मूर्ख है जो विचार कर नहीं देखता। इससे मैं तुझको त्याग करताहूं। तेरे साथ मिलके मैं बड़े खेद पाता हूं। जैसे भेड़िये के बालक को सिंह चूर्ण करता है तैसेही तूने मुझको चूर्ण किया है। तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ हुआ हूं। अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कुछ नहीं, मैं तो निर्विकल्प शुद्ध चिदानन्द हूं। जैसे महाकाश घट से मिलकर घटाकाश होता है तैसेही तेरे साथ मिलकर मैं तुच्छ होगया हूं। इस कारण मैं तेरा संग त्याग कर परम चिदाकाश को प्राप्त होऊंगा। मैं

निर्विकार हूं और अहं त्वं की कल्पना से रहित हूं। तू क्यों अहं त्वं करता है? शरीर में व्यर्थ अहं करनेवाला और कोई नहीं तू ही चोर है। अब मैंने तुझको पकड़कर त्यागदिया है। तू तो अज्ञान मे उपजा मिथ्या और असत्यरूप है जैसे बालक अपनी परछाहीं में वैताल जान कर आप भय पाताहै तैसेही तूने सबको दुःखी कियाहै। जब तू नाश होगा तब आनन्द होगा। तेरे उपजने से महादुःख है—जैसे कोई ऊंचे पर्वत से गिरके कूप में जापड़े और कष्टवान् हो तैसेही तेरे संगसे मैं आत्मपद से गिरा देह अभिमानरूपी गढ़े में राग द्वेषरूपी दुःख पाता था पर अब तुझको त्याग कर मैं निरहंकारपद को प्राप्त हुआ हूं। वह पद न प्रकाश है, न तम है, न एक है, न दो है, न बड़ा है और न छोटा है; अहं त्वं आदि से रहित अचैत्य चिन्मात्रहै। जरा, मृत्यु, राग, द्वेष और भय सब तेरे संयोग से होते हैं। अब तेरे वियोग से मैं निर्विकार शुद्धपद को प्राप्त होता हूं। हे मन! तेरा होना दुःख का कारण है। जब तू निर्वाण होजावेगा तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा। तेरे संग से मैं तुच्छ हुआ हूं; जब तू निवृत्त होगा तब मैं शुद्ध होऊंगा—जैसे मेघ और कुहिरे के होने से आकाश मलीन भासता है पर जब वर्षा होजाती है तब शुद्ध और निर्मल हो रहता है, तैसेही तेरे निवृत्त हुये निर्लेप अपना आप आत्मा भासताहै। हे चित्त! ये जो देह इन्द्रियादिक पदार्थ हैं सो भिन्न हैं, इनमें अहंवस्तु कुछ नहीं; इनको एक तूनेही इकट्ठी किया है। जैसे एक तागा अनेकमणियों को इकट्ठा करताहै तैसेही सबको इकट्ठा करके तू अहं अहं करता है। तू मिथ्या राग द्वेष करता है इससे तू शीघ्रही सब इन्द्रियों को लेकर निर्वाण हो जिसमें तेरी जयहो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविचारोनामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥ ४८ ॥

उद्दालक बोले; आत्मा जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है, स्थूल से स्थूल है और शुद्ध, निर्विकार और शान्तरूप है सो मैं अचैत्य चिन्मात्र हूं मेरे में कोई विकार नहीं और जितने जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं वे आत्मा में चित्त के कल्पे हैं वास्तविक आत्मा को कोई विकार नहीं। जन्म

उसको कहते हैं जो पहले न हो और पीछे उपजे। आत्मा तो आगेही सिद्ध है फिर जन्म कैसे कहिये? और मृत्यु वह कहाता है जो पीछे न हो पहले अभाव होजावे पर आत्मा तो जगत् में अन्तभी सिद्ध है इससे सब विकारों से रहित है; फिर मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये? देह के आदि, मध्य, अन्त तीनों काल सिद्ध हैं; इससे वह सब विकारों से रहित है और चित्त के संयोग से विकारों सहित भासता है। हे चित्त! तेरे संयोग से मैंने इतने भ्रम पाये थे और शरीर में व्यर्थ अहं अहं होता है सो जाना नहीं जाता कि, कौन है। शरीर तो रक्त मांस का पिण्ड है, इन्द्रियां मन आदिक सब जड़ हैं तो अहं करनेवाला कौन है। जब अहं होता है तब भाव अभाव पदार्थको ग्रहण करता है पर जहां अहं का अभावहै तहां भाव अभाव कैसे हो? अहंकार झूठ है, इन्द्रियां अपने २ विषयों का ग्रहण करती हैं और मनादिक भी अपने स्वभाव में स्थित हैं। यह अहं करने वाला नहीं पाया जाता कि कौन है? अहं का रूप कुछ नहीं इससे निश्चय हुआ कि, सब पदार्थ झूठ हैं। अहंकार का ग्रहण करनेवाला भी झूठ है और जितने पदार्थहैं वे अहंकारसे होते हैं। मैं इससे मिलकर देह इन्द्रियों के इष्ट-अनिष्ट में क्या राग द्वेष करूं? इसका और मेरा कुछ संयोग नहीं मैं तो निर्लेप और अद्वैत आत्मा हूं संयोग किससे हो? मैं भावरूप ब्रह्म हूं मेरा संयोग किससे हो? यह तो सब असत्यरूप है और जो कहिये देहादिक हैं तो भी संयोग नहीं बनता—जैसे लोहे और बट्टेका संयोग नहीं होता। यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहं करनेवाला कौन था? यह मिथ्या अहंकार अज्ञान से दुःखदायक था। जैसे अज्ञान से बालक को वैताल भासकर दुःख देता है तैसेही अविचार से दुःख होता है। जैसे पहाड़पर बादल स्थित होता है तो पहाड़ बादल नहीं होता और बादल पहाड़ नहीं होता; तैसेही आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता। जैसे सूर्य की किरणों में जल, और रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में अहंकार भासताहै और विचार कियेसे अहंकार कुछ नहीं निकलता। जहां अहंकार होता है वहां दुःख भी आ स्थित

होते हैं जैसे जहां मेघ होता है वहां बिजली भी होती है, तैसेही जहां अहंकार होता है तहां शरीररूपी वृक्षकी मञ्जरी बढ़ती है। जैसे गरुड़ के विद्यमान होते सर्प नहीं रहता तैसेही आत्मविचार के विद्यमान रहते अहंकार नहीं रहता। इससे चित्तादिक सब झूठे हैं और अज्ञान से भासते हैं तो इनसे रचा हुआ जगत् कैसे सत्य हो। यह जगत् अकारण है इससे मिथ्याभ्रम से भासता है। जैसे भ्रांति से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है; नौका में बैठेसे तट के वृक्ष चलते भासते हैं और गन्धर्व नगर भासता है। जब चित्त नष्ट होता है तब सब भ्रम का अभाव होजाता है। देह में जो अभिमान है सोही दुःखों का कारण है। जबतक विचार नहीं उपजता तबतक भासता है—जैसे बरफ़ की पुतली तबतक होती है जब तक सूर्य का तेज नहीं लगा और जब सूर्यका तेज लगता है तब बरफ़ की पुतली गलजाती है। जैसे बालक को घूमने से पृथ्वी भ्रमती भासती है तैसेही चित्त के भ्रम से यह जगत् भासता है और विचार के उपजे से अहंकार गल जाता है हे मन! तेरे साथ मिलनेसे बड़ा दुःख होता है। तुझसे रहित मैंने आपको देखा है, अब तू सब इन्द्रियों सहित निर्वाण हो। आत्मविचारसे आत्मअग्नि में स्थित हो कि सब मल तेरा जलकर शुद्धता को प्राप्त हो। इस देह के साथ तेरा मिलाप दुःख के निमित्त है। मन और देहके भीतरसे आपसमें शत्रुभावहै पर बाहरसे स्नेह भासताहै। भीतर दोनों परस्पर नाश करने की इच्छा करते हैं। जो दुःख होता है तो मन उसके नाश की इच्छा करता है और देह कहती है मन न हो तो मेरेमें कोई दुःख नहीं—इसका मिलनाही दुःखका कारण है। हे मूर्ख मन! देहको तेरे संगसे दुःख होताहै। आप इसमें भी कोई नहीं। मनमें देहका अभिमान न हो तौभी कोई दुःख नहीं, इनके संयोग से ही दुःख होता है और बिछुरनेसे दुःख कुछ नहीं—तैसेही मन और देहमें वियोग कुछ नहीं। जैसे जहां अंगारे की वर्षा होती है वहां बुद्धिमान् नहीं रहते तैसेही इनमें मिलाप करना हमको योग्य नहीं। हे मूर्ख मन! जितना कुछ दुःख तुझको होता है सो देह के मिलाप से होता है तो फिर इसके साथ तू

किस निमित्त मिलता है और आपको सुख जानता है। इसके मिलने से तुझको दुःख ही होता है परन्तु तू ऐसा मूर्ख है जो बारम्बार देह की ओरही दौड़ता है और सुख जानता है पर तेरा नाश होता है। जैसे पतङ्ग दीपकको सुखरूप जानकर मिलनेकी इच्छा करताहै पर जल मरता है और मछली मांस की इच्छा करती है सो कण्डी में फँस मरती है तैसेही तू देह की इच्छा करता है और नाश को प्राप्त होता है; इससे इसका अभिमान त्याग तो तुझको शान्ति हो। देह कुछ वस्तु नहीं केवल मनही का विकार है। पञ्चतत्त्वों की देह बनी हुई है सो भी कुछ वस्तु नहीं है, सब मन के फुरने से रचे हैं, इससे फुरने को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो कि, तुझको शान्ति हो। मैं तो इससे अतीत शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हूं; मेरे पास न कोई मन है और न इन्द्रियां हैं। मैं अद्वैतरूप हूं। जैसे राजा के समीप में कोई नहीं होता तैसेही मेरे निकट मन और इन्द्रियां कोई नहीं-मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूं। भोगों से मुझे क्या प्रयोजन है कि, उनसे मिलकर दीनता को प्राप्त होऊं! मुझको इनके साथ कुछ प्रयोजन नहीं, चिरपर्यन्त रहें अथवा अबहीं नष्ट हो जावें; इनके नाश होने से मेरा नाश नहीं होता और ठहरने से प्रयोजन नहीं होता मैंने इनसे आपको भिन्न जाना है। जैसे तिलोंसे तेल निकाल लिया तब फिर तिलों में नहीं मिलता और दूध से माखन निकाल लिया तब फिर दूध में नहीं मिलता; तैसेही विचार करके अपना आप निकाल लिया तब फिर इनके साथ नहीं मिलता। मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूं, सब जगत् मेरे आश्रय है और सबमें मैं एकही अनुस्यूत व्यापा हूं। अब मैं उसी स्वरूप में स्थित होऊं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे विचारकर उद्दालक ब्राह्मण विषयों से वृत्ति को निवृत्त करके पद्मासन बाँध प्रणव अर्थात् अर्धमात्रा और अकार-उकार-मकार की क्रम से उपासना करने लगा और प्राणायाम करके मात्रा का ध्यान किया। अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव और अर्धमात्रा तुरीया इनको क्रमसहित करने लगा। प्रथम रेचक प्राणायाम करने लगा और अकार की ध्वनि के साथ रेचक किया उससे सब प्राण-

वायु भीतर से निकले और हृदय शून्य और शुद्ध हुआ—जैसे अगस्त्य मुनि ने समुद्र को शून्य किया था—और आकाश से ऐसी ध्वनि हुई जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र पर्यन्त चली गई और देहाभिमान को त्यागकर पुर्यष्टक को सुषुम्णा के मार्ग म प्राप्त किया। जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाशमार्ग को उड़ता है तैसेही उद्दालक ने पुर्यष्टक को ब्रह्मरन्ध्र में स्थित किया। हठ करने से दुःख होता है इस कारण जबतक सुख रहा तबतक स्थित रहा और जब थका और पुर्यष्टक का वायु अध से आया तब उकार विष्णुरूप की ध्वनि और ध्यान के साथ कुम्भक किया। जब सब प्राण-वायु को आधारचक्र में रोंका—न नीचे जावे न ऊपर आवे—तो प्राण स्थित संघट हुये और उससे अग्नि निकली जिससे इसका पाप पुण्य-रूपी शरीर जल गया। उसमें जबतक सुख रहा तबतक स्थित रहा क्योंकि, हठयोग दुःखदायक है और फिर मकार की ध्वनि स रुद्र का ध्यान करके पूरक प्राणायाम किया। पूरक प्राणायाम करके सब स्थान वायु से पूर्ण किये और ऊर्ध्व को चित्तकला प्राप्त हुई उससे यह औरों को पवित्र करने-वाला हुआ। जैसे धुआं आकाश को जाता है और जल पाकर औरों को शीतल करनेवाला होता है तैसेही इसका शरीर औरों को पवित्र करने-वालाहुआ। जैसे मन्दराचल मथेहुये क्षीरसमुद्र से कल्पवृक्ष निकला तैसेही इसके शरीर में प्राणवायु स्थित हुई और पद्मासन बाँधकर इन्द्रियों को रोंका जैसे हाथी बन्धनों से बँधता है तैसेही इसने इन्द्रियोंको रोंका। अर्ध-मात्रा जो तुरीयापद है उसके दर्शन के निमित्त यत्न करने लगा उसने नेत्रों को आधा मूँदा और बाह्य विषयों का त्याग इन्द्रियों को भी त्याग किया और प्राण अपान को मूलचक्र में रोंका जिससे नवों द्वारे रोंके गये। जैसे बालक के खेलने का पानीचोर होता है और उसके मूंदने से चलता पानी सब छिद्रों से रोंका जाता है, तैसेही मूलचक्र के रोंकने से नवोंद्वार रोंके गये। इस प्रकार उसने चित्त को रोंका और जब मनरूपी चञ्चलमृग दौड़े तब वैराग्य और अभ्यास के बल से फिर उसे रोंके। जैसे बांध से जलका वेग रुकता है तैसेही उसने जब चित्तको स्थित किया तब अन्तः-

करण की जो सात्त्विकी वृत्ति है उसको भी त्यागकर स्थित हुआ। जब मन की वृत्ति जो निद्रारूप है उसमें मन मूर्च्छित होगया तब राजस-तामस का प्रवाह फिर फुरने लगा और उसको आत्मविवेक से निवृत्त किया। जैसे प्रकाश तम को निवृत्त करता है तैसेही इस विकल्परूपी तम को उसने निवृत्त किया और विवेक के बल से चित्तकला में लगा और चित्त की वृत्ति से साक्षात्कार किया पर उसमें एक क्षण चित्त स्थित रहा और फिर बाहर निकल गया। जैसे बांध को तोड़कर जल निकल जाता है। निदान उसने फिर अभ्यास के बल से उसे आत्मकला में लगाया तब उस परमशान्त आत्मपद में चित्तकी वृत्ति स्थित हुई और परमआनन्द अमृत में मग्न हुई जो अशब्द, आनन्द और परिणाम से रहित है और जिस पदमें देवता, ऋषीश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं। हे रामजी! जो उसपद में एकक्षण भी स्थित हुआ है और जो वर्ष पर्यन्त स्थितहुआ है दोनों तुल्य हैं। जिसको उसपद का अनुभव हुआ है वह भोगोंकी इच्छा नहींकरता। जैसे जिसने स्वर्गका नन्दनवन देखाहै वह कञ्जके वन देखने की इच्छा नहीं करता, तैसेही ज्ञानवान् भोगोंकी वाञ्छा नहीं करता और शोक कदाचित् नहीं उपजता। जैसे जिसको राज्य हुआ है वह दीनता को नहीं प्राप्त होता, तैसेही जिसने आत्मपद में स्थिति पाई है उसको विषयों की तृष्णा और शोक नहीं उपजता। हे रामजी! जब इस प्रकार उद्दालक स्थित था तब सिद्ध, गन्धर्ब और विद्याधरों के गण जिनके मुख चन्द्रमा की नाईं थे उसके निकट आये और नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! स्वर्ग में चलके दिव्यभोग भोगो, तुमने बड़ी तपस्या की है। धर्म, अर्थ और पुण्य का सार काम है और काम का सार जो स्त्रियां हैं वे तुम्हारे भोगने के निमित्त हैं, जिनसे स्वर्ग भी शोभता है—जैसे बसन्त ऋतु की मञ्जरी और पुष्पों से पृथ्वी शोभती है। इससे तुम विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्गमें चलो और बहुतकाल पर्यन्त भोग भोगो। हे रामजी! जब सिद्धों ने इस प्रकार बहुत कहा तब उद्दालक ने उनको अतिथि जानकर निरादर तो न किया किन्तु यथायोग्य पूजा करके हँसा और

कहा कि, हे सिद्धो! तुमको नमस्कार है, आवो। पर वह उनकी सिद्धता में आसक्त हुआ क्योंकि, परमानन्द में स्थित था और विषयों के सुख तुच्छ जानता था। जैसे अमृत खानेवाला विष की इच्छा नहीं करता तैसेही उद्दालक सुख को न चाहता था। कुछ दिन रहकर सिद्ध पुजते रहे और फिर उठ गये पर यह परमपद में स्थित रहकर अपने प्रकृत व्यवहार करता रहा। फिर मेरु और मन्दराचल पर्वत में विचरा और कन्दरा में ध्यान लगा बैठा। कहीं एक दिनभर बैठारहे और कहीं वर्षों के समूह बीतजावें; इस प्रकार समाधि करके उतरा तब समाधि होगई। हे रामजी! चित्ततत्त्वज्ञ अभ्यास से महाचेतन तत्त्वको प्राप्त होताहै। दिशा में जैसे चित्र का सूर्य होता है तैसेही उदय अस्त से रहित हो उसने परम उपशमपद को पाया, चित्त भलीप्रकार शान्त होगया और और जन्मरूपी फाँसीको तोड़ उसका देहरूपी भ्रम क्षीण होकर शरत्कालके आकाशवत् निर्मल हुआ और विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उसका वपु होगया। तब वह सत्ता सामान्यमें स्थितहोकर विचरनेलगा और परमशांतिको प्राप्तहुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रान्तिवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ४९॥

रामजी ने पूछा, हे आत्मरूप! आप ज्ञान दिन के प्रकाशकर्ता सूर्य हैं; संशयरूपी तृणोंके जलानेवाले अग्निहैं और ज्ञानरूपी तापोंके शान्ति कर्ता चन्द्रमा हैं। हे ईश्वर! सत्ता सामान्य का रूप क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत् के अत्यन्त अभाव की भावना करके जब चित्त क्षीण हो और उसमें जो शेषरहे सो सत्तासामान्य है। जब चित्त से रहित आत्मसत्ता हो और उसमें चित्त लीन होजावे तब सत्ता सामान्य उदय हो; जो असत्य की नाईं स्थित है सोही सत्ता सामान्य है। हे रामजी! जब सब इन्द्रियों का प्रपञ्च शान्त होकर शुद्धबोध रहे; भीतर बाहर का व्यवधान मिटजावे और सब जगत् एकरूप होकर समाधि और उत्थान एकसा होजावे ऐसी दशा की जो प्राप्ति है सोही सत्ता सामान्यहै। वह देह के होतेही विदेहरूप है और उसको तुरीयातीत पद कहते हैं। समाधि में

स्थिति हो तौभी केवलरूप है और उत्थान हो तौभी केवलरूप है। अज्ञानी समाधि और उत्थान के तुल्य नहीं होता क्योंकि, ज्ञानसे उपजी समाधि उसको नहीं प्राप्त हुई। हमसे आदि लेकर नारद, देवर्षि, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदिक जिनको ज्ञान की दृष्टि पुष्ट हुई है वे सत्तासामान्य में स्थित हैं और उनको समाधि और उत्थान में तुल्यता है। जैसे आकाश में पवन का चलना और ठहरना समान है और जैसे पृथ्वी में जल स्थित है और अग्नि में उष्णता स्थित है; तैसेही सत्तासामान्य में वह स्थित है। जबतक जगत्में बिचरने को उसकी इच्छा थी तबतक वह ऐसे बिचरतारहा और जब विदेहमुक्ति होनेकी इच्छा हुई तब पहाड़ की कन्दरा में पत्रों का आसन बनाकर पद्मासन बांध और दांतों से दांतों को मिलाकर सब संकल्पों का त्याग किया और प्राणवायु को मूल आधार-चक्र करके नवें द्वार खेचरीमुद्रा से रोंके। न भीतर; न बाहर, न अध, न ऊर्ध्व सर्वभाव—अभाव विकल्पों को त्यागकर उसने जब आत्मतत्त्व में चित्त की वृत्ति को लगाया तब शुद्ध चिन्मात्रा में चित्त की वृत्ति जा प्राप्त हुई और रोम खड़े हो आये। जब उस व्युत्थान को भी उसने त्याग किया तब सत्तासामान्य विश्वम्भर पद को प्राप्त हुआ, जो परम विश्रान्त, अनादि, आनन्द और सुन्दररूपहै। तब पुतली की नाईं उसका शरीर होगया और जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, तैसेही निर्मल पद को प्राप्त हुआ। जैसे सूर्य की किरणों के द्वारा वृक्ष में रस होता है और सूर्य उसे खैंचलेता है और जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजकर उसही में लीन होता है तैसेही उसका चित्त जिससे उपजा था उसी में लीन होगया; सम्पूर्ण उपाधि विलास से संकल्प रहित हुआ और उस आनन्दपद को प्राप्त हुआ जिसमें इन्द्रादिकों का आनन्दभी तुच्छ भासता है। ऐसा विश्वम्भर आनन्द जो उत्तम पुरुषों से सेवने योग्य है और जो अद्वैत और अशब्द सत्तासामान्य है उसमें जब उद्दालक प्राप्त हुआ तो परम शान्तिरूप होगया। निदान कुछकाल पीछे उसका शरीर गिरपड़ा—जैसे रस सूखे से वृक्ष गिर पड़ता है। जैसे बीणा बजती है और उसका

शब्द प्रकट होता है तैसेही जब वायु चले और उसके शरीर में प्रवेश कर निकले तो शब्द प्रकट होता था। कुछकाल पीछे देवताओं की स्त्रियां; अश्विनीकुमार की शक्ति जिनका अग्निकी नाईं तेजहै और देव देवी जो सब देवताओं से पूज्यहैं सखियों सहित आईं और उस शरीरको सुगन्धित पुष्पों की माला पहिराकर उसकी पूजाकरके नृत्य करनेलगीं और लीला की। हे रामजी! उद्दालक के चित्तकी वृत्ति में कलनासे रहित विवेकरूपी बेलि हुई और उसमें आत्मानन्दरूपी फल लगा। जिसके हृदय में ऐसे फूलों की सुगन्ध स्थित हो वह सब भ्रम से तरजावे। जिसको ऐसा विवेक प्राप्त हो तो वह सब भ्रम से मुक्त हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणवर्णनं
नाम पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५० ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस प्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपद को प्राप्त हुआ है उसी क्रम से अपने आपको विचार करके तू भी आत्मपद को प्राप्त हो। हे कमलनयन! कर्तव्य यही है कि, गुरु और शास्त्रों के वचनों को धारण कर जगत्भ्रम से मुक्त हो और आत्म अभ्यास से शान्त पद को प्राप्त हो। प्रथम गुरु और शास्त्रों के वाक्यों को समझिये और उससे जो विषयभूत अर्थ है उसके अभ्यास में बुद्धि को लगाइये। इस प्रकार जब दृढ़ता हो तब परमपद की प्राप्ति हो। अथवा बुद्धि में एक तीक्ष्ण अभ्यास हो और कलङ्क कलना से रहित ऐसा बोध हो तो साधनादि सामग्री से रहित हो अथवा वैरागादिक सामग्री से रहित हो तौभी अविनाशी पद को प्राप्त हो। रामजी ने पूछा; हे भूतभविष्य के ईश्वर! एक ज्ञानवान् पुरुष तो समाधि में स्थित होता है और फिर जगत् व्यवहार में विचरता है और एक समाधि में स्थित है जगत् का व्यवहार नहीं करता; इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! प्रथम समाधि का लक्षण सुनो कि, समाधि किसको कहते हैं और व्युत्थान क्या है। यह गुणोंका समूह अहंकारसे लेकर तत्त्वगुणात्मकहै। जो इनको अनात्मरूप देखता है; आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानता है

और स्वाभाविक जिसका चित्त शीतलहै उसको समाधि कहते हैं। जो मैत्री, करुणा, अमान्यता आदिक गुणोंमें स्थित हुआहै और जिसका मन आत्म-विषय से शान्ति को प्राप्त होता है उसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानन्दस्वरूप दृश्य के सम्बन्ध से रहित हूं वह चाहे वन में रहे अथवा गृह में रहे दोनों स्थान उसको तुल्य हैं और वे दोनों पुरुष तुल्य हैं। अन्तःकरण का शीतल होना बड़े तपों का अनन्त फल है। हे रामजी! जो इन्द्रियों को शमन करके बैठा है और मन से जगत के पदार्थों की चिन्तना करता है उसकी समाधि मिथ्या है। वह उन्मत्त की नाईं नृत्य करता है। और जिसके मन में कोई वासना नहीं और व्यवहार करता है उसको बुद्धिमानों की समाधि के तुल्य जानो। कोई ज्ञानी व्यवहार करता है और कोई ज्ञान-वान् व्यवहार को त्याग कर वन में समाधि लगाकर स्थित हो बैठा है पर दोनों निश्चय से परमपद में प्राप्त होते हैं-इसमें संशय नहीं। ज्ञान-वान् निर्वाह पुरुषार्थ करता भी दृष्ट आताहै तौभी अकर्ताहै और अज्ञानी जो कर्ता भी नहीं परन्तु वासना से कर्तव्यभाव को प्राप्त होता है। जैसे कोई पुरुष कथा सुनने बैठा हो और उसका मन किसी और ठौर निकल गया हो तो सुनता बैठाभी नहीं सुनता; तैसेही ज्ञानवान्का चित्त आत्म-पद की ओर लगा है इससे वह कर्ता भी नहीं कर्ता क्योंकि, उसको कर्तृत्वका अभिमान नहीं होता। घन वासनासहित अज्ञानी सब इन्द्रियों को स्थित करके सोगया हो तो उसको स्वप्न आवे और पर्वत से गढ़े में आपको गिरा देखता है और कष्टवान् होता है। इससे जहां वासना है वहां क्षोभ भी है और जहां कुछ वासना नहीं वहां शान्ति है। हे रामजी! जिसमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं और निश्चयसे आपको अकर्ता जानता है उसको केवलीभावसे समाधिमें स्थित जानो और जिसमें कर्तृत्व अभि-मान है और समाधिमें बैठा है तौभी उसको व्युत्थान जानो। हेरामजी! चित्त के चलाने का कारण स्मृति है जो स्मृति जगत् को लेकर समाधि लगा बैठता है। तौभी चित्त वासना से फैलजाता है। जैसे बीज से अंकुर

उपजता है और फैलजाताहै तैसेही मनमें जो वासना की स्मृति होती है उससे चित्त फैलजाताहै। और जो जगत् की वासना मन से जाती रहती है अर्थात् जगत्का सततभाव निवृत्त होजाताहै तब चित्त अचल होजाता है। हे रामजी! जिस चित्त से वासना नष्ट होती है उसको अचल स्थिति कहते हैं; वह ध्यान में केवलीभाव में स्थित होता है और जिसके चित्त में सदा वासना फुरती है उसको सदा क्षोभ होता है। इससे निर्वासनीक होकर तुम परमपद को प्राप्त हो। हे रामजी! जिस चित्त में वासना गन्ध होती है उसमें कर्तृत्व का अभिमान भी फुरता है और उससे सदा दुःखी होताहै। वासना के क्षीणहुये से मुक्त होताहै। जिस पुरुषके चित्तसे जगत् की आस्था निवृत्त हुई है और वीतशोक हुआहै वह स्वस्थ आत्मा है। तिसको समाधि कहते हैं। हे रामजी! जिसके हृदयसे संसारका राग द्वेष मिटगया है और शान्ति को प्राप्त हुआ है उसको सदिव्य समाधि कहते हैं। इससे चित्त में जो पदार्थभावना है उसको त्याग कर अपने स्वभाव में स्थित हो; तब गृह में रहो अथवा वन में जावो दोनों तुमको तुल्य हैं। हे रामजी! जो गृह में स्थित है और चित्त समाहित है और अहंकार के दोष से रहितहै उसको कुटुम्ब और जनोंके समूह भी वनकी नाईं हैं। ज्ञानवान् को गृह और वन तुल्य है और देह अभिमानी जो अज्ञानी है वह वनमें जाय और समाधि लगा बैठता है पर चित्त की वृत्ति विषयों की ओर रहती है तब वह जगत् के समूह को देखता है अथवा सुषुप्ति में जड़भूत होजाता है। हे रामजी! चित्त उत्थान में स्वरूप से गिरा हुआ जगत्भ्रम दिखाता है और जब चित्त निर्वाणपद आत्मा में स्थित होता है तब उपशम होता है। हे रामजी! जो पुरुष सब भाव पदार्थों में आत्मा को अतीत जानता है वह समाहित चित्त कहाताहै और जिसको जाग्रत् जगत् स्वप्नवत् भासता है वह समाहितचित्त कहाता है। वह पुरुष जनके समूह में रहताहै तौभी उसका सम्बन्ध किसी से नहीं। जैसे कोई पुरुष राजमार्ग में चला जाताहै तो मार्ग के किसी पदार्थ से सम्बन्ध नहीं रखता तैसेही उस पुरुषका अभिमान किसीमें नहीं फुरता। जिस पुरुषका

चित्त अन्तर्मुख हुआ है वह सोवे अथवा बैठे; चले अथवा देखे उसे नगर और ग्राम सब महावनरूप भासताहै और सब जगत् उसको आकाशरूप भासताहै। जिसपुरुषको आत्मामें प्रीतिहुईहै वह अन्तर्मुखी कहाता है और जिसका हृदय आत्मज्ञान से शीतल हुआ है उसको सब जगत् शीतलरूप भासताहै। वह जबतक जीताहै तबतक विगतज्वर होकर जीताहै और जिस का हृदय तृष्णा से जलता है उसको सब जगत् दावाग्नि से तपता भासताहै। हे रामजी ! यह सब जगत् चित्त में स्थित है; जैसी भावना चित्त में होती है उसके अनुसार जगत् भासता है। स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, नदियां, आकाश, देश, काल जो कुछ जगत् है वह सब चित्त अन्तःकरण में है और वही बाहर विस्तार होकर भासता है। जैसे वट के बीज में वट फैलजाता है तैसेही चित्त में जगत् का विस्तार होताहै। बाहर जो सूर्य आदिक भासताहै वह भी चित्त के भीतर स्थित है—जैसे फूल खिलता है उसके भीतर की सुगन्ध बाहर भासती है और वास्तवमें न कुछ भीतर है न बाहर है जैसा किंचन होता है तैसाही चैत्यतासे फुरता है—तैसेही वही सत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है। जगत् सब आत्मरूप है और न कोई सत्य है, न असत्य है; एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको सदा ऐसेही भासता है। हे रामजी ! जिसके हृदय में शान्ति है उसको सब जगत् शान्तिरूप है और जिसका हृदय देहाभिमान में स्थित है सो नाश होता है और भय पाता है किसी ओर स उसको शान्ति नहीं प्राप्त होती। वह स्वर्ग, पृथ्वी, लोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, देश, काल सबको प्रलयकाल की अग्निवत् जलता देखताहै। जिसके हृदयमें ताप होता है उसको सब जगत् तपता भासता है पर आत्मज्ञानी को शान्तरूप भासता है—जैसे अन्धे को सब जगत् तमरूप भासता है और नेत्रोंवाले को सब जगत् प्रकाशरूप भासता है। हे रामजी ! जिस पुरुष को आत्मपद में प्रतीति हुई है और इन्द्रियों से कर्म भी करता है परन्तु हर्ष शोक के वश नहीं होता वह समाहित चित्त कहाता है। जो पुरुष सबको आत्म देखता है, चित्त को नहीं चितवता;

भविष्यत् की इच्छा नहीं करता और वर्तमान में राग द्वेष से रहित होकर बिचरता है वह समाहितचित्त कहाता है। हे रामजी! जो पुरुष जगत् की पूर्वापर गति को देखकर हँसता है; समपद में स्थित होता है और किसी में ममता नहीं करता वह समाहितचित्त कहाता है। जो पुरुष अहं ममता से और जगत् की विभाग कलना से रहित है और जिससे चैतन अचैतनभाव नहीं फुरता वह पुरुष सत्य है और आकाश की नाईं स्वच्छ निर्मल है और राग, द्वेष, क्रोध विकारों से काष्ठ लोष्ट समान हो रहता है। वह सब भूतों को अपने समान देखता है और और के द्रव्य को देखकर दृष्टि नहीं करता। वह स्वभावही से उसे नहीं चाहता द्वन्द्व के भय से नहीं त्यागता। ऐसे जो देखता है और अहंकार से रहित होता है वह न जगत् के सत्यभाव को देखता है, न असत्य भाव को देखता है; न ज्ञान को देखता है; न अज्ञान को देखता है; न जड़ को देखता है; न चैतन को देखता है; वह तो केवल अद्वैततत्त्व देखता है। वह महाशान्तपद में स्थित है; वह उठ खड़ा हो अथवा बैठा रहे; उदय हो अथवा अस्त हो; बड़े भोगों में रहे अथवा वन में जा बैठे; अथवा मद्यपान से उन्मत्त हो और नृत्यकरे और गयादिकतीर्थों में निवास करे अथवा कन्दरा में निवास करे शरीर को अगरचन्दन का लेपन करे अथवा कीचड़ के साथ लपेटे; देह अभी गिरपड़े अथवा कल्पपर्यन्त रहे; उस पुरुष को कदाचित् कुछ कलङ्क नहीं लगता। जैसे सुवर्ण को कीचड़ के मिलाप से दोष नहीं लगता तैसेही ज्ञानवान् को कर्तृत्व का दोष नहीं लगता। हे रामजी! इस संवित् को अहन्ताही कलङ्क है। महापुरुष अहंकार से रहित हैं इससे उनको कर्तृत्व स्पर्श नहीं होता। जैसे सीपी को रूपे का आभास नहीं स्पर्श करता तैसेही ज्ञानवान् को क्रिया स्पर्श नहीं करती। हे रामजी! अहन्ताही से जीव दीन होता है। जब अहन्ता फुरती है तब अनेकप्रकार के दुःख सुख देखता है और परम्परा जन्मों को देखताहै और भय पाताहै। जैसे किसीको रस्सी में सर्प भासताहै और भय पाताहै पर जब भलीप्रकार दीपक के प्रकाशसे देखता है तब सर्पभय निवृत्त होता है; तैसेही अहन्तासे यह दुःख पाता है

और अहन्ताके शान्त हुये शान्तिमान् होताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् जो कुछ कर्म करता, खाता, पीता, लेता, देता, हवन करताहै उसमें अहन्ता का अभिमान नहीं करता इससे करने में उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता और जो नहीं करता उसमें भी कुछ अभिमान नहीं इससे करने से उसकी कुछ हानि नहीं होती वह अपने स्वभावमें स्थितहै और जगत्को द्वैतभावसे नहीं देखता, सबको आत्मभाव से देखताहै इससे उसे कर्म स्पर्श नहीं करता॥
इति श्रीयोगवाशिष्ठे उ०प्र० ध्यानविचारो नामैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥५१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त आदिक जो जगत् है सो वास्तव में आत्मा से भिन्न नहीं है। आत्मारूपी मिरच है उसमें चित्त अहन्तारूपी देश, काल, तीक्ष्णता भिन्न नहीं जैसे इक्षु से मधुरता भिन्न नहीं तैसे आत्मा से जगत् भिन्न नहीं। जैसे पत्थर में कठोरता है तैसेही आत्मा में जगत् है; जैसे पर्वत में जड़ता होती है तैसेही आत्मा में अहन्ता होती है जैसे जल में द्रवता होती है तैसेही आत्मा में अहन्ता आदिक होती है। जैसे फूल, फल, टास वृक्ष से भिन्न नहीं होते तैसेही आत्मा में अहन्ता आदिक अभेद होते हैं; जैसे तीक्ष्णता मिरचों से भिन्न नहीं होती तैसेही चित्त अहन्तारूपी देशकाल आत्मा से भिन्न नहीं। जैसे अग्नि में उष्णता; बरफ़ में शीतलता; सूर्य में प्रकाश और गुड़ में मधुरता होती है; तैसेही आत्मा में जगत् होता है। जैसे अमृत में स्वादवेदना होती है तैसेही आत्मा में देश, कालवेदना होती है। हे रामजी! जैसे मणि में प्रकाश होता है तैसे आत्मा में अहन्ता होती है और जैसे जल से तरङ्ग भिन्न नहीं होता तैसे ही आत्मा से अहन्ता आदिक भिन्न नहीं होते। जो कुछ जगत भासता है सो आत्मतत्त्व का प्रकाश है जो अनन्त आत्मा सब में पूर्ण है और एकही ईश्वरभाव में स्थित महाघन शिला की नाईं स्थित है—उससे भिन्न कुछ नहीं। जैसे आकाश अपने भाव में स्थित है तैसेही सत्य केवल आत्मा में स्थित है और अपने आपसे निर्वेद है पर वेदना भी उससे भिन्न नहीं। जैसे जलही तरङ्गरूप हो भासता है तैसेही आत्मा वेदनरूप हो भासता है और जैसे जल में द्रवता और पवन में चलना भासता है तैसेही

ज्ञानरूप आत्मा में अहन्तारूप देश, काल, जगत् भासता है। हे रामजी! जीवोंका जीना ज्ञानसे होताहै और ज्ञानसत्ता का जीना चैतन से होताहै। चिन्मात्र और जीवों में रञ्चकमात्र भी कुछ भेद नहीं। जैसे ज्ञान चैतनसत्ता और जीव में भेद नहीं तैसेही ज्ञाता और जगत् में कुछ भेद नहीं—एकही अखण्डसत्ता ज्यों की त्यों स्थितहै हे रामजी! सर्वसत्ता एक, अज, अनादि और आदि, अन्त, मध्य से रहित, प्रकाशरूप, चिन्मात्र अद्वैततत्त्व अपने आपमें स्थित है। वह अशब्द है उसमें वाणी प्रवेश नहीं कर सक्की और जितने वाक्य हैं वह उसके जताने के निमित्त कहे हैं वास्तव में द्वैतवस्तु कुछ नहीं है एक आत्मतत्त्व को अपने हृदय में धारण कर स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे भेदनिराशावर्णनंनाम
द्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! एक आगे पुरातन इतिहास हुआ है उसको तुम सुनो। उत्तर दिशा में एक सुगन्धित पृथ्वी है वह मानो कपूर से लिपी हुई है और मानो सदाशिव के हंस आ स्थित हुये हैं। हिमालय के शिखर पर वह कैलास पर्वत है जो सब पर्वतों से उत्तम और उज्ज्वल है वह रुद्र के रहने का स्थान है, वहां कल्पवृक्ष लगे हैं और गङ्गा का प्रवाह चलता है। और भी बहुतसी बड़ी नदी वहां चलती हैं और कमलों सहित बहुत महासुन्दर तालाब स्थित हैं जहां बहुत मृग पक्षी हैं। उस हिमालय के नीचे स्वर्णवत् जटावाले क्रान्त रहते हैं—जैसे वृक्ष के मूल में पिपीलिका रहती हैं। उस क्रान्त देश का राजा सुरघ मानो प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्ति धारे हुये, वेगवान् ऐसा मानो पवन की मूर्ति वैराग्यवान् मानो गजेन्द्र, बुद्धिमान् मानो बृहस्पति और शुक्र के समान कवि था। राजा ऐसा था मानो इन्द्र है; और धनी ऐसा मानो कुबेर था। ऐसा राजा होकर वह राज्य करता था और भली प्रकार प्रजा की पालना करता था। जो भले मार्ग में चलें उनकी वह रक्षा करे और जो पापकर्म चोरी आदिक करें उनको दण्ड दे और जैसा कर्म प्राप्त हो उसमें द्वेष से रहित होकर व्यतीत करे। एक समय वह अपने स्थान में बैठा था तब चित्त में विचार

उपजा और संशयरूपी वायु से उसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान हुई कि, बड़ा अनर्थ है कि, मैं जीवों को कष्ट देता हूं। इससे मैं इनको धन देऊं और कष्ट न देऊं। जैसे तिलों को तेली पेरता है तैसेही मैं पापियों को कष्ट देता हूं। दुष्टों को कष्ट दिये विना राज्य नहीं चलता—जैसे जल विना नदी का प्रवाह नहीं चलता—और यदि दण्ड देता हूं तो वे दुःख पावते हैं। मैं क्या करूं दोनों बातों में कष्ट है। हे रामजी! ऐसे विचार में राजा बहुत भ्रमता रहा निदान एक दिन उसके गृह में माण्डव मुनि आये—जैसे इन्द्र के घर में नारद आवें—तब राजा ने भली प्रकार उनका पूजन किया और संदेहवान् होकर पूछा; हे भगवन्! तुम सर्व धर्मगत हो, तुम्हारे आने से मैं बड़े आनन्द को प्राप्त हुआ हूं जैसे बसन्त ऋतु से पृथ्वी प्रफुल्लित होती है तैसेही मैं प्रफुल्लित हुआ हूं मैं भी अब आपको पुण्यवान् जानता हूं कि, मैं भी पुण्यवानों में प्रसिद्ध होऊंगा क्योंकि; तुम मेरे गृह में आये हो। जैसे सूर्य के उदय हुये प्रकाश हो आता है तैसेही मैं तुम्हारे दर्शन से प्रसन्न भया हूं। हे भगवन्! मुझको एक संशय है उसके निवारण करने को आपही योग्य हो। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट हो जाता है तैसेही तुमसे मेरा संशय निवृत्त होगा। जो कोई महापुरुषों का संग करता है उसका संशय अवश्य निवृत्त होता है। संशय ही परम दुःखों का कारण है इससे मेरे संशय को तुम दूर करो। मुझे यह संशय है कि, यदि कोई दुष्ट कर्म करता है तो उसको मैं दण्ड देता हूं और जब उसको दुःखी देखता हूं तो दया उपजती है। जैसे सिंह नख से हाथी को खैंचता है तैसेही यह संशय मुझको खैंचता है। इसमें यही उपाय कहो जिससे मुझको समता प्राप्त हो। जैसे सूर्य की किरणें सब ठौर में सम होती हैं तैसेही इष्ट-अनिष्ट में मैं सम होऊं। कृपा करके मुझसे वही उपाय कहिये माण्डव बोले, हे राजन्! यह तो बहुत सुगम है और अपने आधीन है; आपही से सिद्ध होता है और अपने ही गृह में है। हे राजन्! सब उपाधि मन में उठती है वह मन तुच्छ है और विचार किये से निवृत्त हो जाता है। जैसे उष्णता से बरफ़ जलमय हो जाता है

तैसेही विचार किये से जब मनभाव लीन हो जाताहै तब ताप भी निवृत्त हो-जाता है। जैसे शरत्काल के आये से कुहिरा नष्ट हो जाता है तैसेही वि-चार किये से मनभाव नष्ट हो जाता है। विचारो कि, मैं कौन हूं, इन्द्रियां क्या हैं; जगत् क्या है और जन्म मरण किसको कहते हैं? इस विचारसे जब तुम अपने स्वभाव में स्थित होगे तब तुमको हर्ष, शोक, क्रोध और राग द्वेष चलायमान न करसकेगा। जैसे वायुसे पर्वत चलायमान नहीं होता तैसेही तुम अचल रहोगे। हे राजन्! जब आत्मबोध होगा तब मन अपने मनभाव को त्याग देगा और तुम सन्तापसे रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होगे। जैसे तरङ्ग भाव मिटनेसे जल निर्मल होताहै तैसेही तुम अचल होगे और मनधर्म भी रहेगा परन्तु मध्य से अज्ञान नष्ट होजावेगा और आत्मसत्ताभाव होगा। जैसे काल वही रहताहै परन्तु ऋतु और होजाती है तैसेही मन वहीहोगा परन्तु स्वभाव और होजावेगा। तेरेनौकर और प्रजा भी साधु होजावेंगे और तेरी आज्ञा में चलेंगे और तुझको देखकर प्रसन्न होंगे। हेराजन्! जब तुझको विवेकरूपीदीपकसे आत्मारूपीमणि मिलेगा तब तेरी बड़ाई सुमेरु और समुद्र और आकाश से भी अधिक होगी। जब तुझको विवेक से आत्म महत्त्वता का प्रकाश होगा तब तू संसार की तुच्छ वृत्ति में न डूबेगा। जैसे गोपद के जल में हाथी नहीं डूबता तैसेही तू राग द्वेष में न डूबेगा। जिसको देह में अभिमान है और चित्त में वासना है वह तुच्छसंसार की वृत्ति में डूबता है; इससे जितना अनात्मभाव दृश्य है उसका त्यागकर पीछे जो शेष रहे सो परमतत्त्व आत्मा है। हे राजन्! जो कुछ सत्य वस्तु है उस को हृदयमें धरो और जो असत्य है उसका त्याग करो। जैसे तबतक कल्लर से सोनार धोता है जबतक सुवर्ण नहीं निकलता और जब सुवर्ण निकलता है तब धोनेका त्याग करता है; तैसेही तबतक आत्मविचार कर्तव्य है जबतक आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ। जब आत्मतत्त्व का साक्षा-त्कार होता है तब विचार से प्रयोजन नहीं रहता। हे राजन्! सबमें, सब प्रकार, सबकाल, सब आत्मा की भावना करो अथवा जितना दृश्यभावहै

सो सब त्याग करो तो जो शेष रहेगा सो तुमको भासि आवेगा। जबतक सर्व दृश्य का त्याग न करोगे तबतक आत्मपद का लाभ न होगा। सर्व दृश्य के त्याग से आत्मपद भासेगा। हे राजन्! जब किसी वस्तु के पाने का यत्न करताहै तो और का त्यागकर उसीका यत्न करिये तो प्राप्त होता है तो आत्मतत्त्व अनन्य होकर चित्त विना कैसे प्राप्त होगा। जब अपना सम्पूर्ण यत्न एकही ओर लगाता है तब उस पद की प्राप्ति होती है। इससे आत्मपद के पाने के लिये सब दृश्य का त्यागकर सबके त्याग किये से जो शेष रहे सो परमपद है। हे राजन्! सबके त्याग किये से जो सत्ता अधिष्ठान रहेगा सो तुझको आत्मभाव से प्राप्त होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तमाण्डवोपदेशोनाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर जब माण्डवमुनि अपने स्थान को गये तब सुरघराजा एकान्त में बैठकर विचार करनेलगा कि, मैं कौन हूं? न मैं सुमेरु हूं; न मेरा सुमेरु है; न मैं जगत् हूं, न मेरा जगत् है; न मैं पृथ्वी हूं, न मेरी पृथ्वी है; न मैं क्रान्त मण्डल हूं और न मेरा क्रान्त मण्डल है क्योंकि; यह अपने भाव में स्थित है, मेरे भाव से तो नहीं। जो मैं न होऊं तौभी यह ज्योंके त्यों स्थित हैं तो यह मेरे कैसे होवें और मैं इनका कैसे होऊं? न मैं नगर हूं और न मेरा नगर है। हाथी, घोड़ा, मन्दिर, धन, स्त्री, पुत्रादिक जो कुछ पदार्थ हैं सो न मेरे हैं और न मैं इनका हूं। इनमें आसक्त होना वृथा है; इनमें मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जितने भोगों के समूह हैं ये न मैं हूं और न ये मेरे हैं। नौकर, भृत्य और कलत्र सब अपने भाव से सिद्ध हैं, मेरा इनसे सम्बन्ध कुछ नहीं। न मैं राजाहूं, न मेरा राज्यहै। मैं एकाएकी शरीरमात्र हूं और इनमें मैं ममत्व करता हूं सो वृथा है। शरीर में जो मैं अहं करता हूं सो भी व्यर्थ है क्योंकि; हाथ पांव आदिक का स्वरूप भिन्न है; न यह मैं हूं और न ये मेरे हैं। इनमें मेरा शब्द कुछ नहीं यह रक्त, मांस, हाड़ आदिकरूप है सो मैं नहीं। यह जड़है और मैं चेतन हूं; इनके साथ मेरा कैसे सम्बन्ध हो। जैसे

जल का स्पर्श कमलको नहीं होता तैसेही इनका स्पर्श मुझको नहीं। न मैं कर्म इन्द्रियां हूं और न मेरी कर्म इन्द्रियां हैं। यह जड़ है, मैं चैतन्यहूं। न मैं ज्ञानइन्द्रिय हूं, न मेरी ज्ञान इन्द्रियां हैं। इनसे परे मन है सो भी मैं नहीं क्योंकि, यह जड़है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब अनात्मा रूप हैं। मेरा इनके साथ अविद्या से सम्बन्ध है। भ्रान्तिसे मैं इनको अपना स्वरूप जानता था पर यह सब भूतों का कार्य है। इनके पीछे चेतन जीव है जो चेतन दृश्य को चेतनेवाला है सो चेतन चेतना भी मैं नहीं। इन सबसे शेष अचेत चिन्मात्रसत्ता मेरा स्वरूप है। बड़ा कल्याण हुआ जो मैंने अपना आप पाया। अब मैं जागा हूं। बड़ा आश्चर्य है कि, मैं वृथा देहादिक को अपना जानकर शोक और मोह को प्राप्त होता था। मैं तो एक निर्विकल्प चेतन और अनन्त आत्मा सबमें व्याप रहाहूं और ब्रह्मरूप आत्माहूं। इन्द्रियों से आदि जितने भूतगण हैं उन सबका मैं आत्माहूं। यह भगवान् आत्मा सबके भीतर व्यापा है। जैसे सबके भीतर तत्त्व होते हैं तैसेही यह चेतनरूप सर्वभाव को भर रहा है और सर्वभावों में व्याप रहा है। भैरव और उदय अस्त भाव आदि विकारों से वह रहित है। ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सबका आत्मा यही है। सब प्रकाशों का प्रकाशनेवाला दीपक वही है और संसाररूपी मोतियोंके पिरोनेवाला तागा और सबका कारण कार्य यही हैं। वह साकारसे रहित है और शरीरादिक सब उसीकी सत्ता से उपलब्ध होते हैं। शरीररूपी रथ इसी से चलता है पर वास्तव में शरीरादिक कुछ वस्तु नहीं। यह जगत् चित्तरूपी नट की नृत्यलीलारूप है। चित्त में जगत् फुरता है वास्तव में और कुछ वस्तु नहीं। बड़ा कष्ट है कि, मैं वृथा संग्रह असंग्रह की चिन्ता करता था। यह गुणों का प्रवाह है इसमें मैं क्यों शोकवान् होता था? बड़ा आश्चर्य है कि, असत्यभ्रम सत्य हो मुझको दीखता था। अब मैं निश्चय करके सम प्रबोध हुआ हूं और दुर्दृष्टि मेरी दूर हुई है। दृष्टि की जो अलख दृष्टि है सो अब मैंने देखी है और जो कुछ पाने योग्य था सो मैंने पाया है और अचैत्य चिन्मात्र तत्त्व को प्राप्त हुआ हूं। जो कुछ दृश्य है उसको मैं स्वरूप से

देखताहूं और अहं मम दुःख मेरा नष्ट हुआहै। मैं चिदानन्द पूर्ण और नित्य शुद्ध अनन्त आत्मा अपने आपमें स्थित हूं। ग्रहण क्या और त्याग क्या? यह क्लेश कोई नहीं और न कोई दुःखहै, न सुखहै; सर्व ब्रह्महै और दूसरी वस्तु कुछ नहीं। मैं राग किसका करूं और द्वेष किसका हो? मैं मिथ्या मूढ़ता को प्राप्त होकर दुःखी होता था; अब कल्याण हुआ कि, मैं अमूढ़ होकर अपने आप स्वभाव में स्थित हुआ हूं। ऐसे आत्मा के साक्षात्कार विना मैं दुःखी था। इसके देखे से अब किसका शोक करूं और मोहको कैसे प्राप्त होऊं? अब मैं क्या देखूं; क्या करूं और कहां स्थित होऊं? यह सब जगत् आत्मा के प्रकाश से है और सब आत्मारूपहै। हे अतत्त्वरूप! अर्थात् जिसमें तत्त्वों की उपाधि कुछ नहीं; तेरी दृष्टि निष्कलङ्कहै। मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हूं। मेरा मुझही को नमस्कार है। मैं अनन्त आत्मा, अनुभवरूप, निष्कलङ्क, सब इच्छा और भ्रमरहित, सुषुप्तिकी नाईं शान्तरूप, अचैत्य, चिन्मात्र सदा अपने आपमें स्थित हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! क्रान्त जो सुवर्णरूप देश है उसका राजा परमानन्द को प्राप्त हुआ। वह इस प्रकार विचार अभ्यास से ब्रह्मरूप हुआ। जैसे गाधि का पुत्र विश्वामित्र तपस्या करके उसी शरीर से क्षत्रिय से ब्राह्मण हुआ था तैसेही राजा सुरघ अभ्यास करके ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ और जैसे सूर्य इष्ट अनिष्ट में सम है और विगतज्वर होकर दिनों को व्यतीत करता है तैसेही राग द्वेष से रहित वह राज्य का कार्य करता रहा। जैसे जल ऊंची नीची ठौर में जाता है और अपना जलभाव नहीं त्यागता, सम रहता है; तैसेही राजा हर्षशोक से रहित होकर राज्यकार्य करता रहा और स्वभाव को न त्यागा। आत्मविचार को धार सुषुप्ति की नाईं उसकी वृत्ति होगई और संसारभाव का फुरना रुक गया। जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है तैसेही वह शुद्ध प्रकाश धारता भया। हे रामजी! वह दयाकरता भी दृष्टि आवे परन्तु उसकी

दृष्टि में कुछ दया नहीं और दया से रहित भी औरों को दीखे परन्तु उसकी दृष्टि में निर्दयता नहीं। न कुछ सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ सब पदार्थों में एक समभाव आत्मा देखे और हृदय से पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतल रहे। वह जगत् आत्मा का किञ्चनरूप जानता था और उसके सुख दुःख का भाव शान्त होगया जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही उसके सुख दुःख नष्ट होगये थे। शोक विलास करता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वासलेता और पांचों विषयों को ग्रहणकरता वह राग द्वेष को प्राप्त न होता था। जैसे पत्थर में फुरना कुछ नहीं फुरता तैसेही उसको कर्तृत्व, भोक्तृत्व का मान कुछ न फुरा; सब कर्तव्य को करता भी निःसंग रहा। जैसे जल में कमल अलेप रहता है तैसेही वह राज्य में निर्लेप होकर जीवन्मुक्त हुआ। इस प्रकार जब बहुत काल बीता तब उसने शरीर का त्याग किया। जैसे बरफ़ का कणका सूर्य के तेज से जलमय होजाता है तैसेही उसका शरीर अपने भाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में लीन होगया। जैसे नदी समुद्र में लीन होती है और फिर भिन्न नहीं भासती तैसेही सुरघ अपने भावको त्यागकर उज्ज्वलभाव को प्राप्त हुआ और कलनारूपी मल को त्यागकर निर्मलब्रह्म हुआ। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही यह निर्मल चिदानन्द ज्योतिभाव को प्राप्त हुआ और जैसे घट फूटे से घटाकाश महाकाश होजाता है तैसेही वह पूर्णब्रह्म चिदानन्द तत्त्व हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तान्तसमाप्तिर्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमभी इसी दृष्टि का आश्रय करके विचारो तब सब भय मिट जावेगा। जैसे घोरतम में बालक भय पाता है और जब दीपक का प्रकाश होता है तब निर्भय होता है तैसेही संसाररूपी घोरतम में आया पुरुष दुःख पाता है और जब ज्ञानरूपी दीपक उदय होता है तब निर्भय होजाता है। हे रामजी! जब आत्मविचार में कुछभी मनुष्य का चित्त विश्राम पाता है तब उस विश्राम का आश्रयकर

वह संसारसमुद्र से निकल जाता है; जैसे गढ़े में गिरे और तृणका वृक्ष हाथ लगे तो भी उसके आश्रय से निकल आता है। हे रामजी! यह पावन दृष्टि मैंने तुमसे कही है इसको चित्त में विचारो और परस्पर मिल-कर उदाहरण के साथ अभ्यासकर नित्य एक समाधि में स्थित हो और पृथ्वी का भूषण होकर लोगों में विचरो। इतना सुन रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! एक समाधि किसको कहते हैं और कैसे होती है सो कहो जिसमें मेरा चित्त जो फुरता है सो स्थित हो। जैसे वायु से मोर की पुच्छ हिलती है तैसेही चञ्चलरूप चित्त सदा फुरता है। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था तब उसका संवाद पर्णादि राजऋषि के साथहुआ था वही अद्भुत समाधि है; उसको सुनकर विचारोगे तो तुमभी एक समाधिमान् होगे। उसने परस्पर मिलकर जो चर्चा की थी सो सुनो। हे रामजी! पारसदेशका राजा महावीर्यवान् था। उसका परघनाम था और वह सुरघ का मित्र था। जैसे नन्दनवन में कामदेव और बसन्तऋतुका मित्रभाव होताहै तैसेही सुरघ और परघ का मित्रभाव था। एक काल में परघ के देशमें प्रलयकाल बिना प्रलयकाल की नाईं समय हुआ और उससे सब जीव दुःख पाने लगे निदान प्रजा की पापबुद्धि का फल आनलगा और महादुर्भिक्ष पड़ा। कोई क्षुधा से मृतकहुये, कोई अग्नि से जलमरे और बहुतेरे झगड़ा करके मृतक हुये। प्रजा बहुत दुःख को प्राप्त हुई पर राजा को कुछ दुःख न प्राप्त हुआ। जब प्रजा ने बहुत दुःख पाया और राजा ने प्रजा को दुःखी देखा पर प्रजा का दुःख निवृत्त न करसका तो प्रजा अपने २ कुटुम्ब को त्यागकर चली गई—जैसे वन में अग्नि लगेसे पक्षी त्याग जाते हैं। तब राजा एक पहाड़ की कन्दरा में तप करने लगा और ऐसा तप करने लगा जैसा कि, जिनेन्द्र ने किया था। वह उस कन्दरा में फल न पाये केवल सूखे पत्ते लेकर खावे—जैसे अग्नि सूखे पत्तों को भक्षण करती है उससे उसका नाम पर्णाद हुआ। निदान चित्त की वृत्ति को आत्मपद में लगाकर सहस्रवर्ष पर्यन्त उसने तप किया तब अभ्यास के बलसे चित्त स्थित हुये से केवल ज्ञानरूप आत्मतत्त्व हृदय की निर्मलता से

प्रकाश आया और सब तप्तता मिट गई। तब वह राग द्वेष से रहित हो निष्क्रिय-आत्मदर्शी-जीवन्मुक्त होकर बिचरने लगा। जैसे सरोवरों में कमलों के निकट भँवरा हंसों के साथ जा मिलता है तैसेही सिद्धों के साथ राजा जामिले। ऐसे फिरता २ वह क्रान्तदेश में सुरघ के स्थानोंको गया। सुरघ पूर्वमित्र को देखकर उठ खड़ा हुआ और परस्पर कण्ठ लगाके मिले। फिर परस्परभाव करके एक आसन पर चन्द्रमा और सूर्य के समान दोनों बैठगये और आपस में कुशल पूछने लगे। प्रथम परघ बोले, हे मित्र! तेरे दर्शन से जैसे कोई चन्द्रमा के मण्डल में जा आनन्दवान् हो तैसेही मैं आनन्दवान् हुआहूं। बहुत काल का जो वियोग होता है तो बहुत प्रीति बढ़ती है। जैसे वृक्ष को ऊपर काटे से बढ़ता है तैसेही प्रीति बढ़ती है। हे साधो! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ और तू भी माण्डव मुनि और आत्मा के प्रसाद से ज्ञान को प्राप्त हुआ है। हे राजन्! मेरा अभीष्ट प्रश्न यह है कि, तू अब दुःखों से मुक्त होकर विश्राम को प्राप्त हुआ है। आत्मपद पाने की बड़ाई मेरु आदिक से भी ऊंची है उसको तू प्राप्त हुआ है और परम कल्याणवान् आत्मारामी हुआ है। तुम राग द्वेष मलसे रहित हुये हो-जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै-और सब कार्यों के करते भी समभाव में रहते हो। आधि-व्याधि ताप तुम्हारे दूर हुये हैं; तुम्हारी प्रजा भी विगतज्वर हुई है और धन, राज्य और माल में भी कुशल है। जैसे चन्द्रमा की किरणें शीतलता फैलाती हैं तैसेही तुम्हारा यश दशों दिशाओं में फैलरहा है और तुम्हारा यश ग्रामवासी क्षेत्रों में लड़कियां गाती हैं। हे राजन्! तुम्हारे प्रजा, नौकर, पुत्र और कलत्र सब आधि-व्याधि से रहित हुये हैं। विषय पदार्थ आपातरमणीय हैं उनमें अब तुम्हारी प्रीति नहीं है और तृष्णा रूपी सर्पिणी तुमको अब तो नहीं डसती। हे राजन्! तुम्हारी हमारी मित्रता हुई थी। समय पाकर तुम कहां रहे और हम कहां रहे; अब फिर इकट्ठे हुये हैं। बड़ा आश्चर्य है? ईश्वर की नीति जानी नहीं जाती; सुख से दुःख होजाता है और दुःख गये से सुख होजाता है। संसार की दशा आगमापायी है;

संयोगका वियोग होता है और वियोग का संयोग होता है । तैसे ही तुम्हारा हमारा भी संयोग का वियोग होगया था और अब फिर वियोग का संयोग हुआ है । बड़ा आश्चर्य है—ईश्वर की नीति अद्भुतरूप है। सुरघ बोले, हे देव ! परमात्मा देव की नीति जान नहीं सके। वह महा-गम्भीर, विस्मयके देनेवाली और दुर्ज्ञात है । तुम्हारा हमारा वियोग हुआ तब दूरसे दूर जापड़े; तुम कहां थे और हम कहां थे वे अब फिर इकट्ठे हुये हैं। देव की नीति आश्चर्यरूप है। तुमने जो मुझ से कुशल पूछी सो तुम्हारा आना ही पुण्य है उससे मैं परम पावन हुआ हूं और तुम्हारे दर्शन से सब पाप नष्ट होजाते हैं। आज हमारे पुण्य का फल लगा है जो तुम्हारा दर्शनहुआ और जो कुछ यश सम्पदा है। वह सब आज प्राप्त हुई है । हे भगवन् ! सन्तों का आना मधुर अमृत की नाईंहै। जैसे अमृत झरने से निकलता है तैसेही तुम्हारे दर्शन और वचनों से परमार्थरूपी अमृत स्रवता है । जिसको पाकर जीव निर्भयताको प्राप्त होता है । सन्तों का मिलना परमपद के तुल्यहै इसलिये हम परम शुद्धता को प्राप्तहुये हैं ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णनं नामषट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥ ५६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब वे पूर्व वृत्तान्त कह रहे थे तब फिर परघ बोले, हे राजन् ! समाहितचित्त इस जगज्जाल में जो जो कर्म करता है सो सुखरूप होता है । संकल्प से रहित जो परम विश्राम और परम उपशम समाधि है उसमें अब तुम स्थित हुये हो । सुरघ बोले, हे भगवन् ! तुम्हीं कहो कि, सब संकल्पों से रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं ? और यदि तुम मुझसे पूछो तो सुनो । जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं वे चाहे तूष्णीं रहें अथवा व्यवहार करें असमाहितचित्त कदाचित् नहीं होते । हे साधो ! जिनका नित्यप्रबुद्ध चित्त है वे जगत् के कार्य भी करते हैं पर आत्मतत्त्वमें स्थित हैं तो वह सर्वदा समाधि में स्थित हैं और जो पद्मासन बांध कर बैठते हैं और ब्रह्मअञ्जली हाथ में रखते हैं पर चित्त आत्मपद में स्थित नहीं होता और विश्रान्ति नहीं पाते तो उनको

समाधि कहां? वह समाधि नहीं कहाती। हे भगवन्! परमार्थ तत्त्वबोध आशारूपी सब तृणों के जलानेवाली अग्नि है। ऐसी निराशरूप जो समाधि है वही समाधिहै। तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है। हे साधो! जिसका चित्त समाहित, नित्य तृप्त और सदा शान्तरूप है और जो यथा भूतार्थ है अर्थात् जिसे ज्योंका त्यों ज्ञान हुआ है और उसमें निश्चय है वह समाधि कहाती है; तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं है जिसके हृदय में संसाररूप सत्यता का क्षोभ नहीं है, जो निरहंकारहै और अनउदय ही उदय है वह पुरुष समाधि में कहाता है। ऐसा जो बुद्धिमान् है वह मेरु से भी अधिक स्थित है। हे साधो! जो पुरुष निश्चिन्त है, जिसकी ग्रहण और त्याग बुद्धि निवृत्त हुई है; जिसे पूर्ण आत्मतत्त्व ही भासता है वह व्यवहार भी करता दृष्ट आता है तौ भी उसको समाधि कही है। जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्व में स्थित होता है उसको अत्यन्त समाधि होजाती है और क्षण २ बढ़ती जाती है निवृत्त नहीं होती। जैसे अमृत के पान किये से उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है तैसेही एक क्षण की भी समाधि बढ़ती ही जाती है। जैसे सूर्य के उदय हुये सब किसी को दिन भासता है तैसेही ज्ञानवान् को सब आत्मतत्त्व भासता है—कदाचित् भिन्न नहीं भासता जैसे नदी का प्रवाह किसी से रोंका नहीं जाता तैसेही ज्ञानवान् की आत्मदृष्टि किसीसे रोंकी नहीं जाती और जैसे काल की गति काल को एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती तैसे ही ज्ञानवान् को आत्म दृष्टि विस्मरण नहीं होती। जैसे चलने से ठहरे पवन को अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् को चिन्मात्र तत्त्व का विस्मरण नहीं होता और जैसे सत् शब्द विना कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् को आत्मा सिवाय कोई पदार्थ नहीं भासता। जिस ओर ज्ञानवान् की दृष्टि जाती है उसे वहां अपना आप ही भासता है—जैसे दर्पण के मन्दिर में सर्व ओर अपना ही मुख भासता है। जैसे उष्णता विना अग्नि नहीं, शीतलता विना बरफ़ नहीं और श्यामता विना काजर नहीं होता तैसे ही आत्मा विना जगत् नहीं होता। हे साधो!

जिसको आत्मासे भिन्न पदार्थ कोई नहीं भासता उसको उत्थान कैसे हो? मैं सर्वदा बोधरूप, निर्मल और सर्वदा सर्वात्मा समाहितचित्त हूं; इससे उत्थान मुझको कदाचित् नहीं होगा। आत्मा से भिन्न मुझको कोई नहीं भासता सर्वप्रकार आत्मतत्त्व ही मुझको भासता है। हे साधो! आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है। सर्वदा और सर्वप्रकार आत्मा स्थित है फिर समाधि और उत्थान कैसे हो? जिसको कार्य कारण में विभाग[1] कलना नहीं फुरती और जो आत्मतत्त्व में ही स्थित है उसको समाहित असमाहित क्या कहिये? समाधि और उत्थान का वास्तव में कुछ भेद नहीं। आत्मतत्त्व सदा अपने आप में स्थित है, द्वैतभेद कुछ नहीं तो समाहित असमाहित क्या कहिये?॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनंनाम सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५७॥

सुरघ बोले, हे राजन्! निश्चय करके अब तुम जागेहो और परमपद को प्राप्त हुयेहो। तुम्हारा अन्तःकरण पूर्णमासी के चन्द्रमावत् शीतलहुआ है और परमशोभा से तुम्हारा मुख शोभित होकर तुम ब्रह्मलक्ष्मीसम्पन्न और परमानन्दसे पूर्ण हुये हो। तुम्हारा हृदयकमल शीतल और स्निग्ध विराजमान है और निर्मल तुम्हारी विस्तृत गम्भीरता मुझको प्रकट भासती है। निर्मल शरत्काल के आकाशवत् तुम्हारा हृदय भासताहै और अहंकाररूपी मेघ तेरा नष्ट हुआ है। हे राजन्! अब तुमको सर्वत्र स्वस्थ और सर्वथा सन्तुष्टता है और किसी में राग नहीं। तुम वीतराग होकर विराजते हो; सार असार को तुमने भली प्रकार जानाहै और उसे जान कर असार संसाररूपी समुद्र से पार हुये हो और महाबोध को तुमने ज्यों का त्यों जानकर अखण्ड स्थिति पाई है और भाव अभाव पदार्थ दोनों को तुम जानते हो। तुम जगत् के सम असम पदार्थों से मुक्तहुये हो और तुम्हारा आशय मुदिता-शान्तहुआ है। इष्ट, अनिष्ट, ग्रहण, त्याग तुम्हारा निवृत्तहुआहै, राग द्वेष और तृष्णारूपी बादलोंसेरहित निर्मल आकाशवत्

---

१ "संयोगनाशको गुणो विभागः"।

तुम शोभते हो और अपने आपसे तृप्तहुये हो कुछ इच्छा तुमको नहीं है। सुरघ बोले, हे मुनीश्वर! इसजगत् में ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं। जो कुछ दृश्य पदार्थ हैं वे सब आभासरूप हैं तो ग्रहण किसको कीजिये? और जो कहिये कि, ग्रहण करने योग्य नहीं इससे त्याग करिये तो आभासरूप पदार्थों का त्याग क्या कीजिये और ग्रहण क्या कीजिये क्योंकि, है नहीं सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं। जैसे सूर्यकी किरणों में जल भासताहै तो उस जलभासका कौन अङ्ग ग्रहण कीजिये और कौन अङ्ग त्याग कीजिये, तैसेही यह जगत् भी है। हे मुनीश्वर! जगत् के कोई पदार्थ तुच्छ हैं और कोई अतुच्छ हैं। जो थोड़े काल में नष्ट हो जाते हैं सो तुच्छ हैं और जो चिरकालपर्यन्त रहते हैं वे अतुच्छ हैं परन्तु दोनों काल से उपजे हैं अब मैंने अकालरूप को देखाहै इससे दोनों तुल्य होगये हैं फिर इच्छा किसकी करूं? हेमुनीश्वर! जो पदार्थों को रमणीय जानते हैं वे उनकी इच्छा करते हैं पर त्रिलोकी में रमणीय पदार्थ कोई नहीं, सब तुच्छ और नाशरूप हैं और अविचारसे जीवों को भासते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियों के विषय हैं वेभी सब असाररूप हैं। स्त्रीको बड़ापदार्थ जानते हैं पर वह भी देखनेमात्र सुन्दर है और भीतर से रक्त, मांस, विष्ठा और मूत्र का थैला बना हुआहै—इसमें भी कुछ सार नहीं। पर्वत बड़े पदार्थ हैं सो पत्थर बट्टे हैं, समुद्र जलहै, वनस्पति काष्ठ—पत्र हैं और इनसे आदि जो पदार्थ हैं वे सब आपातरमणीय हैं विचार विना सुन्दर भासते हैं। इनकी जो इच्छा करते हैं वे अपने नाश के निमित्त करते हैं—जैसे पतङ्ग दीपककी इच्छा करताहै सो अपने नाश के निमित्त करताहै और हरिण नाद की इच्छा से नाश को प्राप्त होता है, तैसेही जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं वे अपने नाशको करते हैं। इससे विचारसे रहित जो अज्ञानी हैं वे पदार्थों को रमणीय जानकर अपने नाश के निमित्त इच्छा करते हैं और जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं वे उन्हें अरमणीय जानकर किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं करते। जैसे सूर्य के उदय हुये अन्धकार का अभाव होता है तैसेही जब पदार्थों का राग उठगया तब तृष्णा किसमें रहे? हे साधो!

राग, द्वेष, इच्छा, ग्रहण, त्याग जो कुछ विकार हैं उन सबसे रहित शुद्ध आत्मतत्त्व में स्थित हो। बहुत कहने से क्या है जिस पुरुष के मन से वासना नष्ट होगई है वह उपशमवान् कल्याणमूर्ति परमपद को प्राप्त हुआ है और संसारसमुद्र से तर गया है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघनिश्चयवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः॥ ५८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार सुरघ और परघ जगत् को भ्रमरूप विचारते परस्पर गुरु जानकर पूजते रहे फिर कुछ दिन उपरान्त परघ चला गया। हे रामजी! इनका जो परस्पर संवाद तुमको सुनाया है सो परम बोध का कारण है। इस विचार के क्रम से बोध की प्राप्ति होती है। तीक्ष्ण बोधसे जब विचार करोगे तब अहंकाररूपी बादल का अभाव हो जावेगा और शुद्ध हृदयरूपी आकाश में आत्मरूपी सूर्य का प्रकाश हो जावेगा। इससे परमपद के लाभ के निमित्त अहंकाररूपी बादल के अभाव का यत्न करो। आत्मा जो सत्य और सब आनन्दों की सम्पदा चिदाकाश है उससे स्थिति पावोगे। हे रामजी! जो पुरुष नित्य अन्तर्मुखी अध्यात्ममय है और नित्य चिदानन्द में चित्त को लगाता है वह सदा सुखी है—उसको शोक कदाचित् नहीं होता और जो पुरुष आत्मपद में स्थित हुआ है वह बड़े व्यवहारकरे और राग द्वेष सहित दृष्टि आवे तौभी उसको कुछ कलङ्क नहीं होता। जैसे कमल जल में दृष्ट आता है तौभी ऊंचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता; तैसेही ज्ञानवान् को व्यवहार का राग द्वेष हृदय में स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! जिसका मन शान्त हुआ है उसको संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थ चला नहीं सक्के। जैसे सिंहों को मृग दुःख दे नहीं सक्के, तैसेही ज्ञानवान् को जगत् के पदार्थ दुःख नहीं दे सक्के। जिस पुरुष को आत्मानन्द प्राप्त हुआ है उसको विषयों की तृष्णा नहीं रहती और न वह विषयों के निमित्त कदाचित् दीन होता है। जैसे जो पुरुष नन्दनवन में स्थित होता है वह कण्टकों के वृक्ष की इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों की इच्छा

नहीं करता। हे रामजी! जिस जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानकर त्याग किया है उसके चित्त को जगत् के पदार्थ दुःख दे नहीं सक्के। जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मरजावे तो उसको दुःख नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् के चित्त में भोगोंकी दीनता ऐसे नहीं उपजती जैसे नन्दनवन में कण्टक का वृक्ष नहीं उपजता। जिस पुरुष को आत्मबोध हुआ है और संसार का कारण मोह निवृत्त हुआ है वह जगत् का कार्यकर्ता दृष्टि आता है परन्तु उनको स्पर्श नहीं करता—जैसे आकाश में अन्धकार दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता। हे रामजी! अविद्या के निवृत्ति का कारण विद्या है; और किसी उपाय से निवृत्ति नहीं होती। जैसे प्रकाश विना तम निवृत्त नहीं होता तैसेही विचार विना अविद्या निवृत्त नहीं होती। अविचार का नाम अविद्या है और विचार का नाम विद्या है; जब अविद्या नष्ट होगी तब विषय भोग स्वाद न देवेंगे और आत्मानन्द से संतुष्टवान् रहोगे। हे रामजी! ज्ञानवान् को विचारके कारण इन्द्रियोंके व्यवहार अन्धा नहीं करसक्के—जैसे जल में मछली रहती है उसको जल अन्धा नहीं करसक्का पर और अन्धा होजाता है। जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होताहै तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त होजाती है; चित्त परमानन्दको प्राप्त होजाता है और राग द्वेषरूपी निशाचर नष्ट होजाता है। तब फिर वह मोह को नहीं प्राप्त होता। जिसके हृदय आकाश में आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआहै उसका जन्म और कुल सफल होताहै। जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अपने अमृत को पाकर अपने में ही शीतल होता है तैसेही जो पुरुष आत्मचिन्तना में अभ्यास करता है वह शान्ति पाता है। हे रामजी! बुद्धि और श्रेष्ठ दिन; मृत्यु और सत्शास्त्र वही है जिससे संसार से वैराग और आत्मतत्त्व की चिन्तना उपजे। जब जीव आत्मपद को पाता है तब उसका सब क्लेश मिटजाता है और जिनको आत्मचिन्तना में रुचि नहीं वे महाअभागी हैं। ऐसे पुरुष चिर पर्यन्त कष्ट पावेंगे और जन्मरूपी जङ्गल के वृक्ष होंगे। हे रामजी! जीवरूपी बैल अनेक आशारूपी फांसियों से बाँधा है, जरा अवस्थारूपी पत्थरों के

मार्गसे जर्जरीभूत होताहै, भोगरूपी गढ़े में गिराहै और कर्मरूपी भारको लिये जन्मरूपी जङ्गल में भटक कर कर्म कीचड़ में फँसाहुआ राग द्वेषरूपी मच्छरों से दुःखी होताहै स्नेहरूपी रथ को पकड़ के खैंचताहै और पुत्र, स्त्री आदिककी ममतारूपी कीचड़में गोते खाताहै और मोह संसाररूपी मार्ग में कर्मरूपी रथ के साथ लगता है और ऊपरसे ज्ञानरूपी तप्तता से जलता है और सन्तजन और सत्शास्त्ररूपी वृक्ष की छाया नहीं पाता। हे रामजी! जीवरूपी ऐसा बैल है। उसे निकालने का यत्न करो जब तत्त्वका अवलोकन करोगे तब चित्तभ्रम नष्ट होजावेगा। हे रामजी! संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय सुनो। महापुरुष और सन्तजन मल्लाह हैं, उनका युक्तिरूपी जहाज़ है उससे संसाररूपी समुद्र तरजावेगा; और उपाय कोई नहीं यही परमउपाय है। जिस देश में सन्तजनरूपी वृक्ष नहीं हैं और जिनकी फलों सहित शीतल छाया नहीं है उस निर्जन मरुस्थल में एक दिन भी न रहिये। हे रामजी! सन्तजनरूपी वृक्ष हैं; जिनके स्निग्ध और शीतल वचनरूपी पत्र हैं, प्रसन्न होना सुन्दर फूलहै और निश्चय उपदेशरूपी फलहै। जब यह पुरुष उनके निकट जावे तब महामोहरूपी तप्तता से छूटेगा और शान्ति पाकर तृप्तहोगा। तभी तीनों फलोंको पाकर अघावेगा और सब दुःखों से मुक्त होगा। हे रामजी! अपना आपही मित्र है और अपना आपही शत्रु है। अपने आपको जन्मरूपी कीचड़ में न डाले। जो देह में अहंभावना से विषयों की तृष्णा करता है वह अपना आपही नाश करता है। जो देहभाव को त्यागकर आत्मअभ्यास करता है वह अपना आप उद्धार करता है और वह अपना आपही मित्र है और जो आपको संसारसमुद्रमें डालता है यह अपना आपही शत्रु है। हे रामजी! प्रथम यह विचारकर देखे कि, जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ है और कैसे निवृत्त होगा? मैं कौन हूं; सत्य क्या और असत्य क्या है? ऐसे विचार कर जो सत्य है उसको अङ्गीकार करे और जो असत्य है उसका त्यागकरे। हे रामजी! न धन कल्याण करता है न मित्र बान्धव और न शास्त्र कल्याण करते हैं; अपना उद्धार आपही होता है। इससे तुम अपने मन के साथ मित्रताई करो।

जब वह दृढ़ वैराग्य और अभ्यास करे तब संसार कष्ट से छुटे। जब वैराग्य अभ्यास से तत्त्व के अवलोकनरूपी बेड़ी कटे तब संसारसमुद्र से तर जाता है। हे रामजी! जीवरूपी हाथी जन्मरूपी गढ़े में गिरा हुआ है; तृष्णा और अहंकाररूपी ज़ंजीर से बँधा है और कामनारूपी मद से उन्मत्त है। जब उनसे छूटे तब मुक्त हो। हे रामजी! हृदयरूपी नेत्रों में अनात्म अभिमानरूपी मलरक्त हो गया है; जब विचाररूपी औषध से उसको दूर कीजिये तब आत्मरूपी सूर्य का दर्शन हो। हे रामजी! और उपाय कोई न करो तो एक उपाय तो अवश्यकरो कि, देहको काष्ठ-लोष्ठवत् जानकर इसका अभिमान त्यागो। जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्ट होगा तब आपही आत्मरूपी सूर्य प्रकाश आवेगा। जब अहंकाररूपी बादल लय होगा तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासेगा; वह परमानन्दस्वरूप है; सुषुप्ति से मौन अंकुर है और केवल अद्वैत तत्त्व है; वाणीसे कहा नहीं जाता अपने अनुभव से आपही जाना जाता है। हे रामजी! सब जगत् अनन्त आत्माहै। जब चित्तका दृढ़ परिणाम उसमें हो तब स्थावर जङ्गम-रूप जगत् में वही दिव्यदेव भासेगा और वासना सब निवृत्त हो जावेगी। तब अनुभव से केवल परमानन्द आत्मतत्त्व दिखाई देगा सो स्वरूप पूर्ण और अद्वैत है। सब जगत् का त्याग कर उसी के पानेका यत्न करो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकारणोपदेशोनामैकोनषष्टितमस्सर्गः५९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मन से मन को छेदो और अहं मनभाव को त्यागो। जबतक मन नष्ट नहीं होता तबतक जगत् के दुःख निवृत्त नहीं होते। जैसे मूर्ति का सूर्य मूर्ति के नष्ट हुये विना अस्त नहीं होता—जब मूर्ति नष्ट हो तब सूर्य का आकार भी दूर हो; तैसेही जब मन नष्ट हो तब संसार के दुःख नष्ट हो जावेंगे—अन्यथा नष्ट न होंगे। हे रामजी! जैसे प्रलयकाल में अनन्त दुःख होता है तैसेही मन के होने से अनन्त दुःख होते हैं और जैसे मेघ के बर्षने से नदी बढ़ती जाती है तैसेही मन के जागे से आपदा बढ़ती जाती है। इसही पर एक पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदों का हेतु है। हे रामजी! सह्याचल

सब पर्वतों में बड़ा पर्वत है। उस पर फूलों के समूह और नाना प्रकार के वृक्ष हैं; जल के झरने चलते हैं और मोतियों के स्थान और सुवर्ण के शिखर हैं। कहीं देवताओं के स्थान हैं और कहीं पक्षी शब्द करते हैं। नीचे कान्त रहते हैं ऊपर सिद्ध, देवता और विद्याधर रहते हैं, पीठ में मनुष्य रहते हैं और नीचे नाग रहते हैं—मानो सम्पूर्ण जगत् का गृह यही है। उसके उत्तर दिशा में सुन्दर वृक्ष और फलों से पूर्ण तालाब है जिसकी महासुन्दर रचना की स्वर्ग की सी उपमा है। वहां अत्रिनाम एक ऋषीश्वर साधुओं के श्रम दूर करनेवाला रहता था। उसके आश्रम के पास दो तपस्वी आ रहने लगे—जैसे आकाश में बृहस्पति और शुक्र आ रहे। उन दोनों के गृह में दो महासुन्दर पुत्र जैसे कमल उत्पन्न हो तैसेही उत्पन्न हुये और एक का नाम भास और दूसरे का नाम विलास हुआ। दोनों क्रम से बड़े हुये और जैसे अंगुली के दोनों पत्र बढ़ते हैं तैसेही वे बढ़ने लगे। परस्पर उनकी प्रीति बहुत बढ़ी और इकट्ठे रहने लगे। जैसे तिल और तेल; और फूल और सुगन्ध इकट्ठे रहते हैं और जैसे स्त्री और पुरुष की प्रीति आपस में होती है; तैसेही उनकी प्रीति बढ़ी। वे देखनेमात्र तो दो मूर्ति दृष्ट आते थे परन्तु मानो एकही थे। उनकी स्नान आदिक क्रिया और मानसी क्रिया भी एक समान थी और वे महासुन्दर प्रकाशवान् थे। जैसे चन्द्रमा और सूर्य हों। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब उनके माता पिता शरीर त्यागकर स्वर्ग को गये और उनके वियोग से वे दोनों शोकवान् हुये और जैसे कमल की कान्ति जल विना जाती रहै तैसेही उनके मुख की कान्ति कुम्हिला गई। फिर उन्होंने उनके मरने की सब क्रिया की और उनके गुण सुमिरण करके विलाप करें और महाशोकवान् हों क्योंकि, महापुरुष भी लोकमर्यादा नहीं लंघते। हे रामजी! इस प्रकार शोक कर उनका शरीर कृश हो गया॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तान्तवर्णनं नाम षष्टितमस्सर्गः॥ ६०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे उजाड़ वन का वृक्ष जल विना सूख

जाता है तैसेही उनका शरीर सूख गया। तब वे दोनों विरक्तज्वर होकर विचरने लगे। जैसे समूह से बिछुड़ा हरिण शोकवान् होता है तैसेही वे दुःखीहुये क्योंकि; उनको निर्मलज्ञान प्राप्त न था। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तबवे फिर आमिले। विलासने कहा, हे भाई! हृदय को आनन्द देनेवाला अमृतका समुद्र जीवनरूपी जो वृक्षहै उसका फल सुखहै सो तुम इतने काल सुखसे रहे हो। तुम्हारा हमारा वियोग होगया था तब तुम कैसी क्रिया करतेरहे? तुमने अपना कुछ चित्त निर्मल कियाहै और अब आत्मपद पाया है। अब तुम्हारी बुद्धि शोक से रहित होकर विद्या तुमको फली है और तुम अब कुशलरूप हुये हो। भास बोले, हे साधो! अब हमको कुशल हुई जो तुम्हारा दर्शनहुआ जगत् में कुशल कहां है; इस संसार में स्थितहुये हमको सुख और कुशल कहां है? हे साधो! जबतक ज्ञेय परमात्मतत्त्व को नहीं पाया, जबतक चित्त भूमिका क्षीण नहीं हुई और जबतक संसारसमुद्र को नहीं तरे तबतक कुशल कहांहै जबतक चित्तसे दुःख निवृत्त नहीं होता तबतक चित्त की भूमिका नष्ट नहीं होती। जबतक संसारसमुद्र से पारको नहीं होते तबतक हमको सुखकहां है? जबतक चित्तरूपी क्षेत्र में आशारूपी कण्टकोंकी बेलि बढ़ती जाती है और आत्मविचाररूपी हँसिये से नहीं काटी तबतक हमको कुशल कहां, जबतक आत्मज्ञान उदय नहीं हुआ तबतक हमको कुशल कहां है? हे साधो! संसाररूपी विसूचिका रोग आत्मरूपी औषध विना दूर नहीं होता। सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं जिससे दुःख प्राप्त हो इससे सुख को नहीं पाते। देहरूपी वृक्ष में बालअवस्थारूपी पत्र हैं और यौवन और वृद्धअवस्थारूपी फल हैं सो मृत्यु के मुखमें जा पड़ता है। उपजता है और फिर नष्ट होताहै। यह सुख जो लवाकार है और दुःख जिसका दीर्घ से दीर्घ स्थावरहै। ऐसे जो शुभाशुभ आरम्भ हैं उनमें इनको दिन रात्रि व्यतीत होते हैं। हे साधो! चित्तरूपी हाथी वैरागरूपी जंजीर विना तृष्णारूपी हथिनी के पीछे दूर से दूर चला जाता है। जैसे चीलह पक्षी मांस की ओर चला जाता है तैसेही चित्त विषयों की ओर धावता है और आत्मारूपी चिन्तामणि की

ओर नहीं जाता। अहंकाररूपी चील्ह देहादिकरूपी मांस की ओर धावता है और मुखरूपी कमल अपमानरूपी धूलि से धूसर होजाता है और योगरूपी बरफ़ से नष्ट होजाता है। हे साधो! वह देहरूपी कूप में गिरा है, जिसमें भोगरूपी सर्प है, आशारूपी कण्टक है और तृष्णारूपी जल है उसमें दुःख पाता है। हे साधो! नाना प्रकार के रङ्ग रञ्जनारूपी रङ्ग है और जिसमें तृष्णारूपी चञ्चलता है ऐसे चैत्यदृश्य में मग्न है। चित्तरूपी ध्वजा कालरूपी वायु से हिलती है। चित्तरूपी समुद्र में चिन्तारूपी भँवर हैं जिसमें जीवरूपी तृण आय कष्ट पाता है और बुद्धिरूपी पक्षिणी है जो वासनारूपी जाल में कष्ट पाती है। यह मैंने किया है; यह करती हूं और यह करूंगी; इसी वासनारूपी जाल में बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है—एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती। हे भाई! इस चित्तरूपी कमल को राग-द्वेषरूपी हाथी चूर्ण करता है। यह मेरा सुहृद् है, यह मेरा शत्रु है; यह 'अहं' 'मम' ही इसको मारता है। शुद्ध आत्मरूप को त्यागकर देहादिक अनात्मरूप में अहंभाव करता है और दीनता को प्राप्त होता है। जैसे राज्य से रहित राजा कष्ट पाता है तैसेही आत्मभाव से रहित कष्ट पाता है और देहाभिमान जन्म मरण के दुःख देखता है। जब देहाभिमान को त्याग करे तब कुशल हो अन्यथा कुशल नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे अन्तरप्रसङ्गो नामैकषष्टितमस्सर्गः॥६१॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इसप्रकार उन्होंने परस्पर कुशल प्रश्न किया। जब कुछ काल व्यतीत हुआ तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मलज्ञान प्राप्त हुआ और मोक्षपद को प्राप्त हुये। इससे, हे रामजी! कल्याण के निमित्त ज्ञान के सिवा और मार्ग कोई नहीं जिसका चित्त आशारूपी फांसी से बँधा हुआहै वह संसारसमुद्र से पार नहीं हो सक्ता। इससे जीव संसार-समुद्र में ग़ोते खाता है और ज्ञानवान् शीघ्रही ऐसे तरजाता है जैसे गोपद लंघने में सुगम होता है। जैसे जिस पक्षी के पंख टूटेहैं सो समुद्र को नहीं तरसक्ता बीचमें ही गिरके ग़ोते खाता है और गरुड़ पंखों से शीघ्रही लंघ जाताहै; तैसेही जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यासरूपी पंख टूटे हैं वे

संसारसमुद्र से पार नहीं होसक्ते और जिन पुरुषों के वैराग्य और अभ्यास-रूपी पंखहैं वे शीघ्रही तरजाते हैं। हे रामजी! जो देहसे अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्व में स्थित हुये हैं वे ऊँचे होकर देखते हैं और अपने देह को देखके हँसते हैं—जैसे सूर्य जनता को देख हँसता है अर्थात् जगत् की क्रिया से निर्लेप रहता है। जैसे रथके टूटे से रथ वायु को कुछ खेद नहीं होता तैसेही देह के दुःख से ज्ञानवान् को कदाचित् खेद नहीं होता और मनके क्षोभ से भी आत्मतत्त्व में कुछ क्षोभ नहीं होता। जैसे तरङ्ग पर धूलि पड़ती है तो उससे समुद्र को कुछ लेप नहीं होता तैसेही मनके दुःख से आत्मा को क्षोभ नहीं होता। हे रामजी! जैसे जल और हंस का और जल और बेड़ी का कुछ सम्बन्ध नहीं तैसेही देह और आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे पहाड़ और समुद्र का सम्बन्ध नहीं; जैसे जल, पत्थर और काष्ठ एक ठौर रहते हैं परन्तु कुछ सम्बन्ध नहीं और जैसे जल और बेड़ी का संघट्ट होता है तो जलकणके उठते हैं तैसे ही देह और आत्मा के संयोग से चित्तवृत्ति फुरती है। हे रामजी! जीव को दुःख संग से ही होता है। जहां अहं मम अभिमान होता है वहां दुःख भी होता है और जहां अहं मम का अभिमान नहीं वहां दुःख भी कुछ नहीं होता। जैसे मछली को जल में ममत्व होता है और उसके वियोग से कष्ट पाती है तैसे ही जिस पुरुष को देह में अहं ममभाव है वह बड़ा कष्ट पाता है और जिसको देह में अभिमान नहीं उसको दुःख भी कुछ नहीं होता। हे रामजी! ज्यों २ मन से संसर्गता निवृत्त होती है त्यों २ भोग-प्रवाह कष्ट नहीं देता जैसे जल और पत्थर को कष्ट नहीं होता और जैसे दर्पण में पर्वत का प्रतिबिम्ब होता है सो दर्पण को प्रतिबिम्ब का संग नहीं होता और कष्ट भी नहीं होता तैसेही जब देह से संसर्गभाव उठ जाता है तब कोई कष्ट भी नहीं होता। जैसे दर्पण को कुछ कष्ट नहीं होता तैसेही आत्मा और जगत् की क्रिया है। हे रामजी! सर्वथा संवित्मात्र आत्मत्व स्थित है। वह शुद्ध है और द्वैतशब्द के फुरने से रहित है। जो उसमें स्थित है उसको द्वैतशब्द नहीं फुरता और जो अज्ञानी है उसको

द्वैतकलना उठती है। हे रामजी! यह सब जीव अदुःखरूप हैं परन्तु अज्ञान भ्रम से आपको दुःखी जानते हैं। जैसे स्थान में चोरभावना अविचार से होती है तैसेही आत्मा में दुःख की भावना अविचार से होती है। यह जीव अशब्दरूप है परन्तु कल्पना के वश से आपको सम्बन्धी जानता है। जैसे स्वप्न में अङ्गना बन्धन करती है और स्थान में वैताल भासता है और भय प्राप्त होता है तैसेही अपनी कल्पना से जीव बन्धवान् होता है। हे रामजी! देह और आत्मा का सम्बन्ध असत्य है–जैसे जल और बेड़ी का सम्बन्ध असत्य है। यदि जल का अभाव हो तो बेड़ी को कुछ चिन्ता नहीं होती और बेड़ी का अभाव हो तो जल को कुछ चिन्ता नहीं; तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध असत्य है। जब ऐसे जानकर हृदय संग से रहित हो तब देह का दुःख कुछ नहीं लगता। देह के दुःख में आपको दुःखी मानना; देह से अहंभावना करके आत्मा दुःखी होता है। जब देह में अभिमान को त्याग दे तब सुखी हो। ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं। जैसे जल और पत्थर इकट्ठे रहते हैं परन्तु भीतर संगका अभाव है इससे उन्हें कुछ दुःख नहीं होता तैसेही हृदय से संगरहित हो तब देह इन्द्रियों के होते भी दुःख का स्पर्श कुछ न हो और निर्दुःख पद में प्राप्त हो। हे रामजी! जिसको देह में आत्माभिमान है उसको जन्ममरण दुःखरूप संसार भी है। जैसे बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है तैसेही देहाभिमान से सुख दुःखरूप संसार उत्पन्न होता है और संसार समुद्र में डूबता है। जो हृदय संग से रहित होता है सो संसार समुद्र के पार हो जाता है। हे रामजी! जिसके हृदय में देहाभिमान है उसके चित्तरूपी वृक्ष में मोहरूपी अनेक शाखा उत्पन्न होती हैं और जिसका हृदय संग से रहित है उसका मोह लीन हो जाता है। उसको चित्तलीन कहते हैं। जिसका चित्त देहादिकों में बन्धवान् है उसको नाना प्रकार का भ्रमरूप जगत् भासता है और जिसका चित्त देहादिकों में बन्धवान् नहीं वह एक आत्मभाव को देखता है जैसे टूटी आरसी में अनेक प्रतिबिम्ब भासते हैं और साजी एकही प्रतिबिम्ब को ग्रहण करती है; तैसेही संशययुक्त चित्त में नाना

प्रकार का जगत् भासता है और शुद्ध चित्त में एक आत्माही भासता है। हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करते हैं और संग से रहित हैं ऐसे निर्मल पुरुष संसार से मुक्त हैं और जो सर्व व्यवहार को त्याग बैठते हैं पर तप भी करते हैं और चित्त आसक्त है सो बन्धन में है। जो हृदय में संग से रहित है वह मुक्त है और अन्तरचित्त किसी पदार्थ में बन्ध है वह बन्ध है। बन्ध और मुक्त का इतनाही भेद है। जिसका हृदय असंग है वह सब कार्यकर्ता भी अकर्ता है। जैसे नट सब स्वांगों को धरता भी अलेप है तैसेही वह पुरुष अलेप है। जो हृदय में अभिमान सहित है वह कुछ नहीं करता तो भी करता है। जैसे सर्वव्यवहार त्यागकर जीव शयन करता है और स्वप्ने में अनेक सुख दुःख भोगता है तैसेही वह सब कुछ करता है। चित्त के करने से कर्ता है चित्त के न करने से ही अकर्ता है। शरीर से करना सो करना नहीं और शरीर से न करना सो न करना नहीं। ब्रह्महत्या से भी असंसक्त पुरुष को कुछ पाप नहीं लगता और जो अश्वमेधयज्ञ करे तो कुछ पुण्य नहीं होता। जिसके चित्तसे सब आसक्तता दूर हुई है वह पुरुष मुक्तस्वरूपहै और धन्य २ है और जिसका चित्त आसक्त है वह बन्ध और दुःखी है। जो पुरुष आसक्तता से रहित है वह आकाश की नाईं निर्मल है और समभाव, एक अद्वैत आत्मतत्त्व में स्थित है॥

इति श्रीयो॰उपशमप्रकरणे अन्तरासङ्गविचारोनाम द्विषष्टितमस्सर्गः ६२॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! संग किसको कहते हैं? बन्धरूप संग किसको कहते हैं; मोक्षरूप संग किसको कहते हैं और संग बन्धनों से मुक्त किसका नाम है और किस उपाय से मुक्त होता है वह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देह और देही का जो विभाग है उसका त्याग करो और उसके साथ जो मिलकर करता है और देहमात्र में अपना विश्वास करता है कि, इतनाही मैं हूं; इसीको संग और बन्ध कहते हैं। हे रामजी! आत्मतत्त्व अनन्त है। देहमात्र में अहंभावना से आपको उतनाही मानना और उसमें अभिमान करके सुख की इच्छा करना इसी का नाम बन्ध है और इसी को संग कहते हैं। जिसको यह निश्चय हुआ है

कि, सर्व आत्माही है। मैं किसकी इच्छा करूं और किसका त्याग करूं;वह इस असंगसे जीवन्मुक्त कहाता है। अथवा न मैं हूं, न यह जगत् है; सर्वभाव अभाव को त्यागकर अद्वैतसत्ता में स्थित होने का नाम जीवन्मुक्त है। जिसे न कर्मों के त्याग की इच्छा है, न करने की इच्छा है और हृदय से कर्तृत्व-भाव नहीं इस संग का जिसने त्याग किया है वह असंग कहाता है। हे रामजी ! जिसको आत्मतत्त्व में निश्चय है और जो राग, द्वेष, हर्ष, शोक के वश नहीं होता है वह असंसर्ग कहाता है। जिसने सर्वकर्मों का फल यह समझकर त्याग किया है कि, मैं कुछ नहीं करता ऐसा जो मन से त्यागी है वह असंसर्ग कहाता है और उसको कोई कर्म बन्धन नहीं कर सक्ता पर सर्वसम्पदा उसको होती है और जो संसक्त पुरुष कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान सहित है उसको अनन्त दुःख उत्पन्न होते हैं। जैसे कोई गढ़े में गिरे और उसमें कण्टकों के वृक्ष हों तो उनसे वह कष्ट पाता है तैसे ही संसक्तपुरुष कष्ट पाता है। हे रामजी ! संग के वश से विस्तृत दुःख की परम्परा उत्पन्न होती है—जैसे गढ़े के वृक्ष से कण्टक उत्पन्न हों। हे रामजी ! जैसे नासिका में रस्सी डलाकर ऊंट, बैल और गधे भार उठाते फिरते हैं और मार खाते हैं तैसेही संसक्तपुरुष आशा-रूपी फांसी से बांधे हुये दुःख पाते हैं। वही संसक्तता का फल ऊंटादिक भोगते हैं; जल में रहते हैं; शीत उष्ण से कष्टवान् होते हैं और कुहाड़े के साथ काटे जाते हैं। इसी प्रकार संसक्तता का फल वृक्ष भोगते हैं; पृथ्वी के छिद्र में कीट होते हैं और अङ्ग पीड़ा से कष्ट पाते हैं। अन्नादिक उगते हैं; हँसिये के साथ काटे जाते हैं और हृदय में दुःख पाते हैं; फिर बोये जाते हैं और फिर काटते हैं सो संसक्तता का ही फल भोगते हैं; इसीप्रकार जो योनि पाते हैं और कष्टवान् होते हैं सो संसक्त हैं। हरे तृणों को हरिण खाते हैं और बधिक उनको बाण से मारता है तब कष्टवान् होते हैं। जो जीव तुझको दृष्टि आते हैं वे इस प्रकार संसक्तता से बांधे हुये हैं। संसक्तता भी दो प्रकार की है—एक बन्ध और एक बन्धन करने योग्य। जो तत्त्ववेत्ता है वह वन्दना करने योग्य है। हे रामजी ! जो आत्मतत्त्व से गिरा

है और देहादिक में अभिमानी हुआ है वह मूढ़ है और संसार में जन्म मरण को प्राप्त होता है; और जिसको आत्मतत्त्व का ज्ञान हुआ है और निष्ठा है वह वन्दना करने योग्य है उसको फिर संसार का जन्म मरण नहीं होता। जिसके हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म है; जिसको आत्मतत्त्व में निश्चय है और आत्मतत्त्व में संसक्त है और जो तीनों लोकों की पालना करता है वह वन्दना करने योग्य है। निरालम्ब सूर्य जो आकाश में विचरता है और सदा स्वरूपनिष्ठ है वह वन्दना करने योग्य है। महाप्रलयपर्यन्त जो जगत् को उत्पन्न करता है; जो सदा शिव-स्वरूप में संसक्त है और जो ब्रह्मारूप होकर विराजता है वह वन्दना करने योग्य है। जो लीला से स्त्री को अर्धाङ्ग रखता है, उसके प्रेमरूपी बन्धन से बँधा है; विभूति लगाता है सदा स्वरूप में संसक्त है और शंकर वपु धारकर स्थित है वह वन्दना करने योग्य है। इनसे आदि लेकर सिद्ध, देवता, विद्याधर, लोकपाल जिनकी स्वरूप में संसक्ति है वे सब मुक्तस्वरूप हैं और वन्दना करने योग्य हैं और जो देहादिकों में संसक्त हैं वे बन्ध हैं और जन्म, जरा और मृत्यु पाते हैं और कष्टवान् होते हैं। हे रामजी! जिनको शरीर में अभिमान है वे यदि बाहर से उदार भी दृष्टि आते हैं परन्तु जब भोगों को देखते हैं तब इस प्रकार गिरते हैं जैसे मांस को देख कर आकाश से चील पखेरू गिरते हैं तो वे वृथा यत्न करते हैं। हे रामजी! जो संसक्त जीव हैं वे बांधे हुये हैं; कोई देवतारूप धार स्वर्ग में रहते हैं और कोई मनुष्यलोक में रहते हैं; बहुत से सर्प आदिक होके पाताल में रहते हैं और तीनों लोकों में भटकते फिरते हैं। जैसे गूलर में मच्छर रहते हैं तैसे ही ब्रह्माण्ड में संसक्त जीव रहते और मिटजाते हैं। कालरूपी बालक का जीवरूपी गेंद है, वह उसे कभी नीचे को उछालता है और कभी ऊपर को उछालता है। हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब असत्यरूप है। मनरूपी चितेरे ने संगरूपी रङ्ग से शून्य आकाश में जो देहादिक जगत् लिखा है वह सब असत्यरूप है जैसे समुद्र में तरङ्ग उपजते और मिट जाते हैं तैसेही जीव ब्रह्माण्ड में उपजते रहते हैं। जिसका मन देहादिक

में संसक्त है वह तृष्णारूपी अग्नि से तृणों की नाईं जलता है। हे रामजी ! जो संसक्त पुरुष है उसके शरीर पाने की कुछ संख्या नहीं। मेरु के शिखर से लेकर चरणोंपर्यन्त यदि गङ्गा का प्रवाह चले तो उसके कणके चाहे गिने जासकें परन्तु संसक्त जीव के शरीर की संख्या नहीं होसक्ती जो कुछ आपदा है वह उनको प्राप्त होती है। जैसे समुद्र में सब नदियां प्राप्त होती हैं तैसेही सब आपदा उसको प्राप्त होती हैं। हे रामजी ! जो देहाभिमानी सदा विषयों की सेवना करते हैं वे रौरव, कालसूत्र आदिक नरकों में जलेंगे और जो कुछ दुःख के स्थान हैं वे सब उनको प्राप्त होंगे। जो असंग संगती चित्त हैं उन पुरुषों को सब विभूति प्राप्त होती हैं। जैसे वर्षाकाल में नदियां जल से पूर्ण होती हैं और मानसरोवर में सब हंस आन स्थित होते हैं तैसेही असंसक्तचित्त पुरुष को सब सम्पदा प्राप्त होती हैं। जिस पुरुष को देहाभिमान बढ़जाताहै उसे विष की नाईं जानो और जिसका देहाभिमान घटजाता है उसको अमृतरूप जानो। विष ज्यों २ बढ़ता है त्यों २ मारता है और अमृत ज्यों २ बढ़ताहै त्यों २ अमर होता है। हे रामजी ! जो पुरुष देहाभिमान का त्यागकर स्वरूपमें संसक्त होता है वह सुखी होता है और जिसके हृदय में दृश्य का संग है उसको यह संसक्तरूपी अङ्गार जलावेगा। जिसके हृदय में संग नहीं वह असंगरूपी अमृत से सुखी होवेगा और चन्द्रमा की नाईं शीतल मुक्तरूप होगा उसका अविद्यारूपी विसूचिका रोग नष्ट होकर वह शान्तरूप होगा ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो नाम त्रिषष्टितमस्सर्गः ॥ ६३ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! यह जो मैंने तुमको उपदेश किया है इसको विचार करके अभ्यास करो और सर्वदाकाल सर्वस्थान और सर्व कर्मों के कर्त्ता चित्त को देहादिक में मत संसक्त कर केवल आत्मचेतन में स्थित करो। हे रामजी ! किसी वस्तु को सत्य जानके चित्त न लगाओ। न आकाश में, न अध में, न ऊर्ध्व में, न दिशा में, न बाहर, न भीतर, न प्राण में, न उर में, न मूर्धा में, न तालुमें, न भौंह के मध्य में, न नासिका

में, न जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति में, न तम में, न प्रकाश में, न श्याम में, न रक्त में, न पीत में, न श्वेत में, न स्थिर में, न चल में, न आदि में, न अन्त में, न मध्य में, न दूर में, न निकट में, न चित्तादि अन्तःकरण में, न शब्द में, न स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में और न कलना, अकलना में चित्त लगावे। सब ओर से चित्त को रोककर चेतनतत्त्व में विश्राम करो द्वैतको लेकर चेतनतत्त्व का आश्रय न करो। हे रामजी! जब सब से निराश होगे और आत्मतत्त्व में स्थित होगे तब विगतसंग होगे और जीवका जीवतत्त्व चला जावेगा केवल चिदात्मा होकर स्थित होगे। तब सर्वव्यवहार करो अथवा न करो करते भी अकर्ता होगे अथवा इसका भी त्याग करो केवल चिदानन्द शान्तरूप जो तत्त्व है उसमें स्थित हो तब अद्वैतरूप तत्त्व स्वाभाविक भासेगा। जैसे बादलों के दूर हुये सूर्य स्वाभाविक भासता है तैसेही फुरने से रहित होनेसे चेतनतत्त्व भास आवेगा और जैसे प्रकाशरूप चिन्तामणि स्वाभाविक भासिआती है तैसेही आत्मप्रकाश स्वाभाविक भास आवेगा। फिर जो कुछ क्रिया तुम करोगे वह सब फलदायक न होगी। जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता तैसेही तुमको क्रिया न स्पर्श करेगी और चित्त आत्मगति निर्वाणरूप होगा और क्रियाकर्ता भी अकर्ता रहोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे शान्तसमाचारयोगोपदेशो नाम चतुःषष्टितमस्सर्गः ॥ ६४ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! असंसक्त पुरुष ध्यान करे अथवा व्यवहार करे वह सदा ध्यान में स्थित और शोक से रहित है। बाहर से यदि वह क्षोभमान दृष्टि आता है परन्तु हृदय उसका सर्वकलना से रहित है और वह सम्पूर्ण लक्ष्मी से शोभता है। हे रामजी! जिस पुरुष का चित्त चैत्य से रहित अचल है सो विगतज्वर है, उसको कुछ दुःख स्पर्श नहीं करता। जैसे जल कमलों को स्पर्श नहीं करता और औरों को निर्मल करता है और जैसे निर्मली मलीन जल को निर्मल करती है तैसेही वह जगत्को निर्मल करता है। जो आत्मतत्त्व में लीन है सो क्षोभमान भी दृष्टि आता है परन्तु क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब क्षोभमान

दृष्टि आता है परन्तु सूर्य को कदाचित् क्षोभ नहीं; तैसेही ज्ञानवान् का चित्त क्षोभायमान दृष्टि आता है पर क्षोभ उसे कदाचित् नहीं। हे रामजी! आत्मारामी पुरुष बाहर से मोर के पुच्छवत् चञ्चल भी दृष्टि आता है परन्तु हृदय से सुमेरु पर्वत की नाईं अचल है जिनका चित्त आत्मपद में स्थित हुआ है उनको सुख दुःख अपने वश नहीं कर सक्ते। जैसे स्फटिक को प्रतिबिम्ब का रङ्ग नहीं चढ़ता तैसेही ज्ञानवान् को सुख दुःख का रङ्ग नहीं चढ़ता। जिस पुरुष को परावर ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ है उसका चित्त रागद्वेष से रञ्जित नहीं होता। जैसे आकाश में बादल दृष्टि आता है परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् के चित्त को रागद्वेष स्पर्श नहीं करता। जो आत्मध्यानी है और जो परमबोध का साक्षात्कार होकर कलनामल से मुक्त हुआ है वह पुरुष असंसक्त कहाता है। हे रामजी! जो आत्मारामी पुरुष है उसको आत्मज्ञान के अभ्यास से संसक्तता निवृत्त हो जाती है अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता। जब चित्त परिणाम आत्मा की ओर होगा-जैसे चन्द्रमा परिणाम के वश से अमावस्या को सूर्यरूप हो जाता है तब चित्त दृढ़ परिणाम के वश से आत्मारूप हो जावेगा। जब चित्त चैत्य भाव से हीन होता है तब क्षीणचित्त कहाता है और शान्त कलना कहाता है। तब जाग्रत् भी सुषुप्तिरूप हो जाता है। उस अवस्था में जो कुछ क्रिया करता है सो फल का आरम्भ नहीं होती क्योंकि; वह तो निरहंकार होजाता है। जैसे यन्त्री की पुतली अहंकार से रहित चेष्टा करती है और संवेदन से रहित है उसको कोई दुःख नहीं होता; तैसेही निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख और निर्लेप कहाता है। हे रामजी! इष्ट-अनिष्ट; भाव-अभावरूपी जगत् चित्त में होता है। जब चित्त आत्मभाव को प्राप्त हुआ तब किससे किसको बन्धन हो तब तो सर्व आत्मतत्त्व होता है। जैसे नट सर्व स्वांग को धारता है और अपना अभिमान किसी में नहीं करता तैसेही सुषुप्ति बोध पुरुष जगत् की क्रिया करता है और बन्धवान् नहीं होता; जीवन्मुक्त होकर स्थित होता है। हे रामजी! सुषुप्ति बोध का आश्रय

करके जगत् की क्रिया करो पर क्रिया, कर्म, कर्ता त्रिपुटी की भावना से रहित हो तब तुमको कुछ दुःख न होगा ग्रहण और त्याग में अभिमान न होगा यथा प्राप्त में स्थित होगे। सुषुप्तिबोध में जो स्थित है सो कर्ता हुआ भी कुछ नहीं करता। ऐसे निश्चय को धार करके जैसे इच्छा हो तैसे करो। हे रामजी! ज्ञानवान् की चेष्टा बालकवत् होती है जैसे बालक अभिमान से रहित पालने में अङ्गों को हिलाता है तैसेही ज्ञानवान् अभिमान से रहित कर्म करता है और फल का स्पर्श उसे नहीं होता। जब चित्त अचित्तरूप हो जाता है तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप होजाता है और जो कुछ क्रिया करता है वह स्पर्श नहीं करती। हे रामजी! जब जगत् से सुषुप्ति दशा प्राप्त होती है तब हृदय शीतल हो जाता है; रागद्वेष कुछ नहीं फुरते और आत्मानन्द से पूर्ण होता है और जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही वह शोभता है। जो सुषुप्ति बोध में स्थित है वह महातेजवान् होता है और आत्मानन्द से पूर्ण चन्द्रमा की नाईं होजाता है। हे रामजी! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्था में स्थित है वह संसार के किसी क्षोभ से चलायमान नहीं होता—जैसे पर्वत सर्वदा काल में क्षोभायमान नहीं होता और भूकम्प में सब वृक्षादिक चलायमान होतेहैं पर अस्ताचल पर्वत कम्पायमान नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् चलायमान नहीं होता। जैसे पर्वत सब काल में सम रहता है और तरु उगके गिर पड़ताहै पर्वत ज्यों का त्यों रहताहै तैसेही ज्ञानवान् अनेक प्रकार की क्रिया में सम रहताहै। हे रामजी! ऐसी सुषुप्तिदशा अभ्यासयोग से प्राप्त होती है। जब यह दशा प्राप्त होती है तब उसको तत्त्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं सो परमानन्दरूप है उसमें सब दुःख नाश होजाते हैं और असंसक्त होजाता है। जब मन का मननभाव निवृत्त होजाता है तब ज्ञानवान् को परमसुख उदय होता है और उससे वह परमानन्द होजाता है। जो इस संसाररचना को लीलारूप देखताहै और सर्वशोकसे रहित निर्भय होताहै उससे संसारभ्रम दूर होजाताहै। जब तुरीयापद में प्राप्त होताहै तब संसारमें फिर नहीं गिरता। जो यत्नवान् पुरुष परमपावन पद में स्थित हुये हैं वे संसार की अवस्था को देखकर हँसते हैं।

जैसे पहाड़पर बैठा पुरुष नगरको जलता देखकर हँसताहै तैसेही ज्ञानवान् आत्मानन्द को पाकर संसार के कार्यों में दुःख जानकर हँसता है। हे रामजी! तुरीया अवस्था में स्थित होनेसे अविनाशी होताहै और आनन्द-रूप आनन्द कलना से आनन्द कलना है। जब ऐसे तुरीयातीतपद को प्राप्त होता है तब जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होता है और अभिमान आदिक कलना से रहित परमज्योति में लीन होताहै। जैसे नमक की गोली समुद्रमें जलरूप होजाती है तैसेही वह आत्मरूप होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तचिकित्सानाम पञ्चषष्टितमस्सर्गः॥ ६५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जबतक तुरीयापद में स्थित रहता है तबतक केवल जीवन्मुक्त होता है और इससे उपरान्त विदेहमुक्त तुरीयातीतहै सो वाणी का विषय नहीं। जैसे आकाशको भुजासे कोई नहीं पकड़ सक्ता तैसेही तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं। तुरीयातीत पदसे विश्रान्त भी दूर है विदेह मुक्त से पाता है। अब तुम कुछकाल ऐसी सुषुप्ति अवस्था में स्थित होरहो, फिर परमानन्द पद में स्थित होना। हे रामजी! तुरीयावस्था में जो स्थित हुआ है वह निर्द्वन्द्वभाव को प्राप्त हुआ है। जब तुम सुषुप्ति अवस्था में स्थित होगे तब जगत् के कार्यभी करते रहोगे और सदा पूर्ण रहोगे और तुमको उदय अस्त का भाव कदाचित् न प्राप्त होगा। जैसे मूर्ति का लिखा चन्द्रमा उदय अस्त को नहीं प्राप्त होता है तैसेही तू उदय अस्तभाव को न प्राप्त होवेगा। हे रामजी! इस शरीरको अपना जानकर जीव रागद्वेष में जलता है और जिस पदार्थका सन्निवेश होता है उसके नष्ट हुये नष्ट होजाताहै। जैसे मृत्तिका का अन्वय घट में होता है पर घट के नाश हुये मृत्तिका का नाश नहीं होता तैसेही तुम भ्रम को मत अङ्गीकार करो। तुम सदा ज्यों के त्यों हो तुम्हारा सन्निवेश इसमें कुछ नहीं। इससे ज्ञानवान् देह के नाश हुये शोकवान् नहीं होता और देह के स्थित हुये सुखी भी नहीं होता क्योंकि; उसका देह के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। जो तत्त्वदर्शी पुरुष है वह व्यर्थ प्राप्तिमें

निर्दोष होकर विचरता है और अभिमानादिक विकारों से रहित निर्मली आकाशवत् है। जैसे शरत्काल की रात्रिमें चन्द्रमा से आकाश निर्मल होता है तैसेही मन की वृत्तिविकारों से रहित होकर आत्मपद में स्थित होती है-संसार की ओर नहीं गिरती। जैसे योग, मन्त्र, तप और सिद्धि से सम्पन्न पुरुष आकाश में उड़ताजाताहै वह फिर पृथ्वीपर नहीं गिरता। हे रामजी! तुमभी अपने प्रकृतभाव में स्थित होकर यथाप्राप्त क्रिया को करते निर्द्वन्द्व रहो। तुमभी अब स्वरूप के ज्ञाता हुये हो और परमपद में जागकर अपने स्वरूप को प्राप्त हुये हो इससे पृथ्वी में विशोकवान् हो विचरो तब इच्छा से अनिच्छा को त्यागकर शीतल, प्रकाश, अन्धकार, तप्त और मेघ से रहित शरत्काल के आकाशवत् निर्मल शोभोगे। हे रामजी! यह जगत् चिदानन्दस्वरूप है और आदि अन्त से रहित है। जो अहं त्वं आदिकभ्रम से रहित है उसमें स्थित हो। आत्मा केवल अव्यक्त और चिन्तनासे रहित है उसका शरीर के साथ सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा आदिक नाम भी उपदेश व्यवहार के लिये कहे हैं; वह तो नामरूप भेद और भय से रहित अशब्दपद है और वही जगत्रूप होकर स्थित हुआहै-जगत् कुछ भिन्न वस्तु नहीं। जैसे जल तरङ्गरूप हो भासताहै सो जल से भिन्न नहीं; तैसेही आत्मा से भिन्न जगत् नहीं और जैसे समुद्र सब जलरूप है जल से कुछ भिन्न नहीं; तैसेही सब जगत् आत्मरूप है भिन्न नहीं। जैसे जल और तरङ्ग में भेद नहीं और पट और तन्तु में भेद नहीं तैसेही ब्रह्म और जगत् में भेद नहीं। हे रामजी! द्वैत कुछ वस्तु है नहीं परन्तु मैं तेरे उपदेश के निमित्त द्वैत अङ्गीकार करके कहता हूं। यह जो शरीर है उसके साथ तेरा कुछ सम्बन्ध नहीं। जैसे धूप और छाया का सम्बन्ध नहीं होता और प्रकाश और तम इकट्ठे नहीं होते; तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। देह जड़ और मलीनहै और दृश्य असत्यहै; आत्मा निर्मल, चेतन और सत्य है तो उसका देहसे सम्बन्ध कैसे हो? जैसे शीत और उष्णका परस्पर विरोध है तैसेही आत्मा और देह का सम्बन्ध नहीं। जैसे वन में अग्नि लागे से जन्तु जलते हैं तैसेही भ्रम दृश्यरूप देह में अहंभाव करके

जीव जलते हैं। हे रामजी! जैसे दावाग्नि में कुबुद्धि जल बुद्धिकरे तैसेही अज्ञानी देह में आत्मबुद्धि करते हैं। जैसे मरुस्थल में सूर्य की किरणों में जल भासता है तैसेही आत्मा में देहभाव रखते हैं हे रामजी! चिदात्मा निर्मल, नित्य और स्वयंप्रकाश है और देह मलीन और अस्थि, मांस और रक्तमयहै इसके साथ आत्माका सम्बन्ध कैसे हो? आत्मा में देहका अभावहै—केवल एक अद्वैततत्त्व अपने आप में स्थित है उसमें द्वैतभ्रम कैसे हो? हे रामजी! स्वरूप से न कोई बन्धहै और न कोई मुक्तहै सर्वसत्ता एक आत्मतत्त्व स्थितहै और भीतर बाहर सब वही है। मैं सुखी हूं; मैं दुःखी हूं; मैं मूढ़ हूं इस मिथ्यादृष्टिको दूर से त्यागो और आपको केवल आत्मरूप जानकर स्थित हो। यह दृश्य परमदुःख देनेवाला है और इसमें दुःख प्राप्त होवेगा। जैसे तृण और पहाड़ की, और पट और पत्थर की एकता नहीं होती तैसेही आत्मा और शरीर की एकता नहीं होती। जैसे तम और प्रकाश का संयोग नहीं होता तैसेही देह और आत्मा का संयोग नहीं होता और दोनों तुल्य भी नहीं होते। जैसे शीत और उष्ण; और जड़ और चेतनकी एकता नहीं होती तैसेही शरीर और आत्माकी एकता नहीं होती। हे रामजी! शरीर जो चलता, बोलता है सो वायु के बल से चलता-बोलता है। आठ स्थानों में वायुके बल से, अक्षरों का उच्चार होताहै—उर, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नासिका, ओष्ठ, तालु यही आठ स्थान हैं। क, ख, ग और घ—इन चारों का उच्चार कण्ठ में होताहै; च, छ, ज और झ—इन चारों का तालु स्थान में उच्चार होताहै; ट, ठ, ड और ढ—इन वर्णोंका मूर्धा में उच्चार होताहै; त, थ, द और ध—इनका दांतों में उच्चार होताहै; प, फ, ब, भ और म—इन पांचोंका ओष्ठों में उच्चार होता है और ङ, ञ, न और ण—इनका नासिका में उच्चार होताहै। जिह्वामूल का जिह्वा में उच्चार होता है और जिस पदके आदि हकार हो वह हृदय से बोला जाता है। आठों स्थानों में इन वर्णों का वायु से उच्चार होताहै और सूक्ष्म नवस्वरका उच्चार होताहै पर आत्मा इनसे निर्लेप होता है। जैसे बांसुरी वायु से शब्द करती है तैसेही इन पांचतत्त्वों से शब्द होता है; इनमें

आत्माभिमान करना महामूर्खता है। नेत्रादिक इन्द्रियां भी वायु से चेष्टा करती हैं; इससे इस भ्रम को त्याग कर आत्मपद में स्थित हो–आत्मा आकाशवत् सबमें पूर्ण है। जैसे आकाश सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां आदर्श होता है वहां प्रतिबिम्ब होकर भासता है तैसेही आत्मा सब ठौर में पूर्ण है परन्तु जहां चित्त होता है वहां भासता है। हे रामजी! जहां वासना से चित्तरूपी पक्षी जाता है वहां आत्मा को ऐसा अनुभव होता भासता है कि, मैं यहां हूं। जैसे जहां पुष्प होता है वहां सुगन्धभी होती है; तैसेही जहां चित्त होता है वहां अहंभाव भी होता है। जैसे आकाश सब ठौर में है परन्तु जहां प्रतिबिम्ब होता है वहां भासता है और जैसे जल सब पृथ्वी में है परन्तु भासता वहीं है जहां खोदाजाता है तैसेही आत्मा सब ठौर पूर्ण है परन्तु भासता वहीं है जहां चित्त है। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब सब ठौर है परन्तु जहां आदर्श अथवा जल है वहां भासताहै तैसेही आत्मा जहां तहां पूर्ण है परन्तु चित्त के अहंभावसे भासता है। आत्मा का प्रतिबिम्ब चित्तही में भासताहै और वह चित्त आत्मा की सत्ता से जगत्रचना फैलाता है व जैसे सूर्य की किरणें धूप को फैलाती हैं। हे रामजी! भूतों का कारण अन्तःकरणही है; आत्मतत्त्व तो अतीत है; आदिकारण नहीं है वास्तवमें कारण है। जगत् जो सत् भासता है सो अविचार से भासता है। उसी के निवृत्त का उपाय आत्मज्ञान है। हे रामजी! संसार का कारण अन्तःकरण है और असम्यक्ज्ञान से सत्यरूप भासता है जैसे मरुस्थल में असम्यक्ज्ञान से जल भासता है। जब यथार्थज्ञान होता है तब जगत् का कारण चित्तसे नष्ट होजाता है जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञान से चित्त नष्ट होजाता है। संसार का कारण अपना चित्तही है इसी का नाम जीव, अन्तःकरण, चित्त और मन है। रामजी ने पूछा, हे महा आनन्द के देनेवाले! इतनी संज्ञा चित्त की कैसे हुई हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्वभावरूप एक परमात्मतत्त्व है। जैसे समुद्र, नदियां, तरङ्गादि संज्ञा एक जलही धरता है तैसेही चित्तादिक अनेक संज्ञा को आत्मा धारता है पर सदा एकरूप है; संवेदन फुरने से

अनेक रूप धरता है। जैसे एक जल कहीं तरङ्ग, कहीं बुद्बुदे, कहीं जल, कहीं चक्र और कहीं स्थिर—इतनी संज्ञाको धारताहै परन्तु सबही जलरूपहै तैसेही सर्वशक्ति आत्मा सब शरीरों में सर्वरूप होताहै। जब स्पन्दकलना दूर होती है तब शुद्धस्वरूप हो भासता है और जहां अज्ञान संसरने को अङ्गीकार करता है तहां वही अनन्त आत्मा जीव कहाता है। जैसे केसरीसिंह पिंजड़े में फँसता है तैसे ही यह जीवरूप होता है। हे रामजी! जहां अहंभाव फुरता है वहां जीव कहाताहै; जहां निश्चय वृत्ति से फुरता है उसको बुद्धि कहते हैं; संकल्प विकल्प से मन, चिन्ता करने से चित्त, और प्रकृतिभाव से प्रकृति कहाता है। हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है वह जड़ कहाता है। और चेतन है सो जीव कहाता है। जड़ जो दृश्यभाव से संवित्भाग है और अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभाव से सिद्ध होता है; इनके जो मध्य है सो परमात्मा तत्त्व है सो नानारूप हो भासता है। बृहदारण्यउपनिषद् और वेदान्तशास्त्रों में बहुतप्रकार से जीवका रूप कहा है इससे भिन्न संज्ञा शास्त्रकारों ने कल्पनाकर कही है सो वृथा कल्पनाहै। जबतक अहंभाव से चित्त संसरता है तबतक जगत्भ्रम होता है—जैसे जबतक सूर्य है जबतक प्रकाश होता है और जब सूर्य अस्त होताहै तब प्रकाश जातारहता है तैसेही जब चित्त का अभाव हुआ तब जगतभ्रम जाता रहता है। देह में आत्मबुद्धि करनी महामूर्खता है क्योंकि; यह अधोर्ध्वसंयोग है जो आत्माका ऐसे संयोग न हो तो देह के नाशहुये आत्मा भी नाश होजावे पर देह के नाश हुये आत्मा का तो नाश नहीं होता। जैसे वृक्ष के पत्तों के नाशहुये वृक्ष का नाश नहीं होता और घट के नाश हुये आकाश का नाश नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे पुरातन वस्त्र को त्यागकर पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है तैसेही आत्मा पुरातनशरीर को त्यागकर नूतन शरीर अङ्गीकार करता है। इसीका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं पर शरीरके नाशहुये आत्माका नाश तो कुछ नहीं होता। हे रामजी! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है उसका शरीर जब छूटताहै तब उसका चित्त चिदाकाश में लीन होजाताहै और जिसका

चित्त वासना सहित है वह एक शरीर को त्यागकर और शरीर पाता है। जो देह के नाश हुये आपको नाश मानता है वह मूर्ख है–जैसे एक स्थान में अज्ञान से वैताल भासता है और जैसे माता के स्तनों में मूर्ख बालक को वैताल भासता है तैसेही अज्ञान से आत्मा में मृत्यु भासती है जो इसका आत्मत्व नाश हो अर्थात् चित्त नाश हो जावे और फिर न फुरे तो आनन्द हो। जो शरीर के नाश हुये आत्मा का नाश कहते हैं वे मूढ़ हैं और मिथ्या कहते हैं। जैसे कोई देश से देशान्तर जाता है तो उसका अभाव नहीं होता तैसेही एक शरीर को त्यागकर और शरीर को प्राप्त होता है तो आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे जल में तरङ्ग फुरके फिर लीन होकर और ठौर में जा फुरते हैं तैसेही आत्मा एक शरीर को त्यागकर और को धारता है। जैसे पक्षी उड़ता २ दूर जाता है तब दृष्टि नहीं आता परन्तु नाश नहीं होता तैसेही शरीर के नाश हुये आत्मा और ठौर प्रकट होता है नाश नहीं होता। हे रामजी! वासना के वश से यह जीव एक शरीर को त्यागकर और शरीर को प्राप्त होता है। इसी प्रकार वासना के अनुसार जीव फिरताहै। वासनारूपी रस्सी से बँधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानों में भटकता है और कभी ऊर्ध्वलोक और कभी मनुष्यलोकमें घटीयन्त्र की नाईं भ्रमताहै। हे रामजी! जीव के हृदय में जो वासना होती है उसीसे जरा, मृत्यु, जन्म आदि का दुःख पाताहै और कमलरूपी भार उठाकर कभी स्वर्ग, कभी पाताल और कभी मध्यस्थान में जाता है शान्ति कदाचित् नहीं पाता। इससे हे रामजी! अविद्यारूपी जो संसारहै इसको भ्रमरूप जानकर इसकी वासना को त्याग करो और अपने स्वरूप में स्थित हो। इतना कहकर बाल्मीकिजी बोले कि, इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ तो सब सभा स्नान के निमित्त उठी और परस्पर नमस्कार करके अपने २ स्थान को गये फिर रात्रि बिता के सूर्य की किरणों के निकलते ही आ बैठे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमस्सर्गः॥ ६६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! आत्मा देह के उपजे से नहीं उपजता और नाश हुये से नाश नहीं होता इसलिये तुम निष्कलङ्क आत्मा हो; तुमको देह के साथ सम्बन्ध कदाचित् नहीं। जैसे कुञ्ज में फूल और फल और घट में घटाकाश होता है सो परस्पर भिन्नरूप होते हैं, एक के नाश हुये दूसरे का नाश नहीं होता; तैसेही देह के नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता। जो देह के नाश में अपना नाश मानता है वह मूर्ख जड़ है; उस अर्धचेतना को धिक्कार है। हे रामजी! जैसे रथ, रस्सी और घोड़े का स्नेह से रहित संयोग होता है तैसेही शरीर और इन्द्रियों का संयोग है। हे रामजी! रथ टूटे से जैसे रथवायु की हानि नहीं होती तैसेही देह और इन्द्रियों के नाशहुये आत्मा का नाश नहीं होता। जैसे पृथ्वी, पहाड़ पर जल के प्रवाह का संयोग होताहै और वियोग भी होता है सो एक के नाश हुये से दूसरे का नाश नहीं होता तैसेही देह और इन्द्रियों का संयोग है पर इनके नाश हुये आत्मा का नाश नहीं होता जैसे एक स्थान में वैताल भासता है और भयवान् होता है तैसेही देह में अहंभाव से राग, द्वेष, सुख, दुःख पाता है। जैसे एक काष्ठ की अनेक पुतली होती हैं सो काष्ठ से इतर कुछ नहीं हैं तैसेही जो कुछ शरीर है वह पञ्चभूतों का है पञ्चभूतों से भिन्न कुछ वस्तु नहीं। जब यह पञ्चभूतों का शरीर पञ्चभूतों में लीन होता है तब उसको मृतक हुआ कहतेहैं। यह आश्चर्य है जो प्रत्यक्ष पञ्चभूतों का शरीर है उसमें आत्मभावना श्वान करते हैं और फिर हर्ष कर शोक को प्राप्त होता है-इसीसे मूर्ख है। हे रामजी! न कोई पुरुष है और न कोई स्त्री है पर इनके निमित्त मूढ़ रुदन करते हैं। जैसे मृत्तिका के हाथी घोड़ा आदिक खिलौने विचित्र रचना होती है और उसकी प्राप्ति में अज्ञानी बालक तुष्टवान् और खेदवान् होता है तैसेही अज्ञानी पञ्चभौतिक रचना देखकर उसकी प्राप्ति में रागद्वेष करता है ज्ञानवान् को सब भूत पदार्थ भ्रांतिमात्र भासते हैं। जैसे माटी के पुरुषों को आपस में मिलने से रागद्वेष कुछ नहीं होता तैसेही बुद्धि, इन्द्रियां, मन और आत्मा का जो मिलाप है इससे तुमको राग द्वेष कुछ नहीं होता। जैसे पाषाण

का पुतलियां मिलती हैं तो उनको स्नेहबन्धन कुछ नहीं होता तैसेही देह, इन्द्रियां, प्राण और आत्मा का आपस में स्नेह बुद्धि से रहित है। इससे तुम स्नेह से रहित हो रहो; शोक काहे को करते हो। जैसे तृण और जल के तरङ्ग का संयोग होता है तो तृण इधर उधर जाता है और जल को कुछ हर्ष शोक नहीं होता तैसेही देहभूत आत्मा का योग है इनके मिलाप और बिछुरे का दुःख सुख कुछ नहीं होता। आत्मा और अनात्मा, देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदिक विलक्षण भाव है और परस्पर इनके क्षय और उदय में हर्ष शोक कुछ नहीं परन्तु चित्त के उदय से अनात्मा धर्म आत्मा में प्रतिबिम्बित भासता है। तुम तत्त्वबोध का विचार करके चित्त को त्याग अपने स्वरूप में स्थित हो—जैसे जल तरङ्गभाव को त्यागकर अपने स्थिर स्वभाव को प्राप्त होता है। जब तुम अपने अक्षोभ-भाव को प्राप्त होगे तब भौतिक देह से आपको भिन्न जानोगे। जैसे वायु-मण्डल को प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमण्डल को देखता है तैसेही तुम आत्मपद को स्थित होकर देहादिक भूतों को देखोगे। हे रामजी! तुम देहादि भूतों को देखके त्याग करो और अतीत अजन्मा पुरुष हो रहो तब तुम परम प्रकाश को पावोगे। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य के उदय हुये परम प्रकाश को प्राप्त होता है तैसेही जब बोध करके द्रष्टा, दर्शन, दृश्यभाव तुम्हारा जाता रहेगा तब तुम अपने भाव को ज्यों का त्यों जानोगे। जैसे मनुष्य मद्य से मत्त होजाता है और मद्य के उतरे से आपको ज्यों का त्यों जानता है और मद्यभाव को स्मरण करता है तैसेही स्मरण करोगे। आत्मतत्त्व का जो स्पन्द फुरना हुआ है उसीका नाम चित्त है सो अवस्तुरूप है। जैसे समुद्र में तरङ्गभाव उदय होता है सो कुछ वस्तु नहीं तैसेही चित्तादिक कुछ वस्तु नहीं भ्रान्तरूप है। इस प्रकार जानकर महाबुद्धिमान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुये हैं और महाशान्तपद की प्राप्ति में बिचरते हैं। जैसे रत्नमणि की किञ्चन नाना प्रकार की लहर होती है सो मननकलना से रहित चमत्कार हैं तैसेही मनुष्यों में जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं उनका व्यवहार कलना से

रहित होताहै जैसे कूप में प्रतिबिम्ब पड़ता है और आकाश में धूलि उड़ती भासती है पर आकाश मलभाव को नहीं प्राप्त होता तैसेही ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहार में कर्तृत्व के अभिमान को नहीं प्राप्त होता। जैसे मेघ के आने जाने से समुद्र को रागद्वेष नहीं होता तैसेही आत्मा ज्ञेय पुरुष को भोगों के आने जाने में रागद्वेष नहीं होता हे रामजी! जिस मन में जगत् के किसी पदार्थ की मननवासना नहीं फुरती उस चित्त में जो कुछ फुरना भासता है सो विलासस्वरूप जानो वह उसको बन्धन का कारण कुछ नहीं होता और जिस चित्त में अहं त्वं आदिक जगत् की भावना है परन्तु हृदय से उसकी सत्यता बुद्धि है उससे वह दृश्य, द्रष्टा और दर्शन सम्बन्ध तीनोंकालों संयुक्त जगत्को फैलावेगा। जो कुछ दृश्यहै वह असत्रूपहै और जो सत्य है सो एक अव्यक्तरूपहै। उसका आश्रय करके अलेप हो तब हर्ष शोककी दशा कहां है? जो कुछ दृश्यजगत् भासता है वह सब असत्रूपहै और जो सत्यहै वह सदा ज्योंका त्यों है। असत्रूप दृश्य के निमित्त तुम क्यों वृथा मोहको प्राप्त होते हो। असम्यक् दर्शनको त्यागकर सम्यक्दर्शी हो। हे सुलोचन, रामजी! जो सम्यक्दर्शी हैं वे मोह को नहीं प्राप्त होते दृश्य और दर्शन इन्द्रियों के साक्षित्वसम्बन्ध में अर्थात् विषयेन्द्रिय के साक्षिरूप आनन्द का जिसे सुख है वो परब्रह्म कहाता है और अनुत्तम सुख से जो उस संवित् में स्थितहै वह ज्ञानवान्है उसको मोक्ष प्राप्तहै। जो दृश्य दर्शन के मिलने में स्थित होताहै उस अज्ञानी को वह संवित् संसारभ्रम दिखाती है। दृश्य-दर्शन में जो अनुभवसत्ता है वह सुख आत्मरूप है, जो दृश्य के साथ लगा है वह बन्ध है और जो दृश्य से मुक्त हो संवित् में स्थित है वह मुक्त कहाता है। हे रामजी! दृश्य-दर्शन के सम्बन्ध में जो मध्य संवित् है वह अनुभवगोचर है; उस संवित् का आश्रय करके जो दृश्य दर्शन मुक्त है वह संसारसमुद्र से तरेगा। यह सुषुप्तिरूप अवस्था है; इसको प्राप्त हुआ परम प्रकाश को प्राप्त होता है और इसीको मुक्त कहते हैं। जो दृश्य दर्शन से मुक्तबुद्धि है वह मुक्त कहाता है और जो दृश्य दर्शन के साथ बँधा है वह बन्ध है। अन्य सबोंका अनुभव करनेवाला आत्मा है,

वह न स्थूल है, न अणु है; न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है; न चेतन है, न जड़ है; न सत्य है, न असत्य है; न अहं है, न त्वं है; न एक है, न अनेक है; न निकट है, न दूर है; न अस्ति है, न नास्ति है; न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है; न सर्व है, न असर्व है; न पदार्थ है, न अपदार्थ है; न पञ्चभौतिक है, न अपञ्चभौतिक है; जो कुछ दृश्यजाति है सो मनसहित षट् इन्द्रियों से भावको प्राप्त होता है। जो इनसे अतीत है वह इनका विषय नहीं। क्योंकि, निष्किञ्चनरूप है। यह भी सब वही रूप है और ज्यों का त्यों जाने से सब आत्मारूप है। जगत् अनात्मरूप कुछ नहीं, सम्यक्ज्ञान से ऐसे भासता है। यह जो कठिनरूप पृथ्वी, द्रवतारूप जल, स्पन्दरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि और अवकाशरूप आकाश भासते हैं वे सब आत्मरूप हैं। जो कुछ वस्तु–अवस्तुरूप जगत् भासता है सो आत्मसत्ता से भिन्न नहीं। आत्मासे भिन्न जगत् को मानना उन्मत्त चेष्टा है और मूर्ख मानते हैं। महात्मा पुरुषों को कालकलनारूप जगत् सब आत्मरूप है। कल्प से आदि लेकर अन्तपर्यन्त सब आत्मा का चमत्कार है; ऐसे जानकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो और संसारसमुद्र से तर जावो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम सप्तषष्टितमस्सर्गः॥ ६७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह जो मैंने तुझको द्वैत के त्याग की विचारदृष्टि कही है इस विचार से अपना जो आत्मस्वभाव है सो प्राप्त होता है, जैसे बुद्धिमान् को उपासना अभ्यास से चिन्तामणि प्राप्त होती है। इसके उपरान्त एक और भी परम दृष्टि सुनो जिससे मनुष्य अचल आत्मस्वरूप को देखता है वह यह है कि, मैं ही आकाश, दिशा, सूर्य, अध, ऊर्ध्व, देवता, दैत्य, प्रकाश, तम, मेघ, पर्वत, पृथ्वी, समुद्र, पवन, धूलि, अग्नि आदिक स्थावर जङ्गम जगत् हूं। हे रामजी! सर्व जगत् आत्मा ही है तो अहं और त्वं से भिन्न और अनेक और एक कैसे हो। जिसके हृदय में ऐसा निश्चय होता है उसको सब जगत् आत्मरूप भासता है और वह पुरुष हर्षशोक नहीं पाता। सब जगत् मनोमात्र है तो अपना

और पराया क्या कहिये ? ज्ञानवान् को आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता इससे वह हर्ष विषाद को नहीं प्राप्त होता। हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकार के हैं। दो प्रकार का तो सात्त्विक निर्मल है; तत्त्वज्ञान से प्रवर्त्तता है और मोक्षदायक परमार्थरूप है; और तीसरा संसार दिखाता है। एक तो अहं है जो तुमको कहाहै कि, सर्व मैंही हूं—मुझसे अन्य कछ नहीं और दूसरा यह है कि, परम अणु जो सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है सो साक्षीभूत अव्यक्तरूप मैं हूं—ये दोनों मोक्षदायक हैं और तीसरा यह कि, आपको नख, शीशपर्यन्त देहरूप जानना सो दुःखदायक और संसार का कारण है शान्तिसुख का कारण नहीं। अथवा इन तीनों को त्यागकर स्थित हो यह सर्वसिद्धान्त का कारण है। जैसे तुम्हारी इच्छा हो तैसे करो पर आत्मा सबसे अतीत और सबसे परे है तौ भी अपनी सत्ता से जगत् को पूर्ण कररहा है और सबका प्रकाशकरूप वही है। वह अपने अनुभव से सदावस्तु उदयरूप है और किसी प्रमाण का विषय नहीं; अनुमान आदिक और सत्यवादसे रहितहै और सर्वकाल सबको अपने प्रकाशसे प्रकाशताहै। यह जो दृश्यजगत् है वह सब आत्मा भगवान् है और दृश्य, दर्शन, सत्, असत्, सूक्ष्म, स्थूल सबसे आत्मा रहित है। वही सर्वरूप, सबकी वाणी कहने में भी वही आता है और किसी से कहाभी नहीं जाता। जो नानात्व भासता है वह भी उससे अन्य नहीं। आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रों ने उपदेश के निमित्त कल्पी हैं। वह सर्वत्र, तीनोंकालों में स्थित और प्रकाशरूप है। सूक्ष्मभाव और स्थूलभाव से वही है और सब ठौर व्यापक अपने फुरनेसे जीवरूप हो भासता है। जब चित्त संवित् स्फूर्त्ति-रूप होती है तब जीवादिकरूप हो भासता है और फुरने से रहित द्वैतकलना मिटजाती है—जैसे आकाश में जब पवन फुरता है तब उष्ण शीत हो भासता है तैसेही फुरने से जीवादिक भासता है। आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है और कभी किसी भाव को प्राप्त नहीं होता। जैसे पदार्थ अपने भाव में स्थित हैं तैसेही परमेश्वर आत्मा अपने स्वभाव में स्थित है परन्तु उसका भासना पुर्यष्टका में होता है। जैसे वायु विना धूलि नहीं

उड़ती और अन्धकार में प्रकाश विना पदार्थ नहीं भासता तैसेही पुर्यष्टका विना आत्मा नहीं भासता पुर्यष्टका में प्रतिबिम्ब भासता है। जैसे सूर्य के उदय हुये सर्वजीवों का व्यवहार होता है सूर्य के अस्त हुये से लीन होजाता है पर सूर्य दोनों से अलेप है; तैसेही आत्मा सबका प्रकाशक और निर्लेप है। शरीरों के व्यवहार होने और इष्टता में वह ज्यों का त्यों है; न उपजता है, न विनशता है, न वाञ्छा करता है, न त्यागता हैं, न मुक्त है, न बन्ध है; सर्वदा सर्वप्रकार ज्यों का त्यों एकरूप है। उस के अज्ञान से जीव अनात्मभाव को प्राप्त होता है—जैसे रस्सी में सर्प भासता है—और केवल दुःखों का कारण होताहै। आत्मा आदि-अन्त से रहित और अज—अविनाशी है और अपने आपसे भिन्न नहीं हुआ इससे वाञ्छा, त्याग, देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित है बन्ध नहीं और जो बन्ध नहीं तो मुक्त कैसे हो? सर्वकलना से रहित आत्मा सबका अपना आप है पर अविचार से मूढ़ रुदन करते हैं; इससे मैंने जो तुमको उपदेश किया है उसको आदि से लेकर अन्तपर्यन्त भलीप्रकार विचार देखो और इस युक्ति से शोक का त्यागकरो—मूर्खों के समान लोगों में शोक मतकरो। हे सुमते! बन्ध मोक्षकी कल्पना का त्यागकरो। न बन्धके त्यागकी इच्छा करो और न मोक्ष के प्राप्ति की इच्छा करो, यन्त्री की पुतलीवत् अभिमान से रहित चेष्टा करो—इसका नाम आत्मा मौन है। हे रामजी! मोक्ष कोई पदार्थ का नाम आकाश में नहीं और न पाताल में हैं; न भूमिलोकमें है—चित्त का निर्मल होना ही मोक्ष है। अनात्मा के साथ आपको मिलाना और उसमें आत्माभिमान करना यही मल है और इसका त्याग करना और शुद्ध आत्मा में चित्त का लगाना इसका नाम मोक्ष है। जब चित्त से गुणों में वृत्ति का त्याग हो और सम्यक् आत्मज्ञान हो उसीको तत्त्वदर्शी मोक्ष कहते हैं। हे रामजी! जबतक आत्मबोध नहीं होता तबतक यह दीन दुःखी होता है और जब आत्मा का निर्मल बोध होता है तब दुःखों से मुक्त होताहै इससे और उपायों को त्याग भक्ति करके मोक्ष की वाञ्छा करो और चिरकाल से जब इस बोध को साध चित्त विस्तृत पद

को प्राप्त हुआ तब दशमोक्ष की भी वाञ्छा नहीं करता एक मोक्ष क्याहै। हे रामजी! जीव को और कोई उपाय मोक्ष का नहीं; आत्मबोध को ही पाकर सुखी होगे। जब चित्त अचित्त होता है तब सब जगत्भ्रम मिट जाता है और जगत् भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्त्वही है; और जो वही है तो बन्ध किसको कहिये और मोक्ष किसको कहिये? बन्ध मोक्ष की कल्पना तुच्छ है उसका त्याग कर चक्रवर्ती हो पृथ्वी की पालना करो तो तुमको कर्तृत्व का स्पर्श कुछ न होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठेउपशमप्रकरणेआत्मविचारोनामाष्टषष्टितमस्सर्गः ६८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संकल्पसे ही जगत् उपजा है। अज्ञान से आपको शरीर जानता है और अपने संकल्प को उपजाके अपना स्वरूप जानताहै। जैसे कोई सुन्दरपुरुष हो और उसको देखेविना कुरूपजानेतैसे ही आत्मा के साक्षात्कार विना देहरूप आत्मा को जानता है कि, मैं देह हूं। ज्यों २ आत्मा का प्रमाद होता है त्यों २ देह में अधिक अभिमान होता है—जैसे ज्यों २ मद्यपान करता है त्यों २ उन्मत्त होता है। हे रामजी! यह नाना प्रकार का दृश्य अज्ञान से भासता है। जैसे सूर्य की किरणों से मरुस्थल में जल भासता है तैसेही असम्यक् ज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है। एक कलना के फुरन से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन्द्रियां और देह भासती है; एक फुरने की ही इतनी संज्ञा है। जैसे एक जलकी अनेकसंज्ञा होती हैं तैसेही एक फुरने की अनेकसंज्ञा हुई हैं। जो चित्त है सो अहंकार है; जो अहंकारहै वही मन है; और जो मन है वही बुद्धि है इसमें कुछ भेद नहीं। जैसे बरफ़ और शुक्लता और शीतलता में कुछ भेद नहीं तैसेही मन, बुद्धि आदिक में कुछ भेद नहीं एकके नाशहुये दोनोंका नाश होजाता है। इससे मन में जो कुछ कलनाहै उसका त्याग कर मोक्ष की इच्छा का भी त्यागकरो और बन्धनवृत्ति को भी त्यागकरो। हे रामजी! वैराग और विवेकका अभ्यासकरके मनको निर्मलकरो। जब मन निर्मल होगा तब मन का मननभाव नष्ट होजावेगा। जब यह फुरना फुरता है कि, 'मैं मुक्त होऊं' तब भी मन जग आताहै और मनके जागेसे

मननभी होआताहै। जब मननहुआ तब अपनेसाथ शरीरभी भासि आता है अनेक दुःखभी भासि आते हैं। हे रामजी ! आत्मतत्त्व सबसे अतीतहै और सर्वरूप भी वही है तब कौन बन्ध है और कौन मोक्ष है ? जब मन का मनन निवृत्त हुआ तब न कोई बन्ध है और न कोई मुक्त है—आत्मा सर्व-क्रिया से अतीत है। क्रिया भी इस प्रकार होती है कि, जैसे वायु के हिलनेसे वृक्ष से पत्र और फूल हिलते हैं तैसेही प्राणों से फुरने से हाथ पांव आदिक इन्द्रियां चेष्टा करती हैं। हे रामजी ! चित्तशक्ति सर्वव्यापी, सूक्ष्म और अचल है; वह न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती है, सदा स्थितरूप है। जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है और न वायुसे चलाया चलता है। हे रामजी ! जितने पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित भासते हैं। जैसे सर्वपदार्थों को दीपक प्रकाशता है तैसेही सबपदार्थों को आत्मा प्रकाश करता है। सबपदार्थों में एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है; और अहं त्वं आदिक कलना से रहितहै। जहां अहं त्वं आदिक कलना नहीं फुरती वहां सुख दुःखभी नहीं फुरता। जैसे वृक्षों और पहाड़ों से अहं त्वं शब्द नहीं फुरता तैसेही आत्मा में भी नहीं फुरते; इससे ज्ञानवान् में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते। हे रामजी ! आत्मा निरहंकार और निराकार उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवे ? आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व अज्ञान से भासता है—जैसे मरुस्थल में जल भासता है। हे रामजी ! अज्ञानरूपी मदिरा पान करके मनरूपी मृग मत्त हुआ है उससे वह सत् असत् का विचार नहीं करसक्ता—जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् ही सत् भासती है और मृग उसको सत् जानकर पान करने के निमित्त दौड़ता है; तैसेही यह जीव अरूप संसार को रूप जानकर दौड़ता है। जब आत्म-सत्ता का सम्यक्बोध होता है तब यह अविद्या नाश होजाती है। जैसे ब्रह्मणों के मध्य चाण्डाली आन बैठे और जब ब्राह्मण उसको पहिंचाने कि, यह चाण्डाली है तो वह छुपजातीहै तैसेही जब अविद्या को जाना तब वह नष्ट होजाती है। हे रामजी ! जब अविद्या को ज्यों की त्यों जाना तब अविद्यारूपी जगत् मन को नहीं खैंचसक्ता—जैसे मृगतृष्णा की नदी

को जब जाना तब तृषा हो तौ भी मनको जल नहीं खैंचसक्ता। हे रामजी! जब परमार्थसत्ता का बोध होता है तब मूल से वासना नष्ट होजाती है, जैसे दीप के उदय से अन्धकार नष्ट होजाता है तैसेही आत्मज्ञान से अविद्या वासनासहित नष्ट होजाती है। हे रामजी! अविद्या अविचार से सिद्ध है जब सत्शास्त्रों की युक्ति से विचार प्राप्त होता है तब अविद्या नाश होजाती है। जैसे बरफ़ का कणका धूप से गलकर जलमय होजाता है तैसेही विचार से अज्ञान नष्ट होजाता है। हे रामजी! देह जड़ है और आत्मा सदा चेतनरूप है; फिर जड़ देह के निमित्त भोगों की वाञ्छा करनी बड़ी मूर्खता है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस बन्धन को तोड़ डालते हैं। हे रामजी! आशारूपी फांसी को हृदय से काटो; जब आशारूपी आवरण दूर होगा तब पूर्णमासी के चन्द्रमावत् हृदय शीतल होजावेगा। तैसेही यह पुरुष भी तीन तापों से मुक्त शीतल होजाता है—जैसे पर्वतमें अग्नि लगे और उसके ऊपर जल की बहुत वर्षा हो तो वह तप्तता से मुक्त हो शान्तिमान् होताहै। हे रामजी! जैसे केसरी सिंह पिंजड़े को तोड़कर निकलता है तैसेही ज्ञानवान् पुरुष भोगवासना के बन्धन को तोड़ डालता है। हे रामजी! जैसे रङ्क को त्रिलोकी का राज्य मिलने से वह आनन्द को प्राप्त हो तैसेही ज्ञानवान् को आत्मा के साक्षात्कार हुये आनन्द प्राप्त होता है और वह परम निर्मल लक्ष्मी से शोभता है जब हृदय से आशारूपी मैल जाता है तब जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल शोभता है तैसेही वह शोभता है। हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपने आप में नहीं समाता—जैसे महाकल्प का समुद्र नहीं समाता और जैसे मेघ जल को त्यागकर मौन होजाता है तैसेही ज्ञानवान् आशा को त्यागकर आत्ममौन होजाता है। जैसे अग्नि लकड़ी को जलाकर धुयें से रहित अपने आपमें स्थित होजाती है तैसेही चित्त की वृत्ति से रहित हुआ आत्मपद में निर्वाण होजाता है जैसे दीपक निर्वाण होजाता है तैसेही चित्त निर्वाण हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है। जैसे अमृत को पानकर पुरुष आनन्दवान् होता है तैसेही वह परमानन्द से पूर्ण अपने आप में प्रकाशता है जैसे वायु से रहित दीपक प्रकाशता है

और शुद्ध मणि अपने प्रकाश से प्रकाशती है तैसेही ज्ञानवान् अपने आप से प्रकाशता है। मैं सर्वात्मा, सर्वगत, ईश्वर, सर्वाकार, निराकार, केवल चिदानन्द आत्मा हूं और सदा अपने आपमें स्थित हूं। हे रामजी! ज्ञानी अपने आपको ऐसे जानते हैं और पूर्व के व्यतीत हुये दिनको हँसते हैं। मैं तो अनन्त आत्मा हूं; माया के भ्रम से आप को कर्ता भोक्ता मानता था। ऐसे जानकर जो रागद्वेष से रहित परमशान्ति को प्राप्त होताहै उसके सब ताप निवृत्त होजाते हैं; उसकी सदा आत्मा में प्रीति रहती है; उसका चित्त सब ओरसे पूर्ण होजाता है; वह सबको पवित्र करनेवाला होता है; वह कामरूपी चक्र से मुक्त होकर जन्मों के बन्धन काटडालता है; राग-द्वेष आदिक द्वन्द्व और सर्वभय से मुक्त होता है; अविद्यारूपी संसारसमुद्र से तरजाता है; उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त होता है अर्थात् परमपद पाता है और फिर संसार के जन्म-मरण को नहीं प्राप्त होता है और उसके कर्मों का अन्त होजाता है। हे रामजी! ज्ञानवान् की क्रिया को देखकर और सब वाञ्छा करते हैं परन्तु औरों की क्रिया को देखकर ज्ञानवान् किसीकी वाञ्छा नहीं करता। वह सबको आनन्दवान् करता है और आप किसी से आनन्दवान् नहीं होता। वह न किसीको देता है, न लेता है, न किसी की स्तुति करता, न निन्दा करता है; न किसी उत्तम पदार्थों को पाकर उदय होता है और न अनिष्ट को पाकर नष्ट होता है और हर्ष-शोक से रहित है। उसने सब फल का त्याग कियाहै और सब उपाधि से रहित है और कर्तृत्व भोक्तृत्व से आपको न्यारा मानता है। ऐसा जो पुरुष है वह जीवन्मुक्त है। हे रामजी! जब तुम सब इच्छा त्यागकर मौन हो तब निर्विशेषभाव को प्राप्त होगे। जैसे मेघ जल का त्यागकर मौनभाव को प्राप्त होता है तैसेही तू मोक्षभाव को प्राप्त होगा। हे रामजी! जैसे कामी पुरुष स्त्री को कण्ठ में लगाकर आनन्दवान् होता है पर उसको ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा आनन्द निर्वासनिक पुरुष को होता है, फूल के गुच्छे से वसन्तऋतु ऐसी नहीं शोभती जैसे उदारबुद्धि आत्ममौनवान् शोभताहै; हिमालय पर्वत में प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा

निर्वासनिक पुरुष का मन शीतल होता है; मोतियों की माला से और केले के वन को प्राप्त हुआ भी ऐसा सुख नहीं पाता और चन्दनों के पान करनेवाला भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है; और चन्द्रमा के स्पर्श से भी ऐसा शीतल नहीं होता जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है। चन्द्रमा बाहर की तप्तता मिटाता है परन्तु भीतर की तप्तता निवृत्त नहीं करता पर निराशता से हृदय की तप्तता मिट जाती है और परम शान्ति को प्राप्त होता है। जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुष के संग से होती है तैसी और किसी उपाय से नहीं प्राप्त होती। हे रामजी! ऐसा सुख स्वर्ग में नहीं प्राप्त होता और न सुन्दर स्त्रियों के स्पर्श से होता है जैसा सुख निर्वासनिक को प्राप्त होता है। निर्वासनिक पुरुष उस सुख को प्राप्त होता है जिस सुख में त्रिलोकी के सुख तृणवत् भासते हैं। हे रामजी! आशारूपी कञ्ज के वृक्ष के काटने को उपशमरूपी कुल्हाड़ा है। जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है उसको सब पृथ्वी गोपद के समान तुच्छ भासती है; मेरु पर्वत एक टूटे वृक्ष के समान भासता है और दिशा डिब्बी के समान भासती हैं क्योंकि वह उत्तम पदको प्राप्त हुआ है और त्रिलोकी की विभूति तृण की नाईं तुच्छ देखता है। जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है वह जगत् को देखकर हँसता है और कदाचित् उसे जगत् के पदार्थों की कल्पना नहीं फुरती। तृणवत् जानकर उसने जगत् को त्याग दिया है और सदा आत्मतत्त्व में स्थित है उसको किसकी उपमा दीजिये उस पुरुष की उदय, अस्त, अहं त्वं आदिक कलना नष्ट होगई हैं और केवल आत्मस्वभाव को प्राप्त हुआ है। उस ईश्वर आत्मा को कौन तौल सकता है; जब दूसरा उसके समान हो तब तौले। हे रामजी! वह पुरुष सब सङ्कटों के अन्त को प्राप्त हुआ है। यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है। जैसे आकाश में भ्रम से दूसरा चन्द्रमा; मरुस्थल में नदी और मद्यपान से नगर भ्रमता भासता है; तैसेही यह मिथ्या जगत् भ्रम से भासता इसकी आशा मत करो। तुम तो बुद्धिमान् पण्डित हो मूर्खों की नाईं मोह को क्यों प्राप्त होते हो? यह मैं और यह मेरा अज्ञान से भासता

है; इस कलना को चित्त से दूर करो। यह वास्तव में कुछ नहीं, सब जगत् आत्मरूप है और नानात्व कुछ नहीं है जो सम्यक्‌दर्शी पुरुष है वह जगत् को एकरूप जानकर धैर्यवान् रहता है कदाचित् खेद नहीं पाता। हे रामजी! जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है और आत्मविचार से आत्मपद को प्राप्त हुआ है उसको देखकर मोहनेवाली माया भी भाग जाती है और निकट नहीं आती। जैसे सिंह के निकट मृग नहीं आता तैसेही ज्ञानवान् के निकट माया नहीं आती। सुन्दर स्त्रियां, मणि, कञ्चनादिक, धन और पत्थर, काष्ठ सब उसको तुल्य भासता है; भोगों से उसको सुख नहीं होता और आपदा से खेद नहीं होता; वह सदा ज्यों का त्यों रहता है। जैसे पर्वत वायु से चलायमान नहीं होता तैसेही वह पुरुष सुख दुःख से चलायमान नहीं होता। सुन्दर बाला स्त्री उसके चित्त को खींच नहीं सक्ती; कामदेव के चलाये बाण उसके ऊपर टुकड़े २ हो जाते हैं और रागद्वेष उसको खींच नहीं सकते। वह सदा आपको निराकार, अद्वैत, निष्क्रिय और निर्गुण जानता है और सुन्दर बगीचे, ताल, बेल, शय्या, इन्द्रियों के विषयभोग और दुःख देनेवाले उसको तुल्य हैं रागद्वेष को नहीं प्राप्त करते। जैसे पर्व में ऋतु के अनुसार मीठा और कटु फल होता है तो उसको किसी में रागद्वेष नहीं होता। अकस्मात् जो भोग प्राप्त होता है उसको वह भोगताहै परन्तु हर्ष और शोकवान् नहीं होता। हे रामजी! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्ट में चलायमान नहीं होता—जैसे वसन्तऋतु के आनेजाने में पर्वत सुख दुःख को प्राप्त नहीं होता। वह कर्मइन्द्रियों से कर्म करता है परन्तु उसमें आसक्त नहीं होता और बाहर दृष्टि से आसक्त भासता है परन्तु भीतर आसक्त नहीं होता। वह जो बाहर आसक्तदृष्टि नहीं आता परन्तु चित्त आसक्त है वह मग्न हो डूबता है—जैसे शुद्ध मणि कीचड़ में दृष्टि आती है तौ भी उसको कुछ कलङ्क नहीं और जो बीच से खोटी है वह यदि बाहर से उज्ज्वल भी भासती तौ भी सकलङ्क है; तैसेही जो चित्त से आसक्त है वह आसक्त है और जो चित्तभाव से आसक्त नहीं वह आसक्त नहीं। हे रामजी! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप, नित्य, शुद्ध

और परमानन्द स्वरूप है। जिस पुरुष को अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान है उसको विस्मरण नहीं होता। हे रामजी! जिसके शरीर से अहंभाव उठ गया है और इन्द्रियों से कर्म करता है तो वह करता भी नहीं करता और जिसके देह में अहंभाव है वह नहीं करता भी करता है। जैसे किसी को चिरकाल के उपरान्त बान्धव मिला विस्मरण नहीं होता तैसेही जिसने अपना स्वरूप जाना है उसको वह फिर विस्मरण नहीं होता। हे रामजी! जिनको शुद्धस्वरूप का सम्यक्ज्ञान होता है उनको भ्रान्तिरूप जगत् नहीं भासता—जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है पर जब भ्रम निवृत्त हुआ तब ज्यों की त्यों रस्सी भासती है सर्प नहीं भासता। जैसे मरुस्थल में जलबुद्धि निवृत्त हुये फिर जलबुद्धि नहीं होती, तैसेही आत्माके जाने से देह भाव नहीं होता। जैसे पहाड़ से नदी उतरती है सो फिर पहाड़ पर नहीं चढ़ती और सुवर्ण का खोट अग्नि से जला हुआ चाहे कीचड़ में डालिये तौभी खोटा नहीं होता तैसेही जब हृदय की चिद्ग्रन्थि टूटी तब गणों के व्यवहार में गांठ नहीं पड़ती अर्थात् बन्धायमान नहीं होता। जैसे वृक्ष से टूटा फल फिर नहीं लगता तैसे ही जिसका देहाभिमान टूटा है वह फिर नहीं होता और स्वरूप में अभिमान नहीं होता। जैसे लोहे के हथौड़ेसे पर को चूर्ण किया तो फिर वह नहीं फुरता। जिस पुरुष ने अविद्या को जाना है वह फिर उसकी संगति नहीं करता और जिस ब्राह्मण ने चाण्डालों की सभा जानी फिर वह उनकी संगति नहीं करता, तैसेही जब आत्मविचार से मनको चूर्ण किया तब फिर वह नहीं फुरता।-जिस पुरुष ने अविद्या-रूप जगत् को जानाहै वह फिर जगत् के पदार्थों में आसक्त नहीं होता। हे रामजी! विष जो मधुर जल से मिला हो तो जबतक जाना नहीं तब तक उसको कोई पान करता है और जब उसको जाना तब फिर पान नहीं करता तैसेही जबतक इस संसार को ज्यों का त्यों नहीं जाना तब तक इस के पदार्थों की इच्छा करता है पर जब जाना कि, यह माया-मात्र है तब इसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! सुन्दर स्त्री जो नाना

प्रकार के वस्त्र और भूषण सहित दृष्टिआती हैं उनको ज्ञानवान् जानता है कि, ये असत् मांस, रुधिर आदिक की पुतलियां बनी हैं और कुछ नहीं और जो उनकी इच्छा त्यागता है तो वह निवृत्त होजाता है। जैसे मूर्तिपर नील, पीत, श्यामरङ्ग लिखे होते हैं तैसेही उसके वस्त्र और केश हैं। हे रामजी! जिस पुरुष को आत्मा का साक्षात्कार होता है उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि नहीं होती। अवस्तु में वस्तुबुद्धि तब होती है जब वस्तुका विस्मरण होताहै सो ज्ञानवान् को तो सदा स्वरूपका स्मरणहै उसको अवस्तु में वस्तुबुद्धि कैसे हो? जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता। जैसे किसी पुरुष ने किसी के पास गुड़ रक्खा हो और वह खाजावे तो उसको वह दण्ड आदि दे सकेगा परन्तु उसका रस दूर नहीं करसक्ता, तैसेही जिसको आत्मा का अनुभव हुआहै उसको कोई कुछ नहीं कर सक्ता। हे रामजी! जैसे कुलटा नारी का किसी पुरुष से चित्त लगता है तो वह गृह का कार्य भी करती है परन्तु चित्त उसका सदा उसमें ही रहता है; तैसेही ज्ञानवान् क्रिया करता है परन्तु उसका चित्त सदा आत्मपद में रहता है और जैसे परव्यसनी नारी को उसका भर्ता दण्ड भी करता है पर तौभी स्पर्श का सुख उसके हृदय से दूर नहीं करसक्ता, तैसेही जिसको आत्मअनुभव हुआ है उसको कोई दूर नहीं करसक्ता और जो देवता और दैत्य दूर नहीं करसके तो औरों की क्या वार्त्ता है। जो बड़े सुख अथवा दुःखका अनुभवप्रवाह आनपड़े तौभी उनको खण्डन नहीं करसक्ता; कर्ता हुआ भी वह अकर्ता हुआ है। जैसे परव्यसनी नारी परपुरुष के संयोगसे दुःख पाती है परन्तु उसको स्पर्श के सुख का अनुभव हुआ है उसके संकल्प से अखण्ड अनुभव करती है उससे उसको दुःख नहीं भासता; तैसेही जिसको आत्मसुख हुआ है उसको दुःखसुख और कुछ नहीं भासता। हे रामजी! सम्यक्ज्ञान से जिसकी अविद्या नष्ट हुई है वह दुःख नहीं देखता। जो उसके अङ्ग काटे जावें तौभी उसको दुःख नहीं होता और शरीर के नष्ट हुये वह नष्ट नहीं होता सुख दुःख उसके नष्ट होगये हैं और सदा वह आत्मपद में

निश्चय रखता है। संकटवान् भी वह दृष्ट आता है परन्तु उसको संकट कोई नहीं। वह वन में रहे अथवा गृह में रहे; व्यवहार करे अथवा समाधि करे; वह सदा ज्यों का त्यों रहता है और उसको खेद कष्ट किसी प्रकार से नहीं होता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे नीरास्पदमौनविचारो नामैकोनसप्ततितमस्सर्गः॥ ६९॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! राजा जनक राजव्यवहार करता था परन्तु आत्मपद में स्थित था इससे उसको कलङ्क न हुआ और सदा विगतज्वरही रहा; तुम्हारा पितामह राजा दिलीप भी सर्व आरम्भों को करतारहा परन्तु रागद्वेष को न प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होके चिर-पर्यन्त पृथ्वी का राज्य करता रहा; राजा अज नाना प्रकार के युद्ध और राजव्यवहार की पालना करता हुआ सदा जीवन्मुक्त स्वभाव में स्थित था; राजा मान्धाता नाना प्रकार की युद्धचेष्टा करता था परन्तु सदा पर-मपद में निश्चित रहा और कदाचित् मोह को न प्राप्त हुआ; राजाबलि महात्यागी पाताल में राजव्यवहार को करता भी दृष्ट आया परन्तु स्वरूप के ज्ञान से सदा शान्तरूप जीवन्मुक्त होकर विचरता था; नभचर दैत्यों का राजा सदा नानायुद्ध आदिक क्रिया में रहा करता था और देवताओं के साथ सदा विरोध रखता था परन्तु हृदय में उसके कुछ ताप न था इन्द्र ने युद्धमें वृत्रासुर दैत्य को मारा परन्तु सदा शीतल रहा कदाचित् क्षोभ को न प्राप्त हुआ और दैत्यों का राजाप्रह्लाद पाताल में राज्य करता रहा परन्तु हृदय में उसे कुछ क्षोभ न आया। हे रामजी! सम्बरनामक दैत्य अपनी सृष्टि के रचनेको उदय हुआ पर रचने में बन्धवान् न था वह सदा साम्बरी मायापरायण रहा और माया से एक मायावीरूप होकर स्थित हुआ। हे रामजी! यह संसार जो साम्बरी मायारूप है उसको साम्बरीवत् त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित हो। विष्णु भगवान् सदा दैत्यों को मारते और युद्ध करते रहते हैं पर हृदय में अलेपबुद्धि हैं इससे सदा सुखी जीवन्मुक्त हैं और मुसलमान दैत्य ने विष्णु से युद्ध में शरीर छोड़ा परन्तु हृदय में

उसे देह से कुछ सम्बन्ध न था इससे जीवन्मुक्त सुखी रहा और पीड़ा को न प्राप्त हुआ। हे रामजी! सर्वदेवताओं का मुख अग्नि है सो यज्ञलक्ष्मी को चिरकाल पर्यन्त भोगता है परन्तु ज्ञानवान् है इससे क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है; देवता सदा चन्द्रमा की किरणों से अमृत पान करते हैं परन्तु चन्द्रमा को कुछ क्षोभ नहीं होता और देवतागुरु बृहस्पति ने स्त्री के लिये चन्द्रमा से युद्ध किये और देवताओं के निमित्त नानाप्रकारके कर्म करते हैं परन्तु रागद्वेष को नहीं प्राप्त होते इससे जीवन्मुक्त हैं। हे रामजी! दैत्यों के गुरु शुक्रजी दैत्यों के निमित्त सदा यत्न करते रहते हैं और लोभी की नाईं अर्थ चिन्तते हैं परन्तु जीवन्मुक्त हैं। जो हृदय से सदा शीतल रहता है वह कदाचित् खेद नहीं पाता। पवन प्राणियों के अङ्गों को चिरकाल फेरता है और चेष्टा करता है पर खेद को नहीं प्राप्त होता इससे जीवन्मुक्त है; ब्रह्मा सदा लोकों को उत्पन्न करता है और प्रलयपर्यन्त इसी क्रिया में रहता है परन्तु उसे स्वरूप का साक्षात्कार है इससे जीवन्मुक्त है; विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वन्द्वों में रहते हैं और जरा मृत्यु आदिक भावों को प्राप्त होते हैं परन्तु सदा मुक्तस्वरूप हैं; सदाशिव त्रिनेत्र अर्धाङ्गधारी हैं परन्तु हृदय में संसक्त नहीं हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; गौरी मोतियों की माला कण्ठ में धारती हैं और त्रिनेत्र को सदा मालावत् कण्ठ के रखती हैं परन्तु हृदय से शीतल रहती हैं इससे जीवन्मुक्त हैं, स्वामिकार्त्तिक दैत्यों के साथ युद्ध करते रहे परन्तु ज्ञानरूपी रत्नों के समुद्र थे और हृदय से शीतल थे सदाशिव के भृङ्गीगण अपना रक्त मांस माता को देते थे परन्तु धैर्य में थे इससे खेदको न प्राप्त हुये और नानाप्रकारकी क्रिया करते थे परन्तु जीवन्मुक्त थे इससे सदा सुखी थे नारद मुनि सदा मुक्तस्वभाव हैं और सदा जगत् की क्रियाजाल में रहते हैं परन्तु क्षोभ नहीं पाते इससे जीवन्मुक्त हैं; जीवन्मुक्त और मनमौन जो विश्वामित्र हैं वे वेदोक्तकर्म करते फिरते रहते हैं इससे जीवन्मुक्त हैं; सूर्य भगवान् दिन को प्रकाश करते हैं और फिरते रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्त और सदासुखी रहते हैं; यम सदा जीवों को दण्ड करते रहते हैं और क्षोभमें रहते हैं परन्तु जीवन्मुक्तहैं; इन्द्र कुबेरसे

आदि लेकर त्रिलोकी में बहुत जीवन्मुक्त हैं जो व्यवहार में शीतल हैं। कोई मूढ़ शिलावत् हो रहे हैं; कोई परम बोधवान् वन में जा स्थित हुये हैं-जैसे भृगु, भारद्वाज और विश्वामित्र; बहुतेरे चिरकालपर्यन्त राज-पालन करते रहते हैं-जैसे जनक, मान्धाता आदि; कोई आकाश में बड़ी कान्ति धारकर बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, सप्तर्षि आदिक स्थित हुये हैं; कोई स्वर्ग में अग्नि, वायु, कुबेर, यम, नारदादिक हैं; पाताल में जीवन्मुक्त प्रह्लादादिक हुये हैं कोई देवतारूप धारकर आकाश में स्थित हैं कोई मनुष्यरूप धारकर मनुष्यलोकमें स्थित हैं और कोई तिर्यक्योनि में स्थित हैं उनको सर्वथा, सर्वप्रकार, सर्व में सर्वात्मारूप ही भासता है कुछ भिन्न नहीं भासता। नाना प्रकार का व्यवहारहै सोभी अद्वैत से किया है! हे रामजी! दिव्य विष्णु, धाता, सर्व ईश्वर और शिव आदिक सब आत्मा के ही नाम हैं। वस्तुरूप में जो अवस्तु है और अवस्तुमें जो वस्तु है सो अवस्तु से वस्तु तब निकलता है जब युक्ति होती है और वस्तु से अवस्तु भी युक्ति से ही दूर होती है। जैसे अवस्तुरूप रेत से सुवर्ण युक्ति से निकलता है और वस्तुरूपी सोने से मैल युक्ति से दूर होता है तैसेही अवस्तु-रूप देहादिकों में वस्तुरूप आत्मा शास्त्रों की युक्ति से पाता है और वस्तु-रूप आत्मा से दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रों की युक्ति से दूर होती है। हे रामजी! जो पापों से भय करता है वह जब धर्म में प्रवर्तताहै तब निर्भय होता है और दुःखों के भय से जीव आत्मपद की ओर प्रवर्तता है तब भावना के वश से असत् से सत् पाता है। ध्यान और योग भी शून्य है परन्तु यत्न के बल से उससे सत् पाता है और जो असत् है वह उदय होकर सत् भासती है। जैसे बाज़ीगर की बाज़ी से शशे के सींग भासि आते हैं तैसेही आत्मा में असद्रूप जो जगत् है सो अज्ञान से दृढ़ हो भासता है परन्तु कल्प के अन्त में यह भी नष्ट होजाता है। हे रामजी! यह जो सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रादिक हैं उनके नाम भिन्न रहेंगे और बड़े सुमेरु आदिक पर्वत, समुद्र और भावपदार्थ जो उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ भासते हैं वे सब नाश होजावेंगे क्योंकि, सब मायामात्र हैं, कोई न रहेगा। ऐसे विचार करके

इनके भाव अभाव में हर्ष शोक मत करो और समताभाव को प्राप्त हो। हे रामजी! जो असत् है वह सत् की नाईं भासता है और जो सत् है सो असत् की नाईं भासता है, इससे यथार्थ विचारकर सत्रूप आत्मपद में स्थित होरहो और असत्रूप जगत्की आस्था त्यागके समताभावको ग्रहण करो। इस लोक में जो अविवेक मार्ग में विचरताहै वह मुक्त नहीं होता। इसप्रकार कोटि जीव संसारसमुद्र में डूबते हैं और जो विवेक में प्रवर्तते हैं वे मुक्त होते हैं। हे रामजी! जिसका मन क्षय हुआ है उसको मुक्तरूप जानो और जिसका मन क्षय नहीं हुआ वह बन्धन में है। इससे जिसके सर्वदुःखसे मुक्तिकी इच्छा हो सो आत्मा विचारकरे उसीसे सब दुःख नाश होजावेंगे। हे रामजी दुःखोंका मूल चित्तहै और जबतक चित्तहै तबतक दुःखहै; जब चित्त नष्ट होजाताहै तब दुःख सब मिटजाते हैं। हे रामजी! जब आत्मज्ञानहोताहै तब चित्तका अभाव होजाताहै;दुःख सब मिटजाताहै और राग,इच्छा सबभय मिटकर केवल शान्तरूप होताहै। जनक आदिक जो जीवन्मुक्तहुये हैं सो निराग और निस्संदेह होकर महाबोधवान् व्यवहारभी करते रहे परन्तु सदा शीतलचित्त रहे। इससे तुम भी विवेक से चित्तको लीन करो। हे रामजी! मुक्ति भी दो प्रकारकी है—एक जीवन्मुक्ति है और दूसरी विदेहमुक्ति। जो पुरुष सब पदार्थों में असंसक्त है और जिसका मन शान्त हुआ है वह मुक्त कहाता है और जिस पुरुष का ज्ञानसे सब पदार्थों में स्नेह नष्ट हुआ है और व्यवहार करता दृष्ट आता है तौभी शीतलचित्त है वह जीवन्मुक्त कहाता है। जो पुरुष सर्वभाव अभाव पदार्थों को त्यागकर केवल अद्वैत तत्त्व को प्राप्त हुआ है और जिसकी शरीर आदि कोई क्रिया दृष्ट नहीं आती वह विदेहमुक्त कहाता है जिसका स्नेह पदार्थों से दूर नहीं हुआ वह मुक्ति के अर्थभी यत्न करताहै तौभी बन्ध कहाताहै जो युक्तिपूर्वक यत्न करता है उसको दुस्तर भी सुगम होजाता है और जो युक्ति से रहित यत्न करताहै उसको गोपद भी समुद्र होजाताहै। हे रामजी! जिन्होंने आत्मा से आत्मविचार किया है उनको विस्तृत जगत्समुद्र गोपद होजाता है और अज्ञानी को गोपद भी दुस्तर होजाता; उसे कोई इष्ट अनिष्ट अल्प

भी प्राप्त होताहै तो उससे डूब जाताहै निकल नहीं सक्ता। उसको गोपद भी समुद्र है। ज्ञानी को अत्यन्त विभूति और ऐश्वर्य मिले अथवा उसका अभाव होजावे तौभी वह उसमें रागद्वेष करके नहीं डूबता। हे रामजी! अपने प्रयत्न के बल सब होताहै; जो कोई प्रधान हुआ है वह प्रयत्नरूपी वृक्ष के फल सेही हुआ है। आत्मपद की प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्ष का फल है। इससे और उपाय त्यागकर आत्मपद की प्राप्तिका प्रयत्न करो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम सप्ततितमस्सर्गः॥ ७०॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ जगज्जाल है वह सब आत्मा ब्रह्म का आभासरूप है; अज्ञान से स्थिरता को प्राप्त हुआ है और विवेक से शान्त होजाता है। ब्रह्मरूपी समुद्र में जगतरूपी आवृत जो फुरते हैं उनकी संख्या कोई नहीं करसक्ता। आत्मरूपी सूर्य के जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं। हे रामजी! असम्यक्‌दर्शन ही जगत् की स्थिति का कारण है और सम्यक्‌दर्शन से शान्त होजाता है—जैसे मरुस्थल में असम्यक्‌दर्शन से जल भासताहै और सम्यक्‌दृष्टि से अभाव होजाता है। हे रामजी! संसार रूपी अपार समुद्र से युक्ति और आत्मअभ्यास विना तरना कठिन है। मोह-रूपी जल से वह पूर्ण है; मरणरूपी उसमें आवर्त्त है; पुण्यरूपी जग है, बड़वाग्नि इसके अङ्गों में नरक समान है; तृष्णारूपी भँवर है; इन्द्रियां और मनरूपी तेंदुये और मच्छ हैं; क्रोधरूपी सर्प हैं; जीवरूपी नदियां हैं उसमें प्रवेश करती हैं; और जन्म मरणरूपी आवृतचक्र हैं उनसे जो तर जाताहै वही पुरुष है। स्त्रियां जो सुन्दर लगती हैं उनके महाबलवान्‌नेत्र हैं जिनसे पहाड़ोंको भी खींचसक्ती हैं और मोतियोंकी नाईं दांत इत्यादिक जो सुन्दर अङ्ग हैं वे महादुःख के देनेवाले बड़वाग्नि की नाईं हैं। जो इनसे तरजाता है वही पुरुष है। हे रामजी! जो जहाज और मल्लाहों के होते भी इनको नहीं तरते उनको धिक्कार है। जहाज और मल्लाह कौन हैं सो सुनो। जिस मनुष्य के शरीर में कुछ विचारसहित बुद्धि है वही जहाज है और सन्तरूपी मल्लाह है। इनको पाकर जो संसारसमुद्र से

नहीं तरते उनको धिक्कार है। ऐसे संसारसमुद्र को ग्रहण कर जो तरगया है उसीको पुरुष कहते हैं। हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मविचार में बुद्धि लगाई है वह तरजाता है अन्यथा कोई नहीं तरसक्ता। जिसको आत्मअभ्यास दृढ़ हुआ है वह तरसक्ता है। हे रामजी! प्रथम ज्ञानवान् पुरुषोंके साथ विचार और बुद्धिसे संसारसमुद्र को देखो। जब तुम इसको ज्यों का त्यों जानोगे तब विलास और क्रीड़ा करने योग्य होगे। हे रामजी! तुम तो भगवान् हो परन्तु बोध के विचार से संसारसमुद्र से तरजाओ। तुम तो जवान हो तुम्हारे पीछे और तुम्हारे स्वभाव के विचार से और भी संसारसमुद्र से तरजावेंगे। जो इस शुभ मार्ग को त्यागकर विषयमार्ग की ओर जाते हैं वे संसारसमुद्र में डूबे हैं। हे रामजी! ये जो विषयभोग हैं वे विषरूप हैं; जो इनको सेवेगा वह नष्ट होगा परन्तु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है उसको यह जैसे गारुड़ मन्त्र पढ़नेवाले को सर्प दुःख नहीं देसक्ता तैसेही दुःख दे नहीं सक्के। जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है वह विभूतिमान् है बल, वीर्य और तेज यह तीनों तत्त्व के साक्षात्कार से चढ़आते हैं। जैसे वसन्त ऋतु के आये से रस, फूल, फल सब सुन्दर हो आते हैं। हे रामजी! जिसे ज्ञान की धर्मलक्ष्मी प्राप्त भई है वह पूर्ण अमृततुल्य शीतल, शुद्ध और सम प्रकाशरूप है। यह लक्ष्मी पाकर विदितवेद स्थित हो रहते हैं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो नामैकसप्ततितमस्सर्गः॥ ७१॥

रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! तत्त्ववेत्ता के लक्षण संक्षेप से फिर कहिये और जिनको तत्त्व का चमत्कार हुआ है उनकी वृत्ति उदारवाणी से कहिये। ऐसा कौन है जो आपके वचन सुनके तृप्त हो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त के लक्षण मैंने तुमको बहुत प्रकार से आगे कहे हैं पर अब फिर भी सुनो। हे महाबाहो! संसार को ज्ञानवान् सुषुप्ति की नाईं जानता है और सब एषणा उसकी नष्ट होजाती हैं। वह सब जगत् को आत्मरूप देखता है और कैवल्यभाव को प्राप्त होता है। संसार उसे सुषु-

स्विरूप होजाताहै और आत्मानन्द में घूर्म रहताहै वह देताहै परन्तु अपने जानने से किसीको नहीं देता। और लोकदृष्टि में प्रत्यक्ष हाथों हाथ ग्रहण करता है परन्तु अपनी दृष्टि से कुछ नहीं लेता ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है वह यन्त्री की पुतलीवत् चेष्टा करता है जैसे यन्त्री की पुतली अभिमान से रहित चेष्टा करती है तैसेही ज्ञानवान् अभिमान से रहित चेष्टा करता है देखता, हँसता, लेता, देता है परन्तु हृदय से सदा शीतलबुद्धि रहता है। वह भविष्यत् का कुछ विचार नहीं करता; भूतका चिन्तन नहीं करता और वर्त्तमान में स्थिति नहीं करता। सब कामों में वह अकर्ता है, संसार की ओर से सो रहा है और आत्मा की ओर जाग्रत् है। उसने हृदय से सबका त्याग किया है; बाहर सब कार्यों को करता है और हृदय में किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। बाहर जैसे प्रकृत आचार प्राप्त होताहै उसे अभिमान से रहित करता है द्वेष किसी में नहीं करता और सुख दुःख में पवन की नाईं होता है। एवम् भ्रम को त्यागकर उदासीन की नाईं सब कार्य करता है; न किसी की वाञ्छा है और न किसी में खेदवान् है। बाहर से सब कुछ करता दृष्ट आता है पर हृदय से सदा असंग है। हे रामजी ! वह भोक्ता में भोक्ता है; अभोक्ता में अभोक्ता है; मूर्खों में मूर्खवत् स्थित है; बालकों में बालकवत्; वृद्धों में वृद्धवत्; धैर्यवानों में धैर्यवान्; सुख में सुखी; दुःख में धैर्यवान् है। वह सदा पुण्यकर्ता, बुद्धिमान्, प्रसन्न, मधुरवाणीसंयुक्त और हृदय से तृप्त है उसकी दीनता निवृत्त हुई है, वह सर्वथा कोमलभाव चन्द्रमा की नाईं शीतल और पूर्ण है। शुभ कर्म करने में उसे कुछ अर्थ नहीं और अशुभ में कुछ पाप नहीं; ग्रहण में ग्रहण नहीं और त्याग में त्याग नहीं, वह न बन्ध है, न मुक्त है और न उसे आकाश में कार्य है, न पाताल में कार्य है, वह यथावस्तु और यथादृष्टि आत्मा को देखता है, उसको द्वैतभाव कुछ नहीं फुरता और न उसको बन्ध मुक्त के निमित्त कुछ कर्त्तव्य है क्योंकि, सम्यक्ज्ञान से उसके सब संदेह जल गये। जैसे पेटी से छूटा पक्षी आकाश में उड़ता है तैसेही शङ्का से रहित उसका चित्त आत्मआकाश को प्राप्त

हुआ है। हे रामजी! जिसका मन संसारभ्रम से मुक्त हुआ है और जो समरस आत्मभाव में स्थित है उसको इष्ट अनिष्ट में कुछ रागद्वेष नहीं होता; वह आकाश की नाईं सबमें सम रहता है। जैसे पलने में बालक अभिमान से रहित अङ्ग हिलाता है तैसेही ज्ञानी की चेष्टा अभिमान से रहित होती है और जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है तैसेही आत्मानन्द में ज्ञानी घूर्म हो जाता है और द्वैत की सँभाल उसको कुछ नहीं; हेयोपादेय बुद्धि से रहित होता है। हे रामजी! वह सबको सर्वंकार ग्रहण करता है और त्याग भी करता है परन्तु हृदय से ग्रहण त्याग कुछ नहीं करता। जैसे बालकों को ग्रहण त्याग की बुद्धि नहीं होती तैसेही ज्ञानी को नहीं होती और न उसको सब कार्यों में रागद्वेष ही फुरता वह जगत् के पदार्थों को न सत् जानकर ग्रहण करता है और न असत् जानकर त्याग करता है; सबमें एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्ट में सुखबुद्धि करता है और न अनिष्ट में द्वेषबुद्धि करता है। हे रामजी! जो सूर्य शीतल हो जावें; चन्द्रमा उष्ण हो जावें और अग्नि अधो को धावे तौ भी ज्ञानी को कुछ आश्चर्य नहीं भासता। वह जानता है कि, सब चिदात्मा की शक्ति फुरती है वह न किसी पर दया करता है और न निर्दयता करता है;न लज्जा करता है, न निर्लज्ज है; न दीन होता है, न उदार होता है; न सुखी होता है, न दुःखी होता है; और उसे न हर्ष है, न उद्वेग है; वह सब विकारों से रहित शुद्ध अपने आप में स्थित है। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही वह भी निर्मलभाव में स्थित है और जैसे आकाश में अंकुर नहीं उदय होता तैसेही उसको रागद्वेष उदय नहीं होता। हे रामजी! ऐसा पुरुष सुख दुःख को कैसे ग्रहण करे? उसको जगज्जाल ऐसे भासता है जैसे जल में तरङ्ग। ऐसे जानकर तुम भी अपने स्वभाव में स्थित हो। हे रामजी! जैसे स्वप्न में एक निमेष में स्वप्नसृष्टि फुर आती है और एक ही क्षण में नष्ट होजाती है, तैसेही जाग्रत् में भी सृष्टि उपज आती है और लीन होजाती है। जो कुछ इच्छा, अनिच्छा, दुःख, सुख, शोक, मोह आदिक विकार हैं वे सब

मन में फुरते हैं; जहां मन होता है वहां विकार भी होता है। जैसे जहां समुद्र होता है वहां तरङ्ग भी होता है तैसेही जहां मन होता है वहां विकार भी होता है। और जहां चित्त का अभाव है वहां विकारों का भी अभाव है। जबतक चित्त फुरता है तबतक जगत्भ्रम होता है और जब विचार-रूपी सूर्य के तेज से मनरूपी बरफ़ का पुतला गल जाता है तब आनन्द होता है। तब सुख दुःख की दशा शान्त हो जाती है और जब सुख दुःख का अभाव हुआ तब ग्रहणत्याग भी मिट जाताहै और इष्ट अनिष्ट वाञ्छित नष्ट हो जाते हैं। जब ये नष्ट हो जाते हैं। तब शुभ अशुभ भी नहीं रहते और जब शुभ अशुभ न रहे तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाता है और भोगों की इच्छा भी नष्ट हो जाती है। जब भोगों की इच्छा नष्ट हो जाती है तब मन भी निराशपद में लीन होजाता है। हे रामजी! जब मूल से मन नष्ट हुआ तब मन में जो संसार के संकल्प हैं वे कहां रहे? जैसे तिलों के जले से तेल नहीं रहता तैसेही मन में संकल्प विकल्प नहीं रहते तब केवल शान्त आत्मा ही शेष रहता है। जैसे मन्दराचल के क्षोभ मिटे से क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होता है तैसेही चित्त शान्त होता है। हे रामजी! इससे भाव में अभाव की भावना दृढ़ करो और स्वरूप का अभ्यास करो। जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है तैसेही कलना को त्यागकर महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम द्विसप्ततितमस्सर्गः॥ ७२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे जल में द्रवता से चक्र आवृत होते हैं सो असतही सत् होकर भासते हैं तैसेही चित्त के फुरने से असत् जगत् सत् हो भासता है। और जैसे नेत्रों के दुखने से आकाश में तरवरे मोर के पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं सो असत् ही सत् भासते हैं तैसेही चित्त के फुरने से जगत् भासता है। जैसे बादलों के चलने से चन्द्रमा चलता दृष्टि आता है तैसेही चित्तके फुरने से जगत् भासता है। रामजी बोले, हे भगवन्! जिससे चित्त फुरता है और जिससे अफुर होताहै

वह प्रकार कहिये कि, उसका मैं उपाय करूं। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे बरफ़ में शीतलता; तिलों में तेल, फूलों में सुगन्ध और अग्नि में उष्णता होती है तैसेही चित्त में फुरना होता है । चित्त और फुरना दोनों एक अभेद वस्तु हैं; दोनों में जब एक नष्ट हो तब दोनों नष्ट हो जाते हैं। जैसे शीतलता और श्वेतता के नष्ट हुये बरफ़ नष्ट होजाता है तैसेही एक के नाश हुये दोनों नाश होते हैं। इसलिये चित्तके नाश के दो क्रम हैं–योग और ज्ञान। चित्त की वृत्ति के रोकने को योग कहते हैं और सम्यक् विचारने का नाम ज्ञान है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वृत्ति का निरोध किस युक्ति से होता है और प्राण, अपान पवन क्योंकर रोके जाते हैं कि, जिस योग से अनन्त सुख और सम्पदा प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस देह में जो नाड़ी हैं उनमें प्राणवायु फिरता है–जैसे पृथ्वी पर नदियों का जल फिरता है। वह प्राणवायु एक ही है परस्पन्द के वश से नाना प्रकार की विचित्र क्रिया को प्राप्त होताहै उससे अपान आदिक संज्ञा पाता है। योगीश्वरों की कल्पना है कि, जैसे पुष्पमें सुगन्ध और बरफ़ में श्वेतता अभेद है और आधार आधेया एकरूप है तैसेही प्राण और चित्त अभेदरूप है। जब भीतर प्राणवायु फुरती है तब चित्तकला फुरकर जो संकल्प के सम्मुख होती है उसीका नाम चित्त है। जैसे जल द्रवीभूत होता है और उसमें लहर और चक्र फुर आते हैं तैसेही प्राणों से चित्त फुर आता है। चित्त के फुरने का कारण प्राणवायुही है जब प्राणवायु का निरोध होता है तब निश्चय करके मन भी शान्त होता है और मन के लीन हुये संसार भी लीन होजाता है–जैसे सूर्य के प्रकाश के अभाव हुये रात्रि में मनुष्यों का व्यवहार शान्त होजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह जो सूर्य और चन्द्र निरन्तर आगमन करते हैं तो देहरूपी गृह में प्राणवायु का रोकना किस प्रकार होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सन्तजनों के संग, सत्शास्त्रों के विचार और विषय के वैराग्य से योगाभ्यास होता है। प्रथम जगत् में असत्बुद्धि करनी चाहिये और वाञ्छित जो अपना इष्टदेव

है उसका ध्यान करना चाहिये। जब चिरकाल ध्यान होता है तब एक तत्त्वका अभ्यास होताहै उससे प्राणोंका स्पन्द रोकाजाता है। रेचक, पूरक और कुम्भक जो प्राणायाम हैं उनका जब अखेदचित्त होकर अभ्यास दृढ़ करे और एक ध्यान संयुक्त हो उससे भी प्राणों का स्पन्द रोकाजाता है। ऊंकार का उच्चार करने से ऊर्ध्व उसकी जो सूक्ष्मध्वनि होती है तो प्रथम शब्द बड़ी ध्वनि से होता है और फिर सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है उसमें चित्त की वृत्ति लगावे तो सुषुप्तिरूप अवस्था में वृत्ति तद्रूप होजाती है तभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है। रेचक प्राणायाम के अभ्यास से विस्तृत प्राणवायु से शून्य भाव आकाश में जाय लीन होता है तबभी प्राण स्पन्द रोकाजाता है। कुम्भक के अभ्यास के बलसे भी प्राणवायु रोकाजाता है। तालुमूल के साथ यत्न से जिह्वा को तालुघण्टा से लगा खेचरीमुद्रा से वायु ऊर्ध्वरन्ध्र को जाती है और ऊर्ध्वरन्ध्र में गये से भी प्राणवायु का स्पन्द रोकाजाताहै। नासिका के अग्रमें जो द्वादश अंगुल पर्यन्त अपानरूपी चन्द्रमा का निर्मल स्थान आकाश में है उसको ज्यों का त्यों देखे तौभी प्राणस्पन्द रोकाजाता है। तालु के द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरन्ध्र का अभ्यास हो तो उसके अन्त में जब प्राणों को लगावे तब उस संवित् में प्राणों का फुरना नष्ट होजाता है। जो भ्रुवमध्य त्रिपुटी में प्रकाश को त्यागकर जहां चेतनकला रहती है वहां वृत्ति लगावे तो उससे भी प्राणकला रोकीजाती है। जो सर्ववासना को त्यागकर हृदय आकाश में चेतन संवित् का ध्यान करे तौभी चिरकाल के अभ्यास से प्राणस्पन्द रोकाजाता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जगत् के भूतों का हृदय क्या कहाता है जिस महाआदर्श में सर्वपदार्थ प्रतिबिम्बित होजाता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जगत्के भूतों के दो हृदय हैं—एकग्रहण करने योग्य है और दूसरा त्यागने योग्य। नाभि से जो दश अंगुल ऊर्ध्व है वह त्यागने योग्य है परिच्छिन्नभाव से जो देह के एक स्थान में स्थित है और उसमें जो संवितमात्र ज्ञान स्वरूप अनुभव से प्रकाशता है वह मनुष्य को ग्रहण करने योग्य है जो भीतर बाहर व्याप रहा है और वास्तव में

भीतर बाहरसे भी रहितहै वही प्रधान हृदयहै और सर्वपदार्थोंका प्रतिबिम्ब धारनेवाला आदर्श है। सर्व सम्पदाका भण्डार और सब जीवोंका संवित् हृदय वही है; एक अङ्गका नाम हृदय नहीं। जैसे जल में एक पुरातन पत्थर पड़ा हो तौ वह जल नहीं होजाता तैसेही संवित्मात्र के निकट संवित्मात्र तो नहीं होता ? यह जड़रूपहै और आत्मा चेतन आकाश है। इस प्रधान हृदय से बल करके संवित्मात्र की ओर चित्त लगावे तब प्राण स्पन्दभी रोका जावेगा। हे रामजी ! यह प्राणों का रोकना मैंने तुम से कहा है और भी शास्त्रों में अनेक प्रकार से कहा है पर जिस जिस प्रकार गुरु के मुख से सुने उसी प्रकार अभ्यास करे तब प्राणों का निरोध होता है; गुरु के उपदेश से अन्यथा सिद्ध नहीं होता। जिसको अभ्यास करके निरोध सिद्ध हुआ है वह कल्याणमूर्ति है और कोई कल्याणमूर्ति नहीं होता। हे रामजी ! अभ्यास करके प्राणायाम होता है और वैराग्य की दृढ़ता से वासनाक्षय होती है अर्थात् वासना रोकी जाती है। जब दृढ़ अभ्यास करे तब चित्त अचित्त होजाताहै। हे रामजी ! भृकुटी के दश अंगुल पर्यन्त जो वायु जाताहै उसका बारम्बार जब अभ्यास करते तब वह क्षीण होजाता है और खेचरीमुद्रा अर्थात् तालु से जिह्वा लगाकरके जो अभ्यास करे तौभी प्राण रोकेजाते हैं। इसके अभ्याससे चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, और परम उपशम को प्राप्त होताहै। जो यह अभ्यास करता है वह पुरुष आत्मारामी होताहै, उसके सब शोक दूर होजाते हैं और हृदय में आनन्दकी प्राप्ति होती है। इससे तुमभी अभ्यासकरो। जब प्राणस्पन्द मिट जाताहै तब चित्त भी स्थित होजाता है; उसके पीछे जो पद है सोही निर्वाणरूपहै। हे रामजी ! जब प्राणस्पन्द मिट जाते हैं तब चित्तभी स्थित होजाताहै। और जब चित्त स्थित हुआ तब वासना नष्ट होजाती है; जब वासना नष्ट होजाती है तब मोक्ष की प्राप्तिहोती है। जबतक चित्त वासनासे लपेटा है तबतक जन्म मरण देखता है और जब मन वासना से रहित होताहै तब मोक्षहोताहै। हे रामजी ! प्राणवायुको रोककर वासनासेरहित हो जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां विचरो तो तुमको बन्धन न होगा। जब प्राण

फुरता है तब मन उदय होता है और जब मन उदय हुआ तब संसारभ्रम होताहै। जब मन क्षीण होताहै तब संसारभ्रम नष्ट होजाता है। हे रामजी! जब मनसे संसार की वासना मिटजाती है तब अशब्दपद प्राप्त होता है। जिससे यह सर्वहै, और यह सर्वहै, जिससे न सर्व है और जो न सर्व है; जो न सर्व में है और जिसमें न यह सर्व है ऐसा जो निर्गुणतत्त्व है सो सर्व कलना के त्यागेसे प्राप्त होता है उसकी उपमा किसकी दीजे। आत्मा अविनाशी, निर्विकल्प और निर्गुणहै; यह जगत् नाशरूपी संकल्पसे रचित गुणरूपहै; उसका किस पदार्थ से दृष्टान्त दीजे? अर्थात् दूसरा कुछ नहीं; जो कुछ स्वाद हैं उनको स्वादकर्ता वही है और जितने प्रकाशहैं उनको प्रकाशकर्ता वही है; सर्वकलनाका कलनारूप वही है और जितने पदार्थ हैं उनसबका अधिष्ठानरूप वही है। वह चित्त और आवरण के दूर हुये प्राप्त होताहै और सब पदार्थों की सीमा वही है। ऐसा जो आत्मरूप शीतलचन्द्रमा है जब उसमें बुद्धिमान् स्थित होता है तब जीवन्मुक्त कहाता है और उसकी सर्वइच्छा और आश्चर्य नष्ट होजाता है अहं त्वं आदिक कल्पना मिटजाती है सर्व व्यवहार विस्मरण होजाना है। ऐसा जो मुक्त मन है सो पुरुषोत्तम होताहै॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबन्धोनाम त्रिसप्ततितमस्सर्गः॥ ७३॥

रामजीने पूछा हे प्रभो! योगी की युक्ति तो आपने कही जिससे चित्त उपशम होता है अब सम्यक्ज्ञान का लक्षण भी कृपा करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह तो निश्चय है कि, आत्मा आनन्दरूप, आदि-अन्त से रहित, प्रकाशरूप, सर्व, परमात्मा तत्त्व है इसी निश्चय को बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं। यह जो घट पटादिक अनेक पदार्थशक्ति है वह सब परमानन्दरूप आत्मा है उससे भिन्न नहीं। यह सम्यक् ज्ञान की दृष्टि है। और सर्वात्मा नित्य, शुद्ध, परमानन्दस्वरूप, सदा अपने आपमें स्थितहै ऐसा निश्चय सम्यक्ज्ञान है और जो इससे भिन्न हो सो असम्यक्ज्ञान है। हे रामजी! सम्यक्दर्शी को मोक्षहै और असम्यक्दर्शीको बन्धहै क्योंकि; उसको आत्मा जगत्रूप भासता है और सम्यकदर्शी को केवल

आत्मा भासता है। जैसे रस्सी में असम्यक्‌दर्शी को सर्प भासता है और सम्यक्‌दर्शी को रस्सी ही भासती है। सर्व संवेदन और संकल्पसेरहित शुद्ध संवित् परमात्मा है उसको जो जानता है वही परमात्मा का जाननेवाला बुद्धीश्वर है। इससे भिन्न अविद्या है। हे रामजी! आत्मतत्त्व सदा अपने आपमें स्थितहै और उसमें द्वैत कल्पना कोई नहीं। ऐसा जो यथार्थदर्शी है वही सम्यक्‌दर्शी है। सर्व आत्मा पूर्ण है उसमें भाव, अभाव, बन्ध, मोक्ष कोई नहीं और न एक है न द्वैत है; ब्रह्मही अपने आपमें स्थित है जो सब चिदाकाशहै तो बन्ध किसे कहिये और मोक्ष कौनहो? ऐसा जिनको ज्ञान है उनको काष्ठपाषाण ब्रह्मा से च्यूंटी पर्यन्त सब समभासताहै अल्पमात्र भी भेद नहीं भासता तो वह कल्पना के सन्मुख कैसे होवे? हे रामजी! वस्तु के आदि अन्त अन्वय व्यतिरेक करके आत्मा सिद्ध होताहै अर्थात् पदार्थ है सो है तौभी आत्मसत्तासे सिद्ध होताहै और जो पदार्थ का अभाव होजाता है तौभी आत्मसत्ता शेष रहती है। तुम उसी के परायण हो रहो, वही अनुभवसत्ता जगत्‌रूप होकर भासती है और जरा-मरण आदिक जो नाना प्रकार के विकार वस्तुरूप भासते हैं वह वस्तु अपने आपमें ही फुरती है। जैसे जल में द्रवता से नानाप्रकार के तरङ्ग बुद्‌बुदे होते हैं सो वे जलरूप हैं। कुछ भिन्न नहीं; तैसेही चित्त के फुरने से जो नाना प्रकार के पदार्थ भासते हैं सो आत्मरूपहैं। आत्मतत्त्वही अपने आप में स्थितहै; जब उसमें स्थित होताहै तब फिर दीन नहीं होता। जो पुरुष दृढ़ विचारवान् है वह भोगों से चलायमान नहीं होता-जैसे मन्द पवन से मेरुपर्वत चलायमान नहीं होता-और जो अज्ञानी है और विचारसे रहित मूढ़ है उसको भोग ग्रास कर लेते हैं-जैसे जलसे रहित मछलीको बगुला खालेताहै। जिसको सर्व आत्मा ही भासताहै वह सम्यक्‌दर्शी पुरुष कहाताहै-वही मुक्तरूप है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्‌ज्ञानवर्णनंनाम चतुस्सप्ततितमस्सर्गः॥ ७४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! विवेकी पुरुष जो भोगोंके निकट आ प्राप्त होता है तौभी उसकी इच्छा नहीं करता क्योंकि; उसको उनमें अर्थबुद्धि

नहीं—जैसे चित्र की लिखी हुई सुन्दर कमलिनी के निकट भँवरा आन प्राप्त होताहै तौभी उसकी इच्छा नहीं करता। हे रामजी! सुख दुःखकी प्राप्ति और निवृत्ति में इच्छा तबतक होती है जबतक देहाभिमान होताहै; जब देहाभिमान निवृत्त हुआ तब कुछ इच्छा नहीं होती। हे रामजी! ममता करके दुःख होता है; जब रूप को नेत्र देखता है—तब उसको इष्ट मानकर प्रसन्न होताहै और अनिष्ट मानकर द्वेष करताहै जैसे बैल भारवाहक चेष्टा करताहै उसको लाभ और हानि कुछ नहीं और जिसको उसमें ममत्व होता है वह लाभ—हानि का हर्ष—शोक करता है; तैसेही ममत्व से जीव इन्द्रियों के विषयों में हर्ष शोकवान् होताहै। जैसे गर्दभ कीचड़ में डूबे और राजा शोक करे कि, मेरे नगर का गर्दभ डूबाहै; तैसेही ममत्व करके इन्द्रियोंके विषयों में जीव दुःख पाता है; नहीं तो गर्दभ कीचड़ में डूबे तो राजा का क्या नष्ट होताहै। हे रामजी! यह इन्द्रियां तो अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं और इनमें जीव तपायमान होताहै सो ही आश्चर्य है। जिन विषयोंकी जीव चेष्टा और इच्छा करते हैं सो क्षण में नष्ट हो जाते हैं। हे रामजी! जो मार्ग में किसी के साथ स्नेह हो जाताहै तो ममत्व और प्यार से दुःख होता है। जो देह में ममत्व करेगा उसको दुःख क्यों न होगा? चाहे कैसाही बुद्धिमान् हो वा शूरमा हो तौ भी संग से बन्धवान् होना ही है अर्थात् इन्द्रियों के विषयों का अहंभाव ग्रहण करेगा तो उनके नाश होने से वह भी नाश होवेगा। जिन नेत्रों का विषयरूप है सो नेत्र साक्षी होकर रूप को ग्रहण करता है और जीव ऐसा मूर्ख है कि, औरों के धर्म आपमें मान लेता है और उनमें तपायमान होता है। जैसे भ्रमदृष्टि से आकाश में मोर पुच्छवत् तरुवरे और दूसरा चन्द्रमा भासता है; तैसेही मूर्खता से जीव इन्द्रियों के धर्म अपने में मान लेता है। जैसे इन्द्रियों का साक्षी होकर जीव विषयों को ग्रहण करता है तैसेही चित्त भी अभिमान से रहित साक्षी होकर ग्रहण करे तो रागद्वेष से तपायमान न हो जैसे जल में चक्र तरङ्ग फुरते दृष्टि आते हैं तैसेही इन्द्रियों के रूप में और इन्द्रियां फुर आती हैं; आधार आधेय से इनका सम्बन्ध होता है और चित्त इनके

साथ मिलकर व्याकुल होता है रूप, इन्द्रिय और मन इनका परस्पर असंगभाव है जैसे मुख, दर्पण और प्रतिबिम्ब भिन्न २ असंग हैं तैसेही यह भी भिन्न २ असंग हैं परन्तु अज्ञान से मिले हुये भासते हैं। जैसे लाख से सोने, रूपे और चीनी का संयोग होता है तैसेही अज्ञान से रूप, अवलोक और मन संस्कार का संयोग होता है। जब ज्ञानअग्नि से अज्ञानरूपी लाख जल जावे तब परस्पर सब भिन्न २ हो जाते हैं और फिर किसी का दुःख सुख किसी को नहीं लगता। जैसे दो लकड़ी का संयोग लाख से होताहै तैसेही अज्ञान से विषय इन्द्रियों और मन का संयोग होताहै और ज्ञानरूपी अग्नि से जब बिछुरजाते हैं तब फिर नहीं मिलते। जैसे माला के भिन्न २ दाने तागे में इकट्ठे होते हैं तैसेही देह और इन्द्रियों में अज्ञान से मेल होते हैं और जब विचार करके तागा टूट पड़े तब भिन्न २ होजावे फिर न मिले। हे रामजी! जिन पुरुषों को आत्मविचार हुआ है वे ऐसे विचारते हैं कि हमको दुःख देनेवाला चित्त था और चित्त के नष्ट हुये आनन्द हुआ है। जैसे मन्दिर में दुःख देनेवाला पिशाच रहता है तब दुःख होता है, नहीं तो मन्दिर दुःख नहीं देता, पिशाचही दुःख देताहै; तैसेही शरीररूपी मन्दिर में दुःख देनेवाला चित्तही है। हे चित्त! तूने मिथ्या मुझको दुःखदिया था। अब मैंने आपको जाना है। तू आदि भी तुच्छ है, अन्त भी तुच्छहै और वर्तमान में भी मिथ्या जीवों को दुःख देता है। जैसे मिथ्या परछाहीं बालक को वैताल होकर दुःख देती है—बड़ा आश्चर्य है। हे चित्त! तू तबतक दुःख देता है जबतक आत्मस्वरूपको नहीं जाना। जब आत्मस्वरूप का ज्ञान होताहै तब तू कहीं दृष्टि नहीं आता। तू तो मायामात्र है। टर अथवा जा मैं अब तुझसे मोहित नहीं होता। तू तो मूर्ख जड़ और मृतक है और तेरा आकार अविचार से सिद्ध है। अब मैंने पूर्वका स्वरूप पाया है; तू तत्त्व नहीं, भ्रान्तिमात्र है। जो मूढ़है वह तुझसे मोहित होताहै, विचारवान् मोहित नहीं होता। जैसे दीपक से अन्धकार दृष्टि नहीं आता, तैसेही ज्ञानसे तू दृष्टि नहीं आता। हे मूर्खचित्त! तू बहुतकाल इस देहरूपी गृह में रहा है

और तू वैतालरूप है । जैसे अपवित्रता और श्मशान आदिक स्थानों में वैताल रहताहै तैसेही सत्संग से रहित देहरूपी गृह श्मशान के समान सदा अपवित्र है वहां तेरे रहने का स्थान है । जहां सन्तों का निवास होताहै वहां तुझसरीखे ठौर नहीं पाते सो अब मेरे देहरूपी गृह में सत् विचार सन्तोंषादिक सन्तजन आन स्थित हुये हैं तेरे बसने का ठौर नहीं । हे चित्त पिशाच ! तू पूर्वरूपी तृष्णा पिशाचिनी और काम क्रोधादिक गुह्यक अपने साथलेकर चिरपर्यन्त विचरा है अब विवेकरूपी मन्त्र से मैंने तुझको निकाला है तब कल्याण हुआ । हे चित्त पिशाचरूप ! तू प्रमादरूपी मद्यपानकर मत्त हुआ था और चिरपर्यन्त नृत्य करता था । अब मैंने विवेकरूपी मन्त्र से तुझको निकाला है तब देहरूपी कन्दरा शुद्ध हुई है और शुद्धभाव पुरुषों ने निवास किया है । हे चित्त ! मैंने तुझको विवेकरूपी मित्रद्वारा वश किया है । अब तेरा क्या पराक्रम है ? तू तबतक दुःख देता था जबतक विचाररूपी मित्र न पाया था । अब तेरा बल कुछ नहीं चलता । अब मैं महाकेवलभाव में स्थित हूं । आगे भी मैं तुझको जगाता था, आपसेही तू सबरूपहै । जैसे कच्चे मन्त्रवाला सिंहको जगाताहै और आप कष्ट पाता है तैसेही मैं तुझको जगाकर कष्ट पाता था । अब मैंने आत्मविचार से परिपक्वमन्त्र से तुझे वश कियाहै तब शान्तिमान् हुआहूं । अब ममता और मान मेरे कुछ नहीं रहे, मोह, अहंकार सब नष्ट होगये हैं और इनका कलत्र भी नष्ट होगया है । मैं निर्मल और चेतन आत्मा हूं । मेरा मुझको नमस्कारहै । न मेरे में कोई आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है और न देह है; ऐसा मेरा निर्गुणरूप आत्माहै । मेरा मुझको नमस्कार है । न कोई आत्माहै, न अनात्मा है; न अहं है, न त्वं है; किसी शब्द का वहां प्रवेश नहीं ऐसा निराश है । प्रकाशरूप, निर्मल आत्मा मैं अपने आप में स्थित हूं । ऐसा जो मैं आत्मा हूं मेरा मुझको नमस्कार है । मैं विकार नहीं हूं; मैं तो नित्यहूं, निराशहूं, सर्वकार्यों में अनुस्यूतहूं, और अंशांशीभाव से रहित हूं । ऐसा सर्वात्मा जो मैं हूं सो मेरा मुझको नमस्कार है । मैं सम सर्वगत, सूक्ष्म और अपने

स्वभावमें स्थितहूं और पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं और मैंहीं सर्वपदार्थ होकर भासता हूं। ऐसा मैं सर्वात्मा हूं। अब मैं सर्वभाव को प्राप्त हुआ हूं और मनभाव मुझसे दूर हुआ है। मेरे प्रकाश से विश्व भासता है; मैं अजर, अमर और अनन्त हूं और गुणातीत अद्वैत हूं। मनन जिससे दूर हुआ है ऐसा जो मैं सुन्दररूप हूं जिसमें विश्व प्रकट है और स्वरूपसे अविनाशी हूं उस अनन्त अजर अमर गुणातीत ईश्वररूप को नमस्कार है॥

इति श्रीयोग०उपशमप्रकरणे चित्तउपशमनामपञ्चसप्ततितमस्सर्गः॥७५॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचारकर तत्त्ववेत्ता आत्मा को सम्यक्कर जानते हैं। तुमभी आत्मविचार का आश्रयकरके आत्मपद के आश्रय हो रहो। यह जगत् सब आत्मरूप है; ऐसेजानकर चित्त से जगत् की सत्यता को त्यागकरो। जब ऐसे विचार करे तब चित्त कहां है? बड़ा आश्चर्य है कि जो चित्त वस्तुरूप दिखाई देता था सो अविदित मायामात्र असतरूप था। जैसे आकाश के फूल कहनेमात्र हैं तैसेही चित्त कहनेमात्र है और अविचार से दिखाई देता है। विचारवान् को चित्त असत् भासता है क्योंकि, अविचार से सिद्ध है। जैसे नौका पर बैठे बालक को तट के वृक्ष चलते भासते हैं पर बुद्धिमान् को चलने में सद्भाव नहीं होता; तैसेही मूर्ख को चित्त सत्ता भासती है और विचारवान् का चित्त नष्ट होजाता है। जब मूर्खतारूप भ्रम शान्त होताहै तब चित्त कुछ नहीं पाया जाता। जैसे बालक चक्रपर चढ़ा हुआ फिरता है तो पर्वत आदिक पदार्थ उसको भ्रमते भासते हैं और जब चक्र ठहर जाता है तब पर्वत आदि पदार्थ अचल भासते हैं; तैसेही चित्तके ठहरने से द्वैत कुछ नहीं भासता। आगे मुझको द्वैत भासता था इससे चित्त के फुरने से नाना प्रकार की तृष्णा इच्छा उठती थीं, अब चित्त के नष्ट हुये इन पदार्थों की भावना नष्ट हुई हैं और सब संशय और शोक मेरे नष्ट होगये हैं। अब मैं विगतज्वर स्थित हूं जैसे मैं स्थित हूं, तैसेहूं; एषणा कोई नहीं। जब चित्त का चैत्यभाव नष्ट हुआ तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे? जैसे

प्रकाश के नष्ट हुये वर्णज्ञान नहीं रहता तैसेही चित्त के नाश हुये इच्छा आदिक नहीं रहते। अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट होगई और मोह का पिंजड़ा टूट पड़ा अब मैं निरहंकार बोधवान् हूं; सब जगत् शान्तरूप आत्मा है और नानात्व कुछ नहीं। मैं निराभास, आदि-अन्त से रहित आनन्दपद को प्राप्त हुआ हूं। मेरा सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है और उसमें मैं स्थित हूं। इन विचारों से अब क्या प्रयोजन है? जबतक आपको मैं देह जानता था तबतक ये विचार मूर्ख अवस्थामें थे; अब मैं अमित, निराकार और केवल परमानन्द सच्चिदानन्द को प्राप्त हुआ। आगे मैं चित्तरूपी वैताल को आपही जगाता था और आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मन्त्र से मैंने इसको नष्ट किया है और निर्णय से अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं। मैं शान्तात्मा अपने आप में स्थित हूं। हे रामजी! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है वह निर्द्वन्द्व राग द्वेष से रहित होकर स्थित होता है और प्रकृतकर्म करता है और पर मानमद से रहित आनन्द करके पूर्ण होता है जैसे शरत्काल की रात्रि को पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से पूर्ण होता है तैसेही प्रकृत आचार कार्यकर्ता ज्ञानवान् का हृदय शान्त पूर्ण आत्मा है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशान्तिप्रतिपादनं नाम षट्सप्ततितमस्सर्गः॥ ७६॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह विचार वेदविदों ने कहा है। पूर्व मुझसे ब्रह्माजीने यह विचार विन्ध्याचल पर्वत में कहा था। इसी विचार से वह परमपद में स्थित हुआहै। इसी दृष्टि का आश्रय करके आत्मविचार होकर तमरूपी संसारसमुद्र से तर जाओ। हे रामजी! इसपर एक और परमदृष्टि सुनो वह दृष्टि परमपदके प्राप्त करनेवाली है। जिस प्रकार वीतव मुनीश्वर विचार करके निःशङ्क स्थित हुआ है सो सुनो महातेजवान् वीतव मुनीश्वर ने संसार आधिव्याधि से वैराग्य किया और नागादि होके पर्वतों की कन्दराओं में बिचरनेलगा। जैसे सूर्य सुमेरु पर्वत के चौफेर फिरता है तैसे ही वह बिचरने लगा और संसार की क्रिया को दुःखरूप विचारता था कि,

यह बड़े भ्रमदेनेवाली है। ऐसे जानकर वह उद्वेगवान् हुआ और निर्विकल्प समाधि की इच्छाकर अपने व्यवहार को त्यागदिया और अपनी गौर-कुटी त्यागकर और केलेके पत्रों की बनाकर बैठा। जैसे भँवरा कमल को त्यागकर नीलकमल पर जा बैठता है तैसेही गौरकुटी को त्यागकर वह श्यामकुटी में जा बैठा। नीचे उसने कुश बिछाया, उसपर मृगछाला बिछाया और उसपर पद्मासन कर बैठा और जैसे मेघ जल को त्याग-कर शुद्धमौन स्थित होता है तैसेही और क्रिया को त्यागकर शान्ति के निमित्त शान्तरूप स्थित हुआ। हाथों को तलेकर मुख ऊपरकर और ग्रीवा को सूधा करके स्थित हुआ और इन्द्रियोंकी वृत्तिको रोक फिर मनकी वृत्ति को भी रोका। जैसे सुमेरु की कन्दरा में सूर्य का प्रकाश बाहर से मिट जाताहै तैसेही इन्द्रियों की रोकी वृत्ति बाहरसे भी मिटजाती है। और हृदय से भी विषयों की चिन्तना का योग उसने त्याग किया। इस प्रकार वह क्रम करके स्थित हुआ। जब मन निकल जावे तब वह कहे कि, बड़ा आश्चर्य है, मन महाचञ्चल है कि, जो मैं स्थित करता हूं तो फिर निकल जाताहै। जैसे सूखापत्ता तरङ्ग में पड़ा नहीं ठहरता तैसेही मन एक क्षण भी नहीं ठहरता सर्वदा इन्द्रियों के विषयों की ओर धावता है। जैसे गेंद को ज्यों २ ताड़ना करते हैं त्यों २ उछलता है तैसेही इस मूर्ख मन को जिस २ ओरसे खैंचताहूं उसी ओर फिर धावता है और उन्मत्त हाथी की नाईं झूमताहै; जो घटकी ओर से खैंचताहूं तो रस की ओर निकल जाता है और जो रस की ओर से खैंचता हूं तो गन्धकी ओर धावता है स्थिर कदाचित् नहीं होता। जैसे वानर कभी किसी डालपर कभी किसी डालपर जा बैठता है इसी प्रकार मूर्ख मन भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की ओर धावता है स्थिर नहीं होता। इसके ग्रहण करने के पञ्च स्थान हैं जिन मार्गों से विषयों को ग्रहण करता है सो पञ्चज्ञान इन्द्रियां हैं। अरे मूर्ख, मन! तू किस निमित्त विषयों की ओर धावता है यह तो आप जड़ और असत्रूप भ्रान्तिमात्र हैं तू इनसे शान्ति को कैसे पावेगा? इनमें चपलता से इच्छा करना अनर्थ का कारण है। ज्यों ज्यों इनके अर्थों को ग्रहण करेगा त्यों त्यों दुःख के समूह

को प्राप्त होगा । ये विषय जड़ और असत्‌रूप हैं और तूभी जड़ है जैसे मृगतृष्णा की नदी असत् होती है तैसेही ये भी असत्‌रूप हैं। हे मन ! ये तो सब असाररूप हैं तूभी इन्द्रियों सहित जड़रूप है; तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है ? सबका कर्ता चिदानन्द आत्माभगवान् सदा साक्षीभूत है तैसेही आत्मा भी साक्षीभूत है तू क्यों वृथा तपायमान होता है ? जैसे सूर्य सबकी क्रियाओं को कराता साक्षीभूत है तैसेही आत्मा साक्षीभूत है और सब जगत् भ्रान्तिमात्र है। जैसे अज्ञान से रस्सी में सर्प भासता है तैसेही अज्ञान से आत्मा में जगत् भासता है। जैसे आकाश और पाताल का सम्बन्ध कुछ नहीं होता, ब्राह्मण और चाण्डाल का संयोग नहीं होता और सूर्य और तमका सम्बन्ध नहीं होता; तैसेही आत्मा चित्त और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सत्तामात्र है और ये जड़ और असत्‌रूप हैं इनका सम्बन्ध कैसे हो ? आत्मा सबसे न्यारा साक्षीभूत है। जैसे सूर्य सब जनों से न्यारा रहताहै तैसेही आत्मा सबसे न्यारा साक्षीभूत है। हे चित्त ! तूतो मूर्ख है विषयरूपी चबेने में रह सर्व ओरसे भक्षण करता भी कदाचित् तृप्त नहीं होता और विचार कि, मिथ्या कूकर की नाईं चेष्टा करताहै । तेरे साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं। हे मूर्ख ! तू तो मिथ्या अहं२ करता है और तेरी वासना अत्यन्त असत्‌रूप है। और जिन पदार्थों की तू वासना करता है वे भी असत्‌रूप हैं। तेरा और आत्मा का सम्बन्ध कैसे हो ? आत्मा चेतनरूप है और तू मिथ्या जड़रूप है ? यह मैंने जाना है कि, जन्म मरण आदिक विकार और जीवत्वभाव को तूने मुझको प्राप्त कियाहै। मैं तो केवल चेतन परब्रह्म हूं मिथ्या अहंकार करके जीवत्व-भाव को प्राप्त हुआ है ? और देहमात्र आपको जानता है। मैं तो संवित्-मात्र नित्यशुद्ध आदि अन्तसे रहित परमानन्द चिदाकाश अनन्त आत्मा हूं। अब मैं स्वरूप में आप जगा और सद्भाव मुझको कुछ नहीं दृष्ट आता। हे मूर्ख, मन ! जिन भोगों को तू सुखरूप जानकर धावता है वे अविचार से प्रथम तो अमृत की नाईं भासते हैं और पीछे विष की नाईं होजाते हैं और वियोग से जलाते हैं। आपको तू कर्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है;

तू कर्ता भोक्ता नहीं और इन्द्रियां कर्ता भोक्ता नहीं क्योंकि; जड़ हैं। जो तुम जड़ हुये तो तुम्हारे साथ मित्रभाव कैसे हो और जो तू जड़ और असत्‌रूप है तो कर्ता भोक्ता कैसे हो? और जो तू चेतन और सत्‌रूपहै तौ भी तेरे में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं होसक्ता क्योंकि, तू मिथ्याहै और मैं प्रत्यक्ष चेतन हूं। तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपने में स्थापन करता है; तू मिथ्या है। जब मैं तुझको सिद्ध करताहूं तब तू होता है तू निश्चय करके जड़ है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे हो? जैसे पत्थर की शिला नृत्य नहीं करसक्की तैसेही तुझको कर्तृत्व की सामर्थ्य नहीं। तेरे में जो कर्तृत्व है सो मेरी शक्ति है—जैसे हसुआ घास, तृण आदिक को काटता है सो केवल आपसे नहीं काटता पुरुष की शक्ति से काटता है और खङ्ग में जो हननक्रिया होती है वह भी पुरुष की शक्ति है; तैसेही तुम्हारे में कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति से है। जैसे पात्र से जल पान करते हैं तो पात्र नहीं करता पान पुरुष ही करता है और पात्र करके पान करता तैसेही तुम्हारे में कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्ति करती है और मेरी सत्ता पाकर तुम अपनी चेष्टा में बिचरते हो। जैसे सूर्य का प्रकाश पाकर लोग अपनी २ चेष्टा करते हैं तैसेही मेरी शक्ति पाकर तुम्हारी चेष्टा होती है। अज्ञान करके तुम जड़जीव से रहते हो और ज्ञान करके लीन होजाते हो। जैसे सूर्य के तेजसे बरफ़ का पुतला गल जाता है। इससे, हे चित्त! अब मैंने निश्चय कियाहै, तू मृतकरूप और मूढ़है। परमार्थ से न तू है और न इन्द्रियां हैं। जैसे इन्द्रजाल की बाज़ी के पदार्थ भासते हैं सो सब मिथ्या हैं। मैं केवल विज्ञानस्वरूप अपने आपमें स्थित निरामय, अजर, अमर, नित्य, शुद्ध, बोध, परमानन्दरूप हूं और मैंही नानारूप होकर भासता हूं परन्तु कदाचित् द्वैतभावको नहीं प्राप्त होता सदा अपने आपमें स्थित हूं। जैसे जल में तरङ्ग बुद्बुदे दृष्टि आते हैं सो जलरूप हैं तैसेही सर्वपदार्थ मेरेमें भासते हैं सो मुझसे भिन्न नहीं। हे चित्त! तू भी चिन्मात्रभाव को प्राप्त हो; जब तू चिन्मात्रभाव को प्राप्त होगा तब तेरा भिन्नभाव कुछ न रहेगा और शोक से रहित होगा। आत्मतत्त्व सर्वभाव में स्थित और सर्वरूप है; जब तू उसको प्राप्त होगा तब सब कुछ

तुझको प्राप्त होगा। न कोई देह है और न जगत् है सर्व ब्रह्महीं है; ब्रह्महीं ऐसे भासता है; वास्तव में अहं त्वं कल्पना कोई नहीं। हे चित्त! आत्मा चेतनरूप और सर्वगत है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं तौभी तुझको संताप नहीं और जो अनात्मा, जड़ और असत्‌रूपहै तौभी तू न रहा। जो कुछ परिच्छिन्न सा तू बनता है सो मिथ्या भ्रम है; आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है द्वैत कुछ नहीं औरसर्व वही है तो भिन्न अहं त्वं की कल्पना कैसे हो? असत् से कार्य की सिद्धता कुछ नहीं होती। जैसे शशे के सींग असत् हैं और उनसे मारनेका कार्य सिद्ध नहीं होता तैसेही तुमसे कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे हो? और जो तू कहे कि, मैं सत्-असत् और चेतन-जड़ के मध्य-भाव में हूं—जैसे तम और प्रकाश का मध्यभाव छाया है—तो सूर्यरूप परमात्मा निरञ्जन के विद्यमान रहते मन्दभावी छाया कैसे रहे जिससे कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता क्योंकि; तू जड़है। जैसे हसुआ अपने आप कुछ नहीं काटसक्ता जब मनुष्य के हाथ की शक्ति होती है तब कार्य होता है; तैसेही तुमसे कुछ कार्य नहीं होता जब आत्मसत्ता तुमसे मिलती है तब तुमसे कार्य होता है। तुम क्यों अहंकार करके वृथा तपायमान होते हो? हे चित्त! जो तू कहे कि ईश्वर का उपकार है तो ईश्वर जो परमात्मा है उसको करने न करने में कुछ प्रयोजन नहीं। सबका कर्ता भी वही है और अकर्ता भी वही है। जैसे आकाश पोल से सबको वृद्धता देनेवाला है परन्तु स्पर्श किसी से नहीं करता तैसेही परमात्मा सब सत्ता देनेवाला है और अलेपहै। हे मूर्ख, मन! तू क्यों भोगों की वाञ्छा करता है? तूतो जड़ और असत्‌रूप है और देह भी जड़ असत्‌रूप है, भोग कैसे भोगोगे? और जो परमात्मा के निमित्त इच्छा करते हो तो परमात्मा तो सदा तृप्त है और इच्छा से रहित है। सर्व में वही पूर्ण है और दूसरे से रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित है—तुझ को किसकी चिन्ता है? इससे वृथा कल्पना को त्यागकर आत्मपद में स्थित हो—जहां सर्वक्लेश शान्त होजाते हैं। जो तू कहे कि, परमात्मा के साथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्व सम्बन्ध है तो भी नहीं बनता—जैसे फूल और

पत्थर का सम्बन्ध नहीं होता। तैसेही परमात्मा के साथ तेरा सम्बन्ध नहीं होता। समान, अधिकरण और द्रव्य का सम्बन्धहोता है-जैसे जल और मृत्तिका का सम्बन्ध होता है; जैसे औषध में चन्द्रमा की सत्ता प्राप्त होती है; जैसे सूर्य की तपन से शिला तपजाती है; जैसे बीज अंकुर का सम्बन्ध होता है; पिता और पुत्र का सम्बन्ध होता है और द्रव्य और गुण का सम्बन्ध होता है। आकार सहित वस्तु का सम्बन्ध निराकार निर्गुण वस्तु से कैसे हो? परमात्मा चेतन है, तू जड़ है; वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है; वह सत्‌रूप है, तू असत्‌रूप है; इस कारण सम्बन्ध तो किसीके साथ नहीं बनता है तो तू क्यों वृथा जलता है? तू मननरूप है परमात्मा सर्वकलना से रहित है। तेज की एकता तेज से होती है और जलकी एकता जल से होती है। तू कलङ्करूप है; परमात्मा निष्कलङ्करूप है; तेरी एकता उससे कैसे हो? जिसका कुछ अङ्ग होताहै उसका सम्बन्ध भी होता है सो सम्बन्ध तीनप्रकार का है-सम, अर्धसम और विलक्षण। जैसे जल से जल की एकता और तेज से तेज की एकता होती है यह सम सम्बन्धहै पर तेरा आत्मा के साथ समसम्बन्ध नहीं। दूसरा अर्ध समसम्बन्ध यह है कि, जैसे स्त्री और पुरुष के अङ्ग समान होते हैं परन्तु विलक्षणरूप हैं सो अर्धसम सम्बन्ध भी तेरा और आत्मा का नहीं। कुछ अन्य की नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं-जैसे जल और दूध का सम्बन्ध होताहै तैसे भी तेरा सम्बन्ध नहीं-और अत्यन्त जो विलक्षण हैं उनकी नाईं भी तेरा सम्बन्ध नहीं-जैसे काष्ठ और लाख; पुरुष और हाथी, घोड़ा आदिक का सम्बन्ध नहीं। आधार-आधेयवत् भी तेरा सम्बन्ध नहीं-जैसे बीज और अंकुर, पिता और पुत्र आदिक का जो सम्बन्ध है तैसे भी तेरा और आत्मा का सम्बन्ध नहीं क्योंकि; सम्बन्ध उसका होता है जिसके साथ कुछ भी अङ्ग मिलता है; जिसका कोई अङ्ग नहीं मिलता और परस्पर विरोध हो उसका सम्बन्ध कैसे कहिये? जैसे कहिये कि, शशे के सींग पर अमृत का चन्द्रमा बैठाहै वा तम और प्रकाश इकट्ठे हैं तो जैसे यह नहीं बनता तैसेही आत्मा के साथ देह, मन और इन्द्रियों का सम्बन्ध नहीं बनता

क्योंकि; आत्मा सर्वकलना से अतीत, नित्य शुद्ध, अद्वैत और प्रकाशरूप है और मनादिक जड़ असत्, मिथ्या और तमरूप हैं इनका सम्बन्ध नहीं। जिनका परस्पर विरोध हो उनका सम्बन्ध कैसे हो? तुम तो परमात्मा के अज्ञान से मन, इन्द्रियां और देहादिक सहित उदय हुये हो और आत्मा के ज्ञान से अभाव होजाते हो फिर सम्बन्ध कैसे हो? हे मन! जो कुछ जगत् है वह सब ब्रह्मस्वरूप है—द्वैत नहीं और अहं त्वं की कल्पना भी कोई नहीं। ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; सब कलना तेरे में थी और तू तबतक था जबतक स्वरूप का अज्ञान था। जब स्वरूप का ज्ञान होता है और अज्ञान नष्ट होता है तब तू कहां है। जैसे रात्रि के अभाव से निशाचरों का अभाव होजाता है तैसेही अज्ञान के नाश हुये तेरा अभाव होजाता है॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनं नाम सप्तसप्ततितमस्सर्गः॥ ७७॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनीश्वर विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में तीक्ष्णबुद्धि से विचारनेलगा और औरभी जो कुछ उसने कहा सो सुनो। अनात्मा जो देह इन्द्रियां मनादिक हैं वे संकल्प से उपजे हैं, जब ज्ञान उदय होता है तब इनका अभाव होजाता है। हे मन! जैसे सूर्य के उदय हुये तम नष्ट होजाताहै तैसेही नित्य उदितरूप अनुभव स्वरूप परमात्मा के उदय हुये तुम्हारा अभाव होजाताहै। वासना से उसका आवरण होता है और जब वासना का अभाव होजाता है तब आवरण का भी अभाव होजाता है। जैसे मेघ के नष्ट हुये सूर्य प्रकाशता है तैसेही वासना के अभाव हुये आत्मातत्त्व प्रकाशता है। वासना का मूल अज्ञान है; जब अज्ञानसहित वासना नष्ट होती है तब चिदानन्द ब्रह्म प्रकाशता है। वासना ही का नाम बन्ध है और वासना की निवृत्ति का नाम मोक्षहै। जब वासनारूपी रस्सी काटोगे तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा। जैसे प्रकाश विना अन्धकार का नाश नहीं होता तैसेही मन, इन्द्रियां, देहादिक आत्मविचार विना नाश नहीं होतीं। जब विचार

करके आत्मपद प्राप्त हो तब मन सहित षट् इन्द्रियों का अभाव होजाता है अर्थात् इनका अभिमान नष्ट होता है और इनके धर्म अपने में नहीं भासते। जबतक देह इन्द्रियों के साथ आवरण है तबलग आत्मपद नहीं प्राप्त होसक्ता; इससे कल्याण के निमित्त आत्मपद पानेका अभ्यास करो। जबतक जीव मन और इन्द्रियों के गुणों के साथ आपको मिला जानता है तबतक अपने स्वरूप की विभुता और सिद्धता नहीं भासती; जब आत्मा का साक्षात्कार होजावेगा तब राग द्वेषादिक विकार नष्ट होंगे। जैसे सूर्य के उदय हुये निशाचरों का अभाव होजाता है तैसेही आत्मा के साक्षात्कार हुये विकारों का अभाव होताहै। जिसके देखे से इनका अभाव होजाता है उसका आत्मा के साथ सम्बन्ध कैसे हो? जैसे प्रकाश और तम का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही सत् असत् का सम्बन्ध नहीं होता और जैसे जीव से मृतक का सम्बन्ध नहीं होता तैसेही आत्मा अनात्मा का सम्बन्ध नहीं होता। आत्मा सर्व कल्पना से रहित है और मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं। कहां यह मूक, जड़ और अनात्मारूप और कहां नित्य, चेतन, प्रकाश, निराकार, आत्मारूप इनका परस्पर विरोधरूप है तो सम्बन्ध कैसे कहिये—ये तो निश्चय करके अनर्थ के कारण हैं। जबतक इनका अभिमान है तबतक जगत् दुःखरूप है और जब इन का वियोग हो तब जगत् परमात्मरूप होता है। जबतक आत्मा का अज्ञान है तबतक मनुष्य आपको इनमें मिला देखता है और दुःख पाता है और जब आत्मा का ज्ञान होता है तब अपने साथ इनका संयोग नहीं देखता। यह मैंने निश्चय करके जानाहै कि, इन्द्रियां और मनके संयोग से जगत् भासता है और जब इन्द्रियों का ग्राम नष्ट होजाताहै तब जगत् परमात्मारूप होजाता है। मैं जो आत्मा, मन और इन्द्रियों को इकट्ठा जानता था सो प्रमादरूपी मद्य के पान से मत्त हुआ मनसे जानता था। अब आत्मविचार से मन नष्ट हुआ तब सुखी हुआ हूं। जो विष को पान करके मूर्च्छित हो सो तो बनता है परन्तु पान किये विना मूर्च्छित होसो आश्चर्य है। इससे यदि अनात्मा का इसके साथ संयोग होता है तो सुख

दुःख करके राग द्वेषवान् होना भी बनता पर आत्मा तो सुख दुःखका साक्षीभूत है। सुखका संयोग ही जिससे नहीं और राग द्वेष से जलता है तो महामूर्खता है। आत्मा तो सुख दुःख का साक्षीभूत है जैसा उसके आगे अभ्यास होता है तैसाही भासता है, कदाचित् विपर्यय भाव को नहीं प्राप्त होता सुख दुःखमें मूर्ख मन राग द्वेषवान् होताहै, आत्मा तो सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है उसके साथ इन्द्रियों का संयोग कैसे हो? अब जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ तो आत्मा में कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये? जहां चित्तकलना होती है वहां कर्तृत्व भोक्तृत्वभी होताहै और जहां चित्त कलनाका अभावहै वहां कर्तृत्व भोक्तृत्व का भी अभावहै। ऐसा निष्कलङ्क आत्मतत्त्व मैं हूं कि, न कर्ता हूं, न भोक्ता हूं, न मेरे में बन्ध है, न मोक्ष है, न हन्ता हैं, न अहन्ताहैं; मैं सर्वात्मा अलेपरूपहूं। हे मन! तू भी मैं हूं और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश पांचोतत्त्व भी मैं ही हूं। इसप्रकार निर्णय करके जिसने धारा है वह मोह को नहीं प्राप्त होता। जो अहं अभिमान करनेवाला आत्मा से आपको भिन्न जानता है वह दुःखी होता है और जब अपने स्वभाव में स्थित होता है तब परमसुखी होताहै। इससे जिसको कल्याण की इच्छा हो उसको एक आत्मा परमात्मपरायण होना योग्य है। जब स्वरूप का त्यागकर संकल्प की ओर धावता है तब दुःखों के समूह को प्राप्त होता है। हे चित्त! जो तू अपने में कर्तृत्व देखता था सो इन्द्रियों सहित जड़रूप पत्थर के समान हैं—जैसे आकाश में पवन नहीं लगता तैसेही तुमसे कर्तृत्व नहीं होता। जब स्वरूप का प्रमाद होता है तब जीव चित्त आदिक से आपको मिला जानता है और चित्तादिक आत्मा की सत्ता पाकर चेतन होता है जैसे अग्नि की सत्ता पाकर लोहा भी जला सक्ता है तैसेही तुम आत्मा की सत्ता पाकर कर्तृत्व भोक्तृत्वमें समर्थ होते हो। जब आत्मविचार करके स्वरूप का साक्षात्कार होता है, अज्ञान-वृत्ति निवृत्त होजाती है और मनादिक का वियोग होता है तब सर्वकलना से रहित हुआ केवल मोक्षरूप आत्मा होता है और कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभाव होजाता है। जैसे आकाश में लाली का अभाव है तैसेही आत्मा

में कर्तृत्व का अभाव है। सब जगत् आत्मा स्वरूप भासता है। जैसे समुद्र तो तरङ्ग आदिक नानाप्रकार से होता है सो सब जलरूप है-भिन्न नहीं; तैसेही सर्व जगत् आत्मारूप है-आत्मा से भिन्न नहीं। सच्चिदानन्द आत्मा मैं अपने आपमें स्थित हूं और द्वैतकलना मेरे में कोई नहीं। जैसे समुद्र उष्णता से रहित है तैसेही परमात्मा सर्वकलना से रहित है और जैसे आकाश में वन नहीं होता तैसेही परमात्मा में कलना नहीं होती वह संवेदन से रहित, संवित्मात्र सर्वात्मा है; जब उसका साक्षात्कार होता है तब अहं त्वं आदिक कलना का अभाव होजाता है। वह अनादि, अरूप, सर्वगत, सदा अपने आपमें स्थित है; ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है उसको द्वैतकलना आरोपने को कौन समर्थ है ऐसा कौन है जो आकाशमें ऋग्वेद लिखे? नित्य उद्योत; सर्वकासार, अद्वैत आत्मा है उसमें द्वैत कलना का अभाव है और सबमें पूर्ण, निर्मल, नित्य आनन्दरूपहै। ऐसे आत्मा को अब मैं प्राप्त हुआ हूं; जगत् का सुख दुःख अब नष्ट हुआ है और सम शान्तरूप हुआ हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने अनुशासनयोगोपदेशो नामाष्टसप्ततितमस्सर्गः ॥ ७८ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव मुनिश्रेष्ठ विचारता था। फिर जो कुछ वह निर्मलबुद्धि से विचारने लगा सो भी सुनो। हे इन्द्रिय-रूप, मन! तुम क्यों अपने अर्थों की ओर धावते हो? तुमको तो विषयों से शान्ति नहीं होती-जैसे मृग मरुस्थल की नदी देखकर दौड़ता है और शान्तिमान् नहीं होता। इससे तुम भी विषयों की ओर तृष्णा करने से शान्तिमान् न होगे। इनकी इच्छा त्यागकर जो परमात्मतत्त्व अविनाशी, सर्व अवस्था में एकरस और सत्य है उसको ग्रहण करो तब सब दुःख तुम्हारे मिट जावेंगे। तुम्हारे साथ मैं मिला था तब मैंने भी दुःख पाया। तुम अज्ञान से उत्पन्न हुए हो और जो तुम्हारे साथ मिलता है उसको भी दुःख प्राप्त होता है। जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीर से स्पर्श करती है उसको जलाती है तैसेही जिसको तुम्हारा संग हुआ है वह दुःख पाता

है। हे मन! यह जीव तुम्हारे संग से काल के मुख में जा पड़ता है- जैसे नदी जलसहित होती है तब समुद्र की ओर चली जाती है-जल से रहित हो तो क्यों जावे; तैसेही तुम्हारा संग करके जीव काल के मुख में जा पड़ता है, तुम्हारा संग न हो तो क्यों पड़े? जैसे मेघ कुहिरे से सूर्य को घेर लेता है; तैसे ही मनरूपी मेघ इच्छारूपी कुहिरे से आत्मारूपी सूर्य को घेर लेता है और परम्परा दुःखों की वर्षा करनेवाला है। हे मन! तेरे में चिन्ता उठती है इससे तू मर्कटकी नाईं है। जैसे मर्कट वृक्ष को ठहरने नहीं देता, हिलाता है तैसेही चित्त देह को ठहरने नहीं देता। चित्तरूपी पखेरू के लोभ और लज्जा दो पंख हैं और रागद्वेषरूपी चोंच है जिससे शरीररूपी वृक्ष पर बैठा शुभगुणों को काट २ खाता है। चित्त-रूपी महानीच कुत्ता भोग भावनारूपी महाअपवित्र पदार्थों को हृदयरूपी स्थान में इकट्ठा करता है और ऐसी चेष्टा से कदाचित् रहित नहीं होता। चित्तरूपी उलूक अज्ञानरूपी रात्रि में बिचरता है; चेष्टा करके प्रसन्न होता है और शब्द करता है। जैसे श्मशान से वैताल शब्द करता है। जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट हो तब चित्तरूपी उलूक का भी अभाव हो और सम्पदा आन प्रवेश करे। जैसे सूर्य के उदय हुये सूर्यमुखी कमल उदय होता है तैसेही सम्पदा प्रफुल्लित होती है जब मोहरूपी कुहिरा और इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाश से निवृत्त होतीहै तब निर्मल आकाश प्रकट होता है। हे चित्त! जबतक तू नष्ट नहीं होता तबतक शान्ति नहीं होती। स्वस्थ बैठे हुये जो चिन्ता प्राप्त होती है वह तेरेही संयोग से होती है। जहां चि नष्ट होता है तहां सर्व आनन्द होकर शीतलता और मित्रता से पावन होता है। जैसे शीतकाल का आकाश निर्मल होता है और मेघ के नष्ट हुये सूर्य प्रकाशता है तैसेही अज्ञान के नष्ट हुये आत्मा प्रकाशता और प्रसन्नता, गम्भीरता, महत्त्वता और समता होती है। जैसे वायु और मन्दराचल पर्वतसे रहित क्षीरसमुद्र शान्तिमान् होताहै और पूर्णमासी का चन्द्रमा शोभता है तैसेही अज्ञान के नाश हुये आत्मानन्द पाकर यह मनुष्य शोभता है। हे चित्त! यह स्थावर जङ्गम जगत् संवितरूप आकाश

में है। उस महत् ब्रह्म को कुम्भी प्राप्त हो। जो पुरुष आशारूपी फांसी को तोड़कर आत्मपद में प्राप्त हुआ है और जिसने संसार का सद्भाव निवृत्त किया है वह जन्म मरण के बन्धन में नहीं पड़ता। जैसे जला हुआ पत्र फिर हरा नहीं होता तैसेही चित्त नष्ट हुआ जन्म मरण नहीं पावता। हे चित्त! तू सबको भक्षण करनेवाला है। जो तू संसार को सत् मानकर उसकी ओर धावेगा तो तेरा कल्याण न होगा और जो आत्मा की ओर आवेगा तो तेरा कल्याण होगा। जब तू अपना अभावकर आत्मपद में स्थित होगा तब कल्याणरूप होगा और जो तू अपना सद्भाव करेगा कि, आकार को न त्यागेगा तो दुःखी होगा। जो तेरा जीना है वह मृत्यु समान है और जो मृत्यु है सो जीने के समान है। दोनों पक्षों में जो तेरी इच्छा हो सो अङ्गीकार कर। जो तू अबहीं आपको आत्मपद में निर्वाण करेगा तो परमपद को प्राप्त होकर परमसुखी होगा और जो न करेगा तो परम दुःखी होगा जो आत्मपद का त्याग करेगा वह मूढ़ है। तेरा निर्वाण होना आत्मपद में जीने का निमित्त है और आत्मा से भिन्न जो तू जीने की इच्छा करता है सो तेरा जीना मिथ्या है अर्थात् तू आदि भी मिथ्या है और अबभी विचार विना भ्रममात्रहै; विचार किये से नष्ट हो जावेगा। जैसे सूर्य के प्रकाश विना अन्धकार होता है और प्रकाश से नष्ट होजाता है तैसे ही विचार विना चित्त है; विचार से नाश होजाता है। इतने काल में अविवेक से ही जीता था। जैसे बालकों को अपनी परछाहीं में वैताल कल्पना होती है और विचार विना भय पाता है—विचार किये से निर्भय होता है; तैसेही अब मैं तेरे संग से छूट अपने पूर्व स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं और विवेक से तेरा अभाव हुआ है। इससे विवेक को नमस्कार है। हे चित्त! अविवेक से तू मेरा मित्र था अब बोध से तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया। तू परमेश्वररूप है। अब वासना नष्ट हुई है। आगे तेरे में नाना प्रकार की वासना थी उससे तू मलीन और दुःखरूप था। अब वासना के नष्ट होने से तेरा परमेश्वररूप हुआ है। तेरे में अज्ञान से चित्तस्वभाव उपजा दुःखों का कारण था सो विवेक से लीन हुआ है। जैसे रात्रि के

पदार्थ सूर्य के उदय हुये लीन होजाते हैं तैसेही विवेक से चित्तभाव नष्ट हुआ है सो सिद्धान्त का कारण है। तेरे संग से मैं तुच्छसा होगया था; अब शास्त्रों की युक्ति से निर्णय किया है कि, न तू आगे था, न अब है और न फिर होगा। जबतक मैंने आपको न जाना था तबतक तेरा सद्भाव था; अब मैंने आपको जाना है और अपने आपमें स्थित हुआ हूं। अब मैं परम निर्वाण और शान्तरूप हूं; सब ताप मेरे नष्ट हुये हैं और नित्यशुद्ध चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप हूं। जगत् की सत्य-असत्य कलना मेरी नष्ट हुई है क्योंकि, कलना सब चित्त में थी; जब चित्त निर्वाण होगया तब कलना कहां रही ? मैं केवल शुद्ध आत्मा हूं मेरा प्रतियोगी कोई नहीं और न व्यवच्छेद है क्योंकि; दूसरा कोई नहीं केवल चित्त की चेतना फुरती थी सो निर्वाण होगई है और अब मैं स्वस्थ हुआ हूं। जैसे तरङ्गों से रहित समुद्र अचल होता है तैसे ही सर्व कलना से रहित मैं वीतराग हूं और संवेदन से रहित समसत्तामात्र अपने आपमें स्थित हूं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशोनामैकोनाशीतितमस्सर्गः॥ ७९ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वीतव ने निर्वासनिक हो निर्णय करके विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में समाधि लगाई और आकाशवत् निर्मलचित्त हो इन्द्रियों की वृत्ति बाहर से खींचकर अचल की और फिर ग्रीवा को शम करके चित्त की वृत्ति अनन्तआत्मा साक्षीभूत में स्थित की। जैसे लकड़ियों को जलाकर अग्नि की ज्वाला शान्त होजाती है तैसेही उसके प्राण और मन की वृत्ति का स्पन्द मिट गया और जैसे शिला में खोदी हुई पुतली होती है और मूर्ति की लिखी हुई पुतली होती है तैसे ही स्थित होगया। मेघों की वर्षा शिर पर हो, मण्डलेश्वर शिकार खेलें, बड़े शब्द हों, रीछ और वानर शब्द करें, बारासिंगों और हाथियों के शब्द हों; वन में अग्नि लगे; पत्थरों की वर्षा हो, वायु चले और धूप पड़े तो भी वह समाधि से न जागे और जैसे पहाड़ में शिला दबी होती है तैसेही उसका शरीर दब गया। जबतीनसौ वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हुये तब चित्त

फुर आया कि, शरीर मेरे साथ है परन्तु प्राण नहीं फुरे और चित्त के फुरने में आपको कैलास पर्वत के ऊपर और कदम्ब के वृक्ष के नीचे देखा। सौ वर्ष पर्यन्त मौन होकर जीवन्मुक्त और निर्मल आत्मा हो बिचरा। सौ वर्ष पर्यन्त विद्याधर होकर विद्याधरों में बिचरा, उसके अनन्तर और पञ्चयुग बीतकर इन्द्र हुआ तब देवता उसे नमस्कार करते थे। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! देश काल और मनादिक प्रतिभा उसको अनियत और अनियम कैसे भासित हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त सर्वात्मरूप है; जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसा ही तैसा भासता है। जैसे जैसे देश काल का फुरना होता है तैसे ही तैसे अनुभव होता है। हे रामजी! जैसा कुछ प्रपञ्च है वह मनोमात्र है। जैसा फुरना तीव्र होता है तैसे ही अनुभवसत्ता में भासित हो वहां स्थित होता है। जब और भ्रममें गया तो नियम के अनुसार तैसेही होता जाता है। जो अज्ञानी होता है उसको वासना से नाना प्रकार का जगत् भासता है और जो ज्ञानवान् होता है वह सब आत्मा को देखता है; उसका फुरना भी अफुरना है और वासना भी अवासना है। वीतव मुनीश्वर ने चित्त के फुरने से इतना देखा परन्तु स्वस्थरूप था इससे उसकी वासना भी अवासना थी। जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही उसकी वासना भी अवासना थी और भ्रान्ति का कारण न था। फिर कल्पपर्यन्त वह चन्द्रधार सदाशिवजी का गण हो समस्त विद्या का ज्ञाता और सर्वज्ञ, त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त हो कर बिचरा। हे रामजी! जैसा किसी का संस्कार दृढ़ होता है। तैसा ही उसको अनुभव होता है। जैसे वीतव चित्त को स्पन्द करके जीवन्मुक्त का अनुभव करता था। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जो ऐसे हैं तो जीवन्मुक्त के मन में बन्ध मोक्ष हुआ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जीवन्मुक्त को सब ब्रह्मस्वरूप भासता है; बन्ध मोक्ष अवस्था उसमें कहां है? ज्ञानमात्र आकाश में जैसा फुरना होता है तैसा हो भासता है। हे अङ्ग! यह सब चिन्मात्रस्वरूप है और जगत् नाना प्रकार का मन से भासता है; वास्तव में न जगत् है; न अजगत है; केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है। जगत् के भूत भविष्यत् केवल ब्रह्मसत्ता भासती है।

चिन्मात्र से भिन्न जगत् मन के फुरने से भासता है जिनको ऐसा ज्ञान नहीं उनको जगत् वज्रसार से भी दृढ़ हो भासता है और ज्ञानवान् को आकाशवत् भासता है। हे रामजी! अज्ञान से मन उपजा है और उससे सम्पूर्ण जगत् हुआ है; वास्तव में और कुछ नहीं। जैसे समुद्र में तरङ्ग और उल्लास होते हैं तैसे ही चिदाकाश में आकार भासते हैं। जब चित्त अचित्त होजाता है तब कुछ द्वैत नहीं भासता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवमनोयज्ञवर्णनं नामा-शीतितमस्सर्गः॥ ८०॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर विन्ध्याचल पर्वतमें फँसा था फिर उसकी क्या अवस्था हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसके अनन्तर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर एक काल में शरीर गणों को मन से विचारने लगा कि, कई नष्ट होगये हैं। उन अनष्टों में पृथ्वी के मध्य जो उसका स्थित था उसको देखा कि, कन्दरा की धूड़ में वर्षा से फँस गयाहै और ऊपर तृणजाल जम गयाहै। उसको देखकर कहने लगा कि, इसमें प्रवेश करूं पर फिर विचार किया कि, यह तो जड़, गूंगा और फँसा हुआ है और इसको मैं नहीं निकाल सक्ता; इससे सूर्यमण्डल को जाऊं कि सूर्य के सारथी अरुण पंगु इसको निकालेंगे; अथवा इसके साथ मेरा क्या प्रयोजन है? यह नाश होजावे अथवा रहे इतना यत्न मैं किस निमित्त करूं? मैं अपने निर्गुण स्वरूप में स्थित होऊं देह से मेरा क्या है। इसप्रकार विचार वीतव तूष्णी होगया और एक क्षण के अनन्तर फिर चिन्तन करने लगा कि, पृथ्वी में देह से न कुछ त्यागने योग्य है और न कुछ ग्रहण करने योग्यहै; इससे देहको त्यागना और रखना समान है तो यह शरीर किस निमित्त दबारहे। कुछ काल और इसका प्रारब्धवेग है इसलिये आकाश में जो सूर्य स्थित है उसमें प्रवेश करूं—जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब प्रवेश करताहै और उस शरीरको सूर्य के सारथीसे निकलवाऊं। हे रामजी! ऐसे विचारकर मुनीश्वर पुर्यष्टकारूप से आकाशमार्ग में चढ़ा और प्रणाम करके सूर्यके भीतर वायुरूप हो प्रवेश किया—जैसे शस्त्र पिण्ड

में अग्नि प्रवेश करती है। सूर्य भगवान् ने जाना कि, वीतव मुनीश्वर ने प्रवेश कियाहै और सर्वज्ञथे इससे जाना कि, पृथ्वी में इसका शरीर कीचड़ और तृणों से दबा हुआ है उसके निकलवाने के निमित्त आया है। ऐसे विचार सूर्य ने अपने सारथी से कहा। हे सारथी ! विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में वीतव मुनीश्वरका शरीर दबा पड़ा है उसको तू जाकर निकाल दे। तब अरुणनामक सारथी ने जिसका शरीर हाथी के समान है विन्ध्याचलपर्वत में आकर नखोंसे वह शरीर निकाला। उसके नख ऐसे थे जिनसे वह पहाड़ उखाड़डाले, उन नखों से धरा कोटर में गड़े हुये उस शरीर को उसने निकाला जैसे समुद्र के तीरे भीहका तन्तुकीड़ा पाते हैं तैसेही पर्वत की कन्दरा से उस शरीर को निकाल डाला। तब मुनीश्वर ने पुर्यष्टका से उस शरीर में प्रवेश किया—जैसे पक्षी आकाशमार्ग से उड़ता उड़ता आलय में आ प्रवेश करे—और सावधान होकर अरुण को नमस्कार किया और अरुण ने भी वीतव को नमस्कार किया और अपने २ कार्यकी ओर हुये। अरुण तो आकाशमार्ग को गया और मुनीश्वर का शरीर कीचड़ से भरा हुआ था इससे उसने तालाब पर जाकर डुबकीमारी और जैसे हाथी मल धोता है तैसेही स्नान करके संध्यादिक कर्म किये और सूर्य भगवान् का पूजन किया। जैसे प्रथम तप से शरीर शोभता था तैसेही भूषित किया और मैत्री, समता, सत् मुदिता आदिक गुणों से सम्पन्न होकर ब्रह्मलक्ष्मी से सुशोभित हुआ और सबके संगसे रहित भी रहा कि, इनगुणों को भी स्वरूप में स्पर्श न करे और आपको शुद्धस्वरूप जाने॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नामैकाशीतितमस्सर्गः॥ ८१ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इस प्रकार जब कुछ दिन व्यतीत हुये तब समाधि के निमित्त मुनीश्वर का मन उदय हुआ और विन्ध्याचल पर्वत की कन्दरा में जा बैठा। पूर्व जो विचार अभ्यास किया था और परावर परमात्मदृष्टि हुई थी उससे फिर चित्त को कहा कि, हे चित्त और इन्द्रियो ! मैंने तुम्हारा पूर्वही प्रहार कर छोड़ा है। अब तुम्हारे अचित्त में

अर्थ अनर्थ कोई नहीं क्योंकि; अस्ति नास्ति कलना मेरी नष्ट हुई है। अस्ति नास्ति के पीछे जो शेष रहता है उसमें स्थित हूं। जैसे पहाड़ का शृङ्ग अचल होता है तैसे ही अचलहूं। सदा उदयरूप असत्की नाईं स्थित हूं और सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् हूं। असत की नाईं इस प्रकार कि, सदा अक्रियरूप हूं और असत्‌रूप उदय की नाईं स्थित हूं। असत् इस प्रकार से कि, मन इन्द्रियों का विषय नहीं और उदय की नाईं इस कारण से कि, सबका साक्षीभूत हूं और सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपमें स्थित हूं। प्रबुद्ध और सुषुप्तिविषय स्थित हूं। प्रबुद्ध इसकारण कि, जो इन्द्रियों के विषय का उपलब्धि करताहूं और सुषुप्ति इस कारण कि, हर्ष, शोक, इष्ट, अनिष्ट से रहित और जगत् की ओरसे सुषुप्तिसमाधि में हूं और वहां जाग्रत् हुआ तुरीया पद आत्मतत्त्व में स्थित हूं। जैसे किसी स्थान में खंभ स्थित होताहै तैसेही स्थितरूप नित्य, शुद्ध, समानसत्ता जो आत्मपद है वहां मैं निरामय स्थित हूं। हे रामजी ! इस प्रकार ध्यान करता हुआ वह मुनीश्वर ध्यान में लगा और छः दिनतक ध्यान में रहा और फिर जब जगा तो उसकाल को क्षण के समान जाना जैसे सोया हुआ क्षण में जागे। इसी प्रकार वीतव शुद्धपद को प्राप्त हुआ और जीवन्मुक्त होकर चिरकाल पर्यन्त विचरता रहा। न कोई वस्तु उसे हर्ष दे और न शोक दे; चलता हुआ भी स्थिर रहे और इन्द्रियों का व्यवहार करता भी इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में सम रहे—कदाचित् किसीमें चलायमान न हो। वह चलता बैठता मन और इन्द्रियों से कहे, हे इन्द्रियो ! मरो। हे मन ! अब तू समवान् हुआ है और आत्मा को पाकर अब देख तुझको क्या सुख है। जिस सुख के पायेसे और पाने योग्य कुछ नहीं रहता, वह निरोग सुख है। ऐसा जो परमशान्तरूप अचल सुख है तिसको आश्चर्य करके चञ्चलता को त्याग और हे इन्द्रियो ! तुम्हारा वास्तव में कुछ स्वरूप नहीं और आत्मपद में तुम दृष्ट नहीं आतीं। अपने स्वरूप के जाने विना तुम मुझको दुःख देती थीं; अब मैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ हूं और अब तुम मुझे वश नहीं करसक्तीं क्योंकि; तुम अवस्तुरूप हो आत्मा के प्रमाद से तुम्हारा

भान होता है। जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसेही आत्मा में जो अनात्म भावना और अनात्मा में आत्मभावना होती है सो अविचार से होती है और विचार कियेसे नहीं होती। अब विचारकरके यह भ्रम निवृत्त हुआहै; तुम इन्द्रियांगण और हो; अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है। औरका दुःख आपमें मानना यही मूर्खताहै। जैसे वनकी लकड़ी और है, बांस और है और चर्म और है जिससे रथ बनता है और लोहा, पीतल और कड़े जिनसे रथ जड़ाजाता है–सो भी और २ हैं और बैल जो रथ को चलाता है सो भी जुदा है; इन सबसे रथ बनता है और जैसे गृह का आकार होता है तैसे रथ है उसमें बैठनेवाला पुरुष भी और होता है और रथ की सब सामग्री परस्पर और २ होती है तो यदि उसमें बैठनेवाला कहै कि मैं रथ हूं तो नहीं बनता; तैसेही शरीररूपी रथ अज्ञान से मिला है। इन्द्रियां और हैं और मनादिक औरहैं उसमें पुरुष है सो जीव है; यदि जीव कहे कि, मैं शरीर हूं तो बड़ी मूर्खता है। उस शरीर के सुख दुःख मूर्खता से आपको मानता है जो विचार करके देखो तो रागद्वेष के क्षोभ से मुक्त हो। मैंने अविचाररूप विस्मृतिस्वरूप को दूर से त्यागा है और स्वरूप की स्मृति स्पष्ट की है कि, आत्मातत्त्व सत् है। उसीको मैंने सत् जाना है और अनात्मा असत् है उसको असत् जाना है। जो सत् है वह स्थित है, जो असत् है वह क्षीण होजाता है। हे रामजी! इस प्रकार वीतवमुनि विचार करके जीवन्मुक्त हुआ और अपने स्वरूप में बहुत वर्षों को व्यतीत किया। निर्भयपद में चित्तादिक भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं। ऐसे शुद्धपद को प्राप्त हुआ वह यथाभूतार्थ आत्मध्यान में स्थित हुआ और ग्रहण और त्याग की कुछ भावना न रही परिपूर्ण आत्मपद को प्राप्त हुआ। अगस्त्य मुनि का पुत्र वीतवमुनि उस पद को पाकर निर्वासनिक हुआ। फिर जिस काल में और जिस प्रकार से वह विदेह मुक्त हुआ है वह भी सुनो। बीस हजार और सातसै वर्ष वहजीवन्मुक्त रहकर फिर विदेह मुक्त हुआ, जो इच्छा अनिच्छा से रहित पद है और जन्म मरण का जिसमें अन्त है उस रागद्वेष से रहित पद को प्राप्त

हुआ। हे रामजी! फिर उसने हिमालय पर्वतकी कन्दरा में प्रवेश किया और पद्मासन बांध हाथ जोड़कर कहा, हे राग! तुम निरोगता और निर्द्वेषता को प्राप्त हो। तुम्हारे साथ मैंने चिर पर्यन्त विवेक से रहित क्रीड़ा की है। तुम अब जाओ, मेरा तुम को नमस्कारहै। हे भोग! तुम्हारी लालसा से मुझको परमपद का विस्मरण होगया था। जैसे माता सुख के निमित्त पुत्र की लालसा करती है तैसेही मैं सुख जानकर तुम्हारी लालसा करता था। अब तुम जाओ तुमको मेरा नमस्कार है। अब मैं निर्वाणपद को प्राप्त होता हूं। हे दुःख! तुमको भी नमस्कार है। तेरे उपदेश से मैं आत्मपद को प्राप्त हूं क्योंकि, मैं सदा भोग और सुख चाहता था, और जब सुख प्राप्त होता था तब तुझको भी साथ ले आता था। सुखसे तेरी उत्पत्ति होती है; सुख की लालसा में तो मैं अनेक जन्म पाता रहा पर जब सुख आवे तब तुझको भी साथ ले आवे। तुझको देखकर मुझको आत्मपद की इच्छा उपजी और तेरे प्रसाद से मैं परम शीतल पदवी को प्राप्त हुआ हूं। हे दुःख! तू तो दुःख था परन्तु मुझको आत्मपद प्राप्त किया इससे तेरा कल्याण हो तू अब जा हे मित्र! संसार में जीना असार है; जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होताहै। तू ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया कि, अपना नाश किया और मुझको सुख प्राप्त किया क्योंकि जब तू मुझको प्राप्त न था तो मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता था। तूने अपना नाशकरना माना परन्तु मुझको सुख प्राप्त किया। हे मित्र! तू बांधवों की नाईं चिरकाल पर्यन्त मेरे साथ रहा और कदाचित् मुझसे दूर न हुआ। मैंने तेरा नाश नहीं किया पर तूने अपना नाश आपही किया है। तू मुझको जब प्राप्त हुआ था तब मुझको विवेक उत्पन्न हुआ, उस विवेक ने तेरा नाश कियाहै इससे तुझको मेरा नमस्कार है। और हे माता[१]तृष्णा। तुझको भी नमस्कार है। तू सदा मेरे साथ रही है और कदाचित् त्याग नहीं किया। जैसे अयाने बालक का त्याग माता नहीं करती तैसेही तूने मेरा त्याग नहीं किया। अब तू जा। हे कामदेव!

१ वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः। गात्राणि शिथिलायन्ते, तृष्णैकातरुणायते॥१॥

तुझने आपही विपर्यय होकर अपना नाश किया। जब तू बाहिर्मुख था तब जीता था और जब अन्तर्मुख हुआ तब तू मिटगया। तुझको नमस्कारहै। हे सुकृतो! तुमको नमस्कारहै। तुमने भी बड़ा उपकार किया कि, नरकों से निकालकर स्वर्गों में डाला परन्तु अन्त में सबका वियोग होनाहै इससे तुम भी जाओ। हे दुष्कृतो! तुमभी जाओ। विकर्मरूपी तुम्हारा क्षेत्र है और युवाअवस्था बीज है उससे दुःख फल होता है तुम्हारे साथ भी संयोग हुआ था इससे तुमको भी नमस्कार है, तुमभी जाओ। हे मोह! तुझको भी नमस्कार है। तुझसे चिरकाल मैं बँधाथा और नाना प्रकार के स्थानों को प्राप्त होता था और तू भय दिखाता था उससे मैं भय पाता था। इससे तुझको नमस्कार है, अब तू जा। हे गिरिकन्दरा! तुझको भी नमस्कारहै। तुममें मैंने चिरकाल तप कियाहै। हे बुद्धि! हे विवेक! तुमको भी नमस्कारहै। तुमने मेरे साथ उपकार कियाहै कि, संसारबन्धनसे मुक्तकिया। तुमभी जाओ। हे दण्ड और तूंबा! तुमको भी नमस्कारहै। तुम भी जाओ। बहुत काल तुम भी मेरे सम्बन्धी रहेहो। हे देह! रक्तमांसका पिंजरहोकर तू मेरे साथ बहुतकाल रही है और तू ने उपकार किया है। विवेक उपजाने का स्थान तूही है, तेरे संयोग से मैंने परमपद पाया है। तूभी अब जा, तुझको नमस्कार है हे संसारके व्यवहारो! तुमको भी नमस्कार है, तुम्हारे में मैंने बहुत क्रिया की है। ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जिससे मैंने व्यवहार न किया हो, ऐसा कर्म कोई नहीं जो मैंने न किया होगा और ऐसा देश कोई नहीं जो देखा न होगा। अब सबको नमस्कार है। हे इन्द्रियो, प्राण और मनादिक! तुमको नमस्कार है। तुम्हारा हमारा चिरकाल संयोगथा अब वियोग हुआ क्योंकि; जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है। इससे तुम्हारा हमारा भी वियोग होता है। नेत्रों की ज्योति सूर्यमण्डल में जा लीन होगी, प्राणों की गन्ध पृथ्वी में लीन होगी और प्राण त्वचा पवन में, श्रवण आकाश में, मन चन्द्रमा में और जिह्वा रस में लीन होगी। इसी प्रकार सब अपने २ अंश में लीन होंगे। जैसे लकड़ियों के जले से अग्नि शान्त

होजाती है; शरत्कालमें मेघ शान्त होजाता है; तेलसे रहित दीपक निर्वाण होजाताहै और सूर्य के अस्त हुये प्रकाश शान्त होजाता है तैसेही मनादिक शान्त होजावेगा। हे रामजी! ऐसे विचार करते २ उसका मन सर्वकार्यसे रहित हो प्रणव के ध्यानमें लगा और सर्वदृश्य से शान्त और मोहरूपी मल को त्यागकर प्रणव के विचार में लगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे द्व्यशीतितमस्सर्गः॥ ८२॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसने शब्दब्रह्म प्रणव का उच्चार किया और पञ्चम भूमिका जो चित्त की अवस्थाहै उसको प्राप्त हुआ भीतर-बाहर के स्थूल सूक्ष्म पदार्थों और त्रिलोकी के सब संकल्पों को त्यागकर वह अक्षोभरूप स्थित हुआ जैसे चिन्तामणि अपने प्रकाश में स्थित होती है; जैसे पूर्णकाल से चन्द्रमा अपने आपमें स्थित होता है, जैसे मन्दराचल के निकलने से क्षीरसमुद्र स्थित होता है और मथनेसे रहित मन्दराचल स्थित होताहै जैसे कुम्हार का चक्र फिरता २ ठहर जाता है जैसे सूर्यके अस्त हुये जीवों की व्यवहार क्रिया ठहरजाती हैं; जैसे मेघ से रहित शरत्काल का आकाश निर्मल होताहै और प्रकाश तम से रहित आकाश होता है; तैसेही फुरनेसे रहित उसका मन शान्ति को प्राप्त हुआ। प्रणव का ध्यान करके फिर उस वृत्ति के अन्त को प्राप्त हुआ और फिर मन्त्रको भी त्याग—जैसे महापुरुष क्रोध को त्यागते हैं तैसेही वृत्तिको त्यागा। फिर तेजका प्रकाश उदय हुआ उसको भी निमेष में त्यागा। आगे न तेज है, न तम है उसमें अभाववृत्ति रहती है उसको भी निमेष में त्यागा, तब जैसे नौतन बालक की जन्म से पदार्थ-ज्ञान से रहित अवस्था होती है तैसेही अवस्था प्राप्त हुई। तब जो सत्ता-मात्र आत्मतत्त्व सुषुप्त पद है उसका आश्रय किया और महाचल जो सुमेरुकी नाईं स्थिर अवस्थाहै उसको प्राप्त हुआ। फिर केवल अचेतन चिन्मात्र तुरीया निरानन्द आनन्दपद में जिसमें स्वरूप से भिन्न और आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। वह असत् असतरूप है सर्वक्रिया से अतीत है, इस कारण असत् है और अनुभवरूप है इस कारण सत्यरूप है। ऐसे

अशब्दपद को वह प्राप्त हुआ जो परमशुद्ध पावन और सर्वभाव के भीतर प्राप्त है और सर्वभाव शब्द से रहित है। जिसको शून्यवादी-शून्य, ब्रह्मवादी-ब्रह्म; विज्ञानवादी-विज्ञान, सांख्यमतवाले—पुरुष; ईश्वर; शैवी—शिव; वैष्णव—विष्णु; शाक्त—परमशक्ति; कालवादी-काल; आत्मवादी—आत्मा और माध्यमिक-माध्यम इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं सो एक परब्रह्म को ही कहते हैं जो सर्वदा, सर्वकाल, सर्वप्रकार,सर्व में सर्वरूप है। ऐसे सर्वात्मा को वह मुनीश्वर प्राप्त हुआ। जिस आनन्द समुद्र के बल से सर्वको आनन्द होता है ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनन्द को वह प्राप्तहुआ और वहीरूप होगया। जो अन्य और निरन्य, निरञ्जन, सर्व, असर्व, अजर, अमर सबके आदि सकलङ्क—निष्कलङ्क है ऐसे आकाश से निर्मल पद को वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमस्सर्गः॥ ८३॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दुःखरूप संसारसमुद्र के पार हो वीतव मुनीश्वर उस परमपद को प्राप्त हुआ जिसपद के प्राप्त हुये जीव फिर जन्म मरण को नहीं पाता और जिस पद में स्थित हुआ परमशान्त उपशम आनन्द को प्राप्त होता है—जैसे समुद्र में पड़ी हुई बुन्द समुद्र होजाती है तैसेही ब्रह्मसमुद्र में वह ब्रह्म होगया और शरीर जो था वह विरस होकर गिरपड़ा जैसे शीतकाल में वृक्षों के सूखे पत्र गिरपड़ते हैं। शरीररूपी वृक्ष में हृदयरूपी आलय था और उसमें प्राणरूपी पक्षी रहता था सो चिदाकाश में प्राप्त हुआ जैसे खँभानी से पत्थर धावता है तैसेही जा प्राप्त हुआ और अपने स्वरूप में स्थित हुआ। हे रामजी! यह मैंने वीतव की कथा तुमको सुनाई है सो अनन्त विचारकर युक्त है इस प्रकार विचारकर वीतव विश्रामवान् हुआ है। तुमभी उसको विचार कर।सिद्धता के सार को प्राप्त हो और दृश्य की चिन्तना को त्याग के सावधान हो। हे रामजी! जो कुछ मैंने तुमसे पूर्वकहा है कि, उसपद में प्राप्तहुआ फिर कुछ पाने योग्य नहीं रहता और अब जो कुछ कहता हूं और जो कुछ

पीछे कहूंगा उसको विचारो। मुक्ति ज्ञानही से होती है और ज्ञानही से सब दुःख नाश होते हैं; ज्ञानही से अज्ञान निवृत्त होता और ज्ञानही से परम सिद्धता को प्राप्त होता है। पाने योग्य यही वस्तु है, और कोई दुःखों का नाश नहीं करसक्ता। यह निश्चय है कि, ज्ञान से सब फांसी कटजाती हैं और ज्ञान ही से वीतव ने मनको चूर्ण किया। हे रामजी! वीतव की संवित् जगत् के अतीत होगई। जो कुछ दुःख है वह मन से होताहै और मन के उपशम हुये सब जगत् अनुभवरूप होजाता है। वीतव भी मनोमात्र था; मैं भी मनोमात्र हूं तूभी मनोमात्र है और पृथ्वी आदि जगत् भी सर्व मनोमात्र है; मन से भिन्न कुछ नहीं। जहां मन होता है वहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है और जगत्ही मनरूप है। जो ज्ञानवान् पुरुष है वह मन की दशा को त्यागके केवल चिदानन्द आत्मतत्त्व में स्थित होता है और रागद्वेष आदि विकार उसके मिटजाते हैं॥

इतिश्रीयोग०उ०प्र०वीतवविश्रान्तिसमाप्तिर्नामचतुरशीतितमस्सर्गः ८४॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वीतव की नाईं विदितवेद होकर तुम भी रागद्वेष से रहित स्थित हो। जैसे तीससहस्रवर्ष वीतव वीतशोक और जीवन्मुक्त होकर बिचरा है तैसेही तुमभी बिचरो। और भी बोधवान् राजा और मुनीश्वर हुये हैं जैसे वे उस पद में प्राप्त हुये राजादिक व्यवहार में रहे हैं तैसेही तुमभी जीवन्मुक्त होकर रहो। हे रामजी! सुख दुःख कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है; तुम किस निमित्त शोक करते हो? बहुत विदितवेद पृथ्वी में बिछुरते हैं परन्तु शोक को कदाचित् नहीं प्राप्त होते-जैसे तुम अब शोक नहीं करते हो। हे रामजी! तुम अब स्वस्थ, उदार, शम और सर्वज्ञ हो; अब तुमको फिर जन्म न होगा। जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूप में स्थित है वह हर्ष शोकको प्राप्त नहीं होता है। जैसे सिंह, वानर और शृगाल आदिक के वश नहीं होता तैसेही जीवन्मुक्त विकारों से रहित होता है। रामजीने पूछा, हे भगवन्! इस प्रसंग में मुझको संदेह हुआ है उसको जैसे शरत्काल में मेघ नष्ट होजाता है तैसे ही नाश करो। हे तत्त्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ! जीवन्मुक्त के शरीर में शक्ति क्यों नहीं दृष्टि आती

कि, आकाश में उड़ता फिरे और सूक्ष्मरूप से और शरीर में प्रवेश करजावे इत्यादिक ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! आकाशगमनादिक जो सिद्धि हैं सो तपादिक कर्मों की शक्ति हैं। जो कुछ जगत् विचित्र दिखाई देना और फिर गुप्त होजाना इत्यादिक हैं वे वस्तु द्रव्य के स्वभाव हैं; आत्मा के ज्ञान के नहीं। हे रामजी ! कोई द्रव्य, क्रिया और काल को यथाक्रम साधता है उसको भी शक्ति प्राप्त होतीहै और ज्ञानी साधे अथवा अज्ञानी साधे उसको शक्ति प्राप्त होती है परन्तु वह शक्ति आत्मज्ञान का फल नहीं। आत्मज्ञानी को आत्मज्ञानकी ही सिद्धता होती है; वह आत्मा से ही तृप्त होता है और सिद्धि जो अविद्यारूप हैं उनकी ओर नहीं धावता। जो कुछ जगत् है वह उसने अविद्यारूप जाना है इससे वह पदार्थों में नहीं डूबता। जो अज्ञानी है वह सिद्धताके निमित्त इन पदार्थों को साधता है और जो ज्ञानवान् है वह इन पदार्थों के वास्ते यत्न नहीं करता। यत्न करने से ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी हो इन्द्रादिकों के ऐश्वर्य को पाता है और वह ज्ञान की शक्ति नहीं, द्रव्य की शक्ति है सो अविद्यारूप है। अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं ज्ञानवान् नहीं धावते क्योंकि, वे सबसे अतीत हैं। जिसने सर्व इच्छा का त्याग किया है और आत्मपद में संतोष पाया है वह इनकी इच्छा नहीं करते। इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाई के निमित्त होती है अथवा मान और जीने और सिद्धि के निमित्त होती है आत्मज्ञानी को भोगों की, सिद्धताकी और मान की इच्छा नहीं होती क्योंकि, ये सब अनात्म धर्म हैं और वह नित्य तृप्त, परमशान्तरूप, वीतराग, निर्वासनिक पुरुष है और आकाश की नाईं सदा अपने आपमें स्थित है। जैसे सुख स्वाभाविक आता है तैसेही दुःख भी स्वाभाविक आता है। शरीर के सुख दुःख की अवस्था में वह चलायमान नहीं होता; नित्य तृप्त और असंग होता है और जीवन मरण की वृत्ति उसको नहीं फुरती सबमें सम रहता है जैसे समुद्र में नदियां प्रवेश करती हैं और समुद्र अपनी मर्यादा में स्थित रहता है तैसेही ज्ञानवान् को क्षोभ नहीं प्राप्त होता। हे रामजी ! जो कुछ ज्ञानवान् को प्राप्त होता है उसे वह आत्मा में अर्चन करता है; उसको करने

में कुछ अर्थ नहीं और न करने में कुछ प्रत्यवाय है। उसको किसीका आश्रय नहीं सदा अपने स्वरूप में स्थित है और यह मन्त्र सिद्धि काल कर्म से होती है। एक योग क्रिया ऐसी है कि, उसके साधने से उड़ने की शक्ति हो आती है, एक मन्त्रों से शक्ति होती है और एक गुटका मुख में रखने से उड़ने इत्यादिककी शक्ति होती है; शक्तिकी नीति प्रथमही हो रहती है। उससे अन्यथा नहीं होती हे रामजी! जैसी शक्ति जिस साधन से नियत हुई है उसको सदाशिव भी अन्यथा नहीं करसक्के क्योंकि; वह स्वाभाविक स्वतःसिद्धहै—जैसे चन्द्रमा में शीतलता और अग्निमें उष्णताहै इत्यादिक आदि नीतिहै उसको कोई दूर नहीं करसक्का और सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् हैं वे भी अन्यथा नहीं करसक्के। हे रामजी! जिस द्रव्य में मारने की सत्ता है वह मारता है; और मद्य में मत्त करने की शक्ति है तैसेही द्रव्य, योग, काल आदिक में सिद्धता शक्ति नियत हुई है। जैसे एक औषध में क्लेश करने की शक्ति है तो उसके पायेसे क्लेश होता है तैसेही इनमें अपनी२ शक्ति है। जो इनको साधता है उसको ये प्राप्त होती हैं। आत्मज्ञानी जो उसका साधनकरे तो वह कर्ता में भी अकर्ता है। आत्मज्ञान के पाने में सिद्धि कुछ उपकार नहीं करसक्की परन्तु जो इनकी वाञ्छाकरे तो यत्न करके पाता है– यत्न विना नहीं पाता। आत्मज्ञानी को इच्छा भी नहीं होती क्योंकि, आत्मलाभ से उसकी सब इच्छा शान्त होजाती हैं। हे रामजी! जितने लाभ हैं उनसे परम उत्तम आत्मलाभ है। आत्मा को पाकर फिर किसीकी इच्छा नहीं होती। जैसे अमृत के पान किये और जलकी इच्छा नहीं होती तैसेही आत्माके लाभ से और इच्छा नहीं होती। ऐसा आत्मलाभ जिसने पाया है उसको इन सिद्धियों की इच्छा कैसेहो? जैसी जैसी किसीकी इच्छा होती है उसको तैसाही प्राप्त होता है। ज्ञानी हो अथवा ज्ञान से रहित हो इच्छा प्रयत्न के अनुसारही प्राप्त होती है। यह जो वीतव था उसको इच्छा कुछ न थी और प्रथम जो सूर्य के पास जाने की शक्ति दृष्टि आई थी सो क्रिया के साधन से थी; पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कुछ न रही। हे रामजी! जो कुछ किसी को फल प्राप्त होता है सो अपने

प्रयत्न से प्राप्त होताहै। जो ज्ञानवान्है वह सदा तृप्त रहता है उसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कुछ नहीं फुरती फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तीनसौ वर्ष वीतव मुनीश्वर समाधिमें रहा तो उसका शरीर पृथ्वी में पृथ्वी क्यों न होगया और सिंह भेड़िये सियार आदिक उसको क्यों न भोजन करगये? पीछे विदेहमुक्त हुआ प्रथम क्यों न हुआ? पृथ्वी में दबे हुये शरीर को निकालने के निमित्त बड़ा यत्न क्यों किया, इस संशय को निवारण करो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! संवित् वासना के साथ बँधीहुई सुख दुःखको भोगती है और मलीनभाव से घिरी हुई है; जो वासना से रहित शुद्ध समता रूप है और जो सुख दुःख के भोग से रहित है और किसी कारण छेदी नहीं जाती हे रामजी! जिस जिस पदार्थ में चित्त लगता है वही २ पदार्थ स्वरूप में भासते हैं यह पदार्थ की शक्ति है। जैसी पदार्थों में शक्ति होती है तैसीही भासती है; इस कारण बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं तो भी समाधि के बलसे उसका शरीर ज्यों का त्यों रहता है क्योंकि; चित्त जिस पदार्थ में लगता है उसका रूप होजाता है। जैसे मित्रको मित्रभाव से देखता है तो स्वाभाविक ही प्रसन्न होताहै और शत्रुको देखकर चित्त में स्वाभाविक ही अप्रसन्नता फुर आती है; मीठी वस्तुको देखकर चित्त स्वाभाविक ही लोलुप होजाता है और कटुक में विरसता को प्राप्त होताहै; मार्ग चलनेवाले का चित्त मार्ग के पर्वत और वृक्षों के राग से बन्धायमान नहीं होता; चन्द्रमा के निकट गये से शीतलता होती है और सूर्य के निकट उष्णता प्राप्त होती है सो पदार्थकी शक्ति है जिस पदार्थ के साथ वृत्ति का स्पर्श होता है उसका स्वाभाविक आरम्भ विफल प्राप्त होताहै। तैसेही योगी जब देह और इन्द्रियों की वासना और ममत्वभाव को त्याग करके समभाव में प्राप्त होता है तब उसको समभाव का अनुभव होताहै अर्थात् सबमें एकही भासता है। इस कारण शरीर को सिंहादिक कोई भोजन नहीं करसके और जो जीव उसके घात करनेको आते हैं वे हिंसाभाव को त्याग अहिंसक होजाते हैं। वीतव का शरीर जो छेद को न प्राप्त हुआ और न पृथ्वी में पृथ्वी होगया उसका यह कारण है कि, सर्वत्र समता

आकाश एकही स्थित है और काष्ठ, लोष्ठ, पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यन्त सबमें एक अनुस्यूत है; जहां पुर्यष्टका होती है वहां भासता है और जहां पुर्यष्टका नहीं होती वहां नहीं भासता, जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब सब ठौरमें पूर्ण है परन्तु जहां स्वच्छ ठौर, दर्पण, जल आदि होते हैं वहां भासता है और जहां उज्ज्वल ठौर नहीं होता वहां प्रतिबिम्ब नहीं भासता तैसेही जहां पुर्यष्टका है वहां संवित् भासती है अन्यथा नहीं भासती, इस कारण वीतवकी संवित् जो समभाव में स्थित है उसको किसी तत्त्व और जीव का क्षोभ नहीं होता। पञ्चतत्त्वों का क्षोभ तब होता है जब प्राण फुरते हैं और जब प्राण फुरनेसे रहित होते हैं तब तत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता; वीतवकी प्राणों के भीतर और बाहरकी स्पन्दकला शान्त होगई थी और प्राण और चित्तकला दोनों फुरनेसे रहित थीं इससे उसका हृदय भी क्षोभित न हुआ। हे रामजी! देहरूपी गृह में जब चित्त और वायुका स्पन्द शान्तहोजाता है तब शरीर नाश होजाता है और सब सुमेरु की नाईं स्थित होजाताहै; तब किसीकी सामर्थ्य नहीं होती कि, इसको क्षोभ करे और नाशकरे। योगीश्वर का चित्त और प्राण निस्पन्द होजाता है। वह इनको वश करके लगाता है तब उसको न तत्त्वों का क्षोभ होता है, न वात, पित्त, कफ का क्षोभ होताहै और न और कुछ क्षोभ होताहै इस कारण योगीका शरीर सहस्र वर्ष पर्यन्तभी ज्यों का त्यों रहता है नष्ट नहीं होताहै। जैसे वज्र को कोई चूर्ण नहीं करसक्ता तैसेही उसके शरीर को कोई नाश नहीं करसक्ता—सबकी शक्ति उस पर कुण्ठित होजाती है। इसकारण वीतव का शरीर ज्यों का त्यों रहा। पहले वह विदेहमुक्त क्यों न हुआ सोभी सुनो। हे रामजी! तत्त्वज्ञ और विदितवेद, वीतराग महाबुद्धि है। जिनकी अभिमानरूपी गांठि टूटपड़ी है वे पुरुष स्वतन्त्र स्थित होते हैं, उनको न कोई प्रारब्धकर्म है, न संचितकर्म है और न वर्त्तमान का कर्म है। तत्त्ववेत्ता सबसे मुक्त, स्वतन्त्र और स्वेच्छ बिचरताहै और जैसी इच्छाकरे तैसी शीघ्र ही होती है। हे रामजी! वीतव को जब आकाशमात्र से जीनेका स्पन्द फुरआया तब वह कुछकाल जीतारहा और जब उसकी संवित्में विदेहमुक्त

होनेका स्पन्द फुरा तब विदेहमुक्त होगया। ज्ञानवानोंकी स्थिति स्वाभाविक स्वतन्त्र होती है; जिसकी वे वाञ्छा करते हैं सो तत्काल ही होजाताहै और मन आत्मपद में स्थित होताहै; उनको कुछ कृत और कर्तव्य नहीं॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धिलाभविचारो नाम चतुरशीतितमस्सर्गः॥ ८४॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने कहा कि, जब विचार से वीतव का चित्त शान्त होगया तब उसको मैत्री, करुणादिक गुण प्राप्त हुये परन्तु जब विवेक से उसका चित्त नष्ट होगया तो फिर मैत्री आदिक गुण कहां आन प्राप्त हुये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! चित्त का नाश दो प्रकार का है। जीवन्मुक्त का चित्त अचित्तरूप होजाता है और विदेहमुक्त का चित्त स्वरूप से नष्ट होजाता है। जैसे भूना दाना होता है तैसेही जीवन्मुक्त का चित्त देखनेमें चित्तरूप है बीच से शब्दभाव नहीं और जैसे दाना नष्ट होजावे तैसेही विदेहमुक्त का चित्त देखनेमात्र भी नहीं रहता। हे रामजी! चित्त की सत्यताही दुःखों का कारण है और चित्त की असत्यताही सुखों का कारण है। जिस चित्त में विषयों की वासना फुरती है सो चित्त जन्मों का देनेवाला है और दुःखों का कारण है। गुणों के संग से अहंममभाव में रहना है और चित्त की सत्यता से जीव कहाता है। हे रामजी! जबतक चित्त विद्यमान है तबतक अनन्त दुःख होता है। दुःखरूपी वृक्ष का बीज चित्तही है। जब चित्त नष्ट होता है तब कल्याण होता है। रामजी ने पूछा, हे ब्राह्मण! मन किसका नाम है? कैसे नष्ट होताहै और कैसे अस्त होता है सो कहिये? वशिष्ठजी ने कहा, हे प्रश्नवेत्ताओं में श्रेष्ठ! चित्तसत्ता का लक्षण मैंने तुमसे कहाहै; अब चित्तमृतक का लक्षण सुनो। जिसको सुख और दुःख की दशा धैर्य और स्वरूप को चला नहीं सक्ती। जैसे सुमेरु को पवन चला नहीं सक्ता तैसेही जिसके चित्त को दुःख चला नहीं सक्ता तिसका मृत्यु जानो; अर्थात् जो चित्त सत्पद को प्राप्त हुआ है उस चित से चिन्ता नाश होजाती है। जैसे भने दाने में अंकुर नाश होजाता है तैसेही उसका चित्त नाश हो-

जाता है। जिसको आत्मा से भिन्न कुछ नहीं फुरना वह चित्त मृतक हुआ है। हे रामजी! जिसके चित्त को अहं इच्छा द्वेषादिक विकार तुच्छ न करसके उसका चित्त मृतक जानो और जिसको इन्द्रियों के विषय इष्ट अनिष्ट न प्राप्त हों और रागद्वेषमे ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजे ज्यों का त्यों रहे उसीपुरुषका चित्त मृतक जानो। जिसका चित्त नाश हुआ है उसे जीवन्मुक्त जानो। जिसको संसार के इष्ट पदार्थों में राग होता है वह ग्रहण की इच्छा करताहै और अनिष्ट की प्राप्ति में द्वेष करके त्यागने की इच्छा करता है। अहंमम भावसंयुक्त देह में जो अभिमान है उसमे आपको सुखी दुःखी मानता है और अपने में अनुभव होता है सो चित्त जीता है—यह चित्तसत्यता है जब चित्त संसारसे विरक्त हो और सत्संग और सत्शास्त्रों का श्रवण और मनन और स्वरूप का अभ्यास करे तब चित्त अचित्त होजाता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है और तभी जीवन्मुक्त होकर बिचरता है। जिस प्रकार मैत्री आदिक गुण जीवन्मुक्त में होते हैं सोभी सुनो। हे रामजी! चित्त में जो संसार की सत्यतारूपी मैल है यही चित्त-भाव है। वह जब आत्मज्ञान से नष्ट हो जाता है तब मैत्री आदिक गुण आन प्राप्त होते हैं। जैसे सूर्य के उदय हुये तम नष्ट हो जाता है और प्रकाश उदय होता है और जैसे भूने दाने का अंकुर जल जाता है तैसेही ज्ञानसे चित्त का चित्तस्वभाव नष्ट हो जाता है और मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं। तब देखनेमात्र चित्त दिखता है और अज्ञानी की नाईं यत्न करता भासता है परन्तु अज्ञानी का चित्त जन्म का कारण है ज्ञानी का चित्त जन्म का कारण नहीं। जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता; तैसेही अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता। जैसे चन्द्रमा राहु से छूटता है तब चित्त में मैत्री, करुणा आदिक गुण उदय होते हैं और जैसे बसन्त ऋतु के आये बेलें सब प्रफुल्लित हो आती हैं तैसेही चित्तभाव मिटे से मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक फुरते हैं। जो विदेहमुक्त होताहै उसका चित्त स्वरूप से भी नष्ट होजाता है और वहां गुण कोई नहीं रहता वह अवस्था और कोई नहीं जानता विदेहमुक्त ही जानता है। उसमें द्वैतकल्पना कुछ नहीं

फुरती और निर्मल पावन पदहै। हे रामजी! जीवन्मुक्त का चित्त स्वरूप में अचित्त होकर रहता है और विदेहमुक्त में चित्त स्वरूप से नष्ट होजाता है, इस कारण जीवन्मुक्त में मैत्री आदिक गुण पाये जाते हैं। आत्मा जो निर्मल और निष्कलङ्क है सो चित्त के नष्ट हुये विदेहमुक्त में रहता है; उस में गुणों की कल्पना कोई नहीं फुरती वह परमपावन निर्मल पद में स्थित होताहै और शान्ति आदिक गुण भी नष्ट होजाते हैं क्योंकि; चित्त-स्वरूप से नष्ट होजाता है। चित्तके नष्ट हुये चित्त की अवस्था कहां रही। तब न कोई गुण रहता है, न अवगुण रहताहै; न वह गुणों से उत्पन्न हुआ सार कहाता है और न अवगुणों से उत्पन्न हुआ असार कहाता है; न लोलुप है; न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है; न उदय है, न अस्त है; न हर्ष है, न शोक है; न तेज है, न तम है; न दिन है, न रात्रि है; न संध्या है, न दिशा है; न आकाश है; न अर्थ है, न अनर्थ है; न वासना है, न अवासना है; न अञ्जन है, न निरञ्जन है; न सत्य है, न असत्य है; न चन्द्रमा है, न तारे हैं और न सूर्य है। ऐसा जो सर्वकलना से रहित शरत्काल के आकाशकी नाईं निर्मल और बुद्धि से परे पद है उसमें और की गम नहीं। जैसे आकाश के स्थान को पवन जानता है तैसेही उसकी अवस्था को वही जाने। वहां स्थित हुये सब दुःख शान्त होजाते हैं और ब्रह्मानन्द में लीन होजाता है। ज्ञानवान् आकाश की नाईं निर्मलपद को प्राप्त होता है जिसके पायेसे और पाना कुछ नहीं रहता॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे ज्ञानविचारो नाम पञ्चाशीतितमस्सर्गः॥ ८५॥

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! परमाकाश के कोश में एकपहाड़ है उस पर जगत्‌रूपी एक वृक्ष है; तारे उसके फूल हैं; मेदु पत्र हैं; सूर्य, चन्द्रमा स्कन्ध हैं, और देवता, दैत्य, मनुष्यादिक सबजीव उसपर पखेरू रहते। सातो समुद्र उस पहाड़ पर बावलियां हैं और अनन्त नदियां उसमें प्रवेश करती हैं चतुर्दशप्रकार के भूतजात उसमें उत्पन्न होतेहैं और सुखदुःखरूपी फलों से पूर्ण है, और मोहरूपी जल से वह सींचाजाता है सो दृढ़ होकर

स्थित हुआ है। उसका बीज कौन है? बोध की वृद्धि के निमित्त यह ज्ञानरूपी सार मुझसे संक्षेप से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस संसार का बड़ा बीज शरीर है; जिसके भीतर आरम्भ की घनता है। जब शुभ अशुभ का आरम्भ शरीर का अंकुर होताहै तब शुभ अशुभ करताहै, इससे संसार का बीज शरीर ही है; और शरीर का बीज चित्त है; राजस, सात्त्विक और तामस वृत्ति उसकी टहनियां हैं। वही जन्ममरण का भंडार है और सुख दुःखरूपी रत्नों का डब्बा है। ऐसा जो चित्त है वह इस शरीर का कारण है। हे रामजी! जो कुछ जगज्जाल दृष्टि आता है वह सब असत्‌रूपहै। चित्त के फुरनेसे नाना प्रकार के आडम्बर भासते हैं। जैसे गन्धर्बनगर नानाप्रकारके आरम्भसहित भ्रमसे भासताहै और संकल्पपुर भासता है सो असत् है तैसेही यह जगत् असत् है। जैसे मृत्तिका में घटभाव होता है तैसे चित्त में जगत् का सद्भाव होताहै। चित्तरूपी अंकुर के वृत्तिरूपी दो टास होते हैं—एक प्राणों का फुरना और दूसरा दृढ़भावना। जब प्राणस्पन्द होताहै और हृदयमात्र में जो एकसौ एक नाड़ी हैं उनकी ओर संवेदनरूप चित्त उदय होता है तब प्राणस्पन्द उनकी ओर नहीं फुरता। जब प्राण फुरता है तब शुद्ध सात्त्विक चित्त उपजता है और उसमें जगत् भासता है। जैसे आकाश में नीलता भासती तैसेही प्राणों में नीलता भासती है। जब प्राणस्पन्द होताहै तब चित्त संवित् उछलती है—जैसे हाथसे ताड़नाकिया गेंद उछलताहै। जैसे प्राणस्पन्द में सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है और वहां प्रतिबिम्बरूप होकर सात्त्विकभाग में स्थित होती है और महासूक्ष्म से सूक्ष्म है—जैसे वायु में गन्ध रहती है। वही संवित्‌रूप को त्यागकर जब बहिर्मुख धावती है तब उससे नानाप्रकार के जगत् भासते हैं और नाना प्रकारकी वासना उठती हैं और उनसे अनेकदुःखोंको प्राप्त होताहै। इससे, हे रामजी! संवित् को अन्तर्मुख रोकना ही कल्याण का कारण है। जब संवित् स्वरूपमें स्थितहोती है तब क्षोभ मिटजाता है और जब शुद्ध संवित् में अहं उल्लेख फुरता है तब वेदनरूप होती है सोही चित्त है; चित्तसे अनेक दुःख होते हैं और चित्तका होना अनर्थका कारण है। जब चित्त न उपजे

तब शान्ति होजाती है और चित्त तब निवृत्त होता है जब प्राणस्पन्द रोकिये अथवा वासना नष्ट हो। ध्यान और प्राणायामसे योगीश्वर प्राणोंको रोकताहै तब चित्त स्थित हो जाताहै। यह योगसे अनुभव करताहै। ज्ञान से जो अनुभव होता है सो भी सुनो। हे रामजी! चित्त वासना से उत्पन्न होता है और वासना विचार से रहित फुरती है। जैसे बालकों को जन्म से ही स्तनों से दूध पीने की वृत्ति फुरती है तैसे ही अकस्मात् भावना की दृढ़ता से वासना फुर आती है। हे रामजी! जिसमें पुरुष की तीव्र भावना होती है वही रूप पुरुष का होता है। स्वरूप के प्रमाद से जो भासित होता है उसमें दृढ़ प्रतीति होजाती है तब उसकी भावना करता है और जगत् की वासना से मोह प्राप्त होता है स्वतःसिद्ध जो अनुभव रूप आत्मा है उसको जान नहीं सक्ता। वासना की प्रबलता से स्वरूप का त्याग करता है और भ्रान्तिरूप जगत् को सत्य देखता है—जैसे मद्य से मत्त को पदार्थ और के और भासते हैं तैसे ही मूर्खों को वासना के बल से जगत् के पदार्थ सत्य भासते हैं। हे रामजी! असम्यक्ज्ञान से जीव दुःखी होता है; शान्ति को नहीं प्राप्त होता और मनकी चिन्ता से जलता है। मन किसका नाम है सो सुनो। जो असम्यक्ज्ञान से अनात्मामें आत्मभावना हो और वस्तु आत्मा में अवस्तु अनात्मभावना हो उसका नाम मन है। वह मन ऐसे उत्पन्न होता है कि, प्रथम चेतन संवित् में पदार्थों की चिंतना होती है फिर तीव्रपदार्थों की दृढ़भावना होती है तब वही चेतन संवित् चित्तरूप होजाती है। उस चित्त में फिर जन्ममरणादिक विकार उपजते हैं और फिर किसी का ग्रहण और किसी का त्याग करता है। जब ग्रहण और त्याग का संकल्प हृदय से निवृत्त हो तब चित्त भी मृतक होजावे। जब वासना नष्ट होजाती है तब मन अमनपद को प्राप्त होता है। मन का अमन होनाही परम उपशम का कारण है। हे रामजी! जो कुछ जगत् के पदार्थ हैं उनकी अभावना कीजिये और सब जगत् अवस्तुभूत त्याग कीजिये तब हृदय आकाश में चित्त शान्त होगा। हे रामजी! चित्त का स्वरूप इतना है। जब पदार्थों से रस उठजावे तब

चित्त फिर नहीं उपजता। जबतक पदार्थों का रस फुरता है तबतक स्थूल रहता है और असम्यक्ज्ञान से अनात्मा में जो आत्मभावना है ज्यों २ यह दृढ़ होती है त्यों २ चित्तरूपी वृक्ष अनर्थ के निमित्त बढ़ता जाता है और ज्यों २ अनात्मा से आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाती है अर्थात् अवस्तु में वस्तुबुद्धि नहीं होती त्यों २ चित्तरूपी वृक्ष क्षीण होता जाता है सो कल्याण के निमित्त है। जब चित्त यथाभूत यथार्थ को देखता है तब चित्त अचित्त हो जाता है, सब आशा निवृत्त होजाती हैं और परम शान्ति और शीतलता हृदय में स्थित होती है तब पदार्थों को ग्रहण भी करता है परन्तु हृदय से रागसंयुक्त वासना निवृत्त होती है तो उससे चित्त शान्तिको प्राप्त होता है। हे रामजी! जीवन्मुक्त में भी चेष्टा दृष्ट आती है परन्तु जन्म का कारण नहीं होती क्योंकि; मन में मन का सद्भाव नहीं होता। जैसे नटुवा अभिमान से रहित अनेक प्रकार के स्वांग धरता है तैसे ही वह अभिमान से रहित चेष्टा करता है और जैसे कुम्हार का चक्र भ्रमता २ ताड़ना से रहित हुआ शनैः २ स्थिर हो जाता है तैसे ही ज्ञानवान् का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है परन्तु जन्म का कारण नहीं होता और जब प्रारब्धभोग पूर्ण होता है तब स्वाभाविक ठहर जाता है। जैसे भूना बीज नहीं उगता तैसे ही रागसे रहित ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं होती देखनेमात्र ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा तुल्य होती है। जैसे भूना और कच्चा बीज एक समान भासता है परन्तु कच्चा उगता है और भूना नहीं उगता तैसे ही ज्ञानी की चेष्टा जन्म का कारण नहीं होती क्योंकि; उसका चित्त शान्त हो जाता है। हे रामजी! जिसकी चेष्टा अभिमानसे रहितहै वह जीवन्मुक्त कहाताहै। उसका चित्त केवल चिन्मात्र को प्राप्त हुआ है और वह जब शरीर को त्यागता है तब अचित्तरूप चिदाकाश होताहै। हे रामजी! चित्त के दो बीजहैं—एक प्राणों का फुरना और दूसरा वासना का फुरना। जब दोनों में एक का अभाव होजाता है तब दोनों नाश होजाते हैं—ये परस्पर कारणरूप हैं। जैसे ताल से मेघ जल पान करके फिर वर्षा से ताल को पुष्ट करताहै सो परस्पर कारणरूप

है; तैसेही प्राणस्पन्द और वासना परस्पर कारणरूप हैं। जैसे बीज से अंकुर होते हैं और अंकुरसे बीज होते हैं तैसे ही प्राणस्पन्द से वासना होती है और वासना से प्राणस्पन्द होता है। ये दोनों चित्त के कारणहैं। जैसे फूल विना सुगन्ध नहीं और सुगन्ध विना फूल नहीं होता तैसे ही वासना विना प्राण नहीं होते और प्राण विना वासना नहीं होती। हे रामजी! जब वासना फुरती है तब सम्भवित में क्षोभ होताहै और वह प्राणों को जगाती है तब उसमें जगत् उपजताहै। जब हृदय में प्राणस्पन्द के धर्म होते हैं तब संवित् क्षोभवान्होताहै और चित्तरूपी बालक उपजताहै। इसप्रकार वासना और प्राण दोनों चित्तके कारण हैं जब दोनों में एक का नाश होजावे तब दोनों नाश होजावें और चित्त का भी नाश होजावे। हे रामजी! चित्तरूपी एकवृक्षहै; सुख दुःखरूपी उसके स्कन्ध हैं; चिन्तारूपी फल हैं; कार्यरूपी पत्र हैं; वृत्तिरूपी बेल से वेष्टित हुआहै और रागद्वेषरूपी दो बगले उस पर आन बैठे हैं; तृष्णारूपी काली सर्पिणी से वेष्टितहै और इन्द्रियांरूपी पक्षी उस पर आन बैठे हैं; इच्छादिक रोगों से पुष्ट होता है और अज्ञान इसका मूल है। जब अवासनारूपी खड्ग से शीघ्रही काटा जाता है तब संसारकी अभावना और स्वरूपकी भावनासे शीघ्रही नाश होजाताहै। जैसे तीक्ष्ण पवन से पका हुआ फल वृक्ष से शीघ्रही गिर पड़ता है तैसेही आत्मभाव से फल गिर पड़ता है। हे रामजी! चित्तरूपी आंधीने सब दिशा मलीन करके प्रकाश को घेर लिया है और तृष्णारूपी तृण उसमें उड़ते हैं। शरीररूपी स्तम्भाकार बायगोला अज्ञानरूपी कुण्ड से उपजा हुआ बड़े क्षोभ को प्राप्त करता है। जब हृदय में प्रकाश हो तब तम को दूर करे और जब स्पन्द रोकिये तब धूलि शान्त होजाती है। आत्मविचार से जब वासनारहित हो तब शरीररूपी धुवां शान्त होजावे। हे रामजी! प्राणों के रोकने से शान्ति होती है और वासना के न उदय होने से चित्त स्थिर हो जाता है। प्राणस्पन्द और वासना का बीज संवेदन है, जब शुद्ध संवित्मात्र से संवेदन का त्याग करे तब वासना और प्राण दोनों न फुरें। जैसे वृक्ष का बीज और मूल काट डालिये तो फिर नहीं उगता,

तैसेही इनका मूल संवेदन है । जब संवेदनका अभाव हो तब दोनों नहीं बनते । संवेदन का बीज आत्मसत्ता है, संवित्सत्ता से संवेदन प्रकट हुआहै उससे भिन्न नहीं । जैसे तिलों में तेल के सिवा और कुछ नहीं होता तैसेही संवित्सत्ता के सिवा हृदय में और कुछ नहीं पाया जाता–वही संकल्प द्वारा संवेदन को देखता है । जैसे स्वप्ने में मनुष्य अपनी मृत्यु देखता है और देशान्तर को प्राप्त होता है तैसेही सब सत्ता संवेदन को देखती हैं । चिन्मात्र संवित् में संवेदन का उत्थान होता है कि, 'अहं अस्मि' तब संवेदन जगत्जाल दिखाती है । अपना ही संवेदन उठकर आपको भ्रम दिखाता है–जैसे बालक को अपने संकल्प से उपजा वैताल सत्य भासता है और जैसे स्थान में पुरुष भासता है तैसेही संवित् में संवेदन भासता है । हे रामजी ! असम्यक्ज्ञान से संवेदनरूप होजाता है तो उसमें आत्मबुद्धि होती है और सम्यक्ज्ञान से लीन होजाता है । जैसे रस्सी में असम्यक्ज्ञान से सर्प भासता है तैसेही आत्मा में संवेदन भासता है । तीनों जगत् ब्रह्म संवित्रूप हैं संवेदन भी कुछ भिन्न नहीं । जिनको यह निश्चय दृढ़ होता है उनको बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञानी कहते हैं । प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जो जगत् है उससे वास्तवबुद्धि त्याग करने से भी संसार के पार होता है और जो अवस्तुबुद्धि से न त्यागेगा तो जगत् बड़े विस्तार को पावेगा । हे रामजी ! संवेदन का जो उत्थान होता है सो बड़े दुःखोंका देनेवाला है और संवेदन जो जड़वत् अजड़ है वह परम सुख सम्पदा का कारण है सो आनन्द उत्थान से रहित आनन्द स्वरूप है । जिसको संवेदन उत्थान से रहित असंवेदन संवित् आत्मा की बुद्धि हुई है वह संसारसमुद्र से पार होता है । रामजीने पूछा, हे प्रभो ! जड़ता से रहित असंवेदन कैसे होता है और असंवेदन से जड़ता कैसे निवृत्त होती है ? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी ! जो सब ठौर में आसक्त नहीं होता और कहीं चित्तकी वृत्ति नहीं लगाता और जिसमें जीवतत्त्वका कुछ ज्ञान न रहे वह असंवेदन जड़ता से रहित है । संवेदन स्पन्दरूप है, जिससे दृश्य भासता है सो दृश्यकी ओर से जड़है और स्वरूप में चेतनहै वह अजड़ कहाताहै ।

हे रामजी ! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है उससे संवेदन का स्पर्श कुछ न हो ऐसा संवित् अजड़ है। देवता, नाग, दैत्य, राक्षस, हाथी, मनुष्य आदिक स्थावर जङ्गमरूप सब वही धारती है। हे रामजी ! अपनी चेष्टा से संवित् आपको आप ही बँधाती है। जैसे कुसवारी आप ही आपको गृहमें बँधाती है तैसेही संवित् आपको बँधाता है। जब अपनी ओर आती है तब आप ही आपको प्राप्त होती है। हे रामजी ! जगत् जाग्रत्‌रूपी समुद्र है उसमें संवित्‌रूपी जल है जिससे सबस्थान पूर्ण होगया है। अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आकाश, पर्वत, नदी आदिक सब संवित्-रूपी जल की लहरें हैं इससे सब जगत् संवित्‌मात्र है और उसमें द्वैत-कलना का अभाव है। यह सम्यक्‌ज्ञान है। इस संवित् का बीज सन्‌मात्र है उसमें द्वैतकलना का अभाव है। यह सम्यक्‌ज्ञान है। इस संवित् का बीज सन्‌मात्र है और सन्‌मात्रसत्ता से संवित् उदय हुआ है—जैसे प्रकाश से ज्योति उदय होती है। इस सत्ता के दो रूप हैं—एकरूप नानाप्रकार हो भासता है और दूसरा एक ही रूप है। घट, पट, तत्त्व आदिक एकसत्ता के नानाप्रकार के विभाग स्थित हैं और विभाग से रहित एक सत्ता स्थित है—वह सत्ता समान अद्वैतरूप परमार्थ है। हे रामजी ! विषय को त्यागकर जो सन्‌मात्र है वह अलेप एकरूप है सोही महासत्ता है। उसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं। नाना आकार भी वह सत्ता कभी नहीं धारती। यह संवेदन से हुये हैं इस कारण अवस्तुरूप हैं। एकरूप जो परम सत्ता निर्मल अविनाशीहै वह न कभी नाश होताहै और न विस्मरण होता है क्योंकि; अनुभव-रूप है। हे रामजी ! एक कालसत्ता है और एक आकाशसत्ताहै सो यह सत्ता अवस्तुरूप है। इस विभागसत्ता को त्यागकर सन्‌मात्रसत्ता के परायण हो। कालसत्ता और आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम हैं परन्तु वास्तव नहीं। जहां नाना विभागकलना, आकार और नाना कारण हैं वह पवित्रकर्त्ता पावन नहीं। इसी से कहाहै कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं और सत्तासमान जो संवित्‌मात्र है वह सबका बीज है उसी से सबकी प्रकृति होती है। हे रामजी ! जो कुछ

पदार्थ हैं उनकी कलना सत्तासमान पर्यन्त है । उस अनन्त, अनादि, बीजरूप परमपदका बीज और कोई नहीं । जब उसका भान हो तब यह निर्विकार होकर स्थित हो । जीवन्मुक्त उसीको कहते हैं जिसे दृश्य की भावना कुछ न फुरे । जैसे बालक मूक, और अभिमान से रहित होता है तैसेही ज्ञान से जीव निर्वासनिक हो तब जड़ता से मुक्त होता है और सर्व आत्मभाव को प्राप्त होता है । जिस संवित् में दृश्य का स्पर्श होता है वह संवित् जड़ है क्योंकि; शुद्धस्वरूप में मलीन का स्पर्श होता है । जो संवित् द्वैत फुरनेसे रहित है वह शुद्ध और अजड़ है और जो द्वैतभाव को ग्रहण करती है वह स्वरूप की ओर से जड़ है । हे रामजी ! जिसकी स्वरूप की ओर स्थिति हुई है और दृश्यभाव का लेप नहीं होता है वह सर्ववासना को त्यागकर निर्विकल्पसमाधि में लगता है । जैसे आकाश में नीलता स्वाभाविक वर्तती है तैसेही योगी आनन्द में वर्तता है और निस्संवेदन संवित् में प्रविष्ट होकर वही रूप होजाता है जिसके मनकी वृत्ति वहां स्थिर होजाती है और बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगन्ध लेते, देखते, सुनते और सब इन्द्रियों की क्रिया करते भी मन स्थिर रहता है दृश्य का अभिमान नहीं फुरता वह अजड़ कहाता है और संवेदन से रहित सुखी होता है । हे रामजी ! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती परन्तु पीछे सब दुःखों का नाशकर्ता होती है, इससे इसी दृष्टि का आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र है उससे तर जाओ । जैसे वटका बीज सूक्ष्म होता है पर विस्तार को पाकर आकाश को स्पर्श करने लगता है तैसेही सूक्ष्म संवेदन से जब संकल्प फैलता है तब वही बड़े जगत् के विस्तार को धारता है और जन्म के जाल को प्राप्त होता है । बीजरूप से आपही अपने को जन्मों में डालता है और फिर २ मोह में गिरता है । जब संवित् अपनी ओर होती है तब मोक्ष को प्राप्त होता है और जैसी भावना स्वरूप में दृढ़ होती है वही सिद्ध होती है । जैसे नटुआ अनेक स्वांग को धारता है तैसेही संवित् अनेक आकारों को धारती है । जब नट भूमिका को त्यागता है तब अपने स्वरूप में प्राप्त होताहै । हे रामजी !

संवित्रूपी नटनी जगत्रूप धारकर नृत्य करती है। जो दुःखरूप संसार-समुद्र से न गिरे सो सत्ता सब कारणों की कारण है और उसका कारण कोई नहीं और वही सब सारों का सार है उसका सार कोई नहीं। उसी चेतनरूपी बड़े दर्पण में समस्त जगत् प्रतिबिम्बित होता है। जैसे ताल में किनारे के वृक्ष प्रतिबिम्बित होते हैं तैसेही सब वस्तु चिद्दर्पण में प्रतिबिम्बित होती हैं। हे रामजी! जो कुछ पदार्थ हैं वे सब आत्मसत्ता से सिद्ध होते हैं और उसी अनुभव में सबका अनुभव होता है। जैसे षट्रसों का स्वाद जिह्वा से सिद्ध होता है तैसेही सब पदार्थ चिदाकाश के आश्रय सिद्ध होते हैं। सब जगत्गण उसीसे उपजे हैं; उसीमें बर्तते और बढ़ते हैं; उसीमें स्थित दिखते हैं और उसी में लीन होते हैं। सबका अधिष्ठान वही सत्ता है और गुरुका गुरु; लघु की लघुता; स्थूल की स्थूलता; सूक्ष्मकी सूक्ष्मता; द्रव्यों का द्रव्य; कष्टों में कष्ट; बड़े में बड़ाई; तेज का तेज; तमका तम; वस्तुकी वस्तु; द्रष्टा का द्रष्टा; किंचन में किंचन; निष्किंचन में निष्किंचन; तत्त्वों का तत्त्व; असत्य का असत्य; सत्य का सत्य; आश्रम में आश्रम और अनाश्रम में अनाश्रम वही है। हे रामजी! ऐसी जो परमपावन सत्ता है उसमें प्रयत्न करके स्थित हो; फिर जैसे इच्छा हो तैसे करो। वह आत्मतत्त्व निर्मल, अजर, अमर, शान्तरूप और चित्त के क्षोभ से रहित है; उसमें भवसंसार से मुक्ति के निमित्त स्थित हो॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नाम षडशीतितमस्सर्गः॥ ८६॥

रामजीने पूछा, हे महानन्द के देनेवाले! यह जो बीजों का बीज आपने कहा है सो किस प्रकार प्राप्त हो? जिस प्रकार उस पद की शीघ्र प्राप्ति हो वह उपाय कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन सबके बीज का जो उत्तर दिया है उस उपाय से परमपद की प्राप्ति होती है। अब और भी जो तुमने पूछा है वह सुनो। सत्तासमान में स्थित होने के निमित्त यत्न कर्तव्य है। जो कुछ संसार की वासना है बल करके उसको त्याग करिये और शुद्ध आत्मा में तीव्र अभ्यास करिये तब शीघ्र ही अविघ्न

आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होगी। हे तत्त्ववेत्ता! उस पद में एक क्षण भी स्थित होगे तो अक्षयभाव को प्राप्त होगे। हे रामजी! सत्तासमान संवित्-मात्र तत्त्व है उसमें स्थित होके जो इच्छा हो सो करो तब उसके सिवा और कुछ सिद्ध न होगा—सब वही भासेगा। ऐसा जो अनुभवतत्त्व है वह तुम्हारा स्वरूप है उसके ध्यान में स्थित हुये तुमको कुछ खेद न होगा। ऐसा संवेदन के साथ ध्यान नहीं होता और ऊंचापद है पुरुष प्रयत्न से उस पद को प्राप्त हो। हे रामजी! केवल संवेदनके साथ ध्यान नहीं होता क्योंकि सर्वत्र सम्भव संवित् तत्त्व है। संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है और सबसे मिली हुई है जो कुछ चितवे, जो इच्छित हो, जो कुछ करे सो सब संवित् से सिद्ध होता है। हे रामजी! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है पर उसका भान नहीं होता और जो कुछ भासता है वही अविद्या आवरण है सो इसको दुःख होता है। स्वरूप के प्रमाद से जो दृश्य की वासना करता है उसकी दृढ़ता से अन्तःकरण दुःख पाता है। जब यत्न करके वासना का त्याग करिये तब मन और शरीर के दुःख सब नाश होजा-वेंगे। पूर्व जो मोह दृढ़ होरहा है—जैसे मेरु को मूल से उखाड़ना कठिन है तैसेही वासना का त्याग कठिनहै। वह वासना मनसे होती है; जबतक मन क्षय नहीं होता तबतक वासना भी क्षय नहीं होती। तत्त्वज्ञान विना मन नाश नहीं होता। वासना और मन का आवरण एकसाथ दूर होता है। यह परस्पर कारणरूप है। इनसे हे रामजी! तुम पुरुष प्रयत्न करके मन के संकल्प विकल्प को निवृत्त करो और अभ्यास और विचार करके विवेक का उपाय करो और भोगों की वासना दूर से त्यागो—इसीसे तुम शान्ति-मान होगे। इन तीनों के सम अभ्यास से तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासना-क्षय का वारंवार अभ्यास करो। जबतक इनको न साधोगे तबतक अनेक उपायों से भी शान्ति को न प्राप्त होगे। हे रामजी! वासना क्षय हो और मनोनाश और तत्त्वज्ञान का अभ्यास न करे तो कार्य सिद्ध नहीं होता और जो मनोनाश करे और तत्त्वज्ञान से वासना क्षय न करे तब भी कल्याण न होगा और तत्त्वज्ञान का विचार करे और वासना क्षय न हो

तो भी कुशल न होगा। जब इन तीनों का शम अभ्यास हो तब फल की प्राप्ति हो। हे रामजी! एक के सेवन से सिद्धता नहीं प्राप्त होती—जैसे मन्त्रोंको कोई प्रतिबन्ध लय करे तो मन्त्र फलदायक नहीं होता। और एक एक चरण पढ़े तो भी फलदायक नहीं होता। जबतक सब मन्त्र संध्यादिक एकठौर नहीं होते तबतक मन्त्र नहीं फुरते; तैसेही अकेलेमे कार्य सिद्ध नहीं होता। जब चिरकाल इनको इकट्ठा सेवे तब कार्य हो। जैसे सेनासंयुक्त बड़ा शत्रु हो और उसके मारने को एक शूरमा जावे तो शत्रु को मार नहीं सक्ता और यदि इकट्ठे सेना पर जा पड़े तब उसको जीत लेवे; तैसेही संसाररूपी शत्रु के नाशके लिये जब तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय का इकट्ठा अभ्यास हो तब संसाररूपी शत्रु नाश हो। हे रामजी! जब तीनों का अभ्यास करोगे तब हृदय की अहं मम ग्रन्थि टूट पड़ेगी। अनेक जन्मों की संसारसत्यना जो इसके हृदय में स्थित होरही है सो अभ्यासयोग से टूट पड़ेगी इससे चलते, बैठते, खाते, पीते, सुनते, सूंघते, स्पर्श करते और जागते इन तीनों का अभ्यास करो। हे रामजी! वासना के त्याग से प्राणस्पन्द रोका जाता है। जब प्राणों का स्पन्द रोका तब चित्त अचित्त होजाताहै। एक प्राणों के रोकनेसे ही वासना क्षय होजाती है, तब भी चित्त अचित्त होजाता है। आत्मयोग से अथवा वासना के त्याग से आत्मतत्त्व प्रकाशेगा। इनमें जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो; चाहे प्राणों को योगसे रोको और चाहे वासना का त्याग करो। प्राणायाम तब होता है जब गुरु की दी हुई युक्ति स्थित होती है और आसन और आहार के संयम से प्राणों का स्पन्द रोका जाता है। जब सम्यक्ज्ञान से जगत् को अवास्तव जानता है तब वासना नहीं प्रवर्तती। जो जगत् के आदि और अन्त में स्थित है उसमें मन जब स्थित होता है तब वासना नहीं उपजती। हे रामजी! जब व्यवहार में निःसंग और संसार की भावना से विवर्जित होताहै और शरीर में नाशवन्त बुद्धि होती है तब भी वासना नहीं प्रवर्तती और जब विचार करके वासना क्षय हो तब चित्त भी नष्ट हो जावेगा जैसे वायु

के ठहरने से धूल नहीं उड़ती तैसेही वासना के क्षय हुये चित्त नहीं उपजता। जो प्राणस्पन्द है वही चित्तस्पन्द है; जब वासना फुरती है तब जगत्भ्रम उपजता है। जैसे अरुण से धूल उपजती है तैसेही चित्त से वासना उपजती है जब प्राणस्पन्द ठहरता है तब चित्त भी ठहरजाता है; इससे यत्न करके प्राणस्पन्द अथवा वासना के जीतने का अभ्यास करो तब शान्तिमान् होगे और जो यह उपाय न करोगे और दूसरी यत्न से चित्त वश करने का उपाय करोगे तो बहुत काल से पावोगे। हे रामजी! इस युक्ति के विना मन के जीतने का और कोई उपाय नहीं है। जैसे मतवाले हाथी को अंकुश विना वश करने का उपाय और कोई नहीं तैसेही मनभी युक्ति विना वश नहीं होता। वह युक्ति यह है कि, सन्तों की संगति और शत्शास्त्रों का विचार करना। इस उपाय से तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय और प्राणों का स्पन्द रोकना होता है चित्त वश करने की यह परमयुक्ति है—इससे चित्त शीघ्रही जीता जाता है। जो इन उपायों का त्यागकर हठसे मन वश किया चाहते हैं वे क्या करते हैं? जैसे तम के नाश करने को दीपक जगावे तो नाश होजाता है और शस्त्रों से तम को काटे तो तम नाश न होवेगा तैसेही और उपायों से चित्त वश न होगा। इस विना जो और उपाय करते हैं वे मूर्ख हैं। जैसे मतवाला हाथी कमल की तांत से बांधा नहीं जाता और जो कोई इससे बांधने लगे तो महामूर्ख है; तैसेही मनके जीतने को और प्रकार जो हठ करते हैं सो महामूढ़ हैं। और उपाय करके क्लेश प्राप्त होगा आत्मसुख प्राप्त न होगा। जैसे दुर्भागी जीवों को कहीं सुख नहीं होता है। हे रामजी! जिसने तीर्थ, दान, तप और देवताओं की पूजा—यह चारों साधन किये हैं और मन जीतने का उपाय नहीं किया वह मृग की नाईं भ्रमता फिरताहै और पहाड़ों की कन्दरा में फल और पत्र खाता फिरता है क्योंकि उसने मन का नाश नहीं किया इससे आत्मपद को नहीं पाया वह और पशुओं के समान है; जैसे और पशु होते हैं तैसेही वह भी है। हे रामजी! जिस पुरुष ने मन को वश नहीं किया उसको शान्ति नहीं होती। जैसे

कोमल अङ्ग मृग ग्राम में जानेसे शान्ति नहीं पाता और जैसे जल में पड़ा तृण नदीके वेगसे भटककर कष्टवान् होताहै तैसेही वह पुरुष कर्म करताहै और मनको स्थित किये विना कष्ट पाता है। कभी दुःखसे जलता है और कभी कर्मों के वशसे स्वर्ग को प्राप्त होताहै पर वहभी नाश होजाते हैं। जैसे जलमें तरङ्ग उछलते हैं; कभी अधको जाते और कभी ऊर्ध्वको जाते तैसेही कर्मों के वश से जीव स्वर्ग नरक में भ्रमते हैं। इससे ऐसी दृष्टि का त्याग करके शुद्ध संवित्मात्र का आश्रय करो और वीतराग होकर स्थित हो। हे रामजी! जगत् में ज्ञानवान् ही सुखी है और जीता भी वही है; और सब दुःखी और मृतकसमान हैं। और बली भी ज्ञानवान् ही है जो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसारसमुद्र के पार होताहै और सब निर्बलहैं। इससे तुमभी ज्ञानवान्हो संवेदन रहित जो संवित्मात्र तत्त्वहै उसमें स्थित हो वह एकहै और सबके आदि, सबसे उत्तम, कलना से रहित और सबमें स्थितहै तो कर्ता हुये भी अकर्ता होगे और परब्रह्म उदय होगा॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे अष्टाशीतितमस्सर्गः॥ ८८॥

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिस पुरुष ने आत्मविचार कर अपना चित्त अल्प भी निग्रह किया है वह सम्पूर्ण फल को प्राप्त होगा और उसीका जन्म सफल होगा। हे रामजी! जिस चित्त में विचाररूपी कण का उदय हुआहै वह अभ्याससे बड़े विस्तार को पावेगा। हृदय में जो वैराग्यपूर्वक विचार उपजता है तो वह बढ़ता जाता है और अविद्यारूपी गुणों के फल को काटडालेगा और सब शुभगुण आन उसमें आलय करेंगे—जैसे जल से पूर्ण हुये ताल का सब पक्षी आन आश्रय करते हैं। हे रामजी! जिसको सम्यक्ज्ञान प्राप्त होता है और निर्मल बोध से यथादर्शन होता है उसको इन्द्रियां चला नहीं सक्तीं। जबतक स्वरूपका प्रमाद होताहै तबतक आधि व्याधि दुःख होतेहैं और जब स्वरूप में स्थिति होती है तब शरीर और मन के दुःख वश नहीं कर सक्ते—जैसे बिजलीको कोई ग्रहण नहीं करसक्ता, तैसे पुष्टिकर मेघों को कोई पकड़ नहीं सक्ता; जैसे आकाशके चन्द्रमा को मुष्टि में कोई नहीं पकड़

सक्ता और मूढ़ स्त्री चन्द्रमा को मोह नहीं सक्ती, तैसेही ज्ञानवान् को कोई दुःख वश नहीं करसक्ता। हे रामजी! जो हाथी मदसे मत्त है और जिसके मस्तकसे मद झरता है और भँवरे उसके आगे शब्द करते हैं उसको मच्छरों के प्रहार और स्त्रियों के श्वास नहीं छेदसक्ते; तैसेही ज्ञानवान् को विषयों के रागद्वेष नहीं चलासक्ते। जिस हाथी के मस्तक से मोती निकलते हैं ऐसे बलवान् हस्तीके नखोंसे विदारनेवाले सिंह को हरिण नहीं मारसक्ता; तैसेही ज्ञानवान् को दुःख नहीं चलासक्ता। जिसके फूत्कारसे वन के वृक्ष जलजातेहैं ऐसे सर्प को दर्दुर नहीं ग्रास सक्ते; तैसेही ज्ञानवान् को रागद्वेष नहीं चलासक्ते। जैसे राजसिंहासनपर बैठे राजों को तस्कर दुःख दे नहीं सक्ते तैसेही जो ज्ञानी स्वरूप में स्थित है उसको इन्द्रियों के विषयदुःख नहीं देसक्ते। जो विचार से रहित देहाभिमानी हैं और आत्मतत्त्व को नहीं प्राप्तहुये उनको विषय उड़ा लेजाते हैं—जैसे सूखे पत्रको पवन उड़ा ले जाताहै—और ज्ञानवान् को नहीं चलासक्ते। जैसे पर्वत मन्द पवन से चलायमान नहीं होता; तैसेही ज्ञानवान् सुख दुःख में चलायमान नहीं होता और जो विचारसे रहितहै वह देशके परिणामभाव में स्थित मानता है और जगत्भाव है। संसारभाव पदार्थों में रत मनुष्य जन्म में गुरु और शास्त्र का मार्ग उसकी ओरसे सो रहा है और मूढ़हो खाने पीने में सावधान है जो विचार से शून्य है, वह मृतक समान है और मृतक कहाताहै। उसको यह विचार कर्तव्य है कि, 'मैं कौनहूं' 'यह जगत् क्या है' 'कैसे उत्पन्न हुआ है' और 'कैसे निवृत्त होगा'। इसप्रकार विचारकर सन्तों के संग और अध्यात्मशास्त्र के विचार से जो पुरुष दृश्यभाव को त्यागकर आत्मतत्त्व में स्थित होता है वह परमपद पाता है। जैसे दीपक के प्रकाश से पदार्थ पाया जाता है तैसेही विचार से आत्मतत्त्व पाया जाता है। हे रामजी! जिसको शास्त्रविचार से आत्मतत्त्व का बोध होता है वह ज्ञानी कहाता है और वह ज्ञान ज्ञेय के साथ अभिन्नरूप है। अध्यात्मविद्या के विचार करके आत्मज्ञान प्राप्त होताहै। जैसे दूधसे मथकर मक्खन निकाला जाता है तैसेही विचार से आत्मज्ञान प्राप्त होताहै। ज्ञेय

जो भीतर होता है सोई परब्रह्म स्वरूप है और सत्य है पर असत्य की नाईं होकर स्थित है। ज्ञानवान् उसको पाकर तृप्त होता है और जीवन्मुक्त होकर अपने आपमें प्रकाशता है। जैसे चक्रवर्ती राज्य से आनन्द और तृप्ति होती है तैसेही ज्ञानवान् ब्रह्मानन्द में इन्द्रियों की इच्छा से रहित शोभता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांचों इन्द्रियोंके विषयों में आसक्त नहीं होता। सुन्दर राग, तन्द्री के शब्द, स्त्रियों के गाने और कोकिलापक्षी और गन्धर्व गन्धर्वी आदि में जो गायन हैं उन किसीमें वह आसक्त नहीं होता। अगर, चन्दन, मन्दार, कल्पवृक्ष के सुन्दर फूलों की सुगन्ध; अप्सरा और नागकन्याओं की नाईं सुन्दर स्त्रियों का स्पर्श करने और हीरे, मणि और भूषण और नानाप्रकार के वस्त्रों में वह बन्धवान् नहीं होता। जैसे चन्द्रमा सुन्दर और शीतल है परन्तु सूर्यमुखी कमलों को विकाश नहीं करसक्ता तैसेही सुन्दर स्पर्श ज्ञानी के चित्त को हर्षवान् नहीं करते। जैसे मरुस्थल में हंस प्रसन्न नहीं होता तैसेही ज्ञानवान् स्पर्श में प्रसन्न नहीं होते और रसादिक में भी बन्धवान् नहीं होते। दूध, दही, घृतादिकरस; भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य; यह चारों प्रकार के भोजन और कटु, तीक्ष्ण, मीठा, खारा आदि जितने रस हैं इनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते और किसी में बन्धवान् नहीं होते। वे आकाशबोध से नित्य तृप्त हैं और किसी भोग की इच्छा नहीं करते जैसे ब्राह्मण मुर्ग़ी के मांस के खाने की इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् उर्वशी, रम्भा, मेनका आदि अप्सराओं की इच्छा नहीं करता और चन्दन, अगर, कस्तूरी, मन्दार आदि वृक्षों के फूलों की सुगन्ध की इच्छा नहीं करते। जैसे मछली मरुस्थल की इच्छा नहीं करती तैसेही ज्ञानवान् सुगन्ध की इच्छा नहीं करता और रूप की इच्छा भी नहीं करते। सुन्दर स्त्रियां, बाग़, तालाब, नदियां इत्यादिक जो रूपवान् पदार्थ हैं तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करता। जैसे चन्द्रमा बादलों की इच्छा नहीं करते तैसेही ज्ञानवान् रूपकी इच्छा नहीं करते। और की क्या बात है, इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, समुद्र, कैलास, मन्दराचल, रत्न, मणि और कञ्चन ये जो बड़े बड़े

पदार्थ हैं उनकी भी वे इच्छा नहीं करते। जैसे राजा नीच पदार्थों की इच्छा नहीं करता तैसेही ज्ञानवान् पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता। समुद्र और सिंह के गर्जने और बिजली के कड़कने का जो भयानक शब्द है उसको भी सुनकर वह भयवान् नहींहोता—जैसे शूरमा धनुषका शब्द सुनकर भयवान् नहीं होता। ज्ञानवान् मतवाले हाथी; वैताल; पिशाच और इन्द्र के वज्र के शब्द सुनता और देखताहुआ भी कम्पायमान नहीं होता और सत्स्वरूप की स्थितिसे कभी चलायमान नहीं होता। शरीर को जो आरेसे काटिये; खड्ग से कण कण करिये और बाणों से बेधिये तौ भी कम्पायमान नहीं होता। उसको रागद्वेष भी किसी में नहीं होता, यदि शरीरपर एक ओर जलता अङ्गारा रखिये और एक ओर फूलों की माला रखिये तौभी वह हर्ष-शोकवान् नहीं होता। एक ओर खड्गधारावत् तीक्ष्णस्थान हो और एक ओर पुष्पशय्या हो तो उसको दोनों तुल्य हैं। एक ओर शीतल स्थान हो और एक ओर गरम शिला हो तो दोनों उसको तुल्यहैं। एक ओर मारनेवाला विष हो और दूसरी ओर जियानेवाला अमृत हो तो उसको दोनों तुल्य हैं। हे रामजी! चाहे सम्पदा प्राप्त हो चाहे आपदा हो; चाहे मृत्यु हो, चाहे उत्साह हो इनमें व्यवहार करता भी वह दृष्टि आताहै परन्तु हृदय से हर्ष और शोक नहीं। उसका मन हृदयसंयुक्त है और सदा सम रहताहै। हे रामजी! लोहे के कुल्हाड़े से उसका मांस तोड़िये; नरक में डालिये और ऊपर शस्त्रों की वर्षा हो तौ भी ज्ञानवान् भय न पावेगा और न उद्वेगवान् और न व्याकुल होगा; न दीन होगा। ज्ञानवान् इनमें सदा शमपन रहकर पहाड़ की नाईं धैर्यवान् स्थित रहताहै। हे रामजी! ज्ञानवान् रागद्वेष से रहित है और देहअभिमान से मुक्त हुआहै। उसका शरीर अग्नि में पड़े, वा खाईं में गिरे अथवा स्वर्ग में हो उसको दोनों तुल्य हैं और वह हर्ष शोकसे रहितहै। हे रामजी! जिसके स्वरूप में दृढ़ स्थिति हुई है वह चलायमान नहीं होता—जैसे मेरु स्थितहै—उसको पवित्र पदार्थ हो अथवा अपवित्र पदार्थ हो; पन्थ हो वा कुपन्थ हो; विष हो अथवा अमृत हो; मीठा, खट्टा, सलोना, कड़ुवा, दूध, दही, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य

अस्थि, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन हैं वह सम हैं। न इष्ट में वह रागवान् होताहै और न अनिष्ट में द्वेषवान् है। यदि एक पुरुष प्राणों के निकालने को सम्मुख आवे और दूसरा प्राणों की रक्षानिमित्त आवे तो दोनों को वह आत्मस्वरूप, शान्तमन और मधुररूप देखता है और रागद्वेष से रहित है। रमणीय अरमणीय पदार्थों को वह सम देखता है और उसने संसार की आस्था त्याग दी है। बोधस्वरूप में वह निश्चित है, चित्त नीरागपद को प्राप्त हुआ है और सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पञ्चविषयों के भोग अपना अवसर नहीं पाते। जैसे दर्पण देखने से प्रतिबिम्ब भासता है, दर्पण की सुरत नहीं रहती तैसेही वह विषयों में आत्मा देखता है, विषयों की सुरत नहीं रहती अज्ञानी को इन्द्रियां ग्रास लेती हैं—जैसे तृणों को मृग ग्रास लेता है। जिसने आत्मपद में विश्रान्ति पाई है उसको इन्द्रियां ग्रास नहीं सक्तीं। हे रामजी! अज्ञानरूपी समुद्र में जो पड़ा है और वासनारूपी लहरों से मिलकर उछलता और गिरता है; उसको आशारूपी तेंदुआ ग्रास करलेताहै और वह हाय हाय करता है; शान्ति नहीं पाता। जो विचार करके आत्मपद को प्राप्त हुआ है वह विश्रान्ति को पा चलायमान नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत जल के समूह से चलायमान नहीं होता तैसेही वह संकल्प विकल्प में चलायमान नहीं होता। जिसकी आत्मपद में विश्रान्ति हुई है वह उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है। हे रामजी! उसको यह जगत् ज्ञानमात्र भासताहै और वह उसे संवित्मात्र जानकर विचार करता है; न किसीका ग्रहण है और न त्याग करता है। इससे भ्रान्ति को त्यागकर संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है और किसका ग्रहण करता है? जो आदि में भी न हो; अन्त में भी न रहे और मध्य में भी कुछ न भासे उसे भ्रममात्र जानिये। इसप्रकार जानकर, भाव अभाव की बुद्धि को त्यागकर और निस्संवेदनरूप होकर संसारसमुद्र से तरजाओ और मन, बुद्धि और इन्द्रियों से कर्म करो चाहे न करो; निस्सङ्ग होगे तब तुमको लेप न लगेगा। हे रामजी! जिसका

मन अभिमान से रहित हुआ है वह कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता। जैसे मन और ठौर गया होता है तो विद्यमान शब्द अथवा रूप पदार्थों को प्रस्तुत होते भी नहीं जानता, तैसेही जिसका मन आत्मपदमें स्थित हुआहै उसको सुख दुःख कर्म नहीं लगता। जो पुरुष अभिमान से रहित है वह कर्मों में सुख दुःख भोगता दृष्टि आताहै परन्तु वह उसको स्पर्श नहीं करता। देखो तो यह बालक भी जानते हैं कि, मन और ठौर जाताहै तो सुनताभी नहीं सुनता; तैसेही वह पुरुष करताभी नहीं करता। हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है वह देखता है परन्तु नहीं देखता; सुनता है परन्तु नहीं सुनता; स्पर्श करता है परन्तु नहीं करता; सूंघता और रस लेता है परन्तु नहीं लेता इत्यादिक जो कुछ चेष्टा हैं सो कर्ता भी वह अकर्ता है और उसका चित्त आत्मपद में लीन हुआहै। जैसे कोई पुरुष देशान्तर को जाता है तो वह उस देश में व्यवहारकर्म करता है परन्तु उसका चित्त गृह में रहता है तैसेही ज्ञानवान् का चित्त आत्मपद में रहताहै। यह बात मूर्ख भी जानता है। जैसा वेग मन में तीव्र होता है उसकी सिद्धि होती है और वही भासता है; और नहीं भासता। हे रामजी! सब अनर्थों का कारण संग है; संसार के संगसे ही जन्म-मरण के बन्धन को प्राप्त होता है; इससे सब अनर्थों का संसार का कारण संग है। सब इच्छा का कारण संग है और सब आपदा का कारण संग है; संगके त्यागेसे मोक्षरूप और अजन्मा होताहै। इससे संग को त्याग कर और जीवन्मुक्त होकर विचरो। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप सर्वसंशयरूपी कुहिरे के नाशकर्ता शरत्काल का पवन हैं। संग किसको कहते हैं यह संक्षेप से मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भाव-अभाव जो पदार्थ हैं वह हर्ष और शोक के देनेवाले हैं। जिस मलिन वासना से यह प्राप्त होते हैं वही वासना संग कहाता है हे रामजी! देह में जो अहंबुद्धि होती है और संसार की जो सत्यप्रतीति है तो उस संसार के इष्ट अनिष्ट को रागद्वेष सहित ग्रहण करताहै; ऐसी मलिन वासना संग कहाती है और जीवन्मुक्तकी वासना हर्ष शोकसे रहित शुद्ध होती है-सो निस्संग कहाती

है। उसकी वासना जन्म मरण नहीं होती। हे रामजी! जिस पुरुष की देह में अभिमान नहीं होता और जिसकी स्वरूप में स्थिति है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि, उसकी शुद्ध वासना है और वह जो कर्ता है सो बन्धन का कारण नहीं होता। जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसेही ज्ञानवान्‌की वासना जन्म मरणका कारण नहीं होती और जिसकी वृत्ति जगत् के पदार्थों में स्थित है और रागद्वेष से ग्रहण त्याग करता है ऐसी मलिन वासना जन्मों का कारण है। इस वासना को त्यागकर जब तुम स्थित होगे तब तुम कर्ता हुये भी निर्लेप रहोगे और हर्ष शोकादि विकारों से जब तुम रहित होगे तब वीतराग और भय और क्रोध से असंग होगे। हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ है वह जीवन्मुक्त हुआ है। इससे तुमभी वीतराग होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। जीवन्मुक्त पुरुष इन्द्रियों के ग्राम को निग्रह करके स्थित होताहै और मान, मद, वैरको त्याग कर सन्ताप से रहित स्थित होताहै। वह सब आत्मा जानकर कर्म करता है परन्तु व्यवहारबुद्धि से रहित असंग होकर कर्म करता है। वह करता भी अकरता है उसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त हो अपने स्वभाव को नहीं त्यागता, जैसे क्षीरसमुद्रने मन्दराचल पर्वतको पाकर शुक्लताको नहीं त्यागा तैसेही जीवन्मुक्त अपने स्वभावको नहीं त्यागते। हे रामजी! आपदा प्राप्त हो अथवा चक्रवर्ती राज्य मिले; सर्पका शरीर प्राप्त हो अथवा इन्द्रका शरीर प्राप्त हो; इन सबमें वह सम और आत्मभाव स्थित होताहै और हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता। वह सब आरम्भोंको त्यागकर नानात्वभाव से रहित स्थित होताहै। विचार करके जिसने आत्मतत्त्व पायाहै वह जैसे स्थित हो तैसेही तुमभी स्थित हो। इसी दृष्टिको पाकर आत्मतत्त्वको देखो तब विगतज्वर होगे और आत्मपद को पाकर फिर जन्म मरण के बन्धन में न आवोगे॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे आर्षे देवदूतोक्तमहारामायणे मोक्षोपायन्नाम नवतितमस्सर्गः ॥९०॥

इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणं पञ्चमं समाप्तम् ॥९८॥

इति॥

५ खोन

